

THE  
**MAHĀBHĀRATA**

TEXT AS CONSTITUTED IN ITS CRITICAL EDITION

VOLUME IV

ANUŚĀSANA-, ĀŚVAMEDHIKA-, ĀSRAMAVĀSIKA-, MAUSALA-,  
MAHĀPRASTHĀNIKA-, AND SVARGĀROHAṆA-PARVANS.



PUBLISHED BY  
THE BHANDARKAR ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE

POONA

1975

*All rights reserved*

Printed by Dr. R. N. Dandekar, at the Bhandarkar Institute Press, Poona 4

and

Published by Dr. R. N. Dandekar, Hon. Secretary, Bhandarkar Oriental Research Institute,

Poona 411 004 ( India ).



चिकित्सितपाठात्मिका

# महाभारत-संहिता

चतुर्थः खण्डः

अनुशासन - आश्वमेधिक - आश्रमवासिक - मौसल -  
महाप्रस्थानिक - स्वर्गारोहण-पर्वणि



भाण्डारकरप्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिरेण

प्रकाशिता

पुण्यपत्तनम्

शकाब्दाः १८९७



## अनुक्रमणिका

१३ अनुशासनपर्व

अध्यायाः १-१५४

pp. 2493-2749

८७ दानधर्मपर्व १-१५२

2493-2746

मृत्युगौतम्यादिसंवादः १

2493-2496

सुदर्शनोपाख्यानम् २

2496-2499

विश्वामित्रोपाख्यानम् ३-४

2499-2502

शुक्रवासवसंवादः ५

2502-2503

दैवपुरुषकारबलाबलम् ६

2503-2505

कर्मफलवर्णनम् ७

2505-2506

पूज्यवर्णनम् ८

2506-2507

सृगालवानरसंवादः ९

2507-2508

नीचस्योपदेशनिषेधः १०

2508-2511

श्रियो निवासस्थानानि ११

2511-2512

भङ्गाश्वनोपाख्यानम् १२

2512-2514

शुभाशुभकर्मफलम् १३

2514-2515

उपमन्यूपाख्यानम् १४-१७

2515-2533

शिवस्तवः १४

2520-2521

शिवसहस्रनाम १७

2528-2532

शिवस्तुतिमाहात्म्यम् १८

2533-2536

अष्टावक्रद्विक्संवादः १९-२२

2536-2541

पात्रपरीक्षा २३

2541-2543

दैवपित्र्यदानफलम् २४

2543-2547

ब्रह्मघातिस्वरूपम् २५

2547

तीर्थप्रशंसा २६

2547-2550

गङ्गाप्रशंसनम् २७

2550-2554

मतङ्गोपाख्यानम् २८

2554-2555

इन्द्रमतङ्गसंवादः २९-३०

2555-2556

वीतहन्त्योपाख्यानम् ३१

2556-2559

पूज्यपुरुषवर्णनम् ३२

2559-2560

ब्राह्मणप्रशंसा ३३-३६

2560-2564

पृथिवीवासुदेवसंवादः ३४

2561-2562

पात्रपरीक्षा ३७

2564

स्त्रीस्वभावकथनम् ३८-३९

2564-2566

विपुलोपाख्यानम् ४०-४३

2566-2572

विवाहधर्माः ४४-४६

2572-2575

रिक्थविभागः ४७

2575-2577

|                        |           |
|------------------------|-----------|
| पुत्रप्रणिधिः ४९       | 2579-2580 |
| च्यवनोपाख्यानम् ५०     | 2580-2581 |
| च्यवननहुषसंवादः ५१     | 2581-2583 |
| च्यवनकुशिकसंवादः ५२-५६ | 2583-2591 |
| यमनियमफलानि ५७         | 2591-2593 |
| ब्राह्मणप्रशंसा ५८     | 2593-2594 |
| अतिथियज्ञः ५९          | 2595      |
| क्षत्रियधर्माः ६०      | 2595-2596 |
| भूमिदानप्रशंसा ६१      | 2596-2599 |
| अन्नदानप्रशंसा ६२      | 2599-2601 |
| नक्षत्रयोगदानम् ६३     | 2601-2603 |
| काल्चनादिदानम् ६४      | 2603      |
| तिलादिदानफलम् ६५       | 2603-2606 |
| पानीयदानफलम् ६६        | 2606      |
| तिलादिदानप्रशंसा ६७    | 2606-2608 |
| गोदानफलम् ६८           | 2608-2609 |
| नृगोपाख्यानम् ६९       | 2609-2610 |
| नाचिकेतोपाख्यानम् ७०   | 2610-2613 |
| गोप्रदानिकम् ७१-७३     | 2613-2616 |
| व्रतनियमफलम् ७४        | 2617-2618 |
| गोप्रदानिकम् ७५-८०     | 2618-2626 |
| श्रीगोसंवादः ८१        | 2626-2627 |
| गोलोकप्रश्नः ८२        | 2627-2629 |
| सुवर्णोत्पत्तिः ८३-८५  | 2629-2637 |
| कार्तिकेयोत्पत्तिः ८४  | 2631-2634 |
| तारकवधः ८६             | 2637-2638 |
| श्राद्धकल्पः ८७-९२     | 2638-2644 |
| व्रतविशेषाः ९३         | 2644-2645 |
| प्रतिग्रहदोषाः ९४      | 2645-2647 |
| शपथाध्यायः ९५-९६       | 2647-2654 |
| छत्रोपानहोत्पत्तिः ९७  | 2654-2655 |
| छत्रोपानहदानम् ९८      | 2655-2656 |
| आरामादिनिर्माणम् ९९    | 2656-2657 |
| बलिप्रदानम् १००        | 2657-2658 |
| दीपादिदानम् १०१        | 2658-2661 |
| पुष्पादिदानफलम् १०२    | 2661-2662 |
| दीपादिदानफलम् १०३      | 2662-2663 |
| ब्रह्मस्वहरणम् १०४     | 2663-2664 |
| हस्तिकूटम् १०५         | 2664-2668 |

|                                 |           |
|---------------------------------|-----------|
| अनशनमाहात्म्यम् १०६             | 2669-2671 |
| आयुष्याख्यानम् १०७              | 2671-2676 |
| ज्येष्ठकनिष्ठवृत्तिः १०८        | 2676      |
| उपवासविधिः १०९                  | 2677-2679 |
| उपवासफलम् ११०                   | 2679-2684 |
| शौचानुपृच्छा १११                | 2684-2685 |
| संसारचक्रम् ११२-११४             | 2685-2690 |
| अहिंसाफलम् ११५-११७              | 2690-2695 |
| कीटोपाख्यानम् ११८-१२०           | 2695-2698 |
| मैत्रेयभिक्षा १२१-१२३           | 2698-2700 |
| शाण्डिलीसुमनासंवादः १२४         | 2700-2701 |
| सान्त्वप्रशंसा १२५              | 2701-2702 |
| उमामहेश्वरसंवादः १२६-१३४        | 2702-2721 |
| विष्णुसहस्रनाम १३५              | 2721-2726 |
| ब्राह्मणप्रशंसा १३६             | 2726-2727 |
| पवनार्जुनसंवादः १३७-१४२         | 2727-2733 |
| कृष्णमाहात्म्यम् १४३            | 2733-2736 |
| दुर्वासोमाहात्म्यम् १४४         | 2736-2738 |
| ईश्वरप्रशंसा १४५-१४६            | 2738-2740 |
| धर्मनिर्णयः १४७-१४८             | 2740-2743 |
| युधिष्ठिरप्रश्नः १४९            | 2743      |
| धर्मसंशयः १५०                   | 2743      |
| वंशानुकीर्तनम् १५१              | 2744-2745 |
| युधिष्ठिरप्रतिप्रयाणम् १५२      | 2745-2746 |
| ८८ भीष्मस्वर्गारोहणपर्व १५३-१५४ | 2746-2749 |
| भीष्मस्वर्गानुज्ञा १५३          | 2746-2748 |
| भीष्मस्वर्गगमनम् १५४            | 2748-2749 |
| १५ आश्रमवासिकपर्व अध्यायाः १-४७ | 2860-2901 |
| ८९ आश्रमवासपर्व १-३५            | 2860-2888 |
| धृतराष्ट्रशुश्रूषा १-३          | 2860-2862 |
| भीमापनयः ४                      | 2862      |
| धृतराष्ट्रस्य वनगमनसंकल्पः ५-६  | 2862-2864 |
| व्यासागमनम् ७                   | 2864-2865 |
| व्यासवाक्यम् ८                  | 2865-2866 |
| युधिष्ठिरानुशासनम् ९-१२         | 2866-2869 |
| धृतराष्ट्रवाक्यम् १३-१६         | 2869-2873 |

|  |           |
|--|-----------|
| भीमसेनवाक्यम् १७                         | 2873-2874 |
| अर्जुनयुधिष्ठिरयोः वाक्ये १८             | 2874      |
| विदुरवाक्यम् १९                          | 2874-2875 |
| श्राद्धयज्ञः २०                          | 2875      |
| धृतराष्ट्रस्य वनगमनम् २१                 | 2875-2876 |
| कुन्तीवाक्यम् २२-२३                      | 2876-2878 |
| धृतराष्ट्रादीनां व्यासाश्रमगमनम् २५      | 2879-2880 |
| शतयूपप्रश्नः २७                          | 2881      |
| पाण्डवशोकः २८                            | 2881-2882 |
| पाण्डवानां धृतराष्ट्राश्रमाभिगमनम् २९-३१ | 2882-2884 |
| पाण्डववर्णनम् ३२                         | 2884-2885 |
| विदुरसायुज्यम् ३३                        | 2885-2887 |
| व्यासागमनम् ३४                           | 2887-2888 |
| व्यासवाक्यम् ३५                          | 2888      |
| ९० पुत्रदर्शनपर्व ३६-४४                  | 2889-2897 |
| कर्णजन्मकथनम् ३८                         | 2890      |
| दुर्योधनादिदर्शनम् ४०-४१                 | 2892-2894 |
| वैशंपायनवाक्यम् ४२                       | 2894-2895 |
| जनमेजयस्य परिक्षिद्दर्शनम् ४३            | 2895      |
| युधिष्ठिरनिवर्तनम् ४४                    | 2895-2897 |
| ९१ नारदागमनपर्व ४५-४७                    | 2897-2901 |
| धृतराष्ट्रादीनां दावाभौ दाहः ४५          | 2897-2899 |
| युधिष्ठिरशोकः ४६                         | 2899-2900 |
| धृतराष्ट्रश्राद्धकरणम् ४७                | 2900-2901 |
| १६ मौसलपर्व अध्यायाः १-९                 | 2902-2913 |
| ९२ मौसलपर्व १-९                          | 2902-2913 |
| मुनिशापात्साम्बस्य मुसलप्रसवः २          | 2902-2903 |
| उत्पातदर्शनम् ३                          | 2903-2904 |
| वृष्ण्यन्धकादिविनाशः ४                   | 2904-2905 |
| रामकृष्णावतारसमाप्तिः ५                  | 2905-2907 |
| अर्जुनागमनम् ६                           | 2907-2908 |
| वसुदेवविलापः ७                           | 2908-2909 |
| वसुदेवनिधनम् । वज्राभिषेकः ८             | 2909-2911 |
| व्यासार्जुनसमागमः ९                      | 2911-2913 |

|                            |              |           |
|----------------------------|--------------|-----------|
| १७ महाप्रस्थानिकपर्व       | अध्यायाः १-३ | 2914-2918 |
| ९३ महाप्रस्थानिकपर्व १-३   |              | 2914-2918 |
| पाण्डवप्रव्रजनम् १         |              | 2914-2915 |
| भीमादिपतनम् २              |              | 2915-2916 |
| इन्द्रयुधिष्ठिरसंवादः ३    |              | 2916-2918 |
| १८ स्वर्गारोहणपर्व         | अध्यायाः १-५ | 2919-2926 |
| ९४ स्वर्गारोहणपर्व १-५     |              | 2919-2926 |
| स्वर्गे नारदवाक्यम् १      |              | 2919-2920 |
| देवदूतविसर्जनम् २          |              | 2920-2922 |
| युधिष्ठिरस्वर्गारोहणम् ३-५ |              | 2922-2926 |





१४ आश्वमेधिकपर्व अध्यायाः १-९६

2750-2859

८९ अश्वमेधपर्व १-९६

2750-2859

|   |           |
|---|-----------|
| युधिष्ठिरसांत्वनम् १                        | 2750      |
| व्यासवाक्यम् २                              | 2750-2751 |
| संवर्तमरुत्तीयम् ३-१०                       | 2751-2764 |
| वासुदेववाक्यम् ११-१३                        | 2764-2766 |
| हास्तिनपुरप्रवेशः १४                        | 2766-2767 |
| इन्द्रप्रस्थे कृष्णार्जुनयोः सभाविहारः १५   | 2767-2768 |
| अनुगीता १६-५०                               | 2768-2807 |
| श्रीकृष्णस्य द्वारकां प्रति प्रस्थानम् ५१   | 2807-2809 |
| उत्तङ्कोपाख्यानम् ५२-५७                     | 2810-2818 |
| वासुदेवेन वसुदेवं प्रति युद्धाख्यानम् ५८-६० | 2818-2821 |
| वसुदेवेन अभिमन्योः श्राद्धदानम् ६१          | 2821-2822 |
| पाण्डवानां मरुत्तनिधिलाभः ६२-६४             | 2822-2824 |
| परिक्षित्संजीवनम् ६५-६९                     | 2825-2829 |
| युधिष्ठिरस्य यज्ञदीक्षा ७०-७१               | 2829-2831 |
| अर्जुनस्य अश्वानुसरणम् ७२-७९                | 2831-2844 |
| त्रैगर्तविजयः ७३                            | 2832-2833 |
| वज्रदत्तपराजयः ७४-७५                        | 2833-2835 |
| सैन्धवपराजयः ७६-७७                          | 2835-2838 |
| बभ्रुवाहनयुद्धम् ७८-८२                      | 2838-2842 |
| मागधपराजयः ८३                               | 2842-2843 |
| एकलव्यसुतपराजयः ८४                          | 2843-2848 |
| गान्धारपराजयः ८५                            | 2844-2845 |
| यज्ञायतननिर्माणम् ८६                        | 2845-2846 |
| यज्ञसमृद्धिः ८७                             | 2846-2847 |
| अर्जुनप्रत्यागमनम् ८८-८९                    | 2847-2848 |
| यूपोच्छ्रयः ९०                              | 2848-2850 |
| यज्ञसमाप्तिः ९१                             | 2850-2851 |
| नकुलोपाख्यानम् ९१-९६                        | 2851-2859 |



चतुर्थः खण्डः



## अनुशासनपर्व

१

युधिष्ठिर उवाच ।

शमो बहुविधाकारः सूक्ष्म उक्तः पितामह ।  
न च मे हृदये शान्तिरस्ति कृत्वेदमीदृशम् ॥ १  
अस्मिन्नर्थे बहुविधा शान्तिरुक्ता त्वयानघ ।  
स्वकृते का नु शान्तिः स्याच्छमाद्बहुविधादपि ॥ २  
शराचितशरीरं हि तीव्रव्रणमुदीक्ष्य च ।  
शमं नोपलभे वीर दुष्कृतान्येव चिन्तयन् ॥ ३  
रुधिरेणावसित्काङ्गं प्रस्रवन्तं यथाचलम् ।  
त्वां दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्र सीदे वर्षास्त्रिवाम्बुजम् ॥ ४  
अतः कष्टतरं किं नु मत्कृते यत्पितामहः ।  
इमामवस्थां गमितः प्रत्यमित्रै रणाजिरे ।  
तथैवान्ये नृपतयः सहपुत्राः सबान्धवाः ॥ ५  
वयं हि धार्तराष्ट्राश्च कालमन्युवशानुगाः ।  
कृत्वेदं निन्दितं कर्म प्राप्स्यामः कां गतिं नृप ॥ ६  
अहं तव ह्यन्तकरः सुहृद्वधकरस्तथा ।  
न शान्तिमधिगच्छामि पश्यंस्त्वां दुःखितं क्षितौ ॥

भीष्म उवाच ।

परतन्त्रं कथं हेतुमात्मानमनुमश्यसि ।  
कर्मण्यस्मिन्महाभाग सूक्ष्मं ह्येतदतीन्द्रियम् ॥ ८  
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
संवादं मृत्युगौतम्योः काललुब्धकपन्नगैः ॥ ९  
गौतमी नाम कौन्तेय स्थविरा शमसंयुता ।  
सर्पेण दष्टं स्वं पुत्रमपश्यद्गतचेतनम् ॥ १०

अथ तं स्नायुपाशेन बद्ध्वा सर्पममर्षितः ।  
लुब्धकोऽर्जुनको नाम गौतम्याः समुपानयत् ॥ ११  
तां चाब्रवीदयं ते स पुत्रहा पन्नगाधमः ।  
ब्रूहि क्षिप्रं महाभागे वध्यतां केन हेतुना ॥ १२  
अग्नौ प्रक्षिप्यतामेष च्छिद्यतां खण्डशोऽपि वा ।  
न ह्ययं बालहा पापश्चिरं जीवितुमर्हति ॥ १३

गौतम्युवाच ।

विस्मृजैनमबुद्धिस्त्वं न वध्योऽर्जुनक त्वया ।  
को ह्यात्मानं गुरुं कुर्यात्प्राप्तव्ये सति चिन्तयन् ॥  
प्लवन्ते धर्मलघवो लोकेऽम्भसि यथा प्लवाः ।  
मज्जन्ति पापगुरवः शस्त्रं स्कन्नमिवोदके ॥ १५  
न चामृत्युर्भविता वै हतेऽस्मि-  
न्को वात्ययः स्यादहतेऽस्मिन्ननस्य ।  
अस्योत्सर्गे प्राणयुक्तस्य जन्तो-  
र्मृत्योर्लोकं को नु गच्छेदनन्तम् ॥ १६

लुब्धक उवाच ।

जानाम्येवं नेह गुणागुणज्ञाः  
सर्वे नियुक्ता गुरवो वै भवन्ति ।  
स्वस्थस्यैते तूपदेशा भवन्ति  
तस्मात्क्षुद्रं सर्पमेनं हनिष्ये ॥ १७  
समीप्सन्तः कालयोगं त्यजन्ति  
सद्यः शुचं त्वर्थविदस्यजन्ति ।  
श्रेयः क्षयः शोचतां नित्यशो हि  
तस्मात्त्याज्यं जहि शोकं हतेऽस्मिन् ॥ १८

गौतम्युवाच ।

न चैवार्तिर्विद्यतेऽस्मद्विधानां  
धर्मारामः सततं सज्जनो हि ।  
नित्यायस्तो बालजनो न चास्ति

धर्मो ह्येष प्रभवाम्यस्य नाहम् ॥ १९  
न ब्राह्मणानां कोपोऽस्ति कुतः कोपाच्च यातना ।  
मार्दवात्क्षम्यतां साधो मुच्यतामेष पन्नगः ॥ २०

लुब्धक उवाच ।

हत्वा लाभः श्रेय एवाव्ययं स्या-  
त्सद्यो लाभो बलवद्भिः प्रशस्तः ।  
कालाह्लाभो यस्तु सद्यो भवेत्  
हृते श्रेयः कुत्सिते त्वीदृशे स्यात् ॥ २१

गौतम्युवाच ।

कार्यप्राप्तिर्गृह्य शत्रुं निहत्य  
का वा शान्तिः प्राप्य शत्रुं नमुक्त्वा ।  
कस्मात्सौम्य भुजगे न क्षमेयं  
मोक्षं वा किं कारणं नास्य कुर्याम् ॥ २२

लुब्धक उवाच ।

अस्मादेकस्माद्बहवो रक्षितव्या  
नैको बहुभ्यो गौतमि रक्षितव्यः ।  
कृतागसं धर्मविदस्त्यजन्ति  
सरीसृपं पापमिमं जहि त्वम् ॥ २३

गौतम्युवाच ।

नास्मिन्हते पन्नगे पुत्रको मे  
संप्राप्यते लुब्धक जीवितं वै ।  
गुणं चान्यं नास्य वधे प्रपश्ये  
तस्मात्सर्प लुब्धक मुञ्च जीवम् ॥ २४

लुब्धक उवाच ।

वृत्रं हत्वा देवराट् श्रेष्ठभागै

यज्ञं हत्वा भागमवाप चैव ।

शूली देवो देववृत्तं कुरु त्वं  
क्षिप्रं सर्पं जहि मा भूद्विशङ्का ॥ २५

भीष्म उवाच ।

असकृत्प्रोच्यमानापि गौतमी भुजगं प्रति ।  
लुब्धकेन महाभागा पापे नैवाकरोन्मतिम् ॥ २६  
ईषदुच्छ्वसमानस्तु कृच्छ्रात्संस्तभ्य पन्नगः ।  
उत्ससर्ज गिरं मन्दां मानुषीं पाशपीडितः ॥ २७  
को न्वर्जुनक दोषोऽत्र विद्यते मम बालिश ।  
अस्वतन्त्रं हि मां मृत्युर्विवशं यदचूचुदत् ॥ २८  
तस्यायं वचनादष्टो न कोपेन न काम्यया ।  
तस्य तत्किल्बिषं लुब्ध विद्यते यदि किल्बिषम् ॥

लुब्धक उवाच ।

यद्यन्यवशगेनेदं कृतं ते पन्नगाशुभम् ।  
कारणं वै त्वमप्यत्र तस्मात्त्वमपि किल्बिषी ॥ ३०  
मृत्पात्रस्य क्रियायां हि दण्डचक्रादयो यथा ।  
कारणत्वे प्रकल्प्यन्ते तथा त्वमपि पन्नग ॥ ३१  
किल्बिषी चापि मे वध्यः किल्बिषी चासि पन्नग ।  
आत्मानं कारणं ह्यत्र त्वमाख्यासि भुजंगम ॥ ३२

सर्प उवाच ।

सर्व एते ह्यस्ववशा दण्डचक्रादयो यथा ।  
तथाहमपि तस्मान्मे नैष हेतुर्मतस्तव ॥ ३३  
अथ वा मतमेतत्ते तेप्यन्योन्यप्रयोजकाः ।  
कार्यकारणसंदेहो भवत्यन्योन्यचोदनात् ॥ ३४  
एवं सति न दोषो मे नास्मि वध्यो न किल्बिषी ।  
किल्बिषं समवाये स्यान्मन्यसे यदि किल्बिषम् ॥

लुब्धक उवाच ।

कारणं यदि न स्याद्वै न कर्ता स्यात्स्वमप्युत ।  
विनाशे कारणं त्वं च तस्माद्बुध्योऽसि मे मतः ॥

असत्यपि कृते कार्ये नेह पन्नग लिप्यते ।  
तस्मान्नात्रैव हेतुः स्याद्वध्यः किं बहु भाषसे ॥३७

सर्प उवाच ।

कार्याभावे क्रिया न स्यात्सत्यसत्यपि कारणे ।  
तस्मात्त्वमस्मिन्हेतौ मे वाच्यो हेतुर्विशेषतः ॥३८  
यद्यहं कारणत्वेन मतो लुब्धक तत्त्वतः ।  
अन्यः प्रयोगे स्यादत्र किल्बिषी जन्तुनाशने ॥ ३९

लुब्धक उवाच ।

वध्यस्त्वं मम दुर्बुद्धे बालघाती नृशंसकृत् ।  
भाषसे किं बहु पुनर्वध्यः सन्पन्नगाधम ॥ ४०

सर्प उवाच ।

यथा हवींषि जुह्वाना मखे वै लुब्धकर्त्विजः ।  
न फलं प्राप्नुवन्त्यत्र परलोके तथा ह्यहम् ॥ ४१

भीष्म उवाच ।

तथा ब्रुवति तस्मिन्स्तु पन्नगे मृत्युचोदिते ।  
आजगाम ततो मृत्युः पन्नगं चाब्रवीदिदम् ॥ ४२  
कालेनाहं प्रणुदितः पन्नग त्वामचूचुदम् ।  
विनाशहेतुर्नास्य त्वमहं वा प्राणिनः शिशोः ॥ ४३  
यथा वायुर्जलधरान्विकर्षति ततस्ततः ।  
तद्वज्रलदवत्सर्प कालस्याहं वशानुगः ॥ ४४  
सात्त्विका राजसाश्चैव तामसा ये च केचन ।  
भावाः कालात्मकाः सर्वे प्रवर्तन्ते हि जन्तुषु ॥४५  
जङ्गमाः स्थावराश्चैव दिवि वा यदि वा भुवि ।  
सर्वे कालात्मकाः सर्प कालात्मकमिदं जगत् ॥४६  
प्रवृत्तयश्च या लोके तथैव च निवृत्तयः ।  
तासां विकृतयो याश्च सर्वं कालात्मकं स्मृतम् ॥४७  
आदित्यश्चन्द्रमा विष्णुरापो वायुः शतक्रतुः ।  
अग्निः खं पृथिवी मित्र ओषध्यो वसवस्तथा ॥४८  
सरितः सागराश्चैव भावाभावौ च पन्नग ।

सर्वे कालेन सृज्यन्ते ह्रियन्ते च तथा पुनः ॥ ४९  
एवं ज्ञात्वा कथं मां त्वं सदोषं सर्प मन्यसे ।

अथ चैवंगते दोषो मयि त्वमपि दोषवान् ॥ ५०

सर्प उवाच ।

निर्दोषं दोषवन्तं वा न त्वा मृत्यो ब्रवीम्यहम् ।  
त्वयाहं चोदित इति ब्रवीम्येतावदेव तु ॥ ५१  
यदि काले तु दोषोऽस्ति यदि तत्रापि नेष्यते ।  
दोषो नैव परीक्ष्यो मे न ह्यत्राधिकृता वयम् ॥ ५२  
निर्मोक्षस्त्वस्य दोषस्य मया कार्यो यथा तथा ।  
मृत्यो विदोषः स्यामेव यथा तन्मे प्रयोजनम् ॥ ५३

भीष्म उवाच ।

सर्पोऽथार्जुनकं प्राह श्रुतं ते मृत्युभाषितम् ।  
नानागसं मां पाशेन संतापयितुमर्हसि ॥ ५४

लुब्धक उवाच ।

मृत्योः श्रुतं मे वचनं तव चैव भुजंगम ।  
नैव तावद्विदोषत्वं भवति त्वयि पन्नग ॥ ५५  
मृत्युस्त्वं चैव हेतुर्हि जन्तोरस्य विनाशने ।  
उभयं कारणं मन्ये न कारणमकारणम् ॥ ५६  
धिष्ण्यं च दुरात्मानं क्रूरं दुःखकरं सताम् ।  
त्वां चैवाहं वधिष्यामि पापं पापस्य कारणम् ॥ ५७

मृत्युरुवाच ।

विवशौ कालवशगावावां तद्विष्टकारिणौ ।  
नावां दोषेण गन्तव्यौ यदि सम्यक्प्रपश्यसि ॥ ५८

लुब्धक उवाच ।

युवामुभौ कालवशौ यदि वै मृत्युपन्नगौ ।  
हर्षक्रोधौ कथं स्यातामेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ ५९

मृत्युरुवाच ।

याः काश्चिदिह चेष्टाः स्युः सर्वाः कालप्रचोदिताः ।  
पूर्वमेवैतदुक्तं हि मया लुब्धक कालतः ॥ ६०

तस्मादुभौ कालवशावां तद्विष्टकारिणौ ।  
नावां दोषेण गन्तव्यौ त्वया लुब्धक कर्हिचित् ॥

भीष्म उवाच ।

अथोपगम्य कालस्तु तस्मिन्धर्मार्थसंशये ।  
अब्रवीत्पन्नगं मृत्युं लुब्धमर्जुनकं च तम् ॥ ६२

काल उवाच ।

नैवाहं नाप्ययं मृत्युर्नायं लुब्धक पन्नगः ।  
किल्बिषी जन्तुमरणे न वयं हि प्रयोजकाः ॥ ६३  
अकरोद्यदयं कर्म तन्नोऽर्जुनक चोदकम् ।  
प्रणाशहेतुर्नान्योऽस्य बध्यतेऽयं स्वकर्मणा ॥ ६४  
यदनेन कृतं कर्म तेनायं निधनं गतः ।  
विनाशहेतुः कर्मास्य सर्वे कर्मवशा वयम् ॥ ६५  
कर्मदायादवाल्लोकः कर्मसंबन्धलक्षणः ।  
कर्माणि चोदयन्तीह यथान्योन्यं तथा वयम् ॥ ६६  
यथा मृत्पिण्डतः कर्ता कुरुते यद्यदिच्छति ।  
एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते ॥ ६७  
यथा छायातपौ नित्यं सुसंबद्धौ निरन्तरम् ।  
तथा कर्म च कर्ता च संबद्धावात्मकर्मभिः ॥ ६८  
एवं नाहं न वै मृत्युर्न सर्पो न तथा भवान् ।  
न चेयं ब्राह्मणी वृद्धा शिशुरेवात्र कारणम् ॥ ६९  
तस्मिन्स्तथा ह्युवाणे तु ब्राह्मणी गौतमी नृप ।  
स्वकर्मप्रत्ययाल्लोकान्मत्वार्युनकमब्रवीत् ॥ ७०  
नैव कालो न भुजगो न मृत्युरिह कारणम् ।  
स्वकर्मभिरयं बालः कालेन निधनं गतः ॥ ७१  
मया च तत्कृतं कर्म येनायं मे मृतः सुतः ।  
यातु कालस्तथा मृत्युर्मुञ्चार्जुनक पन्नगम् ॥ ७२

भीष्म उवाच ।

ततो यथागतं जग्मुर्मृत्युः कालोऽथ पन्नगः ।  
अभूद्विरोधोऽर्जुनको विशोकौ चैव गौतमी ॥ ७३  
एतच्छ्रुत्वा शमं गच्छ मा भूश्चिन्तापरो नृप ।

स्वकर्मप्रत्ययाल्लोकांस्वीन्विद्धि मनुजर्षभ ॥ ७४  
न तु त्वया कृतं पार्थ नापि दुर्योधनेन वै ।  
कालेन तत्कृतं विद्धि विहता येन पार्थिवाः ॥ ७५

वैशंपायन उवाच ।

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा बभूव विगतज्वरः ।  
युधिष्ठिरो महातेजाः पप्रच्छेदं च धर्मवित् ॥ ७६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

युधिष्ठिर उवाच ।

पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।  
श्रुतं मे महदाख्यानमिदं मतिमतां वर ॥ १  
भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि धर्मार्थसहितं नृप ।  
कथ्यमानं त्वया किञ्चित्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २  
केन मृत्युर्गृहस्थेन धर्ममाश्रित्य निर्जितः ।  
इत्येतत्सर्वमाचक्ष्व तत्त्वेन मम पार्थिव ॥ ३

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
यथा मृत्युर्गृहस्थेन धर्ममाश्रित्य निर्जितः ॥ ४  
मनोः प्रजापते राजन्निक्ष्वाकुरभवत्सुतः ।  
तस्य पुत्रशतं जज्ञे नृपतेः सूर्यवर्चसः ॥ ५  
दशमस्तस्य पुत्रस्तु दशाश्वो नाम भारत ।  
माहिष्मत्यामभूद्राजा धर्मात्मा सत्यविक्रमः ॥ ६  
दशाश्वस्य सुतस्त्वासीद्राजा परमधार्मिकः ।  
सत्ये तपसि दाने च यस्य नित्यं रतं मनः ॥ ७  
मदिराश्व इति ख्यातः पृथिव्यां पृथिवीपतिः ।  
धनुर्वेदे च वेदे च निरतो योऽभवत्सदा ॥ ८  
मदिराश्वस्य पुत्रस्तु द्युतिमान्नाम पार्थिवः ।  
महाभागो महातेजा महासत्त्वो महाबलः ॥ ९



पुत्रो द्युतिमतस्त्वासीत्सुवीरो नाम पार्थिवः ।  
 धर्मात्मा कोशवांश्चापि देवराज इवापरः ॥ १०  
 सुवीरस्य तु पुत्रोऽभूत्सर्वसंग्रामदुर्जयः ।  
 दुर्जयेत्यभिविख्यातः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ११  
 दुर्जयस्येन्द्रवपुषः पुत्रोऽग्निसदृशद्युतिः ।  
 दुर्योधनो नाम महान्राजासीद्राजसत्तम ॥ १२  
 तस्येन्द्रसमवीर्यस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः ।  
 विषयश्च प्रभावश्च तुल्यमेवाभ्यवर्तत ॥ १३  
 रत्नैर्धनैश्च पशुभिः सस्यैश्चापि पृथग्विधैः ।  
 नगरं विषयश्चास्य प्रतिपूर्णं तदाभवत् ॥ १४  
 न तस्य विषये चाभूत्कृपणो नापि दुर्गतः ।  
 व्याधितो वा कुशो वापि तस्मिन्नाभून्नरः क्वचित् ॥  
 सुदक्षिणो मधुरवागनसूयुर्जितेन्द्रियः ।  
 धर्मात्मा चानृशंसश्च विक्रान्तोऽथाविकत्थनः ॥ १६  
 यज्वा वदान्यो मेधावी ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ।  
 न चावमन्ता दाता च वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १७  
 तं नर्मदा देवनदी पुण्या शीतजला शिवा ।  
 चकमे पुरुषश्रेष्ठं स्वेन भावेन भारत ॥ १८  
 तस्य जज्ञे तदा नद्यां कन्या राजीवलोचना ।  
 नाम्ना सुदर्शना राजनरूपेण च सुदर्शना ॥ १९  
 तादृग्रूपा न नारीषु भूतपूर्वा युधिष्ठिर ।  
 दुर्योधनसुता यादृगभवद्वरवर्णिनी ॥ २०  
 तामग्निश्चकमे साक्षाद्राजकन्यां सुदर्शनाम् ।  
 भूत्वा च ब्राह्मणः साक्षाद्वरयामास तं नृपम् ॥ २१  
 दरिद्रश्चासवर्णश्च ममायमिति पार्थिवः ।  
 न दित्सति सुतां तस्मै तां विप्राय सुदर्शनाम् ॥ २२  
 ततोऽस्य वितते यज्ञे नष्टोऽभूद्धव्यवाहनः ।  
 ततो दुर्योधनो राजा वाक्यमाहर्त्विजस्तदा ॥ २३  
 दुष्कृतं मम किं न स्याद्भवतां वा द्विजर्षभाः ।  
 येन नाशं जगामाग्निः कृतं कुपुरुषेष्विव ॥ २४

न ह्यल्पं दुष्कृतं नोऽस्ति येनाग्निर्नाशिमागतः ।  
 भवतां वाथ वा मह्यं तत्त्वेनैतद्विमृश्यताम् ॥ २५  
 एतद्राज्ञो वचः श्रुत्वा विप्रास्ते भरतर्षभ ।  
 नियता वाग्यताश्चैव पावकं शरणं ययुः ॥ २६  
 तान्दर्शयामास तदा भगवान्हव्यवाहनः ।  
 स्वं रूपं दीप्तिमत्कृत्वा शरदर्कसमद्युतिः ॥ २७  
 ततो महात्मा तानाह दहनो ब्राह्मणर्षभान् ।  
 वरयाम्यात्मनोऽर्थाय दुर्योधनसुतामिति ॥ २८  
 ततस्ते काल्यमुत्थाय तस्मै राज्ञे न्यवेदयन् ।  
 ब्राह्मणा विस्मिताः सर्वे यदुक्तं चित्रभानुना ॥ २९  
 ततः स राजा तच्छ्रुत्वा वचनं ब्रह्मवादिनाम् ।  
 अवाप्य परमं हर्षं तथेति प्राह बुद्धिमान् ॥ ३०  
 प्रायाचत नृपः शुल्कं भगवन्तं विभावसुम् ।  
 नित्यं सांनिध्यमिह ते चित्रभानो भवेदिति ।  
 तमाह भगवानग्निरेवमस्त्विति पार्थिवम् ॥ ३१  
 ततः सांनिध्यमद्यापि माहिष्मत्यां विभावसोः ।  
 दृष्टं हि सहदेवेन दिशो विजयता तदा ॥ ३२  
 ततस्तां समलंकृत्य कन्यामहतवाससम् ।  
 ददौ दुर्योधनो राजा पावकाय महात्मने ॥ ३३  
 प्रतिजग्राह चाग्निस्तां राजपुत्रीं सुदर्शनाम् ।  
 विधिना वेददृष्टेन वसोर्धाराभिवाध्वरे ॥ ३४  
 तस्या रूपेण शीलेन कुलेन वपुषा श्रिया ।  
 अभवत्प्रीतिमानग्निर्गर्भं तस्यां समादधे ॥ ३५  
 तस्यां समभवत्पुत्रो नाम्नाग्नेयः सुदर्शनः ।  
 शिशुरेवाध्यगात्सर्वं स च ब्रह्म सनातनम् ॥ ३६  
 अथौघवान्नाम नृपो नृगस्यासीत्पितामहः ।  
 तस्याप्यौघवती कन्या पुत्रश्चौघरथोऽभवत् ॥ ३७  
 तामौघवान्ददौ तस्मै स्वयमौघवतीं सुताम् ।  
 सुदर्शनाय विदुषे भार्यार्थं देवरूपिणीम् ॥ ३८  
 स गृहस्थाश्रमरतस्तथा सह सुदर्शनः ।

कुरुक्षेत्रेऽवसद्राजन्नोघवत्या समन्वितः ॥ ३९  
 गृहस्थश्चावजेष्यामि मृत्युमित्येव स प्रभो ।  
 प्रतिज्ञामकरोद्धीमान्दीप्ततेजा विशां पते ॥ ४०  
 तामथौघवतीं राजन्स पावकसुतोऽब्रवीत् ।  
 अतिथेः प्रतिकूलं ते न कर्तव्यं कथंचन ॥ ४१  
 येन येन च तुष्येत नित्यमेव त्वयातिथिः ।  
 अप्यात्मनः प्रदानेन न ते कार्या विचारणा ॥ ४२  
 एतद्व्रतं मम सदा हृदि संपरिवर्तते ।  
 गृहस्थानां हि सुश्रोणि नातिथेर्विद्यते परम् ॥ ४३  
 प्रमाणं यदि वामोरु वचस्ते मम शोभने ।  
 इदं वचनमव्यग्रा हृदि त्वं धारयेः सदा ॥ ४४  
 निष्क्रान्ते मयि कल्याणि तथा संनिहितेऽनघे ।  
 नातिथिस्तेऽवमन्तव्यः प्रमाणं यद्यहं तव ॥ ४५  
 तमब्रवीदोघवती यता मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।  
 न मे त्वद्वचनात्किंचिदकर्तव्यं कथंचन ॥ ४६  
 जिगीषमाणं तु गृहे तदा मृत्युः सुदर्शनम् ।  
 पृष्ठतोऽन्वगमद्राजन्गन्धान्वेषी तदा सदा ॥ ४७  
 इध्मार्धं तु गते तस्मिन्नग्निपुत्रे सुदर्शने ।  
 अतिथिर्ब्राह्मणः श्रीमांस्तामाहौघवतीं तदा ॥ ४८  
 आतिथ्यं दत्तमिच्छामि त्वयाद्य वरवर्णिनि ।  
 प्रमाणं यदि धर्मस्ते गृहस्थाश्रमसंमतः ॥ ४९  
 इत्युक्ता तेन विप्रेण राजपुत्री यशस्विनी ।  
 विधिना प्रतिजग्राह वेदोक्तेन विशां पते ॥ ५०  
 आसनं चैव पाद्यं च तस्मै दत्त्वा द्विजातये ।  
 प्रोवाचौघवती विप्रं केनार्थः किं ददामि ते ॥ ५१  
 तामब्रवीत्ततो विप्रो राजपुत्रीं सुदर्शनाम् ।  
 त्वया ममार्थः कल्याणि निर्विशङ्के तदाचर ॥ ५२  
 यदि प्रमाणं धर्मस्ते गृहस्थाश्रमसंमतः ।  
 प्रदानेनात्मनो राज्ञि कर्तुमर्हसि मे प्रियम् ॥ ५३  
 तथा संछन्दमानोऽन्यैरीप्सितैर्नृपकन्यया ।

नान्यमात्मप्रदानात्स तस्या वज्रे वरं द्विजः ॥ ५४  
 सा तु राजसुता स्मृत्वा भर्तुर्वचनमादितः ।  
 तथेति लज्जमाना सा तमुवाच द्विजर्षभम् ॥ ५५  
 ततो रहः स विप्रर्षिः सा चैवोपविवेश ह ।  
 संस्मृत्य भर्तुर्वचनं गृहस्थाश्रमकाङ्क्षिणः ॥ ५६  
 अथेध्मान्समुपादाय स पावकिरुपागमत् ।  
 मृत्युना रौद्रभावेन नित्यं बन्धुरिवान्वितः ॥ ५७  
 ततस्त्वाश्रममागम्य स पावकसुतस्तदा ।  
 तामाजुहावौघवतीं क्वासि यातेति चासकृत् ॥ ५८  
 तस्मै प्रतिवचः सा तु भर्त्रे न प्रददौ तदा ।  
 कराभ्यां तेन विप्रेण स्पृष्टा भर्तृव्रता सती ॥ ५९  
 उच्छिष्टास्मीति मन्वाना लज्जिता भर्तुरेव च ।  
 तूष्णींभूताभवत्साध्वी न चोवाचाथ किंचन ॥ ६०  
 अथ तां पुनरेवेदं प्रोवाच स सुदर्शनः ।  
 क सा साध्वी क सा याता गरीयः किमतो मम ॥  
 पतिव्रता सत्यशीला नित्यं चैवार्जवे रता ।  
 कथं न प्रत्युदेत्यद्य स्मयमाना यथा पुरा ॥ ६२  
 उटजस्थस्तु तं विप्रः प्रत्युवाच सुदर्शनम् ।  
 अतिथिं विद्धि संप्राप्तं पावके ब्राह्मणं च माम् ॥  
 अनया छन्दमानोऽहं भार्यया तव सत्तम ।  
 तैस्तैरतिथिसत्कारैरार्जवेऽस्या दृढं मनः ॥ ६४  
 अनेन विधिना सेयं मामर्चति शुभानना ।  
 अनुरूपं यदत्राय तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ ६५  
 कूटमुद्गरहस्तस्तु मृत्युस्तं वै समन्वयात् ।  
 हीनप्रतिज्ञमत्रैनं वधिष्यामीति चिन्तयन् ॥ ६६  
 सुदर्शनस्तु मनसा कर्मणा चक्षुषा गिरा ।  
 त्यक्तेर्ष्यस्त्यक्तमन्युश्च स्मयमानोऽब्रवीदिदम् ॥ ६७  
 सुरतं तेऽस्तु विप्राग्र्य प्रीतिर्हि परमा मम ।  
 गृहस्थस्य हि धर्मोऽग्र्यः संप्राप्तातिथिपूजनम् ॥ ६८  
 अतिथिः पूजितो यस्य गृहस्थस्य तु गच्छति ।

नान्यस्तस्मात्परो धर्म इति प्राहुर्मनीषिणः ॥ ६९  
 प्राणा हि मम दाराश्च यच्चान्यद्विद्यते वसु ।  
 अतिथिभ्यो मया देयमिति मे व्रतमाहितम् ॥ ७०  
 निःसंदिग्धं मया वाक्यमेतत्ते समुदाहृतम् ।  
 तेनाहं विप्र सत्येन स्वयमात्मानमालभे ॥ ७१  
 पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ।  
 बुद्धिरात्मा मनः कालो दिशश्चैव गुणा दश ॥ ७२  
 नित्यमेते हि पश्यन्ति देशिनां देहसंश्रिताः ।  
 सुकृतं दुष्कृतं चापि कर्म धर्मभृतां वर ॥ ७३  
 यथैषा नानृता वाणी मयाद्य समुदाहृता ।  
 तेन सत्येन मां देवाः पालयन्तु दहन्तु वा ॥ ७४  
 ततो नादः समभवद्विभु सर्वासु भारत ।  
 असकृत्सत्यमित्येव नैतन्मिथ्येति सर्वशः ॥ ७५  
 उदजातु ततस्तस्मान्निश्चक्राम स वै द्विजः ।  
 वपुषा खं च भूमिं च व्याप्य वायुरिवोद्यतः ॥ ७६  
 स्वरेण विप्रः शैक्षेण त्रील्लोकाननुनादयन् ।  
 उवाच चैनं धर्मज्ञं पूर्वमामन्त्र्य नामतः ॥ ७७  
 धर्मोऽहमस्मि भद्रं ते जिज्ञासार्थं तवानघ ।  
 प्राप्तः सत्यं च ते ज्ञात्वा प्रीतिर्मे परमा त्वयि ॥  
 विजितश्च त्वया मृत्युर्योऽयं त्वामनुगच्छति ।  
 रन्ध्रान्वेषी तव सदा त्वया धृत्या वशीकृतः ॥ ७९  
 न चास्ति शक्तिश्चैलोक्ये कस्यचित्पुरुषोत्तम ।  
 पतिव्रतामिमां साध्वीं तवोद्वीक्षितुमप्युत ॥ ८०  
 रक्षिता त्वद्गुणैरेषा पतिव्रतगुणैस्तथा ।  
 अधृष्या यदिदं ब्रूयात्तथा तन्नान्यथा भवेत् ॥ ८१  
 एषा हि तपसा स्वेन संयुक्ता ब्रह्मवादिनी ।  
 पावनार्थं च लोकस्य सरिच्छ्रेष्ठा भविष्यति ॥ ८२  
 अर्धेनौघवती नाम त्वामर्धेनानुयास्यति ।  
 शरीरेण महाभागा योगो ह्यस्या वशे स्थितः ॥ ८३  
 अनया सह लोकांश्च गन्तासि तपसार्जितान् ।

यत्र नावृत्तिमभ्येति शाश्वतांस्तान्सनातनान् ॥ ८४  
 अनेन चैव देहेन लोकांस्त्वमभिपत्स्यसे ।  
 निर्जितश्च त्वया मृत्युरैश्वर्यं च तवोत्तमम् ॥ ८५  
 पञ्च भूतान्यतिक्रान्तः स्ववीर्याच्च मनोभवः ।  
 गृहस्थधर्मेणानेन कामक्रोधौ च ते जितौ ॥ ८६  
 स्नेहो रागश्च तन्द्री च मोहो द्रोहश्च केवलः ।  
 तव शुश्रूषया राजन्राजपुत्र्या विनिर्जिताः ॥ ८७  
 भीष्म उवाच ।

शुक्लानां तु सहस्रेण वाजिनां रथमुत्तमम् ।  
 युक्तं प्रगृह्य भगवान्व्यवसायो जगाम तम् ॥ ८८  
 मृत्युरात्मा च लोकाश्च जिता भूतानि पञ्च च ।  
 बुद्धिः कालो मनो व्योम कामक्रोधौ तथैव च ॥  
 तस्माद्गृहाश्रमस्थस्य नान्यदैवतमस्ति वै ।  
 ऋतेऽतिथिं नरव्याघ्र मनसैतद्विचारय ॥ ९०  
 अतिथिः पूजितो यस्य ध्यायते मनसा शुभम् ।  
 न तत्कृतुशतेनापि तुल्यमाहुर्मनीषिणः ॥ ९१  
 पात्रं त्वतिथिमासाद्य शीलाढ्यं यो न पूजयेत् ।  
 स दत्त्वा सुकृतं तस्य क्षपयेत् ह्यनर्चितः ॥ ९२  
 एतत्ते कथितं पुत्र मयाख्यानमनुत्तमम् ।  
 यथा हि विजितो मृत्युर्गृहस्थेन पुराभवत् ॥ ९३  
 धन्यं यशस्यमायुष्यमिदमाख्यानमुत्तमम् ।  
 बुभूषताभिमन्तव्यं सर्वदुश्चरितापहम् ॥ ९४  
 य इदं कथयेद्विद्वानहन्यहनि भारत ।  
 सुदर्शनस्य चरितं पुण्याल्लोकानवाप्नुयात् ॥ ९५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

३

युधिष्ठिर उवाच ।

ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्रापं त्रिभिर्वर्गेनैराधिप ।  
 कथं प्राप्तं महाराज क्षत्रियेण महात्मना ॥ १

विश्वामित्रेण धर्मात्मन्ब्राह्मणत्वं नरर्षभ ।  
 श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २  
 तेन ह्यमितवीर्येण वसिष्ठस्य महात्मनः ।  
 इतं पुत्रशतं सद्यस्तपसा प्रपितामह ॥ ३  
 बातुधानाश्च बहवो राक्षसास्तिग्मतेजसः ।  
 मन्युनाविष्टदेहेन सृष्टाः कालान्तकोपमाः ॥ ४  
 महान्कुशिकवंशश्च ब्रह्मर्षिशतसंकुलः ।  
 स्थापितो नरलोकेऽस्मिन्विद्वान्ब्राह्मणसंस्तुतः ॥ ५  
 ऋचीकस्यात्मजश्चैव शुनःशेषो महातपाः ।  
 विमोक्षितो महासत्रात्पशुतामभ्युपागतः ॥ ६  
 हरिश्चन्द्रक्रतौ देवांस्तोषयित्वात्मतेजसा ।  
 पुत्रतामनुसंप्राप्तो विश्वामित्रस्य धीमतः ॥ ७  
 नाभिवादयते ज्येष्ठं देवरातं नराधिप ।  
 पुत्राः पञ्चशताश्चापि शप्ताः श्वपचतां गताः ॥ ८  
 त्रिशङ्कुर्बन्धुसंयुक्त इक्ष्वाकुः प्रीतिपूर्वकम् ।  
 अवाप्तिशरा दिवं नीतो दक्षिणामाश्रितो दिशम् ॥  
 विश्वामित्रस्य विपुला नदी राजर्षिसेविता ।  
 कौशिकीति शिवा पुण्या ब्रह्मर्षिगणसेविता ॥ १०  
 तपोविघ्नकरी चैव पञ्चचूडा सुसंमता ।  
 रम्भा नामाप्सराः शापाद्यस्य शैलत्वमागता ॥ ११  
 तथैवास्य भयाद्बद्धा वसिष्ठः सलिले घुरा ।  
 आत्मानं मज्जयामास विपाशः पुनरुत्थितः ॥ १२  
 तदाप्रभृति पुण्या हि विपाशाभून्महानदी ।  
 विख्याता कर्मणा तेन वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ १३  
 वाग्भिश्च भगवान्येन देवसेनाग्रगः प्रभुः ।  
 स्तुतः प्रीतमनाश्चासीच्छापाच्चैनममोचयत् ॥ १४  
 ध्रुवस्योत्तानपादस्य ब्रह्मर्षीणां तथैव च ।  
 मध्ये ज्वलति यो नित्यमुदीचीमाश्रितो दिशम् ॥ १५  
 तस्यैतानि च कर्माणि तथान्यानि च कौरव ।  
 क्षत्रियस्येत्यतो जातमिदं कौतूहलं मम ॥ १६

किमेतदिति तत्त्वेन प्रब्रूहि भरतर्षभ ।  
 देहान्तरमनासाद्य कथं स ब्राह्मणोऽभवत् ॥ १७  
 एतत्तत्त्वेन मे राजन्सर्वमाख्यातुमर्हसि ।  
 मतंगस्य यथातत्त्वं तथैवैतद्ब्रवीहि मे ॥ १८  
 स्थाने मतंगो ब्राह्मण्यं नालभद्भरतर्षभ ।  
 चण्डालयोनौ जातो हि कथं ब्राह्मण्यमाप्नुयात् ॥ १९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

भीष्म उवाच ।

श्रूयतां पार्थ तत्त्वेन विश्वामित्रो यथा पुरा ।  
 ब्राह्मणत्वं गतस्तात ब्रह्मर्षित्वं तथैव च ॥ १  
 भरतस्यान्वये चैवाजमीढो नाम पार्थिवः ।  
 बभूव भरतश्रेष्ठ यज्वा धर्मभृतां वरः ॥ २  
 तस्य पुत्रो महानासीज्जहुर्नाम नरेश्वरः ।  
 दुहितृत्वमनुप्राप्ता गङ्गा यस्य महात्मनः ॥ ३  
 तस्यात्मजस्तुल्यगुणः सिन्धुद्वीपो महायशः ।  
 सिन्धुद्वीपाच्च राजर्षिर्वलाकाश्चो महाबलः ॥ ४  
 वह्मभस्तस्य तनयः साक्षाद्रर्म इवापरः ।  
 कुशिकस्तस्य तनयः सहस्राक्षसमद्युतिः ॥ ५  
 कुशिकस्यात्मजः श्रीमान्गाधिर्नाम जनेश्वरः ।  
 अपुत्रः स महाबाहुर्वनवासमुदावसत् ॥ ६  
 कन्या जज्ञे सुता तस्य वने निवसतः सतः ।  
 नाम्ना सत्यवती नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ७  
 तां वव्रे भार्गवः श्रीमांश्चयनस्यात्मजः प्रभुः ।  
 ऋचीक इति विख्यातो विपुले तपसि स्थितः ॥ ८  
 स तां न प्रददौ तस्मै ऋचीकाय महात्मने ।  
 दरिद्र इति मत्वा वै गाधिः शत्रुनिबर्हणः ॥ ९  
 प्रत्याख्याय पुनर्यान्तमब्रवीद्वाजसत्तमः ।  
 शुल्कं प्रदीयतां महां ततो वेत्स्यसि मे सुताम् ॥

ऋचीक उवाच ।

किं प्रयच्छामि राजेन्द्र तुभ्यं शुल्कमहं नृप ।  
दुहितुर्ब्रूह्यसंसक्तो मात्राभूत्ते विचारणा ॥ ११

गाधिरुवाच ।

चन्द्ररश्मिप्रकाशानां हयानां वातरंहसाम् ।  
एकतः श्यामकर्णानां सहस्रं देहि भार्गव ॥ १२

भीष्म उवाच ।

ततः स भृगुशार्दूलश्रयवनस्यात्मजः प्रभुः ।  
अब्रवीद्वरुणं देवमादित्यं पतिमम्भसाम् ॥ १३  
एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।  
सहस्रं वातवेगानां मिश्रे त्वां देवसत्तम ॥ १४  
तथेति वरुणो देव आदित्यो भृगुसत्तमम् ।  
उवाच यत्र ते छन्दस्तत्रोत्थास्यन्ति वाजिनः ॥ १५  
ध्यातमात्रे ऋचीकेन हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।  
गङ्गाजलात्समुत्तस्थौ सहस्रं विपुलौजसाम् ॥ १६  
अदूरे कन्यकुब्जस्य गङ्गायास्तीरमुत्तमम् ।  
अश्वतीर्थं तदद्यापि मानवाः परिचक्षते ॥ १७  
तत्तदा गाधये तात सहस्रं वाजिनां शुभम् ।  
ऋचीकः प्रददौ प्रीतः शुल्कार्थं जपतां वरः ॥  
ततः स विस्मितो राजा गाधिः शापभयेन च ।  
ददौ तां समलंकृत्य कन्यां भृगुसुताय वै ॥ १९  
जग्राह पाणिं विधिना तस्या ब्रह्मर्षिसत्तमः ।  
सा च तं पतिमासाद्य परं हर्षमवाप ह ॥ २०  
स तुतोष च विप्रर्षिस्तस्या वृत्तेन भारत ।  
छन्दयामास चैवैनानां वरेण वरवर्णिनीम् ॥ २१  
मात्रे तत्सर्वमाचख्यौ सा कन्या राजसत्तमम् ।  
अथ तामब्रवीन्माता सुतां किञ्चिदवाङ्मुखीम् ॥ २२  
ममापि पुत्रि भर्ता ते प्रसादं कर्तुमर्हति ।  
अपत्यस्य प्रदानेन समर्थः स महातपाः ॥ २३

ततः सा त्वरितं गत्वा तत्सर्वं प्रत्यवेदयत् ।  
मातुश्चिकीर्षितं राजनृचीकस्तामथाब्रवीत् ॥ २४  
गुणवन्तमपत्यं वै त्वं च सा जनयिष्यथः ।  
जनन्यास्तव कल्याणि मा भूद्वै प्रणयोऽन्यथा ॥  
तव चैव गुणभ्लाघी पुत्र उत्पत्स्यते शुभे ।  
अस्मद्वंशकरः श्रीमांस्तव भ्राता च वंशकृत् ॥ २६  
ऋतुस्नाता च साश्वत्थं त्वं च वृक्षमुदुम्बरम् ।  
परिष्वजेथाः कल्याणि तत इष्टमवाप्स्यथः ॥ २७  
चरुद्वयमिदं चैव मन्त्रपूतं शुचिस्मिते ।  
त्वं च सा चोपयुङ्जीथां ततः पुत्राववाप्स्यथः ॥ २८  
ततः सत्यवती हृष्टा मातरं प्रत्यभाषत ।  
यदृचीकेन कथितं तच्चाचख्यौ चरुद्वयम् ॥ २९  
तामुवाच ततो माता सुतां सत्यवतीं तदा ।  
पुत्रि मूर्ध्ना प्रपन्नायाः कुरुष्व वचनं मम ॥ ३०  
भर्ता य एष दत्तस्ते चरुर्मन्त्रपुरस्कृतः ।  
एतं प्रयच्छ मद्यं त्वं मदीयं त्वं गृहाण च ॥ ३१  
व्यत्यासं वृक्षयोश्चापि करवाव शुचिस्मिते ।  
यदि प्रमाणं वचनं मम मातुरनिन्दिते ॥ ३२  
व्यक्तं भगवता चात्र कृतमेवं भविष्यति ।  
ततो मे त्वच्चरौ भावः पादपे च सुमध्यमे ।  
कथं विशिष्टो भ्राता ते भवेदित्येव चिन्तय ॥ ३३  
तथा च कृतवत्यौ ते माता सत्यवती च सा ।  
अथ गर्भावनुप्राप्ते रुभे ते वै युधिष्ठिर ॥ ३४  
दृष्ट्वा गर्भमनुप्राप्तं भार्या स च महानृषिः ।  
उवाच तां सत्यवतीं दुर्मना भृगुसत्तमः ॥ ३५  
व्यत्यासेनोपयुक्तस्ते चरुर्व्यक्तं भविष्यति ।  
व्यत्यासः पादपे चापि सुव्यक्तं ते कृतः शुभे ॥ ३६  
मया हि विश्वं यद्वृक्ष त्वच्चरौ संनिवेशितम् ।  
क्षत्रवीर्यं च सकलं चरौ तस्या निवेशितम् ॥ ३७  
त्रिलोकविख्यातगुणं त्वं विप्रं जनयिष्यसि ।

सा च क्षत्रं विशिष्टं वै तत एतत्कृतं मया ॥ ३८  
 व्यत्यासस्तु कृतो यस्मात्त्वया मात्रा तथैव च ।  
 तस्मात्सा ब्राह्मणश्रेष्ठ माता ते जनयिष्यति ॥ ३९  
 क्षत्रियं तूग्रकर्माणं त्वं भद्रे जनयिष्यसि ।  
 न हि ते तत्कृतं साधु मातृस्नेहेन भामिनि ॥ ४०  
 सा श्रुत्वा शोकसंतप्ता पपात वरवर्णिनी ।  
 भूमौ सत्यवती राजंश्छिन्नेव रुचिरा लता ॥ ४१  
 प्रतिलभ्य च सा संज्ञां शिरसा प्रणिपत्य च ।  
 उवाच भार्या भर्तारं गाधेयी ब्राह्मणर्षभम् ॥ ४२  
 प्रसादयन्त्यां भार्यायां मयि ब्रह्मविदां वर ।  
 प्रसादं कुरु विप्रर्षे न मे स्यात्क्षत्रियः सुतः ॥ ४३  
 कामं ममोग्रकर्मा वै पौत्रो भवितुमर्हति ।  
 न तु मे स्यात्सुतो ब्रह्मन्नेष मे दीयतां वरः ॥ ४४  
 एवमस्त्विति होवाच स्वां भार्यां सुमहातपाः ।  
 ततः सा जनयामास जमदग्निं सुतं शुभम् ॥ ४५  
 विश्वामित्रं चाजनयद्गाधेभार्या यशस्विनी ।  
 ऋषेः प्रभावाद्राजेन्द्र ब्रह्मर्षि ब्रह्मवादिनम् ॥ ४६  
 ततो ब्राह्मणतां यातो विश्वामित्रो महातपाः ।  
 क्षत्रियः सोऽप्यथ तथा ब्रह्मवंशस्य कारकः ॥ ४७  
 तस्य पुत्रा महात्मानो ब्रह्मवंशविवर्धनाः ।  
 तपस्विनो ब्रह्मविदो गोत्रकर्तार एव च ॥ ४८  
 मधुच्छन्दश्च भगवान्देवरातश्च वीर्यवान् ।  
 अक्षीणश्च शकुन्तश्च बभ्रुः कालपथस्तथा ॥ ४९  
 याज्ञवल्क्यश्च विख्यातस्तथा स्थूणो महाव्रतः ।  
 उत्तको यमदूतश्च तथर्षिः सैन्धवायनः ॥ ५०  
 कर्णजङ्घश्च भगवान्गालवश्च महानृषिः ।  
 ऋषिर्वज्रस्तथाख्यातः शालङ्कायन एव च ॥ ५१  
 लालाट्यो नारदश्चैव तथा कूर्चमुखः स्मृतः ।  
 वादुलिर्मुसलश्चैव रक्षोप्रीवस्तथैव च ॥ ५२  
 अङ्घ्रिको नैकभृच्चैव शिलायूपः सितः शुचिः ।

चक्रको मारुतन्तव्यो वातन्नोऽथाश्वलायनः ॥ ५३  
 श्यामायनोऽथ गार्ग्यश्च जाबालिः सुश्रुतस्तथा ।  
 कारीषिरथ संश्रुत्यः परपौरवतन्तवः ॥ ५४  
 महानृषिश्च कपिलस्तथर्षिस्तारकायनः ।  
 तथैव चोपगहनस्तथर्षिश्चार्जुनायनः ॥ ५५  
 मार्गमित्रिर्हिरण्याक्षो जङ्गारिर्बभ्रुवाहनः ।  
 सूतिर्विभूतिः सूतश्च सुरङ्गश्च तथैव हि ॥ ५६  
 आराद्धिर्नामयश्चैव चाम्पेयोज्जयनौ तथा ।  
 नवतन्तुर्वकनखः शयोनरतिरेव च ॥ ५७  
 शयोरुहश्चारुमत्स्यः शिरीषी चाथ गार्दभिः ।  
 उज्जयोनिरदापेक्षी नारदी च महानृषिः ।  
 विश्वामित्रात्मजाः सर्वे मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥ ५८  
 तन्नैष क्षत्रियो राजन्विश्वामित्रो महातपाः ।  
 ऋचीकेनाहितं ब्रह्म परमेतद्युधिष्ठिर ॥ ५९  
 एतत्ते सर्वमाख्यातं तत्त्वेन भरतर्षभ ।  
 विश्वामित्रस्य वै जन्म सोमसूर्याग्निदेवजसः ॥ ६०  
 यत्र यत्र च संदेहो भूयस्ते राजसत्तम ।  
 तत्र तत्र च मां ब्रूहि च्छेत्तास्मि तव संशयान् ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

५

युधिष्ठिर उवाच ।

आनृशंस्यस्य धर्मस्य गुणान्भक्तजनस्य च ।  
 श्रोतुमिच्छामि कात्स्न्येन तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १  
 भीष्म उवाच ।

विषये काशिराजस्य ग्रामान्निष्क्रम्य लुब्धकः ।  
 सविषं काण्डमादाय मृगयामास वै मृगम् ॥ २  
 तत्र चामिषलुब्धेन लुब्धकेन महावने ।  
 अविदूरे मृगं दृष्ट्वा बाणः प्रतिसमाहितः ॥ ३  
 तेन दुर्वारितास्त्रेण निमित्तचपलेषुणा ।

महान्वनतरुर्विद्धो मृगं तत्र जिघांसता ॥ ४  
 स तीक्ष्णविषदिग्धेन शरेणातिबलात्कृतः ।  
 उत्सृज्य फलपत्राणि पादपः शोषमागतः ॥ ५  
 तस्मिन्वृक्षे तथाभूते कोटरेषु चिरोषितः ।  
 न जहाति शुको वासं तस्य भक्त्या वनस्पतेः ॥ ६  
 निष्प्रचारो निराहारो ग्लानः शिथिलवागपि ।  
 कृतज्ञः सह वृक्षेण धर्मात्मा स व्यशुष्यत ॥ ७  
 तमुदारं महासत्त्वमतिमानुषचेष्टितम् ।  
 समदुःखसुखं ज्ञात्वा विस्मितः पाकशासनः ॥ ८  
 ततश्चिन्तामुपगतः शक्रः कथमयं द्विजः ।  
 तिर्यग्योनावसंभाव्यमानृशंस्यं समास्थितः ॥ ९  
 अथ वा नात्र चित्रं हीत्यभवद्वासवस्य तु ।  
 प्राणिनामिह सर्वेषां सर्वं सर्वत्र दृश्यते ॥ १०  
 ततो ब्राह्मणवेपेण मानुषं रूपमास्थितः ।  
 अवतीर्य महीं शक्रस्तं पक्षिणमुवाच ह ॥ ११  
 शुक भोः पक्षिणां श्रेष्ठ दाक्षेयी सुप्रजास्त्वया ।  
 पृच्छे त्वा शुष्कमेतं वै कस्मान्न त्यजसि द्रुमम् ॥  
 अथ पृष्ठः शुकः प्राह मूर्ध्ना सममिवाद्य तम् ।  
 स्वागतं देवराजाय विज्ञातस्तपसा मया ॥ १३  
 ततो दशशताक्षेण साधु साध्विति भाषितम् ।  
 अहो विज्ञानमित्येवं तपसा पूजितस्ततः ॥ १४  
 तमेवं शुभकर्माणं शुकं परमधार्मिकम् ।  
 विजानन्नपि तां प्राप्तिं पप्रच्छ बलसूदनः ॥ १५  
 निष्पत्रमफलं शुष्कमशरण्यं पतत्रिणाम् ।  
 किमर्थं सेवसे वृक्षं यदा महदिदं वनम् ॥ १६  
 अन्येऽपि बहवो वृक्षाः पत्रसंल्लन्नकोटराः ।  
 शुभाः पर्याप्तसंचारा विद्यन्तेऽस्मिन्महावने ॥ १७  
 गतायुषमसामर्थ्यं क्षीणसारं हतश्रियम् ।  
 विमृश्य प्रज्ञया धीर जहीमं ह्यस्थिरं द्रुमम् ॥ १८  
 तदुपश्रुत्य धर्मात्मा शुकः शक्रेण भाषितम् ।

सुदीर्घमभिनिःश्वस्य दीनो वाक्यमुवाच ह ॥ १९  
 अनतिक्रमणीयानि दैवतानि शचीपते ।  
 यत्राभवस्तत्र भवस्तन्निबोध सुराधिप ॥ २०  
 अस्मिन्नहं द्रुमे जातः साधुभिश्च गुणैर्युतः ।  
 बालभावे च संगुप्तः शत्रुभिश्च न धर्षितः ॥ २१  
 किमनुक्रोशवैफल्यमुत्पादयसि मेऽनघ ।  
 आनृशंस्येऽनुरक्तस्य भक्तस्यानुगतस्य च ॥ २२  
 अनुक्रोशो हि साधूनां सुमहद्वर्मलक्षणम् ।  
 अनुक्रोशश्च साधूनां सदा प्रीतिं प्रयच्छति ॥ २३  
 त्वमेव दैवतैः सर्वैः पृच्छयसे धर्मसंशयान् ।  
 अतस्त्वं देव देवानामाधिपत्ये प्रतिष्ठितः ॥ २४  
 नार्हसि त्वं सहस्राक्ष त्याजयित्वेह भक्तितः ।  
 समर्थमुपजीव्येमं त्यजेयं कथमद्य वै ॥ २५  
 तस्य वाक्येन सौम्येन हर्षितः पाकशासनः ।  
 शुकं प्रोवाच धर्मज्ञमानृशंस्येन तोषितः ॥ २६  
 वरं वृणीष्वेति तदा स च वव्रे वरं शुकः ।  
 आनृशंस्यपरो नित्यं तस्य वृक्षस्य संभवम् ॥ २७  
 विदित्वा च दृढां शक्रस्तां शुकं शीलसंपदम् ।  
 प्रीतः क्षिप्रमथो वृक्षममृतेनावसिक्तवान् ॥ २८  
 ततः फलानि पत्राणि शाखाश्चापि मनोरमाः ।  
 शुकस्य दृढभक्तित्वाच्छ्रीमत्त्वं चाप स द्रुमः ॥ २९  
 शुकस्य कर्मणा तेन आनृशंस्यकृतेन ह ।  
 आयुषोऽन्ते महाराज प्राप शक्रसलोकताम् ॥ ३०  
 एवमेव मनुष्येन्द्र भक्तिमन्तं समाश्रितः ।  
 सर्वार्थसिद्धिं लभते शुकं प्राप्य यथा द्रुमः ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

युधिष्ठिर उवाच ।

पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।

दैवे पुरुषकारे च किंस्विच्छ्रेष्ठतरं भवेत् ॥ १

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
वसिष्ठस्य च संवादं ब्रह्मणश्च युधिष्ठिर ॥ २  
दैवमानुषयोः किंस्विकर्मणोः श्रेष्ठमित्युत ।  
पुरा वसिष्ठो भगवान्पितामहमपृच्छत ॥ ३  
ततः पद्मोद्भवो राजन्देवदेवः पितामहः ।  
उवाच मधुरं वाक्यमर्थवद्धेतुभूषितम् ॥ ४  
नाबीजं जायते किञ्चिन्न बीजेन विना फलम् ।  
बीजाद्वीजं प्रभवति बीजादेव फलं स्मृतम् ॥ ५  
यादृशं वपते बीजं क्षेत्रमासाद्य कर्षकः ।  
सुकृते दुष्कृते वापि तादृशं लभते फलम् ॥ ६  
यथा बीजं विना क्षेत्रमुप्तं भवति निष्फलम् ।  
तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति ॥ ७  
क्षेत्रं पुरुषकारस्तु दैवं बीजमुदाहृतम् ।  
क्षेत्रबीजसमायोगात्ततः सस्यं समृध्यते ॥ ८  
कर्मणः फलनिवृत्तिं स्वयमश्नाति कारकः ।  
प्रत्यक्षं दृश्यते लोके कृतस्याप्यकृतस्य च ॥ ९  
शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा ।  
कृतं सर्वत्र लभते नाकृतं भुज्यते क्वचित् ॥ १०  
कृती सर्वत्र लभते प्रतिष्ठां भाग्यविक्षतः ।  
अकृती लभते भ्रष्टः क्षते क्षारावसेचनम् ॥ ११  
तपसा रूपसौभाग्यं रत्नानि विविधानि च ।  
प्राप्यते कर्मणा सर्वं न दैवादकृतात्मना ॥ १२  
तथा स्वर्गश्च भोगश्च निष्ठा या च मनीषिता ।  
सर्वं पुरुषकारेण कृतेनेहोपपद्यते ॥ १३  
व्योतीषि त्रिदशा नागा यक्षाश्चन्द्रार्कमारुताः ।  
सर्वे पुरुषकारेण मानुष्यादेवतां गताः ॥ १४  
अर्थो वा मित्रवर्गो वा ऐश्वर्यं वा कुलान्वितम् ।  
श्रीश्चापि दुर्लभा भोक्तुं तथैवाकृतकर्मभिः ॥ १५

शौचेन लभते विप्रः क्षत्रियो विक्रमेण च ।

वैश्यः पुरुषकारेण शूद्रः शुश्रूषया श्रियम् ॥ १६  
नादातारं भजन्यर्था न ह्रीवं नापि निष्क्रियम् ।  
नाकर्मशीलं नाशूरं तथा नैवातपस्विनम् ॥ १७  
येन लोकास्त्रयः सृष्टा दैत्याः सर्वाश्च देवताः ।  
स एष भगवान्विष्णुः समुद्रे तप्यते तपः ॥ १८  
खं चेत्कर्मफलं न स्यात्सर्वमेवाफलं भवेत् ।  
लोको दैवं समालम्ब्य उदासीनो भवेन्न तु ॥ १९  
अकृत्वा मानुषं कर्म यो दैवमनुवर्तते ।  
वृथा श्राम्यति संप्राप्य पतिं ह्रीवमिवाङ्गना ॥ २०  
न तथा मानुषे लोके भयमस्ति शुभाशुभे ।  
यथा त्रिदशलोके हि भयमल्पेन जायते ॥ २१  
कृतः पुरुषकारस्तु दैवमेवानुवर्तते ।  
न दैवमकृते किञ्चित्कस्यचिदातुमर्हति ॥ २२  
यदा स्थानान्यनित्यानि दृश्यन्ते दैवतेष्वपि ।  
कथं कर्म विना दैवं स्थास्यते स्थापयिष्यति ॥ २३  
न दैवतानि लोकेऽस्मिन्व्यापारं यान्ति कस्यचित् ।  
व्यासङ्गं जनयन्त्युग्रमात्माभिभवशङ्कया ॥ २४  
ऋषीणां देवतानां च सदा भवति विग्रहः ।  
कस्य वाचा ह्यदैवं स्याद्यतो दैवं प्रवर्तते ॥ २५  
कथं चास्य समुत्पत्तिर्यथा दैवं प्रवर्तते ।  
एवं त्रिदशलोकेऽपि प्राप्यन्ते बहवश्छलाः ॥ २६  
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।  
आत्मैव चात्मनः साक्षी कृतस्याप्यकृतस्य च ॥ २७  
कृतं च विकृतं किञ्चित्कृते कर्मणि सिध्यति ।  
सुकृते दुष्कृतं कर्म न यथार्थं प्रपद्यते ॥ २८  
देवानां शरणं पुण्यं सर्वं पुण्यैरवाप्यते ।  
पुण्यशीलं नरं प्राप्य किं दैवं प्रकरिष्यति ॥ २९  
पुरा ययातिर्विभ्रष्टश्चावितः पतितः क्षितौ ।  
पुनरारोपितः स्वर्गं दौहित्रैः पुण्यकर्मभिः ॥ ३०



पुरुरवाश्च राजर्षिर्द्विजैरभिहितः पुरा ।  
 ऐल इत्यभिविख्यातः स्वर्गं प्राप्तो महीपतिः ॥ ३१  
 अश्वमेधादिभिर्यज्ञैः सत्कृतः कोसलाधिपः ।  
 महर्षिशापात्सौदासः पुरुषादत्वमागतः ॥ ३२  
 अश्वत्थामा च रामश्च मुनिपुत्रौ धनुर्धरौ ।  
 न गच्छतः स्वर्गलोकं सुकृतेनेह कर्मणा ॥ ३३  
 वसुर्यज्ञशतैरिष्ट्वा द्वितीय इव वासवः ।  
 मिथ्याभिधानेनैकेन रसातलतलं गतः ॥ ३४  
 बलिवैरोचनिर्बद्धो धर्मपाशेन दैवतैः ।  
 विष्णोः पुरुषकारेण पातालशयनः कृतः ॥ ३५  
 शक्रस्योदस्य चरणं प्रस्थितो जनमेजयः ।  
 द्विजस्त्रीणां बधं कृत्वा किं दैवेन न वारितः ॥ ३६  
 अज्ञानाद्ब्राह्मणं हत्वा स्पृष्टो बालवधेन च ।  
 वैशंपायनविप्रर्षिः किं दैवेन निवारितः ॥ ३७  
 गोप्रदानेन मिथ्या च ब्राह्मणेभ्यो महामखे ।  
 पुरा नृगश्च राजर्षिः कृकलासत्वमागतः ॥ ३८  
 धुन्धुमारश्च राजर्षिः सत्रेष्वेव जरां गतः ।  
 प्रीतिदायं परित्यज्य सुष्वाप स गिरिव्रजे ॥ ३९  
 पाण्डवानां हृतं राज्यं धार्तराष्ट्रैर्महाबलैः ।  
 पुनः प्रत्याहृतं चैव न दैवाद्भुजसंश्रयात् ॥ ४०  
 तपोनियमसंयुक्ता मुनयः संशितव्रताः ।  
 किं ते दैवबलाच्छापमुत्सृजन्ते न कर्मणा ॥ ४१  
 पापमुत्सृजते लोके सर्वं प्राप्य सुदुर्लभम् ।  
 लोभमोहसमापन्नं न दैवं त्रायते नरम् ॥ ४२  
 यथाम्निः पवनोद्धूतः सूक्ष्मोऽपि भवते महान् ।  
 तथा कर्मसमायुक्तं दैवं साधु विवर्धते ॥ ४३  
 यथा तैलक्षयादीपः प्रम्लानिमुपगच्छति ।  
 तथा कर्मक्षयादैवं प्रम्लानिमुपगच्छति ॥ ४४  
 विपुलमपि धनौघं प्राप्य भोगान्छियो वा  
 पुरुष इह न शक्तः कर्महीनोऽपि भोक्तुम् ।

सुनिहितमपि चार्थं दैवतै रक्ष्यमाणं  
 व्ययगुणमपि साधुं कर्मणा संश्रयन्ते ॥ ४५  
 भवति मनुजलोकादेवलोको विशिष्टो  
 बहुतरसुसमृद्ध्या मानुषाणां गृहाणि ।  
 पितृवनभवनाभं दृश्यते चामराणां  
 न च फलति विकर्मा जीवलोकेन दैवम् ॥  
 व्यपनयति विमार्गं नास्ति दैवे प्रभुत्वं  
 गुरुमिव कृतमग्र्यं कर्म संयाति दैवम् ।  
 अनुपहतमदीनं कामकारेण दैवं  
 नयति पुरुषकारः संचितस्तत्र तत्र ॥ ४७  
 एतत्ते सर्वमाख्यातं मया वै मुनिसत्तम ।  
 फलं पुरुषकारस्य सदा संदृश्य तत्त्वतः ॥ ४८  
 अभ्युत्थानेन दैवस्य समारब्धेन कर्मणा ।  
 विधिना कर्मणा चैव स्वर्गमार्गमवाप्नुयात् ॥ ४९  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

७

युधिष्ठिर उवाच ।

कर्मणां मे समस्तानां शुभानां भरतर्षभ ।  
 फलानि महतां श्रेष्ठ प्रब्रूहि परिपृच्छतः ॥ १

भीष्म उवाच ।

रहस्यं यदृषीणां तु तच्छृणुष्व युधिष्ठिर ।  
 या गतिः प्राप्यते येन प्रेत्यभावे चिरेप्सिता ॥ २  
 येन येन शरीरेण यद्यत्कर्म करोति यः ।  
 तेन तेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्रुते ॥ ३  
 यस्यां यस्यामवस्थायां यत्करोति शुभाशुभम् ।  
 तस्यां तस्यामवस्थायां भुङ्क्ते जन्मनि जन्मनि ॥ ४  
 न नश्यति कृतं कर्म सदा पञ्चेन्द्रियैरिह ।  
 ते ह्यस्य साक्षिणो नित्यं षष्ठ आत्मा तथैव च ॥ ५  
 चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद्वाचं दद्याच्च सूनृताम् ।

अनुव्रजेदुपासीत स यज्ञः पञ्चदक्षिणः ॥ ६  
 यो दद्यादपरिच्छिष्टमन्नमध्वनि वर्तते ।  
 श्रान्तायादृष्टपूर्वाय तस्य पुण्यफलं महत् ॥ ७  
 स्थण्डिले शयमानानां गृहाणि शयनानि च ।  
 चीरवल्कलसंवीते वासांस्त्याभरणानि च ॥ ८  
 वाहनासनयानानि योगात्मनि तपोधने ।  
 अग्नीनुपशयानस्य राजपौरुषमुच्यते ॥ ९  
 रसानां प्रतिसंहारे सौभाग्यमनुगच्छति ।  
 आमिषप्रतिसंहारे पशून्पुत्रांश्च विन्दति ॥ १०  
 अवाक्षिशरास्तु यो लम्बेदुदवासं च यो वसेत् ।  
 सततं चैकशायी यः स लभेतेप्सितां गतिम् ॥ ११  
 पाद्यमासनमेवाथ दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ।  
 दद्यादतिथिपूजार्थं स यज्ञः पञ्चदक्षिणः ॥ १२  
 वीरासनं वीरशय्यां वीरस्थानमुपासतः ।  
 अक्षयास्तस्य वै लोकाः सर्वकामगमास्तथा ॥ १३  
 धनं लभेत दानेन मौनेनाज्ञां विशां पते ।  
 उपभोगांश्च तपसा ब्रह्मचर्येण जीवितम् ॥ १४  
 रूपमैश्वर्यमारोग्यमहिंसाफलमश्नुते ।  
 फलमूलाशिनां राज्यं स्वर्गः पर्णाशिनां तथा ॥ १५  
 प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्वत्र सुखमुच्यते ।  
 स्वर्गं सत्येन लभते दीक्षया कुलमुत्तमम् ॥ १६  
 गवाह्व्यः शाकदीक्षायां स्वर्गगामी तृणाशनः ।  
 स्त्रियस्त्रिषवणं स्नात्वा वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् ॥  
 सलिलाशी भवेद्यश्च सदाग्निः संस्कृतो द्विजः ।  
 मरुं साधयतो राज्यं नाकपृष्ठमनाशके ॥ १८  
 उपवासं च दीक्षां च अभिषेकं च पार्थिव ।  
 कृत्वा द्वादशवर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते ॥ १९  
 अधीत्य सर्ववेदान्यै सद्यो दुःखात्प्रमुच्यते ।  
 मानसं हि चरन्धर्मं स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥ २०  
 या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।

योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥  
 यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।  
 एवं पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥ २२  
 अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च ।  
 स्वकालं नातिवर्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम् ॥ २३  
 जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।  
 चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका तु न जीर्यते ॥ २४  
 येन प्रीणाति पितरं तेन प्रीतः प्रजापतिः ।  
 प्रीणाति मातरं येन पृथिवी तेन पूजिता ।  
 येन प्रीणात्युपाध्यायं तेन स्याद्ब्रह्म पूजितम् ॥ २५  
 सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः ।  
 अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥ २६

वैशंपायन उवाच ।

भीष्मस्य तद्वचः श्रुत्वा विस्मिताः कुरुपुंगवाः ।  
 आसन्नप्रहृष्टमनसः प्रीतिमन्तोऽभवंस्तदा ॥ २७  
 यन्मन्त्रे भवति वृथा प्रयुज्यमाने  
 यत्सोमे भवति वृथाभिषूयमाणे ।  
 यच्चाग्नौ भवति वृथाभिहूयमाने  
 तत्सर्वं भवति वृथाभिधीयमाने ॥ २८  
 इत्येतद्विषिणा प्रोक्तमुक्तवानस्मि यद्विभो ।  
 शुभाशुभफलप्राप्तौ किमतः श्रोतुमिच्छसि ॥ २९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

८

युधिष्ठिर उवाच ।

के पूज्याः के नमस्कार्याः कान्नमस्यसि भारत ।  
 एतन्मे सर्वमाचक्ष्व येषां स्पृहयसे नृप ॥ १  
 उत्तमापद्रुतस्यापि यत्र ते वर्तते मनः ।  
 मनुष्यलोके सर्वस्मिन्यदमुत्रेह चाप्युत ॥ २

भीष्म उवाच ।

स्पृह्यामि द्विजातीनां येषां ब्रह्म परं धनम् ।  
 येषां स्वप्रत्ययः स्वर्गस्तपःस्वाध्यायसाधनः ॥ ३  
 येषां वृद्धाश्च बालाश्च पितृपैतामहीं धुरम् ।  
 उद्वहन्ति न सीदन्ति तेषां वै स्पृह्याम्यहम् ॥ ४  
 विद्यास्वभिविनीतानां दान्तानां मृदुभाषिणाम् ।  
 श्रुतवृत्तोपपन्नानां सदाक्षरविदां सताम् ॥ ५  
 संसत्सु वदतां येषां हंसानामिव संघशः ।  
 मङ्गल्यरूपा रुचिरा दिव्यजीमूतनिःस्वनाः ॥ ६  
 सम्यगुच्चारिता वाचः श्रूयन्ते हि युधिष्ठिर ।  
 शुश्रूषमाणे नृपतौ प्रेत्य चेह सुखावहाः ॥ ७  
 ये चापि तेषां श्रोतारः सदा सदसि संमताः ।  
 विज्ञानगुणसंपन्नास्तेषां च स्पृह्याम्यहम् ॥ ८  
 सुसंस्कृतानि प्रयताः शुचीनि गुणवन्ति च ।  
 ददत्यन्नानि तृप्त्यर्थं ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिर ।  
 ये चापि सततं राजंस्तेषां च स्पृह्याम्यहम् ॥ ९  
 शक्यं ह्येवाहवे योद्धुं न दातुमनसूयितम् ।  
 शूरा वीराश्च शतशः सन्ति लोके युधिष्ठिर ।  
 तेषां संख्यायमानानां दानशूरो विशिष्यते ॥ १०  
 धन्यः स्यां यद्यहं भूयः सौम्य ब्राह्मणकोऽपि वा ।  
 कुले जातो धर्मगतिस्तपोविद्यापरायणः ॥ ११  
 न मे त्वत्तः प्रियतरो लोकेऽस्मिन्पाण्डुनन्दन ।  
 त्वत्तश्च मे प्रियतरा ब्राह्मणा भरतर्षभ ॥ १२  
 यथा मम प्रियतरास्त्वत्तो विप्राः कुरुद्वह ।  
 तेन सत्येन गच्छेयं लोकान्यत्र स शंतनुः ॥ १३  
 न मे पिता प्रियतरो ब्राह्मणेभ्यस्तथाभवत् ।  
 न मे पितुः पिता वापि ये चान्येऽपि सुहृज्जनाः ॥  
 न हि मे वृजिनं किञ्चिद्विद्यते ब्राह्मणेष्विह ।  
 अपुं वा यदि वा स्थूलं विदितं साधुकर्मभिः ॥ १५  
 कर्मणा मनसा वापि वाचा वापि परंतप ।

यन्मे कृतं ब्राह्मणेषु तेनाद्य न तपाम्यहम् ॥ १६  
 ब्रह्मण्य इति मामाहुस्तथा वाचास्मि तोषितः ।  
 एतदेव पवित्रेभ्यः सर्वेभ्यः परमं स्मृतम् ॥ १७  
 पश्यामि लोकानमलाञ्छुचीन्ब्राह्मणयायिनः ।  
 तेषु मे तात गन्तव्यमहाय च चिराय च ॥ १८  
 यथा पत्याश्रयो धर्मः स्त्रीणां लोके युधिष्ठिर ।  
 स देवः सा गतिर्नान्या क्षत्रियस्य तथा द्विजाः ॥  
 क्षत्रियः शतवर्षी च दशवर्षी च ब्राह्मणः ।  
 पितापुत्रौ च विज्ञेयौ तयोर्हि ब्राह्मणः पिता ॥ २०  
 नारी तु पत्यभावे वै देवरं कुरुते पतिम् ।  
 पृथिवी ब्राह्मणालाभे क्षत्रियं कुरुते पतिम् ॥ २१  
 पुत्रवच्च ततो रक्ष्या उपास्या गुरुवच्च ते ।  
 अग्निवच्चोपचर्या वै ब्राह्मणाः कुरुसत्तम ॥ २२  
 ऋजून्सतः सत्यशीलान्सर्वभूतहिते रतान् ।  
 आशीविषानिव क्रुद्धान्द्विजानुपचरेत्सदा ॥ २३  
 तेजसस्तपसश्चैव नित्यं विभ्येद्युधिष्ठिर ।  
 उभे चैते परित्याज्ये तेजश्चैव तपस्तथा ॥ २४  
 व्यवसायस्तयोः शीघ्रमुभयोरेव विद्यते ।  
 हन्युः क्रुद्धा महाराज ब्राह्मणा ये तपस्विनः ॥ २५  
 भूयः स्यादुभयं दत्तं ब्राह्मणाद्यदकोपनात् ।  
 कुर्यादुभयतः शेषं दत्तशेषं न शेषयेत् ॥ २६  
 दण्डपाणिर्यथा गोषु पालो नित्यं स्थिरो भवेत् ।  
 ब्राह्मणान्ब्रह्म च तथा क्षत्रियः परिपालयेत् ॥ २७  
 पितेव पुत्रान्क्षेत्रा ब्राह्मणान्ब्रह्मतेजसः ।  
 गृहे चैषामवेक्षेथाः कच्चिदस्तीह जीवनम् ॥ २८

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

९

युधिष्ठिर उवाच ।

ब्राह्मणानां तु यो लोके प्रतिश्रुत्य पितामह ।

न प्रयच्छन्ति मोहात्ते के भवन्ति महामते ॥ १  
एतन्मे तत्त्वतो ब्रूहि धर्मं धर्मभृतां वर ।  
प्रतिश्रुत्य दुरात्मानो न प्रयच्छन्ति ये नराः ॥ २

भीष्म उवाच ।

यो न दद्यात्प्रतिश्रुत्य स्वल्पं वा यदि वा बहु ।  
आशास्तस्य हताः सर्वाः ह्रीवस्येव प्रजाफलम् ॥ ३  
यां रात्रिं जायते पापो यां च रात्रिं विनश्यति ।  
एतस्मिन्नन्तरे यद्यत्सुकृतं तस्य भारत ।  
यच्च तस्य हुतं किञ्चित्सर्वं तस्योपहन्यते ॥ ४  
अत्रैतद्वचनं प्राहुर्धर्मशास्त्रविदो जनाः ।  
निशम्य भरतश्रेष्ठ बुद्ध्या परमयुक्तया ॥ ५  
अपि चोदाहरन्तीं धर्मशास्त्रविदो जनाः ।  
अश्वानां श्यामकर्णानां सहस्रेण स मुच्यते ॥ ६  
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
सृगालस्य च संवादं वानरस्य च भारत ॥ ७  
तौ सखायौ पुरा ह्यास्तां मानुषत्वे परंतप ।  
अन्यां योनिं समापन्नौ सार्गालीं वानरीं तथा ॥ ८  
ततः परासून्खादन्तं सृगालं वानरोऽब्रवीत् ।  
श्मशानमध्ये संप्रेक्ष्य पूर्वजातिमनुस्मरन् ॥ ९  
किं त्वया पापकं कर्म कृतं पूर्वं सुदारुणम् ।  
यस्त्वं श्मशाने मृतकानूपूतिकान्तिसि कुत्सितान् ॥  
एवमुक्तः प्रत्युवाच सृगालो वानरं तदा ।  
ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य न मया तदुपाकृतम् ॥ ११  
तत्कृते पापिकां योनिमापन्नोऽस्मि प्लवंगम ।  
तस्मादेवंविधं भक्ष्यं भक्षयामि बुभुक्षितः ॥ १२  
इत्येतद्ब्रुवतो राजन्ब्राह्मणस्य मया श्रुतम् ।  
कथां कथयतः पुण्यां धर्मज्ञस्य पुरातनीम् ॥ १३  
श्रुतं चापि मया भूयः कृष्णस्यापि विशां पते ।  
कथां कथयतः पूर्वं ब्राह्मणं प्रति पाण्डव ॥ १४  
एवमेव च मां नित्यं ब्राह्मणाः संदिशन्ति वै ।

प्रतिश्रुत्य भवेद्द्वयं नाशा कार्या हि ब्राह्मणैः ॥ १५  
ब्राह्मणो ह्याशया पूर्वं कृतया पृथिवीपते ।  
सुसमिद्धो यथा दीप्तः पावकस्तद्विधः स्मृतः ॥ १६  
यं निरीक्षेत संकुद्ध आशया पूर्वजातया ।  
प्रदहेत हि तं राजन्कक्षमक्षय्यभुग्यथा ॥ १७  
स एव हि यदा तुष्टो वचसा प्रतिनन्दति ।  
भवत्यगदसंकाशो विषये तस्य भारत ॥ १८  
पुत्रान्पौत्रान्पशुंश्चैव बान्धवान्सचिवांस्तथा ।  
पुरं जनपदं चैव शान्तिरिष्टेव पुष्यति ॥ १९  
एतद्वि परमं तेजो ब्राह्मणस्येह दृश्यते ।  
सहस्रकिरणस्येव सवितुर्धरणीतले ॥ २०  
तस्माद्वातव्यमेवेह प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिर ।  
यदीच्छेच्छोभनां जातिं प्राप्तुं भरतसत्तम ॥ २१  
ब्राह्मणस्य हि दत्तेन भ्रुवं स्वर्गो ह्यनुत्तमः ।  
शक्यं प्राप्तुं विशेषेण दानं हि महती क्रिया ॥ २२  
इतो दत्तेन जीवन्ति देवताः पितरस्तथा ।  
तस्माद्दानानि देयानि ब्राह्मणेभ्यो विजानता ॥ २३  
महद्भि भरतश्रेष्ठ ब्राह्मणस्तीर्थमुच्यते ।  
वेलायां न तु कस्यांचिद्वच्छेद्विप्रो ह्यपूजितः ॥ २४  
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

१०

युधिष्ठिर उवाच ।

मित्रसौहृदभावेन उपदेशं करोति यः ।  
जात्यावरस्य राजर्षे दोषस्तस्य भवेन्न वा ॥ १  
एतदिच्छामि तत्त्वेन व्याख्यातुं वै पितामह ।  
सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य यत्र मुह्यन्ति मानवाः ॥ २  
भीष्म उवाच ।  
अत्र ते वर्तयिष्यामि शृणु राजन्यथागमम् ।  
ऋषीणां वदतां पूर्वं श्रुतमासीद्यथा मया ॥ ३

उपदेशो न कर्तव्यो जातिहीनस्य कस्यचित् ।  
 उपदेशे महान्दोष उपाध्यायस्य भाष्यते ॥ ४  
 निदर्शनमिदं राजञ्शृणु मे भरतर्षभ ।  
 दुरुक्तवचने राजन्यथा पूर्वं युधिष्ठिर ।  
 ब्रह्माश्रमपदे वृत्तं पार्श्वे हिमवतः शुभे ॥ ५  
 तत्राश्रमपदं पुण्यं नानावृक्षगणायुतम् ।  
 बहुगुल्मलताकीर्णं मृगद्विजनिषेवितम् ॥ ६  
 सिद्धचारणसंघुष्टं रम्यं पुष्पितकाननम् ।  
 व्रतिभिर्बहुभिः कीर्णं तापसैरुपशोभितम् ॥ ७  
 ब्राह्मणैश्च महाभागैः सूर्यज्वलनसंनिभैः ।  
 नियमव्रतसंपन्नैः समाकीर्णं तपस्विभिः ।  
 दीक्षितैर्भरतश्रेष्ठ यताहारैः कृतात्मभिः ॥ ८  
 वेदाध्ययनघोषैश्च नादितं भरतर्षभ ।  
 बालखिल्यैश्च बहुभिर्यतिभिश्च निषेवितम् ॥ ९  
 तत्र कश्चित्समुत्साहं कृत्वा शूद्रो दयान्वितः ।  
 आगतो ह्याश्रमपदं पूजितश्च तपस्विभिः ॥ १०  
 तांस्तु दृष्ट्वा मुनिगणान्देवकल्पान्महौजसः ।  
 बहूतो विविधा दीक्षाः संप्रवृण्वन् भारत ॥ ११  
 अथास्य बुद्धिरभवत्तपस्ये भरतर्षभ ।  
 ततोऽब्रवीत्कुलपतिं पादौ संगृह्य भारत ॥ १२  
 भवत्प्रसादादिच्छामि धर्मं चतुं द्विजर्षभ ।  
 तन्मां त्वं भगवन्वक्तुं प्रव्राजयितुमर्हसि ॥ १३  
 वर्णावरोऽहं भगवञ्शूद्रो जात्यास्मि सत्तम ।  
 शुश्रूषां कर्तुमिच्छामि प्रपन्नाय प्रसीद मे ॥ १४  
 कुलपतिरुवाच ।  
 न शक्यमिह शूद्रेण लिङ्गमाश्रित्य वर्तितुम् ।  
 आस्यतां यदि ते बुद्धिः शुश्रूषानिरतो भव ॥ १५  
 भीष्म उवाच ।  
 एवमुक्तस्तु मुनिना स शूद्रोऽचिन्तयन्नृप ।  
 कथमत्र मया कार्यं श्रद्धा धर्मे परा च मे ।

विज्ञातमेवं भवतु करिष्ये प्रियमात्मनः ॥ १६  
 गत्वाश्रमपदादूरमुटजं कृतवांस्तु सः ।  
 तत्र वेदिं च भूमिं च देवतायतनानि च ।  
 निवेश्य भरतश्रेष्ठ नियमस्थोऽभवत्सुखम् ॥ १७  
 अभिषेकांश्च नियमान्देवतायतनेषु च ।  
 बलिं च कृत्वा हुत्वा च देवतां चाप्यपूजयत् ॥ १८  
 संकल्पनियमोपेतः फलाहारो जितेन्द्रियः ।  
 नित्यं संनिहिताभिश्च ओषधीभिः फलैस्तथा ॥ १९  
 अतिथीन्पूजयामास यथावत्समुपागतान् ।  
 एवं हि सुमहान्कालो व्यत्यक्रामत्स तस्य वै ॥ २०  
 अथास्य मुनिरागच्छत्संगत्या वै तमाश्रमम् ।  
 संपूज्य स्वागतेनर्षिं विधिवत्पर्यतोषयत् ॥ २१  
 अनुकूलाः कथाः कृत्वा यथावत्पर्यपृच्छत ।  
 ऋषिः परमतेजस्वी धर्मात्मा संयतेन्द्रियः ॥ २२  
 एवं स बहुशस्तस्य शूद्रस्य भरतर्षभ ।  
 सोऽगच्छदाश्रममृषिः शूद्रं द्रष्टुं नरर्षभ ॥ २३  
 अथ तं तापसं शूद्रः सोऽब्रवीद्भरतर्षभ ।  
 पितृकार्यं करिष्यामि तत्र मेऽनुग्रहं कुरु ॥ २४  
 बाढमित्येव तं विप्र उवाच भरतर्षभ ।  
 शुचिर्भूत्वा स शूद्रस्तु तस्यर्षेः पाद्यमानयत् ॥ २५  
 अथ दर्भाश्च वन्याश्च ओषधीर्भरतर्षभ ।  
 पवित्रमासनं चैव वृत्तीं च समुपानयत् ॥ २६  
 अथ दक्षिणमावृत्य वृत्तीं परमशीर्षिकाम् ।  
 कृतामन्यायतो दृष्ट्वा ततस्तमृपिरब्रवीत् ॥ २७  
 कुरुष्वैतां पूर्वशीर्षां भव चोद्बुधस्वः शुचिः ।  
 स च तत्कृतवाञ्शूद्रः सर्वं यद्विषिरब्रवीत् ॥ २८  
 यथोपदिष्टं मेधावी दर्भादींस्तान्यथातथम् ।  
 हव्यकव्यविधिं कृत्स्नमुक्तं तेन तपस्विना ॥ २९  
 ऋषिणा पितृकार्ये च स च धर्मपथे स्थितः ।  
 पितृकार्ये कृते चापि विसृष्टः स जगाम ह ॥ ३०

अथ दीर्घस्य कालस्य स तप्यन्शूद्रतापसः ।  
 वने पञ्चत्वमगमत्सुकृतेन च तेन वै ।  
 अजायत महाराज राजवंशे महाद्युतिः ॥ ३१  
 तथैव स ऋषिस्तात कालधर्ममवाप्य ह ।  
 पुरोहितकुले विप्र आजातो भरतर्षभ ॥ ३२  
 एवं तौ तत्र संभूताबुभौ शूद्रमुनी तदा ।  
 क्रमेण वर्धितौ चापि विद्यासु कुशलाबुभौ ॥ ३३  
 अथर्ववेदे वेदे च बभूवर्षिः सुनिश्चितः ।  
 कल्पप्रयोगे चोत्पन्ने ज्योतिषे च परं गतः ।  
 सख्ये चापि परा प्रीतिस्तयोश्चापि व्यवर्धत ॥ ३४  
 पितर्युपरते चापि कृतशौचः स भारत ।  
 अभिषिक्तः प्रकृतिभी राजपुत्रः स पार्थिव ।  
 अभिषिक्तेन स ऋषिरभिषिक्तः पुरोहितः ॥ ३५  
 स तं पुरोधाय सुखमवसद्भरतर्षभ ।  
 राज्यं शशास धर्मेण प्रजाश्च परिपालयन् ॥ ३६  
 पुण्याहवाचने नित्यं धर्मकार्येषु चासकृत् ।  
 उत्सम्यन्प्राहसच्चापि दृष्ट्वा राजा पुरोहितम् ।  
 एवं स बहुशो राजन्पुरोधसमुपाहसत् ॥ ३७  
 लक्षयित्वा पुरोधास्तु बहुशस्तं नराधिपम् ।  
 उत्सम्यन्तं च सततं दृष्ट्वासौ मन्युमानभूत् ॥ ३८  
 अथ शून्ये पुरोधास्तु सह राज्ञा समागतः ।  
 कथाभिरनुकूलाभी राजानमभिरामयत् ॥ ३९  
 ततोऽब्रवीन्नरेन्द्रं स पुरोधा भरतर्षभ ।  
 वरमिच्छाम्यहं त्वेकं त्वया दत्तं महाद्युते ॥ ४०

राजोवाच ।

वराणां ते शतं दद्यां किमुतैकं द्विजोत्तम ।  
 स्नेहाच्च बहुमानाच्च नास्त्यदेयं हि मे तव ॥ ४१  
 पुरोहित उवाच ।  
 एकं वै वरमिच्छामि यदि तुष्टोऽसि पार्थिव ।  
 यद्दासि महाराज सत्यं तद्वद मानृतम् ॥ ४२

भीष्म उवाच ।

बाढमित्येव तं राजा प्रत्युवाच युधिष्ठिर ।  
 यदि ज्ञास्यामि वक्ष्यामि अजानन्न तु संवदे ॥ ४३  
 पुरोहित उवाच ।  
 पुण्याहवाचने नित्यं धर्मकृत्येषु चासकृत् ।  
 शान्तिहोमेषु च सदा किं त्वं हससि वीक्ष्य माम् ॥  
 सत्रीढं वै भवति हि मनो मे हसता त्वया ।  
 कामया शापितो राजन्नान्यथा वक्तुमर्हसि ॥ ४५  
 भाव्यं हि कारणेनात्र न ते हास्यमकारणम् ।  
 कौतूहलं मे सुभृशं तत्त्वेन कथयस्व मे ॥ ४६

राजोवाच ।

एवमुक्ते त्वया विप्र यद्वाच्यं भवेदपि ।  
 अवश्यमेव वक्तव्यं शृणुष्वैकमना द्विज ॥ ४७  
 पूर्वदेहे यथा वृत्तं तन्निबोध द्विजोत्तम ।  
 जातिं स्मराम्यहं ब्रह्मन्ब्रवधानेन मे शृणु ॥ ४८  
 शूद्रोऽहमभवं पूर्वं तापसो भृशसंयुतः ।  
 ऋषिरुग्रतपास्त्वं च तदाभूर्द्विजसत्तम ॥ ४९  
 प्रीयता हि तदा ब्रह्मन्ममानुग्रहबुद्धिना ।  
 पितृकार्ये त्वया पूर्वमुपदेशः कृतोऽनघ ।  
 वृत्त्यां दर्भेषु हव्ये च कव्ये च मुनिसत्तम ॥ ५०  
 एतेन कर्मदोषेण पुरोधास्त्वमजायथाः ।  
 अहं राजा च विप्रेन्द्र पश्य कालस्य पर्ययम् ।  
 मत्कृते ह्युपदेशेन त्वया प्राप्तमिदं फलम् ॥ ५१  
 एतस्मात्कारणाद्ब्रह्मन्ग्रहसे त्वां द्विजोत्तम ।  
 न त्वां परिभवन्ब्रह्मन्ग्रहसामि गुरुर्भवान् ॥ ५२  
 विपर्ययेण मे मन्युस्तेन संतप्यते मनः ।  
 जातिं स्मराम्यहं तुभ्यमतस्त्वां ग्रहसामि वै ॥ ५३  
 एवं तयोग्रं हि तप उपदेशेन नाशितम् ।  
 पुरोहितत्वमुत्सृज्य यत्तस्व त्वं पुनर्भवे ॥ ५४

इतस्त्वमधमामन्यां मा योनिं प्राप्स्यसे द्विज ।

गृह्यतां द्रविणं विप्र पूतात्मा भव सत्तम ॥ ५५

भीष्म उवाच ।

ततो विसृष्टो राज्ञा तु विप्रो दानान्यनेकशः ।

ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं भूमिं ग्रामांश्च सर्वशः ॥ ५६

कृच्छ्राणि चीर्त्वा च ततो यथोक्तानि द्विजोत्तमः ।

तीर्थानि चाभिगत्वा वै दानानि विविधानि च ॥ ५७

दत्त्वा गाश्चैव विप्राणां पूतात्मा सोऽभ्यद्विजः ।

तमेव चाश्रमं गत्वा चचार विपुलं तपः ॥ ५८

ततः सिद्धिं परां प्राप्तो ब्राह्मणो राजसत्तम ।

संमतश्चाभवत्तेषामाश्रमेऽऽश्रमवासिनाम् ॥ ५९

एवं प्राप्तो महत्कृच्छ्रमृषिः स नृपसत्तम ।

ब्राह्मणेन न वक्तव्यं तस्माद्वर्णावरे जने ॥ ६०

वर्जयेदुपदेशं च सदैव ब्राह्मणो नृप ।

उपदेशं हि कुर्वाणो द्विजः कृच्छ्रमवाप्नुयात् ॥ ६१

एषितव्यं सदा वाचा नृपेण द्विजसत्तमात् ।

न प्रवक्तव्यमिह हि किञ्चिद्वर्णावरे जने ॥ ६२

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।

एतेषु कथयन् राजन् ब्राह्मणो न प्रदुष्यति ॥ ६३

तस्मात्सद्भिर्न वक्तव्यं कस्यचित्किञ्चिदप्रतः ।

सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य दुर्ज्ञेया ह्यकृतात्मभिः ॥ ६४

तस्मान्मौनानि मुनयो दीक्षां कुर्वन्ति चाहताः ।

दुरुक्तस्य भयाद्राजन्नानुभाषन्ति किञ्चन ॥ ६५

धार्मिका गुणसंपन्नाः सत्यार्जवपरायणाः ।

दुरुक्तवाचाभिहताः प्राप्नुवन्तीह दुष्कृतम् ॥ ६६

उपदेशो न कर्तव्यः कदाचिदपि कस्यचित् ।

उपदेशाद्धि तत्पापं ब्राह्मणः समवाप्नुयात् ॥ ६७

विमृश्य तस्मात्प्राज्ञेन वक्तव्यं धर्ममिच्छता ।

सत्यानृतेन हि कृत उपदेशो हिनस्ति वै ॥ ६८

वक्तव्यमिह पृष्टेन विनिश्चित्य विपर्ययम् ।

स चोपदेशः कर्तव्यो येन धर्ममवाप्नुयात् ॥ ६९

एतत्ते सर्वमाख्यातमुपदेशे कृते सति ।

महान्केशो हि भवति तस्मान्नोपदिशेत्कचित् ॥ ७०

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

११

युधिष्ठिर उवाच ।

कीदृशे पुरुषे तात स्त्रीषु वा भरतर्षभ ।

श्रीः पद्मा वसते नित्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १

भीष्म उवाच

अत्र ते वर्तयिष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ।

रुक्मिणी देवकीपुत्रसंनिधौ पर्यपृच्छत ॥ २

नारायणस्याङ्कगतां ज्वलन्तीं

दृष्ट्वा श्रियं पद्मसमानवक्त्राम् ।

कौतूहलाद्विस्मितचारुनेत्रा

पप्रच्छ माता मकरध्वजस्य ॥ ३

कानीह भूतान्युपसेवसे त्वं

संतिष्ठती कानि न सेवसे त्वम् ।

तानि त्रिलोकेश्वरभूतकान्ते

तत्त्वेन मे ब्रूहि महर्षिकन्ये ॥ ४

एवं तदा श्रीरभिभाष्यमाणा

देव्या समक्षं गरुडध्वजस्य ।

उवाच वाक्यं मधुराभिधानं

मनोहरं चन्द्रमुखी प्रसन्ना ॥ ५

वसामि सत्ये सुभगे प्रगल्भे

दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने ।

नाकर्मशीले पुरुषे वसामि

न नास्तिके सांकरिके कृतघ्ने ।

न भिन्नवृत्ते न नृशंसवृत्ते

न चापि चौरे न गुरुष्वसूये ॥ ६  
 ये चाल्पतेजोबलसत्त्वसारा  
 हृष्यन्ति कुप्यन्ति च यत्र तत्र ।  
 न देवि तिष्ठामि तथाविधेषु  
 नरेषु संसृप्तमनोरथेषु ॥ ७  
 यश्चात्मनि प्रार्थयते न किञ्चि-  
 द्यश्च स्वभावोपहतान्तरात्मा ।  
 तेष्वल्पसंतोषरतेषु नित्यं  
 नरेषु नाहं निवसामि देवि ॥ ८  
 वसामि धर्मशीलेषु धर्मज्ञेषु महात्मसु ।  
 वृद्धसेविषु दान्तेषु सत्त्वज्ञेषु महात्मसु ॥ ९  
 स्त्रीषु क्षान्तासु दान्तासु देवद्विजपरासु च ।  
 वसामि सत्यशीलासु स्वभावनिरतासु च ॥ १०  
 प्रकीर्णभाण्डामनवेक्ष्यकारिणीं  
 सदा च भर्तुः प्रतिकूलवादिनीम् ।  
 परस्य वैश्रमाभिरतामलज्जा-  
 मेवंविधां स्त्रीं परिवर्जयामि ॥ ११  
 लोलामचोक्षामवलहेहिनीं च  
 व्यपेतधैर्यां कलहप्रियां च ।  
 निद्राभिभूतां सततं शयाना-  
 मेवंविधां स्त्रीं परिवर्जयामि ॥ १२  
 सत्यासु नित्यं प्रियदर्शनासु  
 सौभाग्ययुक्तासु गुणान्वितासु ।  
 वसामि नारीषु पतिव्रतासु  
 कल्याणशीलासु विभूषितासु ॥ १३  
 यानेषु कन्यासु विभूषणेषु  
 यज्ञेषु मेघेषु च वृष्टिमत्सु ।  
 वसामि फुल्लासु च पद्मिनीषु  
 नक्षत्रवीथीषु च शारदीषु ॥ १४  
 शैलेषु गोष्ठेषु तथा वनेषु

सरःसु फुल्लोत्पलपङ्कजेषु ।  
 नदीषु हंसस्वननादितासु  
 क्रौञ्चावघुष्टस्वरशोभितासु ॥ १५  
 विस्तीर्णकूलहृदशोभितासु  
 तपस्विसिद्धद्विजसेवितासु ।  
 वसामि नित्यं सुबहूदकासु  
 सिंहैर्गजैश्चाकुलितोदकासु ।  
 मत्ते गजे गोवृषभे नरेन्द्रे  
 सिंहासने सत्पुरुषे च नित्यम् ॥ १६  
 यस्मिन्गृहे हूयते हव्यवाहो  
 गोब्राह्मणश्चार्च्यते देवताश्च ।  
 काले च पुष्पैर्वलयः क्रियन्ते  
 तस्मिन्गृहे नित्यमुपेयि वासम् ॥ १७  
 स्वाध्यायनित्येषु द्विजेषु नित्यं  
 क्षेत्रे च धर्माभिरते सदैव ।  
 वैश्ये च कृष्याभिरते वसामि  
 शूद्रे च शुश्रूषणनित्ययुक्ते ॥ १८  
 नारायणे त्वेकमना वसामि  
 सर्वेण भावेन शरीरभूता ।  
 तस्मिन् हि धर्मः सुमहान्निविष्टो  
 ब्रह्मण्यता चात्र तथा प्रियत्वम् ॥ १९  
 नाहं शरीरेण वसामि देवि  
 नैवं मया शक्यमिहाभिधातुम् ।  
 यस्मिन्स्तु भावेन वसामि पुंसि  
 स वर्धते धर्मयशोर्थकामैः ॥ २०  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥  
 १२  
 युधिष्ठिर उवाच ।  
 स्त्रीपुंसयोः संप्रयोगे स्पर्शः कस्याधिको भवेत् ।



एतन्मे संशयं राजन्यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

भङ्गाश्वनेन शक्रस्य यथा वैरमभूत्पुरा ॥ २

पुरा भङ्गाश्वनो नाम राजर्षिरितिधार्मिकः ।

अपुत्रः स नरव्याघ्र पुत्रार्थं यज्ञमाहरत् ॥ ३

अग्निष्टुं नाम राजर्षिरिन्द्रद्विष्टं महाबलः ।

प्रायश्चित्तेषु मर्त्यानां पुत्रकामस्य चेष्यते ॥ ४

इन्द्रो ज्ञात्वा तु तं यज्ञं महाभागः सुरेश्वरः ।

अन्तरं तस्य राजर्षेरन्विच्छन्नियतात्मनः ॥ ५

कस्यचित्त्वथ कालस्य मृगयामटतो नृप ।

इदमन्तरमित्येव शक्रो नृपममोहयत् ॥ ६

एकाश्वेन च राजर्षिभ्रान्त इन्द्रेण मोहितः ।

न दिशोऽविन्दत नृपः क्षुत्पिपासार्दितस्तदा ॥ ७

इतश्चेतश्च वै धावञ्श्रमनृष्टादितो नृपः ।

सरोऽपश्यत्सुरुचिरं पूर्णं परमवारिणा ।

सोऽवगाह्य सरस्तात पाययामास वाजिनम् ॥ ८

अथ पीतोदकं सोऽश्वं वृक्षे बद्ध्वा नृपोत्तमः ।

अवगाह्य ततः स्नातो राजा स्त्रीत्वमवाप ह ॥ ९

आत्मानं स्त्रीकृतं दृष्ट्वा व्रीडितो नृपसत्तमः ।

चिन्तानुगतसर्वात्मा व्याकुलेन्द्रियचेतनः ॥ १०

आरोहिष्ये कथं त्वश्वं कथं यास्यामि वै पुरम् ।

अग्निष्टुं नाम इष्टं मे पुत्राणां शतमौरसम् ॥ ११

जातं महाबलानां वै तान्प्रवक्ष्यामि किं त्वहम् ।

दारेषु चास्मदीयेषु पौरजानपदेषु च ॥ १२

मृदुत्वं च तनुत्वं च विष्णुत्वं तथैव च ।

स्त्रीगुणा ऋषिभिः प्रोक्ता धर्मतत्त्वार्थदर्शिभिः ।

व्यायामः कर्कशत्वं च वीर्यं च पुरुषे गुणाः ॥ १३

पौरुषं विप्रनष्टं मे स्त्रीत्वं केनापि मेऽभवत् ।

स्त्रीभावात्कथमश्वं तु पुनरारोढुमुत्सहे ॥ १४

महता त्वथ खेदेन आरुह्याश्वं नराधिपः ।

पुनरायात्पुरं तात स्त्रीभूतो नृपसत्तम ॥ १५

पुत्रा दाराश्च भृत्याश्च पौरजानपदाश्च ते ।

किं न्विदं त्विति विज्ञाय विस्मयं परमं गताः ॥ १६

अथोवाच स राजर्षिः स्त्रीभूतो वदतां वरः ।

मृगयामस्मि निर्यातो बलैः परिवृतो दृढम् ।

उद्भ्रान्तः प्राविशं घोराभटवीं दैवमोहितः ॥ १७

अटव्यां च सुघोरायां नृष्टातो नष्टचेतनः ।

सरः सुरुचिरप्रख्यमपश्यं पक्षिभिर्वृतम् ॥ १८

तत्रावगाढः स्त्रीभूतो व्यक्तं दैवान्न संशयः ।

अतृप्त इव पुत्राणां दाराणां च धनस्य च ॥ १९

उवाच पुत्रांश्च ततः स्त्रीभूतः पार्थिवोत्तमः ।

संप्रीत्या भुज्यतां राज्यं वनं यास्यामि पुत्रकाः ।

अभिषिच्य स पुत्राणां शतं राजा वनं गतः ॥ २०

तामाश्रमे स्त्रियं तात तापसोऽभ्यवपद्यत ।

तापसेनास्य पुत्राणामाश्रमेऽप्यभवच्छतम् ॥ २१

अथ सा तान्सुतान्गृह्य पूर्वपुत्रानभाषत ।

पुरुषत्वे सुता यूयं स्त्रीत्वे चेमे शतं सुताः ॥ २२

एकत्र भुज्यतां राज्यं भ्रातृभावेन पुत्रकाः ।

सहिता भ्रातरस्तेन राज्यं बुभुजिरे तदा ॥ २३

तान्दृष्ट्वा भ्रातृभावेन भुञ्जानान्राज्यमुत्तमम् ।

चिन्तयामास देवेन्द्रो मन्युनामिपरिप्लुतः ।

उपकारोऽस्य राजर्षेः कृतो नापकृतं मया ॥ २४

ततो ब्राह्मणरूपेण देवराजः शतक्रतुः ।

भेदयामास तान्गत्वा नगरं वै नृपात्मजान् ॥ २५

भ्रातृणां नास्ति सौभ्रात्रं येऽप्येकस्य पितुः सुताः ।

राज्यहेतोर्विबदिताः कश्यपस्य सुरासुराः ॥ २६

यूयं भङ्गाश्वनापत्यास्तापसस्येतरे सुताः ।

कश्यपस्य सुराश्चैव असुराश्च सुतास्तथा ।

युष्माकं पैतृकं राज्यं भुज्यते तापसात्मजैः ॥ २७

इन्द्रेण भेदितास्ते तु युद्धेऽन्योन्यमपातयन् ।  
 तच्छ्रुत्वा तापसी चापि संतप्ता प्ररुद ह ॥ २८  
 ब्राह्मणच्छद्मनाभ्येत्य तामिन्द्रोऽथान्वपृच्छत ।  
 केन दुःखेन संतप्ता रोदिषि त्वं वरानने ॥ २९  
 ब्राह्मणं तु ततो दृष्ट्वा सा स्त्री करुणमब्रवीत् ।  
 पुत्राणां द्वे शते ब्रह्मन्कालेन विनिपातिते ॥ ३०  
 अहं राजाभवं विप्र तत्र पुत्रशतं मया ।  
 समुत्पन्नं सुरुपाणां विक्रान्तानां द्विजोत्तम ॥ ३१  
 कदाचिन्मृगायां यात उद्धातो गहने वने ।  
 अवगाढश्च सरसि स्त्रीभूतो ब्राह्मणोत्तम ।  
 पुत्रान्राज्ये प्रतिष्ठाप्य वनमस्मि ततो गतः ॥ ३२  
 स्त्रियाश्च मे पुत्रशतं तापसेन महात्मना ।  
 आश्रमे जनितं ब्रह्मन्नीतास्ते नगरं मया ॥ ३३  
 तेषां च वैरमुत्पन्नं कालयोगेन वै द्विज ।  
 एतच्छोचामि विप्रेन्द्र दैवेनाभिपरिप्लुता ॥ ३४  
 इन्द्रस्तां दुःखितां दृष्ट्वा अब्रवीत्पुरुषं वचः ।  
 पुरा सुदुःसहं भद्रे मम दुःखं त्वया कृतम् ॥ ३५  
 इन्द्रद्विष्टेन यजता मामनाहत्य दुर्मते ।  
 इन्द्रोऽहमस्मि दुर्बुद्धे वैरं ते यातितं मया ॥ ३६  
 इन्द्रं तु दृष्ट्वा राजर्षिः पादयोः शिरसा गतः ।  
 प्रसीद त्रिदशश्रेष्ठ पुत्रकामेन स क्रतुः ।  
 इष्टस्त्रिदशशार्दूल तत्र मे क्षन्तुमर्हसि ॥ ३७  
 प्रणिपातेन तस्येन्द्रः परितुष्टो वरं ददौ ।  
 पुत्रा वै कतमे राजस्त्रीवन्तु तव शंस मे ।  
 स्त्रीभूतस्य हि ये जाताः पुरुषस्याथ येऽभवन् ॥ ३८  
 तापसी तु ततः शक्रमुवाच प्रयताञ्जलिः ।  
 स्त्रीभूतस्य हि ये जातास्ते मे जीवन्तु वासव ॥ ३९  
 इन्द्रस्तु विस्मितो दृष्टः स्त्रियं पप्रच्छ तां पुनः ।  
 पुरुषोत्पादिता ये ते कथं द्वेष्ट्याः सुतास्त्व ॥ ४०  
 स्त्रीभूतस्य हि ये जाताः स्नेहस्तेभ्योऽधिकः कथम् ।

कारणं श्रोतुमिच्छामि तन्मे वक्तुमिहार्हसि ॥ ४१

रुयुवाच ।

स्त्रियास्त्वभ्यधिकः स्नेहो न तथा पुरुषस्य वै ।  
 तस्मात्ते शक्र जीवन्तु ये जाताः स्त्रीकृतस्य वै ॥ ४२

भीष्म उवाच ।

एवमुक्ते ततस्त्विन्द्रः प्रीतो वाक्यमुवाच ह ।  
 सर्व एवेह जीवन्तु पुत्रास्ते सत्यवादिनि ॥ ४३  
 वरं च वृणु राजेन्द्र यं त्वमिच्छसि सुव्रत ।  
 पुरुषत्वमथ स्त्रीत्वं मत्तो यदभिकाङ्क्षसि ॥ ४४

रुयुवाच ।

स्त्रीत्वमेव वृणे शक्र प्रसन्ने त्वयि वासव ॥ ४५  
 एवमुक्तस्तु देवेन्द्रस्तां स्त्रियं प्रत्युवाच ह ।  
 पुरुषत्वं कथं त्यक्त्वा स्त्रीत्वं रोचयसे विभो ॥ ४६  
 एवमुक्तः प्रत्युवाच स्त्रीभूतो राजसत्तमः ।  
 स्त्रियाः पुरुषसंयोगे प्रीतिरभ्यधिका सदा ।  
 एतस्मात्कारणाच्छक्र स्त्रीत्वमेव वृणोम्यहम् ॥ ४७  
 रमे चैवाधिकं स्त्रीत्वे सत्यं वै देवसत्तम ।  
 स्त्रीभावेन हि तुष्टोऽस्मि गम्यतां त्रिदशाधिप ॥ ४८  
 एवमस्त्विति चोक्त्वा तामापृच्छथ त्रिदिवं गतः ।  
 एवं स्त्रिया महाराज अधिका प्रीतिरुच्यते ॥ ४९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

१३

युधिष्ठिर उवाच ।

किं कर्तव्यं मनुष्येण लोकयात्राहितार्थिना ।  
 कथं वै लोकयात्रां तु किंशीलश्च समाचरेत् ॥ १

भीष्म उवाच ।

कायेन त्रिविधं कर्म वाचा चापि चतुर्विधम् ।  
 मनसा त्रिविधं चैव दश कर्मपथास्त्यजेत् ॥ २

प्राणातिपातं स्तैन्यं च परदारमथापि च ।  
 त्रीणि पापानि कायेन सर्वतः परिवर्जयेत् ॥ ३  
 अस्तत्प्रलापं पारुष्यं पैशुन्यमनृतं तथा ।  
 चत्वारि वाचा राजेन्द्र न जल्पेन्नानुचिन्तयेत् ॥ ४  
 अनभिध्या परस्वेषु सर्वसत्त्वेषु सौहृदम् ।  
 कर्मणा फलमस्तीति त्रिविधं मनसा चरेत् ॥ ५  
 तस्माद्वाक्कायमनसा नाचरेदशुभं नरः ।  
 शुभाशुभान्याचरन्हि तस्य तस्याश्रुते फलम् ॥ ६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

१४

युधिष्ठिर उवाच ।

पितामहेशाय विभो नामान्याचक्ष्व शंभवे ।  
 बभ्रवे विश्वमादाय महाभाग्यं च तत्त्वतः ॥ १

भीष्म उवाच ।

सुरासुरगुरो देव विष्णो त्वं वक्तुमर्हसि ।  
 शिवाय विश्वरूपाय यन्मां पृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ २  
 नाभ्रां सहस्रं देवस्य तण्डिना ब्रह्मयोनिना ।  
 निवेदितं ब्रह्मलोके ब्रह्मणो यत्पुराभवत् ॥ ३  
 द्वैपायनप्रभृतयस्तथैवेमे तपोधनाः ।  
 ऋषयः सुव्रता दान्ताः शृण्वन्तु गदतस्तव ॥ ४  
 घ्रुवाय नन्दिने होत्रे गोप्त्रे विश्वसृजेऽग्नये ।  
 महाभाग्यं विभो ब्रूहि मुण्डिनेऽथ कपर्दिने ॥ ५

वासुदेव उवाच ।

न गतिः कर्मणां शक्या वेत्तुमीशस्य तत्त्वतः ॥ ६  
 हिरण्यगर्भप्रमुखा देवाः सेन्द्रा महर्षयः ।  
 न विदुर्यस्य निधनमार्दि वा सूक्ष्मदर्शिनः ।  
 स कथं नरमात्रेण शक्यो ज्ञातुं सतां गतिः ॥ ७  
 तस्याहमसुरघ्नस्य कांश्चिद्भगवतो गुणान् ।

भवतां कीर्तयिष्यामि व्रतेशाय यथातथम् ॥ ८

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा तु भगवान्गुणांस्तस्य महात्मनः ।  
 उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा कथयामास धीमतः ॥ ९

वासुदेव उवाच ।

शुश्रूषध्वं ब्राह्मणेन्द्रास्त्वं च तात युधिष्ठिर ।  
 त्वं चापगेय नामानि निशामय जगत्पतेः ॥ १०  
 यदवाप्तं च मे पूर्वं साम्बहेतोः सुदुष्करम् ।  
 यथा च भगवान्दृष्टो मया पूर्वं समाधिना ॥ ११  
 शम्बरे निहते पूर्वं रौक्मिणेयेन धीमता ।  
 अतीते द्वादशे वर्षे जाम्बवत्यब्रवीद्वि माम् ॥ १२  
 प्रद्युम्नचारुदेष्णादीन्रुक्मिण्या वीक्ष्य पुत्रकान् ।  
 पुत्रार्थिनी मामुपेत्य वाक्यमाह युधिष्ठिर ॥ १३  
 शूरं बलवतां श्रेष्ठं कान्तरूपमकल्मषम् ।  
 आत्मतुल्यं मम सुतं प्रयच्छाच्युत माचिरम् ॥ १४  
 न हि तेऽप्राप्यमस्तीह त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।  
 लोकान्सृजेस्त्वमपरानिच्छन्यदुक्कलोद्बह ॥ १५  
 त्वया द्वादश वर्षाणि वायुभूतेन शृण्वता ।  
 आराध्य पशुभर्तारं रुक्मिण्या जनिताः सुताः ॥ १६  
 चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुखेपो यशोधरः ।  
 चारुश्रवाश्चारुयशः प्रद्युम्नः शंभुरेव च ॥ १७  
 यथा ते जनिताः पुत्रा रुक्मिण्याश्चारुविक्रमाः ।  
 तथा ममापि तनयं प्रयच्छ बलशालिनम् ॥ १८  
 इत्येवं चोदितो देव्या तामवोचं सुमध्यमाम् ।  
 अनुजानीहि मां राज्ञि करिष्ये वचनं तव ।  
 सा च मामब्रवीद्ब्रह्म विजयाय शिवाय च ॥ १९  
 ब्रह्मा शिवः काश्यपश्च नद्यो देवा मनोनुगाः ।  
 क्षेत्रौषधयो यज्ञवाहाच्छन्दांस्यृषिगणा धरा ॥ २०  
 समुद्रा दक्षिणा स्तोभा ऋक्षाणि पितरो ग्रहाः ।  
 देवपत्न्यो देवकन्या देवमातर एव च ॥ २१

मन्वन्तराणि गावश्च चन्द्रमाः सविता हरिः ।  
सावित्री ब्रह्मविद्या च ऋतवो वत्सराः क्षपाः ॥ २२  
क्षणा लवा मुहूर्ताश्च निमेषा युगपर्ययाः ।  
रक्षन्तु सर्वत्र गतं त्वां यादव सुखावहम् ।  
अरिष्टं गच्छ पन्थानमप्रमत्तो भवानघ ॥ २३

एवं कृतस्वस्त्ययनस्तयाहं

तानभ्यनुज्ञाय कपीन्द्रपुत्रीम् ।

पितुः समीपे नरसत्तमस्य

मातुश्च राज्ञश्च तथाहुकस्य ॥ २४

तमर्थमावेद्य यद्ब्रवीन्मां

विद्याधरेन्द्रस्य सुता भृशार्ता ।

तानभ्यनुज्ञाय तदातिदुःखा-

द्भवं तथैवातिबलं च रामम् ॥ २५

प्राप्यानुज्ञां गुरुजनादहं ताक्ष्यमचिन्तयम् ।

सोऽवहद्विमवन्तं मां प्राप्य चैनं व्यसर्जयम् ॥ २६

तत्राहमद्भुतान्भावानपश्यं गिरिसत्तमे ।

क्षेत्रं च तपसां श्रेष्ठं पश्याम्याश्रममुत्तमम् ॥ २७

दिव्यं वैयाघ्रपद्यस्य उपमन्योर्महात्मनः ।

पूजितं देवगन्धर्वैर्ब्राह्म्या लक्ष्म्या समन्वितम् ॥ २८

धवककुभकदम्बनारिकेलैः

कुरवककेतकजम्बुपाटलाभिः ।

वटवरुणकवत्सनाभविल्वैः

सरलकपित्थप्रियालसालतालैः ॥ २९

बद्रीकुन्दपुन्नागैरशोकाम्रातिमुक्तकैः ।

भल्लातकैर्मधुकैश्च चम्पकैः पनसैस्तथा ॥ ३०

वन्यैर्बहुविधैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युतम् ।

पुष्पगुल्मलताकीर्णं कदलीषण्डशोभितम् ॥ ३१

नानाशकुनिसंभोज्यैः फलैर्वृक्षैरलंकृतम् ।

यथास्थानविनिक्षिप्तैर्भूषितं वनराजिभिः ॥ ३२

रुस्वारणशार्दूलसिंहद्वीपिसमाकुलम् ।

कुरङ्गबर्हिणाकीर्णं मार्जारभुजगावृतम् ।

पूगैश्च मृगजातीनां महिषर्क्षनिषेवितम् ॥ ३३

नानापुष्परजोमिश्रो गजदानाधिवासितः ।

दिव्यस्त्रीगीतबहुलो मारुतोऽत्र सुखो ववौ ॥ ३४

धारानिनादैर्विहगप्रणादैः

शुभैस्तथा वृंहितैः कुञ्जराणाम् ।

गीतैस्तथा किंनराणामुदारैः

शुभैः स्वनैः सामगानां च वीर ॥ ३५

अचिन्त्यं मनसाप्यन्यैः सरोभिः समलंकृतम् ।

विशालैश्चाग्निशरणैर्भूषितं कुशसंवृतम् ॥ ३६

विभूषितं पुण्यपवित्रतोयया

सदा च जुष्टं नृप जह्नुकन्यया ।

महात्मभिर्धर्मभृतां वरिष्ठै-

र्महर्षिभिर्भूषितमग्निकल्पैः ॥ ३७

वाय्वाहारैरम्बुपैर्जप्यनित्यैः

संप्रक्षालैर्यतिभिर्ध्याननित्यैः ।

धूमाशनैरूपैः क्षीरपैश्च

विभूषितं ब्राह्मणेन्द्रैः समन्तात् ॥ ३८

गोचारिणोऽथाश्मकुट्टा दन्तोल्खलिनस्तथा ।

मरीचिपाः फेनपाश्च तथैव मृगचारिणः ॥ ३९

सुदुःखान्नियमांस्तांस्तान्वहतः सुतपोन्वितान् ।

पश्यन्नुत्फुल्लनयनः प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥ ४०

सुपूजितं देवगणैर्महात्मभिः

शिवादिभिर्भारत पुण्यकर्मभिः ।

रराज तच्चाश्रममण्डलं सदा

दिवीव राजन्रविमण्डलं यथा ॥ ४१

क्रीडन्ति सर्पैर्नकुला मृगैर्व्याघ्राश्च मित्रवत् ।

प्रभावादीप्ततपसः संनिकर्षगुणान्विताः ॥ ४२

तत्राश्रमपदे श्रेष्ठे सर्वभूतमनोरमे ।

सेविते द्विजशार्दूलैर्वेदेवेदाङ्गपारगैः ॥ ४३

नानानियमविख्यातैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः ।  
 प्रविशन्नेव चापश्यं जटाचीरधरं प्रभुम् ॥ ४४  
 तेजसा तपसा चैव दीप्यमानं यथानलम् ।  
 शिष्यमध्यगतं शान्तं युवानं ब्राह्मणर्षभम् ।  
 शिरसा वन्दमानं मामुपमन्युरभाषत ॥ ४५  
 स्वागतं पुण्डरीकाक्ष सफलानि तपांसि नः ।  
 यत्पूज्यः पूजयसि नो द्रष्टव्यो द्रष्टुमिच्छसि ॥ ४६  
 तमहं प्राञ्जलिर्भूत्वा मृगपक्षिवथाग्निषु ।  
 धर्मे च शिष्यवर्गे च समपृच्छमनामयम् ॥ ४७  
 ततो मां भगवानाह साम्ना परमवल्गुना ।  
 लप्स्यसे तनयं कृष्ण आत्मतुल्यमसंशयम् ॥ ४८  
 तपः सुमहदास्थाय तोषयेशानमीश्वरम् ।  
 इह देवः सपत्नीकः समाक्रीडत्यधोक्षज ॥ ४९  
 इहैव देवताश्रेष्ठं देवाः सर्षिगणाः पुरा ।  
 तपसा ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च ।  
 तोषयित्वा शुभान्कामान्प्राप्नुवंस्ते जनार्दन ॥ ५०  
 तेजसां तपसां चैव निधिः स भगवानिह ।  
 शुभाशुभान्वितान्भावान्विसृजन्संक्षिपन्नपि ।  
 आस्ते देव्या सहाचिन्त्यो यं प्रार्थयसि शत्रुहन् ॥  
 हिरण्यकशिपुर्योऽभूद्भानवो मेरुकम्पनः ।  
 तेन सर्वमिरेश्वर्यं शर्वात्प्राप्तं समारुदम् ॥ ५२  
 तस्यैव पुत्रप्रवरो मन्दरो नाम विश्रुतः ।  
 महादेववराच्छक्रं वर्षावुदमयोधयत् ॥ ५३  
 विष्णोश्चक्रं च तद्गौरं वज्रमाखण्डलस्य च ।  
 शीर्णं पुराभवत्तात ग्रहस्याङ्गेषु केशव ॥ ५४  
 अर्द्यमानाश्च विबुधा ग्रहेण सुबलीयसा ।  
 शिवदत्तवराङ्गमुरसुरेन्द्रान्सुरा भृशम् ॥ ५५  
 तुष्टो विद्युत्प्रभस्यापि त्रिलोकेश्वरतामदात् ।  
 शतं वर्षसहस्राणां सर्वलोकेश्वरोऽभवत् ।  
 ममैवानुचरो नित्यं भवितासीति चाब्रवीत् ॥ ५६

तथा पुत्रसहस्राणामयुतं च ददौ प्रभुः ।  
 कुशद्वीपं च स ददौ राज्येन भगवानजः ॥ ५७  
 तथा शतमुखो नाम धात्रा सृष्टो महासुरः ।  
 येन वर्षशतं साग्रमात्मसांसैर्हुतोऽनलः ।  
 तं प्राह भगवांस्तुष्टः किं करोमीति शंकरः ॥ ५८  
 तं वै शतमुखः प्राह योगो भवतु मेऽद्भुतः ।  
 बलं च दैवतश्रेष्ठ शाश्वतं संप्रयच्छ मे ॥ ५९  
 स्वायंभुवः क्रतुश्चापि पुत्रार्थमभवत्पुरा ।  
 आविश्य योगेनात्मानं त्रीणि वर्षशतान्यपि ॥ ६०  
 तस्य देवोऽददत्पुत्रान्सहस्रं क्रतुसंमितान् ।  
 योगेश्वरं देवगीतं वेत्थ कृष्ण न संशयः ॥ ६१  
 वालखिल्यां मघवता अवज्ञाताः पुरा किल ।  
 तैः क्रुद्धैर्भगवान्द्रुस्तपसा तोषितो ह्यभूत् ॥ ६२  
 तांश्चापि दैवतश्रेष्ठः प्राह प्रीतो जगत्पतिः ।  
 सुपर्णं सोमहर्तारं तपसोत्पादयिष्यथ ॥ ६३  
 महादेवस्य रोषाच्च आपो नष्टाः पुराभवन् ।  
 ताश्च सप्तकपालेन देवैरन्याः प्रवर्तिताः ॥ ६४  
 अत्रेभार्यापि भर्तारं संत्यज्य ब्रह्मवादिनी ।  
 नाहं तस्य मुनेर्भूयो वशगा स्यां कथंचन ।  
 इत्युक्त्वा सा महादेवमगच्छच्छरणं किल ॥ ६५  
 निराहारा भयादत्रेस्त्रीणि वर्षशतान्यपि ।  
 अशेत मुसलेष्वेव प्रसादार्थं भवस्य सा ॥ ६६  
 तामब्रवीद्वसन्देवो भविता वै सुतस्तव ।  
 वंशे तवैव नाम्ना तु ख्यातिं यास्यति चेप्सिताम् ॥  
 शाकल्यः संशितात्मा वै नव वर्षशतान्यपि ।  
 आराधयामास भवं मनोयज्ञेन केशव ॥ ६८  
 तं चाह भगवांस्तुष्टो ग्रन्थकारो भविष्यसि ।  
 वत्साक्षया च ते कीर्तिस्त्रैलोक्ये वै भविष्यति ।  
 अक्षयं च कुलं तेऽस्तु महर्षिभिरलंकृतम् ॥ ६९  
 सावर्णिश्चापि विख्यात ऋषिरासीत्कृते युगे ।

इह तेन तपस्तप्तं षष्टिं वर्षशतान्यथ ॥ ७०  
 तमाह भगवान् रुद्रः साक्षात्तुष्टोऽस्मि तेऽनघ ।  
 ग्रन्थकृलोकविख्यातो भवितास्यजरामरः ॥ ७१  
 मयापि च यथा दृष्टो देवदेवः पुरा विभुः ।  
 साक्षात्पशुपतिस्तात तच्चापि शृणु माधव ॥ ७२  
 यदर्थं च महादेवः प्रयतेन मया पुरा ।  
 आराधितो महादेवास्तच्चापि शृणु विस्तरम् ॥ ७३  
 यदवाप्तं च मे पूर्वं देवदेवान्महेश्वरात् ।  
 तत्सर्वमखिलेनाद्य कथयिष्यामि तेऽनघ ॥ ७४  
 पुरा कृतयुगे तात ऋषिरासीन्महायशः ।  
 व्याघ्रपाद इति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ।  
 तस्याहमभवं पुत्रो धौम्यश्चापि ममानुजः ॥ ७५  
 कस्यचित्त्वथ कालस्य धौम्येन सह माधव ।  
 आगच्छमाश्रमं क्रीडन्मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ७६  
 तत्रापि च मया दृष्टा दुह्यमाना पयस्विनी ।  
 लक्षितं च मया क्षीरं स्वादुतो ह्यमृतोपमम् ॥ ७७  
 ततः पिष्टं समालोढ्य तोयेन सह माधव ।  
 आवयोः क्षीरमित्येव पानार्थमुपनीयते ॥ ७८  
 अथ गव्यं पयस्तात कदाचित्प्राशितं मया ।  
 ततः पिष्टरसं तात न मे प्रीतिमुदावहत् ॥ ७९  
 ततोऽहमश्रुवं बाल्याज्जननीमात्मनस्तदा ।  
 क्षीरोदनसमायुक्तं भोजनं च प्रयच्छ मे ॥ ८०  
 ततो मामब्रवीन्माता दुःखशोकसमन्विता ।  
 पुत्रस्नेहात्परिष्वज्य मूर्ध्नि चाग्राय माधव ॥ ८१  
 कुतः क्षीरोदनं वत्स मुनीनां भावितात्मनाम् ।  
 वने निवसतां नित्यं कन्दमूलफलाशिनाम् ॥ ८२  
 अप्रसाद्य विरूपाक्षं वरदं स्थाणुमव्ययम् ।  
 कुतः क्षीरोदनं वत्स सुखानि वसनानि च ॥ ८३  
 तं प्रपद्य सदा वत्स सर्वभावेन शंकरम् ।  
 तत्प्रसादाच्च कामेभ्यः फलं प्राप्स्यसि पुत्रक ॥ ८४

जनन्यास्तद्वचः श्रुत्वा तदाप्रभृति शत्रुहन् ।  
 मम भक्तिर्महादेवे नैष्ठिकी समपद्यत ॥ ८५  
 ततोऽहं तप आस्थाय तोषयामास शंकरम् ।  
 दिव्यं वर्षसहस्रं तु पादाङ्गुष्ठाग्रविधितः ॥ ८६  
 एकं वर्षशतं चैव फलाहारस्तदाभवम् ।  
 द्वितीयं शीर्णपर्णाशी तृतीयं चाम्बुभोजनः ।  
 शतानि सप्त चैवाहं वायुभक्षस्तदाभवम् ॥ ८७  
 ततः प्रीतो महादेवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।  
 शक्ररूपं स कृत्वा तु सर्वैर्देवगणैर्वृतः ।  
 सहस्राक्षस्तदा भूत्वा वज्रपाणिर्महायशः ॥ ८८  
 सुधावदातं रक्ताक्षं स्तब्धकर्णं मदोत्कटम् ।  
 आवेष्टितकरं रौद्रं चतुर्दंष्ट्रं महागजम् ॥ ८९  
 समास्थितश्च भगवान्दीप्यमानः स्वतेजसा ।  
 आजगाम किरीटी तु हारकेयूरभूषितः ॥ ९०  
 पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।  
 सेव्यमानोऽप्सरोग्भिश्च दिव्यगन्धर्वनादितः ॥ ९१  
 ततो मामाह देवेन्द्रः प्रीतस्तेऽहं द्विजोत्तम ।  
 वरं वृणीष्व मत्तस्त्वं यत्ते मनसि वर्तते ॥ ९२  
 शक्रस्य तु वचः श्रुत्वा नाहं प्रीतमनाभवम् ।  
 अश्रुवं च तदा कृष्ण देवराजमिदं वचः ॥ ९३  
 नाहं त्वत्तो वरं काङ्क्षे नान्यस्मादपि दैवतात् ।  
 महादेवाहते सौम्य सत्यमेतदब्रवीमि ते ॥ ९४  
 पशुपतिवचनाद्भवामि सद्यः  
 कृमिरथ वा तरुरप्यनेकशाखः ।  
 अपशुपतिवरप्रसादजा मे  
 त्रिभुवनराज्यविभूतिरप्यनिष्टा ॥ ९५  
 अपि कीटः पतंगो वा भवेयं शंकराज्ञया ।  
 न तु शक त्वया दत्तं त्रैलोक्यमपि कामये ॥ ९६  
 यावच्छशाङ्कशकलामलबद्धमौलि-  
 र्न प्रीयते पशुपतिर्भगवान्ममेशः ।

तावज्जरामरणजन्मशताभिघातै-

र्दुःखानि देहविहितानि समुद्रहामि ॥ ९७

दिवसकरशशाङ्कवह्निदीप्तं

त्रिभुवनसारमपारमाद्यमेकम् ।

अजरममरमप्रसाद्य रुद्रं

जगति पुमानिह को लभेत शान्तिम् ॥ ९८

शक्र उवाच ।

कः पुनस्तव हेतुर्वै ईशे कारणकारणे ।

येन देवादृतेऽन्यस्मात्प्रसादं नामिकाङ्क्षसि ॥ ९९

उपमन्युरुवाच ।

हेतुभिर्वा किमन्यैस्ते ईशः कारणकारणम् ।

न शुश्रुम यदन्यस्य लिङ्गमभ्यर्च्यते सुरैः ॥ १००

कस्यान्यस्य सुरैः सर्वैर्लिङ्गं मुक्त्वा महेश्वरम् ।

अर्च्यतेऽर्चितपूर्वं वा ब्रूहि यद्यस्ति ते श्रुतिः ॥ १०१

यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वं चापि सह दैवतैः ।

अर्च्यध्वं सदा लिङ्गं तस्माच्छ्रेष्ठतमो हि सः ॥ १०२

तस्माद्वरमहं काङ्क्षे निधनं वापि कौशिक ।

गच्छ वा तिष्ठ वा शक्र यथेष्टं बलसूदन ॥ १०३

काममेष वरो मेऽस्तु शापो वापि महेश्वरात् ।

न चान्यां देवतां काङ्क्षे सर्वकामफलान्यपि ॥ १०४

एवमुक्त्वा तु देवेन्द्रं दुःखादाकुलितेन्द्रियः ।

न प्रसीदति मे रुद्रः किमेतदिति चिन्तयन् ।

अथापश्यं क्षणेनैव तमेवैरावतं पुनः ॥ १०५

हंसकुन्देन्दुसदृशं मृणालकुमुदप्रभम् ।

वृषरूपधरं साक्षात्क्षीरोदमिव सागरम् ॥ १०६

कृष्णपुच्छं महाकायं मधुपिङ्गललोचनम् ।

जाम्बूनदेन दाग्रा च सर्वतः समलंकृतम् ॥ १०७

रक्ताक्षं सुमहानासं सुकर्णं सुकटीतटम् ।

सुपाश्र्वं विपुलस्कन्धं सुरूपं चारुदर्शनम् ॥ १०८

ककुदं तस्य चाभाति स्कन्धमापूर्य विष्ठितम् ।

तुषारगिरिकूटाभं सिताभ्रशिखरोपमम् ॥ १०९

तमास्थितश्च भगवान्देवदेवः सहोमया ।

अशोभत महादेवः पौर्णमास्यामिवोडुराट् ॥ ११०

तस्य तेजोभवो वह्निः समेधः स्तनयित्नुमान् ।

सहस्रमिव सूर्याणां सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १११

ईश्वरः सुमहातेजाः संवर्तक इवानलः ।

युगान्ते सर्वभूतानि दिधक्षुरिव चोद्यतः ॥ ११२

तेजसा तु तदा व्याप्ते दुर्निरीक्ष्ये समन्ततः ।

पुनरुद्विग्नहृदयः किमेतदिति चिन्तयम् ॥ ११३

मुहूर्तमिव तत्तेजो व्याप्य सर्वा दिशो दश ।

प्रशान्तं च क्षणेनैव देवदेवस्य मायया ॥ ११४

अथापश्यं स्थितं स्थाणुं भगवन्तं महेश्वरम् ।

सौरभेयगतं सौम्यं विधूममिव पावकम् ।

सहितं चारुसर्वाङ्गया पार्वत्या परमेश्वरम् ॥ ११५

नीलकण्ठं महात्मानमसक्तं तेजसां निधिम् ।

अष्टादशभुजं स्थाणुं सर्वाभरणभूषितम् ॥ ११६

शुक्लाम्बरधरं देवं शुक्लमाल्यानुलेपनम् ।

शुक्लध्वजमनाधृष्यं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् ॥ ११७

गायद्भिर्नृत्यमानैश्च उत्पतद्भिरितस्ततः ।

वृतं पारिषदैर्दिव्यैरात्मतुल्यपराक्रमैः ॥ ११८

बालेन्दुमुकुटं पाण्डुं शरच्चन्द्रमिवोदितम् ।

त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्द्योतं त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः ॥

अशोभत च देवस्य माला गात्रे सितप्रभे ।

जातरूपमयैः पद्मैर्ग्रथिता रत्नभूषिता ॥ १२०

मूर्तिमन्ति तथास्त्राणि सर्वतेजोमयानि च ।

मया दृष्टानि गोविन्द भवस्यामिततेजसः ॥ १२१

इन्द्रायुधसहस्राभं धनुस्तस्य महात्मनः ।

पिनाकमिति विख्यातं स च वै पन्नगो महान् ॥

सप्तशीर्षो महाकायस्तीक्ष्णदंष्ट्रो विषोल्बणः ।

ज्यावेष्ठितमहाग्रीवः स्थितः पुरुषविग्रहः ॥ १२३

शरश्च सूर्यसंकाशः कालानलसमद्युतिः ।  
 यत्तदस्त्रं महाघोरं दिव्यं पाशुपतं महत् ॥ १२४  
 अद्वितीयमनिर्देश्यं सर्वभूतभयावहम् ।  
 सस्फुलिङ्गं महाकायं विसृजन्तमिवानलम् ॥ १२५  
 एकपादं महादंष्ट्रं सहस्रशिरसोदरम् ।  
 सहस्रभुजजिह्वाक्षमुद्रिरन्तमिवानलम् ॥ १२६  
 ब्राह्मन्नाराणादैन्द्रादाग्नेयादपि वारुणात् ।  
 यद्विशिष्टं महाबाहो सर्वशस्त्रविघातनम् ॥ १२७  
 येन तन्निपुरं दग्ध्वा क्षणाद्भस्मीकृतं पुरा ।  
 शरेणैकेन गोविन्द महादेवेन लीलया ॥ १२८  
 निर्ददाह जगत्कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।  
 महेश्वरभुजोत्सृष्टं निमेषार्धान्न संशयः ॥ १२९  
 नावध्यो यस्य लोकेऽस्मिन्ब्रह्मविष्णुसुरेष्वापि ।  
 तदहं दृष्ट्वांस्तात आश्चर्याद्भुतमुत्तमम् ॥ १३०  
 गुह्यमस्त्रं परं चापि तत्तुल्याधिकमेव वा ।  
 यत्तच्छूलमिति ख्यातं सर्वलोकेषु शूलिनः ॥ १३१  
 दारयेद्यन्महीं कृत्स्नां शोषयेद्वा महोदधिम् ।  
 संहरेद्वा जगत्कृत्स्नं विसृष्टं शूलपाणिना ॥ १३२  
 यौवनाश्रयो हतो येन मांधाता सद्यलः पुरा ।  
 चक्रवर्ती महातेजास्त्रिलोकविजयी नृपः ॥ १३३  
 महाबलो महावीर्यः शक्रतुल्यपराक्रमः ।  
 करस्थेनैव गोविन्द लवणस्येह रक्षसः ॥ १३४  
 तच्छूलमतितीक्ष्णाग्रं सुभीमं लोमहर्षणम् ।  
 त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा तर्जमानमिव स्थितम् ॥  
 विधूमं सार्चिषं कृष्णं कालसूर्यमिवोदितम् ।  
 सर्पहस्तमनिर्देश्यं पाशहस्तमिवान्तकम् ।  
 दृष्टवानस्मि गोविन्द तदस्त्रं रुद्रसंनिधौ ॥ १३६  
 परशुस्तीक्ष्णधारश्च दत्तो रामस्य यः पुरा ।  
 महादेवेन तुष्टेन क्षत्रियाणां क्षयंकरः ।  
 कार्तवीर्यो हतो येन चक्रवर्ती महामृधे ॥ १३७

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी येन निःक्षत्रिया कृता ।  
 जामदग्नयेन गोविन्द रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ १३८  
 दीप्तधारः सुरौद्रास्यः सर्पकण्ठाग्रवेष्टितः ।  
 अभच्छूलिनोऽभ्याशे दीप्तवह्निशिखोपमः ॥ १३९  
 असंख्येयानि चास्त्राणि तस्य दिव्यानि धीमतः ।  
 प्राधान्यतो मयैतानि कीर्तितानि तवानघ ॥ १४०  
 सव्यदेशे तु देवस्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।  
 दिव्यं विमानमास्थाय हंसयुक्तं मनोजवम् ॥ १४१  
 वामपार्श्वमतश्चैव तथा नारायणः स्थितः ।  
 वैनतेयं समास्थाय शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १४२  
 स्कन्दो मयूरमास्थाय स्थितो देव्याः समीपतः ।  
 शक्तिं कण्ठे समादाय द्वितीय इव पावकः ॥ १४३  
 पुरस्ताच्चैव देवस्य नन्दि पश्याम्यवस्थितम् ।  
 शूलं विष्टभ्य तिष्ठन्तं द्वितीयमिव शंकरम् ॥ १४४  
 स्वायंभुवाद्या मनवो भृगवाद्या ऋषयस्तथा ।  
 शक्राद्या देवताश्चैव सर्व एव समभ्ययुः ॥ १४५  
 तेऽभिवाद्य महात्मानं परिवार्य समन्ततः ।  
 अस्तुवन्विविधैः स्तोत्रैर्महादेवं सुरास्तदा ॥ १४६  
 ब्रह्मा भवं तदा स्तुवन्वन्तरमुदीरयन् ।  
 ज्येष्ठसाम्ना च देवेशं जगौ नारायणस्तदा ।  
 गृणञ्शक्रः परं ब्रह्म शतरुद्रीयमुत्तमम् ॥ १४७  
 ब्रह्मा नारायणश्चैव देवराजश्च कौशिकः ।  
 अशोभन्त महात्मानस्त्रयस्त्रय इवाम्रयः ॥ १४८  
 तेषां मध्यगतो देवो रराज भगवाञ्छिवः ।  
 शरद्वनविनिर्मुक्तः परिविष्ट इवांशुमान् ।  
 ततोऽहमस्तुवं देवं स्तवनेनानेन सुव्रतम् ॥ १४९  
 नमो देवाधिदेवाय महादेवाय वै नमः ।  
 शक्राय शक्ररूपाय शक्रवेषधराय च ॥ १५०  
 नमस्ते वज्रहस्तार्य पिङ्गलायारुणाय च ।  
 पिनाकपाणये नित्यं खड्गशूलधराय च ॥ १५१



नमस्ते कृष्णवासाय कृष्णकुञ्चितमूर्धजे ।  
 कृष्णाजिनोत्तरीयाय कृष्णाष्टमिरताय च ॥ १५२  
 शुक्लवर्णाय शुक्लाय शुक्लाम्बरधराय च ।  
 शुक्लभस्मावलित्राय शुक्लकर्मरताय च ॥ १५३  
 त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः ।  
 आत्मा च सर्वभूतानां सांख्ये पुरुष उच्यसे ॥ १५४  
 ऋषभस्त्वं पवित्राणां योगिनां निष्कलः शिवः ।  
 आश्रमाणां गृहस्थस्त्वमीश्वराणां महेश्वरः ।  
 कुबेरः सर्वयक्षाणां ऋतूनां विष्णुरुच्यसे ॥ १५५  
 पर्वतानां महामेरुर्नक्षत्राणां च चन्द्रमाः ।  
 वसिष्ठस्त्वमृषीणां च ब्रह्माणां सूर्य उच्यसे ॥ १५६  
 आरण्यानां पशूनां च सिंहस्त्वं परमेश्वरः ।  
 ग्राम्याणां गोवृषश्चासि भगवाँल्लोकपूजितः ॥ १५७  
 आदित्यानां भवान्विष्णुर्वसूनां चैव पावकः ।  
 पक्षिणां वैनतेयश्च अनन्तो भुजगेषु च ॥ १५८  
 सामवेदश्च वेदानां यजुषां शतरुद्रियम् ।  
 सनत्कुमारो योगीनां सांख्यानां कपिलो ह्यसि ॥  
 शक्रोऽसि मरुतां देव पितॄणां धर्मराडसि ।  
 ब्रह्मलोकश्च लोकानां गतीनां मोक्ष उच्यसे ॥ १६०  
 क्षीरोदः सागराणां च शैलानां हिमवान्गिरिः ।  
 वर्णानां ब्राह्मणश्चासि विप्राणां दीक्षितो द्विजः ।  
 आदिस्त्वमसि लोकानां संहर्ता काल एव च ॥  
 यच्चान्यदपि लोकेषु सत्त्वं तेजोधिकं स्मृतम् ।  
 तत्सर्वं भगवानेव इति मे निश्चिता मतिः ॥ १६२  
 नमस्ते भगवन्देव नमस्ते भक्तवत्सल ।  
 योगेश्वर नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वसंभव ॥ १६३  
 प्रसीद मम भक्तस्य दीनस्य कृपणस्य च ।  
 धनैश्वर्येण युक्तस्य गतिर्भव सनातन ॥ १६४  
 यं चापराधं कृतवानज्ञानात्परमेश्वर ।  
 मद्भक्त इति देवेश तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ १६५

मोहितश्चास्मि देवेश तुभ्यं रूपविपर्ययात् ।  
 तेन नार्घ्यं मया दत्तं पाद्यं चापि सुरेश्वर ॥ १६६  
 एवं स्तुत्वाहमीशानं पाद्यमर्घ्यं च भक्तितः ।  
 कृताञ्जलिपुटो भूत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयम् ॥ १६७  
 ततः शीताम्बुसंयुक्ता दिव्यगन्धसमन्विता ।  
 पुष्पवृष्टिः शुभा तात पपात मम मूर्धनि ॥ १६८  
 दुन्दुभिश्च ततो दिव्यस्ताडितो देवकिंकरैः ।  
 ववौ च मारुतः पुण्यः शुचिगन्धः सुखावहः ॥  
 ततः प्रीतो महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः ।  
 अब्रवीन्निदशांस्तत्र हर्षयन्निव मां तदा ॥ १७०  
 पश्यध्वं त्रिदशाः सर्वे उपमन्योर्महात्मनः ।  
 मयि भक्तिं परां दिव्यामेकभावादवस्थिताम् ॥ १७१  
 एवमुक्तास्ततः कृष्ण सुरास्ते शूलपाणिना ।  
 ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे नमस्कृत्वा वृषध्वजम् ॥ १७२  
 भगवन्देवदेवेश लोकनाथ जगत्पते ।  
 लभतां सर्वकामेभ्यः फलं त्वत्तो द्विजोत्तमः ॥ १७३  
 एवमुक्तस्ततः शर्वः सुरैर्ब्रह्मादिभिस्तथा ।  
 आह मां भगवानीशः प्रहसन्निव शंकरः ॥ १७४  
 वत्सोपमन्यो प्रीतोऽस्मि पश्य मां मुनिपुंगव ।  
 दृढभक्तोऽसि विप्रर्षे मया जिज्ञासितो ह्यसि ॥ १७५  
 अनया चैव भक्त्या ते अत्यर्थं प्रीतिमानहम् ।  
 तस्मात्सर्वान्ददाम्यद्य कामांस्तव यथेप्सितान् ॥  
 एवमुक्तस्य चैवात्र महादेवेन मे विभो ।  
 हर्षाद्भ्रूण्यवर्तन्त लोमहर्षश्च जायते ॥ १७७  
 अश्रुवं च तदा देवं हर्षगद्गदया गिरा ।  
 जानुभ्यामवर्तिं गत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ १७८  
 अद्य जातो ह्यहं देव अद्य मे सफलं तपः ।  
 यन्मे साक्षान्महादेवः प्रसन्नस्तिष्ठतेऽग्रतः ॥ १७९  
 यं न पश्यन्ति चाराध्य देवा ह्यमितविक्रमम् ।  
 तमहं दृष्टवान्देवं कोऽन्यो धन्यतरो मया ॥ १८०

एवं ध्यायन्ति विद्वांसः परं तत्त्वं सनातनम् ।  
 षड्विंशकमिति ख्यातं यत्परात्परमक्षरम् ॥ १८१  
 स एष भगवान्देवः सर्वतत्त्वादिरव्ययः ।  
 सर्वतत्त्वविधानज्ञः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ १८२  
 योऽसृजदक्षिणादङ्गाद्ब्रह्माणं लोकसंभवम् ।  
 वामपार्श्वोत्तिथा विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः ।  
 युगान्ते चैव संप्राप्ते रुद्रमङ्गात्सृजत्प्रभुः ॥ १८३  
 स रुद्रः संहरन्कृत्वा जगत्स्थावरजङ्गमम् ।  
 कालो भूत्वः महातेजाः संवर्तक इवानलः ॥ १८४  
 एष देवो महादेवो जगत्सृष्ट्वा चराचरम् ।  
 कल्पान्ते चैव सर्वेषां स्मृतिमाक्षिप्य तिष्ठति ॥ १८५  
 सर्वगः सर्वभूतात्मा सर्वभूतभवोद्भवः ।  
 आस्ते सर्वगतो नित्यमदृश्यः सर्वदैवतैः ॥ १८६  
 यदि देवो वरं मह्यं यदि तुष्टश्च मे प्रभुः ।  
 भक्तिर्भवतु मे नित्यं शाश्वती त्वयि शंकर ॥ १८७  
 अतीतानागतं चैव वर्तमानं च यद्विभो ।  
 जानीयामिति मे बुद्धिस्त्वत्प्रसादात्सुरोत्तम ॥ १८८  
 क्षीरोदनं च भुञ्जीयामक्षयं सह बान्धवैः ।  
 आश्रमे च सदा मह्यं सांनिध्यं परमस्तु ते ॥ १८९  
 एवमुक्तः स मां प्राह भगवाँल्लोकपूजितः ।  
 महेश्वरो महातेजाश्चराचरगुरुः प्रभुः ॥ १९०  
 अजरश्चामरश्चैव भव दुःखविर्जितः ।  
 शीलवान्गुणसंपन्नः सर्वज्ञः प्रियदर्शनः ॥ १९१  
 अक्षयं यौवनं तेऽस्तु तेजश्चैवानलोपमम् ।  
 क्षीरोदः सागरश्चैव यत्र यत्रेच्छसे मुने ॥ १९२  
 तत्र ते भविता कामं सांनिध्यं पयसो निधेः ।  
 क्षीरोदनं च भुङ्क्ष्व त्वममृतेन समन्वितम् ॥ १९३  
 बन्धुभिः सहितः कल्पं ततो मामुपयास्यसि ।  
 सांनिध्यमाश्रमे नित्यं करिष्यामि द्विजोत्तम ॥ १९४  
 तिष्ठ वत्स यथाकामं नोत्कण्ठां कर्तुमर्हसि ।

स्मृतः स्मृतश्च ते विप्र सदा दास्यामि दर्शनम् ॥  
 एवमुक्त्वा स भगवान्सूर्यकोटिसमप्रभः ।  
 ममेशानो वरं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ १९६  
 एवं दृष्टो मया कृष्ण देवदेवः समाधिना ।  
 तदवाप्तं च मे सर्वं यदुक्तं तेन धीमता ॥ १९७  
 प्रत्यक्षं चैव ते कृष्ण पश्य सिद्धान्त्यवस्थितान् ।  
 ऋषीन्विद्याधरान्यक्षान्गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ १९८  
 पश्य वृक्षाग्न्यनोरम्यान्सदा पुष्पफलान्वितान् ।  
 सर्वर्तुकुसुमैर्युक्तान्निर्गन्धपत्रागुशाखिनः ।  
 सर्वमेतन्महाबाहो दिव्यभावसमन्वितम् ॥ १९९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

१५

उपमन्युरुवाच ।

एतान्सहस्रशश्चान्यान्समनुध्यातवान्हरः ।  
 कस्मात्प्रसादं भगवान्न कुर्यात्तव माधव ॥ १  
 त्वादृशेन हि देवानां श्लाघनीयः समागमः ।  
 ब्रह्मण्येनानृशंसेन श्रद्धधानेन चाप्युत ।  
 जप्यं च ते प्रदास्यामि येन द्रक्ष्यसि शंकरम् ॥ २

कृष्ण उवाच ।

अब्रुवं तमहं ब्रह्मस्थत्प्रसादान्महामुने ।  
 द्रक्ष्ये दितिजसंगानां मर्दनं त्रिदशेश्वरम् ॥ ३  
 दिनेऽष्टमे च विप्रेण दीक्षितोऽहं यथाविधि ।  
 दण्डी मुण्डी कुशी चीरी घृताक्तो मेखली तथा ॥  
 मासमेकं फलाहारो द्वितीयं सलिलाशनः ।  
 तृतीयं च चतुर्थं च पञ्चमं चानिलाशनः ॥ ५  
 एकपादेन तिष्ठंश्च ऊर्ध्वबाहुरतन्द्रितः ।  
 तेजः सूर्यसहस्रस्य अपश्यं दिवि भारत ॥ ६  
 तस्य मध्यगतं चापि तेजसः पाण्डुनन्दन ।  
 इन्द्रायुधपिनद्धाङ्गं विद्युन्मालागवाक्षकम् ।

नीलशैलचयप्रख्यं बलाकाभूपितं घनम् ॥ ७  
 तस्मास्थितश्च भगवान्देव्या सह महाद्युतिः ।  
 तपसा तेजसा कान्त्या दीप्तया सह भार्यया ॥ ८  
 रराज भगवांस्तत्र देव्या सह महेश्वरः ।  
 सोमेन सहितः सूर्यो यथा मेघस्थितस्तथा ॥ ९  
 संहृष्टरोमा कौन्तेय विस्मयोत्फुल्लोचनः ।  
 अपश्यं देवसंघानां गतिमार्तिहरं हरम् ॥ १०  
 किरीटिनं गदिनं शूलपाणिं  
 व्याघ्राजिनं जटिलं दण्डपाणिम् ।  
 पिनाकिनं वज्रिणं तीक्ष्णदंष्ट्रं  
 शुभाङ्गदं व्यालयज्ञोपवीतम् ॥ ११  
 दिव्यां मालामुरसानेकवर्णां  
 समुद्रहन्तं गुरुफडेशाबलम्बाम् ।  
 चन्द्रं यथा परिविष्टं ससंध्यं  
 वर्षात्यये तद्वदपश्यमेनम् ॥ १२  
 प्रमथानां गणेश्वैव समन्तात्परिवारितम् ।  
 शरदीव सुदुष्प्रेक्ष्यं परिविष्टं दिवाकरम् ॥ १३  
 एकादश तथा चैनं रुद्राणां वृषवाहनम् ।  
 अस्तुवन्नयतात्मानः कर्मभिः शुभकर्मिणम् ॥ १४  
 आदित्या वसवः साध्या विश्वेदेवास्तथाश्विनौ ।  
 विश्वाभिः स्तुतिभिर्देवं विश्वेदेवं समस्तुवन् ॥ १५  
 शतक्रतुश्च भगवान्विष्णुश्चादितिनन्दनौ ।  
 ब्रह्मा रथन्तरं साम ईरयन्ति भवान्तिके ॥ १६  
 योगीश्वराः सुग्रह्वो योगदं पितरं गुरुम् ।  
 ब्रह्मर्षयश्च ससुतास्तथा देवर्षयश्च वै ॥ १७  
 पृथिवी चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।  
 मासार्धमासा ऋतवो राज्यः संवत्सराः क्षणाः ॥ १८  
 सुहूर्ताश्च निमेषाश्च तथैव युगपर्ययाः ।  
 दिव्या राजन्नमस्यन्ति विद्याः सर्वा दिशस्तथा ॥  
 सनत्कुमारो वेदाश्च इतिहासास्तथैव च ।

मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ २०  
 मनवः सप्तसोमश्च अथर्वा सबृहस्पतिः ।  
 भृगुर्दक्षः कश्यपश्च वसिष्ठः काश्य एव च ॥ २१  
 छन्दांसि दीक्षा यज्ञाश्च दक्षिणाः पावको हविः ।  
 यज्ञोपगानि द्रव्याणि मूर्तिमन्ति युधिष्ठिर ॥ २२  
 प्रजानां पतयः सर्वे सरितः पन्नगा नगाः ।  
 देवानां मातरः सर्वा देवपत्न्यः सकन्यकाः ॥ २३  
 सहस्राणि मुनीनां च अयुतान्यर्बुदानि च ।  
 नमस्यन्ति प्रभुं शान्तं पर्वताः सागरा दिशः ॥ २४  
 गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतवादित्रकोविदाः ।  
 दिव्यतानेन गायन्तः स्तुवन्ति भवमद्भुतम् ।  
 विद्याधरा दानवाश्च गुह्यका राक्षसास्तथा ॥ २५  
 सर्वाणि चैव भूतानि स्थावराणि चराणि च ।  
 नमस्यन्ति महाराज वाङ्मनःकर्मभिर्विभुम् ।  
 पुरस्ताद्विष्ठितः शर्वो ममासीन्निदशेश्वरः ॥ २६  
 पुरस्ताद्विष्ठितं दृष्ट्वा ममेशानं च भारत ।  
 सप्रजापतिश्चक्रान्तं जगन्मामभ्युदैक्षत ॥ २७  
 ईक्षितुं च महादेवं न मे शक्तिरभूत्तदा ।  
 ततो मामब्रवीद्देवः पश्य कृष्ण वदस्व च ॥ २८  
 शिरसा वन्दिते देवे देवी प्रीता उमाभवत् ।  
 ततोऽहमस्तुवं स्थापुं स्तुतं ब्रह्मादिभिः सुरैः ॥ २९  
 नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने  
 ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति ।  
 तपश्च सत्त्व च रजस्तमश्च  
 त्वामेव सत्यं च वदन्ति सन्तः ॥ ३०  
 त्वं वै ब्रह्मा च रुद्रश्च वरुणोऽग्निर्मनुर्भवः ।  
 धाता त्वष्टा विधाता च त्वं प्रभुः सर्वतोमुखः ॥ ३१  
 त्वत्तो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।  
 त्वमादिः सर्वभूतानां संहारश्च त्वमेव हि ॥ ३२  
 ये चेन्द्रियार्थाश्च मनश्च कृत्स्नं

ये वायवः सप्त तथैव चाग्निः ।  
 ये वा दिविस्था देवताश्चापि पुंसां  
 तस्मात्परं त्वामृपयो वदन्ति ॥ ३३  
 वेदा यज्ञाश्च सोमश्च दक्षिणा पावको हविः ।  
 यज्ञोपगं च यत्किञ्चिद्भगवांस्तदसंशयम् ॥ ३४  
 इष्टं दत्तमधीतं च व्रतानि नियमाश्च ये ।  
 ह्रीः कीर्तिः श्रीर्द्युतिस्तुष्टिः सिद्धिश्चैव त्वदर्पणा ॥  
 कामः क्रोधो भयं लोभो मदः स्तम्भोऽथ मत्सरः ।  
 आधयो व्याधयश्चैव भगवंस्तनयास्तव ॥ ३६  
 कृतिर्विकारः प्रलयः प्रधानं प्रभवोऽव्ययः ।  
 मनसः परमा योनिः स्वभावश्चापि शाश्वतः ।  
 अव्यक्तः पावन विभो सहस्रांशो हिरण्मयः ॥ ३७  
 आदिर्गुणानां सर्वेषां भवान्वै जीवनाश्रयः ।  
 महानात्मा मतिर्ब्रह्मा विश्वः शंभुः स्वयंभुवः ॥ ३८  
 बुद्धिः प्रज्ञोपलब्धिश्च संवित्ख्यातिर्धृतिः स्मृतिः ।  
 पर्यायवाचकैः शब्दैर्महानात्मा विभाव्यसे ॥ ३९  
 त्वां बुद्ध्या ब्राह्मणो विद्वान्न प्रमोहं निगच्छति ।  
 हृदयं सर्वभूतानां ज्ञेश्चस्त्वमृषिष्ठुतः ॥ ४०  
 सर्वतःपाणिपादस्त्वं सर्वतोक्षिशिरोमुखः ।  
 सर्वतःश्रुतिमाल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि ॥ ४१  
 फलं त्वमसि तिग्मांशो निमेषादिषु कर्मसु ।  
 त्वं वै प्रभार्चिः पुरुषः सर्वस्य हृदि सस्थितः ।  
 अणिमा लघिमा प्राप्तिरीशानो ज्योतिरव्ययः ॥ ४२  
 त्वयि बुद्धिर्मतिर्लोकाः प्रपन्नाः संश्रिताश्च ये ।  
 ध्यानिनो नित्ययोगाश्च सत्यसंधा जितेन्द्रियाः ॥ ४३  
 यस्त्वां भ्रुवं वेदयते गुहाशयं  
 प्रभुं पुराणं पुरुषं विश्वरूपम् ।  
 हिरण्मयं बुद्धिमतां परां गतिं  
 स बुद्धिमान्बुद्धिमतीत्य तिष्ठति ॥ ४४  
 विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गं त्वां च मूर्तितः ।

प्रधानविधियोगस्थस्त्वामेव विशते बुधः ॥ ४५  
 एवमुक्ते मया पार्थ भवे चार्तिविनाशने ।  
 चराचरं जगत्सर्वं सिहनादमथाकरोत् ॥ ४६  
 सविप्रसंधाश्च सुरासुराश्च  
 नागाः पिशाचाः पितरो वयांसि ।  
 रक्षोगणा भूतगणाश्च सर्वे  
 महर्षयश्चैव तथा प्रणेमुः ॥ ४७  
 मम मूर्ध्नि च दिव्यानां कुसुमानां सुगन्धिनाम् ।  
 राशयो निपतन्ति स्म वायुश्च सुसुखो ववौ ॥ ४८  
 निरीक्ष्य भगवान्देवीमुमां मां च जगद्धितः ।  
 शतक्रतुं चाभिवीक्ष्य स्वयं मामाह शंकरः ॥ ४९  
 विद्मः कृष्ण परां भक्तिमस्मासु तव शत्रुहन् ।  
 क्रियतामात्मनः श्रेयः प्रीतिर्हि परमा त्वयि ॥ ५०  
 वृणीष्वष्टौ वरान्कृष्ण दातास्मि तव सत्तम ।  
 ब्रूहि यादवशार्दूल यानिच्छसि सुदुर्लभान् ॥ ५१  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

१६

कृष्ण उवाच ।

मूर्ध्ना निपत्य नियतस्तेजःसंनिचये ततः ।  
 परमं हर्षमागम्य भगवन्तमथाब्रुवम् ॥ १  
 धर्मे दृढत्वं बुधिं शत्रुघातं  
 यशस्तथाग्र्यं परमं बलं च ।  
 योगप्रियत्वं तव संनिकर्षं  
 वृणे सुतानां च शतं शतानि ॥ २  
 एवमस्त्विति तद्वाक्यं मयोक्तः प्राह शंकरः ॥ ३  
 ततो मां जगतो माता धरणी सर्वपावनी ।  
 उवाचोमा प्रणिहिता शर्वाणी तपसां निधिः ॥ ४  
 दत्तो भगवता पुत्रः साम्बो नाम तवानघ ।  
 मत्तोऽप्यष्टौ वरानिष्टान्गृहाण त्वं ददामि ते ।

प्रणम्य शिरसा सा च मयोक्ता पाण्डुनन्दन ॥ ५

द्विजेष्वकोपं पितृतः प्रसादं

शतं सुतानामुपभोगं परं च ।

कुले प्रीतिं मातृतश्च प्रसादं

शमप्राप्तिं प्रवृत्ते चापि दाक्ष्यम् ॥ ६

देव्युवाच ।

एवं भविष्यत्यमरप्रभाव

नाहं मृषा जातु वदे कदाचित् ।

भार्यासहस्राणि च षोडशैव

तासु प्रियत्वं च तथाक्षयत्वम् ॥ ७

प्रीतिं चाग्र्यां बान्धवानां सकाशा-

द्दामि ते वपुषः काम्यतां च ।

भोक्ष्यन्ते वै सप्ततिर्वै शतानि

गृहे तुभ्यमतिथीनां च नित्यम् ॥ ८

वासुदेव उवाच ।

एवं दत्त्वा वरान्देवो मम देवी च भारत ।

अन्तर्हितः क्षणे तस्मिन्सगणो भीमपूर्वज ॥ ९

एतदत्यद्भुतं सर्वं ब्राह्मणायातितेजसे ।

उपमन्यवे मया कृत्स्नमाख्यातं कौरवोत्तम ॥ १०

नमस्कृत्वा तु स प्राह देवदेवाय सुव्रत ।

नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे ।

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः ॥ ११

ऋषिरासीत्कृते तात तण्डिरित्येव विश्रुतः ।

दश वर्षसहस्राणि तेन देवः समाधिना ।

आराधितोऽभूद्भक्तेन तस्योदकं निशामय ॥ १२

स दृष्ट्वान्महादेवमस्तौषीषं स्तवैर्विभुम् ।

पवित्राणां पवित्रस्त्वं गतिर्गतिमतां वर ।

अत्युग्रं तेजसां तेजस्तपसां परमं तपः ॥ १३

विश्वावसुहिरण्याक्षपुरुहूतनमस्कृत ।

भूरिकल्याणद् विभो पुरुसस्य नमोऽस्तु ते ॥ १४

जातीमरणभीरूणां यतीनां यततां विभो ।

निर्वाणद् सहस्रांशो नमस्तेऽस्तु सुखाश्रय ॥ १५

ब्रह्मा शतक्रतुर्विष्णुर्विश्वेदेवा महर्षयः ।

न विदुस्त्वां तु तत्त्वेन कुतो वेत्स्यामहे वयम् ॥ १६

त्वत्तः प्रवर्तते कालस्त्वयि कालश्च लीयते ।

कालाख्यः पुरुषाख्यश्च ब्रह्माख्यश्च त्वमेव हि ॥ १७

तनवस्ते स्मृतास्तिस्रः पुराणज्ञैः सुरर्षिभिः ।

अधिपौरुषमध्यात्ममधिभूताधिदैवतम् ।

अधिलोक्याधिविज्ञानमधियज्ञस्त्वमेव हि ॥ १८

त्वां विदित्वात्मदेहस्थं दुर्विदं दैवतैरपि ।

विद्वांसो यान्ति निर्मुक्ताः परं भावमनामयम् ॥ १९

अनिच्छतस्तव विभो जन्ममृत्युरनेकतः ।

द्वारं त्वं स्वर्गमोक्षाणामाक्षेप्ता त्वं ददासि च ॥ २०

त्वमेव मोक्षः स्वर्गश्च कामः क्रोधस्त्वमेव हि ।

सत्त्वं रजस्तमश्चैव अधश्चोर्ध्वं त्वमेव हि ॥ २१

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्देन्द्रौ सविता यमः ।

वरुणेन्द्र मनुर्धाता विधाता त्वं धनेश्वरः ॥ २२

भूर्वायुर्ज्योतिरापश्च वाग्वुद्धिस्त्वं मतिर्मनः ।

कर्म सत्यानृते चोभे त्वमेवास्ति च नास्ति च ॥ २३

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च तत्परं प्रकृतेर्भुवम् ।

विश्वाविश्वपरो भावश्चिन्त्याचिन्त्यस्त्वमेव हि ॥ २४

यच्चैतत्परमं ब्रह्म यच्च तत्परमं पदम् ।

या गतिः सांख्ययोगानां स भवान्नात्र संशयः ॥ २५

नूनमद्य कृतार्थाः स्म नूनं प्राप्ताः सतां गतिम् ।

यां गतिं प्राप्नुवन्तीह ज्ञाननिर्मलबुद्धयः ॥ २६

अहो मूढाः स्म सुचिरमिमं कालमचेतसः ।

यन्न विद्वाः परं देवं शाश्वतं यं विदुर्बुधाः ॥ २७

सोऽयमासादितः साक्षाद्बुद्धिर्जन्मभिर्मया ।

भक्तानुग्रहकृदेवो यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥ २८

देवासुरमनुष्याणां यच्च गुह्यं सनातनम् ।

गुहायां निहितं ब्रह्म दुर्विज्ञेयं गुरुरपि ॥ २९  
 स एष भगवान्देवः सर्वकृत्सर्वतोमुखः ।  
 सर्वात्मा सर्वदर्शी च सर्वगः सर्ववेदिता ॥ ३०  
 प्राणकृत्प्राणभृत्प्राणी प्राणदः प्राणिनां गतिः ।  
 देहकृद्देहभृद्देही देहभृद्देहिनां गतिः ॥ ३१  
 अध्यात्मगतनिष्ठानां ध्यानिनामात्मवेदिनाम् ।  
 अपुनर्मरिक्कामानां या गतिः सोऽयसीश्वरः ॥ ३२  
 अयं च सर्वभूतानां शुभाशुभगतिप्रदः ।  
 अयं च जन्ममरणे विदध्यात्सर्वजन्तुषु ॥ ३३  
 अयं च सिद्धिकामानामृषीणां सिद्धिदः प्रभुः  
 अयं च मोक्षकामानां द्विजानां मोक्षदः प्रभुः ॥  
 भूराद्यान्सर्वभुवनानुत्पाद्य सद्विबौकसः ।  
 विभर्ति देवस्तनुभिरष्टाभिश्च ददाति च ॥ ३५  
 अतः प्रवर्तते सर्वमस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।  
 अस्मिंश्च प्रलयं याति अयमेकः सनातनः ॥ ३६  
 अयं स सत्यकामानां सत्यलोकः परः सताम् ।  
 अपवर्गश्च मुक्तानां कैवल्यं चात्मवादिनाम् ॥ ३७  
 अयं ब्रह्मादिभिः सिद्धैर्गुहायां गोपितः प्रभुः ।  
 देवासुरमनुष्याणां न प्रकाशो भवेदिति ॥ ३८  
 तं त्वां देवासुरनरास्तत्त्वेन न विदुर्भवम् ।  
 मोहिताः खल्वनेनैव हृच्छयेन प्रवेशिताः ॥ ३९  
 ये चैनं संप्रपद्यन्ते भक्तियोगेन भारत ।  
 तेषामेवात्मनात्मानं दर्शयत्येष हृच्छयः ॥ ४०  
 यं ज्ञात्वा न पुनर्जन्म मरणं चापि विद्यते ।  
 यं विदित्वा परं वेद्यं वेदितव्यं न विद्यते ॥ ४१  
 यं लब्ध्वा परमं लाभं मन्यते नाधिकं पुनः ।  
 प्राणसूक्ष्मां परां प्राप्तिमागच्छत्यक्षयावहाम् ॥ ४२  
 यं सांख्या गुणतत्त्वज्ञाः सांख्यशास्त्रविशारदाः ।  
 सूक्ष्मज्ञानरताः पूर्वं ज्ञात्वा मुच्यन्ति बन्धनैः ॥ ४३  
 यं च वेदविदो वेद्यं वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम् ।

प्राणायामपरा नित्यं यं विशन्ति जपन्ति च ॥ ४४  
 अयं स देवयानानामादित्यो द्वारमुच्यते ।  
 अयं च पितृयानानां चन्द्रमा द्वारमुच्यते ॥ ४५  
 एष कालगतिश्चित्रा संवत्सरयुगादिषु ।  
 भावाभावौ तदात्वे च अयने दक्षिणोत्तरे ॥ ४६  
 एवं प्रजापतिः पूर्वमाराध्य बहुभिः स्तवैः ।  
 वरयामास पुत्रत्वे नीललोहितसंज्ञितम् ॥ ४७  
 ऋग्भिर्भ्यमनुशंसन्ति तन्ने कर्मणि बहुचः ।  
 यजुर्भिर्भ्यं त्रिधा वेद्यं जुह्वत्यध्वर्यवोऽध्वरे ॥ ४८  
 सामभिर्भ्यं च गायन्ति सामगाः शुद्धबुद्धयः ।  
 यज्ञस्य परमा योनिः पतिश्चायं परः स्मृतः ॥ ४९  
 रात्र्यहःश्रोत्रनयनः पक्षमासशिरोभुजः ।  
 ऋतुवीर्यस्तपोधैर्यो ह्यब्दगुह्यो रूपादवान् ॥ ५०  
 मृत्युर्यमो हुताशश्च कालः संहारवेगवान् ।  
 कालस्य परमा योनिः कालश्चायं सनातनः ॥ ५१  
 चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सप्रहौ सह वायुना ।  
 ध्रुवः सप्तर्षयश्चैव भुवनाः सप्त एव च ॥ ५२  
 प्रधानं महदव्यक्तं विशेषान्तं सवैकृतम् ।  
 ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्तं भूतादि सदसच्च यत् ॥ ५३  
 अष्टौ प्रकृतयश्चैव प्रकृतिभ्यश्च यत्परम् ।  
 अस्य देवस्य यद्भागं कृत्स्नं संपरिवर्तते ॥ ५४  
 एतत्परममानन्दं यत्तच्छाश्वतमेव च ।  
 एषा गतिर्पिरक्तानामेष भावः परः सताम् ॥ ५५  
 एतत्पदमनुद्विगमेतद्ब्रह्म सनातनम् ।  
 शास्त्रवेदाङ्गविदुषामेतद्ज्ञानं परं पदम् ॥ ५६  
 इयं सा परमा काष्ठा इयं सा परमा कला ।  
 इयं सा परमा सिद्धिरियं सा परमा गतिः ॥ ५७  
 इयं सा परमा शान्तिरियं सा निर्वृतिः परा ।  
 यं प्राप्य कृतकृत्याः स्म इत्यमन्यन्त वेधसः ॥ ५८  
 इयं तुष्टिरियं सिद्धिरियं श्रुतिरियं स्मृतिः ।

अध्यात्मगतिनिष्ठानां विदुषां प्राप्तिरव्यया ॥ ५९  
 यजतां यज्ञकामाना यज्ञैर्विपुलदक्षिणैः ।  
 या गतिर्देवतैर्दिव्या सा गतिस्त्वं सनातन ॥ ६०  
 जप्यहोमघ्नैः कृच्छ्रैर्नियमैर्देहपातनैः ।  
 तप्यतां या गतिर्देव वैराजे सा गतिर्भवान् ॥ ६१  
 कर्मन्यासकृतानां च विरक्तानां ततस्ततः ।  
 या गतिर्ब्रह्मभवने सा गतिस्त्वं सनातन ॥ ६२  
 अपुनर्मरिक्कामानां वैराग्ये वर्ततां परे ।  
 विकृतीनां लयानां च सा गतिस्त्वं सनातन ॥ ६३  
 ज्ञानविज्ञाननिष्ठानां निरुपाख्या निरञ्जना ।  
 कैवल्यया या गतिर्देव परमा सा गतिर्भवान् ॥ ६४  
 वेदशास्त्रपुराणोक्ताः पञ्चैता गतयः स्मृताः ।  
 त्वत्प्रसादाद्भि लभ्यन्ते न लभ्यन्तेऽन्यथा विभो ॥  
 इति तण्डिस्तपोयोगालुष्टावेशानमव्ययम् ।  
 जगौ च परमं ब्रह्म यत्पुरा लोककृज्जगौ ॥ ६६  
 ब्रह्मा शतक्रतुर्विष्णुर्विश्वेदेवा महर्षयः ।  
 न विदुस्त्वामिति ततस्तुष्टः प्रोवाच तं शिवः ॥ ६७  
 अक्षयश्चाव्ययश्चैव भविता दुःखवर्जितः ।  
 यशस्वी तेजसा युक्तो दिव्यज्ञानसमन्वितः ॥ ६८  
 ऋषीणामभिगम्यश्च सूत्रकर्ता सुतस्तव ।  
 मत्प्रसादाद्विजश्रेष्ठ भविष्यति न संशयः ॥ ६९  
 कं वा कामं ददाम्यद्य ब्रूहि यद्वत्स काङ्क्षसे ।  
 प्राञ्जलिः स उवाचेदं त्वयि भक्तिर्दृढास्तु मे ॥ ७०  
 एवं दत्त्वा वरं देवो वन्द्यमानः सुरर्षिभिः ।  
 स्तूयमानश्च विबुधैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७१  
 अन्तर्हिते भगवति सानुगे यादवेश्वर ।  
 ऋषिराश्रममागम्य ममैतत्प्रोक्तवानिह ॥ ७२  
 यानि च प्रथितान्यादौ तण्डिराख्यातवानमम ।  
 नामानि मानवश्रेष्ठ तानि त्वं शृणु सिद्धये ॥ ७३  
 दश नामसहस्राणि वेदेष्वहं पितामहः ।

शर्वस्य शास्त्रेषु तथा दश नामशतानि वै ॥ ७४  
 गुह्यानीमानि नामानि तण्डिर्भगवतोऽच्युत ।

देवप्रसादाद्देवेश पुरा प्राह महात्मने ॥ ७५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

१७

वासुदेव उवाच ।

ततः स प्रयतो भूत्वा मम तात युधिष्ठिर ।

प्राञ्जलिः प्राह विप्रर्षिर्नामसंहारमादितः ॥ १

उपमन्युरुवाच ।

ब्रह्मप्रोक्तैर्ऋषिप्रोक्तैर्वेदवेदाङ्गसंभवैः ।

सर्वलोकेषु विख्यातैः स्थाणुं स्तोष्यामि नामभिः ॥

महद्भिर्विहितैः सत्यैः सिद्धैः सर्वार्थसाधकैः ।

ऋषिणा तण्डिना भक्त्या कृतैर्देवकृतात्मना ॥ ३

यथोक्तैर्लोकविख्यातैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।

प्रवरं प्रथमं स्वर्ग्यं सर्वभूतहितं शुभम् ।

श्रुतैः सर्वत्र जगति ब्रह्मलोकवतारितैः ॥ ४

यत्तद्गतस्य परमं ब्रह्मप्रोक्तं सनातनम् ।

वक्ष्ये यदुत्तुलश्रेष्ठ शृणुष्ववाहितो मम ॥ ५

परत्वेन भवं देवं भक्तस्त्वं परमेश्वरम् ।

तेन ते श्रावयिष्यामि यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ॥ ६

न शक्यं विस्तरात्कृत्स्नं वक्तुं शर्वस्य केनचित् ।

युक्तेनापि विभूतीनामपि वर्षशतैरपि ॥ ७

यस्यादिर्मध्यमन्तश्च सुदैरपि न गम्यते ।

कस्तस्य शक्त्याद्वक्तुं गुणान्कात्मन्येन माधव ॥ ८

किं तु देवस्य महतः संक्षिप्तार्थपदाक्षरम् ।

शक्तितश्चरितं वक्ष्ये पमादात्स्य चैव हि ॥ ९

अप्राप्येह ततोऽनुज्ञां न शक्यः स्तोतुमीश्वरः ।

यदा तेनाभ्यनुज्ञातः स्तुवत्येव सदा भवम् ॥ १०

अनादिनिधनस्याहं सर्वयोनेर्महात्मनः ।

नाम्नां कंचित्समुद्देशं वक्ष्ये ह्यव्यक्तयोनिनः ॥ ११  
 वरदस्य वरेण्यस्य विश्वरूपस्य धीमतः ।  
 शृणु नामसमुद्देशं यदुक्तं पद्मयोनिना ॥ १२  
 दश नामसहस्राणि यान्याह प्रपितामहः ।  
 तानि निर्मथ्य मनसा दध्मो घृतमिवोद्धृतम् ॥ १३  
 गिरेः सारं यथा हेम पुष्पात्सारं यथा मधु ।  
 घृतात्सारं यथा मण्डस्तथैतत्सारमुद्धृतम् ॥ १४  
 सर्वपाप्मापहमिदं चतुर्वेदसमन्वितम् ।  
 प्रयत्नेनाधिगन्तव्यं धार्यं च प्रयतात्मना ।  
 शान्तिदं पौष्टिकं चैव रक्षोघ्नं पावनं महत् ॥ १५  
 इदं भक्ताय दातव्यं श्रद्धधानास्तिकाय च ।  
 नाश्रद्धधानरूपाय नास्तिकायाजितात्मने ॥ १६  
 यश्चाभ्यसूयते देवं भूतात्मानं पिनाकिनम् ।  
 स कृष्ण नरकं याति सह पूर्वैः सहानुगैः ॥ १७  
 इदं ध्यानमिदं योगमिदं ध्येयमनुत्तमम् ।  
 इदं जप्यमिदं ज्ञानं रहस्यमिदमुत्तमम् ।  
 इदं ज्ञात्वान्तकालेऽपि गच्छेद्वि परमं गतिम् ॥ १८  
 पवित्रं मङ्गलं पुण्यं कल्याणमिदमुत्तमम् ।  
 निगदिष्ये महाबाहो स्त्वानामुत्तमं स्तवम् ॥ १९  
 इदं ब्रह्मा पुरा कृत्वा सर्वलोकपितामहः ।  
 सर्वस्त्वानां दिव्यानां राजत्वे समकल्पयत् ॥ २०  
 तदाप्रभृति चैवायमीश्वरस्य महात्मनः ।  
 स्तवराजेति विख्यातो जगत्प्रमरपूजितः ।  
 ब्रह्मलोकादयं चैव स्तवराजोऽवतारितः ॥ २१  
 यस्मात्तण्डिः पुरा प्राह तेन तण्डिकृतोऽभवत् ।  
 स्वर्गाश्चैवात्र भूलोकं तण्डिना ह्यवतारितः ॥ २२  
 सर्वमङ्गलमङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।  
 निगदिष्ये महाबाहो स्त्वानामुत्तमं स्तवम् ॥ २३  
 ब्रह्मणामपि यद्ब्रह्म पराणामपि यत्परम् ।  
 तेजसामपि यत्तेजस्तपसामपि यत्तपः ॥ २४

शान्तीनामपि या शान्तिर्द्युतीनामपि या द्युतिः ।  
 दान्तानामपि यो दान्तो धीमतामपि या च धीः ॥  
 देवानामपि यो देवो मुनीनामपि यो मुनिः ।  
 यज्ञानामपि यो यज्ञः शिवानामपि यः शिवः ॥ २६  
 रुद्राणामपि यो रुद्रः प्रभुः प्रभवतामपि ।  
 योगिनामपि यो योगी कारणानां च कारणम् ॥ २७  
 यतो लोकाः संभवन्ति न भवन्ति यतः पुनः ।  
 सर्वभूतात्मभूतस्य हरस्यामिततेजसः ॥ २८  
 अष्टोत्तरसहस्रं तु नाम्नां शर्वस्य मे शृणु ।  
 यच्छ्रुत्वा मनुजश्रेष्ठ सर्वान्कामानवाप्स्यसि ॥ २९

\* \* \* \*

स्थिरः स्थाणुः प्रभुर्भानुः प्रवरो वरदो वरः ।  
 सर्वात्मा सर्वविख्यातः सर्वः सर्वकरो भवः ॥ ३०  
 जटी चर्मी शिखण्डी च सर्वाङ्गः सर्वभावनः ।  
 हरिश्च हरिणाक्षश्च सर्वभूतहरः प्रभुः ॥ ३१  
 प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च नियतः शाश्वतो भुवः ।  
 श्मशानचारी भगवान्खचरो गोचरोऽर्दनः ॥ ३२  
 अभिवाद्यो महाकर्मा तपस्वी भूतभावनः ।  
 एन्मत्तवेशप्रच्छन्नः सर्वलोकप्रजापतिः ॥ ३३  
 महारूपो महाकायः सर्वरूपो महायशः ।  
 महात्मा सर्वभूतश्च विरूपो वामनो मनुः ॥ ३४  
 लोकपालोऽन्तर्हितात्मा प्रसादो ह्यगर्दभिः ।  
 पवित्रश्च महान्धैव नियमो नियमाश्रयः ॥ ३५  
 सर्वकर्मा स्वयंभूश्च आदिरादिकरो निधिः ।  
 सहस्राक्षो विरूपाक्षः सोमो नक्षत्रसाधकः ॥ ३६  
 चन्द्रसूर्यगतिः केतुर्ग्रहो ग्रहपतिर्वरः ।  
 अद्रिर्ब्रह्मालयः कर्ता मृगबाणार्पणोऽनघः ॥ ३७  
 महातपा घोरतपा अदीनो दीनसाधकः ।  
 संवत्सरकरो मन्त्रः प्रमाणं परमं तपः ॥ ३८  
 योगी योज्यो महाबीजो महारेता महातपाः ।



सुवर्णरेताः सर्वज्ञः सुबीजो वृषवाहनः ॥ ३९  
 दशबाहुस्त्वनिमिषो नीलकण्ठ उमापतिः ।  
 विश्वरूपः स्वयंश्रेष्ठो बलवीरो बलो गणः ॥ ४०  
 गणकर्ता गणपतिर्दिग्वासाः काम्य एव च ।  
 पवित्रं परमं मन्त्रः सर्वभावकरो हरः ॥ ४१  
 कमण्डलुधरो धन्वी बाणहस्तः कपालवान् ।  
 अशनी शतघ्नी खड्गी पट्टिशी चायुधी महान् ॥ ४२  
 सुवहस्तः सुरुपश्च तेजस्तेजस्करो निधिः ।  
 उष्णीषी च सुवक्त्रश्च उदयो विनतस्तथा ॥ ४३  
 दीर्घश्च हरिकेशश्च सुतीर्थः कृष्ण एव च ।  
 सृगालरूपः सर्वार्थो मुण्डः कुण्डी कमण्डलुः ॥ ४४  
 अजश्च मृगरूपश्च गन्धधारी कपर्धपि ।  
 ऊर्ध्वरेता ऊर्ध्वलिङ्ग ऊर्ध्वशायी नभस्तलः ॥ ४५  
 त्रिजटश्चरवासाश्च रुद्रः सेनापतिर्विभुः ।  
 अहश्चरोऽथ नक्तं च तिग्ममन्युः सुवर्चसः ॥ ४६  
 गजहा दैत्यहा लोको लोकधाता गुणाकरः ।  
 सिंहशार्दूलरूपश्च आर्द्रचर्मम्बरावृतः ॥ ४७  
 कालयोगी महानादः सर्ववासश्चतुष्पथः ।  
 निशाचरः प्रेतचारी भूतचारी महेश्वरः ॥ ४८  
 बहुभूतो बहुधनः सर्वाधारोऽमितो गतिः ।  
 नृत्यप्रियो नित्यनर्तो नर्तकः सर्वलासकः ॥ ४९  
 घोरो महातपाः पाशो नित्यो गिरिचरो नभः ।  
 सहस्रहस्तो विजयो व्यवसायो ह्यनिन्दितः ॥ ५०  
 अमर्षणो मर्षणात्मा यज्ञहा कामनाशनः ।  
 दक्षयज्ञापहारी च सुसहो मध्यमस्तथा ॥ ५१  
 तेजोपहारी बलहा मुदिनोऽर्थो जितो वरः ।  
 गम्भीरघोषो गम्भीरो गम्भीरबलवाहनः ॥ ५२  
 न्यग्रोधरूपो न्यग्रोधो वृक्षकर्णस्थितिर्विभुः ।  
 तीक्ष्णतापश्च हर्यश्च सहायः कर्मकालवित् ॥ ५३  
 विष्णुप्रसादितो यज्ञः समुद्रो वडवामुखः ।

हुताशनसहायश्च प्रशान्तात्मा हुताशनः ॥ ५४  
 उग्रतेजा महातेजा जयो विजयकालवित् ।  
 ज्योतिषामयनं सिद्धिः संधिर्विग्रह एव च ॥ ५५  
 शिखी दण्डी जटी ज्वाली मूर्तिजो मूर्धगो बली ।  
 वैणवी पणवी ताली कालः कालकटकः ॥ ५६  
 नक्षत्रविग्रहविधिर्गुणवृद्धिर्ल्योऽगमः ।  
 प्रजापतिर्दिशाबाहुर्विभागः सर्वतोमुखः ॥ ५७  
 विमोचनः सुरगणो हिरण्यकवचोद्भवः ।  
 मेढूजो बलचारी च महाचारी स्तुतस्तथा ॥ ५८  
 सर्वतूर्यनिनादी च सर्ववाद्यपरिग्रहः ।  
 व्यालरूपो बिलावासी हेममाली तरंगवित् ॥ ५९  
 त्रिदशस्त्रिकालधृक्कर्मसर्वबन्धविमोचनः ।  
 बन्धनस्त्वसुरेन्द्राणां युधि शत्रुविनाशनः ॥ ६०  
 सांख्यप्रसादो दुर्वासाः सर्वसाधुनिषेवितः ।  
 प्रस्कन्दनो विभागश्च अतुल्यो यज्ञभागवित् ॥ ६१  
 सर्वावासः सर्वचारी दुर्वासा वासवोऽमरः ।  
 हेमो हेमकरो यज्ञः सर्वधारी धरोत्तमः ॥ ६२  
 लोहिताक्षो महाक्षश्च विजयाक्षो विशारदः ।  
 संग्रहो निग्रहः कर्ता सर्पचीरनिवासनः ॥ ६३  
 मुख्योऽमुख्यश्च देहश्च देहर्द्धिः सर्वकामदः ।  
 सर्वकालप्रसादश्च सुबलो बलरूपधृक् ॥ ६४  
 आकाशनिधिरूपश्च निपाती उरगः खगः ।  
 रौद्ररूपोऽशुरादित्यो वसुरदिमः सुवर्चसी ॥ ६५  
 वसुवेगो महावेगो मनोवेगो निशाचरः ।  
 सर्वावासी श्रियावासी उपदेशकरो हरः ॥ ६६  
 मुनिरात्मपतिर्लोके संभोज्यश्च सहस्रदः ।  
 पक्षी च पक्षिरूपी च अतिदीप्तो विशां पतिः ॥ ६७  
 उन्मादो मदनाकारो अर्थार्थकररोमशः ।  
 वामदेवश्च वामश्च प्राग्दक्षिण्यश्च वामनः ॥ ६८  
 सिद्धयोगापहारी च सिद्धः सर्वार्थसाधकः ।

भिक्षुश्च भिक्षुरूपश्च विषाणी मृदुरव्ययः ॥ ६९  
 महासेनो विशाखश्च षष्टिभागो गवां पतिः ।  
 वज्रहस्तश्च विष्कम्भी चमूस्तम्भन एव च ॥ ७०  
 ऋतुर्ऋतुकरः कालो मधुर्मधुकरोऽचलः ।  
 वानस्पत्यो वाजसेनो नित्यमाश्रमपूजितः ॥ ७१  
 ब्रह्मचारी लोकचारी सर्वचारी सुचारवित् ।  
 ईशान ईश्वरः कालो निशाचारी पिनाकधृक् ॥ ७२  
 नन्दीश्वरश्च नन्दी च नन्दनो नन्दिवर्धनः ।  
 भगस्याक्षिनिहन्ता च कालो ब्रह्मविदां वरः ॥ ७३  
 चतुर्मुखो महालिङ्गश्चारुलिङ्गस्तथैव च ।  
 लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो लोकाध्यक्षो युगावहः ॥ ७४  
 बीजाध्यक्षो बीजकर्ता अध्यात्मानुगतो बलः ।  
 इतिहासकरः कल्पो गौतमोऽथ जलेश्वरः ॥ ७५  
 दम्भो हृदम्भो वैदम्भो वश्यो वश्यकः कविः ।  
 लोककर्ता पशुपतिर्महाकर्ता महौषधिः ॥ ७६  
 अक्षरं परमं ब्रह्म बलवान्शक्र एव च ।  
 नीतिर्ह्यनीतिः शुद्धात्मा शुद्धो मान्यो मनोगतिः ॥  
 बहुप्रसादः स्वपनो दर्पणोऽथ त्वमित्रजित् ।  
 वेदकारः सूत्रकारो विद्वान्समरदर्शनः ॥ ७८  
 महामेघनिवासी च महाघोरो वशीकरः ।  
 अग्निज्वालो महाज्वालो अतिधूम्रो हुतो हविः ॥ ७९  
 वृषणः शंकरो नित्यो वर्चस्वी धूमकेतनः ।  
 नीलस्तथाङ्गलुब्धश्च शोभनो निरवग्रहः ॥ ८०  
 स्वस्तिदः स्वस्तिभावश्च भागी भागकरो लघुः ।  
 उत्सङ्गश्च महाङ्गश्च महागर्भः परो युवा ॥ ८१  
 कृष्णवर्णः सुवर्णश्च इन्द्रियः सर्वदेहिनाम् ।  
 महापादो महाहस्तो महाकायो महायशः ॥ ८२  
 महामूर्धा महामात्रो महानेत्रो दिगालयः ।  
 महादन्तो महाकर्णो महामेढ्रो महाहनुः ॥ ८३  
 महानासो महाकम्बुर्महाग्रीवः श्मशानधृक् ।

महावक्षा महोरस्को अन्तरात्मा मृगालयः ॥ ८४  
 लम्बनो लम्बितोष्ठश्च महामायः पयोनिधिः ।  
 महादन्तो महादंष्ट्रो महाजिह्वो महामुखः ॥ ८५  
 महानखो महारोमा महाकेशो महाजटः ।  
 असपन्नः प्रसादश्च प्रत्ययो गिरिसाधनः ॥ ८६  
 स्नेहोऽस्नेहनश्चैव अजितश्च महामुनिः ।  
 वृक्षाकारो वृक्षकेतुरनलो वायुवाहनः ॥ ८७  
 मण्डली मेरुधामा च देवदानवदर्पहा ।  
 अथर्वशीर्षः सामास्य ऋक्सहस्रामितेक्षणः ॥ ८८  
 यजुःपादभुजो गुह्यः प्रकाशो जङ्गमस्तथा ।  
 अमोघार्थः प्रसादश्च अभिगम्यः सुदर्शनः ॥ ८९  
 उपहारप्रियः शर्वः कनकः काञ्चनः स्थिरः ।  
 नाभिर्नन्दिकरो भाव्यः पुष्करस्थपतिः स्थिरः ॥ ९०  
 द्वादशस्त्रासनश्चाद्यो यज्ञो यज्ञसमाहितः ।  
 नक्तं कलिश्च कालश्च मकरः कालपूजितः ॥ ९१  
 सगणो गणकारश्च भूतभावनसारथिः ।  
 भस्मशायी भस्मगोप्ता भस्मभूतस्तरुणः ॥ ९२  
 अगणश्चैव लोपश्च महात्मा सर्वपूजितः ।  
 शङ्खश्चिशङ्खः सपन्नः शुचिर्भूतनिषेवितः ॥ ९३  
 आश्रमस्थः कपोतस्थो विश्वकर्मा पतिर्वरः ।  
 शाखो विशाखस्ताम्रोष्ठो हम्बुजालः सुनिश्चयः ॥  
 कपिलोऽकपिलः शूर आयुश्चैव परोऽपरः ।  
 गन्धर्वो ह्यदितिस्तार्क्ष्यः सुविज्ञेयः सुसारथिः ॥ ९५  
 परश्वधायुधो वैव अर्थकारी सुबान्धवः ।  
 तुम्बवीणी महाकोप ऊर्ध्वरेता जलेशयः ॥ ९६  
 तपो वंशकरो वंशो वंशनादो ह्यनिन्दितः ।  
 सर्वाङ्गरूपो मायावी सुहृदो ह्यनिलोऽनलः ॥ ९७  
 बन्धनो बन्धकर्ता च सुबन्धनविमोचनः ।  
 स यज्ञारिः स कामारिर्महादंष्ट्रो महायुधः ॥ ९८  
 बाहुस्त्वनिन्दितः शर्वः शंकरः शंकरोऽधनः ।

अमरेशो महादेवो विश्वदेवः सुरारिहा ॥ ९९  
 अहिर्बुध्नो निर्ऋतिश्च चेकितानो हरिस्तथा ।  
 अजैकपाञ्च कापाली त्रिशङ्कुरजितः शिवः ॥ १००  
 धन्वन्तरिर्धूमकेतुः स्कन्दो वैश्रवणस्तथा ।  
 धाता शक्रश्च विष्णुश्च मित्रस्त्वष्टा ध्रुवो धरः ॥ १०१  
 प्रभावः सर्वगो वायुरर्यमा सविता रविः ।  
 रुद्रप्रश्च विधाता च मान्धाता भूतभावनः ॥ १०२  
 रतितीर्थश्च वाग्मी च सर्वकामगुणावहः ।  
 पद्मगर्भो महागर्भश्चन्द्रवक्त्रो मनोरमः ॥ १०३  
 बलवांश्चोपशान्तश्च पुराणः पुण्यचञ्चुरी ।  
 कुरुकर्ता कालरूपी कुरुभूतो महेश्वरः ॥ १०४  
 सर्वांशयो दर्भशायी सर्वेषां प्राणिनां पतिः ।  
 देवदेवमुखोऽसक्तः सदसत्सर्वरत्नवित् ॥ १०५  
 कैलासशिखरावासी हिमवद्गिरिसंश्रयः ।  
 कूलहारी कूलकर्ता बह्विधो बहुप्रदः ॥ १०६  
 वणिजो वर्धनो वृक्षो नकुलश्चन्दनश्लदः ।  
 सारग्रीवो महाजत्रुरलोलश्च महौषधः ॥ १०७  
 सिद्धार्थकारी सिद्धार्थश्चन्द्रोव्याकरणोत्तरः ।  
 सिंहनादः सिंहदंष्ट्रः सिंहगः सिंहवाहनः ॥ १०८  
 प्रभावात्मा जगत्कालस्तालो लोकहितस्तरुः ।  
 सारङ्गो नवचक्राङ्गः केतुमाली सभावनः ॥ १०९  
 भूतालथो भूतपतिरहोरात्रमनिन्दितः ।  
 वाहिता सर्वभूतानां निलयश्च विभुर्भवः ॥ ११०  
 अमोघः सयतो ह्यश्वो भोजनः प्राणधारणः ।  
 धृतिमान्मतिमान्दक्षः सत्कृतश्च युगाधिपः ॥ १११  
 गोपालिर्गोपतिर्ग्रामो गोचर्मवसनो हरः ।  
 हिरण्यबाहुश्च तथा गुहापालः प्रवेशिनाम् ॥ ११२  
 प्रतिष्ठायी महाहर्षो जितकामो जितेन्द्रियः ।  
 गन्धारश्च सुरालश्च तपःकर्मरतिर्धनुः ॥ ११३  
 महागीतो महानृत्तो ह्यप्सरोगणसेवितः ।

महाकेतुर्धनुर्धातुर्नैकसानुचरश्चलः ॥ ११४  
 आवेदनीय आवेशः सर्वगन्धसुखावहः ।  
 तोरणस्तारणो वायुः परिधावति चैकतः ॥ ११५  
 संयोगो वर्धनो वृद्धो महावृद्धो गणाधिपः ।  
 नित्य आत्मसहायश्च देवासुरपतिः पतिः ॥ ११६  
 युक्तश्च युक्तबाहुश्च द्विविधश्च सुपर्वणः ।  
 आषाढश्च सुषाढश्च ध्रुवो हरिहणो हरः ॥ ११७  
 वपुरावर्तमानेभ्यो वसुश्रेष्ठो महापथः ।  
 शिरोहारी विमर्षश्च सर्वलक्षणभूपितः ॥ ११८  
 अक्षश्च रथयोगी च सर्वयोगी महाबलः ।  
 समान्नायोऽसमान्नायस्तीर्थदेवो महारथः ॥ ११९  
 निर्जीवो जीवनो मन्त्रः शुभाक्षो बहुकर्कशः ।  
 रत्नप्रभूतो रक्ताङ्गो महार्णवनिपानवित् ॥ १२०  
 मूलो विशालो ह्यमृतो व्यक्ताव्यक्तस्तपोनिधिः ।  
 आरोहणो निरोहश्च शैलहारी महातपाः ॥ १२१  
 सेनाकल्पो महाकल्पो युगायुगकरो हरिः ।  
 युगरूपो महारूपः पवनो गहनो नगः ॥ १२२  
 न्यायनिर्वापणः पादः पण्डितो ह्यचलोपमः ।  
 बहुमालो महामालः सुमालो बहुलोचनः ॥ १२३  
 विस्तारो लवणः कूपः कुसुमः सफलोदयः ।  
 वृषभो वृषभाङ्गाङ्गो मणिविल्वो जटाधरः ॥ १२४  
 इन्दुर्विसर्गः सुमुखः सुरः सर्वायुधः सहः ।  
 निवेदनः सुधाजातः सुगन्धारो महाधनुः ॥ १२५  
 गन्धमाली च भगवानुत्थानः सर्वकर्मणाम् ।  
 मन्थानो बहुलो बाहुः सकलः सर्वलोचनः ॥ १२६  
 तरस्ताली करस्ताली ऊर्ध्वसंहननो वहः ।  
 छत्रं सुच्छत्रो विख्यातः सर्वलोकाश्रयो महान् ॥  
 मुण्डो विरूपो विकृतो दण्डिमुण्डो विकुर्वणः ।  
 हर्यक्षः ककुभो वज्री दीप्तजिह्वः सहस्रपात् ॥ १२८  
 सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वदेवमयो गुरुः ।

सहस्रबाहुः सर्वाङ्गः शरण्यः सर्वलोककृत् ॥ १२९  
 पवित्रं त्रिमधुर्मन्त्रः कनिष्ठः कृष्णपिङ्गलः ।  
 ब्रह्मदण्डविनिर्माता शतघ्नी शतपाशधृक् ॥ १३०  
 पद्मगर्भो महागर्भो ब्रह्मगर्भो जलोद्भवः ।  
 गभस्तिर्ब्रह्मकृद्ब्रह्मा ब्रह्मविद्ब्राह्मणो गतिः ॥ १३१  
 अनन्तरूपो नैकात्मा तिग्मतेजाः स्वयंभुवः ।  
 ऊर्ध्वगात्मा पशुपतिर्वारिहा मनोजवः ॥ १३२  
 चन्दनी पद्ममालाग्र्यः सुरभ्युत्तरणो नरः ।  
 कर्णिकारमहास्रग्वी नीलमौलिः पिनाकधृक् ॥  
 उमापतिरुमाकान्तो जाह्नवीधृगुमाधवः ।  
 वरो वराहो वरदो वरेशः सुमहास्वनः ॥ १३४  
 महाप्रसादो दमनः शत्रुहा श्वेतपिङ्गलः ।  
 प्रीतात्मा प्रयतात्मा च संयतात्मा प्रधानधृक् ॥  
 सर्वपार्श्वसुतस्ताक्षर्यो धर्मसाधारणो वरः ।  
 चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा सुवृषो गोवृषेश्वरः ॥ १३६  
 साध्यर्षिर्वसुरादित्यो विवस्वान्सविता मृडः ।  
 व्यासः सर्वस्य संक्षेपो विस्तरः पर्ययो नयः ॥ १३७  
 ऋतुः संवत्सरो मासः पक्षः संख्यासमापनः ।  
 कला काष्ठा लवो मात्रा मुहूर्तोऽहः क्षपाः क्षणाः ॥  
 विश्वक्षेत्रं प्रजावीजं लिङ्गमाद्यस्त्वनिन्दितः ।  
 सदसद्व्यक्तमव्यक्तं पिता माता पितामहः ॥ १३९  
 स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ।  
 निर्वाणं ह्लादनं चैव ब्रह्मलोकः परा गतिः ॥ १४०  
 देवासुरविनिर्माता देवासुरपरायणः ।  
 देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः ॥ १४१  
 देवासुरमहामात्रो देवासुरगणाश्रयः ।  
 देवासुरगणाध्यक्षो देवासुरगणाग्रणीः ॥ १४२  
 देवातिदेवो देवर्षिर्देवासुरवरप्रदः ।  
 देवासुरेश्वरो देवो देवासुरमहेश्वरः ॥ १४३  
 सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवतात्मात्मसंभवः ।

उद्भिदस्त्रिक्रमो वैद्यो विरजो विरजोम्बरः ॥ १४४  
 ईड्यो हस्ती सुरव्याघ्रो देवसिंहो नरर्षभः ।  
 विबुधाग्रवरः श्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः ॥ १४५  
 प्रयुक्तः शोभनो वज्र ईशानः प्रभुरव्ययः ।  
 गुरुः कान्तो निजः सर्गः पवित्रः सर्ववाहनः ॥  
 शृङ्गी शृङ्गप्रियो बभ्रू राजराजो निरामयः ।  
 अभिरामः सुरगणो विरामः सर्वसाधनः ॥ १४७  
 ललाटाक्षो विश्वदेहो हरिणो ब्रह्मवर्चसः ।  
 स्थावराणां पतिश्चैव नियमेन्द्रियवर्धनः ॥ १४८  
 सिद्धार्थः सर्वभूतार्थोऽचिन्त्यः सत्यव्रतः शुचिः ।  
 व्रताधिपः परं ब्रह्म मुक्तानां परमा गतिः ॥ १४९  
 विमुक्तो मुक्ततेजाश्च श्रीमाञ्श्रीवर्धनो जगत् ।  
 यथाप्रधानं भगवानिति भक्त्या स्तुतो मया ॥ १५०  
 यं न ब्रह्मादयो देवा विदुर्यं न महर्षयः ।  
 तं स्तव्यमर्च्यं वन्द्यं च कः स्तोष्यति जगत्पतिम् ॥  
 भक्तिमेव पुरस्कृत्य मया यज्ञपतिर्वसुः ।  
 ततोऽभ्यनुज्ञां प्राप्यैव स्तुतो मतिमतां वरः ॥ १५२  
 शिवमेभिः स्तुवन्देवं नामभिः पुष्टिवर्धनैः ।  
 नित्ययुक्तः शुचिर्भूत्वा प्राप्नोत्यात्मानमात्मना ॥ १५३  
 एतद्वि परमं ब्रह्म स्वयं गीतं स्वयंभुवा ।  
 ऋषयश्चैव देवाश्च स्तुवन्त्येतेन तत्परम् ॥ १५४  
 स्तूयमानो महादेवः प्रीयते चात्मनामभिः ।  
 भक्तानुकम्पी भगवानात्मसंस्थान्करोति तान् ॥ १५५  
 तथैव च मनुष्येषु ये मनुष्याः प्रधानतः ।  
 आस्तिकाः श्रद्धधानाश्च बहुभिर्जन्मभिः स्तवैः ॥  
 जाग्रतश्च स्वपन्तश्च व्रजन्तः पथि संस्थिताः ।  
 स्तुवन्ति स्तूयमानाश्च तुष्यन्ति च रमन्ति च ।  
 जन्मकोटिसहस्रेषु नानासंसारयोनिषु ॥ १५७  
 जन्तोर्विशुद्धपापस्य भवे भक्तिः प्रजायते ।  
 उत्पन्ना च भवे भक्तिरनन्या सर्वभावतः ॥ १५८

कारणं भावितं तस्य सर्वमुक्तस्तु सर्वतः ।  
 एतद्देवेषु दुष्प्रापं मनुष्येषु न लभ्यते ॥ १५९  
 निर्विघ्ना निश्चला रुद्रे भक्तिरव्यभिचारिणी ।  
 तस्यैव च प्रसादेन भक्तिरुत्पद्यते नृणाम् ।  
 यया यान्ति परां सिद्धिं तद्भावगतचेतसः ॥ १६०  
 ये सर्वभावोपगताः परत्वेनाभवन्नराः ।  
 प्रपन्नवत्सलो देवः संसारान्तांसमुद्धरेत् ॥ १६१  
 एवमन्ये न कुर्वन्ति देवाः संसारमोचनम् ।  
 मनुष्याणां महादेवादन्यत्रापि तपोबलात् ॥ १६२  
 इति तेनेन्द्रकल्पेन भगवान्सदसत्पतिः ।  
 कृत्तिवासाः स्तुतः कृष्णतण्डिना शुद्धबुद्धिना ॥ १६३  
 स्तवमेतं भगवतो ब्रह्मा स्वयमधारयत् ।  
 ब्रह्मा प्रोवाच शक्राय शक्रः प्रोवाच मृत्यवे ॥ १६४  
 मृत्युः प्रोवाच रुद्राणां रुद्रेभ्यस्तण्डिमागमत् ।  
 महता तपसा प्राप्तस्तण्डिना ब्रह्मसद्गनि ॥ १६५  
 तण्डिः प्रोवाच शुक्राय गौतमायाह भार्गवः ।  
 वैवस्वताय मनवे गौतमः प्राह माधव ॥ १६६  
 नारायणाय साध्याय मरुतिष्ठाय धीमते ।  
 यमाय प्राह भगवान्साध्यो नारायणोऽच्युतः ॥ १६७  
 नाचिकेताय भगवानाह वैवस्वतो यमः ।  
 मार्कण्डेयाय वार्ष्णेय नाचिकेतोऽभ्यभाषत ॥ १६८  
 मार्कण्डेयान्मया प्राप्तं नियमेन जनार्दन ।  
 तवाप्यहममित्रघ्न स्तवं ददयिष्ये विश्रुतम् ।  
 स्वर्ग्यमारोग्यमायुष्यं धन्यं बल्यं तथैव च ॥ १६९  
 न तस्य विघ्नं कुर्वन्ति दानवा यक्षराक्षसाः ।  
 पिशाचा यातुधानाश्च गुह्यका भुजगा अपि ॥ १७०  
 यः पठेत् शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।  
 अभययोगो वर्षं तु सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ १७१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

१८

वैशंपायन उवाच ।

महायोगी ततः प्राह कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।  
 पठस्व पुत्र भद्रं ते प्रीयतां ते महेश्वरः ॥ १  
 पुरा पुत्र मया मेरौ तप्यता परमं तपः ।  
 पुत्रहेतोर्महाराज स्तव एषोऽनुकीर्तितः ॥ २  
 लब्धवानस्मि तान्कामानह वै पाण्डुनन्दन ।  
 तथा त्वमपि शर्वाद्वि सर्वान्कामानवाप्स्यसि ॥ ३  
 चतुःशीर्षस्ततः प्राह शक्रस्य दयितः-सखा ।  
 आलम्बायन इत्येव विश्रुतः करुणात्मकः ॥ ४  
 मया गोकर्णमासाद्य तपस्तप्त्वा शतं समाः ।  
 अयोनिजनानां दान्तानां धर्मज्ञानां सुवर्चसाम् ॥ ५  
 अजराणामदुःखानां शतवर्षसहस्रिणाम् ।  
 लब्धं पुत्रशतं शर्वात्पुरा पाण्डुनृपात्मज ॥ ६  
 वाल्मीकिश्चापि भगवान्युधिष्ठिरमभाषत ।  
 विवादे साम्नि मुनिभिर्ब्रह्मघ्नो वै भवानिति ।  
 उक्तः क्षणेन चाविष्टस्तेनाधर्मेण भारत ॥ ७  
 सोऽहमीशानमनघमस्तौषं शरणं गतः ।  
 मुक्तश्चास्म्यवशः पापात्ततो दुःखविनाशनः ।  
 आह मां त्रिपुरघ्नो वै यशस्तेऽयं भविष्यति ॥ ८  
 जामदग्न्यश्च कौन्तेयमाह धर्मभृतां वरः ।  
 ऋषिमध्ये स्थितस्तात तपस्त्रिवि विभावसुः ॥ ९  
 पितृविप्रवधेनाहमार्तो वै पाण्डवाग्रज ।  
 शुचिर्भूत्वा महादेवं गतवाञ्छशरणं नृप ॥ १०  
 नामभिश्चास्तुवं देवं ततस्तुष्टोऽभवद्भवः ।  
 परशुं च ददौ देवो दिव्यान्यस्त्राणि चैव मे ॥ ११  
 पापं न भविता तेऽद्य अजेयश्च भविष्यसि ।  
 न ते प्रभविता मृत्युर्यशस्वी च भविष्यसि ॥ १२  
 आह मां भगवानेवं शिखण्डी शिवविग्रहः ।  
 यदवाप्तं च मे सर्वं प्रसादात्तस्य धीमतः ॥ १३

असितो देवलश्चैव प्राह पाण्डुसुतं नृपम् ।  
 शापाच्छक्रस्य कौन्तेय चितो धर्मोऽनशन्मम ।  
 तन्मे धर्मं यशश्चाग्र्यमायुश्चैवाददद्भवः ॥ १४  
 ऋषिर्गृत्समदो नाम शक्रस्य दयितः सखा ।  
 प्राहाजमीढ भगवान्बृहस्पतिसमद्युतिः ॥ १५  
 वसिष्ठो नाम भगवांश्चाक्षुषस्य मनोः सुतः ।  
 शतक्रतोरचिन्त्यस्य सत्रे वर्षसहस्रिके ।  
 वर्तमानेऽब्रवीद्वाक्यं साम्नि ह्युच्चारिते मया ॥ १६  
 रथन्तरं द्विजश्रेष्ठ न सम्यगिति वर्तते ।  
 समीक्षस्व पुनर्बुद्ध्या हर्षं त्यक्त्वा द्विजोत्तम ।  
 अयज्ञवाहिनं पापमकार्पीस्त्वं सुदुर्मते ॥ १७  
 एवमुक्त्वा महाक्रोधात्प्राह रुष्टः पुनर्वचः ।  
 प्रज्ञया रहितो दुःखी नित्यं भीतो वनेचरः ।  
 दश वर्षसहस्राणि दशाष्टौ च शतानि च ॥ १८  
 नष्टपानीययवसे मृगैरन्यैश्च वर्जिते ।  
 अयज्ञीयद्रुमे देशे रुरुसिहनिषेविते ।  
 भविता त्वं मृगः क्रूरो महादुःखसमन्वितः ॥ १९  
 तस्य वाक्यस्य निधने पार्थ जातो ह्यहं मृगः ।  
 ततो मां शरणं प्राप्तं प्राह योगी महेश्वरः ॥ २०  
 अजरश्चामरश्चैव भविता दुःखवर्जितः ।  
 साम्यं समस्तु ते सौख्यं युवयोर्वर्धतां क्रतुः ॥ २१  
 अनुग्रहानेवमेष करोति भगवान्विभुः ।  
 परं धाता विधाता च सुखदुःखे च सर्वदा ॥ २२  
 अचिन्त्य एष भगवान्कर्मणा मनसा गिरा ।  
 न मे तात युधिश्रेष्ठ विद्यया पण्डितः समः ॥ २३  
 जैगीषव्य उवाच ।  
 ममाष्टगुणमैश्वर्यं दत्तं भगवता पुरा ।  
 यत्नेनाल्पेन बलिना वाराणस्यां युधिष्ठिर ॥ २४  
 गार्ग्य उवाच ।  
 चतुःषष्ठ्यङ्गमददात्कालज्ञानं ममाद्भुतम् ।

सरस्वत्यास्तटे तुष्टो मनोयज्ञेन पाण्डव ॥ २५  
 तुल्यं मम सहस्रं तु सुतानां ब्रह्मवादिनाम् ।  
 आयुश्चैव सपुत्रस्य संवत्सरशतायुतम् ॥ २६  
 पराशर उवाच ।  
 प्रसाद्याहं पुरा शर्वं मनसाचिन्तयं नृप ।  
 महातपा महातेजा महायोगी महायशः ।  
 वेदव्यासः श्रियावासो ब्रह्मण्यः करुणात्मकः ॥ २७  
 अपि नामेप्सितः पुत्रो मम स्याद्वै महेश्वरात् ।  
 इति मत्वा हृदि मतं प्राह मां सुरसत्तमः ॥ २८  
 मयि संभवतस्तस्य फलात्कृष्णो भविष्यति ।  
 सावर्णस्य मनोः सर्गे सप्तर्षिश्च भविष्यति ॥ २९  
 वेदानां च स वै व्यस्ता कुरुवंशकरस्तथा ।  
 इतिहासस्य कर्ता च पुत्रस्ते जगतो हितः ॥ ३०  
 भविष्यति महेन्द्रस्य दयितः स महामुनिः ।  
 अजरश्चामरश्चैव पराशर सुतस्तव ॥ ३१  
 एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ।  
 युधिष्ठिर महायोगी वीर्यवानक्षयोऽव्ययः ॥ ३२  
 माण्डव्य उवाच ।  
 अचौरश्चौरशङ्कायां शूले भिन्नो ह्यहं यदा ।  
 तत्रस्थेन स्तुतो देवः प्राह मां वै महेश्वरः ॥ ३३  
 मोक्षं प्राप्स्यसि शूलाच्च जीविष्यसि समार्बुदम् ।  
 रुजा शूलकृता चैव न ते विप्र भविष्यति ।  
 आधिभिर्व्याधिभिश्चैव वर्जितस्त्वं भविष्यसि ॥ ३४  
 पादाच्चतुर्थात्संभूत आत्मा यस्मान्मुने तव ।  
 त्वं भविष्यस्यनुपमो जन्म वै सफलं कुरु ॥ ३५  
 तीर्थाभिषेकं सफलं त्वमविघ्नेन चाप्स्यसि ।  
 स्वर्गं चैवाक्षयं विप्र विदधामि तवोर्जितम् ॥ ३६  
 एवमुक्त्वा तु भगवान्वरेण्यो वृषबाहनः ।  
 महेश्वरो महाराज कृत्तिवासा महाद्युतिः ।  
 सगणो दैवतश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३७

गालव उवाच ।

विश्वामित्राभ्यनुज्ञातो ह्यहं पितरमागतः ।  
अब्रवीन्मां ततो माता दुःखिता रुदती भृशम् ॥ ३८  
कौशिकेनाभ्यनुज्ञातं पुत्रं वेदविभूषितम् ।  
न तात तरुणं दान्तं पिता त्वां पश्यतेऽनघ ॥ ३९  
श्रुत्वा जनन्या वचनं निराशो गुरुदर्शने ।  
नियतात्मा महादेवमपश्यं सोऽब्रवीच्च माम् ॥ ४०  
पिता माता च ते त्वं च पुत्र मृत्युविवर्जिताः ।  
भविष्यथ विश क्षिप्रं द्रष्टासि पितरं क्षये ॥ ४१  
अनुज्ञातो भगवता गृहं गत्वा युधिष्ठिर ।  
अपश्यं पितरं तात इष्टि कृत्वा चिनिःसृतम् ॥ ४२  
चपस्पृश्य गृहीत्वैध्मं कुशांश्च शरणाद्गुरुम् ।  
तान्विसृज्य च मां प्राह पिता सास्त्राविलेक्षणः ॥ ४३  
प्रणमन्तं परिष्वज्य मूर्ध्नि चाग्राय पाण्डव ।  
दिष्ट्या दृष्टोऽसि मे पुत्र कृतविद्य इहागतः ॥ ४४

वैशंपायन उवाच ।

एतान्यत्यद्भुतान्येव कर्मण्यथ महात्मनः ।  
प्रोक्तानि मुनिभिः श्रुत्वा विस्मयामास पाण्डवः ॥  
ततः कृष्णोऽब्रवीद्वाक्यं पुनर्मतिमतां वरः ।  
युधिष्ठिरं धर्मनित्यं पुरुहूतमिवेश्वरः ॥ ४६  
आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च  
द्यौर्भूमिरापो वसवोऽथ विश्वे ।  
धातार्यमा शुक्रबृहस्पती च  
रुद्राः ससाध्या वरुणो वित्तगोपः ॥ ४७  
ब्रह्मा शक्रो मारुतो ब्रह्म सत्यं  
वेदा यज्ञा दक्षिणा वेदवाहाः ।  
सोमो यष्टा यच्च हव्यं हविश्च  
रक्षा दीक्षा नियमा ये च केचित् ॥ ४८  
स्वाहा वषट्काराणां सौरभेया  
धर्मं चक्रं कालचक्रं चरं च ।

यशो दमो बुद्धिमती स्थितिश्च  
शुभाशुभं मुनयश्चैव सप्त ॥ ४९  
अथ्या बुद्धिर्मनसा दर्शने च  
स्पर्शे मिद्धिः कर्मणां या च सिद्धिः ।  
गणा देवानामूष्मपाः सोमपाश्च  
लेखाः सुयामास्तुपिता ब्रह्मकायाः ॥ ५०  
आभास्वरा गन्धपा दृष्टिपाश्च  
वाचा विरुद्धाश्च मनोविरुद्धाः ।  
शुद्धाश्च निर्वाणस्ताश्च देवाः  
स्पर्शशिना दर्शपा आज्यपाश्च ॥ ५१  
चिन्तागता ये च देवेषु मुख्या  
ये चाप्यन्ये देवताश्चाजमीढ ।  
सुपर्णगन्धर्वपिशाचदानवा  
यक्षास्तथा पन्नगाश्चारणाश्च ॥ ५२  
सूक्ष्मं स्थूलं मृदु यच्चाप्यसूक्ष्मं  
सुखं दुःखं सुखदुःखान्तरं च ।  
सांख्यं योगं यत्पराणां परं च  
शर्वाज्जातं विद्धि तत्कीर्तितं मे ॥ ५३  
तत्संभूता भूतकृतो वरेण्याः  
सर्वे देवा भुवनस्यास्य गोपाः ।  
आविश्येमां धरणीं येऽभ्यरक्ष-  
न्पुरातनीं तस्य देवस्य सृष्टिम् ॥ ५४  
विचिन्वन्तं मनसा तोष्टुवीमि  
किञ्चित्त्वं प्राणहतोर्नतोऽस्मि ।  
ददातु देवः स वरानिद्देशा-  
नभिष्टुतो नः प्रभुरव्ययः सदा ॥ ५५  
इमं स्तवं संनियम्येन्द्रियाणि  
शुचिर्भूत्वा यः पुरुषः पठेत् ।  
अभग्नयोगो नियतोऽब्दमेकं  
स प्राप्नुयादश्वमेधे फलं यत् ॥ ५६

वेदान्कृत्स्नान्ब्राह्मणः प्राप्नुयाच्च

जयेद्राजा पृथिवी चापि कृत्स्नाम् ।

वैश्यो लाभं प्राप्नुयान्नैपुणं च

शूद्रो गतिं प्रेत्य तथा सुखं च ॥ ५७

स्तवराजमिमं कृत्वा रुद्राय दधिरे मनः ।

सर्वदोषापहं पुण्यं पवित्रं च यशस्विनम् ॥ ५८

यावन्त्यस्य शरीरेषु रोमकूपाणि भारत ।

तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गे वसति मानवः ॥ ५९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

१९

युधिष्ठिर उवाच ।

यदिदं सहधर्मेति प्रोच्यते भरतर्षभ ।

पाणिग्रहणकाले तु स्त्रीणामेतत्कथं स्मृतम् ॥ १

आर्ष एष भवेद्धर्मः प्राजापत्योऽथ वासुरः ।

यदेतत्सहधर्मेति पूर्वमुक्तं महर्षिभिः ॥ २

संदेहः सुमहानेष विरुद्ध इति मे मतिः ।

इह यः सहधर्मो वै प्रेत्यायं विहितः क नु ॥ ३

स्वर्गे मृतानां भवति सहधर्मः पितामह ।

पूर्वमेकस्तु म्रियते क चैकस्तिष्ठते वद ॥ ४

नानाकर्मफलोपेता नानाकर्मनिवासिनः ।

नानानिरयनिष्ठान्ता मानुषा बहवो यदा ॥ ५

अनृताः स्त्रिय इत्येवं सूत्रकारो व्यवस्यति ।

यदानृताः स्त्रियस्तात सहधर्मः कुतः स्मृतः ॥ ६

अनृताः स्त्रिय इत्येवं वेदेष्वपि हि पठ्यते ।

धर्मोऽयं पौर्विकी संज्ञा उपचारः क्रियाविधिः ॥ ७

गह्वरं प्रतिभात्येतन्मम चिन्तयनोऽनिशम् ।

निःसंदेहमिदं सर्वं पितामह यथा श्रुतिः ॥ ८

यदेतद्यादृशं चैतद्यथा चैतत्प्रवर्तितम् ।

निखिलेन महाप्राज्ञ भवानेतद्ब्रवीतु मे ॥ ९

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

अष्टावक्रस्य संवादं दिशया सह भारत ॥ १०

निवेष्टुकामस्तु पुरा अष्टावक्रो महातपाः ।

ऋषेरथ वदान्यस्य कन्यां वव्रे महात्मनः ॥ ११

सुप्रभां नाम वै नाम्ना रूपेणाप्रतिमां भुवि ।

गुणप्रबर्हा शीलेन साध्वी चारित्रशोभनाम् ॥ १२

सा तस्य दृष्ट्वैव मनो जहार शुभलोचना ।

वनराजी यथा चित्रा बसन्ते कुसुमाचिता ॥ १३

ऋषिस्तमाह देया मे सुता तुभ्यं शृणुष्व मे ।

गच्छ तावदिदं पुण्यामुत्तरां द्रक्ष्यसे ततः ॥ १४

अष्टावक्र उवाच ।

किं द्रष्टव्यं मया तत्र वक्तुमर्हति मे भवान् ।

तथेदानीं मया कार्यं यथा वक्ष्यति मां भवान् ॥

वदान्य उवाच ।

धनदं समतिक्रम्य हिमवन्तं तथैव च ।

रुद्रस्यायतनं दृष्ट्वा सिद्धचारणसेवितम् ॥ १६

प्रहृष्टैः पार्षदैर्जुष्टं नृत्यद्भिर्विविधाननैः ।

दिव्याङ्गरागैः पैशाचैर्वन्यैर्नानाविधैस्तथा ॥ १७

पाणितालसतालैश्च शम्भ्यातालैः समैस्तथा ।

संप्रहृष्टैः प्रनृत्यद्भिः शर्वस्तत्र निषेव्यते ॥ १८

इष्टं किल गिरौ स्थानं तद्विव्यमनुशुश्रुम ।

नित्यं संनिहितो देवस्तथा पारिषदाः शुभाः ॥ १९

तत्र देव्या तपस्तप्तं शंकरार्थं सुदुश्चरम् ।

अतस्तदिष्टं देवस्य तथोमाया इति श्रुतिः ॥ २०

तत्र कूपो महान्पार्श्वे देवस्योत्तरतस्तथा ।

ऋतवः कालरात्रिश्च ये दिव्या ये च मानुषाः ॥ २१

सर्वे देवमुपासन्ते रूपिणः किल तत्र ह ।

तदतिक्रम्य भवन् त्वया यातव्यमेव हि ॥ २२



ततो नीलं वनोद्देशं द्रक्ष्यसे मेघसंनिभम् ।  
रमणीयं मनोग्राहि तत्र द्रक्ष्यसि वै स्त्रियम् ॥ २३  
तपस्विनीं महाभागां वृद्धां दीक्षामनुष्ठिताम् ।  
द्रष्टव्या सा त्वया तत्र संपूज्या चैव यत्नतः ॥ २४  
तां दृष्ट्वा विनिवृत्तस्त्वं ततः पाणिं ग्रहीष्यसि ।  
यद्येष समयः सत्यः साध्यतां तत्र गम्यताम् ॥ २५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

२०

अष्टावक्र उवाच ।

तथास्तु साधयिष्यामि तत्र यास्याम्यसंशयम् ।  
यत्र त्वं वदसे साधो भवान्भवतु सत्यवाक् ॥ १

भीष्म उवाच ।

ततोऽगच्छत्स भगवानुत्तरामुत्तमां दिशम् ।  
हिमवन्तं गिरिश्रेष्ठं सिद्धचारणसेवितम् ॥ २  
स गत्वा द्विजशार्दूलो हिमवन्तं महागिरिम् ।  
अभ्यगच्छन्नदी पुण्यां बाहुदां धर्मदायिनीम् ॥ ३  
अशोके विमले तीर्थे स्नात्वा तर्प्य च देवताः ।  
तत्र वासाय शयने कौश्ये सुखमुवास ह ॥ ४  
ततो राज्ञ्यां व्यतीतायां प्रातरुत्थाय स द्विजः ।  
स्नात्वा प्रादुश्चकाराग्निं हृत्वा चैव विधानतः ॥ ५  
रुद्राणीकूपमासाद्य हृदे तत्र समाश्रयत् ।  
विश्रान्तश्च समुत्थाय कैलासमभितो ययौ ॥ ६  
सोऽपश्यत्काञ्चनद्वारं दीप्यमानमिव श्रिया ।  
मन्दाकिनीं च नलिनीं धनदस्य महात्मनः ॥ ७  
अथ ते राक्षसाः सर्वे येऽभिरक्षन्ति पद्भिनीम् ।  
प्रत्युत्थिता भगवन्तं मणिभद्रपुरोगमाः ॥ ८  
स तान्प्रत्यर्चयामास राक्षसान्भीमविक्रमान् ।  
निवेदयत् मां क्षिप्रं धनदायेति चाब्रवीत् ॥ ९

ते राक्षसास्तदा राजन्भगवन्तमथाब्रुवन् ।  
असौ वैश्रवणो राजा स्वयमायाति तेऽन्तिकम् ॥  
विदितो भगवानस्य कार्यमागमने च यत् ।  
पश्यैनं त्वं महाभागं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ ११  
ततो वैश्रवणोऽभ्येत्य अष्टावक्रमनिन्दितम् ।  
विधिवत्कुशलं पृष्ट्वा ततो ब्रह्मर्षिमब्रवीत् ॥ १२  
सुखं प्राप्तो भवान्कच्चित्किं वा मत्तश्चिकीर्षसि ।  
ब्रूहि सर्वं करिष्यामि यन्मां त्वं वक्ष्यसि द्विज ॥  
भवनं प्रविश त्वं मे यथाकामं द्विजोत्तम ।  
सत्कृतः कृतकार्यश्च भवान्यास्यत्यविघ्नतः ॥ १४  
प्राविशद्भवनं स्वं वै गृहीत्वा तं द्विजोत्तमम् ।  
आसनं स्वं ददौ चैव पाद्यमर्घ्यं तथैव च ॥ १५  
अथोपविष्टयोस्तत्र मणिभद्रपुरोगमाः ।  
निषेदुस्तत्र कौबेरा यक्षगन्धर्वराक्षसाः ॥ १६  
ततस्तेषां निपण्णानां धनदो वाक्यमब्रवीत् ।  
भवच्छन्दं समाज्ञाय नृत्येरन्नप्सरोगणाः ॥ १७  
आतिथ्यं परमं कार्यं शुश्रूषा भवतस्तथा ।  
संवर्ततामित्युवाच मुनिर्मधुरया गिरा ॥ १८  
अथोर्वरा मिश्रकेशी रम्भा चैवोर्वशी तथा ।  
अलम्बुसा घृताची च चित्रा चित्राङ्गदा रुचिः ॥  
मनोहरा सुकेशी च सुमुखी हासिनी प्रभा ।  
विद्युता प्रशमा दान्ता विद्योता रतिरेव च ॥ २०  
एताश्चान्याश्च वै बह्वयः प्रनृताप्सरसः शुभाः ।  
अवादयंश्च गन्धर्वा वाद्यानि विविधानि च ॥ २१  
अथ प्रवृत्ते गान्धर्वे दिव्ये ऋषिरुपावसत् ।  
दिव्यं संवत्सरं तत्र रमन्वै सुमहातपाः ॥ २२  
ततो वैश्रवणो राजा भगवन्तमुवाच ह ।  
साग्रः संवत्सरो यातस्तव विप्रेह पश्यतः ॥ २३  
हार्योऽयं विषयो ब्रह्मन्गान्धर्वो नाम नामतः ।  
छन्दतो वर्ततां विप्र यथा वदति वा भवान् ॥ २४

अतिथिः पूजनीयस्त्वमिदं च भवतो गृहम् ।  
 सर्वमाज्ञाप्यतामाशु परवन्तो वयं त्वयि ॥ २५  
 अथ वैश्रवणं प्रीतो भगवान्प्रत्यभाषत ।  
 अर्चितोऽस्मि यथान्यायं गमिष्यामि धनेश्वर ॥ २६  
 प्रीतोऽस्मि सदृशं चैव तव सर्वं धनाधिप ।  
 तव प्रसादाद्भगवन्महर्षेश्च महात्मनः ।  
 नियोगादद्य यास्यामि वृद्धिमान्वृद्धिमान्भव ॥ २७  
 अथ निष्क्रम्य भगवान्प्रययावुत्तरामुखः ।  
 कैलासं मन्दरं हैमं सर्वाननुचचार ह ॥ २८  
 तानतीत्य महाशैलान्कैरातं स्थानमुत्तमम् ।  
 प्रदक्षिणं ततश्चक्रे प्रयतः शिरसा नमन् ।  
 धरणीमवतीर्यथ पूतात्मासौ तदाभवत् ॥ २९  
 स तं प्रदक्षिणं कृत्वा त्रिः शैलं चोत्तरामुखः ।  
 समेन भूमिभागेन ययौ प्रीतिपुरस्कृतः ॥ ३०  
 ततोऽपरं वनोद्देशं रमणीयमपश्यत् ।  
 सर्वतुर्भिर्मूलफलैः पक्षिभिश्च समन्वितम् ।  
 रमणीयैर्वनोद्देशैस्तत्र तत्र विभूषितम् ॥ ३१  
 तत्राश्रमपदं दिव्यं ददर्श भगवानथ ।  
 शैलांश्च विविधाकारान्काञ्चनान् रत्नभूषितान् ।  
 मणिभूमौ निविष्टाश्च पुष्करिण्यस्तथैव च ॥ ३२  
 अन्यान्यपि सुरम्याणि ददर्श सुबहून्यथ ।  
 भृशं तस्य मनो रेमे महर्षेर्भावितात्मनः ॥ ३३  
 स तत्र काञ्चनं दिव्यं सर्वरत्नमयं गृहम् ।  
 ददर्शद्भुतसंकाशं धनदस्य गृहाद्वरम् ॥ ३४  
 महान्तो यत्र विविधाः प्रासादाः पर्वतोपमाः ।  
 विमानानि च रम्याणि रत्नानि विविधानि च ॥  
 मन्दारपुष्पैः संकीर्णं तथा मन्दाकिनी नदी ।  
 स्वयंप्रभाश्च मणयो वज्रैर्भूमिश्च भूषिता ॥ ३६  
 नानाविधैश्च भवनैर्विचित्रमणितोरणैः ।  
 मुक्ताजालपरिक्षिप्तैर्मणिरत्नविभूषितैः ।

मनोदृष्टिहरै रम्यैः सर्वतः संवृतं शुभैः ॥ ३७  
 ऋषिः समन्ततोऽपश्यत्तत्र तत्र मनोरमम् ।  
 ततोऽभवत्तस्य चिन्ता क मे वासो भवेदिति ॥ ३८  
 अथ द्वारं समभितो गत्वा स्थित्वा ततोऽब्रवीत् ।  
 अतिथि मामनुप्राप्तमनुजानन्तु येऽत्र वै ॥ ३९  
 अथ कन्यापरिवृता गृहात्तस्माद्विनिःसृताः ।  
 नानारूपाः सप्त विभो कन्याः सर्वा मनोहराः ॥  
 यां यामपश्यत्कन्यां स सा सा तस्य मनोऽहरत् ।  
 नाशक्नुवद्भारयितुं मनोऽथास्यावसीदति ॥ ४१  
 ततो धृतिः समुत्पन्ना तस्य विप्रस्य धीमतः ।  
 अथ त प्रमदाः प्राहुर्भगवान्प्रविशत्विति ॥ ४२  
 स च तासां सुरुपाणां तस्यैव भवनस्य च ।  
 कौतूहलसमाविष्टः प्रविवेश गृहं द्विजः ॥ ४३  
 तत्रापश्यज्जरायुक्तामरजोम्बरधारिणीम् ।  
 वृद्धां पर्यङ्कमासीनां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ ४४  
 स्वस्तीति चाथ तेनोक्ता सा स्त्री प्रत्यवदत्तदा ।  
 प्रत्युत्थाय च तं विप्रमास्यतामित्युवाच ह ॥ ४५

अष्टावक्र उवाच ।

सर्वाः स्वानालयान्यान्तु एका मामुपतिष्ठतु ।  
 सुप्रज्ञाता सुप्रशान्ता शेषा गच्छन्तु च्छन्दतः ॥ ४६  
 ततः प्रदक्षिणीकृत्य कन्यास्तास्तमृषि तदा ।  
 निराक्रामन्गृहात्तस्मात्सा वृद्धाथ व्यतिष्ठत् ॥ ४७  
 अथ तां संविशन्प्राह शयने भास्वरे तदा ।  
 त्वयापि सुप्यतां भद्रे रजनी ह्यतिवर्तते ॥ ४८  
 संलापात्तेन विप्रेण तथा सा तत्र भाषिता ।  
 द्वितीये शयने दिव्ये संविवेश महाप्रभे ॥ ४९  
 अथ सा वेपमानाङ्गी निमित्तं शीतजं तदा ।  
 व्यपदिश्य महर्षेर्वै शयनं चाध्यरोहत् ॥ ५०  
 स्वागतं स्वागतेनास्तु भगवांस्तामभाषत ।  
 सोपागूहद्भुजाभ्या तु ऋषिं प्रीत्या नरर्षभ ॥ ५१

निर्विकारमृषि चापि काष्ठकुड्योपमं तदा ।  
 दुःखिता प्रैक्ष्य संजल्पमकार्षीदृषिणा सह ॥ ५२  
 ब्रह्मन्न कामकारोऽस्ति स्त्रीणां पुरुषतो धृतिः ।  
 कामेन मोहिता चाहं त्वां भजन्तीं भजस्व माम् ॥  
 प्रहृष्टो भव विप्रर्षे समागच्छ मया सह ।  
 उपगूह च मां विप्र कामार्ताहं भृशं त्वयि ॥ ५४  
 एतद्धि तव धर्मात्मस्तपसः पूज्यते फलम् ।  
 प्रार्थितं दर्शनादेव भजमानां भजस्व माम् ॥ ५५  
 सद्य चेदं वनं चेदं यच्चान्यदपि पश्यसि ।  
 प्रभुत्वं तव सर्वत्र मयि चैव न संशयः ॥ ५६  
 सर्वान्कामान्विधास्यामि रमस्व सहितो मया ।  
 रमणीये वने विप्र सर्वकामफलप्रदे ॥ ५७  
 त्वद्वशाहं भविष्यामि रंस्यसे च मया सह ।  
 सर्वान्कामानुपाश्रानो ये दिव्या ये च मानुषाः ॥  
 नातः परं हि नारीणां कार्यं किञ्चन विद्यते ।  
 यथा पुरुषसंसर्गः परमेतद्धि नः फलम् ॥ ५९  
 आत्मच्छन्देन वर्तन्ते नार्यो मन्मथचोदिताः ।  
 न च दहन्ति गच्छन्त्यः सुतपैरपि पांसुभिः ॥ ६०

अष्टावक्र उवाच ।

परदारानहं भद्रे न गच्छेयं कथञ्चन ।  
 दूषितं धर्मशास्त्रेषु परदाराभिमर्शनम् ॥ ६१  
 भद्रे निवेष्टुकामं मां विद्धि सत्येन वै शपे ।  
 विषयेष्वनभिज्ञोऽहं धर्मार्थं किल संततिः ॥ ६२  
 एवं लोकान्गमिष्यामि पुत्रैरिति न संशयः ।  
 भद्रे धर्मं विजानीष्व ज्ञात्वा चोपरमस्व ह ॥ ६३

रूप्यवाच ।

नानिलोऽग्निर्न वरुणो न चान्ये त्रिदश द्विज ।  
 प्रियाः स्त्रीणां यथा कामो रतिशीला हि योषितः ॥  
 सहस्रैका यता नारी प्राप्नोतीह कदाचन ।  
 तथा शतसहस्रेषु यदि काचित्पतिव्रता ॥ ६५

नैता जानन्ति पितरं न कुलं न च मातरम् ।  
 न भ्रातृन् च भर्तारं न पुत्रान्न च देवरान् ॥ ६६  
 लीलायन्त्यः कुलं व्रन्ति कूलानीव सरिद्वराः ।  
 दोषांश्च मन्दान्मन्दासु प्रजापतिरभाषत ॥ ६७

भीष्म उवाच ।

ततः स ऋषिरेकाग्रस्तां स्त्रियं प्रत्यभाषत ।  
 आस्यतां रुचिरं छन्दः किं वा कार्यं ब्रवीहि मे ॥  
 सा स्त्री प्रोवाच भगवन्द्रक्ष्यसे देशकालतः ।  
 वस तावन्महाप्राज्ञ कृतकृत्यो गमिष्यसि ॥ ६९  
 ब्रह्मर्षिस्तामथोवाच स तथेति युधिष्ठिर ।  
 वत्स्येऽहं यावदुत्साहो भवत्या नात्र संशयः ॥ ७०  
 अथर्षिरभिसंप्रेक्ष्य स्त्रियं तां जरयान्विताम् ।  
 चिन्तां परमिकां भेजे संतप्त इव चाभवत् ॥ ७१  
 यद्यदङ्गं हि सोऽपश्यत्तस्या विप्रर्षभस्तदा ।  
 नारमत्तत्र तत्रास्य दृष्टी रूपपराजिता ॥ ७२  
 देवतेयं गृहस्थास्य शापान्नूनं विरूपिता ।  
 अस्याश्च कारणं वेत्तुं न युक्तं सहसा मया ॥ ७३  
 इति चिन्ताविषक्तस्य तमर्थं ज्ञातुमिच्छतः ।  
 व्यगमत्तदहःशेषं मनसा व्याकुलेन तु ॥ ७४  
 अथ सा स्त्री तदोवाच भगवन्पश्य वै रवेः ।  
 रूपं संध्याभ्रसंयुक्तं किमुपस्थाप्यतां तव ॥ ७५  
 स उवाच तदा तां स्त्रीं स्नानोदकमिहानय ।  
 उपासिष्ये ततः संध्यां वाग्यतो नियतेन्द्रियः ॥ ७६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

२१

भीष्म उवाच ।

अथ सा स्त्री तमुक्त्वा तु विप्रमेवं भवत्विति ।  
 तैलं दिव्यमुपादाय स्नानशटीमुपानयत् ॥ १  
 अनुज्ञाता च मुनिना सा स्त्री तेन महात्मना ।

अथास्य तैलेनाङ्गानि सर्वाण्येवाभ्यमृक्षयत् ॥ २  
 शनैश्चोत्सादितस्तत्र स्नानशालामुपागमत् ।  
 भद्रासनं ततश्चित्रं ऋषिरन्वाविशन्नवम् ॥ ३  
 अथोपविष्टश्च यदा तस्मिन्भद्रासने तदा ।  
 स्नापयामास शनैस्तमृषि सुखहस्तवत् ।  
 दिव्यं च विधिवच्चक्रे सोपचारं मुनेस्तदा ॥ ४  
 स तेन सुमुखोष्णेन तस्या हस्तमुखेन च ।  
 व्यतीतां रजनीं कृत्स्नां नाजानात्स महाव्रतः ॥ ५  
 तत उत्थाय स मुनिस्तदा परमविस्मितः ।  
 पूर्वस्यां दिशि सूर्यं च सोऽपश्यदुदितं दिवि ॥ ६  
 तस्य बुद्धिरियं किं नु मोहस्तत्त्वमिदं भवेत् ।  
 अथोपास्य सहस्रांशुं किं करोमीत्युवाच ताम् ॥ ७  
 सा चामृतरसप्रख्यमृषेरन्नमुपाहरत् ।  
 तस्य स्वादुतयान्नस्य न प्रभूतं चकार सः ।  
 व्यगमच्चाप्यहःशेषं ततः संध्यागमत्पुनः ॥ ८  
 अथ स्त्री भगवन्तं सा सुप्यतामित्यचोदयत् ।  
 तत्र वै शयने दिव्ये तस्य तस्याश्च कल्पिते ॥ ९

अष्टावक्र उवाच ।

न भद्रे परदारेषु मनो मे संप्रसज्जति ।  
 उत्तिष्ठ भद्रे भद्रं ते स्वप वै विरमस्व च ॥ १०

भीष्म उवाच ।

सा तदा तेन विप्रेण तथा धृत्या निवर्तिता ।  
 स्वतन्त्रास्मीत्युवाचैनं न धर्मच्छलमस्ति ते ॥ ११

अष्टावक्र उवाच ।

नास्ति स्वतन्त्रता स्त्रीणामस्वतन्त्रा हि योषितः ।  
 प्रजापतिमतं ह्येतन्न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ १२

रुयुवाच ।

बाधते मैथुनं विप्र मम भक्तिं च पश्य वै ।  
 अधर्मं प्राप्स्यसे विप्र यन्मां त्वं नाभिनन्दसि ॥ १३

अष्टावक्र उवाच ।

हरन्ति दोषजातानि नरं जातं यथेच्छकम् ।  
 प्रभवामि सदा धृत्या भद्रे स्वं शयनं व्रज ॥ १४

रुयुवाच ।

शिरसा प्रणमे विप्र प्रसादं कर्तुमर्हसि ।  
 भूमौ निपतमानायाः शरणं भव मेऽनघ ॥ १५  
 यदि वा दोषजातं त्वं परदारेषु पश्यसि ।  
 आत्मानं स्पर्शयाम्यद्य पाणिं गृहीष्व मे द्विज ॥ १६  
 न दोषो भविता चैव सत्येनैतद्वीम्यहम् ।  
 स्वतन्त्रां मां विजानीहि योऽधर्मः सोऽस्तु वै मयि ॥

अष्टावक्र उवाच ।

स्वतन्त्रा त्वं कथं भद्रे ब्रूहि कारणमत्र वै ।  
 नास्ति लोके हि काचित्स्त्री या वै स्वातन्त्र्यमर्हति ॥  
 पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।  
 पुत्राश्च स्थविरीभावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ १९

रुयुवाच ।

कौमारं ब्रह्मचर्यं मे कन्यैवास्मि न संशयः ।  
 कुरु मा विमर्ति विप्र श्रद्धां विजहि मा मम ॥ २०

अष्टावक्र उवाच ।

यथा मम तथा तुभ्यं यथा तव तथा मम ।  
 जिज्ञासेयमृषेस्तस्य विप्रः सत्यं नु किं भवेत् ॥ २१  
 आश्चर्यं परम हीदं किं नु श्रेयो हि मे भवेत् ।  
 दिव्याभरणवस्त्रा हि कन्येयं मामुपस्थिता ॥ २२  
 किं त्वस्याः परमं रूपं जीर्णमासीत्कथं पुनः ।  
 कन्यारूपमिहाद्यैव किमिहात्रोत्तरं भवेत् ॥ २३  
 यथा परं शक्तिधृतेर्न व्युत्थास्ये कथंचन ।  
 न रोचये हि व्युत्थानं धृत्यैवं साधयाम्यहम् ॥ २४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

२२

युधिष्ठिर उवाच ।

न विभेति कथं सा स्त्री शापस्य परमद्युतेः ।  
कथं निवृत्तो भगवांस्तद्भवान्प्रब्रवीतु मे ॥ १

भीष्म उवाच ।

अष्टावक्रोऽन्वपृच्छतां रूपं विकुरुषे कथम् ।  
न चानृतं ते वक्तव्यं ब्रूहि ब्राह्मणकाम्यया ॥ २

स्त्रियुवाच ।

द्यावापृथिवीमात्रैषा काम्या ब्राह्मणसत्तम ।  
शृणुष्ववाहितः सर्वं यदिदं सत्यविक्रम ॥ ३  
उत्तरां मां दिशं विद्धि दृष्टं स्त्रीचापलं च ते ।  
अव्युत्थानेन ते लोका जिताः सत्यपराक्रम ॥ ४  
जिज्ञासेयं प्रयुक्ता मे स्थिरीकर्तुं तवानघ ।  
स्थविराणामपि स्त्रीणां बाधते मैथुनज्वरः ॥ ५  
तुष्टः पितामहस्तेऽद्य तथा देवाः सवासवाः ।  
स त्वं येन च कार्येण संप्राप्तो भगवानिह ॥ ६  
प्रेषितस्तेन विप्रेण कन्यापित्रा द्विजर्षभ ।  
तवोपदेशं कर्तुं वै तच्च सर्वं कृतं मया ॥ ७  
क्षेमी गमिष्यसि गृहाऽश्रमश्च न भविष्यति ।  
कन्यां प्राप्स्यसि तां विप्र पुत्रिणी च भविष्यति ॥  
काम्यया पृष्टवांस्त्वं मां ततो व्याहृतमुत्तरम् ।  
अनतिक्रमणीयैषा कृत्स्नैर्लोकैस्त्रिभिः सदा ॥ ९  
गच्छस्व सुकृतं कृत्वा किं वान्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।  
यावद्ब्रवीमि विप्रर्षे अष्टावक्र यथातथम् ॥ १०  
ऋषिणा प्रसादिता चास्मि तव हेतोर्द्विजर्षभ ।  
तस्य संमाननार्थं मे त्वयि वाक्यं प्रभाषितम् ॥ ११  
श्रुत्वा तु वचनं तस्याः स विप्रः प्राञ्जलिः स्थितः ।  
अनुज्ञातस्तथा चापि स्वगृहं पुनराव्रजत् ॥ १२  
गृहमागम्य विश्रान्तः स्वजन प्रतिपूज्य च ।

अभ्यगच्छत तं विप्रं न्यायतः कुरुनन्दन ॥ १३  
पृष्टश्च तेन विप्रेण दृष्टं त्वेत्तन्निर्दर्शनम् ।  
प्राह विप्रं तदा विप्रः सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥ १४  
भवताहमनुज्ञातः प्रस्थितो गन्धमादनम् ।  
तस्य चोत्तरतो देशे दृष्टं तदैवतं महत् ॥ १५  
तथा चाहमनुज्ञातो भवांश्चापि प्रकीर्तितः ।  
श्रावितश्चापि तद्वाक्यं गृहमभ्यागतः प्रभो ॥ १६  
तमुवाच ततो विप्रः प्रतिगृहीष्व मे सुताम् ।  
नक्षत्रतिथिसंयोगे पात्रं हि परमं भवान् ॥ १७

भीष्म उवाच ।

अष्टावक्रस्तथेत्युक्त्वा प्रतिगृह्य च तां प्रभो ।  
कन्यां परमधर्मात्मा प्रीतिमांश्चाभवत्तदा ॥ १८  
कन्यां तां प्रतिगृह्यैव भार्या परमशोभनाम् ।  
उवास मुदितस्तत्र आश्रमे स्वे गतज्वरः ॥ १९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

२३

युधिष्ठिर उवाच ।

किमाहुर्भरतश्रेष्ठ पात्रं विप्राः सनातनम् ।  
ब्राह्मणं लिङ्गिनं चैव ब्राह्मणं वाप्यलिङ्गिनम् ॥ १

भीष्म उवाच ।

स्ववृत्तिमभिपन्नाय लिङ्गिने वेतराय वा ।  
देयमाहुर्महाराज उभावेतौ तपस्विनौ ॥ २

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रद्धया परया पूतो यः प्रयच्छेद्विजातये ।  
हव्यं कव्यं तथा दानं को दोषः स्यात्पितामह ॥ ३

भीष्म उवाच ।

श्रद्धापूतो नरस्तात दुर्दान्तोऽपि न संशयः ।  
पूतो भवति सर्वत्र किं पुनस्त्वं महीपते ॥ ४

युधिष्ठिर उवाच ।

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवेषु सततं नरः ।  
कव्यप्रदाने तु बुधाः परीक्ष्यं ब्राह्मणं विदुः ॥ ५

भीष्म उवाच ।

न ब्राह्मणः साधयते हव्यं दैवात्प्रसिध्यति ।  
देवप्रसादादिज्यन्ते यजमाना न संशयः ॥ ६  
ब्राह्मणा भरतश्रेष्ठ सततं ब्रह्मवादिनः ।

मार्कण्डेयः पुरा प्राह इह लोकेषु बुद्धिमान् ॥ ७

युधिष्ठिर उवाच ।

अपूर्वोऽप्यथ वा विद्वान्संबन्धी वाथ यो भवेत् ।  
तपस्वी यज्ञशीलो वा कथं पात्रं भवेत्तु सः ॥ ८

भीष्म उवाच ।

कुलीनः कर्मकृद्वैद्यस्तथा चाप्यानृशंखवान् ।  
ह्रीमानृजुः सत्यवादी पात्रं पूर्वं च ते त्रयः ॥ ९  
तत्रेदं शृणु मे पार्थ चतुर्णां तेजसां मतम् ।  
पृथिव्याः काश्यपस्याग्नेर्मार्कण्डेयस्य चैव हि ॥ १०

पृथिव्युवाच ।

यथा महार्णवे क्षिप्तः क्षिप्रं लोष्टो विनश्यति ।  
तथा दुश्चरितं सर्वं त्रय्यावृत्त्या विनश्यति ॥ ११

काश्यप उवाच ।

सर्वे च वेदाः सह षड्विंशैः  
सांख्यं पुराणं च कुले च जन्म ।  
नैतानि सर्वाणि गतिर्भवन्ति  
शीलव्यपेतस्य नरस्य राजन् ॥ १२

अग्निरुवाच ।

अधीयानः पण्डितं मन्यमानो  
यो विद्यया हन्ति यशः परेषाम् ।  
ब्रह्मन्स तेनाचरते ब्रह्महत्यां  
लोकास्तस्य ह्यन्तवन्तो भवन्ति ॥ १३

मार्कण्डेय उवाच ।

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।  
नाभिजानामि यद्यस्य सत्यस्यार्धमवाप्नुयात् ॥ १४

भीष्म उवाच ।

इत्युक्त्वा ते जग्मुराशु चत्वारोऽमिततेजसः ।  
पृथिवी काश्यपोऽग्निश्च प्रकृष्टायुश्च भार्गवः ॥ १५

युधिष्ठिर उवाच ।

यदिदं ब्राह्मणा लोके व्रतिनो भुञ्जते हविः ।  
भुक्तं ब्राह्मणकामाय कथं तत्सुकृतं भवेत् ॥ १६

भीष्म उवाच ।

आदिष्टिनो ये राजेन्द्र ब्राह्मणा वेदपारगाः ।  
भुञ्जते ब्रह्मकामाय व्रतलुप्ता भवन्ति ते ॥ १७

युधिष्ठिर उवाच ।

अनेकान्तं बहुद्वारं धर्ममाहुर्मनीषिणः ।  
किं निश्चितं भवेत्तत्र तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १८

भीष्म उवाच ।

अहिंसा सत्यमक्रोध आनृशंस्यं दमस्तथा ।  
आर्जवं चैव राजेन्द्र निश्चितं धर्मलक्षणम् ॥ १९  
ये तु धर्मं प्रशंसन्तश्चरन्ति पृथिवीमिमाम् ।  
अनाचरन्तस्तद्धर्मं संकरे निरताः प्रभो ॥ २०  
तेभ्यो रत्नं हिरण्यं वा गामश्चान्वा ददाति यः ।  
दश वर्षाणि विष्ठां स भुङ्क्ते निरयमाश्रितः ॥ २१  
मेदानां पुल्कसानां च तथैवान्तावसायिनाम् ।  
कृतं कर्माकृतं चापि रागमोहेन जल्पताम् ॥ २२  
वैश्वदेवं च ये मूढा विप्राय ब्रह्मचारिणे ।  
ददतीह न राजेन्द्र ते लोकान्भुञ्जतेऽशुभान् ॥ २३

युधिष्ठिर उवाच ।

किं परं ब्रह्मचर्यस्य किं परं धर्मलक्षणम् ।  
किं च श्रेष्ठतमं शौचं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २४

भीष्म उवाच ।

ब्रह्मचर्यं परं तात मधुमांसस्य वर्जनम् ।  
मर्यादायां स्थितो धर्मः शमः शौचस्य लक्षणम् ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कस्मिन्काले चरेद्धर्मं कस्मिन्कालेऽर्थमाचरेत् ।  
कस्मिन्काले सुखी च स्यात्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २६

भीष्म उवाच ।

काल्यमर्थं निषेवेत ततो धर्ममनन्तरम् ।  
पश्चात्कामं निषेवेत न च गच्छेत्प्रसङ्गिताम् ॥ २७  
ब्राह्मणांश्चाभिमन्येत गुरुंश्चाप्यभिपूजयेत् ।  
सर्वभूतानुलोमश्च मृदुशीलः प्रियंवदः ॥ २८  
अधिकारे यदनृतं राजगामि च पैशुनम् ।  
गुरोश्चालीककरणं समं तद्ब्रह्महृत्यया ॥ २९  
प्रहरेन्न नरेन्द्रेषु न गां हन्यात्तथैव च ।  
भूणहत्यासमं चैतदुभयं यो निषेवते ॥ ३०  
नाग्निं परित्यजेज्जातु न च वेदान्परित्यजेत् ।  
न च ब्राह्मणमाक्रोशेत्समं तद्ब्रह्महृत्यया ॥ ३१

युधिष्ठिर उवाच ।

कीदृशाः साधवो विप्राः केभ्यो दत्तं महाफलम् ।  
कीदृशानां च भोक्तव्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ३२

भीष्म उवाच ।

अक्रोधना धर्मपराः सत्यनित्या दमे रताः ।  
तादृशाः साधवो विप्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥  
अमानिनः सर्वसहा दृष्टार्था विजितेन्द्रियाः ।  
सर्वभूतहिता मैत्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥ ३४  
अलुब्धाः शुचयो वैद्या ह्रीमन्तः सत्यवादिनः ।  
स्वकर्मनिरता ये च तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥ ३५  
साङ्गांश्च चतुरो वेदान्योऽधीयीत द्विजर्षभः ।  
षड्भ्यो निवृत्तः कर्मभ्यस्तं पात्रमृषयो विदुः ॥ ३६

ये त्वेवंगुणजातीयास्तेभ्यो दत्तं महाफलम् ।  
सहस्रगुणमाप्नोति गुणार्हाय प्रदायकः ॥ ३७  
प्रज्ञाश्रुताभ्यां वृत्तेन शीलेन च समन्वितः ।  
तारयेत कुलं कृत्स्नमेकोऽपीह द्विजर्षभः ॥ ३८  
गामश्वं वित्तमन्नं वा तद्विधे प्रतिपादयेत् ।  
द्रव्याणि चान्यानि तथा प्रेत्यभावे न शोचति ॥ ३९  
तारयेत कुलं कृत्स्नमेकोऽपीह द्विजोत्तमः ।  
किमङ्ग पुनरेकं वै तस्मात्पात्रं समाचरेत् ॥ ४०  
निश्म्य च गुणोपेतं ब्राह्मणं साधुसंमतम् ।  
दूरादानाययेत्कृत्ये सर्वतश्चाभिपूजयेत् ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

२४

युधिष्ठिर उवाच ।

श्राद्धकाले च दैवे च धर्मे चापि पितामह ।  
इच्छामीह त्वयाख्यातं विहितं यत्सुरर्षिभिः ॥ १

भीष्म उवाच ।

दैवं पूर्वाह्निके कुर्यादपराह्णे तु पैतृकम् ।  
मङ्गलाचारसंपन्नः कृतशौचः प्रयत्नवान् ॥ २  
मनुष्याणां तु मध्याह्णे प्रदद्यादुपपत्तितः ।  
कालहीनं तु यद्दानं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ३  
लङ्घितं चावलीढं च कलिपूर्वं च यत्कृतम् ।  
रजस्वलाभिर्दृष्टं च तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ४  
अवधुष्टं च यद्भुक्तमव्रतेन च भारत ।  
परामृष्टं शुना चैव तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ५  
केशकीटावपतितं क्षुतं श्वभिरवेक्षितम् ।  
रुदितं चावधूतं च तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ६  
निरोकारेण यद्भुक्तं सशस्त्रेण च भारत ।  
दुरात्मना च यद्भुक्तं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ७  
परोच्छिष्टं च यद्भुक्तं परिभुक्तं च यद्भवेत् ।

दैवे पित्र्ये च सततं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ८  
 गर्हितं निन्दितं चैव परिविष्टं समन्युना ।  
 दैवं वाप्यथ वा पैत्र्यं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ९  
 मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यच्छ्राद्धं परिविष्यते ।  
 त्रिभिर्वर्णैर्नरश्रेष्ठ तं भागं रक्षसां विदुः ॥ १०  
 आज्याहुतिं विना चैव यत्किञ्चित्परिविष्यते ।  
 दुराचारैश्च यद्भुक्तं तं भागं रक्षसां विदुः ॥ ११  
 ये भागा रक्षसां प्रोक्तास्त उक्ता भरतर्षभ ।  
 अत ऊर्ध्वं विसर्गस्य परीक्षां ब्राह्मणे शृणु ॥ १२  
 यावन्तः पतिता विप्रा जडोन्मत्तास्तथैव च ।  
 दैवे वाप्यथ वा पित्र्ये राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥ १३  
 श्वित्री कुष्ठी च क्लीबश्च तथा यक्ष्महृत्तश्च यः ।  
 अप्सारी च यश्चान्धो राजन्नार्हन्ति सत्कृतिम् ॥  
 चिकित्सका देवलका वृथानियमधारिणः ।  
 सोमविक्रयिणश्चैव श्राद्धे नार्हन्ति केतनम् ॥ १५  
 गायना नर्तकाश्चैव प्लवका वादकास्तथा ।  
 कथका योधकाश्चैव राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥ १६  
 होतारो वृषलानां च वृषलाध्यापकास्तथा ।  
 तथा वृषलशिष्याश्च राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥ १७  
 अनुयोक्ता च यो विप्रो अनुयुक्तश्च भारत ।  
 नार्हन्तस्तावपि श्राद्धं ब्रह्मविक्रयिणौ हि तौ ॥ १८  
 अग्रणीर्यः कृतः पूर्वं वर्णावरपरिग्रहः ।  
 ब्राह्मणः सर्वविद्योऽपि राजन्नार्हति केतनम् ॥ १९  
 अनग्रयश्च ये विप्रा मृतनिर्यातकाश्च ये ।  
 स्तेनाश्च पतिताश्चैव राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥ २०  
 अपरिज्ञातपूर्वाश्च गणपूर्वाश्च भारत ।  
 पुत्रिकापूर्वपुत्राश्च श्राद्धे नार्हन्ति केतनम् ॥ २१  
 ऋणकर्ता च यो राजन्यश्च वार्धुषिको द्विजः ।  
 प्राणिविक्रयवृत्तिश्च राजन्नार्हन्ति केतनम् ॥ २२  
 स्त्रीपूर्वाः काण्डपृष्ठाश्च यावन्तो भरतर्षभ ।

अजपा ब्राह्मणाश्चैव श्राद्धे नार्हन्ति केतनम् ॥ २३  
 श्राद्धे दैवे च निर्दिष्टा ब्राह्मणा भरतर्षभ ।  
 दातुः प्रतिग्रहीतुश्च शृणुष्वानुग्रहं पुनः ॥ २४  
 चीर्णव्रता गुणैर्युक्ता भवेयुर्येऽपि कर्षकाः ।  
 सावित्रीज्ञाः क्रियावन्तस्ते राजन्केतनक्षमाः ॥ २५  
 क्षात्रधर्मिणमप्याजौ केतयेत्कुलजं द्विजम् ।  
 न त्वेव वणिजं तात श्राद्धेषु परिकल्पयेत् ॥ २६  
 अग्निहोत्री च यो विप्रो ग्रामवासी च यो भवेत् ।  
 अस्तेनश्चातिथिज्ञश्च स राजन्केतनक्षमः ॥ २७  
 सावित्रीं जपते यस्तु त्रिकालं भरतर्षभ ।  
 भिक्षावृत्तिः क्रियावांश्च स राजन्केतनक्षमः ॥ २८  
 उदितास्तमितो यश्च तथैवास्तमितोदितः ।  
 अहिंसश्चाल्पदोपश्च स राजन्केतनक्षमः ॥ २९  
 अकल्कको ह्यतर्कश्च ब्राह्मणो भरतर्षभ ।  
 ससंज्ञो भैक्ष्यवृत्तिश्च स राजन्केतनक्षमः ॥ ३०  
 अव्रती कितवः स्तेनः प्राणिविक्रय्यथो वणिक् ।  
 पश्चाच्च पीतवान्सोमं स राजन्केतनक्षमः ॥ ३१  
 अर्जयित्वा धनं पूर्वं दारुणैः कृषिकर्मभिः ।  
 भवेत्सर्वातिथिः पश्चात्स राजन्केतनक्षमः ॥ ३२  
 ब्रह्मविक्रयनिर्दिष्टं स्त्रिया यच्चार्जितं धनम् ।  
 अदेयं पितृदेवेभ्यो यच्च क्लैव्यादुपार्जितम् ॥ ३३  
 क्रियमाणेऽप्यवर्गे तु यो द्विजो भरतर्षभ ।  
 न व्याहरति यद्युक्तं तस्याधर्मो गवानृतम् ॥ ३४  
 श्राद्धस्य ब्राह्मणः कालः प्राप्तं दधि घृतं तथा ।  
 सोमक्षयश्च मांसं च यदारण्यं शुधिष्ठिर ॥ ३५  
 श्राद्धापवर्गे विप्रस्य स्वधा वै स्वदिता भवेत् ।  
 क्षत्रियस्याप्यथो ब्रूयात्प्रीयन्तां पितरस्त्विति ॥ ३६  
 अपवर्गे तु वैश्यस्य श्राद्धकर्मणि भारत ।  
 अक्षय्यमभिधातव्यं स्वस्ति शूद्रस्य भारत ॥ ३७  
 पुण्याहवाचनं दैवे ब्राह्मणस्य विधीयते ।



एतदेव निरोकारं क्षत्रियस्य विधीयते ।  
 वैश्यस्य चैव वक्तव्यं प्रीयन्तां देवता इति ॥ ३८  
 कर्मणामानुपूर्वी च विधिपूर्वकृतं शृणु ।  
 जातकर्मादिकान्सर्वास्त्रिषु वर्णेषु भारत ।  
 ब्रह्मक्षत्रे हि मन्त्रोक्ता वैश्यस्य च युधिष्ठिर ॥ ३९  
 विप्रस्य रशना मौञ्जी मौर्वी राजन्यगामिनी ।  
 बालवजीत्येव वैश्यस्य धर्म एष युधिष्ठिर ॥ ४०  
 दातुं प्रतिग्रहीतुश्च धर्माधर्माविमौ शृणु ।  
 ब्राह्मणस्यानृतेऽधर्मः प्रोक्तः पातकसंज्ञितः ।  
 चतुर्गुणः क्षत्रियस्य वैश्यस्याष्टगुणः स्मृतः ॥ ४१  
 नान्यत्र ब्राह्मणोऽश्रीयात्पूर्वं विप्रेण केतितः ।  
 यवीयान्पशुहिंसायां तुल्यधर्मो भवेत्स हि ॥ ४२  
 अथ राजन्यवैश्याभ्यां यद्यश्रीयात्तु केतितः ।  
 यवीयान्पशुहिंसायां भागार्धं समवाप्नुयात् ॥ ४३  
 दैवं वाप्यथ वा पित्र्यं योऽश्रीयाद्ब्राह्मणादिषु ।  
 अस्नातो ब्राह्मणो राजंस्तस्याधर्मो गवानृतम् ॥ ४४  
 आशौचो ब्राह्मणो राजन्योऽश्रीयाद्ब्राह्मणादिषु ।  
 ज्ञानपूर्वमथो लोभात्तस्याधर्मो गवानृतम् ॥ ४५  
 अन्नेनान्नं च यो लिप्सेत्कर्मार्यं चैव भारत ।  
 आमन्त्रयति राजेन्द्र तस्याधर्मोऽनृतं स्मृतम् ॥ ४६  
 अवेदव्रतचारित्रास्त्रिभिर्वर्णैर्युधिष्ठिर ।  
 मन्त्रवत्परिविष्यन्ते तेष्वधर्मो गवानृतम् ॥ ४७

युधिष्ठिर उवाच ।

पित्र्यं वाप्यथ वा दैवं दीयते यत्पितामह ।  
 एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं दत्तं येषु महाफलम् ॥ ४८

भीष्म उवाच ।

येषां दाराः प्रतीक्षन्ते सुवृष्टिमिव कर्षकाः ।  
 उच्छेषपरिशेषं हि तान्भोजय युधिष्ठिर ॥ ४९  
 चारित्रनियता राजन्ये कृशाः कृशवृत्तयः ।  
 अर्थिनश्चोपगच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५०

तद्भक्तास्तद्गृहा राजंस्तद्वनास्तदपाश्रयाः ।  
 अर्थिनश्च भवन्त्यर्थे तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५१  
 तत्करेभ्यः परेभ्यो वा ये भयार्ता युधिष्ठिर ।  
 अर्थिनो भोक्तुमिच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५२  
 अकल्ककस्य विप्रस्य भैक्षोत्करकृतात्मनः ।  
 बटवो यस्य भिक्षन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥ ५३  
 हृतस्वा हृतदाराश्च ये विप्रा देशसंप्लवे ।  
 अर्थार्थमभिगच्छन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥ ५४  
 व्रतिनो नियमस्थाश्च ये विप्राः श्रुतसंमताः ।  
 तत्समाप्त्यर्थमिच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५५  
 अव्युत्क्रान्ताश्च धर्मेषु पाषण्डसमयेषु च ।  
 कृशप्राणाः कृशधनास्तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५६  
 कृतसर्वस्वहरणा निर्दोषाः प्रभविष्णुभिः ।  
 स्पृहयन्ति च भुक्तान् तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५७  
 तपस्विनस्तपोनिष्ठास्तेषां भैक्षचराश्च ये ।  
 अर्थिनः किञ्चिदिच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५८  
 महाफलविधिर्दाने श्रुतस्ते भरतर्षभ ।  
 निरयं येन गच्छन्ति स्वर्गं चैव हि तच्छृणु ॥ ५९  
 गुर्वर्थं वाभयार्थं वा वर्जयित्वा युधिष्ठिर ।  
 येऽनृतं कथयन्ति स्म ते वै निरयगामिनः ॥ ६०  
 परदाराभिहर्तारः परदाराभिमर्शिनः ।  
 परदारप्रयोक्तास्ते वै निरयगामिनः ॥ ६१  
 ये परस्वापहर्तारः परस्वानां च नाशकाः ।  
 सूचकाश्च परेषां ये ते वै निरयगामिनः ॥ ६२  
 प्रपाणां च सभानां च संक्रमणां च भारत ।  
 अगाराणां च भेत्तारो नरा निरयगामिनः ॥ ६३  
 अनाथां प्रमदां बालां वृद्धां भीतां तपस्विनीम् ।  
 वञ्चयन्ति नरा ये च ते वै निरयगामिनः ॥ ६४  
 वृत्तिच्छेदं गृहच्छेदं दारच्छेदं च भारत ।  
 मित्रच्छेदं तथाशायास्ते वै निरयगामिनः ॥ ६५

सूचकाः संधिभेत्तारः परवृत्त्युपजीवकाः ।  
 अकृतज्ञाश्च मित्राणां ते वै निरयगामिनः ॥ ६६  
 पाषण्डा दूषकाश्चैव समयानां च दूषकाः ।  
 ये प्रत्यवसिताश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ६७  
 कृताशं कृतनिर्वेशं कृतभक्तं कृतश्रमम् ।  
 भेदैर्ये व्यपकर्षन्ति ते वै निरयगामिनः ॥ ६८  
 पर्यश्रन्ति च ये दारानग्निभृत्यातिथींस्तथा ।  
 उत्सन्नपितृदेवेज्यास्ते वै निरयगामिनः ॥ ६९  
 वेदविक्रयिणश्चैव वेदानां चैव दूषकाः ।  
 वेदानां लेखकाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ७०  
 चातुराश्रम्यबाह्याश्च श्रुतिबाह्याश्च ये नराः ।  
 विकर्मभिश्च जीवन्ति ते वै निरयगामिनः ॥ ७१  
 केशविक्रयिका राजन्विषविक्रयिकाश्च ये ।  
 क्षीरविक्रयिकाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ७२  
 ब्राह्मणानां गवां चैव कन्यानां च युधिष्ठिर ।  
 येऽन्तरं यान्ति कार्येषु ते वै निरयगामिनः ॥ ७३  
 शस्त्रविक्रयिकाश्चैव कर्तारश्च युधिष्ठिर ।  
 शल्यानां धनुषां चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ७४  
 शल्यैर्वा शङ्कुभिर्वापि श्वभैर्वा भरतर्षभ ।  
 ये मार्गमनुरुन्धन्ति ते वै निरयगामिनः ॥ ७५  
 उपाध्यायाश्च भृत्याश्च भक्ताश्च भरतर्षभ ।  
 ये त्यजन्त्यसमर्थास्तास्ते वै निरयगामिनः ॥ ७६  
 अप्राप्तदमकाश्चैव नासानां वेधकास्तथा ।  
 बन्धकाश्च पशूनां ये ते वै निरयगामिनः ॥ ७७  
 अगोप्ताश्छलद्रव्या बलिषङ्गागतत्पराः ।  
 समर्थाश्चाप्यदातारस्ते वै निरयगामिनः ॥ ७८  
 क्षान्तान्दान्तांस्तथा प्राज्ञान्दीर्घकालं सहोषितान् ।  
 त्यजन्ति कृतकृत्या ये ते वै निरयगामिनः ॥ ७९  
 बालानामथ वृद्धानां दासानां चैव ये नराः ।  
 अदत्त्वा भक्ष्यन्त्यग्रे ते वै निरयगामिनः ॥ ८०

एते पूर्वर्षिभिर्हृष्टाः प्रोक्ता निरयगामिनः ।  
 भागिनः स्वर्गलोकस्य वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ ८१  
 सर्वेष्वेव तु कार्येषु दैवपूर्वेषु भारत ।  
 हन्ति पुत्रान्पशून्कृत्स्नान्ब्राह्मणातिक्रमः कृतः ॥ ८२  
 दानेन तपसा चैव सत्येन च युधिष्ठिर ।  
 ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८३  
 शुश्रूषाभिस्तपोभिश्च श्रुतमादाय भारत ।  
 ये प्रतिग्रहनिःस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८४  
 भयात्पापात्तथाबाधादरिद्र्याद्व्याधिधर्षणात् ।  
 यत्कृते प्रतिमुच्यन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८५  
 क्षमावन्तश्च धीराश्च धर्मकार्येषु चोत्थिताः ।  
 मङ्गलाचारयुक्ताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८६  
 निवृत्ता मधुमांसेभ्यः परदारेभ्य एव च ।  
 निवृत्ताश्चैव मद्येभ्यस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८७  
 आश्रमाणां च कर्तारः कुलानां चैव भारत ।  
 देशानां नगराणां च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८८  
 वस्त्राभरणदातारो भक्षपानान्नदास्तथा ।  
 कुटुम्बानां च दातारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८९  
 सर्वहिंसानिवृत्ताश्च नराः सर्वसहाश्च ये ।  
 सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९०  
 मातरं पितरं चैव शुश्रूषन्ति जितेन्द्रियाः ।  
 भ्रातृणां चैव सस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९१  
 आढ्याश्च बलवन्तश्च यौवनस्थाश्च भारत ।  
 ये वै जितेन्द्रिया धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९२  
 अपराद्धेषु सस्नेहा मृदवो मित्रवत्सलाः ।  
 आराधनसुखाश्चापि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९३  
 सहस्रपरिवेष्टारस्तथैव च सहस्रदाः ।  
 त्रातारश्च सहस्राणां पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ ९४  
 सुवर्णस्य च दातारो गवां च भरतर्षभ ।  
 यानानां वाहनानां च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९५

वैवाहिकानां कन्यानां प्रेक्ष्याणां च युधिष्ठिर ।  
 दातारो वाससां चैव ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९६  
 विहारावसथोद्यानकूपारामसभाप्रदाः ।  
 वप्राणां चैव कर्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९७  
 निवेशनानां क्षेत्राणां वसतीनां च भारत ।  
 दातारः प्रार्थितानां च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९८  
 रसानामथ बीजानां धान्यानां च युधिष्ठिर ।  
 स्वयमुत्पाद्य दातारः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ ९९  
 यस्मिन्कस्मिन्कुले जाता बहुपुत्राः शतायुषः ।  
 सानुक्रोशा जितक्रोधाः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ १००  
 एतदुक्तममुत्रार्थं दैव पित्र्यं च भारत ।  
 धर्माधर्मौ च दानस्य यथा पूर्वर्षिभिः कृतौ ॥ १०१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

२५

युधिष्ठिर उवाच ।

इदं मे तत्त्वतो राजन्वक्तुमर्हसि भारत ।  
 अहिंसयित्वा केनेह ब्रह्महत्या विधीयते ॥ १  
 भीष्म उवाच ।  
 व्यासमामन्त्र्य राजेन्द्र पुरा यत्पृष्ठवानहम् ।  
 तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि तदिहैकमनाः शृणु ॥ २  
 चतुर्थस्त्वं वसिष्ठस्य तत्त्वमाख्याहि मे मुने ।  
 अहिंसयित्वा केनेह ब्रह्महत्या विधीयते ॥ ३  
 इति पृष्ठो महाराज पराशरशरीरजः ।  
 अब्रवीन्निपुणो धर्मे निःसंशयमनुत्तमम् ॥ ४  
 ब्राह्मणं स्वयमाहूय शिक्षार्थं कृशवृत्तिनम् ।  
 ब्रूयान्नास्तीति यः पश्चात्तं विद्याद्वह्मघातिनम् ॥ ५  
 मध्यस्थस्येह विप्रस्य योऽनूचानस्य भारत ।  
 वृत्ति हरति दुर्बुद्धिस्तं विद्याद्वह्मघातिनम् ॥ ६  
 गोकुलस्य तृपार्तस्य जलार्थं वसुधाधिप ।

उत्पादयति यो विघ्नं तं विद्याद्वह्मघातिनम् ॥ ७  
 यः प्रवृत्तां श्रुतिं सम्यक्शास्त्रं वा मुनिभिः कृतम् ।  
 दूषयत्यनभिज्ञाय तं विद्याद्वह्मघातिनम् ॥ ८  
 आत्मजां रूपसंपन्नां महतीं सहशे वरे ।  
 न प्रयच्छति यः कन्यां तं विद्याद्वह्मघातिनम् ॥ ९  
 अधर्मनिरतो मूढो मिथ्या यो वै द्विजातिषु ।  
 दद्यान्मर्मातिगं शोकं तं विद्याद्वह्मघातिनम् ॥ १०  
 चक्षुषा विप्रहीनस्य पङ्कलस्य जडस्य वा ।  
 हरेत यो वै सर्वस्वं तं विद्याद्वह्मघातिनम् ॥ ११  
 आश्रमे वा वने वा यो ग्रामे वा यदि वा पुरे ।  
 अग्निं समुत्सृजेन्मोहात्तं विद्याद्वह्मघातिनम् ॥ १२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

२६

युधिष्ठिर उवाच ।

तीर्थानां दर्शनं श्रेयः स्नानं च भरतर्षभ ।  
 श्रवणं च महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १  
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यानि भरतर्षभ ।  
 वक्तुमर्हसि मे तानि श्रोतास्मि नियतः प्रभो ॥ २

भीष्म उवाच ।

इममङ्गिरसा प्रोक्तं तीर्थवंशं महाद्युते ।  
 श्रोतुमर्हसि भद्रं ते प्राप्स्यसे धर्ममुत्तमम् ॥ ३  
 तपोवनगतं विप्रमभिगम्य महामुनिम् ।  
 पप्रच्छाङ्गिरस वीर गौतमः संशितव्रतः ॥ ४  
 अस्ति मे भगवन्कश्चित्तीर्थेभ्यो धर्मसंशयः ।  
 तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तन्मे शंस महानुने ॥ ५  
 उपस्पृश्य फलं किं स्यात्तेषु तीर्थेषु वै मुने ।  
 प्रेत्यभावे महाप्राज्ञ तद्यथास्ति तथा वद ॥ ६

अङ्गिरा उवाच ।

सप्ताहं चन्द्रभागां वै वितस्तामूर्मिमालिनीम् ।

विगाह्य वै निराहारो निर्ममो मुनिवद्भवेत् ॥ ७  
 काश्मीरमण्डले नद्यो याः पतन्ति महानदम् ।  
 ता नदीः सिन्धुमासाद्य शीलवान्स्वर्गमाप्नुयात् ॥ ८  
 पुष्करं च प्रभासं च नैमिषं सागरोदकम् ।  
 देविकासिन्द्रमार्गं च स्वर्णविन्दुं विगाह्य च ।  
 विबोध्यते विमानस्थः सोऽप्सरोगैः भिरमिष्टुतः ॥ ९  
 हिरण्यविन्दुं विक्षोभ्य प्रयतश्चाभिवाद्य तम् ।  
 कुशेशं च देवत्वं पूजते तस्य किल्बिषम् ॥ १०  
 इन्द्रतोयां समासाद्य गन्धमादनसंनिधौ ।  
 करतोयां कुरङ्गेषु त्रिरात्रोपोषितो नरः ।  
 अश्वमेधमवाप्नोति विगाह्य नियतः शुचिः ॥ ११  
 गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नेमिपर्वते ।  
 तथा कनखले स्नात्वा धूतपाप्मा दिवं व्रजेत् ॥ १२  
 अपां हृद उपस्पृश्य वाजपेयफलं लभेत् ।  
 ब्रह्मचारी जितक्रोधः सत्यसंधस्त्वर्हिसकः ॥ १३  
 यत्र भागीरथी गङ्गा भजते दिशमुत्तराम् ।  
 महेश्वरस्य निष्ठाने यो नरस्त्वभिषिच्यते ।  
 एकमासं निराहारः स्वयं पश्यति देवताः ॥ १४  
 सप्तगङ्गां त्रिगङ्गां च इन्द्रमार्गं च तर्पयन् ।  
 सुधां वै लभते भोक्तुं यो नरो जायते पुनः ॥ १५  
 महाश्रम उपस्पृश्य योऽग्निहोत्रपरः शुचिः ।  
 एकमासं निराहारः सिद्धिं मासेन स व्रजेत् ॥ १६  
 महाहृद उपस्पृश्य भृगुतुङ्गे त्वलोलुपः ।  
 त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा मुच्यते ब्रह्महत्या ॥ १७  
 कन्याकूप उपस्पृश्य बलाकायां कृतोदकः ।  
 देवेषु कीर्तिं लभते यशसा च विराजते ॥ १८  
 देशकाल उपस्पृश्य तथा सुन्दरिकाह्वदे ।  
 अश्विभ्यां रूपवर्चस्यं प्रेत्य वै लभते नरः ॥ १९  
 महागङ्गामुपस्पृश्य कृत्तिकाङ्गारके तथा ।  
 पक्षमेकं निराहारः स्वर्गमाप्नोति निर्मलः ॥ २०

वैमानिक उपस्पृश्य किङ्किणीकाश्रमे तथा ।  
 निवासेऽप्सरसां दिव्ये कामचारी महीयते ॥ २१  
 कालिकाश्रममासाद्य विपाशायां कृतोदकः ।  
 ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रान्मुच्यते भवात् ॥ २२  
 आश्रमे कृत्तिकानां तु स्नात्वा यस्तर्पयेत्पितृन् ।  
 तोषयित्वा महादेवं निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥ २३  
 महापुर उपस्पृश्य त्रिरात्रोपोषितो नरः ।  
 त्रसानां स्थावराणां च द्विपदानां भय त्यजेत् ॥ २४  
 देवदारुवने स्नात्वा धूतपाप्मा कृतोदकः ।  
 देवलोकमवाप्नोति सप्तरात्रोषितः शुचिः ॥ २५  
 कौशन्ते च कुशस्तम्बे द्रोणशर्मपदे तथा ।  
 आपःप्रपतने स्नातः सेव्यते सोऽप्सरोगणैः ॥ २६  
 चित्रकूटे जनस्थाने तथा मन्दाकिनीजले ।  
 विगाह्य वै निराहारो राजलक्ष्मीं निगच्छति ॥ २७  
 श्यामायास्त्वाश्रमं गत्वा उष्य चैवाभिषिच्य च ।  
 त्रींस्त्रिरात्रान्सं धाय गन्धर्वनगरे वसेत् ॥ २८  
 रमण्यां च उपस्पृश्य तथा वै गन्धतारिके ।  
 एकमासं निराहारस्त्वन्तर्धानफलं लभेत् ॥ २९  
 कौशिकीद्वारमासाद्य वायुभक्षस्त्वलोलुपः ।  
 एकविंशतिरात्रेण स्वर्गमारोहते नरः ॥ ३०  
 मतङ्गवाप्यां यः स्नायादेकरात्रेण सिध्यति ।  
 विगाहति ह्यनालम्बमन्धकं वै सनातनम् ॥ ३१  
 नैमिषे स्वर्गतीर्थे च उपस्पृश्य जितेन्द्रियः ।  
 फलं पुरुषमेधस्य लभेन्मासं कृतोदकः ॥ ३२  
 गङ्गाहृद उपस्पृश्य तथा चैवोत्पलावने ।  
 अश्वमेधमवाप्नोति यत्र मासं कृतोदकः ॥ ३३  
 गङ्गायमुनयोस्तीर्थे तथा कालंजरे गिरौ ।  
 षष्ठिहृद उपस्पृश्य दानं नान्यद्विशिष्यते ॥ ३४  
 दश तीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथापराः ।  
 समागच्छन्ति माध्यां तु प्रयागे भरतर्षभ ॥ ३५

माघमासं प्रयागे तु नियतः संशितव्रतः ।  
 स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठ निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥ ३६  
 मरुद्गण उपस्पृश्य पितृणामाश्रमे शुचिः ।  
 वैवस्वतस्य तीर्थे च तीर्थभूतो भवेन्नरः ॥ ३७  
 तथा ब्रह्मशिरो गत्वा भागीरथ्यां कृतोदकः ।  
 एकमासं निराहारः सोमलोकमवाप्नुयात् ॥ ३८  
 कपोतके नरः स्नात्वा अष्टावक्रे कृतोदकः ।  
 द्वादशाहं निराहारो नरमेधफलं लभेत् ॥ ३९  
 मुञ्जपृष्ठं गयां चैव निर्ऋतिं देवपर्वतम् ।  
 तृतीयां क्रौञ्चपार्दीं च ब्रह्महत्या विशुध्यति ॥ ४०  
 कलश्यां वाप्युपस्पृश्य वेद्यां च बहुशोजलाम् ।  
 अग्नेः पुरे नरः स्नात्वा विशालायां कृतोदकः ।  
 देवहृद उपस्पृश्य ब्रह्मभूतो विराजते ॥ ४१  
 पुरापवर्तनं नन्दां महानन्दां च सेव्य वै ।  
 नन्दने सेव्यते दान्तस्त्वप्सरोभिरहिंसकः ॥ ४२  
 उर्वशीकृत्तिकायोगे गत्वा यः सुसमाहितः ।  
 लौहित्ये विधिवत्स्नात्वा पुण्डरीकफलं लभेत् ॥ ४३  
 रामहृद उपस्पृश्य विशालायां कृतोदकः ।  
 द्वादशाहं निराहारः कल्मषाद्विप्रमुच्यते ॥ ४४  
 महाहृद उपस्पृश्य शुद्धेन मनसा नरः ।  
 एकमासं निराहारो जमदग्निर्गतिं लभेत् ॥ ४५  
 विन्ध्ये संताप्य चात्मानं सत्यसंधस्त्वहिंसकः ।  
 षण्मासं पदमास्थाय मासेनैकेन शुध्यति ॥ ४६  
 नर्मदायामुपस्पृश्य तथा सूपारिकोदके ।  
 एकपक्षं निराहारो राजपुत्रो विधीयते ॥ ४७  
 जम्बूमार्गे त्रिभिर्मसैः संयतः सुसमाहितः ।  
 अहोरात्रेण चैकेन सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४८  
 कोकामुखे विगाह्यापो गत्वा चण्डालिकाश्रमम् ।  
 शाकभक्षश्चीरवासाः कुमारीर्विन्दते दश ॥ ४९  
 वैवस्वतस्य सदनं न स गच्छेत्कदाचन ।

यस्य कन्याहृदे वासो देवलोकं स गच्छति ॥ ५०  
 प्रभासे त्वेकरात्रेण अमावास्यां समाहितः ।  
 सिध्यतेऽत्र महाबाहो यो नरो जायते पुनः ॥ ५१  
 उज्जानक उपस्पृश्य आर्द्धिषेणस्य चाश्रमे ।  
 पिङ्गायाश्चाश्रमे स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५२  
 कुल्यायां समुपस्पृश्य जप्त्वा चैवाघमर्षणम् ।  
 अश्वमेधमवाप्नोति त्रिरात्रोपेषितः शुचिः ॥ ५३  
 पिण्डारक उपस्पृश्य एकरात्रोपेषितो नरः ।  
 अग्निष्टोममवाप्नोति प्रभातां शर्वरीं शुचिः ॥ ५४  
 तथा ब्रह्मसरो गत्वा धर्मारण्योपशोमितम् ।  
 पुण्डरीकमवाप्नोति प्रभातां शर्वरीं शुचिः ॥ ५५  
 मैनाके पर्वते स्नात्वा तथा संध्यामुपास्य च ।  
 कामं जित्वा च वै मास सर्वमेधफलं लभेत् ॥ ५६  
 विख्यातो हिमवान्पुण्यः शंकरश्चशुरो गिरिः ।  
 आकरः सर्वरत्नानां सिद्धचारणसेवितः ॥ ५७  
 शरीरमुत्सृजेत्तत्र विधिपूर्वमनाशके ।  
 अश्रुवं जीवितं ज्ञात्वा यो वै वेदान्तमो द्विजः ॥  
 अभ्यर्च्य देवतास्तत्र नमस्कृत्य मुनीस्तथा ।  
 ततः सिद्धो दिवं गच्छेद्ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ५९  
 कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमावसेत् ।  
 न तेन किञ्चिन्न प्राप्तं तीर्थाभिगमनाद्भवेत् ॥ ६०  
 यान्यगम्यानि तीर्थानि दुर्गाणि विषमाणि च ।  
 मनसा तानि गम्यानि सर्वतीर्थसमासतः ॥ ६१  
 इदं मेध्यमिदं धन्यमिदं स्वर्ग्यमिदं सुखम् ।  
 इदं रहस्यं देवानामाप्ताव्यानां च पावनम् ॥ ६२  
 इदं दद्याद्ब्रह्मजातीनां साधूनामात्मजस्य वा ।  
 सुहृदां च जपेत्कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य वा ॥ ६३  
 दत्तवान्गौतमस्येदमङ्गिरा वै महातपाः ।  
 गुरुभिः समनुज्ञातः काश्यपेन च धीमता ॥ ६४  
 महर्षीणामिदं जप्यं पावनानां तथोत्तमम् ।

जपंश्चाभ्युत्थितः शश्वन्निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥ ६५  
इदं यश्चापि शृणुयाद्रहस्यं त्वङ्गिरोमतम् ।  
उत्तमे च कुले जन्म लभेज्जातिं च संस्मरेत् ॥ ६६  
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

२७

वैशंपायन उवाच ।

बृहस्पतिसमं बुद्ध्या क्षमया ब्रह्मणः समम् ।  
पराक्रमे शक्रसममादित्यसमतेजसम् ॥ १  
गाङ्गेयमर्जुनेनाजौ निहतं भूरिवर्चसम् ।  
भ्रातृभिः सहितोऽन्यैश्च पर्युपास्ते युधिष्ठिरः ॥ २  
शयानं वीरशयने कालाकाङ्क्षिणमच्युतम् ।  
आजगमुर्भरतश्रेष्ठं द्रष्टुकामा महर्षयः ॥ ३  
अत्रिर्वसिष्ठोऽथ भृगुः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।  
अङ्गिरा गौतमोऽगस्त्यः सुमतिः स्वायुरात्मवान् ॥ ४  
विश्वामित्रः स्थूलशिराः संवर्तः प्रमतिर्दमः ।  
उशना बृहस्पतिर्व्यासश्चयवनः काश्यपो ध्रुवः ॥ ५  
दुर्वासा जमदग्निश्च मार्कण्डेयोऽथ गालवः ।  
भरद्वाजश्च रैभ्यश्च यवक्रीतस्त्रितस्तथा ॥ ६  
स्थूलाक्षः शकलाक्षश्च कण्वो मेधातिथिः क्रशः ।  
नारदः पर्वतश्चैव सुधन्वाथैकतो द्वितः ॥ ७  
नितंभूर्भुवनो धौम्यः शतानन्दोऽकृतव्रणः ।  
जामदग्न्यस्तथा रामः काम्यश्चेत्येवमादयः ।  
समागता महात्मानो भीष्मं द्रष्टुं महर्षयः ॥ ८  
तेषां महात्मनां पूजामागतानां युधिष्ठिरः ।  
भ्रातृभिः सहितश्चक्रे यथावदनुपूर्वशः ॥ ९  
ते पूजिताः सुखासीनाः कथाश्चक्रुर्महर्षयः ।  
भीष्माश्रिताः सुमधुराः सर्वेन्द्रियमनोहराः ॥ १०  
भीष्मस्तेषां कथाः श्रुत्वा ऋषीणां भावितात्मनाम् ।  
मेने दिविस्थमात्मानं तुष्ट्या परमया युतः ॥ ११

ततस्ते भीष्ममामन्त्रय पाण्डवांश्च महर्षयः ।  
अन्तर्धानं गताः सर्वे सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ १२  
तानृषीन्सुमहाभागानन्तर्धानगतानपि ।  
पाण्डवास्तुष्टुवुः सर्वे प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः ॥ १३  
प्रसन्नमनसः सर्वे गाङ्गेयं कुरुसत्तमाः ।  
उपतस्थुर्यथोद्यन्तमादित्यं मन्त्रकोविदाः ॥ १४  
प्रभावात्तपसस्तेषामृषीणां बीक्ष्य पाण्डवाः ।  
प्रकाशन्तो दिशः सर्वा विस्मयं परमं ययुः ॥ १५  
महाभाग्यं परं तेषामृषीणामनुचिन्त्य ते ।  
पाण्डवाः सह भीष्मेण कथाश्चक्रुस्तदाश्रयाः ॥ १६  
कथान्ते शिरसा पादौ स्पृष्ट्वा भीष्मस्य पाण्डवः ।  
धर्म्यं धर्मसुतः प्रश्नं पर्यपृच्छयुधिष्ठिरः ॥ १७  
के देशाः के जनपदा आश्रमाः के च पर्वताः ।  
प्रकृष्टाः पुण्यतः काश्च ज्ञेया नद्यः पितामह ॥ १८

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
शिलोच्छ्रवृत्तेः संवादं सिद्धस्य च युधिष्ठिर ॥ १९  
इमां कश्चित्परिक्रम्य पृथिवीं शैलभूषिताम् ।  
असकृद्विपदां श्रेष्ठः श्रेष्ठस्य गृहमेधिनः ॥ २०  
शिलवृत्तेर्गृहं प्राप्तः स तेन विधिनार्चितः ।  
कृतकृत्य उपातिष्ठत्सिद्धं तमतिथि तदा ॥ २१  
तौ समेत्य महात्मानौ सुखासीनौ कथाः शुभाः ।  
चक्रतुर्वेदसंबद्धास्तच्छेषकृतलक्षणाः ॥ २२  
शिलवृत्तिः कथान्ते तु सिद्धमामन्त्रय यन्ततः ।  
प्रश्नं पप्रच्छ मेधावी यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २३  
शिलवृत्तिरुवाच ।  
के देशाः के जनपदाः केऽऽश्रमाः के च पर्वताः ।  
प्रकृष्टाः पुण्यतः काश्च ज्ञेया नद्यस्तदुच्यताम् ॥ २४  
सिद्ध उवाच ।  
ते देशास्ते जनपदास्तेऽऽश्रमास्ते च पर्वताः ।

येषां भागीरथी गङ्गा मध्येनैति सरिद्वरा ॥ २५  
 तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुनः ।  
 गतिं तां न लभेज्जन्तुर्गङ्गां संसेव्य यां लभेत् ॥ २६  
 स्पृष्टानि येषां गाङ्गेयैस्तोयैर्गात्राणि देहिनाम् ।  
 न्यस्तानि न पुनस्तेषां त्यागः स्वर्गाद्विधीयते ॥ २७  
 सर्वाणि येषां गाङ्गेयैस्तोयैः कृत्यानि देहिनाम् ।  
 गां त्यक्त्वा मानवा विप्र दिवि तिष्ठन्ति तेऽचलाः ॥  
 पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि ये नराः ।  
 पश्चाद्गङ्गां निषेवन्ते तेऽपि यान्त्युत्तमां गतिम् ॥ २९  
 स्नातानां शुचिमिस्तोयैर्गाङ्गेयैः प्रयतात्मनाम् ।  
 व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ॥ ३०  
 यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति ।  
 तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गं प्राप्य महीयते ॥ ३१  
 अपहृत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः ।  
 तथापहत्य पाप्मानं भाति गङ्गाजलोक्षितः ॥ ३२  
 विसोमा इव शर्वर्यो विपुष्पास्तरवो यथा ।  
 तद्वद्देशा दिशश्चैव हीना गङ्गाजलैः शुभैः ॥ ३३  
 वर्णाश्रमा यथा सर्वे स्वधर्मज्ञानवर्जिताः ।  
 क्रतवश्च यथासोमास्तथा गङ्गां विना जगत् ॥ ३४  
 यथा हीनं नभोऽर्केण भूः शैलैः खं च वायुना ।  
 तथा देशा दिशश्चैव गङ्गाहीना न संशयः ॥ ३५  
 त्रिषु लोकेषु ये केचित्प्राणिनः सर्व एव ते ।  
 तर्प्यमाणाः परां वृप्तिं यान्ति गङ्गाजलैः शुभैः ॥ ३६  
 यस्तु सूर्येण निष्ठप्रं गाङ्गेय पिबते जलम् ।  
 गवां निर्हारनिर्मुक्ताद्यावकात्तद्विशिष्यते ॥ ३७  
 इन्दुव्रतसहस्रं तु चरेद्यः कायशोधनम् ।  
 पिबेद्यश्चापि गङ्गाम्भः समौ स्यातां न वा समौ ॥  
 तिष्ठेद्युगसहस्रं तु पादेनैकेन यः पुमान् ।  
 मासमेकं तु गङ्गायां समौ स्यातां न वा समौ ॥  
 लम्बेतावाक्शिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान् ।

तिष्ठेद्यथेष्ट यश्चापि गङ्गायां स विशिष्यते ॥ ४०  
 अग्नौ प्राप्तं प्रधूयेत यथा तूलं द्विजोत्तम ।  
 तथा गङ्गावगाढस्य सर्वं पापं प्रधूयते ॥ ४१  
 भूतानामिह सर्वेषां दुःखोपहतचेतसाम् ।  
 गतिमन्वेषमाणानां न गङ्गासदृशी गतिः ॥ ४२  
 भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात् ।  
 गङ्गाया दर्शनात्तद्वत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४३  
 अप्रतिष्ठाश्च ये केचिद्धर्मशरणाश्च ये ।  
 तेषां प्रतिष्ठा गङ्गेह शरणं शर्म वर्म च ॥ ४४  
 प्रकृष्टैरशुभैर्ग्रस्ताननेकैः पुरुषाधमान् ।  
 पततो नरके गङ्गा सश्रितान्प्रेत्य तारयेत् ॥ ४५  
 ते संविभक्ता मुनिभिर्नूनं देवैः सवासवैः ।  
 येऽभिगच्छन्ति सततं गङ्गामभिगतां सुरैः ॥ ४६  
 विनयाचारहीनाश्च अशिवाश्च नराधमाः ।  
 ते भवन्ति शिवा विप्र ये वै गङ्गां समाश्रिताः ॥  
 यथा सुराणाममृतं पितृणां च यथा स्वधा ।  
 सुधा यथा च नागानां तथा गङ्गाजलं नृणाम् ॥ ४८  
 उपासते यथा बाला मातरं क्षुधयादिताः ।  
 श्रेयस्कामास्तथा गङ्गामुपासन्तीह देहिनः ॥ ४९  
 स्वायंभुवं यथा स्थानं सर्वेषां श्रेष्ठमुच्यते ।  
 स्नातानां सरितां श्रेष्ठा गङ्गा तद्वदिहोच्यते ॥ ५०  
 यथोपजीविनां धेनुर्देवादीनां धरा स्मृता ।  
 तथोपजीविनां गङ्गा सर्वप्राणभृतामिह ॥ ५१  
 देवाः सोमार्कसस्थानि यथा सत्रादिभिर्मखैः ।  
 अमृतान्युपजीवन्ति तथा गङ्गाजलं नराः ॥ ५२  
 जाह्नवीपुलिनोत्थाभिः सिकताभिः समुक्षितः ।  
 मन्यते पुरुषोऽऽत्मानं दिविष्ठमिव शोभितम् ॥ ५३  
 जाह्नवीतीरसंभूतां मृदं मूर्ध्ना बिभर्ति यः ।  
 बिभर्ति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशात्सुनिर्मलम् ॥ ५४  
 गङ्गोर्मिभिरथो दिग्धः पुरुषं पवनो यदा ।

स्पृशते सोऽपि पाप्मानं सद्य एवापमार्जति ॥ ५५  
 व्यसनैरभितप्तस्य नरस्य विनशिष्यतः ।  
 गङ्गादर्शनजा प्रीतिर्व्यसनान्यपकर्षति ॥ ५६  
 हंसारावैः कोकरवै रवैरन्यैश्च पक्षिणाम् ।  
 पक्षैर्ध्वं गङ्गा गन्धर्वान्पुलिनैश्च शिलोच्चयान् ॥ ५७  
 हंसादिभिः सुबहुभिर्विविधैः पक्षिभिर्युताम् ।  
 गङ्गां गोकुलसंवाधां दृष्ट्वा स्वर्गोऽपि विस्मृतः ॥ ५८  
 न सा प्रीतिर्द्विष्यस्य सर्वकामानुपाश्रितः ।  
 अभवद्या परा प्रीतिर्गङ्गायाः पुलिने नृणाम् ॥ ५९  
 बाह्यनःकर्मजैर्ग्रस्तः पापैरपि पुमानिह ।  
 वीक्ष्य गङ्गां भवेत्पूतस्तत्र मे नास्ति संशयः ॥ ६०  
 सप्तावरान्सप्त परान्पितृन्तेभ्यश्च ये परे ।  
 पुमांस्तारयते गङ्गां वीक्ष्य स्पृष्ट्वावगाह्य च ॥ ६१  
 श्रुतामिलषिता दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा पीतावगाहिता ।  
 गङ्गा तारयते नृणामुभौ वंशौ विशेषतः ॥ ६२  
 दर्शनात्पर्शनात्पापानात्तथा गङ्गेति कीर्तनात् ।  
 पुनात्यपुण्यान्पुरुषान्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६३  
 य इच्छेत्सफलं जन्म जीवितं श्रुतमेव च ।  
 स पितृन्स्तर्पयेद्गङ्गामभिगम्य सुरांस्तथा ॥ ६४  
 न सुतैर्न च वित्तेन कर्मणा न च तत्फलम् ।  
 प्राप्नुयात्पुरुषोऽत्यन्तं गङ्गां प्राप्य यदाप्नुयात् ॥ ६५  
 जालान्धैरिह तुल्यास्ते मृतैः पङ्क्तुभिरेव च ।  
 समर्था ये न पश्यन्ति गङ्गां पुण्यजलां शिवाम् ॥  
 भूतभण्ड्यभविष्यज्ञैर्महर्षिभिरुपस्थिताम् ।  
 देवैः सेन्द्रैश्च को गङ्गां नोपसेवेत मानवः ॥ ६७  
 वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः ।  
 विद्यावद्भिः श्रितां गङ्गां पुमान्को नाम नाश्रयेत् ॥  
 उत्क्रामद्भिश्च यः प्राणैः प्रयतः शिष्टसंमतः ।  
 चिन्तयेन्मनसा गङ्गां स गतिं परमां लभेत् ॥ ६९  
 न भयेभ्यो भयं तस्य न पापेभ्यो न राजतः ।

आ देहपतनाद्गङ्गामुपास्ते यः पुमानिह ॥ ७०  
 गगनाद्यां महापुण्यां पतन्तीं वै महेश्वरः ।  
 दधार शिरसा देवी तामेव दिवि सेवते ॥ ७१  
 अलंकृतास्त्रयो लोकाः पथिभिर्विमलैस्त्रिभिः ।  
 यस्तु तस्या जलं सेवेत्कृतकृत्यः पुमान्भवेत् ॥ ७२  
 दिवि ज्योतिर्यथादित्यः पितृणां चैव चन्द्रमाः ।  
 देवेशश्च यथा नृणां गङ्गेह सरितां तथा ॥ ७३  
 मात्रा पित्रा सुतैर्दारैर्विद्युक्तस्य धनेन वा ।  
 न भवेद्धि तथा दुःख यथा गङ्गावियोगजम् ॥ ७४  
 नारण्यैर्नेष्ट्रविषयैर्न सुतैर्न धनागमैः ।  
 तथा प्रसादो भवति गङ्गां वीक्ष्य यथा नृणाम् ॥  
 पूर्णमिन्दुं यथा दृष्ट्वा नृणां दृष्टिः प्रसीदति ।  
 गङ्गां त्रिपथगां दृष्ट्वा तथा दृष्टिः प्रसीदति ॥ ७६  
 तद्भावस्तद्गतमनास्तन्निष्ठस्तत्परायणः ।  
 गङ्गां योऽनुगतो भक्त्या स तस्याः प्रियतां व्रजेत् ॥  
 भूःस्थैः स्वस्थैर्दिविष्टैश्च भूतैरुच्चावचैरपि ।  
 गङ्गा विगाह्या सततमेतत्कार्यतमं सताम् ॥ ७८  
 त्रिषु लोकेषु पुण्यत्वाद्गङ्गायाः प्रथितं यशः ।  
 यत्पुत्रान्सगरस्यैषा भस्माख्याननयद्विवम् ॥ ७९  
 वाय्वीरिताभिः सुमहास्वनाभि-  
 र्दृताभिरत्यर्थसमुच्छ्रिताभिः ।  
 गङ्गोर्मिभिर्भानुमतीभिरिद्धः  
 सहस्ररश्मिप्रतिमो विभाति ॥ ८०  
 पयस्विनीं घृतिनीमत्युदारां  
 समृद्धिनीं वेगिनीं दुर्विगाह्याम् ।  
 गङ्गां गत्वा यैः शरीरं विसृष्टं  
 गता धीरास्ते विबुधैः समत्वम् ॥ ८१  
 अन्धास्त्राण्डान्द्रव्यहीनांश्च गङ्गा  
 यशस्विनी बृहती विश्वरूपा ।  
 देवैः सेन्द्रैर्मुनिभिर्मानवैश्च



एतदेव निरौकारं क्षत्रियस्य विधीयते ।  
 वैश्यस्य चैव वक्तव्यं प्रीयन्तां देवता इति ॥ ३८  
 कर्मणामानुपूर्वीं च विधिपूर्वकृतं शृणु ।  
 जातकर्मादिकान्सर्वास्त्रिषु वर्णेषु भारत ।  
 ब्रह्मक्षत्रे हि मन्त्रोक्ता वैश्यस्य च युधिष्ठिर ॥ ३९  
 विप्रस्य रशना मौञ्जी मौर्वी राजन्यगामिनी ।  
 बाल्वजीत्येव वैश्यस्य धर्म एष युधिष्ठिर ॥ ४०  
 दातुं प्रतिग्रहीतुश्च धर्माधर्माविमौ शृणु ।  
 ब्राह्मणस्यानृतेऽधर्मः प्रोक्तः पातकसंज्ञितः ।  
 चतुर्गुणः क्षत्रियस्य वैश्यस्याष्टगुणः स्मृतः ॥ ४१  
 नान्यत्र ब्राह्मणोऽश्रीयात्पूर्वं विप्रेण केतितः ।  
 यवीयान्पशुहिंसायां तुल्यधर्मो भवेत्स हि ॥ ४२  
 अथ राजन्यवैश्याभ्यां यद्यश्रीयात्तु केतितः ।  
 यवीयान्पशुहिंसायां भागार्धं समवाप्नुयात् ॥ ४३  
 दैवं वाप्यथ वा पित्र्यं योऽश्रीयाद्ब्राह्मणादिषु ।  
 अस्मातो ब्राह्मणो राजंस्तस्याधर्मो गवानृतम् ॥ ४४  
 आशौचो ब्राह्मणो राजन्योऽश्रीयाद्ब्राह्मणादिषु ।  
 ज्ञानपूर्वमथो लोभात्तस्याधर्मो गवानृतम् ॥ ४५  
 अग्नेनान्नं च यो लिप्सेत्कर्मार्यं चैव भारत ।  
 आमन्त्रयति राजेन्द्र तस्याधर्मोऽनृतं स्मृतम् ॥ ४६  
 अवेदव्रतचारित्रास्त्रिभिर्बर्णेयुधिष्ठिर ।  
 मन्त्रवत्परिविष्यन्ते तेष्वधर्मो गवानृतम् ॥ ४७

युधिष्ठिर उवाच ।

पित्र्यं वाप्यथ वा दैवं दीयते यत्पितामह ।  
 एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं दत्तं येषु महाफलम् ॥ ४८

भीष्म उवाच ।

येषां दाराः प्रतीक्षन्ते सुवृष्टिमिव कर्षकाः ।  
 उच्छेषपरिशेषं हि तान्भोजय युधिष्ठिर ॥ ४९  
 चारित्रनियता राजन्ये कृशाः कृशवृत्तयः ।  
 अर्थिनश्चोपगच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५०

तद्भक्तास्तद्गृहा राजंस्तद्धनास्तदपाश्रयाः ।  
 अर्थिनश्च भवन्त्यर्थे तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५१  
 तत्स्करेभ्यः परेभ्यो वा ये भयार्ता युधिष्ठिर ।  
 अर्थिनो भोक्तुमिच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५२  
 अकल्ककस्य विप्रस्य भैक्षोत्करकृतात्मनः ।  
 बटवो यस्य मिक्षन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥ ५३  
 हृतस्वा हृतदाराश्च ये विप्रा देशसंल्लवे ।  
 अर्थार्थमभिगच्छन्ति तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥ ५४  
 व्रतिनो नियमस्थाश्च ये विप्राः श्रुतसंमताः ।  
 तत्समाप्त्यर्थमिच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५५  
 अव्युत्क्रान्ताश्च धर्मेषु पाषण्डसमयेषु च ।  
 कृशप्राणाः कृशधनास्तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५६  
 कृतसर्वस्वहरणा निर्दोषाः प्रभविष्णुभिः ।  
 स्पृहयन्ति च भुक्तान्नं तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५७  
 तपस्विनस्तपोनिष्ठास्तेषां भैक्षचराश्च ये ।  
 अर्थिनः किञ्चिदिच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम् ॥ ५८  
 महाफलविधिर्दाने श्रुतस्ते भरतर्षभ ।  
 निरयं येन गच्छन्ति स्वर्गं चैव हि तच्छृणु ॥ ५९  
 गुर्वर्थं वाभयार्थं वा वर्जयित्वा युधिष्ठिर ।  
 येऽनृतं कथयन्ति स्म ते वै निरयगामिनः ॥ ६०  
 परदारमिहर्तारः परदारमिमर्शिनः ।  
 परदारप्रयोक्तारस्ते वै निरयगामिनः ॥ ६१  
 ये परस्वापहर्तारः परस्वानां च नाशकाः ।  
 सूचकाश्च परेषां ये ते वै निरयगामिनः ॥ ६२  
 प्रपाणां च सभानां च संक्रमाणां च भारत ।  
 अगाराणां च भेत्तारो नरा निरयगामिनः ॥ ६३  
 अनाथां प्रमदां बालां वृद्धां भीतां तपस्विनीम् ।  
 वञ्चयन्ति नरा ये च ते वै निरयगामिनः ॥ ६४  
 वृत्तिच्छेदं गृहच्छेदं दारच्छेदं च भारत ।  
 मित्रच्छेदं तथाशायास्ते वै निरयगामिनः ॥ ६५

सूचकाः संधिभेत्तारः परवृत्त्युपजीवकाः ।  
 अकृतज्ञाश्च मित्राणां ते वै निरयगामिनः ॥ ६६  
 पाषण्डा दूषकाश्चैव समयानां च दूषकाः ।  
 ये प्रत्यवसिताश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ६७  
 कृताशं कृतनिर्वेशं कृतभक्तं कृतश्रमम् ।  
 भेदैर्ये व्यपकर्षन्ति ते वै निरयगामिनः ॥ ६८  
 पर्यश्रन्ति च ये दारानग्निभृत्यातिथीस्तथा ।  
 उत्सन्नपितृदेवेज्यास्ते वै निरयगामिनः ॥ ६९  
 वेदविक्रयिणश्चैव वेदानां चैव दूषकाः ।  
 वेदानां लेखकाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ७०  
 चातुराश्रम्यबाह्याश्च श्रुतिबाह्याश्च ये नराः ।  
 विकर्मभिश्च जीवन्ति ते वै निरयगामिनः ॥ ७१  
 केशविक्रयिका राजन्विषविक्रयिकाश्च ये ।  
 क्षीरविक्रयिकाश्चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ७२  
 ब्राह्मणानां गवां चैव कन्यानां च युधिष्ठिर ।  
 येऽन्तरं यान्ति कार्येषु ते वै निरयगामिनः ॥ ७३  
 शस्त्रविक्रयकाश्चैव कर्तारश्च युधिष्ठिर ।  
 शल्यानां धनुषां चैव ते वै निरयगामिनः ॥ ७४  
 शल्यैर्वा शङ्खभिर्वापि श्वैर्वा भरतर्षभ ।  
 ये मार्गमनुरुन्धन्ति ते वै निरयगामिनः ॥ ७५  
 उपाध्यायाश्च भृत्याश्च भक्ताश्च भरतर्षभ ।  
 ये त्यजन्त्यसमर्थास्तास्ते वै निरयगामिनः ॥ ७६  
 अप्राप्तदमकाश्चैव नासानां वेधकास्तथा ।  
 बन्धकाश्च पशूनां ये ते वै निरयगामिनः ॥ ७७  
 अगोप्ताश्छलद्रव्या बलिषङ्गागतत्पराः ।  
 समर्थाश्चाप्यदातारस्ते वै निरयगामिनः ॥ ७८  
 क्षान्तान्दान्तांस्तथा प्राज्ञान्दीर्घकालं सहोषितान् ।  
 त्यजन्ति कृतकृत्या ये ते वै निरयगामिनः ॥ ७९  
 बालानामथ वृद्धानां दासानां चैव ये नराः ।  
 अदत्त्वा भक्षयन्त्यग्रे ते वै निरयगामिनः ॥ ८०

एते पूर्वर्षिभिर्दृष्टाः प्रोक्ता निरयगामिनः ।  
 भागिनः स्वर्गलोकस्य वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ ८१  
 सर्वेष्वेव तु कार्येषु दैवपूर्वेषु भारत ।  
 हन्ति पुत्रान्पशून्कृत्स्नान्ब्राह्मणातिक्रमः कृतः ॥ ८२  
 दानेन तपसा चैव सत्येन च युधिष्ठिर ।  
 ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८३  
 शुश्रूषाभिस्तपोभिश्च श्रुतमादाय भारत ।  
 ये प्रतिग्रहनिःस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८४  
 भयात्पापात्तथाबाधाहारिद्याद्व्याधिधर्षणात् ।  
 यत्कृते प्रतिमुच्यन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८५  
 क्षमावन्तश्च धीराश्च धर्मकार्येषु चोत्थिताः ।  
 मङ्गलाचारयुक्ताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८६  
 निवृत्ता मधुमांसेभ्यः परदारेभ्य एव च ।  
 निवृत्ताश्चैव मद्येभ्यस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८७  
 आश्रमाणां च कर्तारः कुलानां चैव भारत ।  
 देशानां नगराणां च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८८  
 वस्त्राभरणदातारो भक्षपानान्नदास्तथा ।  
 कुटुम्बानां च दातारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ८९  
 सर्वहिंसानिवृत्ताश्च नराः सर्वसहाश्च ये ।  
 सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९०  
 मातरं पितरं चैव शुश्रूषन्ति जितेन्द्रियाः ।  
 भ्रातृणां चैव सस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९१  
 आढ्याश्च बलवन्तश्च यौवनस्थाश्च भारत ।  
 ये वै जितेन्द्रिया धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९२  
 अपराद्धेषु सस्नेहा मृदवो मित्रवत्सलाः ।  
 आराधनसुखाश्चापि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९३  
 सहस्रपरिवेष्टारस्तथैव च सहस्रदाः ।  
 त्रातारश्च सहस्राणां पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ ९४  
 सुवर्णस्य च दातारो गवां च भरतर्षभ ।  
 यानानां वाहनानां च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९५

वैवाहिकानां कन्यानां प्रेक्ष्याणां च युधिष्ठिर ।  
 दातारो वाससां चैव ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९६  
 विहारवासथोद्यानकूपारामसभाप्रदाः ।  
 वप्राणां चैव कर्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९७  
 निवेशनानां क्षेत्राणां वसतीनां च भारत ।  
 दातारः प्रार्थितानां च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९८  
 रसानामथ बीजानां धान्यानां च युधिष्ठिर ।  
 स्वयमुत्पाद्य दातारः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ ९९  
 यस्मिन्कस्मिन्कुले जाता बहुपुत्राः शतायुषः ।  
 सानुक्रोशा जितक्रोधाः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥ १००  
 एतदुत्तममुत्रार्थं दैवं पित्र्यं च भारत ।  
 धर्माधर्मौ च दानस्य यथा पूर्वर्षिभिः कृतौ ॥ १०१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

२५

युधिष्ठिर उवाच ।

इदं मे तत्त्वतो राजन्वक्तुमर्हसि भारत ।  
 अहिंसयित्वा केनेह ब्रह्महत्या विधीयते ॥ १

भीष्म उवाच ।

व्यासमामन्त्र्य राजेन्द्र पुरा यत्पृष्ठवानहम् ।  
 तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि तदिहैकमनाः शृणु ॥ २  
 चतुर्थस्त्वं वसिष्ठस्य तत्त्वमाख्याहि मे मुने ।  
 अहिंसयित्वा केनेह ब्रह्महत्या विधीयते ॥ ३  
 इति पृष्ठो महाराज पराशरशरीरजः ।  
 अब्रवीन्निपुणो धर्मे निःसंशयमनुत्तमम् ॥ ४  
 ब्राह्मणं स्वयमाहूय भिक्षार्थं कृशवृत्तिनम् ।  
 ब्रूयान्नास्तीति यः पश्चात्तं विद्याद्रह्यघातिनम् ॥ ५  
 मध्यस्थस्येह विप्रस्य योऽनूचानस्य भारत ।  
 वृत्तिं हरति दुर्बुद्धिस्तं विद्याद्रह्यघातिनम् ॥ ६  
 गोकुलस्य वृषार्तस्य जलार्थं वसुधाधिप ।

उत्पादयति यो विघ्नं तं विद्याद्रह्यघातिनम् ॥ ७  
 यः प्रवृत्तां श्रुतिं सम्यक्शास्त्रं वा मुनिभिः कृतम् ।  
 दूषयत्यनभिज्ञाय तं विद्याद्रह्यघातिनम् ॥ ८  
 आत्मजां रूपसंपन्नां महतीं सदृशे वरे ।  
 न प्रयच्छति यः कन्यां तं विद्याद्रह्यघातिनम् ॥ ९  
 अधर्मनिरतो मूढो मिथ्या यो वै द्विजातिषु ।  
 दद्यान्मर्मातिगं शोकं तं विद्याद्रह्यघातिनम् ॥ १०  
 चक्षुषा विप्रहीनस्य पङ्कलस्य जडस्य वा ।  
 हरेत यो वै सर्वस्वं तं विद्याद्रह्यघातिनम् ॥ ११  
 आश्रमे वा वने वा यो ग्रामे वा यदि वा पुरे ।  
 अग्निं समुत्सृजेन्मोहात्तं विद्याद्रह्यघातिनम् ॥ १२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

२६

युधिष्ठिर उवाच ।

तीर्थानां दर्शनं श्रेयः स्नानं च भरतर्षभ ।  
 श्रवणं च महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १  
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यानि भरतर्षभ ।  
 वक्तुमर्हसि मे तानि श्रोतास्मि नियतः प्रभो ॥ २

भीष्म उवाच ।

इममङ्गिरसा प्रोक्तं तीर्थवंशं महाद्युते ।  
 श्रोतुमर्हसि भद्रं ते प्राप्स्यसे धर्ममुत्तमम् ॥ ३  
 तपोवनगतं विप्रमभिगम्य महामुनिम् ।  
 पप्रच्छाङ्गिरसं कीर गौतमः संशितव्रतः ॥ ४  
 अस्ति मे भगवन्कश्चित्तीर्थेभ्यो धर्मसंशयः ।  
 तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तन्मे शंस महानुने ॥ ५  
 उपस्पृश्य फलं किं स्यात्तेषु तीर्थेषु वै मुने ।  
 प्रेत्यभावे महाप्राज्ञ तद्यथास्ति तथा वद ॥ ६

अङ्गिरा उवाच ।

सप्ताहं चन्द्रभागां वै वितस्तामूर्मिमालिनीम् ।

विगाह्य वै निराहारो निर्ममो मुनिवद्भवेत् ॥ ७  
 काश्मीरमण्डले नद्यो याः पतन्ति महानदम् ।  
 ता नदीः सिन्धुमासाद्य शीलवान्स्वर्गमाप्नुयात् ॥ ८  
 पुष्करं च प्रभासं च नैमिषं सागरोदकम् ।  
 देविकामिन्द्रमार्गं च स्वर्णविन्दुं विगाह्य च ।  
 विबोध्यते विमानस्थः सोऽप्सररोभिरभिप्लुतः ॥ ९  
 हिरण्यविन्दुं विशोभ्य प्रयतश्चाभिवाद्य तम् ।  
 कुशेशं च देवत्वं पूयते तस्य किल्बिषम् ॥ १०  
 इन्द्रतोयां समासाद्य गन्धमादनसंनिधौ ।  
 करतोयां कुरङ्गेषु त्रिरात्रोपोषितो नरः ।  
 अश्वमेधमवाप्नोति विगाह्य नियतः शुचिः ॥ ११  
 गङ्गाद्वारे कुशावर्ते वित्त्वके नेमिपर्वते ।  
 तथा कनखले स्नात्वा धूतपाप्मा दिवं व्रजेत् ॥ १२  
 अपां हृद उपस्पृश्य वाजपेयफलं लभेत् ।  
 ब्रह्मचारी जितक्रोधः सत्यसंधस्त्वर्हिसकः ॥ १३  
 यत्र भागीरथी गङ्गा भजते दिशमुत्तराम् ।  
 महेश्वरस्य निष्ठाने यो नरस्त्वभिषिच्यते ।  
 एकमासं निराहारः स्वयं पश्यति देवताः ॥ १४  
 सप्तगङ्गे त्रिगङ्गे च इन्द्रमार्गे च तर्पयन् ।  
 सुधां वै लभते भोक्तुं यो नरो जायते पुनः ॥ १५  
 महाश्रम उपस्पृश्य योऽग्निहोत्रपरः शुचिः ।  
 एकमासं निराहारः सिद्धिं मासेन स व्रजेत् ॥ १६  
 महाहृद उपस्पृश्य भृगुतुङ्गे त्वलोलुपः ।  
 त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा मुच्यते ब्रह्महत्याया ॥ १७  
 कन्याकूप उपस्पृश्य बलाकायां कृतोदकः ।  
 देवेषु कीर्तिं लभते यशसा च विराजते ॥ १८  
 देशकाल उपस्पृश्य तथा सुन्दरिकाहृदे ।  
 अश्विभ्यां रूपवर्चस्यं प्रेत्य वै लभते नरः ॥ १९  
 महागङ्गामुपस्पृश्य कृत्तिकाङ्गारके तथा ।  
 पक्षमेकं निराहारः स्वर्गमाप्नोति निर्मलः ॥ २०

वैमानिक उपस्पृश्य किङ्किणीकाश्रमे तथा ।  
 निवासेऽप्सरसां दिव्ये कामचारी महीयते ॥ २१  
 कालिकाश्रममासाद्य विपाशायां कृतोदकः ।  
 ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रान्मुच्यते भवात् ॥ २२  
 आश्रमे कृत्तिकानां तु स्नात्वा यस्तर्पयेत्पितृन् ।  
 तोषयित्वा महादेवं निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥ २३  
 महापुर उपस्पृश्य त्रिरात्रोपोषितो नरः ।  
 त्रसानां स्थावराणां च द्विपदानां भय त्यजेत् ॥ २४  
 देवदारुवने स्नात्वा धूतपाप्मा कृतोदकः ।  
 देवलोकमवाप्नोति सप्तरात्रोषितः शुचिः ॥ २५  
 कौशन्ते च कुशस्तम्बे द्रोणशर्मपदे तथा ।  
 आपःप्रपतने स्नातः सेव्यते सोऽप्सरोगणैः ॥ २६  
 चित्रकूटे जनस्थाने तथा मन्दाकिनीजले ।  
 विगाह्य वै निराहारो राजलक्ष्मीं निगच्छति ॥ २७  
 श्यामायास्त्वाश्रमं गत्वा उष्य चैवाभिषिच्य च ।  
 त्रींस्त्रिरात्रान्स संधाय गन्धर्वनगरे वसेत् ॥ २८  
 रमण्यां च उपस्पृश्य तथा वै गन्धतारिके ।  
 एकमासं निराहारस्त्वन्तर्धानफलं लभेत् ॥ २९  
 कौशिकीद्वारमासाद्य वायुभक्षस्त्वलोलुपः ।  
 एकविंशतिरात्रेण स्वर्गमारोहते नरः ॥ ३०  
 मतङ्गवाण्यां यः स्नायादेकरात्रेण सिध्यति ।  
 विगाहति ह्यनालम्बमन्धकं वै सनातनम् ॥ ३१  
 नैमिषे स्वर्गतीर्थे च उपस्पृश्य जितेन्द्रियः ।  
 फलं पुरुषमेधस्य लभेन्मासं कृतोदकः ॥ ३२  
 गङ्गाहृद उपस्पृश्य तथा चैवोत्पलावने ।  
 अश्वमेधमवाप्नोति यत्र मासं कृतोदकः ॥ ३३  
 गङ्गायमुनयोस्तीर्थे तथा कालंजरे गिरौ ।  
 षष्टिहृद उपस्पृश्य दानं नान्यद्विशिष्यते ॥ ३४  
 दश तीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथापराः ।  
 समागच्छन्ति माध्यां तु प्रयागे भरतर्षभ ॥ ३५

माघमासं प्रयागे तु नियतः संशितव्रतः ।  
 स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठ निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥ ३६  
 मरुद्गण उपस्पृश्य पितृणामाश्रमे शुचिः ।  
 वैवस्वतस्य तीर्थे च तीर्थभूतो भवेन्नरः ॥ ३७  
 तथा ब्रह्मशिरो गत्वा भागीरथ्यां कृतोदकः ।  
 एकमासं निराहारः सोमलोकमवाप्नुयात् ॥ ३८  
 कपोतके नरः स्नात्वा अष्टावक्रे कृतोदकः ।  
 द्वादशाहं निराहारो नरमेधफलं लभेत् ॥ ३९  
 मुञ्जपृष्ठं गयां चैव निर्ऋतिं देवपर्वतम् ।  
 तृतीयां क्रौञ्चपादीं च ब्रह्महत्या विशुध्यति ॥ ४०  
 कलश्यां वाप्युपस्पृश्य वेद्यां च बहुशोजलाम् ।  
 अग्नेः पुरे नरः स्नात्वा विशालायां कृतोदकः ।  
 देवहृद उपस्पृश्य ब्रह्मभूतो विराजते ॥ ४१  
 पुरापवर्तनं नन्दां महानन्दां च सेव्य वै ।  
 नन्दने सेव्यते दान्तस्वप्सरोभिरहिंसकः ॥ ४२  
 उर्वशीकृत्तिकायोगे गत्वा यः सुसमाहितः ।  
 लौहित्ये विधिवत्स्नात्वा पुण्डरीकफलं लभेत् ॥ ४३  
 रामहृद उपस्पृश्य विशालायां कृतोदकः ।  
 द्वादशाहं निराहारः कल्मषाद्विप्रमुच्यते ॥ ४४  
 महाहृद उपस्पृश्य शुद्धेन मनसा नरः ।  
 एकमासं निराहारो जमदग्निगतिं लभेत् ॥ ४५  
 विन्ध्ये संताप्य चात्मानं सत्यसंधस्वर्हिंसकः ।  
 षण्मासं पदमास्थाय मासेनैकेन शुध्यति ॥ ४६  
 नर्मदायामुपस्पृश्य तथा सूर्परिकोदके ।  
 एकपक्षं निराहारो राजपुत्रो विधीयते ॥ ४७  
 जम्बूमार्गे त्रिभिर्मसैः संयतः सुसमाहितः ।  
 अहोरात्रेण चैकेन सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४८  
 कोकामुखे विगाह्यापो गत्वा चण्डालिकाश्रमम् ।  
 शाकभक्षश्चीरवासाः कुमारीर्विन्दते दश ॥ ४९  
 वैवस्वतस्य सदनं न स गच्छेत्कदाचन ।

यस्य कन्याहृदे वासो देवलोकं स गच्छति ॥ ५०  
 प्रभासे त्वेकरात्रेण अमावास्यां समाहितः ।  
 सिध्यतेऽत्र महाबाहो यो नरो जायते पुनः ॥ ५१  
 उज्जानक उपस्पृश्य आर्ष्टिषेणस्य चाश्रमे ।  
 पिङ्गायाश्चाश्रमे स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५२  
 कुल्यायां समुपस्पृश्य जप्त्वा चैवाघमर्षणम् ।  
 अश्वमेधमवाप्नोति त्रिरात्रोपोषितः शुचिः ॥ ५३  
 पिण्डारक उपस्पृश्य एकरात्रोपोषितो नरः ।  
 अग्निष्टोममवाप्नोति प्रभातां शर्वरीं शुचिः ॥ ५४  
 तथा ब्रह्मसरो गत्वा धर्मारण्योपशोषितम् ।  
 पुण्डरीकमवाप्नोति प्रभातां शर्वरीं शुचिः ॥ ५५  
 मैनाके पर्वते स्नात्वा तथा संध्यामुपास्य च ।  
 कामं जित्वा च वै मासं सर्वमेधफलं लभेत् ॥ ५६  
 विख्यातो हिमवान्पुण्यः शंकरश्चशुरो गिरिः ।  
 आकरः सर्वरत्नानां सिद्धचारणसेवितः ॥ ५७  
 शरीरमुत्सृजेत्तत्र विधिपूर्वमनाशके ।  
 अश्रुवं जीवितं ज्ञात्वा यो वै वेदान्तगो द्विजः ॥  
 अभ्यर्च्य देवतास्तत्र नमस्कृत्य मुनींस्तथा ।  
 ततः सिद्धो दिवं गच्छेद्ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ५९  
 कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमावसेत् ।  
 न तेन किञ्चिन्न प्राप्तं तीर्थाभिगमनाद्भवेत् ॥ ६०  
 यान्यगम्यानि तीर्थानि दुर्गाणि विषमाणि च ।  
 मनसा तानि गम्यानि सर्वतीर्थसमासतः ॥ ६१  
 इदं मेध्यमिदं धन्यमिदं स्वर्ग्यमिदं सुखम् ।  
 इदं रहस्यं देवानामाप्लाव्यानां च पावनम् ॥ ६२  
 इदं दद्याद्द्विजातीनां साधूनामात्मजस्य वा ।  
 सुहृदां च जपेत्कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य वा ॥ ६३  
 दत्तवान्गौतमस्येदमङ्गिरा वै महातपाः ।  
 गुरुभिः समनुज्ञातः काश्यपेन च धीमता ॥ ६४  
 महर्षीणामिदं जप्यं पावनानां तथोत्तमम् ।

जपंश्चाभ्युत्थितः शश्वन्निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥ ६५  
इदं यश्चापि शृणुयाद्रहस्यं त्वङ्गिरोमतम् ।  
उत्तमे च कुले जन्म लभेज्जाति च संस्मरेत् ॥ ६६  
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

२७

वैशंपायन उवाच ।

बृहस्पतिसमं बुद्ध्या क्षमया ब्रह्मणः समम् ।  
पराक्रमे शक्रसममादित्यसमतेजसम् ॥ १  
गाङ्गेयमर्जुनेनाजौ निहतं भूरिवर्चसम् ।  
भ्रातृभिः सहितोऽन्यैश्च पर्युपास्ते युधिष्ठिरः ॥ २  
शयानं वीरशयने कालाकाङ्क्षिणमच्युतम् ।  
आजगमुर्भरतश्रेष्ठं द्रष्टुकामा महर्षयः ॥ ३  
अत्रिर्वसिष्ठोऽथ भृगुः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।  
अङ्गिरा गौतमोऽगस्त्यः सुमतिः स्वायुरात्मवान् ॥ ४  
विश्वामित्रः स्थूलशिराः संवर्तः प्रमतिर्दमः ।  
उशना बृहस्पतिर्व्यासश्च्यवनः काश्यपो ध्रुवः ॥ ५  
दुर्वासा जमदग्निश्च मार्कण्डेयोऽथ गालवः ।  
भरद्वाजश्च रैभ्यश्च यवक्रीतस्त्रितस्तथा ॥ ६  
स्थूलाक्षः शकलाक्षश्च कण्वो मेधातिथिः कृशः ।  
नारदः पर्वतश्चैव सुधन्वाथैकतो द्वितः ॥ ७  
नितंभूर्भुवनो धौम्यः शतानन्दोऽकृतव्रणः ।  
जामदग्न्यस्तथा रामः काम्यश्चेत्येवमादयः ।  
समागता महात्मानो भीष्मं द्रष्टुं महर्षयः ॥ ८  
तेषां महात्मनां पूजामागतानां युधिष्ठिरः ।  
भ्रातृभिः सहितश्चक्रे यथावदनुपूर्वशः ॥ ९  
ते पूजिताः सुखासीनाः कथाश्चक्रुर्महर्षयः ।  
भीष्माश्रिताः सुमधुराः सर्वेन्द्रियमनोहराः ॥ १०  
भीष्मस्तेषां कथाः श्रुत्वा ऋषीणां भावितात्मनाम् ।  
मेने दिविस्थमात्मानं तुष्ट्या परमया युतः ॥ ११

ततस्ते भीष्ममामन्त्रय पाण्डवांश्च महर्षयः ।  
अन्तर्धानं गताः सर्वे सर्वेषामेव पश्यताम् ॥ १२  
तानृषीन्सुमहाभागानन्तर्धानगतानपि ।  
पाण्डवास्तुष्टुवुः सर्वे प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः ॥ १३  
प्रसन्नमनसः सर्वे गाङ्गेयं कुरुसत्तमाः ।  
उपतस्थुर्यथोद्यन्तमादित्यं मन्त्रकोविदाः ॥ १४  
प्रभावात्तपसस्तेषामृषीणां वीक्ष्य पाण्डवाः ।  
प्रकाशन्तो दिशः सर्वा विस्मयं परमं ययुः ॥ १५  
महाभाग्यं परं तेषामृषीणामनुचिन्त्य ते ।  
पाण्डवाः सह भीष्मेण कथाश्चक्रुस्तदाश्रयाः ॥ १६  
कथान्ते शिरसा पादौ स्पृष्ट्वा भीष्मस्य पाण्डवः ।  
धर्म्यं धर्मसुतः प्रश्नं पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १७  
के देशाः के जनपदा आश्रमाः के च पर्वताः ।  
प्रकृष्टाः पुण्यतः काश्च ज्ञेया नद्यः पितामह ॥ १८  
भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
शिलोञ्छवृत्तेः संवादं सिद्धस्य च युधिष्ठिर ॥ १९  
इमां कश्चित्परिक्रम्य पृथिवीं शैलभूषिताम् ।  
असकृद्विपदां श्रेष्ठः श्रेष्ठस्य गृहमेधिनः ॥ २०  
शिलवृत्तेर्गृहं प्राप्तः स तेन विधिनार्चितः ।  
कृतकृत्य उपातिष्ठत्सिद्धं तमतिथिं तदा ॥ २१  
तौ समेत्य महात्मानौ सुखासीनौ कथाः शुभाः ।  
चक्रतुर्वेदसंबद्धास्तच्छेषकृतलक्षणाः ॥ २२  
शिलवृत्तिः कथान्ते तु सिद्धमामन्त्रय यत्नतः ।  
प्रश्नं पप्रच्छ मेधावी यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २३  
शिलवृत्तिरुवाच ।  
के देशाः के जनपदाः केऽऽश्रमाः के च पर्वताः ।  
प्रकृष्टाः पुण्यतः काश्च ज्ञेया नद्यस्तदुच्यताम् ॥ २४  
सिद्ध उवाच ।  
ते देशास्ते जनपदास्तेऽऽश्रमास्ते च पर्वताः ।

येषां भागीरथी गङ्गा मध्येनैति सरिद्वरा ॥ २५  
 तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैस्त्यागेन वा पुनः ।  
 गतिं तां न लभेज्जन्तुर्गङ्गां संसेव्य यां लभेत् ॥ २६  
 स्पृष्टानि येषां गङ्गैर्यैस्तोयैर्गात्राणि देहिनाम् ।  
 न्यस्तानि न पुनस्तेषां त्यागः स्वर्गाद्विधीयते ॥ २७  
 सर्वाणि येषां गङ्गैर्यैस्तोयैः कृत्यानि देहिनाम् ।  
 गां त्यक्त्वा मानवा विप्र दिवि तिष्ठन्ति तेऽचलाः ॥  
 पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि ये नराः ।  
 पश्चाद्गङ्गां निषेवन्ते तेऽपि यान्त्युत्तमां गतिम् ॥ २९  
 स्नातानां शुचिभिस्तोयैर्गाङ्गैर्यैः प्रयतात्मनाम् ।  
 व्युष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ॥ ३०  
 यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति ।  
 तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गं प्राप्य महीयते ॥ ३१  
 अपहृत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः ।  
 तथापहृत्य पाप्मानं भाति गङ्गाजलोक्षितः ॥ ३२  
 विसोमा इव शर्वर्यो विपुष्पास्तरवो यथा ।  
 तद्वद्देशा दिशश्चैव हीना गङ्गाजलैः शुभैः ॥ ३३  
 वर्णाश्रमा यथा सर्वे स्वधर्मज्ञानवर्जिताः ।  
 क्रतवश्च यथासोमास्तथा गङ्गां विना जगत् ॥ ३४  
 यथा हीनं नभोऽर्केण भूः शैलैः खं च वायुना ।  
 तथा देशा दिशश्चैव गङ्गाहीना न संशयः ॥ ३५  
 त्रिषु लोकेषु ये केचित्प्राणिनः सर्व एव ते ।  
 तर्प्यमाणाः परां वृत्तिं यान्ति गङ्गाजलैः शुभैः ॥ ३६  
 यस्तु सूर्येण निष्ठप्रं गाङ्गेय पिबते जलम् ।  
 गवां निर्हारनिर्मुक्ताद्यावकात्तद्विशिष्यते ॥ ३७  
 इन्दुव्रतसहस्रं तु चरेद्यः कायशोधनम् ।  
 पिबेद्यश्चापि गङ्गाम्भः समौ स्यातां न वा समौ ॥  
 तिष्ठेद्युगसहस्रं तु पादेनैकेन यः पुमान् ।  
 मासमेकं तु गङ्गायां समौ स्यातां न वा समौ ॥  
 लम्बेतावाक्शिरा यस्तु युगानामयुतं पुमान् ।

तिष्ठेद्यथेष्ट यश्चापि गङ्गायां स विशिष्यते ॥ ४०  
 अग्नौ प्राप्तं प्रधूयेत यथा तूलं द्विजोत्तम ।  
 तथा गङ्गावगाढस्य सर्वं पापं प्रधूयते ॥ ४१  
 भूतानामिह सर्वेषां दुःखोपहतचेतसाम् ।  
 गतिमन्वेषमाणानां न गङ्गासदृशी गतिः ॥ ४२  
 भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात् ।  
 गङ्गाया दर्शनात्तद्वत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४३  
 अप्रतिष्ठाश्च ये केचिद्धर्मशरणाश्च ये ।  
 तेषां प्रतिष्ठा गङ्गेह शरणं शर्म वर्म च ॥ ४४  
 प्रकृष्टैरशुभैर्ग्रस्तानेकैः पुरुषाधमान् ।  
 पततो नरके गङ्गा संश्रितान्प्रेत्य तारयेत् ॥ ४५  
 ते संविभक्ता मुनिभिर्नूनं देवैः सवासवैः ।  
 येऽभिगच्छन्ति सततं गङ्गामभिगतां सुरैः ॥ ४६  
 विनयाचारहीनाश्च अशिवाश्च नराधमाः ।  
 ते भवन्ति शिवा विप्र ये वै गङ्गां समाश्रिताः ॥  
 यथा सुराणाममृतं पितृणां च यथा स्वधा ।  
 सुधा यथा च नागानां तथा गङ्गाजलं नृणाम् ॥ ४८  
 उपासते यथा बाला मातरं क्षुधयार्दिताः ।  
 श्रयस्कामास्तथा गङ्गामुपासन्तीह देहिनः ॥ ४९  
 स्वायंभुवं यथा स्थानं सर्वेषां श्रेष्ठमुच्यते ।  
 स्नातानां सरितां श्रेष्ठा गङ्गा तद्वदिहोच्यते ॥ ५०  
 यथोपजीविनां धेनुर्देवादीनां धरा स्मृता ।  
 तथोपजीविनां गङ्गा सर्वप्राणभृतामिह ॥ ५१  
 देवाः सोमार्कसंस्थानि यथा सत्रादिभिर्मखैः ।  
 अमृतान्युपजीवन्ति तथा गङ्गाजलं नराः ॥ ५२  
 जाह्नवीपुलिनोत्थाभिः सिकताभिः समुक्षितः ।  
 मन्यते पुरुषोऽऽत्मानं दिविष्ठमिव शोभितम् ॥ ५३  
 जाह्नवीतीरसंभूतां मृदं मूर्ध्ना विभर्ति यः ।  
 विभर्ति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशात्सुनिर्मलम् ॥ ५४  
 गङ्गोर्मिभिरथो दिग्धः पुरुषं पवनो यदा ।

स्पृशते सोऽपि पाप्मानं सद्य एवापमार्जति ॥ ५५  
 व्यसनैरभितप्तस्य नरस्य दिनशिष्यतः ।  
 गङ्गादर्शनजा प्रीतिर्व्यसनान्यपकर्षति ॥ ५६  
 हंसारावैः कोकरवै रवैरन्यैश्च पक्षिणाम् ।  
 पस्पर्ध गङ्गा गन्धर्वान्पुलिनैश्च शिलोच्चयान् ॥ ५७  
 हंसादिभिः सुबहुभिर्विविधैः पक्षिभिर्वृताम् ।  
 गङ्गां गोकुलसंवाधां दृष्ट्वा स्वर्गोऽपि विस्मृतः ॥ ५८  
 न सा प्रीतिर्दिविष्ठस्य सर्वकामानुपाश्रितः ।  
 अभवद्या परा प्रीतिर्गङ्गायाः पुलिने नृणाम् ॥ ५९  
 बाह्यनःकर्मजैर्ग्रस्तः पापैरपि पुमानिह ।  
 वीक्ष्य गङ्गां भवेत्पूतस्तत्र मे नास्ति संशयः ॥ ६०  
 सप्तावरान्सप्त परान्पितृंस्तेभ्यश्च ये परे ।  
 पुमांस्तारयते गङ्गां वीक्ष्य स्पृष्ट्वावगाह्य च ॥ ६१  
 श्रुताभिलषिता दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा पीतावगाहिता ।  
 गङ्गा तारयते नृणामुभौ वंशौ विशेषतः ॥ ६२  
 दर्शनात्पर्शनात्पानात्तथा गङ्गेति कीर्तनात् ।  
 पुनात्यपुण्यान्पुरुषाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६३  
 य इच्छेत्सफलं जन्म जीवितं श्रुतमेव च ।  
 स पितृंस्तर्पयेद्गङ्गामभिगम्य सुरांस्तथा ॥ ६४  
 न सुतैर्न च वितेन कर्मणा न च तत्फलम् ।  
 प्राप्नुयात्पुरुषोऽत्यन्तं गङ्गां प्राप्य यदाप्नुयात् ॥ ६५  
 जात्यन्धैरिह तुल्यास्ते मृतैः पङ्क्तुभिरेव च ।  
 समर्था ये न पश्यन्ति गङ्गां पुण्यजलां शिवाम् ॥  
 भूतभव्यभविष्यज्ञैर्महर्षिभिरुपस्थिताम् ।  
 देवैः सेन्द्रैश्च को गङ्गां नोपसेवेत मानवः ॥ ६७  
 वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः ।  
 विद्यावद्भिः श्रितां गङ्गां पुमान्को नाम नाश्रयेत् ॥  
 उत्क्रामद्भिश्च यः प्राणैः प्रयतः शिष्टसंमतः ।  
 चिन्तयेन्मनसा गङ्गां स गतिं परमां लभेत् ॥ ६९  
 न भयेभ्यो भयं तस्य न पापेभ्यो न राजतः ।

आ देहपतनाद्गङ्गामुपास्ते यः पुमानिह ॥ ७०  
 गगनाद्यां महापुण्यां पतन्तीं वै महेश्वरः ।  
 दधार शिरसा देवी तामेव दिवि सेवते ॥ ७१  
 अलंकृतास्त्रयो लोकाः पथिभिर्विमलैस्त्रिभिः ।  
 यस्तु तस्या जलं सेवेत्कृतकृत्यः पुमान्भवेत् ॥ ७२  
 दिवि ज्योतिर्यथादित्यः पितृणां चैव चन्द्रमाः ।  
 देवेशश्च यथा नृणां गङ्गेह सरितां तथा ॥ ७३  
 मात्रा पित्रा सुतैर्दारैर्वियुक्तस्य धनेन वा ।  
 न भवेद्धि तथा दुःख यथा गङ्गावियोगजम् ॥ ७४  
 नारण्यैर्नेष्टविषयैर्न सुतैर्न धनागमैः ।  
 तथा प्रसादो भवति गङ्गां वीक्ष्य यथा नृणाम् ॥  
 पूर्णमिन्दुं यथा दृष्ट्वा नृणां दृष्टिः प्रसीदति ।  
 गङ्गां त्रिपथगां दृष्ट्वा तथा दृष्टिः प्रसीदति ॥ ७६  
 तद्भावस्तद्गतमनास्तन्निष्ठस्तत्परायणः ।  
 गङ्गां योऽनुगतो भक्त्या स तस्याः प्रियतां व्रजेत् ॥  
 भूःस्थैः स्वस्थैर्दिविष्ठैश्च भूतैश्चावचैरपि ।  
 गङ्गा विगाह्या सततमेतत्कार्यतमं सताम् ॥ ७८  
 त्रिषु लोकेषु पुण्यत्वाद्गङ्गायाः प्रथितं यशः ।  
 यत्पुत्रान्सगरस्थैषा भस्माख्याननयद्विवम् ॥ ७९  
 वाय्वीरिताभिः सुमहास्वनाभि-  
 र्हुताभिरत्यर्थसमुच्छ्रिताभिः ।  
 गङ्गोर्मिभिर्भानुमतीभिरिद्धः  
 सहस्ररश्मिप्रतिमो विभाति ॥ ८०  
 पयस्विनीं घृतिनीमत्युदारां  
 समृद्धिनीं वेगिनीं दुर्विगाह्याम् ।  
 गङ्गां गत्वा यैः शरीरं विसृष्टं  
 गता धीरास्ते विबुधैः समत्वम् ॥ ८१  
 अन्धाञ्जडान्द्रव्यहीनांश्च गङ्गा  
 यशस्विनी बृहती विश्वरूपा ।  
 देवैः सेन्द्रैर्मुनिभिर्मानवैश्च



निषेविता सर्वकामैर्यनक्ति ॥ ८२  
 ऊर्जविती मधुमती महापुण्यां त्रिवर्त्मगाम् ।  
 त्रिलोकगोप्त्री ये गङ्गां संश्रितास्ते दिवं गताः ॥  
 यो वत्स्यति द्रक्ष्यति वापि मर्त्य-  
 स्तस्मै प्रयच्छन्ति सुखानि देवाः ।  
 तद्भाविताः स्पर्शने दर्शने य-  
 स्तस्मै देवा गतिमिष्टां दिशन्ति ॥ ८४  
 दक्षां पृथ्वीं बृहतीं विप्रकृष्टां  
 शिवामृतां सुरसां सुप्रसन्नाम् ।  
 विभावरीं सर्वभूतप्रतिष्ठां  
 गङ्गां गता ये त्रिदिवं गतास्ते ॥ ८५  
 ख्यातिर्यस्याः खं दिवं गां च नित्यं  
 पुरा दिशो विदिशश्चावतस्थे ।  
 तस्या जलं सेव्य सरिद्वराया  
 मर्त्याः सर्वे कृतकृत्या भवन्ति ॥ ८६  
 इयं गङ्गेति नियतं प्रतिष्ठा  
 गुह्यस्य रुक्मस्य च गर्भयोषा ।  
 प्रातस्त्रिमार्गा घृतवहा विपाप्मा  
 गङ्गावतीर्णां वियतो विश्वतोया ॥ ८७  
 सुतावनीध्रस्य हरस्य भार्या  
 दिवो भुवश्चापि कक्ष्यानुरूपा ।  
 भव्या पृथिव्या भाविनी भाति राज-  
 नाङ्गा लोकानां पुण्यदा वै त्रयाणाम् ॥ ८८  
 मधुप्रवाहा घृतरागोद्धृताभि-  
 र्महोर्मिभिः शोभिता ब्राह्मणैश्च ।  
 दिवश्चयुता शिरसात्ता भवेन  
 गङ्गावनीध्रात्रिदिवस्य माला ॥ ८९  
 योनिर्वरिष्ठा विरजा वितन्वी  
 शुष्मा इरा वारिवहा यशोदा ।  
 विश्वावती चाकृतिरिष्टिरिद्धा

गङ्गोक्षितानां भुवनस्य पन्थाः ॥ ९०  
 क्षान्त्या मद्या गोपने धारणे च  
 दीप्त्या कृशानोस्तपनस्य चैव ।  
 तुल्या गङ्गा संमता ब्राह्मणानां  
 गुह्यस्य ब्रह्मण्यतया च नित्यम् ॥ ९१  
 ऋषिष्ठतां विष्णुपदीं पुराणीं  
 सुपुण्यतोयां मनसापि लोके ।  
 सर्वात्मना जाह्नवीं ये प्रपन्ना-  
 स्ते ब्रह्मणः सदनं संप्रयाताः ॥ ९२  
 लोकानिमात्रयति या जननीव पुत्रा-  
 न्सर्वात्मना सर्वगुणोपपन्ना ।  
 स्वस्थानमिष्टमिह ब्राह्ममभीप्समानै-  
 र्गङ्गा सदैवात्मवशैरुपास्या ॥ ९३  
 उक्तां जुष्टां मिषतीं विश्वतोया-  
 मिरां वज्री रेवतीं भूधराणाम् ।  
 शिष्टाश्रयाममृतां ब्रह्मकान्तां  
 गङ्गां श्रयेदात्मवान्सिद्धिकामः ॥ ९४  
 प्रस्नाद्य देवान्सविभून्समस्ता-  
 न्भगीरथस्तपसोऽग्रेण गङ्गाम् ।  
 गामानयन्तामभिगम्य शश्व-  
 न्पुमान्भयं नेह नामुत्र विधात् ॥ ९५  
 उदाहृतः सर्वथा ते गुणानां  
 मयैकदेशः प्रसमीक्ष्य बुद्ध्या ।  
 शक्तिर्न मे काचिदिहास्ति वक्तुं  
 गुणान्सर्वान्परिमातुं तथैव ॥ ९६  
 मेरोः समुद्रस्य च सर्वरत्नैः  
 संख्योपलानामुदकस्य वापि ।  
 वक्तुं शक्य नेह गङ्गाजलानां  
 गुणाख्यानं परिमातुं तथैव ॥ ९७  
 तस्मादिमान्परया श्रद्धयोक्ता-

नृणान्सर्वाङ्गाह्वीजांस्तथैव ।  
 भजेद्वाचा मनसा कर्मणा च  
 भक्त्या युक्तः परया श्रद्धधानः ॥ ९८  
 लोकानिमांस्त्रीन्यशसा वितत्य  
 सिद्धिं प्राप्य महतीं तां दुरापाम् ।  
 गङ्गाकृतानचिरेणैव लोका-  
 न्यथेष्टमिष्टान्विचरिष्यसि त्वम् ॥ ९९  
 तव मम च गुणैर्महानुभावा  
 जुषतु मतिं सततं स्वधर्मयुक्तैः ।  
 अभिगतजनवत्सला हि गङ्गा  
 भजति युनक्ति सुखैश्च भक्तिमन्तम् ॥ १००  
 भीष्म उवाच ।  
 इति परममतिर्गुणाननेका-  
 ङ्गिशलरतये त्रिपथानुयोगरूपान् ।  
 बहुविधमनुशास्य तथ्यरूपा-  
 नागन्तलं द्युतिमान्विवेश सिद्धः ॥ १०१  
 शिलवृत्तिस्तु सिद्धस्य वाक्यैः संबोधितस्तदा ।  
 गङ्गामुपास्य विधिवत्सिद्धिं प्राप्तः सुदुर्लभाम् ॥  
 तस्मात्त्वमपि कौन्तेय भक्त्या परमया युतः ।  
 गङ्गामभ्येहि सततं प्राप्यसे सिद्धिमुत्तमाम् ॥ १०३  
 वैशंपायन उवाच ।  
 श्रुत्वेतिहासं भीष्मोक्तं गङ्गायाः स्तवसंयुतम् ।  
 युधिष्ठिरः परां प्रीतिमगच्छद्भ्रातृभिः सह ॥ १०४  
 इतिहासमिमं पुण्यं शृणुयाद्यः पठेत् वा ।  
 गङ्गायाः स्तवसंयुक्तं स मुच्येत्सर्वकिल्बिषैः ॥  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनतत्पर्वणि  
 सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥  
 २८  
 युधिष्ठिर उवाच ।  
 प्रज्ञाश्रुताभ्यां वृत्तेन शीलैर्न च यथा भवान् ।

गुणैः समुदितः सर्वैर्वयसा च समन्वितः ।  
 तस्माद्भवन्तं पृच्छामि धर्मं धर्मभृतां वर ॥ १  
 क्षत्रियो यदि वा वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तम ।  
 ब्राह्मण्यं प्राप्नुयात्केन तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २  
 तपसा वा सुमहता कर्मणा वा श्रुतेन वा ।  
 ब्राह्मण्यमथ चेदिच्छेत्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ३  
 भीष्म उवाच ।  
 ब्राह्मण्यं तात दुष्प्राप वणैः क्षत्रादिभिस्त्रिभिः ।  
 परं हि सर्वभूतानां स्थानमेतद्युधिष्ठिर ॥ ४  
 बह्वीस्तु संसरन्त्योनीर्जायमानः पुनः पुनः ।  
 पर्याये तात कस्मिंश्चिद्ब्राह्मणो नाम जायते ॥ ५  
 अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 मतङ्गस्य च संवादं गर्दभ्याश्च युधिष्ठिर ॥ ६  
 द्विजातेः कस्यचित्तात तुल्यवर्णः सुतः प्रभुः ।  
 मतङ्गो नाम नाम्नाभूत्सर्वैः समुदितो गुणैः ॥ ७  
 स यज्ञकारः कौन्तेय पित्रा सृष्टः परंतप ।  
 प्रायाद्गर्दभयुक्तेन रथेनेहाशुगामिना ॥ ८  
 स बालं गर्दभं राजन्वहन्तं मातुरन्तिकैः ।  
 निरविध्यत्प्रतोदेन नासिकायां पुनः पुनः ॥ ९  
 तं तु तीव्रव्रणं दृष्ट्वा गर्दभी पुत्रगृद्धिनी ।  
 उवाच मा शुचः पुत्र चण्डालस्त्वाधितिष्ठति ॥ १०  
 ब्राह्मणे दारुणं नास्ति मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।  
 आचार्यः सर्वभूतानां शास्ता किं प्रहरिष्यति ॥ ११  
 अयं तु पापप्रकृतिर्बाले न कुरुते दयाम् ।  
 स्वयोनिं मानयत्येष भावो भावं निगच्छति ॥ १२  
 एतच्छ्रुत्वा मतङ्गस्तु दारुणं रासभीवचः ।  
 अवतीर्य रथात्तूर्णं रासभीं प्रत्यभाषत ॥ १३  
 ब्रूहि रासभि कल्याणि माता मे येन दूषिता ।  
 कथं मां वेत्सि चण्डालं क्षिप्रं रासभि शंस मे ॥  
 केन जातोऽस्मि चण्डालो ब्राह्मण्यं येन मेऽनशत् ।

तत्त्वेनैतन्महाप्राज्ञे ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ १५

गर्दभ्युवाच ।

ब्राह्मण्यां वृषलेन त्वं मत्तायां नापितेन ह ।  
जातस्त्वमसि चण्डालो ब्राह्मण्यं तेन तेऽनशत् ॥  
एवमुक्तो मतङ्गस्तु प्रत्युपायाद्ब्रूहि प्रति ।  
तमागतमभिप्रेक्ष्य पिता वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १७  
मया त्वं यज्ञसंसिद्धौ नियुक्तो गुरुकर्मणि ।  
कस्मात्प्रतिनिवृत्तोऽसि कश्चिन्न कुशलं तव ॥ १८

मतङ्ग उवाच ।

अयोनिश्चर्ययोनिर्वा यः स्यात्स कुशली भवेत् ।  
कुशलं तु कुनस्तस्य यस्येयं जननी पितः ॥ १९  
ब्राह्मण्यां वृषलाज्जातं पितर्वेदयतीह माम् ।  
अमानुषी गर्दभीयं तस्मात्तप्स्ये तपो महत् ॥ २०  
एवमुक्त्वा स पितरं प्रतस्थे कृतनिश्चयः ।  
ततो गत्वा महारण्यमतप्यत महत्तपः ॥ २१  
ततः संतापयामास विबुधांस्तपसान्वितः ।  
मतङ्गः सुसुखं प्रेप्सुः स्थानं सुचरितादपि ॥ २२  
त तथा तपसा युक्तमुवाच हरिवाहनः ।  
मतङ्ग तप्यसे किं त्वं भोगानुत्सृज्य मानुषान् ॥ २३  
वरं ददानि ते हन्त वृणीष्व त्वं यदिच्छसि ।  
यच्चाप्यवाप्यमन्यसे सर्वं प्रब्रूहि माचिरम् ॥ २४

मतङ्ग उवाच ।

ब्राह्मण्यं कामयानोऽहमिदमारब्धवांस्तपः ।  
गच्छेयं तदवाप्येह वर एष वृत्तो मया ॥ २५  
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं तमुवाच पुरंदरः ।  
ब्राह्मण्यं प्रार्थयानस्त्वमप्राप्यमकृतात्मभिः ॥ २६  
श्रेष्ठं यत्सर्वभूतेषु तपो यन्नातिवर्तते ।  
तदग्र्यं प्रार्थयानस्त्वमचिराद्विनशिष्यसि ॥ २७  
देवतासुरमर्त्येषु यत्पवित्रं परं स्मृतम् ।

चण्डालयोनौ जातेन न तत्प्राप्यं कथंचन ॥ २८

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

२९

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तो मतङ्गस्तु संशितात्मा यतव्रतः ।  
अतिष्ठदेकपादेन वर्षाणां शतमच्युत ॥ १  
तमुवाच ततः शक्रः पुनरेव महायशाः ।  
मतङ्ग परमं स्थानं प्रार्थयन्नतिदुर्लभम् ॥ २  
मा कृथाः साहसं पुत्र नैष धर्मपथस्तव ।  
अप्राप्यं प्रार्थयानो हि नचिराद्विनशिष्यसि ॥ ३  
मतङ्ग परमं स्थानं वार्यमाणो मया सकृत् ।  
चिकीर्षस्येव तपसा सर्वथा न भविष्यसि ॥ ४  
तिर्यग्योनिगतः सर्वो मानुष्यं यदि गच्छति ।  
स जायते पुल्कसो वा चण्डालो वा कदाचन ॥ ५  
पुंश्चलः पापयोनिर्वा यः कश्चिदिह लक्ष्यते ।  
स तस्यामेव सुचिरं मतङ्ग परिवर्तते ॥ ६  
ततो दशगुणे काले लभते शूद्रतामपि ।  
शूद्रयोनावपि ततो बहुशः परिवर्तते ॥ ७  
ततस्त्रिंशद्गुणे काले लभते वैश्यतामपि ।  
वैश्यतायां चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ॥ ८  
ततः षष्टिगुणे काले राजन्यो नाम जायते ।  
राजन्यत्वे चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ॥ ९  
ततः षष्टिगुणे काले लभते ब्रह्मबन्धुताम् ।  
ब्रह्मबन्धुश्चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ॥ १०  
ततस्तु द्विशते काले लभते काण्डपृष्ठताम् ।  
काण्डपृष्ठश्चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ॥ ११  
ततस्तु त्रिशते काले लभते द्विजतामपि ।  
तां च प्राप्य चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ॥ १२  
ततश्चतुःशते काले श्रोत्रियो नाम जायते ।

श्रोत्रियत्वे चिरं कालं तत्रैव परिवर्तते ॥ १३  
तदैव क्रोधद्वेषौ च कामद्वेषौ च पुत्रक ।  
अतिमानातिवादौ तमाविशन्ति द्विजाधमम् ॥ १४  
तांश्चेज्जयति शत्रून्स तदा प्राप्नोति सद्गुणम् ।  
अथ ते वै जयन्त्येनं तालाग्रादिव पात्यते ॥ १५  
मतङ्ग संप्रधायैतद्यद्दं त्वामचूचुदम् ।  
वृणीष्व काममन्यं त्वं ब्राह्मण्यं हि सुदुर्लभम् ॥ १६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकोनविंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

३०

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तो मतङ्गस्तु भृशं शोकपरायणः ।  
अतिष्ठत गयां गत्वा सोऽङ्गुष्ठेन शतं समाः ॥ १  
सुदुष्करं वह्न्योगं कृशो धमनिसंततः ।  
त्वगस्थिभूतो धर्मात्मा स पपातेति नः श्रुतम् ॥ २  
तं पतन्तमभिद्रुत्य परिजग्राह वासवः ।  
वराणामीश्वरो दाता सर्वभूतहिते रतः ॥ ३

शक्र उवाच ।

मतङ्ग ब्राह्मणत्वं ते संवृतं परिपन्थिभिः ।  
पूजयन्सुखमाप्नोति दुःखमाप्नोत्यपूजयन् ॥ ४  
ब्राह्मणे सर्वभूतानां योगक्षेमः समाहितः ।  
ब्राह्मणेभ्योऽनुत्तप्यन्ति पितरो देवतास्तथा ॥ ५  
ब्राह्मणः सर्वभूतानां मतङ्ग पर उच्यते ।  
ब्राह्मणः कुरुते तद्धि यथा यद्यच्च वाञ्छति ॥ ६  
बह्वीस्तु संसरन्योनीर्जायमानः पुनः पुनः ।  
पर्याये तात कस्मिंश्चिद्ब्राह्मण्यमिह विन्दति ॥ ७

मतङ्ग उवाच ।

किं मां तुदसि दुःखार्तं मृतं मारयसे च माम् ।  
तं तु शोचामि यो लब्ध्वा ब्राह्मण्यं न बुभूषते ॥ ८

ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्रापं त्रिभिर्वर्णैः शतक्रतो ।  
सुदुर्लभं तदावाप्य नानुतिष्ठन्ति मानवाः ॥ ९  
यः पापेभ्यः पापतमस्तेषामधम एव सः ।  
ब्राह्मण्यं योऽवजानीते धनं लब्ध्वेव दुर्लभम् ॥ १०  
दुष्प्रापं खलु विप्रत्वं प्राप्तं दुरनुपालनम् ।  
दुरवापमवाप्यैतन्नानुतिष्ठन्ति मानवाः ॥ ११  
एकारामो ह्यहं शक्र निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।  
अर्हिसादमदानस्थः कथं नार्हामि विप्रताम् ॥ १२  
यथाकामविहारी स्यां कामरूपी विहंगमः ।  
ब्रह्मक्षत्राविरोधेन पूजां च प्राप्नुयामहम् ।  
यथा ममाक्षया कीर्तिर्भवेच्चापि पुरंदर ॥ १३

इन्द्र उवाच ।

छन्दोदेव इति ख्यातः स्त्रीणां पूज्यो भविष्यसि ॥ १४

भीष्म उवाच ।

एवं तस्मै वरं दत्त्वा वासवोऽन्तरधीयत ।  
प्राणांस्त्यक्त्वा मतङ्गोऽपि प्राप तत्स्थानमुत्तमम् ॥ १५  
एवमेतत्परं स्थानं ब्राह्मण्यं नाम भारत ।  
तच्च दुष्प्रापमिह वै महेन्द्रवचनं यथा ॥ १६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

३१

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतं मे महदाख्यानमेतत्कुरुकुलोद्बह ।  
सुदुष्प्रापं ब्रवीषि त्वं ब्राह्मण्यं वदतां वर ॥ १  
विश्वामित्रेण च पुरा ब्राह्मण्यं प्राप्तमित्युत ।  
श्रूयते वदसे तच्च दुष्प्रापमिति सत्तम ॥ २  
वीतहव्यश्च राजर्षिः श्रुतो मे विप्रतां गतः ।  
तदेव तावद्वाङ्मेय श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो ॥ ३  
स केन कर्मणा प्राप्तो ब्राह्मण्यं राजसत्तम ।

वरेण तपसा वापि तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४

भीष्म उवाच ।

शृणु राजन्यथा राजा वीतहव्यो महायशः ।  
क्षत्रियः सन्पुनः प्राप्तो ब्राह्मण्यं लोकसत्कृतम् ॥ ५  
सनोर्महात्मनस्तात प्रजाधर्मेण शासतः ।  
बभूव पुत्रो धर्मात्मा शर्यातिरिति विश्रुतः ॥ ६  
तस्यान्ववाये द्वौ राजनराजानौ संवभूवतुः ।  
हेहयस्तालजङ्घश्च वत्सेषु जयतां वर ॥ ७  
हेहयस्य तु पुत्राणां दशसु स्त्रीषु भारत ।  
शतं बभूव प्रख्यातं शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ८  
तुल्यरूपप्रभावाणां विदुषां युद्धशालिनाम् ।  
धनुर्वेदे च वेदे च सर्वत्रैव कृतश्रमाः ॥ ९  
काशिष्वपि नृपो राजन्दिवोदासपितामहः ।  
हर्यश्च इति विख्यातो बभूव जयतां वरः ॥ १०  
स वीतहव्यदायादैरागत्य पुरुषर्षभ ।  
गङ्गायमुनयोर्मध्ये संग्रामे विनिपातितः ॥ ११  
तं तु हत्वा नरवरं हेहयास्ते महारथाः ।  
प्रतिजग्मुः पुरीं रम्यां वत्सानामकुतोभयाः ॥ १२  
हर्यश्चस्य तु दायादः काशिराजोऽभ्यषिच्यत ।  
सुदेवो देवसंकाशः साक्षाद्धर्म इवापरः ॥ १३  
स पालयन्नेव महीं धर्मात्मा काशिनन्दनः ।  
तैर्वीतहव्यैरागत्य युधि सर्वैर्विनिर्जितः ॥ १४  
तमप्याजौ विनिर्जित्य प्रतिजग्मुर्यथागतम् ।  
सौदेविस्त्वथ काशीशो दिवोदासोऽभ्यषिच्यत ॥ १५  
दिवोदासस्तु विज्ञाय वीर्यं तेषां महात्मनाम् ।  
वाराणसीं महातेजा निर्ममे शक्रशासनात् ॥ १६  
विप्रक्षत्रियसंवाधां वैश्यशूद्रसमाकुलाम् ।  
नैकद्रव्योच्चयवतीं समृद्धविपणापणाम् ॥ १७  
गङ्गायां उत्तरे कूले वप्रान्ते राजसत्तम ।  
गोमत्या दक्षिणे चैव शक्रस्येवामरावतीम् ॥ १८

तत्र तं राजशार्दूलं निवसन्तं महीपतिम् ।  
आगत्य हेहया भूयः पर्यधावन्त भारत ॥ १९  
स निष्पत्य ददौ युद्धं तेभ्यो राजा महाबलः ।  
देवासुरसमं घोरं दिवोदासो महाद्युतिः ॥ २०  
स तु युद्धे महाराज दिनानां दशतीर्दश ।  
हतवाहनभूयिष्ठस्ततो दैन्यमुपागमत् ॥ २१  
हतयोधस्ततो राजन्क्षीणकोशश्च भूमिपः ।  
दिवोदासः पुरीं हित्वा पलायनपरोऽभवत् ॥ २२  
स त्वाश्रममुपागम्य भरद्वाजस्य धीमतः ।  
जगाम शरणं राजा कृताञ्जलिररिन्दम ॥ २३

राजोवाच ।

भगवन्वैतहव्यैर्मे युद्धे वंशः प्रणाशितः ।  
अहमेकः परिचूनो भवन्तं शरणं गतः ॥ २४  
शिष्यस्नेहेन भगवन्स मां रक्षितुमर्हसि ।  
निःशेषो हि कृतो वंशो मम तैः पापकर्मभिः ॥ २५  
तमुवाच महाभागो भरद्वाजः प्रतापवान् ।  
न भेतव्यं न भेतव्यं सौदेव व्येतु ते भयम् ॥ २६  
अहमिष्टि करोम्यद्य पुत्रार्थं ते विशां पते ।  
वैतहव्यसहस्राणि यथा त्वं प्रसहिष्यसि ॥ २७  
ततः इष्टिं चकार्षिस्तस्य वै पुत्रकामिकीम् ।  
अथास्य तनयो जज्ञे प्रतर्दन इति श्रुतः ॥ २८  
स जातमात्रो ववृधे समाः सद्यस्त्रयोदश ।  
वेदं चाधिजगे कृत्स्नं धनुर्वेदं च भारत ॥ २९  
योगेन च समाविष्टो भरद्वाजेन धीमता ।  
तेजो लौक्यं स संगृह्य तस्मिन्देसे समाविशत् ॥  
ततः स कवची धन्वी बाणी दीप्त इवानलः ।  
प्रययौ स धनुर्वन्वन्विर्वर्षुरिव तोयदः ॥ ३१  
तं दृष्ट्वा परमं हर्षं सुदेवतनयो ययौ ।  
मेने च मनसा दग्धान्वैतहव्यान्स पार्थिवः ॥ ३२  
ततस्तं यौवराज्येन स्थापयित्वा प्रतर्दनम् ।

कृतकृत्यं तदात्मानं स राजा अभ्यनन्दत ॥ ३३  
 ततस्तु वैतहव्यानां वधाय स महीपतिः ।  
 पुत्रं प्रस्थापयामास प्रतर्दनमरिन्दमम् ॥ ३४  
 सरथः स तु संतीर्य गङ्गामाशु पराक्रमी ।  
 प्रययौ वीतहव्यानां पुरीं परपुरंजयः ॥ ३५  
 वैतहव्यास्तु संश्रुत्य रथघोषं समुद्धतम् ।  
 निर्ययुर्नगराकारैः रथैः पररथारुजैः ॥ ३६  
 निष्क्रम्य ते तरव्याघ्रा दंशिताश्चित्रयोधिनः ।  
 प्रतर्दनं समाजघ्नः शरवर्षैरुदायुधाः ॥ ३७  
 अस्त्रैश्च विविधाकारै रथौघैश्च युधिष्ठिर ।  
 अभ्यवर्षन्त राजानं हिमवन्तमिवाम्बुदाः ॥ ३८  
 अस्त्रैश्च विविधाकारै रथौघैश्च युधिष्ठिर ।  
 जघान तान्महातेजा वज्रानलसमैः शरैः ॥ ३९  
 कृतोत्तमाङ्गास्ते राजन्मल्लैः शतसहस्रशः ।  
 अपतन्रुधिरार्द्राङ्गा निष्कृता इव किंशुकाः ॥ ४०  
 हतेषु तेषु सर्वेषु वीतहव्यः सुतेष्वथ ।  
 प्राद्रवन्नगरं हित्वा भृगोराश्रममप्युत ॥ ४१  
 ययौ भृगुं च शरणं वीतहव्यो नराधिपः ।  
 अभयं च ददौ तस्मै राज्ञे राजन्भृगुस्तथा ।  
 ततो ददावासनं च तस्मै शिष्यो भृगोस्तदा ॥ ४२  
 अथानुपदमेवाशु तत्रागच्छत्प्रतर्दनः ।  
 स प्राप्य चाश्रमपदं दिवोदासात्मजोऽब्रवीत् ॥ ४३  
 भो भो केऽत्राश्रमे सन्ति भृगोः शिष्या महात्मनः ।  
 द्रष्टुमिच्छे मुनिमहं तस्याचक्षत मामिति ॥ ४४  
 स तं विदित्वा तु भृगुर्निश्चक्रामाश्रमात्तदा ।  
 पूजयामास च ततो विधिना परमेण ह ॥ ४५  
 उवाच चैनं राजेन्द्र किं कार्यमिति पार्थिवम् ।  
 स चोवाच नृपस्तस्मै यदागमनकारणम् ॥ ४६  
 अयं ब्रह्मन्नितो राजा वीतहव्यो विसर्ज्यताम् ।  
 अस्य पुत्रैर्हि मे ब्रह्मन्कृत्स्नो वंशः प्रणाशितः ।

उत्सादितश्च विषयः काशीनां रत्नसंचयः ॥ ४७  
 एतस्य वीर्यदृप्तस्य हतं पुत्रशतं मया ।  
 अस्येदानीं वधाद्ब्रह्मन्भविष्याम्यनृणः पितुः ॥ ४८  
 तमुवाच कृपाविष्टो भृगुर्धर्मभृतां वरः ।  
 नेहास्ति क्षत्रियः कश्चित्सर्वे हीमे द्विजातयः ॥ ४९  
 एवं तु वचनं श्रुत्वा भृगोस्तथ्यं प्रतर्दनः ।  
 पादावुपस्पृश्य शनैः प्रहसन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५०  
 एवमप्यस्मि भगवन्कृतकृत्यो न संशयः ।  
 यदेष राजा वीर्येण स्वजातिं त्याजितो मया ॥ ५१  
 अनुजानीहि मां ब्रह्मन्ध्यायस्व च शिवेन माम् ।  
 त्याजितो हि मया जातिमेष राजा भृगूद्वह ॥ ५२  
 ततस्तेनाभ्यनुज्ञातो ययौ राजा प्रतर्दनः ।  
 यथागतं महाराज मुक्त्वा विषमिधोरगः ॥ ५३  
 भृगोर्वचनमात्रेण स च ब्रह्मर्षितां गतः ।  
 वीतहव्यो महाराज ब्रह्मवादित्वमेव च ॥ ५४  
 तस्य गृत्समदः पुत्रो रूपेणेन्द्र इवापरः ।  
 शकस्त्वमिति यो दैत्यैर्निगृहीतः किलाभवत् ॥ ५५  
 ऋग्वेदे वर्तते चाग्न्या श्रुतिरत्र विशां पते ।  
 यत्र गृत्समदो ब्रह्मन्ब्राह्मणैः स महीयते ॥ ५६  
 स ब्रह्मचारी विप्रर्षिः श्रीमान्गृत्समदोऽभवत् ।  
 पुत्रो गृत्समदस्यापि सुचेता अभवद्विजः ॥ ५७  
 वर्चाः सुतेजसः पुत्रो विहव्यस्तस्य चात्मजः ।  
 विहव्यस्य तु पुत्रस्तु वितत्यस्तस्य चात्मजः ॥ ५८  
 वितत्यस्य सुतः सत्यः सन्तः सत्यस्य चात्मजः ।  
 श्रवास्तस्य सुतश्चर्षिः श्रवस्तस्याभवत्तमः ॥ ५९  
 तमसश्च प्रकाशोऽभूत्तनयो द्विजसत्तमः ।  
 प्रकाशस्य च वागिन्द्रो बभूव जयतां वरः ॥ ६०  
 तस्यात्मजश्च प्रमतिर्वेदवेदाङ्गपारगः ।  
 घृताच्यां तस्य पुत्रस्तु रुरुर्नामोदपद्यत ॥ ६१  
 प्रमद्वरायां तु रुरोः पुत्रः समुदपद्यत ।

शुनको नाम विप्रर्विष्यस्य पुत्रोऽथ शौनकः ॥ ६२  
 एवं विप्रत्वमगमद्वीतहव्यो नराधिपः ।  
 भृगोः प्रसादाद्राजेन्द्र क्षत्रियः क्षत्रियर्षभ ॥ ६३  
 तथैव कथितो वंशो मया गार्त्तमदस्तव ।  
 विस्तरेण महाराज किमन्यदनुपृच्छसि ॥ ६४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

३२

युधिष्ठिर उवाच ।

के पूज्याः के नमस्कार्या मानवैर्भरतर्षभ ।  
 विस्तरेण तदाचक्ष्व न हि तृप्यामि कथ्यताम् ॥ १

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीमितिहासं पुरातनम् ।  
 नारदस्य च संवादं वासुदेवस्य चोभयोः ॥ २  
 नारदं प्राञ्जलिं दृष्ट्वा पूजयानं द्विजर्षभान् ।  
 केशवः परिपप्रच्छ भगवन्कान्नमस्यसि ॥ ३  
 बहुमानः परः केषु भवतो यान्नमस्यसि ।  
 शक्यं चेच्छ्रोतुमिच्छामि ब्रूहेतद्धर्मवित्तम ॥ ४

नारद उवाच ।

शृणु गोविन्द यानेतान्पूजयाम्यरिमर्दन ।  
 त्वत्तोऽन्यः कः पुमाल्लोके श्रोतुमेतदिहार्हति ॥ ५  
 वरुणं वायुमादित्यं पर्जन्यं जातवेदसम् ।  
 स्थाणुं स्कन्दं तथा लक्ष्मीं विष्णुं ब्रह्माणमेव च ॥ ६  
 वाचस्पतिं चन्द्रमसमपः पृथ्वीं सरस्वतीम् ।  
 सततं ये नमस्यन्ति तान्नमस्याम्यहं विभो ॥ ७  
 तपोधनान्वेदविदो नित्यं वेदपरायणान् ।  
 महार्हान्वृष्णिशार्दूल सदा संपूजयाम्यहम् ॥ ८  
 अभुक्त्वा देवकार्याणि कुर्वते येऽविकथनाः ।  
 संतुष्टाश्च क्षमायुक्तास्तान्नमस्याम्यहं विभो ॥ ९

सम्यग्ददति ये चेष्टान्क्षान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ।  
 सस्यं धनं क्षिति गाश्च तान्नमस्यामि यादव ॥ १०  
 ये ते तपसि वर्तन्ते वने मूलफलाशनाः ।  
 असंचयाः क्रियावन्तस्तान्नमस्यामि यादव ॥ ११  
 ये भृत्यभरणे सक्ताः सततं चातिथिप्रियाः ।  
 भुञ्जन्ते देवशेषाणि तान्नमस्यामि यादव ॥ १२  
 ये वेदं प्राप्य दुर्धर्षा वाग्मिनो ब्रह्मवादिनः ।  
 याजनाध्यापने युक्ता नित्यं तान्पूजयाम्यहम् ॥ १३  
 प्रसन्नहृदयाश्चैव सर्वसत्त्वेषु नित्यशः ।  
 आ पृष्ठतापात्स्वाध्याये युक्तास्तान्पूजयाम्यहम् ॥ १४  
 गुरुप्रसादे स्वाध्याये यतन्ते ये स्थिरव्रताः ।  
 शुश्रूषवोऽनसूयन्तस्तान्नमस्यामि यादव ॥ १५  
 सुव्रता मुनयो ये च ब्रह्मण्याः सत्यसंगराः ।  
 वोढारो हव्यकव्यानां तान्नमस्यामि यादव ॥ १६  
 भैक्ष्यचर्यासु निरताः कृशा गुरुकुलाश्रयाः ।  
 निःसुखा निर्धना ये च तान्नमस्यामि यादव ॥ १७  
 निर्ममा निष्प्रतिद्वंढा निर्हीका निष्प्रयोजनाः ।  
 अहिंसानिरता ये च ये च सत्यव्रता नराः ।  
 दान्ताः शमपराश्चैव तान्नमस्यामि केशव ॥ १८  
 देवतातिथिपूजायां प्रसक्ता गृहमेधिनः ।  
 कपोतवृत्तयो नित्यं तान्नमस्यामि यादव ॥ १९  
 येषां त्रिवर्गः कृत्येषु वर्तते नोपहीयते ।  
 शिष्टाचारप्रवृत्ताश्च तान्नमस्याम्यहं सदा ॥ २०  
 ब्राह्मणास्त्रिषु लोकेषु ये त्रिवर्गमनुष्ठिताः ।  
 अलोलुपाः पुण्यशीलास्तान्नमस्यामि केशव ॥ २१  
 अब्भक्षा वायुभक्षाश्च सुधाभक्षाश्च ये सदा ।  
 व्रतैश्च विविधैर्युक्तास्तान्नमस्यामि माधव ॥ २२  
 अयोनीनग्नियोनीश्च ब्रह्मयोनीस्तथैव च ।  
 सर्वभूतात्मयोनीश्च तान्नमस्याम्यहं द्विजान् ॥ २३  
 नित्यमेतान्नमस्यामि कृष्ण लोककरानृषीन् ।

लोकज्येष्ठाञ्ज्ञाननिष्ठांस्तमोर्ब्राल्लोकभास्करान् ॥ २४  
 तस्मात्त्वमपि वाष्णेय द्विजान्पूजय नित्यदा ।  
 पूजिताः पूजनाहर्हा हि सुखं दास्यन्ति तेऽनघ ॥ २५  
 अस्मिल्लोके सदा हेते परत्र च सुखप्रदाः ।  
 त एते मान्यमाना वै प्रदास्यन्ति सुखं तव ॥ २६  
 ये सर्वातिथयो नित्यं गोषु च ब्राह्मणेषु च ।  
 नित्यं सत्ये च निरता दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ २७  
 नित्यं शमपरा ये च तथा ये चानसूयकाः ।  
 नित्यं स्वाध्यायिनो ये च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ २८  
 सर्वान्देवान्नमस्यन्ति ये चैकं देवमाश्रिताः ।  
 श्रद्धावानाश्च दान्ताश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ २९  
 तथैव विप्रप्रवरान्नमस्कृत्य यतव्रतान् ।  
 भवन्ति ये दानरता दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ ३०  
 अमीनाधाय विधिवत्प्रयता धारयन्ति ये ।  
 प्राप्ताः सोमाहुतिं चैव दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ ३१  
 मातापित्रोर्गुरुषु च सम्यग्वर्तन्ति ये सदा ।  
 यथा त्वं वृष्णिशार्दूलेत्युक्तवैवं विराम सः ॥ ३२  
 तस्मात्त्वमपि कौन्तेय पितृदेवद्विजातिथीन् ।  
 सम्यक्पूजय येन त्वं गतिमिष्टामवाप्स्यसि ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

३३

युधिष्ठिर उवाच ।

किं राज्ञः सर्वकृत्यानां गरीयः स्यात्पितामह ।  
 किं कुर्वन्कर्म नृपतिरुभौ लोकौ समश्नुते ॥ १

भीष्म उवाच ।

एतद्राज्ञः कृत्यतममभिषिक्तस्य भारत ।  
 ब्राह्मणानामनुष्ठानमत्यन्तं सुखमिच्छता ।  
 श्रोत्रियान्ब्राह्मणान्वृद्धान्नित्यमेवाभिपूजयेत् ॥ २

पौरजानपदांश्चापि ब्राह्मणांश्च बहुश्रुतान् ।  
 सान्त्वेन भोगदानेन नमस्कारैस्तथार्चयेत् ॥ ३  
 एतत्कृत्यतमं राज्ञो नित्यमेवेति लक्षयेत् ।  
 यथात्मानं यथा पुत्रांस्तथैतान्परिपालयेत् ॥ ४  
 ये चाप्येषां पूज्यतमास्तान्दृढं प्रतिपूजयेत् ।  
 तेषु शान्तेषु तद्वाष्ट्रं सर्वमेव विराजते ॥ ५  
 ते पूज्यास्ते नमस्कार्यास्ते रक्ष्याः पितरो यथा ।  
 तेष्वेव यात्रा लोकस्य भूतानामिव वासवे ॥ ६  
 अभिचारैरुपायैश्च दहेयुरपि तेजसा ।  
 निःशेषं कुपिताः कुर्युरुग्राः सत्यपराक्रमाः ॥ ७  
 नान्तमेषां प्रपश्यामि न दिशश्चाप्यपावृताः ।  
 कुपिताः समुदीक्षन्ते दावेष्वाग्निशिखा इव ॥ ८  
 विद्यन्तेषां साहसिका गुणास्तेषामतीव हि ।  
 कूपा इव तृणच्छन्ना विशुद्धा द्यौरिवापरे ॥ ९  
 प्रसह्यकारिणः केचित्कार्पासमृदवोऽपरे ।  
 सन्ति चैषामतिशठास्तथान्येऽतितपस्विनः ॥ १०  
 कृषिगोरक्ष्यमप्यन्ये भैक्षमन्येऽप्यनुष्ठिताः ।  
 चोराश्चान्येऽनृताश्चान्ये तथान्ये नटनर्तकाः ॥ ११  
 सर्वकर्मसु दृश्यन्ते प्रशान्तेष्वितरेषु च ।  
 विविधाचारयुक्ताश्च ब्राह्मणा भरतर्षभ ॥ १२  
 नानाकर्मसु युक्तानां बहुकर्मोपजीविनाम् ।  
 धर्मज्ञानां सतां तेषां नित्यमेवानुकीर्तयेत् ॥ १३  
 पितृणां देवतानां च मनुष्योरगरक्षसाम् ।  
 पुरोहिता महाभागा ब्राह्मणा वै नराधिप ॥ १४  
 नैते देवैर्न पितृभिर्न गन्धर्वैर्न राक्षसैः ।  
 नासुरैर्न पिशाचैश्च शक्या जेतुं द्विजातयः ॥ १५  
 अदैवं दैवतं कुर्युदैवतं चाप्यदैवतम् ।  
 यमिच्छेयुः स राजा स्याद्यं द्विष्युः स पराभवेत् ॥  
 परिवादं च ये कुर्युर्ब्राह्मणानामचेतसः ।  
 निन्दाप्रशंसाकुशलाः कीर्त्यकीर्तिपरावराः ।



परिकुप्यन्ति ते राजन्सततं द्विषतां द्विजाः ॥ १७  
 ब्राह्मणा ये प्रशंसन्ति पुरुषः स प्रवर्धते ।  
 ब्राह्मणैर्यः पराक्रुष्टः पराभूयात्क्षणाद्वि सः ॥ १८  
 शका यवनकाम्बोजास्तास्ताः क्षत्रियजातयः ।  
 वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात् ॥ १९  
 द्रुमिष्ठाश्च कलिङ्गाश्च पुलिन्दाश्चाप्युशीनराः ।  
 कौलाः सर्पा माहिषकास्तास्ताः क्षत्रियजातयः ॥ २०  
 वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात् ।  
 श्रेयान्पराजयस्तेभ्यो न जयो जयता वर ॥ २१  
 यस्तु सर्वमिदं हन्याद्ब्राह्मणं च न तत्समम् ।  
 ब्रह्मवध्या महान्दोष इत्याहुः परमर्षयः ॥ २२  
 परिवादो द्विजातीनां न श्रोतव्यः कथंचन ।  
 आसीताधोमुखस्तूष्णीं समुत्थाय व्रजेत वा ॥ २३  
 न स जातो जनिष्यो वा पृथिव्यामिह कश्चन ।  
 यो ब्राह्मणविरोधेन सुखं जीवितुमुत्सहेत् ॥ २४  
 दुर्ग्रहो मुष्टिना वायुर्दुःस्पर्शः पाणिना शशी ।  
 दुर्धरा पृथिवी मूर्ध्ना दुर्जया ब्राह्मणा भुवि ॥ २५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

३४

भीष्म उवाच ।

ब्राह्मणानेव सततं भृशं संप्रतिपूजयेत् ।  
 एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ॥ १  
 एते भोगैरलंकारैरन्यैश्चैव किमिच्छकैः ।  
 सदा पूज्या नमस्कार्या रक्ष्याश्च पितृवन्नृपैः ।  
 अतो राष्ट्रस्य शान्तिर्हि भूतानामिव वासवात् ॥ २  
 जायतां ब्रह्मवर्चस्वी राष्ट्रे वै ब्राह्मणः शुचिः ।  
 महारथश्च राजन्य एष्टव्यः शत्रुतापनः ॥ ३  
 ब्राह्मणं जातिसंपन्नं धर्मज्ञं संशितव्रतम् ।  
 वासयेत् गृहे राजन्न तस्मात्परमस्ति वै ॥ ४

ब्राह्मणेभ्यो हविर्दत्तं प्रतिगृह्णन्ति देवताः ।  
 पितरः सर्वभूतानां नैतेभ्यो विद्यते परम् ॥ ५  
 आदित्यश्चन्द्रमा वायुर्भूमिरापोऽम्बरं दिशः ।  
 सर्वे ब्राह्मणमाविश्य सदान्नमुपभुञ्जते ॥ ६  
 न तस्याभन्ति पितरो यस्य विप्रा न भुञ्जते ।  
 देवाश्चाप्यस्य नाभन्ति पापस्य ब्राह्मणद्विषः ॥ ७  
 ब्राह्मणेषु तु तुष्टेषु प्रीयन्ते पितरः सदा ।  
 तथैव देवता राजन्नात्र कार्या विचारणा ॥ ८  
 तथैव तेऽपि प्रीयन्ते येषां भवति तद्विधिः ।  
 न च प्रेत्य विनश्यन्ति गच्छन्ति परमां गतिम् ॥ ९  
 येन येनैव हविषा ब्राह्मणांस्तर्पयेन्नरः ।  
 तेन तेनैव प्रीयन्ते पितरो देवतास्तथा ॥ १०  
 ब्राह्मणादेव तद्भूतं प्रभवन्ति यतः प्रजाः ।  
 यतश्चायं प्रभवति प्रेत्य यत्र च गच्छति ॥ ११  
 वेदैष मार्गं स्वर्गस्य तथैव नरकस्य च ।  
 आगतानागते चोभे ब्राह्मणो द्विपदां वरः ।  
 ब्राह्मणो भरतश्रेष्ठ स्वधर्मं वेद मेधया ॥ १२  
 ये चैनमनुवर्तन्ते ते न यान्ति पराभवम् ।  
 न ते प्रेत्य विनश्यन्ति गच्छन्ति न पराभवम् ॥  
 ये ब्राह्मणमुखात्प्राप्तं प्रतिगृह्णन्ति वै वचः ।  
 कृतात्मानो महात्मानस्ते न यान्ति पराभवम् ॥ १४  
 क्षत्रियाणां प्रतपतां तेजसा च बलेन च ।  
 ब्राह्मणेष्वेव शाम्यन्ति तेजांसि च बलानि च ॥ १५  
 भृगवोऽजयंस्तालजङ्घान्नीपानङ्गिरसोऽजयन् ।  
 भरद्वाजो वैतहव्यानैलांश्च भरतर्षभ ॥ १६  
 चित्रायुधांश्चाप्यजयन्नेते कृष्णाजिनध्वजाः ।  
 प्रक्षिप्याथ च कुम्भान्वै पारगामिनमारभेत् ॥ १७  
 यत्किञ्चित्कथ्यते लोके श्रूयते पश्यतेऽपि वा ।  
 सर्वं तद्ब्राह्मणेष्वेव गूढोऽग्निरिव दारुषु ॥ १८  
 अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

संवादं वासुदेवस्य पृच्छ्याश्च भरतर्षभ ॥ १९

वासुदेव उवाच ।

मातरं सर्वभूतानां पृच्छे त्वा संशयं शुभे ।  
केनस्वित्कर्मणा पापं व्यपोहति नरो गृही ॥ २०

पृथिव्युवाच ।

ब्राह्मणानेव सेवेत पवित्रं ह्येतदुत्तमम् ।  
ब्राह्मणान्सेवमानस्य रजः सर्वं प्रणश्यति ॥ २१  
अतो भूतिरतः कीर्तिरतो बुद्धिः प्रजायते ।  
अपरेषां परेषां च परेभ्यश्चैव ये परे ॥ २२  
ब्राह्मणा यं प्रशंसन्ति पुरुषः स प्रवर्धते ।  
अथ यो ब्राह्मणाक्रुष्टः पराभवति सोऽचिरात् ॥ २३  
यथा महार्णवे क्षिप्त आमलोष्ठो विनश्यति ।  
तथा दुश्चरितं कर्म पराभावाय कल्पते ॥ २४  
पश्य चन्द्रे कृतं लक्ष्म समुद्रे लवणोदकम् ।  
तथा भगसहस्रेण महेन्द्रं परिचिह्नितम् ॥ २५  
तेषामेव प्रभावेन सहस्रनयनो ह्यसौ ।  
शतक्रतुः समभवत्पश्य माधव यादृशम् ॥ २६  
इच्छन्भूतिं च कीर्तिं च लोकांश्च मधुसूदन ।  
ब्राह्मणानुमते तिष्ठेत्पुरुषः शुचिरात्मवान् ॥ २७  
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा मेदिन्या मधुसूदनः ।  
साधु साध्वित्यथेत्युक्त्वा मेदिनीं प्रत्यपूजयत् ॥ २८  
एतां श्रुत्वोपमां पार्थ प्रयतो ब्राह्मणर्षभान् ।  
सततं पूजयेथास्त्वं ततः श्रेयोऽभिपत्स्यसे ॥ २९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

३५

भीष्म उवाच ।

जन्मनैव महाभागो ब्राह्मणो नाम जायते ।  
नमस्यः सर्वभूतानामतिथिः प्रसूताप्रभुक् ॥ १

सर्वान्नः सुहृदस्तात ब्राह्मणाः सुमनोमुखाः ।  
गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिरभ्युन्यन्ति पूजिताः ॥ २  
सर्वान्नो द्विषतस्तात ब्राह्मणा जातमन्यवः ।  
गीर्भिर्द्वारुणयुक्ताभिरभ्युन्यन्ति पूजिताः ॥ ३  
अत्र गाथा ब्रह्मगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।  
सङ्घा द्विजातीन्धाता हि यथापूर्वं समादधत् ॥ ४  
न वोऽन्यदिह कर्तव्यं किञ्चिदूर्ध्वं यथाविधि ।  
गुप्ता गोपायत ब्रह्म श्रेयो वस्तेन शोभनम् ॥ ५  
स्वमेव कुर्वतां कर्म श्रीर्वो ब्राह्मी भविष्यति ।  
प्रमाणं सर्वभूतानां प्रैग्रहं च गमिष्यथ ॥ ६  
न शौद्रं कर्म कर्तव्यं ब्राह्मणेन विपश्चिता ।  
शौद्रं हि कुर्वतः कर्म धर्मः समुपबध्यते ॥ ७  
श्रीश्च बुद्धिश्च तेजश्च विभूतिश्च प्रतापिनी ।  
स्वाध्यायेनैव माहात्म्यं विमलं प्रतिपत्स्यथ ॥ ८  
हुत्वा चाहवनीयस्य महाभाग्ये प्रतिष्ठिताः ।  
अग्रभोज्याः प्रसूतीनां श्रिया ब्राह्म्यानुकल्पिताः ॥ ९  
श्रद्धया परया युक्ता ह्यनभिद्रोहलब्धया ।  
दमस्वाध्यायनिरताः सर्वान्कामानवाप्स्यथ ॥ १०  
यच्चैव मानुषे लोके यच्च देवेषु किञ्चन ।  
सर्वं तत्तपसा साध्यं ज्ञानेन विनयेन च ॥ ११  
इत्येता ब्रह्मगीतास्ते समाख्याता मयानघ ।  
विप्रानुकम्पार्थमिदं तेन प्रोक्तं हि धीमता ॥ १२  
भूयस्तेषां बलं मन्ये यथा राज्ञस्तपस्विनः ।  
दुरासदाश्च चण्डाश्च रभसाः क्षिप्रकारिणः ॥ १३  
सन्त्येषां सिंहसत्त्वाश्च व्याघ्रसत्त्वास्तथापरे ।  
वराहमृगसत्त्वाश्च गजसत्त्वास्तथापरे ॥ १४  
कर्पासमृदवः केचित्तथान्ये मकरस्पृशः ।  
विभाष्यघातिनः केचित्तथा चक्षुर्हणोऽपरे ॥ १५  
सन्ति चाशीविषनिभाः सन्ति भन्दास्तथापरे ।  
विविधानीह वृत्तानि ब्राह्मणानां युधिष्ठिर ॥ १६

मेकला द्रमिडाः काशाः पौण्ड्राः कोल्लगिरास्तथा ।  
 शौण्डिका दरदा दर्वाश्चौराः शबरबर्बराः ॥ १७  
 किराता यवनाश्चैव तास्ता क्षत्रियजातयः ।  
 वृषलत्वमनुप्राप्ता ब्राह्मणानामदर्शनात् ॥ १८  
 ब्राह्मणानां परिभवादसुराः सलिलेशयाः ।  
 ब्राह्मणानां प्रसादाच्च देवाः स्वर्गनिवासिनः ॥ १९  
 अशक्यं स्पृष्टुमाकाशमचात्यो हिमवान्गिरिः ।  
 अवार्यां सेतुना गङ्गा दुर्जया ब्राह्मणा भुवि ॥ २०  
 न ब्राह्मणविरोधेन शक्या शास्तुं वसुंधरा ।  
 ब्राह्मणा हि महात्मानो देवानामपि देवताः ॥ २१  
 तान्पूजयस्व सततं दानेन परिचर्यया ।  
 यदीच्छसि महीं भोक्तुमिमां सागरमेखलाम् ॥ २२  
 प्रतिग्रहेण तेजो हि विप्राणां शाम्यतेऽनघ ।  
 प्रतिग्रहं ये नेच्छेयुस्तेऽपि रक्ष्यास्त्वयानघ ॥ २३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

३६

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 शक्रशम्बरसंवादं तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ १  
 शक्रो ह्यज्ञातरूपेण जटी भूत्वा रजोरुणः ।  
 विरूपं रूपमास्थाय प्रश्रं पप्रच्छ शम्बरम् ॥ २  
 केन शम्बर वृत्तेन स्वजात्यानधितिष्ठसि ।  
 श्रेष्ठं त्वां केन मन्यन्ते तन्मे प्रब्रूहि पृच्छतः ॥ ३

शम्बर उवाच ।

नासूयामि सदा विप्रान्ब्रह्माणं च पितामहम् ।  
 शास्त्राणि वदतो विप्रान्समन्यामि यथासुखम् ॥ ४  
 श्रुत्वा च नावज्ञानामि नापराध्यामि कर्हिचित् ।  
 अभ्यर्चयाननुपृच्छामि पादौ गृह्णामि धीमताम् ॥ ५

ते विश्रब्धाः प्रभाषन्ते संयच्छन्ति च मां सदा ।  
 प्रमत्तेष्वप्रमत्तोऽस्मि सदा सुप्तेषु जागृमि ॥ ६  
 ते मा शास्त्रपथे युक्तं ब्रह्मण्यमनसूयकम् ।  
 समासिञ्चन्ति शास्तारः क्षौद्रं मध्विव मक्षिकाः ॥  
 यच्च भाषन्ति ते तुष्टास्तत्तद्गृह्णामि मेधया ।  
 समाधिमात्मनो नित्यमनुलोममचिन्तयन् ॥ ८  
 सोऽहं वागग्रसृष्टानां रसानामवलेहकः ।  
 स्वजात्यानधितिष्ठामि नक्षत्राणीव चन्द्रमाः ॥ ९  
 एतत्पृथिव्याममृतमेतच्चक्षुरनुत्तमम् ।  
 यद्ब्राह्मणमुखाच्छास्त्रमिह श्रुत्वा प्रवर्तते ॥ १०  
 एतत्कारणमाज्ञाय दृष्ट्वा देवासुरं पुरा ।  
 युद्धं पिता मे दृष्ट्वात्मा विस्मितः प्रत्यपद्यत ॥ ११  
 दृष्ट्वा च ब्राह्मणानां तु महिमानं महात्मनाम् ।  
 पर्यपृच्छत्कथमिमे सिद्धा इति निशाकरम् ॥ १२

सोम उवाच ।

ब्राह्मणास्तपसा सर्वे सिध्यन्ते वाग्बलाः सदा ।  
 भुजवीर्या हि राजानो वागन्त्राश्च द्विजातयः ॥ १३  
 प्रवसन्वाप्यधीयीत बह्वीर्दुर्वसतीर्वसन् ।  
 निर्मन्युरपि निर्मानो यतिः स्यात्समदर्शनः ॥ १४  
 अपि चेज्जातिसंपन्नः सर्वान्वेदान्पितुर्गृहे ।  
 श्लाघमान इवाधीयेद्राम्य इत्येव तं विदुः ॥ १५  
 भूमिरेतौ निगिरति सर्पो बिलशयानिव ।  
 राजानं चाप्ययोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ॥ १६  
 अतिमानः श्रियं हन्ति पुरुषस्याल्पमेधसः ।  
 गर्भेण दुष्यते कन्या गृह्वासेन च द्विजः ॥ १७  
 इत्येतन्मे पिता श्रुत्वा सोमादद्भुतदर्शनात् ।  
 ब्राह्मणान्पूजयामास तथैवाह महाव्रतान् ॥ १८

भीष्म उवाच ।

श्रुत्वैतद्वचनं शक्रो दानवेन्द्रमुखाच्च्युतम् ।

द्विजान्संपूजयामास महेन्द्रत्वमवाप च ॥ १९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

३७

युधिष्ठिर उवाच ।

अपूर्वं वा भवेत्पात्रमथ वापि चिरोषितम् ।

दूरादभ्यागतं वापि किं पात्रं स्यात्पितामह ॥ १

भीष्म उवाच ।

क्रिया भवति केषांचिदुपांशुव्रतमुत्तमम् ।

यो यो याचेत यत्किञ्चित्सर्वं दद्याम इत्युत ॥ २

अपीडयन्भृत्यवर्गमित्येवमनुशुश्रुम ।

पीडयन्भृत्यवर्गं हि आत्मानमपकर्षति ॥ ३

अपूर्वं वापि यत्पात्र यच्चापि स्याच्चिरोषितम् ।

दूरादभ्यागतं चापि तत्पात्रं च विदुर्बुधाः ॥ ४

युधिष्ठिर उवाच ।

अपीडया च भृत्यानां धर्मस्याहिंसया तथा ।

पात्रं विद्याम तत्त्वेन यस्मै दत्तं न संतपेत् ॥ ५

भीष्म उवाच ।

ऋत्विक्पुरोहिताचार्याः शिष्याः संबन्धिवान्धवाः ।

सर्वे पूज्याश्च मान्याश्च श्रुतवृत्तोपसंहिताः ॥ ६

अतोऽन्यथा वर्तमानाः सर्वे नार्हन्ति सत्क्रियाम् ।

तस्मान्नित्यं परीक्षेत पुरुषान्प्रणिधाय वै ॥ ७

अक्रोधः सत्यवचनमहिंसा दम आर्जवम् ।

अद्रोहो नातिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा तपः शमः ॥ ८

यस्मिन्नेतानि दृश्यन्ते न चाकार्याणि भारत ।

भावतो विनिविष्टानि तत्पात्रं मानमर्हति ॥ ९

तथा चिरोषितं चापि संप्रत्यागतमेव च ।

अपूर्वं चैव पूर्वं च तत्पात्रं मानमर्हति ॥ १०

अप्रामाण्यं च वेदानां शास्त्राणां चातिलङ्घनम् ।

सर्वत्र चानवस्थानमेतन्नाशनमात्मनः ॥ ११

भवेत्पण्डितमानी यो ब्राह्मणो वेदनिन्दकः ।

आन्वीक्षिकीं तर्कविद्यामनुरक्तो निरर्थिकाम् ॥ १२

हेतुवादान्श्रुवन्सत्सु विजेताहेतुवादिकः ।

आक्रोष्टा चातिवक्ता च ब्राह्मणानां सदैव हि ॥ १३

सर्वाभिशङ्की मूढश्च बालः कटुकवागपि ।

बोद्धव्यस्तादृशस्तात नरन्धानं हि तं विदुः ॥ १४

यथा श्वा भपितुं चैव हन्तुं चैवावसृज्यते ।

एवं संभाषणार्थाय सर्वशास्त्रवधाय च ।

अल्पश्रुताः कुतर्काश्च दृष्टाः स्पृष्टाः कुपण्डिताः ॥

श्रुतिस्मृतीतिहासादिपुराणारण्यवेदिनः ।

अनुरन्ध्याद्बहुज्ञांश्च सारज्ञांश्चैव पण्डितान् ॥ १६

लोकयात्रा च द्रष्टव्या धर्मश्चात्महितानि च ।

एवं नरो वर्तमानः शाश्वतीरेधते समाः ॥ १७

ऋणमुन्मुच्य देवानामृषीणां च तथैव च ।

पितृणामथ विप्राणामतिथीनां च पञ्चमम् ॥ १८

पर्यायेण विशुद्धेन सुनिर्णिकेन कर्मणा ।

एवं गृहस्थः कर्माणि कुर्वन्धर्मान्न हीयते ॥ १९

इति श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वणि

सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

३८

युधिष्ठिर उवाच ।

स्त्रीणां स्वभावमिच्छामि श्रोतुं भरतसत्तम ।

स्त्रियो हि मूलं दोषाणां लघुचित्ताः पितामह ॥ १

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

नारदस्य च संवादं पुंश्चल्या पञ्चचूडया ॥ २

लोकाननुचरन्धीमान्देवर्षिर्नारदः पुरा ।

ददर्शाप्सरसं ब्राह्मीं पञ्चचूडामनिन्दिताम् ॥ ३

तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं पप्रच्छाप्सरसं मुनिः ।

संशयो हृदि मे कश्चित्तन्मे ब्रूहि सुमध्यमे ॥ ४  
एवमुक्ता तु सा विप्रं प्रत्युवाचाथ नारदम् ।  
विषये सति वक्ष्यामि समर्थां मन्यसे च माम् ॥ ५

नारद उवाच ।

न त्वामविषये भद्रे नियोक्ष्यामि कथंचन ।  
स्त्रीणां स्वभावमिच्छामि त्वत्तः श्रोतुं वरानने ॥ ६

भीष्म उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य देवर्षेरप्सरोत्तमा ।  
प्रत्युवाच न शक्ष्यामि स्त्री सती निन्दितुं स्त्रियः ॥  
विदितारस्ते स्त्रियो याश्च यादृशाश्च स्वभावतः ।  
न मामर्हसि देवर्षे नियोक्तुं प्रश्न ईदृशे ॥ ८  
तामुवाच स देवर्षिः सत्यं वद सुमध्यमे ।  
मृषावादे भवेदोषः सत्ये दोषो न विद्यते ॥ ९  
इत्युक्ता सा कृतमतिरभवच्चारुहासिनी ।  
स्त्रीदोषाब्जशाश्वतान्सत्यान्भाषितुं संप्रचक्रमे ॥ १०

पञ्चचूडोवाच ।

कुलीना रूपवत्यश्च नाथवत्यश्च योषितः ।  
मर्यादासु न तिष्ठन्ति स दोषः स्त्रीषु नारद ॥ ११  
न स्त्रीभ्यः किञ्चिदन्यद्वै पापीयस्तरमस्ति वै ।  
स्त्रियो हि मूलं दोषाणां तथा त्वमपि वेत्थ ह ॥ १२  
समाज्ञातानृद्धिमतः प्रतिरूपान्वशे स्थितान् ।  
पतीनन्तरमासाद्य नालं नार्यः प्रतीक्षितुम् ॥ १३  
असद्वर्मस्त्वयं स्त्रीणामस्माकं भवति प्रभो ।  
पापीयसो नरान्यद्वै लज्जां त्यक्त्वा भजामहे ॥ १४  
स्त्रियं हि यः प्रार्थयते संनिकर्षं च गच्छति ।  
ईषच्च कुरुते सेवां तमेवेच्छन्ति योषितः ॥ १५  
अनर्थित्वान्मनुष्याणां भयात्परिजनस्य च ।  
मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥ १६  
नासां कश्चिदगम्योऽस्ति नासां वयसि सस्थितिः ।  
विरूपं रूपवन्तं वा पुमानित्येव भुङ्गते ॥ १७

न भयान्नाप्यनुक्रोशान्नार्थहेतोः कथंचन ।  
न ज्ञातिकुलसंबन्धास्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥ १८  
यौवने वर्तमानानां मृष्टाभरणवाससाम् ।  
नारीणां स्वैरवृत्तानां स्पृहयन्ति कुलस्त्रियः ॥ १९  
याश्च शश्वद्बहुमता रक्ष्यन्ते दयिताः स्त्रियः ।  
अपि ताः सप्रसज्जन्ते कुब्जान्धजडवामनैः ॥ २०  
पङ्गुष्वपि च देवर्षे ये चान्ये कुत्सिताः नराः ।  
स्त्रीणामगम्यो लोकेऽस्मिन्नास्ति कश्चिन्महामुने ॥  
यदि पुंसां गतिर्ब्रह्म कथञ्चिन्नोपपद्यते ।  
अप्यन्योन्यं प्रवर्तन्ते न हि तिष्ठन्ति भर्तृषु ॥ २२  
अलाभात्पुरुषाणां हि भयात्परिजनस्य च ।  
वधवन्धभयाच्चापि स्वयं गुप्ता भवन्ति ताः ॥ २३  
चलस्वभावा दुःसेव्या दुर्ग्राह्या भावतस्तथा ।  
प्राज्ञस्य पुरुषस्येह यथा वाचस्तथा स्त्रियः ॥ २४  
नामिस्तृप्यति काष्ठाना नापगानां महोदधिः ।  
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः ॥ २५  
इदमन्यच्च देवर्षे रहस्यं सर्वयोषिताम् ।  
दृष्ट्वैव पुरुषं हृद्य योनिः प्रह्लियते स्त्रियः ॥ २६  
कामानामपि दातारं कर्तारं मानसान्वयोः ।  
रक्षितारं न मृष्यन्ति भर्तारं परमं स्त्रियः ॥ २७  
न कामभोगान्बहुलान्नालंकारार्थसंचयान् ।  
तथैव बहु मन्यन्ते यथा रत्यामनुग्रहम् ॥ २८  
अन्तकः शमनो मृत्युः पातालं वडवामुखम् ।  
क्षुरधारा विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः ॥ २९  
यतश्च भूतानि महान्ति पञ्च  
यतश्च लोका विहिता विधात्रा ।  
यतः पुमांसः प्रमदाश्च निर्मिता-  
स्तदैव दोषाः प्रमदासु नारद ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

३९

युधिष्ठिर उवाच ।

इमे वै मानवा लोके स्त्रीषु सज्जन्त्यभीक्ष्णशः ।  
 मोहेन परमाविष्टा दैवादिष्टेन पार्थिव ।  
 स्त्रियश्च पुरुषेष्वेव प्रत्यक्षं लोकसाक्षिकम् ॥ १  
 अत्र मे संशयस्तीव्रो हृदि संपरिवर्तते ।  
 कथमासां नराः सङ्गं कुर्वते कुरुनन्दन ।  
 स्त्रियो वा तेषु रज्यन्ते विरज्यन्तेऽथ वा पुनः ॥ २  
 इति ताः पुरुषव्याघ्र कथं शक्याः स्म रक्षितुम् ।  
 प्रमदाः पुरुषेणेह तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३  
 एता हि मयमायाभिर्वञ्चयन्तीह मानवान् ।  
 न चासां मुच्यते कश्चित्पुरुषो हस्तमागतः ।  
 गावो नवतृणानीव गृह्णन्त्येव नवान्नवान् ॥ ४  
 शम्बरस्य च या माया या माया नमुचेरपि ।  
 बलेः कुम्भीनसेश्चैव सर्वास्ता योपितो विदुः ॥ ५  
 हसन्तं प्रहसन्त्येता रुदन्तं प्ररुदन्ति च ।  
 अप्रियं प्रियवाक्यैश्च गृह्णते कालयोगतः ॥ ६  
 उशना वेद यच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः ।  
 स्त्रीबुद्ध्या न विशिष्येते ताः स्म रक्ष्याः कथं नरैः ॥  
 अनृतं सत्यमित्याहुः सत्यं चापि तथानृतम् ।  
 इति यास्ताः कथं वीर सरक्ष्याः पुरुषैरिह ॥ ८  
 स्त्रीणां बुद्धयुपनिष्कर्षादर्थशास्त्राणि शशुहन् ।  
 बृहस्पतिप्रभृतिभिर्मन्ये सद्भिः कृतानि वै ॥ ९  
 संपूज्यमानाः पुरुषैर्विकुर्वन्ति मनो नृषु ।  
 अपास्ताश्च तथा राजन्विकुर्वन्ति मनः स्त्रियः ॥ १०  
 कस्ताः शक्तो रक्षितुं स्यादिति मे संशयो महान् ।  
 तन्मे ब्रूहि महाबाहो कुरुणां वंशवर्धन ॥ ११  
 यदि शक्या कुरुश्रेष्ठ रक्षा तासां कथंचन ।  
 कर्तुं वा कृतपूर्वा वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १२  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकोनविंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

४०

भीष्म उवाच ।

एवमेतन्महाबाहो नात्र मिथ्यास्ति किंचन ।  
 यथा ब्रवीषि कौरव्य नारी प्रति जनाधिप ॥ १  
 अत्र ते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् ।  
 यथा रक्षा कृता पूर्वं विपुलेन महात्मना ॥ २  
 प्रमदाश्च यथा सृष्टा ब्रह्मणा भरतर्षभ ।  
 यदर्थं तच्च ते तात प्रवक्ष्ये वसुधाधिप ॥ ३  
 न हि स्त्रीभ्यः परं पुत्र पापीयः किञ्चिदस्ति वै ।  
 अग्निर्हि प्रमदा दीप्तो मायाश्च मयजा विभो ।  
 क्षुरधारा विषं सर्पो मृत्युरित्येकतः स्त्रियः ॥ ४  
 इमाः प्रजा महाबाहो धार्मिका इति नः श्रुतम् ।  
 स्वयं गच्छन्ति देवत्वं ततो देवानियाद्रयम् ॥ ५  
 अथाभ्यगच्छन्देवास्ते पितामहमरिदम् ।  
 निवेद्य मानसं चापि तूष्णीमासन्नवाङ्मुखाः ॥ ६  
 तेषामन्तर्गतं ज्ञात्वा देवानां स पितामहः ।  
 मानवानां प्रमोहार्थं कृत्या नार्योऽसृजत्प्रभुः ॥ ७  
 पूर्वसर्गे तु कौन्तेय साध्यो नार्य इहाभवन् ।  
 असाध्यस्तु समुत्पन्ना कृत्या सर्गात्प्रजापतेः ॥ ८  
 ताभ्यः कामान्यथाकामं प्रादाद्धि स पितामहः ।  
 ताः कामलुब्धाः प्रमदाः प्रामथ्रन्त नरांस्तदा ॥ ९  
 क्रोधं कामस्य देवेशः सहायं चासृजत्प्रभुः ।  
 असज्जन्त प्रजाः सर्वाः कामक्रोधवशं गताः ॥ १०  
 न च स्त्रीणां क्रिया काचिदिति धर्मो व्यवस्थितः ।  
 निरिन्द्रिया अमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति श्रुतिः ॥ ११  
 शय्यासनमलंकारमन्नपानमनार्यताम् ।  
 दुर्वाग्भावं रति चैव ददौ स्त्रीभ्यः प्रजापतिः ॥ १२  
 न तासां रक्षणं कर्तुं शक्यं पुंसां कथंचन ।  
 अपि विश्वकृता तात कुतस्तु पुरुषैरिह ॥ १३  
 वाचा वा वधबन्धैर्वा कुशैर्वा विविधैस्तथा ।

न शक्या रक्षितुं नार्थस्ता हि नित्यमसंयताः ॥ १४  
 इदं तु पुरुषव्याघ्र पुरस्ताच्छ्रुतवानहम् ।  
 यथा रक्षा कृता पूर्वं विपुलेन गुरुस्त्रियः ॥ १५  
 ऋषिरासीन्महाभागो देवशर्मेति विश्रुतः ।  
 तस्य भार्या रुचिर्नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥ १६  
 तस्या रूपेण संमत्ता देवगन्धर्वदानवाः ।  
 विशेषतस्तु राजेन्द्र वृत्रहा पाकशासनः ॥ १७  
 नारीणां चरितज्ञश्च देवशर्मा महामुनिः ।  
 यथाशक्ति यथोत्साहं भार्यां तामभ्यरक्षत ॥ १८  
 पुरंदरं च जानीते परस्त्रीकामचारिणम् ।  
 तस्माद्यत्नेन भार्याया रक्षणं स चकार ह ॥ १९  
 स कदाचिद्विस्तात यज्ञं कर्तुमनास्तदा ।  
 भार्यासंरक्षणं कार्यं कथं स्यादित्यचिन्तयत् ॥ २०  
 रक्षाविधानं मनसा स विचिन्त्य महातपाः ।  
 आहूय दयितं शिष्यं विपुलं प्राह भार्गवम् ॥ २१  
 यज्ञकारो गमिष्यामि रुचिं चेमां सुरेश्वरः ।  
 पुत्रं प्रार्थयते नित्यं तां रक्षस्व यथाबलम् ॥ २२  
 अप्रमत्तेन ते भाव्यं सदा प्रति पुरंदरम् ।  
 स हि रूपाणि कुरुते विविधानि भृगूद्वह ॥ २३  
 इत्युक्तो विपुलस्तेन तपस्वी नियतेन्द्रियः ।  
 सदैवोग्रतपा राजन्नश्र्यर्कसदृशश्रुतिः ॥ २४  
 धर्मज्ञः सत्यवादी च तथेति प्रत्यभाषत ।  
 पुनश्चेदं महाराज पप्रच्छ प्रस्थितं गुरुम् ॥ २५  
 कानि रूपाणि शक्रस्य भवन्त्यागच्छतो मुने ।  
 वपुस्तेजश्च कीदृग्वै तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २६  
 ततः स भगवांस्तस्मै विपुलाय महात्मने ।  
 आचक्ष्वे यथातत्त्वं मायां शक्रस्य भारत ॥ २७  
 बहुमायः स विप्रर्षे बलहा पाकशासनः ।  
 तांस्तान्विकुरुते भावान्वहूनथ मुहुर्मुहुः ॥ २८  
 किरीटी वज्रभृद्वन्वी मुकुटी बद्धकुण्डलः ।

भवत्यथ मुहूर्तेन चण्डालसमदर्शनः ॥ २९  
 शिखी जटी चीरवासाः पुनर्भवति पुत्रक ।  
 बृहच्छरीरश्च पुनः पीवरोऽथ पुनः क्रशः ॥ ३०  
 गौरं श्यामं च कृष्णं च वर्णं विकुरुते पुनः ।  
 विरूपो रूपवांश्चैव युवा वृद्धस्तथैव च ॥ ३१  
 प्राज्ञो जडश्च मूकश्च ह्रस्वो दीर्घस्तथैव च ।  
 ब्राह्मणः क्षत्रियश्चैव वैश्यः शूद्रस्तथैव च ।  
 प्रतिलोमानुलोमश्च भवत्यथ शतक्रतुः ॥ ३२  
 शुक्रवायसरूपी च हंसकोकिलरूपवान् ।  
 सिंहव्याघ्रगजानां च रूपं धारयते पुनः ॥ ३३  
 दैवं दैत्यमथो राज्ञां वपुर्धारयतेऽपि च ।  
 सुकृशो वायुभग्नः शकुनिर्विकृतस्तथा ॥ ३४  
 चतुष्पाद्बहुरूपश्च पुनर्भवति बालिशः ।  
 मक्षिकामशकादीनां वपुर्धारयतेऽपि च ॥ ३५  
 न शक्यमस्य ग्रहणं कर्तुं विपुलं केनचित् ।  
 अपि विश्वकृता तात येन सृष्टमिदं जगत् ॥ ३६  
 पुनरन्तर्हितः शक्रो दृश्यते ज्ञानचक्षुषा ।  
 वायुभूतश्च स पुनर्देवराजो भवत्युत ॥ ३७  
 एवं रूपाणि सततं कुरुते पाकशासनः ।  
 तस्माद्विपुलं यत्नेन रक्षेमां तनुमध्यमाम् ॥ ३८  
 यथा रुचिं नावलिहेदेवेन्द्रो भृगुसत्तम ।  
 क्रतावुपहितं न्यस्तं हविः श्वेव दुरात्मवान् ॥ ३९  
 एवमाख्याय स मुनिर्यज्ञकारोऽगमत्तदा ।  
 देवशर्मा महाभागस्ततो भरतसत्तम ॥ ४०  
 विपुलस्तु वचः श्रुत्वा गुरोश्चिन्तापरोऽभवत् ।  
 रक्षां च परमां चक्रे देवराजान्महाबलात् ॥ ४१  
 किं नु शक्यं मया कर्तुं गुरुदाराभिरक्षणे ।  
 मायावी हि सुरेन्द्रोऽस्तौ दुर्धर्षश्चापि वीर्यवान् ॥  
 नापिधायाश्रमं शक्यो रक्षितुं पाकशासनः ।  
 उटजं वा तथा ह्यस्य नानाविधसरूपता ॥ ४३

वायुरूपेण वा शक्रो गुरुपत्नी प्रधर्षयेत् ।  
 तस्मादिमां संप्रविश्य रुचिं स्थारयेऽहमद्य वै ॥ ४४  
 अथ वा पौरुषेणेयमशक्या रक्षितुं मया ।  
 बहुरूपो हि भगवान्छूयते हरिवाहनः ॥ ४५  
 सोऽहं योगबलादेनां रक्षिष्ये पाकशासनात् ।  
 गात्राणि गात्रैरस्याहं संप्रवेक्ष्येऽभिरक्षितुम् ॥ ४६  
 यद्युच्छिष्टमिमां पत्नी रुचिं पश्येत् मे गुरुः ।  
 शप्यत्यसंशयं कोपादिव्यज्ञानो महातपा ॥ ४७  
 न चेयं रक्षितुं शक्या यथान्या प्रमदा नृभिः ।  
 मायावी हि सुरेन्द्रोऽसावहो प्राप्तोऽस्मि संशयम् ॥  
 अवश्यकरणीयं हि गुरोरिह हि शासनम् ।  
 यदि त्वेतदहं कुर्यामाश्चर्यं स्यात्कृतं मया ॥ ४९  
 योगेनानुप्रविश्येह गुरुपत्न्याः कलेवरम् ।  
 निर्मुक्तस्य रजोरूपाभ्रापराधो भवेन्मम ॥ ५०  
 यथा हि शून्यां पथिकः सभामध्यावसेत्पथि ।  
 तथाद्यावासयिष्यामि गुरुपत्न्याः कलेवरम् ॥ ५१  
 असक्तः पद्मपत्रस्थो जलबिन्दुर्यथा चलः ।  
 एवमेव शरीरेऽस्या निवत्स्यामि समाहितः ॥ ५२  
 इत्येवं धर्ममालोक्य वेदवेदांश्च सर्वशः ।  
 तपश्च विपुलं दृष्ट्वा गुरोरात्मन एव च ॥ ५३  
 इति निश्चित्य मनसा रक्षां प्रति स भार्गवः ।  
 आतिष्ठत्परमं यत्नं यथा तच्छृणु पार्थिव ॥ ५४  
 गुरुपत्नीमुपासीनो विपुलः स महातपाः ।  
 उपासीनामनिन्द्याङ्गी कथाभिः समलोभयत् ॥ ५५  
 नेत्राभ्यां नेत्रयोरस्या रश्मीन्संयोज्य रश्मिभिः ।  
 विवेश विपुलः कायमाकाशं पवनो यथा ॥ ५६  
 लक्षणं लक्षणेनैव वदनं वदनेन च ।  
 अविचेष्टन्नतिष्ठैर् छायेवान्तर्गतो मुनिः ॥ ५७  
 ततो विष्टभ्य विपुलो गुरुपत्न्याः कलेवरम् ।  
 उवास रक्षणे युक्तो न च सा तमबुध्यत ॥ ५८

यं कालं नागतो राजन्गुरुस्तस्य महात्मनः ।  
 कतुं समाप्य स्वगृहं तं कालं सोऽभ्यरक्षत ॥ ५९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

४१

भीष्म उवाच ।

ततः कदाचिद्देवेन्द्रो दिव्यरूपवपुर्धरः ।  
 इदमन्तरमित्येवं ततोऽभ्यागादथाश्रमम् ॥ १  
 रूपमप्रतिमं कृत्वा लोभनीयं जनाधिप ।  
 दर्शनीयतमो भूत्वा प्रविवेश तमाश्रमम् ॥ २  
 स ददर्श तमासीनं विपुलस्य कलेवरम् ।  
 निश्चेष्टं स्तब्धनयनं यथालेख्यगतं तथा ॥ ३  
 रुचिं च रुचिरापाङ्गी पीनश्रोणिपयोधराम् ।  
 पद्मपत्रविशालाक्षी संपूर्णेन्दुनिभाननाम् ॥ ४  
 सा तमालोक्य सहसा प्रत्युत्थातुमिषेव ह ।  
 रूपेण विस्मिता कोऽसीत्यथ वक्तुमिहेच्छती ॥ ५  
 उत्थातुकामापि सती व्यतिष्ठद्विपुलेन सा ।  
 निगृहीता मनुष्येन्द्र न शशक विचेष्टितुम् ॥ ६  
 तामावभाषे देवेन्द्रः साम्ना परमवल्लुना ।  
 त्वदर्थमागतं विद्धि देवेन्द्रं मां शुचिस्मिते ॥ ७  
 क्लिश्यमानमनङ्गेन त्वत्संकल्पोद्भवेन वै ।  
 तत्पर्याप्नुहि मां सुभ्रु पुरा कालोऽतिवर्तते ॥ ८  
 तमेवंवादिनं शक्र शुश्राव विपुलो मुनिः ।  
 गुरुपत्न्याः शरीरस्थो ददर्श च सुराधिपम् ॥ ९  
 न शशक च सा राजन्प्रत्युत्थातुमनिन्दिता ।  
 वक्तुं च नाशकद्राजन्विष्टब्धा विपुलेन सा ॥ १०  
 आकारं गुरुपत्न्यास्तु विज्ञाय स भृगूद्बुधः ।  
 निजग्राह महातेजा योगेन बलवत्प्रभो ।  
 बबन्ध योगबन्धैश्च तस्याः सर्वेन्द्रियाणि सः ॥ ११  
 तां निर्विकारां दृष्ट्वा तु पुनरेव शचीपतिः ।



उवाच ब्रीडितो राजंस्तां योगबलमोहिताम् ॥ १२  
 एहेहीति ततः सा तं प्रतिवक्तुमियेष च ।  
 स तां वाचं गुरोः पत्न्या विपुलः पर्यवर्तयन् ॥ १३  
 भोः किमागमने कृत्यमिति तस्याश्च निःसृता ।  
 वक्त्राच्छशाङ्कप्रतिमाद्वाणी संस्कारभूषिता ॥ १४  
 ब्रीडिता सा तु तद्वाक्यमुक्त्वा परवशा तदा ।  
 पुरंदरश्च संत्रस्तो बभूव विमनास्तदा ॥ १५  
 स तद्वैकृतमालक्ष्य देवराजो विशां पते ।  
 अवैक्षत सहस्राक्षस्तदा दिव्येन चक्षुषा ॥ १६  
 ददर्श च मुनि तस्याः शरीरान्तरगोचरम् ।  
 प्रतिबिम्बमिवादशे गुरूपत्न्याः शरीरगम् ॥ १७  
 स तं घोरेण तपसा युक्तं दृष्ट्वा पुरंदरः ।  
 प्रावेपत सुसंत्रस्तः शापभीतस्तदा विभो ॥ १८  
 विमुच्य गुरूपत्नी तु विपुलः सुमहातपाः ।  
 स्वं कलेवरमाविश्य शक्रं भीतमथाब्रवीत् ॥ १९  
 अजितेन्द्रिय पापात्मन्कामात्मक पुरंदर ।  
 न चिरं पूजयिष्यन्ति देवास्त्वां मानुषास्तथा ॥ २०  
 किं नु तद्विस्मृतं शक्र न तन्मनसि ते स्थितम् ।  
 गौतमेनासि यन्मुक्तो भगाङ्कपरिचिह्नितः ॥ २१  
 जाने त्वां बालिशमतिमकृतात्मानमस्थिरम् ।  
 मयेयं रक्ष्यते मूढ गच्छ पाप यथागतम् ॥ २२  
 नाहं त्वामद्य मूढात्मन्दहेयं हि स्वतेजसा ।  
 कृपायमाणस्तु न ते दग्धुमिच्छामि वासव ॥ २३  
 स च घोरतपा धीमान्गुरुर्मे पापचेतसम् ।  
 दृष्ट्वा त्वां निर्दहेदद्य क्रोधदीप्तेन चक्षुषा ॥ २४  
 नैवं तु शक्र कर्तव्यं पुनर्मान्याश्च ते द्विजाः ।  
 मा गमः ससुतामात्योऽत्ययं ब्रह्मबलार्दितः ॥ २५  
 अमरोऽस्मीति यद्वुद्धिमेतामास्थाय वर्तसे ।  
 मावमंस्था न तपसामसाध्यं नाम किंचन ॥ २६  
 तच्छ्रुत्वा वचनं शक्रो विपुलस्य महात्मनः ।

अकिंचिदुक्त्वा ब्रीडितस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २७  
 मुहूर्तयाते शक्रे तु देवशर्मा महातपाः ।  
 कृत्वा यज्ञं यथाकाममाजगाम स्वमाश्रमम् ॥ २८  
 आगतेऽथ गुरौ राजन्विपुलः प्रियकर्मकृत् ।  
 रक्षितां गुरवे भार्या न्यवेदयदनिन्दिताम् ॥ २९  
 अभिवाद्य च शान्तात्मा स गुरुं गुरुवत्सलः ।  
 विपुलः पर्युपातिष्ठद्यथापूर्वमशङ्कितः ॥ ३०  
 विश्रान्ताय ततस्तस्मै सहासीनाय भार्यया ।  
 निवेद्यामास तदा विपुलः शक्रकर्म तत् ॥ ३१  
 तच्छ्रुत्वा स मुनिस्तुष्टो विपुलस्य प्रतापवान् ।  
 बभूव शीलवृत्ताभ्यां तपसा नियमेन च ॥ ३२  
 विपुलस्य गुरौ वृत्तिं भक्तिमात्मनि च प्रभुः ।  
 धर्मे च स्थिरतां दृष्ट्वा साधु साध्वित्युवाच ह ॥ ३३  
 प्रतिनन्द्य च धर्मात्मा शिष्यं धर्मपरायणम् ।  
 वरेण च्छन्दयामास स तस्माद्गुरुवत्सलः ।  
 अनुज्ञातश्च गुरुणा चचारानुत्तमं तपः ॥ ३४  
 तथैव देवशर्मापि सभार्यः स महातपाः ।  
 निर्भयो बलवृत्रघ्नाच्चचार विजने जने ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

४२

भीष्म उवाच ।

विपुलस्त्वकरोत्तीव्रं तपः कृत्वा गुरोर्वचः ।  
 तपोयुक्तमथात्मानममन्यत च वीर्यवान् ॥ १  
 स तेन कर्मणा स्पर्धन्पृथिवीं पृथिवीपते ।  
 चचार गतभीः प्रीतो लब्धकीर्तिर्वरो नृषु ॥ २  
 उभौ लोकौ जितौ चापि तथैवामन्यत प्रभुः ।  
 कर्मणा तेन कौरव्य तपसा विपुलेन च ॥ ३  
 अथ काले व्यतिक्रान्ते कस्मिंश्चित्करुनन्दन ।  
 रुच्या भगिन्या दानं वै बभूव धनधान्यवत् ॥ ४

एतस्मिन्नेव काले तु दिव्या काचिद्वराङ्गना ।  
 विभ्रती परमं रूपं जगामाथ विहायसा ॥ ५  
 तस्याः शरीरात्पुष्पाणि पतितानि महीतले ।  
 तस्याश्रमस्याविदूरे दिव्यगन्धानि भारत ॥ ६  
 तान्यगृह्णात्ततो राजन्रुचिर्नलिनलोचना ।  
 तदा निमग्नकस्तस्या अङ्गेभ्यः क्षिप्रमागमत् ॥ ७  
 तस्या हि भगिनी तात ज्येष्ठा नाम्ना प्रभावती ।  
 भार्या चित्ररथस्याथ बभूवाङ्गेश्वरस्य वै ॥ ८  
 पिनह्य तानि पुष्पाणि केशेषु वरवर्णिनी ।  
 आमन्त्रिता ततोऽगच्छद्गुचिरङ्गपतेर्गृहान् ॥ ९  
 पुष्पाणि तानि दृष्ट्वाथ तदाङ्गेन्द्रवराङ्गना ।  
 भगिनी चोदयामास पुष्पार्थं चारुलोचना ॥ १०  
 सा भर्त्रे सर्वमाचष्ट रुचिः सुरुचिरानना ।  
 भगिन्या भाषितं सर्वमृषिस्तच्चाभ्यनन्दत् ॥ ११  
 ततो विपुलमानाय्य देवशर्मा महातपाः ।  
 पुष्पार्थं चोदयामास गच्छ गच्छेति भारत ॥ १२  
 विपुलस्तु गुरोर्वाक्यमविचार्य महातपाः ।  
 स तथेत्यब्रवीद्राजस्तं च देशं जगाम ह ॥ १३  
 यस्मिन्देसे तु तान्यासन्पतितानि नभस्तलात् ।  
 अम्लानान्यपि तत्रासन्कुसुमान्यपराण्यपि ॥ १४  
 ततः स तानि जग्राह दिव्यानि रुचिराणि च ।  
 प्राप्तानि स्वेन तपसा दिव्यगन्धानि भारत ॥ १५  
 संप्राप्य तानि प्रीतात्मा गुरोर्वचनकारकः ।  
 ततो जगाम तूर्णं च चम्पां चम्पकमालिनीम् ॥ १६  
 स वने विजने तात ददर्श मिथुनं नृणाम् ।  
 चक्रवत्परिवर्तन्तं गृहीत्वा पाणिना करम् ॥ १७  
 तत्रैकस्तूर्णमगमत्तत्पदे परिवर्तयन् ।  
 एकस्तु न तथा राजञ्चक्रतुः कलहं ततः ॥ १८  
 त्वं शीघ्रं गच्छसीत्येकोऽब्रवीन्नेति तथापरः ।  
 नेति नेति च तौ तात परस्परमथोचतुः ॥ १९

तयोर्विस्पर्धतोरेवं शपथोऽयमभूत्तदा ।  
 मनसोद्दिश्य विपुलं ततो वाक्यमथोचतुः ॥ २०  
 आवयोरनृतं प्राह यस्तस्याथ द्विजस्य वै ।  
 विपुलस्य परे लोके या गतिः सा भवेदिति ॥ २१  
 एतच्छ्रुत्वा तु विपुलो विषण्णवदनोऽभवत् ।  
 एवं तीव्रतपाश्चाहं कष्टश्चायं परिग्रहः ॥ २२  
 मिथुनस्यास्य किं मे स्यात्कृतं पापं यतो गतिः ।  
 अनिष्टा सर्वभूताना कीर्तितानेन मेऽद्य वै ॥ २३  
 एवं संचिन्तयन्नेव विपुलो राजसत्तम ।  
 अवाङ्मुखो न्यस्तशिरा दध्यौ दुष्कृतमात्मनः ॥ २४  
 ततः षडन्यान्पुरूपानक्षैः काञ्चनराजतैः ।  
 अपश्यद्दीव्यमानान्वै लोभहर्षान्वितांस्तथा ॥ २५  
 कुर्वतः शपथं तं वै यः कृतो मिथुनेन वै ।  
 विपुलं वै समुद्दिश्य तेऽपि वाक्यमथानुवन् ॥ २६  
 यो लोभमास्थायास्माकं विषमं कर्तुमुत्सहेत् ।  
 विपुलस्य परे लोके या गतिस्तामवाप्नुयात् ॥ २७  
 एतच्छ्रुत्वा तु विपुलो नापश्यद्धर्मसंकरम् ।  
 जन्मप्रभृति कौरव्य कृतपूर्वमथात्मनः ॥ २८  
 स प्रदध्यौ तदा राजन्नप्रावग्निरिवाहितः ।  
 दह्यमानेन मनसा शापं श्रुत्वा तथाविधम् ॥ २९  
 तस्य चिन्तयतस्तात बह्व्यो दिननिशा ययुः ।  
 इदमासीनन्मनसि च रुच्या रक्षणकारितम् ॥ ३०  
 लक्षण लक्षणेनैव वदनं वदनेन च ।  
 विधाय न मया चोक्तं सत्यमेतद्गुरोस्तदा ॥ ३१  
 एतदात्मनि कौरव्य दुष्कृतं विपुलस्तदा ।  
 अमन्यत महाभाग तथा तच्च न संशयः ॥ ३२  
 स चम्पां नगरीमेत्य पुष्पाणि गुरवे ददौ ।  
 पूजयामास च गुरुं विधिवत्स गुरुप्रियः ॥ ३३  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

४३

भीष्म उवाच ।

तमागतमभिप्रेक्ष्य शिष्यं वाक्यमथान्वीत् ।  
देवशर्मा महातेजा यत्तच्छृणु नराधिप ॥ १

देवशर्मोवाच ।

किं ते विपुल दृष्टं वै तस्मिन्नद्य महावने ।  
ते त्वा जानन्ति निपुण आत्मा च रुचिरेव च ॥ २

विपुल उवाच ।

ब्रह्मर्षे मिथुनं किं तत्के च ते पुरुषा विभो ।  
ये मां जानन्ति तत्त्वेन तांश्च मे वक्तुमर्हसि ॥ ३

देवशर्मोवाच ।

यद्वै तन्मिथुनं ब्रह्मन्नहोरात्रं हि विद्धि तत् ।  
चक्रवत्परिवर्तेत तत्ते जानाति दुष्कृतम् ॥ ४  
ये च ते पुरुषा विप्र अक्षैर्दीव्यन्ति दृष्टवत् ।  
ऋतूस्तानभिजानीहि ते ते जानन्ति दुष्कृतम् ॥ ५  
न मां कश्चिद्विजानीत इति कृत्वा न विश्वसेत् ।  
नरो रहसि पापात्मा पापकं कर्म वै द्विज ॥ ६  
कुर्वाणं हि नरं कर्म पापं रहसि सर्वदा ।  
पश्यन्ति ऋतवश्चापि तथा दिननिशेऽप्युत ॥ ७  
ते त्वां हर्षस्मितं दृष्ट्वा गुरोः कर्मानिवेदकम् ।  
स्मारयन्तस्तथा प्राहुस्ते यथा श्रुतवान्भवान् ॥ ८  
अहोरात्रं विजानाति ऋतवश्चापि नित्यशः ।  
पुरुषे पापकं कर्म शुभं वा शुभकर्मणः ॥ ९  
तत्त्वया मम यत्कर्म व्यभिचाराद्भयात्मकम् ।  
नाख्यातमिति जानन्तस्ते त्वामाहुस्तथा द्विज ॥ १०  
ते चैव हि भवेयुस्ते लोकाः पापकृतो यथा ।  
कृत्वा नाचक्षतः कर्म मम यच्च त्वया कृतम् ॥ ११  
तथा शक्या च दुर्वृत्ता रक्षितुं प्रमदा द्विज ।

न च त्वं कृतवान्किञ्चिदागः प्रीतोऽस्मि तेन ते ॥ १२  
यदि त्वहं त्वा दुर्वृत्तमद्राक्षं द्विजसत्तम ।  
शपेयं त्वामहं क्रोधान्न मेऽत्रासिन् विचारणा ॥ १३  
सज्जन्ति पुरुषे नार्यः पुंसां सोऽर्थश्च पुष्कलः ।  
अन्यथा रक्षतः शापोऽभविष्यत्ते गतिश्च सा ॥ १४  
रक्षिता सा त्वया पुत्र मम चापि निवेदिता ।  
अहं ते प्रीतिमांस्तात स्वस्ति मार्गं गमिष्यसि ॥ १५

भीष्म उवाच ।

इत्युक्त्वा विपुलं प्रीतो देवशर्मा महानृपिः ।  
मुमोद स्वर्गमास्थाय सहभार्यः सशिष्यकः ॥ १६  
इदमाख्यातवांश्चापि ममाख्यानं महामुनिः ।  
मार्कण्डेयः पुरा राजन्गाङ्गाकूले कथान्तरे ॥ १७  
तस्माद्ब्रवीमि पार्थ त्वा स्त्रियः सर्वाः सदैव च ।  
उभयं दृश्यते तासु सततं साध्वसाधु च ॥ १८  
स्त्रियः साध्व्यो महाभागाः संमता लोकमातरः ।  
धारयन्ति महीं राजन्निमां सवनकाननाम् ॥ १९  
असाध्व्यश्चापि दुर्वृत्ताः कुलघ्न्यः पापनिश्चयाः ।  
विज्ञेया लक्षणैर्दुष्टैः स्वगात्रसहजैर्नृप ॥ २०  
एवमेतासु रक्षा वै शक्या कर्तुं महात्मभिः ।  
अन्यथा राजशार्दूल न शक्या रक्षितुं स्त्रियः ॥ २१  
एता हि मनुजव्याघ्र तीक्ष्णातीक्ष्णपराक्रमाः ।  
नासामस्ति प्रियो नाम मैथुने संगमे नृभिः ॥ २२  
एताः कृत्याश्च कार्याश्च कृताश्च भरतर्षभ ।  
न चैकस्मिन्मन्त्येताः पुरुषे पाण्डुनन्दन ॥ २३  
नासु स्नेहो नृभिः कार्यस्तथैवेष्ट्या जनेश्वर ।  
खेदमास्थाय भुङ्जीत धर्ममास्थाय चैव हि ॥ २४  
विहन्येतान्यथा कुर्वन्नरः कौरवनन्दन ।  
सर्वथा राजशार्दूल युक्तिः सर्वत्र पूज्यते ॥ २५  
तेनैकेन तु रक्षा वै विपुलेन कृता स्त्रियाः ।

नान्यः शक्तो नृलोकेऽस्मिन् रक्षितुं नृप योषितः ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

४४

युधिष्ठिर उवाच ।

यन्मूलं सर्वधर्माणां प्रजनस्य गृहस्य च ।

पितृदेवातिथीनां च तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १

भीष्म उवाच ।

अयं हि सर्वधर्माणां धर्मश्चिन्त्यतमो मतः ।

कीदृशाय प्रदेया स्यात्कन्येति वसुधाधिप ॥ २

शीलवृत्ते समाज्ञाय विद्यां योनिं च कर्म च ।

अङ्घ्रिरेव प्रदातव्या कन्या गुणवते वरे ।

ब्राह्मणानां सतामेष धर्मो नित्यं युधिष्ठिर ॥ ३

आवाह्यमावहेदेवं यो दद्यादनुकूलतः ।

शिष्टानां क्षत्रियाणां च धर्म एष सनातनः ॥ ४

आत्माभिप्रेतमुत्सृज्य कन्याभिप्रेत एव यः ।

अभिप्रेता च या यस्य तस्मै देया युधिष्ठिर ।

गान्धर्वमिति तं धर्मं प्राहुर्धर्मविदो जनाः ॥ ५

धनेन बहुना क्रीत्वा संप्रलोभ्य च बान्धवान् ।

असुराणां नृपैतं वै धर्ममाहुर्मनीषिणः ॥ ६

हत्वा छित्त्वा च शीर्षाणि रुदतां रुदतीं गृहात् ।

प्रसह्य हरणं तात राक्षसं धर्मलक्षणम् ॥ ७

पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ युधिष्ठिर ।

पैशाच आसुरश्चैव न कर्तव्यौ कथंचन ॥ ८

ब्राह्मः क्षात्रोऽथ गान्धर्व एते धर्म्या नरर्षभ ।

पृथग्वा यदि वा मिश्राः कर्तव्या नात्र संशयः ॥ ९

तिस्रो भार्या ब्राह्मणस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु ।

वैश्यः स्वजातिं विन्देत् तास्वपत्यं समं भवेत् ॥ १०

ब्राह्मणी तु भवेज्ज्येष्ठा क्षत्रिया क्षत्रियस्य तु ।

इत्यर्थमपि शूद्रा स्यान्नेत्याहुरपरे जनाः ॥ ११

अपत्यजन्म शूद्रायां न प्रशंसन्ति साधवः ।

शूद्रायां जनयन्विप्रः प्रायश्चित्ती विधीयते ॥ १२

त्रिंशद्वर्षो दशवर्षा भार्या विन्देत् नग्निकाम् ।

एकविंशतिवर्षो वा सप्तवर्षमवाप्नुयात् ॥ १३

यस्यास्तु न भवेद्भ्राता पिता वा भरतर्षभ ।

नोपयच्छेत् तां जातु पुत्रिकाधर्मिणी हि सा ॥ १४

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत् कन्या ऋतुमती सती ।

चतुर्थे त्वथ संप्राप्ते स्वयं भर्तारमर्जयेत् ॥ १५

प्रजनो हीयते तस्या रतिश्च भरतर्षभ ।

अतोऽन्यथा वर्तमाना भवेद्वाच्या प्रजापतेः ॥ १६

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।

इत्येतामनुगच्छेत् तं धर्मं मनुरब्रवीत् ॥ १७

युधिष्ठिर उवाच ।

शुल्कमन्येन दत्तं स्याद्दानीत्याह चापरः ।

बलादन्यः प्रभाषेत धनमन्यः प्रदर्शयेत् ॥ १८

पाणिग्रहीता त्वन्यः स्यात्कस्य कन्या पितामह ।

तत्त्वं जिज्ञासमानानां चक्षुर्भवतु नो भवान् ॥ १९

भीष्म उवाच ।

यत्किञ्चित्कर्म मानुष्यं संस्थानाय प्रकृष्यते ।

मन्त्रवन्मन्त्रितं तस्य मृषावादस्तु पातकः ॥ २०

भार्यापत्यवृत्तिगार्ह्याः शिष्योपाध्याय एव च ।

मृषोक्ते दण्डमर्हन्ति नेत्याहुरपरे जनाः ॥ २१

न ह्यकामेन संवादं मनुरेवं प्रशंसति ।

अयशस्यमधर्म्यं च यन्मृषा धर्मकोपनम् ॥ २२

नैकान्तदोष एकस्मिन्स्तद्दानं नोपलभ्यते ।

धर्मतो यां प्रयच्छन्ति यां च क्रीणन्ति भारत ॥ २३

बन्धुभिः समनुज्ञातो मन्त्रहोमौ प्रयोजयेत् ।

तथा सिध्यन्ति ते मन्त्रा नादत्तायाः कथंचन ॥ २४

यस्त्वत्र मन्त्रसमयो भार्यापत्योर्मिथः कृतः ।

तमेवाहुर्गरीयांसं यश्चासौ ज्ञातिभिः कृतः ॥ २५

देवदत्तां पतिर्भार्या वेत्ति धर्मस्य शासनात् ।  
सा दैवीं मानुषीं वाचमनृतां पर्युदस्यति ॥ २६

युधिष्ठिर उवाच ।

कन्यायां प्राप्तशुल्कायां ज्यायांश्चेदाव्रजेद्वरः ।  
धर्मकामार्थसंपन्नो वाच्यमत्रानृतं न वा ॥ २७  
तस्मिन्नुभयतो दोषे कुर्वन्नेष्ट्यः समाचरेत् ।  
अयं नः सर्वधर्माणां धर्मश्चिन्त्यतमो मतः ॥ २८  
तत्त्व जिज्ञासमानानां चक्षुर्भवतु नो भवान् ।  
तदेतत्सर्वमाचक्ष्व न हि वृष्यामि कथ्यताम् ॥ २९

भीष्म उवाच ।

न वै निष्ठाकरं शुल्कं ज्ञात्वासीत्तेन नाहतम् ।  
न हि शुल्कपराः सन्तः कन्यां ददति कर्हिचित् ॥  
अन्यैर्गुणैरुपेतं तु शुल्कं याचन्ति बान्धवाः ।  
अलंकृत्वा बहस्वेति यो दद्यादनुकूलतः ॥ ३१  
तच्च तां च ददात्येव न शुल्कं विक्रयो न सः ।  
प्रतिगृह्य भवेद्देयमेष धर्मः सनातनः ॥ ३२  
दास्यामि भवते कन्यामिति पूर्वं नभाषितम् ।  
ये चैवाहुर्ये च नाहुर्ये चावश्यं वदन्त्युत ॥ ३३  
तस्मादा ग्रहणात्पाणेर्याचयन्ति परस्परम् ।  
कन्यावरः पुरा दत्तो मरुद्भिरिति न श्रुतम् ॥ ३४  
नानिष्ठाय प्रदातव्या कन्या इत्यृषिचोदितम् ।  
तन्मूलं काममूलस्य प्रजनस्येति मे मतिः ॥ ३५  
समीक्ष्य च बहून्दोषान्संवासाद्विद्विषाणयोः ।  
यथा निष्ठाकरं शुल्कं न जात्वासीत्तथा शृणु ॥ ३६  
अहं विचित्रवीर्याय द्वे कन्ये समुदावहम् ।  
जित्वा च मागधान्सर्वान्काशीनथ च कोसलान् ।  
गृहीतपाणिरेकासीत्प्राप्तशुल्कापराभवत् ॥ ३७  
पाणौ गृहीता तत्रैव विसृज्या इति मे पिता ।  
अब्रवीदितरां कन्यामावहत्स तु कौरवः ॥ ३८  
अप्यन्यामनुपप्रच्छ शङ्कमानः पितुर्वचः ।

अतीव ह्यस्य धर्मेप्सा पितुर्मेऽभ्यधिकाभवत् ॥ ३९  
ततोऽहमष्टुवं राजन्नाचारेप्सुरिदं वचः ।  
आचारं तत्त्वतो वेत्तुमिच्छामीति पुनः पुनः ॥ ४०  
ततो मयैवमुक्ते तु वाक्ये धर्मभृतां वरः ।  
पिता मम महाराज बाह्वीको वाक्यमब्रवीत् ॥ ४१  
यदि वः शुल्कतो निष्ठा न पाणिग्रहणं तथा ।  
लाजान्तरमुपासीत प्राप्तशुल्का पति वृतम् ॥ ४२  
न हि धर्मविदः प्राहुः प्रमाणं वाक्यतः स्मृतम् ।  
येषां वै शुल्कतो निष्ठा न पाणिग्रहणात्तथा ॥ ४३  
प्रसिद्धं भाषितं दाने तेषां प्रत्यसनं पुनः ।  
ये मन्यन्ते क्रयं शुल्कं न ते धर्मविदो जनाः ॥ ४४  
न चैतेभ्यः प्रदातव्या न वोढव्या तथाविधा ।  
न ह्येव भार्या क्रेतव्या न विक्रेया कथंचन ॥ ४५  
ये च क्रीणन्ति दासीवद्ये च विक्रीणते जनाः ।  
भवेत्तेषां तथा निष्ठा लुब्धानां पापचेतसाम् ॥ ४६  
अस्मिन्धर्मे सत्यवन्तं पर्यपृच्छन्त वै जनाः ।  
कन्यायाः प्राप्तशुल्कायाः शुल्कदः प्रशम गतः ॥ ४७  
पाणिग्रहीता चान्यः स्यादत्र नो धर्मसंशयः ।  
तन्नश्छिन्धि महाप्राज्ञ त्वं हि वै प्राज्ञसंमतः ।  
तत्त्वं जिज्ञासमानानां चक्षुर्भवतु नो भवान् ॥ ४८  
तानेवं श्रुवतः सर्वान्सत्यवान्वाक्यमब्रवीत् ।  
यत्रेष्टं तत्र देया स्यान्नात्र कार्या विचारणा ।  
कुर्वते जीवतोऽप्येवं मृते नेवास्ति सशयः ॥ ४९  
देवरं प्रविशेत्कन्या तप्येद्वापि महत्तपः ।  
तमेवानुव्रता भूत्वा पाणिग्राहस्य नाम सा ॥ ५०  
लिखन्त्येव तु केषांचिदपरेषां शनैरपि ।  
इति ये संवदन्यत्र त एतं निश्चयं विदुः ॥ ५१  
तत्पाणिग्रहणात्पूर्वमुत्तरं यत्र वर्तते ।  
सर्वमङ्गलमन्त्रं वै मृषावादस्तु पातकः ॥ ५२  
पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे ।

पाणिग्राहस्य भार्या स्याद्यस्य चाद्विः प्रदीयते ॥ ५३  
अनुकूलमनुवंशां भ्रात्रा दत्तामुपाग्निकाम् ।  
परिक्रम्य यथान्यायं भार्यां विन्देद्विजोत्तमः ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

४५

युधिष्ठिर उवाच ।

कन्यायाः प्राप्तशुल्कायाः पतिश्चेन्नास्ति कश्चन ।  
तत्र का प्रतिपत्तिः स्यात्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १

भीष्म उवाच ।

या पुत्रकस्याप्यरिक्थस्य प्रतिपत्ता तदा भवेत् ॥ २  
अथ चेत्साहरेच्छुल्कं क्रीता शुल्कप्रदस्य सा ।  
तस्यार्थेऽपत्यमीहेत येन न्यायेन शक्नुयात् ॥ ३  
न तस्या मन्त्रवत्कार्यं कश्चित्कुर्वीत किंचन ॥ ४  
स्वयं वृतेति सावित्री पित्रा वै प्रत्यपद्यत ।  
तत्तस्यान्ये प्रशसन्ति धर्मज्ञा नेतरे जनाः ॥ ५  
एतत्तु नापरे चक्रुर्न परे जातु साधवः ।  
साधूनां पुनराचारो गरीयो धर्मलक्षणम् ॥ ६  
अस्मिन्नेव प्रकरणे सुकृतुर्वीक्ष्यमब्रवीत् ।  
नप्ता विदेहराजस्य जनकस्य महात्मनः ॥ ७  
असदाचरिते मार्गे कथं स्यादनुकीर्तनम् ।  
अनुप्रश्नः संशयो वा सतामेतदुपालभेत् ॥ ८  
असदेव हि धर्मस्य प्रमादो धर्म आसुरः ।  
नानुशुश्रुम जात्वेतामिमां पूर्वेषु जन्मसु ॥ ९  
भार्यापत्योर्हि संबन्धः स्त्रीपुंसोस्तुल्य एव सः ।  
रतिः साधारणो धर्म इति चाह स पार्थिवः ॥ १०

युधिष्ठिर उवाच ।

अथ केन प्रमाणेन पुंसामादीयते धनम् ।  
पुत्रवद्वि पितुस्तस्य कन्या भवितुमर्हति ॥ ११

भीष्म उवाच ।

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा ।  
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥ १२  
मातुश्च यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः ।  
दौहित्र एव वा रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत् ॥ १३  
ददाति हि स पिण्डं वै पितुर्मातामहस्य च ।  
पुत्रदौहित्रयोर्नेह विशेषो धर्मतः स्मृतः ॥ १४  
अन्यत्र जातया सा हि प्रजया पुत्र ईहते ।  
दुहितान्यत्र जातेन पुत्रेणापि विशिष्यते ॥ १५  
दौहित्रकेण धर्मेण नात्र पश्यामि कारणम् ।  
विक्रीतासु च ये पुत्रा भवन्ति पितुरेव ते ॥ १६  
असूयवस्त्वधर्मिष्ठाः परस्वादायिनः शठाः ।  
आसुरादधिसंभूता धर्माद्विषमवृत्तयः ॥ १७  
अत्र गाथा यमोद्गीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।  
धर्मज्ञा धर्मशास्त्रेषु निबद्धा धर्मसेतुषु ॥ १८  
यो मनुष्यः स्वकं पुत्रं विक्रीय धनमिच्छति ।  
कन्यां वा जीवितार्थाय यः शुल्केन प्रयच्छति ॥  
सप्तावरे महाघोरे निरये कालसाह्वये ।  
स्वेदं मूत्रं पुरीषं च तस्मिन्प्रेत उपाश्रुते ॥ २०  
आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत् ।  
अल्पं वा बहु वा राजन्विक्रयस्तावदेव सः ॥ २१  
यद्यप्याचरितः कैश्चिन्नैष धर्मः कथंचन ।  
अन्येषामपि दृश्यन्ते लोभतः संप्रवृत्तयः ॥ २२  
वश्यां कुमारीं विहितां ये च तामुपभुञ्जते ।  
एते पापस्य कर्तारस्तमस्यन्धेऽथ शेरते ॥ २३  
अन्योऽप्यथ न विक्रेयो मनुष्यः किं पुनः प्रजाः ।  
अधर्ममूलैर्हि धनैर्न तैरर्थोऽस्ति कश्चन ॥ २४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

४६

भीष्म उवाच ।

प्राचेतसस्य वचनं कीर्तयन्ति पुराविदः ।  
 यस्याः किञ्चिन्नाददते ज्ञातयो न स विक्रयः ॥ १  
 अर्हणं तत्कुमारीणामानुशंस्यतमं च तत् ।  
 सर्वं च प्रतिदेयं स्यात्कन्यायै तदशेषतः ॥ २  
 पितृभिर्भ्रातृभिश्चैव श्वशुरैरथ देवरैः ।  
 पूज्या लालयितव्याश्च बहुकन्याणमीप्सुभिः ॥ ३  
 यदि वै स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।  
 अमोदनात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्धते ॥ ४  
 पूज्या लालयितव्याश्च स्त्रियो नित्यं जनाधिप ।  
 अपूजिताश्च यत्रैताः सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।  
 तदैव तत्कुलं नास्ति यदा शोचन्ति जामयः ॥ ५  
 जामीशप्तानि गोहानि निकृत्तानीव कृत्या ।  
 नैव भान्ति न वर्धन्ते श्रिया हीनानि पार्थिव ॥ ६  
 स्त्रियः पुंसां परिददे मनुर्जिगमिषुर्दिवम् ।  
 अबलाः स्वल्पकौपीनाः सुहृदः सत्यजिष्णवः ॥ ७  
 ईर्ष्यवो मानकामाश्च चण्डा असुहृदोऽबुधाः ।  
 स्त्रियो माननमर्हन्ति ता मानयत मानवाः ॥ ८  
 स्त्रीप्रत्ययो हि वो धर्मो रतिभोगाश्च केवलाः ।  
 परिचर्यान्निर्वासास्तदायत्ता भवन्तु वः ॥ ९  
 उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।  
 प्रीत्यर्थं लोकयात्रा च पश्यत स्त्रीनिबन्धनम् ॥ १०  
 संमान्यमानाश्चैताभिः सर्वकार्याण्यवाप्स्यथ ।  
 विदेहराजदुहिता चात्र श्लोकमगायत ॥ ११  
 नास्ति यज्ञः स्त्रियः कश्चिन्न श्राद्धं नोपवासकम् ।  
 धर्मस्तु भर्तृशुश्रूषा तथा स्वर्गं जयत्युत ॥ १२  
 पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।  
 पुत्रास्तु स्थविराभावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ १३  
 श्रिय एताः स्त्रियो नाम सत्कार्या भूतिमिच्छता ।

लालिता निगृहीता च स्त्री श्रीर्भवति भारत ॥ १४  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

४७

युधिष्ठिर उवाच ।

सर्वशास्त्रविधानज्ञ राजधर्मार्थवित्तम ।  
 अतीव संशयच्छेत्ता भवान्वै प्रथितः क्षितौ ॥ १  
 कचित्तु संशयो मेऽस्ति तन्मे ब्रूहि पितामह ।  
 अस्यामापदि कष्टायामन्यं पृच्छामि कं वयम् ॥ २  
 यथा नरेण कर्तव्यं यश्च धर्मः सनातनः ।  
 एतत्सर्वं महाबाहो भवान्व्याख्यातुमर्हति ॥ ३  
 चतस्रो विहिता भार्या ब्राह्मणस्य पितामह ।  
 ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च रतिमिच्छतः ॥ ४  
 तत्र जातेषु पुत्रेषु सर्वासां कुरुसत्तम ।  
 आनुपूर्व्येण कस्तेषां पित्र्यं दायान्वमर्हति ॥ ५  
 केन वा किं ततो हार्यं पितृवित्तात्पितामह ।  
 एतदिच्छामि कथितं विभागस्तेषु यः स्मृतः ॥ ६

भीष्म उवाच ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यश्चो वर्णा द्विजातयः ।  
 एतेषु विहितो धर्मो ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर ॥ ७  
 वैपम्यादथ वा लोभात्कामाद्वापि परंतप ।  
 ब्राह्मणस्य भवेच्छूद्रा न तु दृष्टान्ततः स्मृता ॥ ८  
 शूद्रां शयनमारोग्य ब्राह्मणः पीडितो भवेत् ।  
 प्रायश्चित्तीयते चापि विधिदृष्टेन हेतुना ॥ ९  
 तत्र जातेष्वपत्येषु द्विगुणं स्याद्युधिष्ठिर ।  
 अतस्ते नियमं वित्ते सप्रवक्ष्यामि भारत ॥ १०  
 लक्षण्यो गोवृषो यानं यत्प्रधानतमं भवेत् ।  
 ब्राह्मण्यास्तद्धरेत्पुत्र एकांशं वै पितुर्धनात् ॥ ११  
 शेषं तु दशधा कार्यं ब्राह्मणस्वं युधिष्ठिर ।  
 तत्र तेनैव हर्तव्याश्चत्वारोऽशाः पितुर्धनात् ॥ १२

क्षत्रियायास्तु यः पुत्रो ब्राह्मणः सोऽप्यसंशयः ।  
 स तु भातविशेषेण त्रीनंशान् हर्तुमर्हति ॥ १३  
 वर्णे तृतीये जातस्तु वैश्यायां ब्राह्मणादपि ।  
 द्विरंशस्तेन हर्तव्यो ब्राह्मणस्याद्युधिष्ठिर ॥ १४  
 शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातो नित्यादेयधनः स्मृतः ।  
 अल्पं वापि प्रदातव्यं शूद्रापुत्राय भारत ॥ १५  
 दशधा प्रविभक्तस्य धनस्यैष भवेत्कमः ।  
 सवर्णास्तु तु जातानां समान्भागान्प्रकल्पयेत् ॥ १६  
 अब्राह्मणं तु मन्यन्ते शूद्रापुत्रमनैपुणात् ।  
 त्रिषु वर्णेषु जातो हि ब्राह्मणाद्ब्राह्मणो भवेत् ॥ १७  
 स्मृता वर्णाश्च चत्वारः पञ्चमो नाधिगम्यते ।  
 हरेत्तु दशमं भागं शूद्रापुत्रः पितुर्धनात् ॥ १८  
 तत्तु दत्तं हरेत्पित्रा नादत्तं हर्तुमर्हति ।  
 अवश्यं हि धनं देयं शूद्रापुत्राय भारत ॥ १९  
 भ्रान्तशंस्यं परो धर्म इति तस्मै प्रदीयते ।  
 यत्र तत्र समुत्पन्नो गुणायैवोपकल्पते ॥ २०  
 यदि वाप्येकपुत्रः स्यादपुत्रो यदि वा भवेत् ।  
 नाधिकं दशमादद्याच्छूद्रापुत्राय भारत ॥ २१  
 त्रैवार्षिकाद्यदा भक्तादधिकं स्याद्विजस्य तु ।  
 यजेत तेन द्रव्येण न वृथा साधयेद्धनम् ॥ २२  
 त्रिसाहस्रपरो दायः स्त्रियो देयो धनस्य वै ।  
 तच्च भर्त्रा धनं दत्तं नादत्तं भोक्तुमर्हति ॥ २३  
 स्त्रीणां तु पतिदायाद्यमुपभोगफलं स्मृतम् ।  
 नापहारं स्त्रियः कुर्युः पतिवित्तात्कथंचन ॥ २४  
 स्त्रियास्तु यद्वेद्वित्तं पित्रा दत्तं युधिष्ठिर ।  
 ब्राह्मण्यास्तद्धरेत्कन्या यथा पुत्रस्तथा हि सा ।  
 सा हि पुत्रसमा राजन्विहिता कुरुनन्दन ॥ २५  
 एवमेतत्समुद्दिष्टं धर्मेषु भरतर्षभ ।  
 एतद्धर्ममनुस्मृत्य न वृथा साधयेद्धनम् ॥ २६

युधिष्ठिर उवाच ।

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातो यद्यदेयधनः स्मृतः ।  
 केन प्रतिविशेषेण दशमोऽप्यस्य दीयते ॥ २७  
 ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणः स्यान्न संशयः ।  
 क्षत्रियायां तथैव स्याद्वैश्यायामपि चैव हि ॥ २८  
 कस्मात्ते विपमं भागं भजेरन्नृपसत्तम ।  
 यदा सर्वे त्रयो वर्णास्त्वयोक्ता ब्राह्मणा इति ॥ २९  
 भीष्म उवाच ।  
 दारा इत्युच्यते लोके नास्त्रैकेन परंतप ।  
 प्रोक्तेन चैकनाम्नायं विशेषः सुमहान्भवेत् ॥ ३०  
 तिस्रः कृत्वा पुरो भार्याः पश्चाद्विन्देत् ब्राह्मणीम् ।  
 सा ज्येष्ठा सा च पूज्या स्यात्सा च ताभ्यो गरीयसी ॥  
 स्नानं प्रसाधनं भर्तुर्दन्तधावनमञ्जनम् ।  
 हव्यं कव्यं च यच्चान्यद्धर्मयुक्तं भवेद्गृहे ॥ ३२  
 न तस्या जातु तिष्ठन्त्यामन्या तत्कर्तुमर्हति ।  
 ब्राह्मणी त्वेव तत्कुर्याद्ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर ॥ ३३  
 अन्नं पानं च माल्यं च वासांस्याभरणानि च ।  
 ब्राह्मण्यै तानि देयानि भर्तुः सा हि गरीयसी ॥  
 मनुनामिहितं शास्त्रं यच्चापि कुरुनन्दन ।  
 तत्राप्येष महाराज दृष्टो धर्मः सनातनः ॥ ३५  
 अथ चेदन्यथा कुर्याद्यदि कामाद्युधिष्ठिर ।  
 यथा ब्राह्मणचण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ॥ ३६  
 ब्राह्मण्याः सदृशः पुत्रः क्षत्रियायाश्च यो भवेत् ।  
 राजन्विशेषो नास्त्यत्र वर्णयोरुभयोरपि ॥ ३७  
 न तु जात्या समा लोके ब्राह्मण्याः क्षत्रिया भवेत् ।  
 ब्राह्मण्याः प्रथमः पुत्रो भूयान्स्याद्राजसत्तम ।  
 भूयोऽपि भूयसा हार्यं पितृवित्ताद्युधिष्ठिर ॥ ३८  
 यथा न सदृशी जातु ब्राह्मण्याः क्षत्रिया भवेत् ।  
 क्षत्रियायास्तथा वैश्या न जातु सदृशी भवेत् ॥  
 श्रीश्च राज्यं च कोशश्च क्षत्रियाणां युधिष्ठिर ।



विहितं दृश्यते राजन्सागरान्ता च मेदिनी ॥ ४०  
क्षत्रियो हि स्वधर्मेण श्रियं प्राप्नोति भूयसीम् ।  
राजा दण्डधरो राजन्क्षा नान्यत्र क्षत्रियात् ॥ ४१  
ब्राह्मणा हि महाभागा देवानामपि देवताः ।  
तेषु राजा प्रवर्तते पूजया विधिपूर्वकम् ॥ ४२  
प्रणीतमृषिमिर्ज्ञात्वा धर्मं शाश्वतमव्ययम् ।  
लुप्यमानः स्वधर्मेण क्षत्रियो रक्षति प्रजाः ॥ ४३  
दस्युमिर्हियमाणं च धनं दाराश्च सर्वशः ।  
सर्वेषामेव वर्णानां त्राता भवति पार्थिवः ॥ ४४  
भूयान्स्यात्क्षत्रियापुत्रो वैश्यापुत्रान्न संशयः ।  
भूयस्तेनापि हर्तव्यं पितृवित्ताद्युधिष्ठिर ॥ ४५

युधिष्ठिर उवाच ।

उक्तं ते विधिवद्राजन्ब्राह्मणस्वे पितामह ।  
इतरेषां तु वर्णानां कथं विनियमो भवेत् ॥ ४६

भीष्म उवाच ।

क्षत्रियस्यापि भार्ये द्वे विहिते कुरुनन्दन ।  
तृतीया च भवेच्छूद्रा न तु दृष्टान्ततः स्मृता ॥ ४७  
एष एव क्रमो हि स्यात्क्षत्रियाणां युधिष्ठिर ।  
अष्टधा तु भवेत्कार्यं क्षत्रियस्वं युधिष्ठिर ॥ ४८  
क्षत्रियाया हरेत्पुत्रश्चतुरोऽशान्पितुर्धनात् ।  
युद्धावहारिकं यश्च पितुः स्यात्स हरेत् तत् ॥ ४९  
वैश्यापुत्रस्तु भागांस्त्रीशूद्रापुत्रस्तथाष्टमम् ।  
सोऽपि दत्तं हरेत्पित्रा नादत्तं हर्तुमर्हति ॥ ५०  
एकैव हि भवेद्भार्या वैश्यस्य कुरुनन्दन ।  
द्वितीया वा भवेच्छूद्रा न तु दृष्टान्ततः स्मृता ॥ ५१  
वैश्यस्य वर्तमानस्य वैश्यायां भरतर्षभ ।  
शूद्रायां चैव कौन्तेय तयोर्विनियमः स्मृतः ॥ ५२  
पञ्चधा तु भवेत्कार्यं वैश्यस्वं भरतर्षभ ।  
तयोरपत्ये वक्ष्यामि विभागं च जनाधिप ॥ ५३  
वैश्यापुत्रेण हर्तव्याश्चत्वारोऽशाः पितुर्धनात् ।

म. भा. ३२३

पञ्चमस्तु भवेद्भागः शूद्रापुत्राय भारत ॥ ५४  
सोऽपि दत्तं हरेत्पित्रा नादत्तं हर्तुमर्हति ।  
त्रिभिर्वर्णैस्तथा जातः शूद्रो देयधनो भवेत् ॥ ५५  
शूद्रस्य स्यात्सवर्णैव भार्या नान्या कथंचन ।  
शूद्रस्य समभागः स्याद्यदि पुत्रशतं भवेत् ॥ ५६  
जातानां समवर्णासु पुत्राणामविशेषतः ।  
सर्वेषामेव वर्णानां समभागो धने स्मृतः ॥ ५७  
ज्येष्ठस्य भागो ज्येष्ठः स्यादेकांशो यः प्रधानतः ।  
एष दायविधिः पार्थ पूर्वमुक्तः स्वयंभुवा ॥ ५८  
समवर्णासु जातानां विशेषोऽस्यपरो नृप ।  
विवाहवैशेष्यकृतः पूर्वं पूर्वो विशिष्यते ॥ ५९  
हरेज्ज्येष्ठः प्रधानांशमेकं तुल्यासुतेष्वपि ।  
मध्यमो मध्यमं चैव कनीयास्तु कनीयसम् ॥ ६०  
एवं जातिषु सर्वासु सवर्णाः श्रेष्ठतां गताः ।  
महर्षिरपि चैतद्वै मारीचः काश्यपोऽब्रवीत् ॥ ६१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

४८

युधिष्ठिर उवाच ।

अर्थाश्रयाद्वा कामाद्वा वर्णानां वाप्यनिश्चयात् ।  
अज्ञानाद्वापि वर्णानां जायते वर्णसंकरः ॥ १  
तेषामेतेन विधिना जातानां वर्णसंकरे ।  
को धर्मः कानि कर्माणि तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २

भीष्म उवाच ।

चातुर्वर्ण्यस्य कर्माणि चातुर्वर्ण्यं च केवलम् ।  
असृजत्स ह यज्ञार्थे पूर्वमेव प्रजापतिः ॥ ३  
भार्याश्चतस्रो विप्रस्य द्वयोरात्मास्य जायते ।  
आनुपूर्व्याद्वयोर्हीनौ मातृजात्यौ प्रसूयतः ॥ ४

परं शवाद्ब्राह्मणस्यैव पुत्रः

शूद्रापुत्रं पारशवं तवाहुः ।

शुश्रूपकः स्वस्य कुलस्य स स्या-  
 त्वं चारित्रं नित्यमथो न जह्यात् ॥ ५  
 सर्वानुपायानपि संप्रधार्य  
 समुद्धरेत्स्वस्य कुलस्य तन्तुम् ।  
 ज्येष्ठो यवीयानपि यो द्विजस्य  
 शुश्रूषवान्दानपरायणः स्यात् ॥ ६  
 तिस्रः क्षत्रियसंबन्धाद्वयोरात्मास्य जायते ।  
 हीनवर्णस्तृतीयायां शूद्र उग्र इति स्मृतः ॥ ७  
 द्वे चापि वैश्यस्य द्वयोरात्मास्य जायते ।  
 शूद्रः शूद्रस्य चाप्येका शूद्रमेव प्रजायते ॥ ८  
 अतो विशिष्टस्त्वधमो गुरुदारप्रधर्षकः ।  
 बाह्यं वर्णं जनयति चातुर्वर्ण्यविगर्हितम् ॥ ९  
 अयाज्यं क्षत्रियो ब्राह्म्यं सूतं स्तोमक्रियापरम् ।  
 वैश्यो वैदेहकं चापि मौद्गल्यमपवर्जितम् ॥ १०  
 शूद्रश्चण्डालमत्युग्रं वध्यन्नं बाह्यवासिनम् ।  
 ब्राह्मण्यां संप्रजायन्त इत्येते कुलपांसनाः ।  
 एते मतिमतां श्रेष्ठ वर्णसंकरजाः प्रभो ॥ ११  
 बन्दी तु जायते वैश्यान्मागधो वाक्यजीवनः ।  
 शूद्रान्निषादो मत्स्यन्नः क्षत्रियाणां व्यतिक्रमात् ॥  
 शूद्रादायोगवश्चापि वैश्यायां ग्रामधर्मिणः ।  
 ब्राह्मणैरप्रतिग्राह्यस्तथा स वनजीवनः ॥ १३  
 एतेऽपि सदृशं वर्णं जनयन्ति स्वयोनिषु ।  
 मातृजात्यां प्रसूयन्ते प्रवरा हीनयोनिषु ॥ १४  
 यथा चतुर्षु वर्णेषु द्वयोरात्मास्य जायते ।  
 आनन्तर्यात्तु जायन्ते तथा बाह्याः प्रधानतः ॥ १५  
 ते चापि सदृशं वर्णं जनयन्ति स्वयोनिषु ।  
 परस्परस्य वर्तन्तो जनयन्ति विगर्हितान् ॥ १६  
 यथा च शूद्रो ब्राह्मण्यां जन्तुं बाह्यं प्रसूयते ।  
 एवं बाह्यतराद्बाह्यातुर्वर्ण्यात्प्रसूयते ॥ १७  
 प्रतिलोमं तु वर्तन्ते बाह्याद्बाह्यतरं पुनः ।

हीना हीनात्प्रसूयन्ते वर्णाः पञ्चदशैव ते ॥ १८  
 अगम्यागमनाच्चैव वर्तते वर्णसंकरः ।  
 ब्राह्म्यानामत्र जायन्ते सैरन्ध्रा मागधेषु च ।  
 प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनम् ॥ १९  
 व्रतश्चायोगवं सूते वागुरावनजीवनम् ।  
 मेरेयकं च वैदेहः सप्रसूतेऽथ माधुकम् ॥ २०  
 निषादो मुद्गरं सूते दाशं नावोपजीविनम् ।  
 मृतपं चापि चण्डालः श्वपाकमतिकृत्सितम् ॥ २१  
 चतुरो भागधी सूते कूराण्मायोपजीविनः ।  
 मांसस्वादुकरं सूदं सौगन्धमिति संज्ञितम् ॥ २२  
 वैदेहकाश्च षापिष्ठं क्रूरं भार्योपजीविनम् ।  
 निषादान्मद्रनाभं च खरयानप्रयायिनम् ॥ २३  
 चण्डालात्पुल्कसं चापि खराश्वगजभोजिनम् ।  
 मृतचेलप्रतिच्छन्नं भिन्नभाजनभोजिनम् ॥ २४  
 आयोगवीषु जायन्ते हीनवर्णांसु ते त्रयः ।  
 क्षुद्रो वैदेहकादन्धो बहिर्ग्रामप्रतिश्रयः ॥ २५  
 कारावरो निषादां तु चर्मकारात्प्रजायते ।  
 चण्डालात्पाण्डुसौपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान् ॥ २६  
 आहिण्डको निषादेन वैदेह्यां संप्रजायते ।  
 चण्डालेन तु सौपाको मौद्गल्यसमवृत्तिमान् ॥ २७  
 निषादी चापि चण्डालात्पुत्रमन्तावसायिनम् ।  
 श्मशानगोचरं सूते बाह्यैरपि बहिष्कृतम् ॥ २८  
 इत्येताः संकरे जायः पितृमातृव्यतिक्रमात् ।  
 प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः ॥  
 चतुर्णामेव वर्णानां धर्मो नान्यस्य विद्यते ।  
 वर्णानां धर्महीनेषु संज्ञा नास्तीह कस्यचित् ॥ ३०  
 यदृच्छयोपसंपन्नैर्यज्ञसाधुबहिष्कृतैः ।  
 बाह्या बाह्यैस्तु जायन्ते यथावृत्तिं यथाश्रयम् ॥ ३१  
 चतुष्पथश्मशानानि शैलांश्चान्यान्वनस्पतीन् ।  
 युञ्जन्ते चाप्यलंकारास्तथोपकरणानि च ॥ ३२

गोब्राह्मणार्थे साहाय्यं कुर्वाणा वै न संशयः ।  
 आनृशंस्यमनुक्रोशः सत्यवाक्यमथ क्षमा ॥ ३३  
 स्वशरीरैः परित्राणं बाह्यानां सिद्धिकारकम् ।  
 मनुजव्याघ्र भवति तत्र मे नास्ति संशयः ॥ ३४  
 यथोपदेशं परिकीर्तितासु  
 नरः प्रजायेत विचार्य बुद्धिमान् ।  
 विहीनयोनिर्हि सुतोऽवसादये-  
 त्तितीर्षमाणं सलिले यथोपलम् ॥ ३५  
 अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ।  
 नयन्ते ह्युत्पथं नार्यः कामक्रोधवशानुगम् ॥ ३६  
 स्वभावश्चैव नारीणां नराणामिह दूषणम् ।  
 इत्यर्थं न प्रसज्यन्ते प्रमदासु विपश्चितः ॥ ३७  
 युधिष्ठिर उवाच ।  
 वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् ।  
 आर्यरूपमिवानार्यं कथं विद्यामहे नृप ॥ ३८  
 भीष्म उवाच ।  
 योनिसंकलुषे जातं नानाचारसमाहितम् ।  
 कर्मभिः सज्जनाचीर्णैर्विज्ञेया योनिशुद्धता ॥ ३९  
 अनार्यत्वमनाचारः क्रतुत्रं निष्क्रियात्मता ।  
 पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥ ४०  
 पित्र्यं वा भजते शीलं मातृजं वा तथोभयम् ।  
 न कथंचन संकीर्णः प्रकृति स्वां नियच्छति ॥ ४१  
 यथैव सदृशो रूपे मातापित्रोर्हि जायते ।  
 व्याघ्रश्चित्रैस्तथा योनिं पुरुषः स्वां नियच्छति ॥  
 कुलस्रोतसि संछन्ने यस्य स्याद्योनिसंकरः ।  
 संश्रयत्येव तच्छीलं नरोऽल्पमपि वा बहु ॥ ४३  
 आर्यरूपसमाचारं चरन्तं कृतके पथि ।  
 स्ववर्णमन्यवर्णं वा स्वशीलं शास्ति निश्चये ॥ ४४  
 नानावृत्तेषु भूतेषु नानाकर्मरतेषु च ।  
 जन्मवृत्तसमं लोके सुश्लिष्टं न विरज्यते ॥ ४५

शरीरमिह सत्त्वेन नरस्य परिकृष्यते ।  
 ज्येष्ठमध्यावरं सत्त्वं तुल्यसत्त्वं प्रमोदते ॥ ४६  
 ज्यायांसमपि शीलेन विहीनं नैव पूजयेत् ।  
 अपि शूद्रं तु सदृत्तं धर्मज्ञमभिपूजयेत् ॥ ४७  
 आत्मानमाख्याति हि कर्मभिर्नरः  
 स्वशीलचारित्रकृतैः शुभाशुभैः ।  
 प्रनष्टमप्यात्मकुलं तथा नरः  
 पुनः प्रकाशं कुरुते स्वकर्मभिः ॥ ४८  
 योनिष्वेतासु सर्वासु संकीर्णास्वितरासु च ।  
 यत्रात्मानं न जनयेद्बुधस्ताः परिवर्जयेत् ॥ ४९  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४८ ॥  
 ४९  
 युधिष्ठिर उवाच ।  
 ब्रूहि पुत्रान्कुरुश्रेष्ठ वर्णानां त्वं पृथक्पृथक् ।  
 कीदृश्या कीदृशाश्चापि पुत्राः कस्य च के च ते ॥  
 विप्रवादाः सुबहुशः श्रूयन्ते पुत्रकारिताः ।  
 अत्र नो मुह्यतां राजन्संशयं छेतुमर्हसि ॥ २  
 भीष्म उवाच ।  
 आत्मा पुत्रस्तु विज्ञेयस्तस्यानन्तरजश्च यः ।  
 नियुक्तश्च विज्ञेयः सुतः प्रसूतजस्तथा ॥ ३  
 पतितस्य च भार्यायां भर्त्रा सुसमवेतया ।  
 तथा दत्तकृतौ पुत्रावध्यूढश्च तथापरः ॥ ४  
 षडपध्वंसजाश्चापि कानीनापसदास्तथा ।  
 इत्येते ते समाख्यातास्तान्विजानीहि भारत ॥ ५  
 युधिष्ठिर उवाच ।  
 षडपध्वंसजाः के स्युः के वाप्यपसदास्तथा ।  
 एतत्सर्वं यथातत्त्वं व्याख्यातुं मे त्वमर्हसि ॥ ६  
 भीष्म उवाच ।  
 त्रिषु वर्णेषु ये पुत्रा ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर ।

वर्णयोश्च द्वयोः स्यातां यौ राजन्यस्य भारत ॥ ७  
 एको द्विवर्ण एवाथ तथात्रैवोपलक्षितः ।  
 षड्ध्वंसजास्ते हि तथैवापसदाञ्छृणु ॥ ८  
 चण्डालो ब्राह्मणेनौ च ब्राह्मण्यां क्षत्रियासु च ।  
 वैश्यायां चैव शूद्रस्य लक्ष्यन्तेऽपसदास्त्रयः ॥ ९  
 मागधो वामकश्चैव द्वौ वैश्यस्योपलक्षितौ ।  
 ब्राह्मण्यां क्षत्रियायां च क्षत्रियस्यैक एव तु ॥ १०  
 ब्राह्मण्यां लक्ष्यते सूत इत्येतेऽपसदाः स्मृताः ।  
 पुत्ररेतो न शक्यं हि मिथ्या कर्तुं नराधिप ॥ ११

युधिष्ठिर उवाच ।

क्षेत्रजं केचिदेवाहुः सुतं केचित्तु शुक्रजम् ।  
 तुल्यावेतौ सुतौ कस्य तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १२

भीष्म उवाच ।

रेतजो वा भवेत्पुत्रस्त्यक्तो वा क्षेत्रजो भवेत् ।  
 अध्यूढः समयं भिच्चेत्येतदेव निबोध मे ॥ १३

युधिष्ठिर उवाच ।

रेतोजं विद्म वै पुत्रं क्षेत्रजस्यागमः कथम् ।  
 अध्यूढं विद्म वै पुत्रं हित्वा च समयं कथम् ॥ १४

भीष्म उवाच ।

आत्मजं पुत्रमुत्पाद्य यस्यजेत्कारणान्तरे ।  
 न तत्र कारणं रेतः स क्षेत्रस्वामिनो भवेत् ॥ १५  
 पुत्रकामो हि पुत्रार्थे यां वृणीते विशां पते ।  
 तत्र क्षेत्रं प्रमाणं स्यान्न वै तत्रात्मजः सुतः ॥ १६  
 अन्यत्र क्षेत्रजः पुत्रो लक्ष्यते भरतर्षभ ।  
 न ह्यात्मा शक्यते हन्तुं दृष्टान्तोपगतो ह्यसौ ॥ १७  
 कश्चिच्च कृतकः पुत्रः संप्रहादेव लक्ष्यते ।  
 न तत्र रेतः क्षेत्रं वा प्रमाणं स्याद्युधिष्ठिर ॥ १८  
 युधिष्ठिर उवाच ।  
 कीदृशः कृतकः पुत्रः संप्रहादेव लक्ष्यते ।

शुक्रं क्षेत्रं प्रमाणं वा यत्र लक्ष्येत भारत ॥ १९

भीष्म उवाच ।

मातापितृभ्यां संत्यक्तं पथि यं तु प्रलक्ष्येत् ।  
 न चास्य मातापितरौ ज्ञायेते स हि कृत्रिमः ॥ २०  
 अस्वामिकस्य स्वामित्वं यस्मिन्संप्रतिलक्ष्येत् ।  
 सवर्णस्तं च पोषेत सवर्णस्तस्य जायते ॥ २१

युधिष्ठिर उवाच ।

कथमस्य प्रयोक्तव्यः संस्कारः कस्य वा कथम् ।  
 देया कन्या कथं चेति तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २२

भीष्म उवाच ।

आत्मवत्तस्य कुर्वीत संस्कारं स्वामिवत्तथा ॥ २३  
 त्यक्तो मातापितृभ्यां यः सवर्णं प्रतिपद्यते ।  
 तद्गोत्रवर्णतस्तस्य कुर्यात्संस्कारमच्युत ॥ २४  
 अथ देया तु कन्या स्यात्तद्वर्णेन युधिष्ठिर ।  
 संस्कर्तुं मातृगोत्रं च मातृवर्णविनिश्चये ॥ २५  
 कानीनाध्यूढजौ चापि विज्ञेयौ पुत्रकिल्बिषौ ।  
 तावपि स्वाविव सुतौ संस्कार्याविति निश्चयः ॥ २६  
 क्षेत्रजो वाप्यपसदो येऽध्यूढास्तेषु चाप्यथ ।  
 आत्मवद्वै प्रयुञ्जीरन्संस्कारं ब्राह्मणादयः ॥ २७  
 धर्मशास्त्रेषु वर्णानां निश्चयोऽयं प्रदृश्यते ।  
 एतत्ते सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ २८

इति श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वणि

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

५०

युधिष्ठिर उवाच ।

दर्शने कीदृशः स्नेहः संवासे च पितामह ।  
 महाभाग्यं गवां चैव तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १

भीष्म उवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि पुरावृत्तं महाद्युते ।

नहुषस्य च संवादं महर्षेऽश्रयवनस्य च ॥ २  
 पुरा महर्षिऽश्रयवनो भार्गवो भरतर्षभ ।  
 उदवासकृतारम्भो बभूव सुमहाव्रतः ॥ ३  
 निहत्य मानं क्रोधं च प्रहर्षं शोकमेव च ।  
 वर्षाणि द्वादश मुनिर्जलवासे धृतव्रतः ॥ ४  
 आदधत्सर्वभूतेषु विस्मभं परमं शुभम् ।  
 जलेचरेषु सत्त्वेषु शीतरश्मिरिव प्रभुः ॥ ५  
 स्थाणुभूतः शुचिर्भूत्वा दैवतेभ्यः प्रणम्य च ।  
 गङ्गायमुनयोर्मध्ये जलं संप्रविवेश ह ॥ ६  
 गङ्गायमुनयोर्वेगं सुमीमं भीमनिःस्वनम् ।  
 प्रतिजग्राह शिरसा घातवेगसमं जवे ॥ ७  
 गङ्गा च यमुना चैव सरितश्चानुगास्तयोः ।  
 प्रदक्षिणमृषिं चकुर्न चैनं पर्यपीडयन् ॥ ८  
 अन्तर्जले स सुष्वाप काष्ठभूतो महामुनिः ।  
 ततश्चोर्ध्वस्थितो धीमानभवद्भरतर्षभ ॥ ९  
 जलौकसां च सत्त्वानां बभूव प्रियदर्शनः ।  
 उपाजिग्रन्त च तदा मत्स्यास्तं दृष्टमानसाः ।  
 तत्र तस्यासतः कालः समतीतोऽभवन्महान् ॥ १०  
 ततः कदाचित्समये कस्मिंश्चिन्मत्स्यजीविनः ।  
 तं देशं समुपाजग्मुर्जालहस्ता महाद्युते ॥ ११  
 निषादा बह्वस्तत्र मत्स्योद्धरणनिश्चिताः ।  
 व्यायता बलिनः शूराः सलिलेष्वनिवर्तिनः ।  
 अभ्याययुश्च तं देशं निश्चिता जालकर्मणि ॥ १२  
 जालं च योजयामासुर्विशेषेण जनाधिप ।  
 मत्स्योदकं समासाद्य तदा भरतसत्तम ॥ १३  
 ततस्ते बहुभिर्योगैः कैवर्ता मत्स्यकाङ्क्षिणः ।  
 गङ्गायमुनयोर्वारि जालैरभ्यकिरन्ततः ॥ १४  
 जालं सुविततं तेषां नवसूत्रकृतं तथा ।  
 विस्तारायामसंपन्नं यत्तत्र सलिले क्षमम् ॥ १५  
 ततस्ते सुमहच्चैव बलवच्च सुवर्तितम् ।

प्रकीर्य सर्वतः सर्वे जालं चकृषिरे तदा ॥ १६  
 अभीतरूपाः संदृष्टास्तेऽन्योन्यवशवर्तिनः ।  
 बबन्धुस्तत्र मत्स्यांश्च तथान्याञ्जलचारिणः ॥ १७  
 तथा मत्स्यैः परिवृतं च्यवनं भृगुनन्दनम् ।  
 आकर्षन्त महाराज जालेनाथ यदृच्छया ॥ १८  
 नदीशैवलदिग्धान्नं हरिश्मश्रुजटाधरम् ।  
 लभैः शङ्खगणैर्गात्रैः कोष्ठैश्चित्रैरिवावृतम् ॥ १९  
 तं जालेनोद्धृतं दृष्ट्वा ते तदा वेदपासगम् ।  
 सर्वे प्राञ्जलयो दाशाः शिरोभिः प्रापतन्भुवि ॥ २०  
 परिखेदपरित्रासाज्जालस्याकर्षणेन च ।  
 मत्स्या बभूवुर्व्यापिन्नाः स्थलसंकर्षणेन च ॥ २१  
 स मुनिस्तत्तदा दृष्ट्वा मत्स्यानां कदनं कृतम् ।  
 बभूव कृपयाविष्टो निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥ २२

निषादा ऊचुः ।

अज्ञानाद्यत्कृतं पापं प्रसादं तत्र नः कुरु ।  
 करवाम प्रियं किं ते तन्नो ब्रूहि महामुने ॥ २३

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तो मत्स्यमध्यस्थश्चयवनो वाक्यमब्रवीत् ।  
 यो मेऽद्य परमः कामस्तं शृणुष्वं समाहिताः ॥ २४  
 प्राणोत्सर्गं विक्रयं वा मत्स्यैर्यास्याम्यहं सह ।  
 संवासान्नोत्सहे त्यक्तुं सलिलाध्युषितानिमान् ॥ २५  
 इत्युक्तास्ते निषादास्तु सुभृशं भयकम्पिताः ।  
 सर्वे विषण्णवदना नहुषाय न्यवेदयन् ॥ २६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

५१

भीष्म उवाच ।

नहुषस्तु ततः श्रुत्वा च्यवनं तं तथागतम् ।  
 त्वरितः प्रययौ तत्र सहामात्यपुरोहितः ॥ १  
 शौचं कृत्वा यथान्यायं प्राञ्जलिः प्रयतो नृपः ।

आत्मानमाचक्षे च च्यवनाय महात्मने ॥ २  
अर्चयामास तं चापि तस्य राज्ञः पुरोहितः ।  
सत्यव्रतं महाभागं देवकल्पं विशां पते ॥ ३

नहुष उवाच ।

करवाणि प्रियं किं ते तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।  
सर्वं कर्तास्मि भगवन्त्यद्यपि स्यात्सुदुष्करम् ॥ ४

च्यवन उवाच ।

श्रमेण महता युक्ताः कैवर्ता मत्स्यजीविनः ।  
मम मूल्यं प्रयच्छैभ्यो मत्स्यानां विक्रयैः सह ॥ ५

नहुष उवाच ।

सहस्रं दीयतां मूल्यं निषादेभ्यः पुरोहितः ।  
निष्क्रयार्थं भगवतो यथाह भृगुनन्दनः ॥ ६

च्यवन उवाच ।

सहस्रं नाहमर्हामि किं वा त्वं मन्यसे नृप ।  
सदृशं दीयतां मूल्यं स्वबुद्ध्या निश्चय कुरु ॥ ७

नहुष उवाच ।

सहस्राणां शतं क्षिप्रं निषादेभ्यः प्रदीयताम् ।  
स्यादेतत्तु भवेन्मूल्यं किं वान्यन्मन्यते भवान् ॥ ८

च्यवन उवाच ।

नाहं शतसहस्रेण निमेयः पार्थिवर्षभ ।  
दीयतां सदृशं मूल्यममात्यैः सह चिन्तय ॥ ९

नहुष उवाच ।

कोटिः प्रदीयतां मूल्यं निषादेभ्यः पुरोहितः ।  
यदेतदपि नौपम्यमतो भूयः प्रदीयताम् ॥ १०

च्यवन उवाच ।

राजन्नार्हम्यहं कोटिं भूयो वापि महाद्युते ।  
सदृशं दीयतां मूल्यं ब्राह्मणैः सह चिन्तय ॥ ११

नहुष उवाच ।

अर्धराज्यं समग्रं वा निषादेभ्यः प्रदीयताम् ।  
एतन्मूल्यमहं मन्ये किं वान्यन्मन्यसे द्विज ॥ १२

च्यवन उवाच ।

अर्धराज्यं समग्रं वा नाहमर्हामि पार्थिव ।  
सदृशं दीयतां मूल्यमृषिभिः सह चिन्तयताम् ॥ १३

भीष्म उवाच ।

महर्षेर्वचनं श्रुत्वा नहुषो दुःखकरीतः ।  
स चिन्तयामास तदा सहामात्यपुरोहितः ॥ १४  
तत्र त्वन्यो वनचरः कश्चिन्मूलफलाशनः ।  
नहुषस्य समीपस्थो गविजातोऽभवन्मुनिः ॥ १५  
स समाभाष्य राजानमब्रवीद्विजसत्तमः ।  
तोपयिष्याम्यहं विप्रं यथा तुष्टो भविष्यति ॥ १६  
नाहं मिथ्यावचो ब्रूयां स्वैरेष्वपि कुतोऽन्यथा ।  
भवतो यदहं ब्रूयां तत्कार्यमविशङ्कया ॥ १७

नहुष उवाच ।

ब्रवीतु भगवान्मूल्यं महर्षेः सदृशं भृगोः ।  
परित्रायस्व मामस्माद्विषयं च कुलं च मे ॥ १८  
हन्याद्वि भगवान्कुद्वल्लैलोक्यमपि केवलम् ।  
किं पुनर्मां तपोहीनं बाहुवीर्यपरायणम् ॥ १९  
अगाधेऽम्भसि मग्नस्य सामात्यस्य सहर्त्विजः ।  
प्लवो भव महर्षे त्वं कुरु मूल्यविनिश्चयम् ॥ २०

भीष्म उवाच ।

नहुषस्य वचः श्रुत्वा गविजातः प्रतापवान् ।  
उवाच हर्षयन्सर्वानमात्यान्पार्थिवं च तम् ॥ २१  
अनर्षेया महाराज द्विजा वर्णमहत्तमाः ।  
गावश्च पृथिवीपाल गौर्मूल्यं परिकल्प्यताम् ॥ २२  
नहुषस्तु ततः श्रुत्वा महर्षेर्वचनं नृप ।  
हर्षेण महता युक्तः सहामात्यपुरोहितः ॥ २३

अभिगम्य भृगोः पुत्रं च्यवनं संशितव्रतम् ।  
इदं प्रोवाच नृपते वाचा संतर्पयन्निव ॥ २४  
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ विप्रर्षे गवा क्रीतोऽसि भार्गव ।  
एतन्मूल्यमहं मन्ये तव धर्मभृतां वर ॥ २५

च्यवन उवाच ।

उत्तिष्ठाम्येष राजेन्द्र सम्यक्क्रीतोऽस्मि तेऽनघ ।  
गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किञ्चिदिहाच्युत ॥ २६  
कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव ।  
गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं शिवम् ॥ २७  
गावो लक्ष्म्याः सदा मूलं गोषु पाप्मा न विद्यते ।  
अन्नमेव सदा गावो देवानां परमं हविः ॥ २८  
स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ ।  
गावो यज्ञप्रणेज्यो वै तथा यज्ञस्य ता मुखम् ॥ २९  
अमृतं ह्यक्षयं दिव्यं क्षरन्ति च वहन्ति च ।  
अमृतायतन चैताः सर्वलोकनमस्कृताः ॥ ३०  
तेजसा वपुषा चैव गावो वह्निसमा भुवि ।  
गावो हि सुमहत्तेजः प्राणिना च सुखप्रदाः ॥ ३१  
निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम् ।  
विराजयति तं देशं पाप्मानं चापकर्षति ॥ ३२  
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः ।  
गावः कामदुघा देव्यो नान्यत्किञ्चित्परं स्मृतम् ॥  
इत्येतद्गोषु मे प्रोक्तं माहात्म्यं पार्थिवर्षभ ।  
गुणैकदेशवचनं शक्यं पारायणं न तु ॥ ३४

निषादा ऊचुः ।

दर्शनं कथनं चैव सहास्माभिः कृतं मुने ।  
सतां सप्तपदं मित्रं प्रसादं नः कुरु प्रभो ॥ ३५  
हवींषि सर्वाणि यथा ह्युपभुङ्क्ते हुताशनः ।  
एवं त्वमपि धर्मात्मन्पुरुषाग्निः प्रतापवान् ॥ ३६  
प्रसादयामहे विद्वन्भवन्तं प्रणता वयम् ।  
अनुग्रहार्थमस्माकमियं गौः प्रतिगृह्यताम् ॥ ३७

च्यवन उवाच ।

कृपणस्य च यच्चक्षुर्मुनेराशीविषस्य च ।  
नरं समूलं दहति कक्षमग्निरिव ज्वलन् ॥ ३८  
प्रतिगृह्णामि वो धेनुं कैवर्ता मुक्तकिल्बिषाः ।  
दिवं गच्छत वै क्षिप्रं मत्स्यैर्जालोद्धृतैः सह ॥ ३९

भीष्म उवाच ।

ततस्तस्य प्रसादात्ते महर्षेर्भावितात्मनः ।  
निषादास्तेन वाक्येन सह मत्स्यैर्दिवं ययुः ॥ ४०  
ततः स राजा नहुषो विस्मिनः प्रेक्ष्य धीवरान् ।  
आरोहमाणांस्त्रिदिवं मत्स्यांश्च भरतर्षभ ॥ ४१  
ततस्तौ गविजश्चैव च्यवनश्च भृगूद्वहः ।  
वराभ्यामनुरूपाभ्यां छन्दयामासतुर्नृपम् ॥ ४२  
ततो राजा महावीर्यो नहुषः पृथिवीपतिः ।  
परमित्यब्रवीत्प्रीतस्तदा भरतसत्तम ॥ ४३  
ततो जग्राह धर्मे स स्थितिमिन्द्रनिभो नृपः ।  
तथेति चोदितः प्रीतस्तावृषी प्रत्यपूजयत् ॥ ४४  
समाप्तदीक्षश्च्यवनस्ततोऽगच्छत्स्वमाश्रमम् ।  
गविजश्च महातेजाः स्वमाश्रमपदं ययौ ॥ ४५  
निषादाश्च दिवं जग्मुस्ते च मत्स्या जनाधिप ।  
नहुषोऽपि वरं लब्ध्वा प्रविवेश पुरं स्वकम् ॥ ४६  
एतत्ते कथितं तात यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।  
दर्शने यादृशः स्नेहः संवासे च युधिष्ठिर ॥ ४७  
महाभाग्यं गवां चैव तथा धर्मविनिश्चयम् ।  
किं भूयः कथ्यतां वीर किं ते हृदि विवक्षितम् ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

५२

युधिष्ठिर उवाच ।

संशयो मे महाप्राज्ञ सुमहान्सागरोपमः ।  
तन्मे शृणु महाबाहो श्रुत्वा चाख्यातुमर्हसि ॥ १

कौतूहलं मे सुमहजामदभ्यं प्रति प्रभो ।  
 रामं धर्मभृतां श्रेष्ठं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २  
 कथमेष समुत्पन्नो रामः सत्यपराक्रमः ।  
 कथं ब्रह्मर्षिवशे च क्षत्रधर्मा व्यजायत ॥ ३  
 तदस्य संभवं राजन्निखिलेनानुकीर्तय ।  
 कौशिकाच्च कथं वंशाक्षत्राद्वै ब्राह्मणोऽभवत् ॥ ४  
 अहो प्रभावः सुमहानासीद्वै सुमहात्मनोः ।  
 रामस्य च नरव्याघ्र विश्वामित्रस्य चैव ह ॥ ५  
 कथं पुत्रानतिक्रम्य तेषां नष्टृष्वथाभवत् ।  
 एष दोषः सुतान्हित्वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ६

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 ऋग्वनस्य च संवादं कुशिकस्य च भारत ॥ ७  
 एतं दोषं पुरा दृष्ट्वा भार्गवश्च्यवनस्तदा ।  
 आगामिनं महाबुद्धिः स्ववशे मुनिपुंगवः ॥ ८  
 संचिन्त्य मनसा सर्वं गुणदोषबलाबलम् ।  
 दग्धुकामः कुलं सर्वं कुशिकानां तपोधनः ॥ ९  
 च्यवनस्तमनुप्राप्य कुशिकं वाक्यमब्रवीत् ।  
 वस्तुमिच्छा समुत्पन्ना त्वया सह ममानघ ॥ १०

कुशिक उवाच ।

भगवन्सहधर्मोऽयं पण्डितैरिह धार्यते ।  
 प्रदानकाले कन्यानामुच्यते च सदा बुधैः ॥ ११  
 यत्तु तावदतिक्रान्तं धर्मद्वारं तपोधन ।  
 तत्कार्यं प्रकरिष्यामि तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ १२

भीष्म उवाच ।

अथासनमुपादाय च्यवनस्य महामुनेः ।  
 कुशिको भार्यया सार्धमाजगाम यतो मुनिः ॥ १३  
 प्रगृह्य राजा भृङ्गारं पाद्यमस्मै न्यवेदयत् ।  
 कारयामास सर्वांश्च क्रियास्तस्य महात्मनः ॥ १४  
 ततः स राजा च्यवनं मधुपर्कं यथाविधि ।

प्रत्यग्राह्यद्वयग्रो महात्मा नियतव्रतः ॥ १५  
 सत्कृत्य स तथा विप्रमिदं वचनमब्रवीत् ।  
 भगवन्परवन्तौ स्त्रो ब्रूहि किं करवावहे ॥ १६  
 यदि राज्यं यदि धनं यदि गाः संशितव्रत ।  
 यज्ञदानानि च तथा ब्रूहि सर्वं ददामि ते ॥ १७  
 इदं गृहमिदं राज्यमिदं धर्मासनं च ते ।  
 राजा त्वमसि शाश्वतं भृत्योऽहं परवांस्त्वयि ॥ १८  
 एवमुक्ते ततो वाक्ये च्यवनो भार्गवस्तदा ।  
 कुशिकं प्रत्युवाचेदं मुदा परमया युतः ॥ १९  
 न राज्यं कामये राजन्न धनं न च योषितः ।  
 न च गा न च ते देशान्न यज्ञाञ्छ्रयतामिदम् ॥ २०  
 नियमं कंचिदारप्स्ये युवयोर्यदि रोचते ।  
 परिचर्योऽस्मि यत्ताभ्यां युवाभ्यामविशङ्कया ॥ २१  
 एवमुक्ते तदा तेन दंपती तौ जहर्षतुः ।  
 प्रत्यव्रतां च तमृषिमेवमस्त्विति भारत ॥ २२  
 अथ तं कुशिको दृष्टः प्रावेशयदनुत्तमम् ।  
 गृहोद्देशं ततस्तत्र दर्शनीयमदर्शयत् ॥ २३  
 इयं शय्या भगवतो यथाकाममिहोष्यताम् ।  
 प्रयतिष्यावहे प्रीतिमाहर्तुं ते तपोधन ॥ २४  
 अथ सूर्योऽतिचक्राम तेषां संवदतां तथा ।  
 अथर्षिश्चोदयामास पानमन्नं तथैव च ॥ २५  
 तमपृच्छत्ततो राजा कुशिकः प्रणतस्तदा ।  
 किमन्नजातमिष्टं ते किमुपस्थापयाम्यहम् ॥ २६  
 ततः स परया प्रीत्या प्रत्युवाच जनाधिपम् ।  
 औपपत्तिकमाहारं प्रयच्छस्वेति भारत ॥ २७  
 तद्वचः पूजयित्वा तु तथेत्याह स पार्थिवः ।  
 यथोपपन्नं चाहारं तस्मै प्रादाज्जनाधिपः ॥ २८  
 ततः स भगवान्भुक्त्वा दंपती प्राह धर्मवित् ।  
 स्वमुमिच्छाम्यहं निद्रा बाधते मामिति प्रभो ॥ २९  
 ततः शय्यागृहं प्राप्य भगवानृषिसत्तमः ।



संविवेश नरेन्द्रस्तु सपत्नीकः स्थितोऽभवत् ॥ ३०  
 न प्रबोध्योऽस्मि संसुप्त इत्युवाचाथ भार्गवः ।  
 संवाहितव्यौ पादौ मे जागर्तव्यं च वां निशि ॥ ३१  
 अविशङ्कश्च कुशिकस्तथेत्याह स धर्मवित् ।  
 न प्रबोधयतां तं च तौ तदा रजनीक्षये ॥ ३२  
 यथादेशं महर्षेस्तु शुश्रूषापरमौ तदा ।  
 बभूवतुर्महाराज प्रयतावथ दंपती ॥ ३३  
 ततः स भगवान्विप्रः समादिश्य नराधिपम् ।  
 सुष्वापैकेन पार्श्वेन दिवसानेकविंशतिम् ॥ ३४  
 स तु राजा निराहारः सभार्यः कुरुनन्दन ।  
 पर्युपासत तं हृष्टश्च्यवनाराधने रतः ॥ ३५  
 भार्गवस्तु समुत्तस्थौ स्वयमेव तपोधनः ।  
 अकिञ्चिदुक्त्वा तु गृहान्निश्चक्राम महातपाः ॥ ३६  
 तमन्वगच्छतां तौ तु क्षुधितौ श्रमकर्षितौ ।  
 भार्यापती मुनिश्रेष्ठो न च ताववलोकयत् ॥ ३७  
 तयोस्तु प्रेक्षतोरेव भार्गवाणां कुलोद्बहः ।  
 अन्तर्हितोऽभूद्राजेन्द्र ततो राजापतत्क्षितौ ॥ ३८  
 स मुहूर्तं समाश्रय्य सह देव्या महाद्युतिः ।  
 पुनरन्वेषणे यत्नमकरोत्परमं तदा ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

५३

युधिष्ठिर उवाच ।

तस्मिन्नन्तर्हिते विप्रे राजा किमकरोत्तदा ।  
 भार्या चास्य महाभागा तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १  
 भीष्म उवाच ।  
 अदृष्ट्वा स महीपालस्तमृषि सह भार्यया ।  
 परिश्रान्तो निवृत्ते व्रीडितो नष्टचेतनः ॥ २  
 स प्रविश्य पुरीं दीनो नाभ्यभाषत किञ्चन ।  
 तदेव चिन्तयामास च्यवनस्य विचेष्टितम् ॥ ३

अथ शून्येन मनसा प्रविवेश गृहं नृपः ।  
 ददर्श शयने तस्मिञ्शयानं भृगुनन्दनम् ॥ ४  
 विस्मितौ तौ तु दृष्ट्वा तं तदाश्चर्यं विचिन्त्य च ।  
 दर्शनात्तस्य च मुनेर्विश्रान्तौ संवभूवतुः ॥ ५  
 यथास्थानं तु तौ स्थित्वा भूयस्तं संववाहतुः ।  
 अथापरेण पार्श्वेन सुष्वाप स महामुनिः ॥ ६  
 तेनैव च स कालेन प्रत्यबुध्यत वीर्यवान् ।  
 न च तौ चक्रतुः किञ्चिद्विकारं भयशङ्कितौ ॥ ७  
 प्रतिबुद्धस्तु स मुनिस्तौ प्रोवाच विशां पते ।  
 तैलाभ्यङ्गो दीयतां मे स्नास्येऽहमिति भारत ॥ ८  
 तथेति तौ प्रतिश्रुत्य क्षुधितौ श्रमकर्षितौ ।  
 शतपाकेन तैलेन महार्हेणोपतस्थतुः ॥ ९  
 ततः सुखासीनमृषि वाग्यतौ संववाहतुः ।  
 न च पर्याप्तमित्याह भार्गवः सुमहातपाः ॥ १०  
 यदा तौ निर्विकारौ तु लक्षयामास भार्गवः ।  
 तत उत्थाय सहसा स्नानशालां विवेश ह ।  
 क्लृप्तमेव तु तत्रासीत्स्नानीयं पार्थिवोचितम् ॥ ११  
 असत्कृत्य तु तत्सर्वं तत्रैवान्तरधीयत ।  
 स मुनिः पुनरेवाथ नृपतेः पश्यतस्तदा ।  
 नासूयां चक्रतुस्तौ च दंपती भरतर्षभ ॥ १२  
 अथ स्नातः स भगवान्सिंहासनगतः प्रभुः ।  
 दर्शयामास कुशिकं सभार्यं भृगुनन्दनः ॥ १३  
 संदृष्टवदनो राजा सभार्यः कुशिको मुनिम् ।  
 सिद्धमन्नमिति प्रह्वो निर्विकारो न्यवेदयत् ॥ १४  
 आनीयतामिति मुनिस्तं चोवाच नराधिपम् ।  
 राजा च समुपाजहे तदन्नं सह भार्यया ॥ १५  
 मांसप्रकारान्विविधाञ्छाकानि विविधानि च ।  
 वेसवारविकारांश्च पानकानि लघूनि च ॥ १६  
 रसालापूपकांश्चित्रान्मोदकानथ षाडवान् ।  
 रसान्नानाप्रकारांश्च वन्यं च मुनिभोजनम् ॥ १७

फलानि च विचित्राणि तथा भोज्यानि भूरिशः ।  
 बदरेद्भुदकाश्मर्यभल्लतकवटानि च ॥ १८  
 गृहस्थानां च यद्भोज्यं यच्चापि वनवासिनाम् ।  
 सर्वमाहारयामास राजा शापभयान्मुनेः ॥ १९  
 अथ सर्वमुपन्यस्तमग्रतश्च्यवनस्य तत् ।  
 ततः सर्वं समानीय तच्च शय्यासनं मुनिः ॥ २०  
 वस्त्रैः शुभैरवच्छाद्य भोजनोपस्करैः सह ।  
 सर्वमादीपयामास च्यवनो भृगुनन्दनः ॥ २१  
 न च तौ चक्रतुः कोपं दंपती सुमहाव्रतौ ।  
 तयोः संप्रेक्षतोरेव पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥ २२  
 तत्रैव च स राजर्विस्तस्थौ तां रजनीं तदा ।  
 सभार्यो वाग्यतः श्रीमान्न च तं कोप आविशत् ॥  
 नित्यं संस्मृतमन्नं तु विविधं राजवेश्मनि ।  
 शयनानि च मुख्यानि परिपेकाश्च पुष्कलाः ॥ २४  
 वस्त्रं च विविधाकारमभवत्समुपार्जितम् ।  
 न शशक ततो द्रष्टुमन्तरं च्यवनस्तदा ॥ २५  
 पुनरेव च विप्रर्षिः प्रोवाच कुशिकं नृपम् ।  
 सभार्यो मां रथेनाशु वह यत्र ब्रवीम्यहम् ॥ २६  
 तथेति च प्राह नृपो निर्विशङ्कस्तपोधनम् ।  
 क्रीडारथोऽस्तु भगवन्नृत सांप्रामिको रथः ॥ २७  
 इत्युक्तः स मुनिस्तेन राज्ञा हृष्टेन तद्वचः ।  
 च्यवनः प्रत्युवाचेदं हृष्टः परपुरंजयम् ॥ २८  
 सज्जीकुरु रथं क्षिप्रं यस्ते सांप्रामिको मतः ।  
 सायुधः सपताकश्च सशक्तिः कणयष्टिमान् ॥ २९  
 किङ्किणीशतनिर्घोषो युक्तस्तोमरकल्पनैः ।  
 गदाखड्गनिबद्धश्च परमेषुशतान्वितः ॥ ३०  
 ततः स तं तथेत्युक्त्वा कल्पयित्वा महारथम् ।  
 भार्या वामे धुरि तदा चात्मानं दक्षिणे तथा ॥ ३१  
 त्रिदंष्ट्रं वज्रसूच्यग्रं प्रतोदं तत्र चादधत् ।  
 सर्वमेतत्ततो दत्त्वा नृपो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ३२

भगवन्क रथो यातु ब्रवीतु भृगुनन्दनः ।  
 यत्र वक्ष्यसि विप्रर्षे तत्र यास्यति ते रथः ॥ ३३  
 एकमुक्तस्तु भगवान्प्रत्युवाचाथ तं नृपम् ।  
 इतःप्रभृति यातव्यं पदकं पदकं शनैः ॥ ३४  
 श्रमो मम यथा न स्यात्तथा मे छन्दचारिणौ ।  
 सुखं चैवास्मि वोढव्यो जनः सर्वश्च पश्यतु ॥ ३५  
 नोत्सार्यः पथिकः कश्चित्तेभ्यो दास्याम्यहं वसु ।  
 ब्राह्मणेभ्यश्च ये कामानर्थयिष्यन्ति मां पथि ॥ ३६  
 सर्वं दास्याम्यशेषेण धनं रत्नानि चैव हि ।  
 क्रियतां निखिलेनैतन्मा विचारय पार्थिव ॥ ३७  
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा भृत्यानथाब्रवीत् ।  
 यद्यद्रूयान्मुनिस्तत्तत्सर्वं देयमशङ्कितैः ॥ ३८  
 ततो रत्नान्यनेकानि स्त्रियो युग्यमजाविकम् ।  
 कृताकृतं च कनकं गजेन्द्राश्चाचलोपमाः ॥ ३९  
 अन्वगच्छन्त तमृषिं राजामात्याश्च सर्वशः ।  
 हाहाभूतं च तत्सर्वमासीन्नगरमार्तिमत् ॥ ४०  
 तौ तीक्ष्णाग्नेण सहसा प्रतोदेन प्रचोदितौ ।  
 पृष्ठे विद्वौ कटे चैव निर्विकारौ तमूहतुः ॥ ४१  
 वेपमानौ निराहारौ पञ्चाशद्रात्रकर्षितौ ।  
 कथंचिद्दूहतुर्वीरौ दंपती तं रथोत्तमम् ॥ ४२  
 बहुशो भृशविद्वौ तौ क्षरमाणौ क्षतोद्भवम् ।  
 ददृशाते महाराज पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४३  
 तौ दृष्ट्वा पौरवर्गस्तु भृशं शोकपरायणः ।  
 अभिशापभयात्रस्तो न च किंचिदुवाच ह ॥ ४४  
 द्वन्द्वशश्चाश्रुवन्सर्वे पश्यध्वं तपसो बलम् ।  
 क्रुद्धा अपि मुनिश्रेष्ठं वीक्षितुं नैव शक्नुमः ॥ ४५  
 अहो भगवतो वीर्यं महर्षेर्भावितात्मनः ।  
 राज्ञश्चापि सभार्यस्य धैर्यं पश्यत यादृशम् ॥ ४६  
 श्रान्तावपि हि कृच्छ्रेण रथमेतं समूहतुः ।  
 न चैतयोर्विकारं वै ददर्श भृगुनन्दनः ॥ ४७

भीष्म उवाच ।

ततः स निर्विकारौ तौ दृष्ट्वा भृगुकुलोद्बहः ।  
 वसु विश्राणयामास यथा वैश्रवणस्तथा ॥ ४८  
 तत्रापि राजा प्रीतात्मा यथाज्ञप्तमथाकरोत् ।  
 ततोऽस्य भगवान्प्रीतो बभूव मुनिसत्तमः ॥ ४९  
 अवतीर्य रथश्रेष्ठादंपती तौ मुमोच ह ।  
 विमोच्य चैतौ विधिवत्ततो वाक्यमुवाच ह ॥ ५०  
 स्निग्धगम्भीरया वाचा भार्गवः सुप्रसन्नया ।  
 ददानि वां वरं श्रेष्ठं तद्भूतामिति भारत ॥ ५१  
 सुकुमारौ च तौ विद्वान्कराभ्यां मुनिसत्तमः ।  
 पस्पशामृतकल्पाभ्या स्नेहाद्वरतसत्तम ॥ ५२  
 अथाब्रवीन्नृपो वाक्यं श्रमो नास्त्यावयोरिह ।  
 विश्रान्तौ स्वः प्रभावात्ते ध्यानेनैवेति भार्गव ॥ ५३  
 अथ तौ भगवान्प्राह प्रहृष्टश्चयवनस्तदा ।  
 न वृथा व्याहृतं पूर्वं यन्मया तद्भविष्यति ॥ ५४  
 रमणीयः समुदेशो गङ्गातीरमिदं शुभम् ।  
 कंचित्कालं व्रतपरो निवत्स्यामीह पार्थिव ॥ ५५  
 गम्यतां स्वपुरं पुत्र विश्रान्तः पुनरेष्यसि ।  
 इहस्थं मां सभार्यस्त्व द्रष्टासि श्रो नराधिप ॥ ५६  
 न च मन्युस्त्वया कार्यः श्रेयस्ते समुपस्थितम् ।  
 यत्काङ्क्षितं हृदिस्थं ते तत्सर्वं संभविष्यति ॥ ५७  
 इत्येवमुक्तः कुशिकः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।  
 प्रोवाच मुनिशार्दूलमिदं वचनमर्थवत् ॥ ५८  
 न मे मन्युर्महाभाग पूतोऽस्मि भगवंस्त्वया ।  
 संवृत्तौ यौवनस्थौ स्त्रो वपुष्मन्तौ बलान्वितौ ॥ ५९  
 प्रतोदेन व्रणा ये मे सभार्यस्य कृतास्त्वया ।  
 तान्न पश्यामि गात्रेषु स्वस्थोऽस्मि सह भार्यया ॥  
 इमां च देवीं पश्यामि मुने दिव्याप्सरोपमाम् ।  
 श्रिया परमया युक्तां यथादृष्टां मया पुरा ॥ ६१  
 तव प्रसादात्संवृत्तमिदं सर्वं महामुने ।

नैतच्चित्रं तु भगवंस्त्वयि सत्यपराक्रम ॥ ६२  
 इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं चयवनः कुशिकं तदा ।  
 आगच्छेथाः सभार्यश्च त्वभिहेति नराधिप ॥ ६३  
 इत्युक्तः समनुज्ञातो राजर्षिरभिवाद्य तम् ।  
 प्रययौ वपुषा युक्तो नगरं देवराजवत् ॥ ६४  
 तत एनमुपाजग्मुर्मात्याः सपुरोहिताः ।  
 बलस्था गणिकायुक्ताः सर्वाः प्रकृतयस्तथा ॥ ६५  
 तैर्वृतः कुशिको राजा श्रिया परमया ज्वलन् ।  
 प्रविवेश पुरं हृष्टः पूज्यमानोऽथ बन्दिभिः ॥ ६६  
 ततः प्रविश्य नगरं कृत्वा सर्वाङ्गिक्रियाः ।  
 भुक्त्वा सभार्यो रजनीमुवास स महीपतिः ॥ ६७  
 ततस्तु तौ नवमभिबीक्ष्य यौवनं  
 परस्परं विगतजराविवामरौ ।  
 ननन्दतुः शयनगतौ वपुर्धरौ  
 श्रिया युतौ द्विजवरदत्तया तया ॥ ६८  
 स चाप्यृषिर्भृगुकुलकीर्तिवर्धन-  
 स्तपोधनो वनमभिराममृद्धिमत् ।  
 मनीषया बहुविधरत्नभूषितं  
 ससर्ज यन्नास्ति शतक्रतोरपि ॥ ६९  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

५४

भीष्म उवाच ।

ततः स राजा रात्र्यन्ते प्रतिबुद्धो महामनाः ।  
 कृतपूर्वाङ्गिकः प्रायात्सभार्यस्तद्वनं प्रति ॥ १  
 ततो ददर्श नृपतिः प्रासादं सर्वकाञ्चनम् ।  
 मणिस्तम्भसहस्राढ्यं गन्धर्वनगरोपमम् ।  
 तत्र दिव्यानभिप्रायान्ददर्श कुशिकस्तदा ॥ २  
 पर्वतान् रम्यसानून् च नलिनीश्च सपङ्कजाः ।  
 चित्रशालाश्च विविधास्तोरणानि च भारत ।

शाद्वलोपचितां भूमिं तथा काञ्चनकुट्टिमाम् ॥ ३  
 सहकारान्प्रफुल्लंश्च केतकोद्दालकान्धवान् ।  
 अशोकान्मुचुकुन्दांश्च फुल्लंश्चैवातिमुत्तकान् ॥ ४  
 चम्पकांस्तिलकान्भव्यान्पनसान्वज्जुलानपि ।  
 पुष्पितान्कर्णिकारांश्च तत्र तत्र ददर्श ह ॥ ५  
 श्यामां वारणपुष्पीं च तथाष्टापदिकां लताम् ।  
 तत्र तत्र परिहृता ददर्श स महीपतिः ॥ ६  
 वृक्षान्पद्मोत्पलधरान्सर्वतुङ्गसुमांस्तथा ।  
 विमानच्छन्दकांश्चापि प्रासादान्पद्मसंनिभान् ॥ ७  
 शीतलानि च तोयानि क्वचिदुष्णानि भारत ।  
 आसनानि विचित्राणि शयनप्रवराणि च ॥ ८  
 पर्यङ्कान्सर्वसौवर्णान्पराध्यास्तरणास्तृतान् ।  
 भक्ष्यभोज्यमनन्तं च तत्र तत्रोपकल्पितम् ॥ ९  
 वाणीवादाञ्जुकांश्चापि शारिकाभृङ्गराजकान् ।  
 कोकिलाञ्छतपत्रांश्च कोयष्टिमककुक्कुटान् ॥ १०  
 मयूराङ्कुक्कुटांश्चापि पुत्रकाञ्जीवजीवकान् ।  
 चकोरान्वानरान्हंसान्सारसांश्चक्रसाह्वयान् ॥ ११  
 समन्ततः प्रणदितान्ददर्श सुमनोहरान् ।  
 क्वचिदप्सरसां संचान्गान्धर्वाणां च पार्थिव ॥ १२  
 कान्ताभिरपरांस्तत्र परिष्वक्तान्ददर्श ह ।  
 न ददर्श च तान्भूयो ददर्श च पुनर्नृपः ॥ १३  
 गीतध्वनिं सुमधुरं तथैवाध्ययनध्वनिम् ।  
 हंसान्सुमधुरांश्चापि तत्र शुश्राव पार्थिवः ॥ १४  
 तं दृष्ट्वात्यद्भुतं राजा मनसाचिन्तयत्तदा ।  
 स्वप्नोऽयं चित्तविभ्रंश उताहो सत्यमेव तु ॥ १५  
 अहो सह शरीरेण प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम् ।  
 उत्तरान्वा कुरुन्पुण्यनथ वाप्यमरावतीम् ॥ १६  
 किं त्विदं महदाश्चर्यं संपश्यामीत्यचिन्तयत् ।  
 एवं संचिन्तयन्नेव ददर्श मुनिपुंगवम् ॥ १७  
 तस्मिन्विमाने सौवर्णे मणिस्तम्भसमाकुले ।

महार्हे शयने दिव्ये शयानं भृगुनन्दनम् ॥ १८  
 तमभ्ययात्प्रहर्षेण नरेन्द्रः सह भार्यया ।  
 अन्तर्हितस्ततो भूयश्चयवनः शयनं च तत् ॥ १९  
 ततोऽन्यस्मिन्वनोद्देशे पुनरेव ददर्श तम् ।  
 कौश्यां वृष्यां समासीनं जपमानं महाव्रतम् ।  
 एवं योगबलाद्विप्रो मोहयामास पार्थिवम् ॥ २०  
 क्षणेन तद्वनं चैव ते चैवाप्सरसां गणाः ।  
 गन्धर्वाः पादपाञ्चैव सर्वमन्तरधीयत ॥ २१  
 निःशब्दमभवच्चापि गङ्गाकूलं पुनर्नृप ।  
 कुशवल्मीकभूयिष्ठं बभूव च यथा पुरा ॥ २२  
 ततः स राजा कुशिकः सभार्यस्तेन कर्मणा ।  
 विस्मयं परमं प्राप्तस्तदृष्ट्वा महदद्भुतम् ॥ २३  
 ततः प्रोवाच कुशिको भार्यां हर्षसमन्वितः ।  
 पश्य भद्रे यथा भावाश्चित्रा दृष्टाः सुदुर्लभाः ॥ २४  
 प्रसादाद्भृगुमुख्यस्य किमन्यत्र तपोबलात् ।  
 तपसा तदवाप्यं हि यन्न शक्य मनोरथैः ॥ २५  
 त्रैलोक्यराज्यादपि हि तप एव विशिष्यते ।  
 तपसा हि सुतप्तेन क्रीडत्येष तपोधनः ॥ २६  
 अहो प्रभावो ब्रह्मर्षेःश्रयवनस्य महात्मनः ।  
 इच्छन्नेष तपोवीर्यादन्याल्लोकान्सृजेदपि ॥ २७  
 ब्राह्मणा एव जायेरन्पुण्यवाग्बुद्धिकर्मणः ।  
 उत्सहेदिह कर्तुं हि कोऽन्यो वै च्यवनादृते ॥ २८  
 ब्राह्मण्यं दुर्लभं लोके राज्यं हि सुलभं नरैः ।  
 ब्राह्मणस्य प्रभावाद्धि रथे युक्तौ स्वधुर्यवत् ॥ २९  
 इत्येवं चिन्तयानः स विदितश्चयवनस्य वै ।  
 संप्रेक्ष्योवाच स नृपं क्षिप्रमागम्यतामिति ॥ ३०  
 इत्युक्तः सहभार्यस्तमभ्यगच्छन्महामुनिम् ।  
 शिरसा वन्दनीयं तमवन्दत स पार्थिवः ॥ ३१  
 तस्याशिषः प्रयुज्याथ स मुनिस्तं नराधिपम् ।  
 निषीदेत्यब्रवीद्धीमान्सान्वयन्पुरुषर्षभ ॥ ३२

ततः प्रकृतिमापन्नो भार्गवो नृपते नृपम् ।  
 उवाच श्लक्ष्णया वाचा तर्पयन्निव भारत ॥ ३३  
 राजन्सम्यग्जितानीह पञ्च पञ्चसु यत्त्वया ।  
 मनःषष्ठानीन्द्रियाणि कृच्छ्रान्मुक्तोऽसि तेन वै ॥  
 सम्यगाराधितः पुत्र त्वयाहं वदतां वर ।  
 न हि ते वृजिनं किञ्चित्सुसूक्ष्ममपि विद्यते ॥ ३५  
 अनुजानीहि मां राजन्गमिष्यामि यथागतम् ।  
 प्रीतोऽस्मि तव राजेन्द्र वरश्च प्रतिगृह्यताम् ॥ ३६

कुशिक उवाच ।

अग्निमध्यगतेनेदं भगवन्सन्निधौ मया ।  
 वर्तितं भृगुशार्दूल यत्र दग्धोऽस्मि तद्ब्रु ॥ ३७  
 एष एव वरो मुख्यः प्राप्तो मे भृगुनन्दन ।  
 यत्प्रीतोऽसि समाचारात्कुलं पूतं ममानघ ॥ ३८  
 एष मेऽनुग्रहो विप्र जीविते च प्रयोजनम् ।  
 एतद्राज्यफलं चैव तपश्चैतत्परं मम ॥ ३९  
 यदि तु प्रीतिमान्विप्र मयि त्वं भृगुनन्दन ।  
 अस्ति मे संशयः कश्चित्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

५५

च्यवन उवाच ।

वरश्च गृह्यतां मत्तो यश्च ते संशयो हृदि ।  
 तं च ब्रूहि नरश्रेष्ठ सर्वं संपादयामि ते ॥ १

कुशिक उवाच ।

यदि प्रीतोऽसि भगवंस्ततो मे वद भार्गव ।  
 कारणं श्रोतुमिच्छामि मद्गृहे वासकारितम् ॥ २  
 शयनं चैकपाश्वेन दिवसानेकविंशतिम् ।  
 अकिञ्चिदुक्त्वा गमनं बहिश्च मुनिपुंगव ॥ ३  
 अन्तर्धानमकस्माच्च पुनरेव च दर्शनम् ।  
 पुनश्च शयनं विप्र दिवसानेकविंशतिम् ॥ ४

तैलाभ्यक्तस्य गमनं भोजनं च गृहे मम ।  
 समुपानीय विविधं यद्गन्धं जातवेदसा ।  
 निर्याणं च रथेनाशु सहसा यत्कृतं त्वया ॥ ५  
 धनानां च विसर्गस्य वनस्यापि च दर्शनम् ।  
 प्रासादानां बहूनां च काञ्चनानां महामुने ॥ ६  
 मणिविद्रुमपादानां पर्यङ्कानां च दर्शनम् ।  
 पुनश्चादर्शनं तस्य श्रोतुमिच्छामि कारणम् ॥ ७  
 अतीव ह्यत्र मुह्यामि चिन्तयानो दिवानिशम् ।  
 न चैवान्नाधिगच्छामि सर्वस्यास्य विनिश्चयम् ।  
 एतदिच्छामि कात्स्न्येन सत्यं श्रोतुं तपोधन ॥ ८

च्यवन उवाच ।

शृणु सर्वमशेषेण यदिदं येन हेतुना ।  
 न हि शक्यमनाख्यातुमेव पृष्टेन पार्थिव ॥ ९  
 पितामहस्य वदतः पुरा देवसमागमे ।  
 श्रुतवानस्मि यद्राजंस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ १०  
 ब्रह्मक्षत्रविरोधेन भविता कुलसंकरः ।  
 पौत्रस्ते भविता राजंस्तेजोवीर्यसमन्वितः ॥ ११  
 ततः स्वकुलरक्षार्थमहं त्वा समुपागमम् ।  
 चिकीर्षन्कुशिकोच्छेदं सदधिष्ठुः कुलं तव ॥ १२  
 ततोऽहमागम्य पुरा त्वामबोचं महीपते ।  
 नियमं कञ्चिदारप्स्ये शुश्रूषा क्रियतामिति ॥ १३  
 न च ते दुष्कृतं किञ्चिदहमासादयं गृहे ।  
 तेन जीवसि राजर्षे न भवेथास्ततोऽन्यथा ॥ १४  
 एतां बुद्धिं समास्थाय दिवसानेकविंशतिम् ।  
 सुप्तोऽस्मि यदि मां कश्चिद्बोधयेदिति पार्थिव ॥ १५  
 यदा त्वया सभार्येण संसुप्तो न प्रबोधितः ।  
 अहं तदैव ते प्रीतो मनसा राजसत्तम ॥ १६  
 उत्थाय चास्मि निष्क्रान्तो यदि मां त्वं महीपते ।  
 पृच्छेः क्व यास्यसीत्येवं शपेय त्वामिति प्रभो ॥  
 अन्तर्हितश्चास्मि पुनः पुनरेव च ते गृहे ।

योगमास्थाय संविष्टो दिवसानेकविंशतिम् ॥ १८  
 क्षुधितो मामसूयेथाः श्रमाद्वेति नराधिप ।  
 एतां बुद्धिं समास्थाय कर्षितौ वां मया क्षुधा ॥ १९  
 न च तेऽभूत्सुसूक्ष्मोऽपि मन्युर्मनसि पार्थिव ।  
 सभार्यस्य नरश्रेष्ठ तेन ते प्रीतिमानहम् ॥ २०  
 भोजनं च समानाय्य यत्तदादीपितं मया ।  
 क्रुध्येथा यदि मात्सर्यादिति तन्मर्षितं च ते ॥ २१  
 ततोऽहं रथमारुह्य त्वामवोचं नराधिप ।  
 सभार्यो मां वहस्वेति तच्च त्वं कृतवांस्तथा ॥ २२  
 भविशङ्को नरपते प्रीतोऽहं चापि तेन ते ।  
 धनोत्सर्गोऽपि च कृते न त्वां क्रोधः प्रधर्षयत् ॥  
 ततः प्रीतेन ते राजन्पुनरेतत्कृतं तव ।  
 सभार्यस्य वनं भूयस्तद्विद्धि मनुजाधिप ॥ २४  
 प्रीत्यर्थं तव चैतन्मे स्वर्गसंदर्शनं कृतम् ।  
 यत्ते वनेऽस्मिन्नृपते दृष्टं दिव्यं निदर्शनम् ॥ २५  
 स्वर्गोद्देशस्त्वया राजन्सशरीरेण पार्थिव ।  
 सुहूर्तमनुभूतोऽसौ सभार्येण नृपोत्तम ॥ २६  
 निदर्शनार्थं तपसो धर्मस्य च नराधिप ।  
 तत्र यासीत्स्पृहा राजस्तच्चापि विदितं मम ॥ २७  
 ब्राह्मण्यं काङ्क्षसे हि त्वं तपश्च पृथिवीपते ।  
 अवमन्य नरेन्द्रत्वं देवेन्द्रत्वं च पार्थिव ॥ २८  
 एवमेतद्यथात्थ त्वं ब्राह्मण्यं तात दुर्लभम् ।  
 ब्राह्मण्ये सति चर्षित्वमृषित्वे च तपस्विता ॥ २९  
 भविष्यत्येष ते कामः कुशिकात्कौशिको द्विजः ।  
 तृतीयं पुरुषं प्राप्य ब्राह्मणत्वं गमिष्यति ॥ ३०  
 वंशस्ते पार्थिवश्रेष्ठ भृगूणामेव तेजसा ।  
 पौत्रस्ते भविता विप्र तपस्वी पावकद्युतिः ॥ ३१  
 यः स देवमनुष्याणां भयमुत्पादयिष्यति ।  
 त्रयाणां चैव लोकानां सत्यमेतद्वीमि ते ॥ ३२  
 वरं गृहाण राजर्षे यस्ते मनसि वर्तते ।

तीर्थयात्रां गमिष्यामि पुरा कालोऽतिवर्तते ॥ ३३  
 कुशिक उवाच ।

एष एव वरो मेऽद्य यत्त्वं प्रीतो महामुने ।  
 भवत्वेतद्यथात्थ त्वं तपः पौत्रे समानघ ।  
 ब्राह्मण्यं मे कुलस्यास्तु भगवन्नेप मे वरः ॥ ३४  
 पुनश्चाख्यातुमिच्छामि भगवन्विस्तरेण वै ।  
 कथमेष्यति विप्रत्वं कुलं मे भृगुनन्दन ।  
 कश्चासौ भविता बन्धुर्मम कश्चापि संमतः ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

५६

च्यवन उवाच ।

अवश्यं कथनीयं मे तवैतन्नरपुंगव ।  
 यदर्थं त्वाहमुच्छेलुं संप्राप्तो मनुजाधिप ॥ १  
 भृगूणां क्षत्रिया याज्या नित्यमेव जनाधिप ।  
 ते च भेदं गमिष्यन्ति दैवयुक्तेन हेतुना ॥ २  
 क्षत्रियाश्च भृगून्सर्वान्वधिष्यन्ति नराधिप ।  
 आ गर्भादिनुकृन्तन्तो दैवदण्डनिपीडिताः ॥ ३  
 तत उत्पत्स्यतेऽस्माकं कुले गोत्रविवर्धनः ।  
 और्वो नाम महातेजा ज्वलनार्कसमद्युतिः ॥ ४  
 स त्रैलोक्यविनाशाय कोपार्थि जनयिष्यति ।  
 महीं सपर्वतवनां यः करिष्यति भस्मसात् ॥ ५  
 कंचित्कालं तु तं वह्निं स एव शमयिष्यति ।  
 समुद्रे वडवावकत्रे प्रक्षिप्य मुनिसत्तमः ॥ ६  
 पुत्रं तस्य महाभागमृचीकं भृगुनन्दनम् ।  
 साक्षात्कृत्स्नो धनुर्वेदः समुपस्थास्यतेऽनघ ॥ ७  
 क्षत्रियाणामभावाय दैवयुक्तेन हेतुना ।  
 स तु तं प्रतिगृह्यैव पुत्रे संक्रामयिष्यति ॥ ८  
 जमदग्नौ महाभागे तपसा भवितात्मनि ।  
 स चापि भृगुशार्दूलस्तं वेदं धारयिष्यति ॥ ९

कुलात्तु तव धर्मात्मन्कन्यां सोऽधिगमिष्यति ।  
 उद्भावनार्थं भवतो वंशस्य नृपसत्तम ॥ १०  
 गाधेर्दुहितरं प्राप्य पौत्री तव महातपाः ।  
 ब्राह्मणं क्षत्रधर्माणं राममुत्पादयिष्यति ॥ ११  
 क्षत्रियं विप्रकर्माणं बृहस्पतिमिवौजसा ।  
 विश्वामित्र तव कुले गाधेः पुत्रं सुधार्मिकम् ।  
 तपसा महता युक्तं प्रदास्यति महाद्युते ॥ १२  
 स्त्रियौ तु कारणं तत्र परिवर्ते भविष्यतः ।  
 पितामहनियोगाद्वै नान्यथैतद्विष्यति ॥ १३  
 तृतीये पुरुषे तुभ्यं ब्राह्मणत्वमुपैष्यति ।  
 भविता त्वं च संबन्धी भृगूणां भावितात्मनाम् ॥

भीष्म उवाच ।

कुशिकस्तु मुनेर्वाक्यं च्यवनस्य महात्मनः ।  
 श्रुत्वा हृष्टोऽभवद्राजा वाक्यं चेदमुवाच ह ।  
 एवमस्त्विति धर्मात्मा तदा भरतसत्तम ॥ १५  
 च्यवनस्तु महातेजाः पुनरेव नराधिपम् ।  
 वरार्थं चोदयामास तमुवाच स पार्थिवः ॥ १६  
 बाढमेवं प्रहीष्यामि कामं त्वत्तो महामुने ।  
 ब्रह्मभूतं कुल मेऽस्तु धर्मे चास्य मनो भवेत् ॥ १७  
 एवमुक्तस्तथेत्येवं प्रत्युक्त्वा च्यवनो मुनिः ।  
 अभ्यनुज्ञाय नृपति तीर्थयात्रां ययौ तदा ॥ १८  
 एतत्ते कथितं सर्वमशेषेण यथा नृप ।  
 भृगूणां कुशिकानां च प्रति संबन्धकारणम् ॥ १९  
 यथोक्तं मुनिना चापि तथा तदभवन्नृप ।  
 जन्म रामस्य च मुनेर्विश्वामित्रस्य चैव ह ॥ २०

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

पट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

५७

युधिष्ठिर उवाच ।

मुह्यामीव निश्मयाद्य चिन्तयानः पुनः पुनः ।

हीनां पार्थिवसंघातैः श्रीमद्भिः पृथिवीमिमाम् ॥ १  
 प्राप्य राज्यानि शतशो मही जित्वापि भारत ।  
 कोटिशः पुरुषान्हत्वा परितप्ये पितामह ॥ २  
 का नु तासां वरस्त्रीणामवस्थाद्य भविष्यति ।  
 या हीनाः पतिभिः पुत्रैर्मातुलैर्भ्रातृभिस्तथा ॥ ३  
 वयं हि तान्गुरुहत्वा ज्ञातींश्च सुहृदोऽपि च ।  
 अशक्तीर्षाः पतिष्यामो नरके नात्र संशयः ॥ ४  
 शरीरं योक्तुमिच्छामि तपसोऽग्रेण भारत ।  
 उपदिष्टमिहैच्छामि तत्त्वतोऽहं विज्ञां पते ॥ ५

वैशंपायन उवाच ।

युधिष्ठिरस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा भीष्मो महामनाः ।  
 परीक्ष्य निपुणं बुद्ध्या युधिष्ठिरमभाषत ॥ ६  
 रहस्यमद्भुतं चैव शृणु वक्ष्यामि यत्त्वयि ।  
 या गतिः प्राप्यते येन प्रेत्यभावेषु भारत ॥ ७  
 तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः ।  
 आयुःप्रकर्षो भोगाश्च लभ्यन्ते तपसा विभो ॥ ८  
 ज्ञानं विज्ञानमारोग्यं रूपं संपत्तयैव च ।  
 सौभाग्यं चैव तपसा प्राप्यते भरतर्षभ ॥ ९  
 धनं प्राप्नोति तपसा मौनं ज्ञानं प्रयच्छति ।  
 उपभोगांस्तु दानेन ब्रह्मचर्येण जीवितम् ॥ १०  
 अहिंसायाः फलं रूपं दीक्षाया जन्म वै कुले ।  
 फलमूलाशिनां राज्यं स्वर्गः पर्णाशिनां भवेत् ॥ ११  
 पयोभक्षो दिवं याति स्नानेन द्रविणाधिकः ।  
 गुरुशुश्रूषया विद्या नित्यश्रद्धेन संततिः ॥ १२  
 गवाह्वयः शाकदीक्षाभिः स्वर्गमाहुस्तृणाशनात् ।  
 स्त्रियस्त्रिषवणस्नानाद्वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् ॥ १३  
 नित्यस्नानी भवेद्दक्षः संध्ये तु द्वे जपद्विजः ।  
 मरुं साधयतो राज्यं नाकपृष्ठमनाशके ॥ १४  
 स्थण्डिले शयमानानां गृहाणि शयनानि च ।  
 चीरवल्कलवासोभिर्वासांस्याभरणानि च ॥ १५

शय्यासनानि यानानि योगयुक्ते तपोधने ।  
 अग्निप्रदेशे नियतं ब्रह्मलोको विधीयते ॥ १६  
 रसानां प्रतिसंहारात्सौभाग्यमिह विन्दति ।  
 आसिषप्रतिसंहारात्प्रजास्यायुष्मती भवेत् ॥ १७  
 उदवासं वसेद्यस्तु स नराधिपतिर्भवेत् ।  
 सत्यवादी नरश्रेष्ठ दैवतैः सह मोदते ॥ १८  
 कीर्तिर्भवति दानेन तथारोग्यमहिंसया ।  
 द्विजशुश्रूषया राज्यं द्विजत्वं वापि पुष्कलम् ॥ १९  
 पानीयस्य प्रदानेन कीर्तिर्भवति शाश्वती ।  
 अन्नपानप्रदानेन तृप्यते कामभोगतः ॥ २०  
 सान्त्वदः सर्वभूतानां सर्वशोकैर्विमुच्यते ।  
 देवशुश्रूषया राज्यं दिव्यं रूपं नियच्छति ॥ २१  
 दीपलोकप्रदानेन चक्षुष्मान्भवते नरः ।  
 प्रेक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधां च विन्दति ॥ २२  
 गन्धमात्यनिवृत्त्या तु कीर्तिर्भवति पुष्कला ।  
 केशश्मश्रून्धारयतामग्न्या भवति संततिः ॥ २३  
 उपवासं च दीक्षां च अभिषेकं च पार्थिव ।  
 कृत्वा द्वादश वर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते ॥ २४  
 दासीदासमलंकारान्क्षेत्राणि च गृहाणि च ।  
 ब्रह्मदेयां सुतां दत्त्वा प्राप्नोति मनुजर्षभ ॥ २५  
 ऋतुभिश्चोपवासैश्च त्रिदिवं याति भारत ।  
 लभते च चिरं स्थानं बलिपुष्पप्रदो नरः ॥ २६  
 सुवर्णशृङ्गैस्तु विभूषितानां  
 गवां सहस्रस्य नरः प्रदाता ।  
 प्राप्नोति पुण्यं दिवि देवलोक-  
 मित्येवमाहुर्मुनिदेवसंघाः ॥ २७  
 प्रयच्छते यः कपिलां सचैलां  
 कांस्योपदोहां कनकाग्रशृङ्गीम् ।  
 तैस्तैर्गुणैः कामदुघास्य भूत्वा  
 नरं प्रदातारमुपैति सा गौः ॥ २८

यावन्ति लोमानि भवन्ति धेन्वा-  
 स्तावत्फलं प्राप्नुते गोप्रदाता ।  
 पुत्रांश्च पौत्रांश्च कुलं च सर्व-  
 मासप्तमं तारयते परत्र ॥ २९  
 सदक्षिणां काञ्चनचारुशृङ्गीं  
 कांस्योपदोहां द्रविणोत्तरीयाम् ।  
 धेनुं तिलानां ददतो द्विजाय  
 लोका वसूनां सुलभा भवन्ति ॥ ३०  
 स्वकर्मभिर्मानवं संनिबद्धं  
 तीव्रान्धकारे नरके पतन्तम् ।  
 महार्णवे नौरिव वायुयुक्ता  
 दानं गवां तारयते परत्र ॥ ३१  
 यो ब्रह्मदेयां तु ददाति कन्यां  
 भूमिप्रदानं च करोति विप्रे ।  
 ददाति चान्नं विधिवच्च यश्च  
 स लोकमाप्नोति पुरंदरस्य ॥ ३२  
 नैवेशिकं सर्वगुणोपपन्नं  
 ददाति वै यस्तु नरो द्विजाय ।  
 स्वाध्यायचारित्रगुणान्विताय  
 तस्यापि लोकाः कुरुषूत्तरेषु ॥ ३३  
 धुर्यप्रदानेन गवां तथाश्चै-  
 र्लोकानवाप्नोति नरो वसूनाम् ।  
 स्वर्गाय चाहुर्हि हिरण्यदानं  
 ततो विशिष्टं कनकप्रदानम् ॥ ३४  
 छत्रप्रदानेन गृहं वरिष्ठं  
 यानं तथोपानहसंप्रदाने ।  
 वस्त्रप्रदानेन फलं सुरूपं  
 गन्धप्रदाने सुरमिर्नरः स्यात् ॥ ३५  
 पुष्पोपगं वाथ फलोपगं वा  
 यः पादपं स्पर्शयते द्विजाय ।



स स्त्रीसमृद्धं बहुरत्नपूर्णं

लभत्ययत्नोपगतं गृहं वै ॥ ३६

भक्षान्नपानीयरसप्रदाता

सर्वानवाप्नोति रसान्प्रकामम् ।

प्रतिश्रयाच्छादनसंप्रदाता

प्राप्नोति तानेव न संशयोऽत्र ॥ ३७

स्रग्धूपगन्धान्यनुलेपनानि

स्नानानि माल्यानि च मानवो यः ।

दद्याद्विजेभ्यः स भवेदरोग-

स्तथाभिरुपश्च नरेन्द्रलोके ॥ ३८

वीजैरशून्यं शयनैरुपेतं

दद्याद्गृहं यः पुरुषो द्विजाय ।

पुण्याभिरामं बहुरत्नपूर्णं

लभत्यधिष्ठानवरं स राजन् ॥ ३९

सुगन्धचित्रास्तरणोपपन्नं

दद्यान्नरो यः शयनं द्विजाय ।

रूपान्वितां पक्षवती मनोज्ञां

भार्यामयत्नोपगतां लभेत्सः ॥ ४०

पितामहस्यानुचरो वीरशायी भवेन्नरः ।

नाधिकं विद्यते तस्मादित्याहुः परमर्षयः ॥ ४१

वैशंपायन उवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रीतात्मा कुरुनन्दनः ।

नाश्रमेऽरोचयद्वासं वीरमार्गाभिकाङ्क्षया ॥ ४२

ततो युधिष्ठिरः प्राह पाण्डवान्भरतर्षभ ।

पितामहस्य यद्वाक्यं तद्वो रोचत्विति प्रभुः ॥ ४३

ततस्तु पाण्डवाः सर्वे द्रौपदी च यशस्विनी ।

युधिष्ठिरस्य तद्वाक्यं बाढमित्यभ्यपूजयन् ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

५८

युधिष्ठिर उवाच ।

यानीमानि बहिर्वेद्यां दानानि परिचक्षते ।

तेभ्यो विशिष्टं किं दानं मतं ते कुरुपुंगव ॥ १

कौतूहलं हि परमं तत्र मे वर्तते प्रभो ।

दातारं दत्तमन्वेति यद्दानं तत्प्रचक्ष्व मे ॥ २

भीष्म उवाच ।

अभयं सर्वभूतेभ्यो व्यसने चाप्यनुग्रहम् ।

यच्चाभिलषितं दद्यात्तृपितायाभियाचते ॥ ३

दत्तं मन्येत यद्वत्त्वा तद्दानं श्रेष्ठमुच्यते ।

दत्तं दातारमन्वेति यद्दानं भरतर्षभ ॥ ४

हिरण्यदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च ।

एतानि वै पवित्राणि तारयन्त्यपि दुष्कृतम् ॥ ५

एतानि पुरुषव्याघ्र साधुभ्यो देहि नित्यदा ।

दानानि हि नरं पापान्मोक्षयन्ति न संशयः ॥ ६

यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे ।

तत्तद्गुणवते देयं न देवाक्षयमिच्छता ॥ ७

प्रियाणि लभते लोके प्रियदः प्रियकृत्तथा ।

प्रियो भवति भूतानामिह चैव परत्र च ॥ ८

याचमानमभीमानादाशावन्तमकिंचनम् ।

यो नार्चति यथाशक्ति स नृशंसो युधिष्ठिर ॥ ९

अमित्रमपि चेद्दीनं शरणैषिणमागतम् ।

व्यसने योऽनुगृह्णाति स वै पुरुषसत्तमः ॥ १०

कृशाय ह्रीमते तात वृत्तिक्षीणाय सीदते ।

अपहन्यात्क्षुधं यस्तु न तेन पुरुषः समः ॥ ११

हिया तु नियतान्साधून्पुत्रदारैश्च कर्षितान् ।

अयाचमानान्कौन्तेय सर्वोपायैर्निमन्त्रय ॥ १२

आशिष ये न देवेषु न मर्त्येषु च कुर्वते ।

अर्हन्तो नित्यसत्त्वस्था यथालब्धोपजीविनः ॥ १३

आशीविपसमेभ्यश्च तेभ्यो रक्षस्व भारत ।  
 तान्युक्तैरुपजिज्ञास्य तथा द्विजद्वरोत्तमान् ॥ १४  
 कृतैरावसथैर्नित्यं सप्रेष्यैः सपरिच्छदैः ।  
 निमग्नयेथाः कौरव्य सर्वकामलुखावहैः ॥ १५  
 यदि ते प्रतिगृहीयुः श्रद्धापूतं युधिष्ठिर ।  
 कार्यमित्येव मन्वाना धार्मिकाः पुण्यकर्मिणः ॥ १६  
 विद्यास्नाता व्रतस्नाता ये व्यपाश्रित्यजीविनः ।  
 गूढस्वाध्यायतपसो ब्राह्मणाः संशितव्रताः ॥ १७  
 तेषु शुद्धेषु दान्तेषु स्वदारनिरतेषु च ।  
 यत्करिष्यसि कल्याणं तत्त्वा लोकेषु धास्यति ॥  
 यथाग्निहोत्रं सुहुतं सायं प्रातर्द्विजातिना ।  
 तथा भवति दत्तं वै द्विजेभ्योऽथ कृतात्मना ॥ १९  
 एष ते विततो यज्ञः श्रद्धापूतः सदक्षिणः ।  
 विशिष्टः सर्वयज्ञेभ्यो ददतस्तात वर्तताम् ॥ २०  
 निवापो दानसदृशस्तादृशेषु युधिष्ठिर ।  
 निवपन्पूजयंश्चैव तेष्वानृण्यं निगच्छति ॥ २१  
 य एव नो न कुप्यन्ति न लुभ्यन्ति तृणेष्वपि ।  
 त एव नः पूज्यतमा ये चान्ये प्रियवादिनः ॥ २२  
 ये नो न बहु मन्यन्ते न प्रवर्तन्ति चापरे ।  
 पुत्रवत्परिपाल्यास्ते नमस्तेभ्यस्तथाभयम् ॥ २३  
 ऋत्विक्पुरोहिताचार्या मृदुब्रह्मधरा हि ते ।  
 क्षत्रेणापि हि संस्पृष्टं तेजः शाम्यति वै द्विजे ॥ २४  
 अस्ति मे बलवानस्मि राजास्मीति युधिष्ठिर ।  
 ब्राह्मणान्मा स्म पर्यश्रीर्वासोभिरशनेन च ॥ २५  
 यच्छोभार्थं बलार्थं वा वित्तमस्ति तवानघ ।  
 तेन ते ब्राह्मणाः पूज्याः स्वधर्ममनुतिष्ठता ॥ २६  
 नमस्कार्यास्त्वया विप्रा वर्तमाना यथातथम् ।  
 यथासुखं यथोत्साहं ललन्तु त्वयि पुत्रवत् ॥ २७  
 को ह्यन्यः सुप्रसादानां सुहृदामल्पतोषिणाम् ।  
 वृत्तिमर्हत्युपक्षेप्तुं त्वदन्यः कुरुसत्तम ॥ २८

यथा पत्याश्रयो धर्मः स्त्रीणां लोके सनातनः ।  
 स देवः सा गतिर्नान्या तथास्माकं द्विजातयः ॥  
 यदि नो ब्राह्मणास्तात संत्यजेयुरपूजिताः ।  
 पश्यन्तो दारुणं कर्म सततं क्षत्रिये स्थितम् ॥ ३०  
 अवेदानामकीर्तीनामलोकानामयज्वनाम् ।  
 कोऽस्माकं जीवितेनार्थस्तद्वि नो ब्राह्मणाश्रयम् ॥  
 अत्र ते वर्तयिष्यामि यथा धर्मः सनातनः ।  
 राजन्यो ब्राह्मणं राजनपुरा परिचचार ह ।  
 वैश्यो राजन्यमित्येव शूद्रो वैश्यमिति श्रुतिः ॥ ३२  
 दूराच्छूद्रेणोपचर्यो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् ।  
 संस्पृश्य परिचर्यस्तु वैश्येन क्षत्रियेण च ॥ ३३  
 मृदुभावान्सत्यशीलान्सत्यधर्मानुपालकान् ।  
 आशीविषानिव क्रुद्धांस्तानुपाचरत द्विजान् ॥ ३४  
 अपरेषां परेषां च परेभ्यश्चैव ये परे ।  
 क्षत्रियाणां प्रतपनां तेजसा च बलेन च ।  
 ब्राह्मणेष्वेव शाम्यन्ति तेजांसि च तपांसि च ॥ ३५  
 न मे पिता प्रियतरो न त्वं तात तथा प्रियः ।  
 न मे पितुः पिता राजन्न चात्मा न च जीवितम् ॥  
 त्वत्तश्च मे प्रियतरः पृथिव्यां नास्ति कश्चन ।  
 त्वत्तोऽपि मे प्रियतरा ब्राह्मणा भरतर्षभ ॥ ३७  
 ब्रवीमि सत्यमेतच्च यथाहं पाण्डुनन्दन ।  
 तेन सत्येन गच्छेयं लोकान्यत्र स शंतनुः ॥ ३८  
 पश्येयं च सतां लोकाञ्छुचीन्ब्रह्मपुरस्कृतान् ।  
 तत्र मे तात गन्तव्यमहाय च चिराय च ॥ ३९  
 सोऽहमेतादृशाल्लोकान्दृष्ट्वा भरतसत्तम ।  
 यन्मे कृतं ब्राह्मणेषु न तप्ये तेन पार्थिव ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते धनुशासनपर्वणि

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

५९

युधिष्ठिर उवाच ।

यौ तु स्यातां चरणेनोपपन्नौ

यौ विद्यया सहशौ जन्मना च ।

ताभ्यां दानं कतरस्मै विशिष्ट-

मयाचमानाय च याचते च ॥ १

भीष्म उवाच ।

श्रेयो वै याचतः पार्थ दत्तमाहुरयाचते ।

अर्हत्तमो वै धृतिमान्कृपणादधृतात्मनः ॥ २

क्षत्रियो रक्षणधृतिर्ब्राह्मणोऽनर्थनाधृतिः ।

ब्राह्मणो धृतिमान्विद्वान्देवान्प्रीणाति तुष्टिमान् ॥ ३

याचन्मामाहुरनीशस्य अभिहारं च भारत ।

उद्वेजयति याचन्हि सदा भूतानि दस्युवन् ॥ ४

म्रियते याचमानो वै तमनु म्रियते ददत् ।

ददत्संजीवयत्येनमात्मानं च युधिष्ठिर ॥ ५

आनृशंस्यं परो धर्मो याचते यत्प्रदीयते ।

अयाचतः सीदमानान्सर्वोपायैर्निमन्त्रय ॥ ६

यदि वै तादृशा राष्ट्रे वसेयुस्ते द्विजोत्तमाः ।

भस्मच्छन्नानिवाग्नीस्तान्बुध्येथास्त्वं प्रयत्नतः ॥ ७

तपसा दीप्यमानास्ते दहेयुः पृथिवीमपि ।

पूज्या हि ज्ञानविज्ञानतपोयोगसमन्विताः ॥ ८

तेभ्यः पूजां प्रयुज्जीथा ब्राह्मणेभ्यः परंतप ।

ददद्बहुविधान्दायानुपच्छन्दानयाचताम् ॥ ९

यदग्निहोत्रे सुहुते सायंप्रातर्भवेत्फलम् ।

विद्यावेदव्रतवति तद्दानफलमुच्यते ॥ १०

विद्यावेदव्रतस्नातानव्यपाश्रयजीविनः ।

गूढस्वाध्यायतपसो ब्राह्मणान्संशितव्रतान् ॥ ११

कृतैरावसथैर्हृद्यैः सप्रेष्यैः सपरिच्छदैः ।

निमन्त्रयेथाः कौन्तेय काभेश्चान्यैर्द्विजोत्तमान् ॥ १२

अपि ते प्रतिगृहीयुः श्रद्धापूर्तं युधिष्ठिर ।

कार्यमित्येव मन्वाना धर्मज्ञाः सूक्ष्मदर्शिनः ॥ १३

अपि ते ब्राह्मणा भुक्त्वा गताः सोद्वरगान्गृहान् ।

येषां दाराः प्रतीक्षन्ते पर्जन्यमिव कर्षकाः ॥ १४

अन्नानि प्रातःसवने नियता ब्रह्मचारिणः ।

ब्राह्मणास्तात भुञ्जानास्तेताम्रीप्रीणयन्तु ते ॥ १५

माध्यंदिनं ते सवनं ददनस्तात वर्तताम् ।

गा हिरण्यानि वासांसि तेनेन्द्रः प्रीयतां तव ॥ १६

तृतीयं सवनं तत्ते वैश्वदेवं युधिष्ठिर ।

यदेवेभ्यः पितृभ्यश्च विप्रेभ्यश्च प्रयच्छसि ॥ १७

अहिंसा सर्वभूतेभ्यः संविभागश्च सर्वशः ।

दमस्त्यागो धृतिः सत्यं भवत्वयभृथाय ते ॥ १८

एष ते विततो यज्ञः श्रद्धापूर्तः सदक्षिणः ।

विशिष्टः सर्वयज्ञेभ्यो नित्यं तात प्रवर्तताम् ॥ १९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकोनपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

६०

युधिष्ठिर उवाच ।

दानं यज्ञक्रिया चेह किंस्वित्प्रेत्य महाफलम् ।

कस्य ज्यायः फलं प्रोक्तं कीदृशेभ्यः कथं कदा ॥

एतदिच्छामि विज्ञातुं याथातथ्येन भारत ।

विद्वद्भिर्ज्ञातमानाय दानधर्मान्प्रचक्ष्व मे ॥ २

अन्तर्वेद्यां च यदत्तं श्रद्धया चानृशंस्यतः ।

किंस्विन्निःश्रेयसं तान तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ३

भीष्म उवाच ।

रौद्रं कर्म क्षत्रियस्य सत्ततं तात वर्तते ।

तस्य वैतानिकं कर्म दानं चैवेह पावनम् ॥ ४

न तु पापकृतां राज्ञां प्रतिगृह्णन्ति साधवः ।

एतस्मात्कारणाद्यज्ञैर्यजेद्राजाप्तदक्षिणैः ॥ ५

अथ चेत्प्रतिगृहीयुर्दद्यादहरहर्नृपः ।

श्रद्धामास्थाय परमां पावनं ह्येतदुत्तमम् ॥ ६

ब्राह्मणांस्तर्पयेद्द्रव्यैस्ततो यज्ञे यतव्रतः ।  
 मैत्रान्साधून्वेदविदः शीलवृत्ततपोन्वितान् ॥ ७  
 यत्ते तेन करिष्यन्ति कृतां तेन भविष्यति ।  
 यज्ञान्साधय साधुभ्यः स्वाद्विज्ञान्दक्षिणावतः ॥ ८  
 इष्टं दत्तं च मन्येथा आत्मानं दानकर्मणा ।  
 पूजयेथा यायजूकांस्तवाप्यंशो भवेद्यथा ॥ ९  
 प्रजावतो भरेथाश्च ब्राह्मणान्वहुभारिणः ।  
 प्रजावांस्तेन भवति यथा जनयिता तथा ॥ १०  
 यावतो वै साधुधर्मान्सन्तः संवर्तयन्त्युत ।  
 सर्वे ते चापि भर्तव्या नरा ये बहुभारिणः ॥ ११  
 समृद्धः संप्रयच्छस्व ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिर ।  
 धेनुरनडुहोऽन्नानि च्छत्रं वासांस्युपानहौ ॥ १२  
 आज्यानि यजमानेभ्यस्तथान्नाद्यानि भारत ।  
 अश्ववन्ति च यानानि वेश्मानि शयनानि च ॥ १३  
 एते देया व्युष्टिमन्तो लघूपायाश्च भारत ।  
 अजुगुप्सांश्च विज्ञाय ब्राह्मणान्वृत्तिकर्षितान् ॥ १४  
 उपच्छन्नं प्रकाशं वा वृत्त्या तान्प्रतिपादय ।  
 राजसूयाश्वमेधाभ्यां श्रेयस्तत्क्षत्रियान्प्रति ॥ १५  
 एवं पापैर्विमुक्तस्त्वं पूतः स्वर्गमवाप्स्यसि ।  
 संसयित्वा पुनः कोशं यद्राष्ट्रं पालयिष्यसि ॥ १६  
 ततश्च ब्रह्मभूयस्त्वमवाप्स्यसि धनानि च ।  
 आत्मनश्च परेषां च वृत्तिं संरक्ष भारत ॥ १७  
 पुत्रवन्नापि भृत्यान्स्वान्प्रजाश्च परिपालय ।  
 योगक्षेमश्च ते नित्यं ब्राह्मणेष्वस्तु भारत ॥ १८  
 अरक्षितारं हर्तारं विलोत्तारमदायकम् ।  
 तं स्म राजकलिलं हन्युः प्रजाः संभूय निर्घृणम् ॥  
 अहं वो रक्षितेत्युक्त्वा यो न रक्षति भूमिपः ।  
 स संहत्य निहन्तव्यः श्वेव सोन्माद आतुरः ॥ २०  
 पापं कुर्वन्ति यत्किञ्चित्प्रजा राज्ञा ह्यरक्षिताः ।  
 चतुर्थं तस्य पापस्य राजा भारत विन्दति ॥ २१

अप्याहुः सर्वमेवेति भूयोऽर्धमिति निश्चयः ।  
 चतुर्थं मतमस्माकं मनोः श्रुत्वानुशासनम् ॥ २२  
 शुभं वा यत्प्रकुर्वन्ति प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः ।  
 चतुर्थं तस्य पुण्यस्य राजा चाप्नोति भारत ॥ २३  
 जीवन्तं त्वानुजीवन्तु प्रजाः सर्वा युधिष्ठिर ।  
 पर्जन्यमिव भूतानि महाद्रुममिव द्विजाः ॥ २४  
 कुबेरमिव रक्षांसि शतक्रतुमिवामराः ।  
 ज्ञातयस्त्वानुजीवन्तु सुहृदश्च परंतप ॥ २५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

षष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

६१

युधिष्ठिर उवाच ।

इदं देयमिदं देयमितीयं श्रुतिचोदना ।  
 बहुदेयाश्च राजानः किंस्विदेयमनुत्तमम् ॥ १  
 भीष्म उवाच ।

अति दानानि सर्वाणि पृथिवीदानमुच्यते ।  
 अचला ह्यक्षया भूमिर्दोग्ध्री कामाननुत्तमान् ॥ २  
 दोग्ध्री वासांसि रत्नानि पशून्नीहियवांस्तथा ।  
 भूमिदः सर्वभूतेषु शाश्वतीरेधते समाः ॥ ३  
 यावद्भूमेरायुरिह तावद्भूमिद एधते ।  
 न भूमिदानादस्तीह परं किञ्चिद्युधिष्ठिर ॥ ४  
 अप्यल्पं प्रददुः पूर्वं पृथिव्या इति नः श्रुतम् ।  
 भूमिमेते ददुः सर्वे ये भूमि भुञ्जते जनाः ॥ ५  
 स्वकर्मैवोपजीवन्ति नरा इह परत्र च ।  
 भूमिर्भूतिर्महादेवी दातारं कुरुते प्रियम् ॥ ६  
 य एतां दक्षिणां दद्यादक्षयां पृथिवीपतिः ।  
 पुनर्नरत्वं संप्राप्य भवेत्स पृथिवीपतिः ॥ ७  
 यथा दानं तथा भोग इति धर्मेषु निश्चयः ।  
 संप्राप्ते वा तनु जह्याद्दद्याद्वा पृथिवीमिमाम् ॥ ८  
 इत्येतां क्षत्रबन्धूनां वदन्ति परमाशिषम् ।

पुनाति दत्ता पृथिवी दातारमिति शुश्रुम ॥ ९  
 अपि पापसमाचारं ब्रह्मघ्नमपि वानृतम् ।  
 सैव पापं पावयति सैव पापात्प्रमोचयेत् ॥ १०  
 अपि पापकृतां राज्ञां प्रतिगृह्णन्ति साधवः ।  
 पृथिवीं नान्यदिच्छन्ति पावनं जननी यथा ॥ ११  
 नामास्याः प्रियदत्तेति गुह्यं देव्याः सनातनम् ।  
 दानं वाप्यथ वा ज्ञानं नाम्नोऽस्याः परमं प्रियम् ।  
 तस्मात्प्राप्यैव पृथिवीं दद्याद्विप्राय पार्थिवः ॥ १२  
 नाभूमिपतिना भूमिरधिष्ठेया कथंचन ।  
 न वा पात्रेण वा गूहेदन्तर्धानेन वा चरेत् ।  
 ये चान्ये भूमिमिच्छेयुः कुर्युरेवमसंशयम् ॥ १३  
 यः साधोर्भूमिमादत्ते न भूमिं विन्दते तु सः ।  
 भूमि तु दत्त्वा साधुभ्यो विन्दते भूमिमेव हि ।  
 प्रेत्येह च स धर्मात्मा संप्राप्नोति महद्यशः ॥ १४  
 यस्य विप्रानुशासन्ति साधोर्भूमि सदैव हि ।  
 न तस्य शत्रवो राजन्प्रशासन्ति वसुंधराम् ॥ १५  
 यत्किञ्चित्पुरुषः पापं कुरुते वृत्तिकर्षितः ।  
 अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन पूयते ॥ १६  
 येऽपि संकीर्णकर्माणो राजानो रौद्रकर्मिणः ।  
 तेभ्यः पवित्रमाख्येयं भूमिदानमनुत्तमम् ॥ १७  
 अल्पान्तरमिदं शश्वत्पुराणा मेनिरे जनाः ।  
 यो यजेदश्वमेधेन दद्याद्वा साधवे महीम् ॥ १८  
 अपि चेत्सुकृतं कृत्वा शङ्केरन्नपि पण्डिताः ।  
 अशक्यमेकमेवैतद्भूमिदानमनुत्तमम् ॥ १९  
 सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिमुक्तावसूनि च ।  
 सर्वमेतन्महाप्राज्ञ ददाति वसुधां ददत् ॥ २०  
 तपो यज्ञः श्रुतं शीलमलोभः सत्यसंधता ।  
 गुरुदैवतपूजा च नातिवर्तन्ति भूमिदम् ॥ २१  
 भर्तुर्निःश्रेयसे युक्तास्यत्कात्मानो रणे हताः ।  
 ब्रह्मलोकगताः सिद्धा नातिक्रामन्ति भूमिदम् ॥ २२

यथा जनित्री क्षीरेण स्वपुत्रं भरते सदा ।  
 अनुगृह्णाति दातारं तथा सर्वरसैर्मही ॥ २३  
 मृत्योर्वै किंकरो दण्डस्तापो बहेः सुदारुणः ।  
 घोराश्च वारुणाः पाशा नोपसर्पन्ति भूमिदम् ॥ २४  
 पितृंश्च पितृलोकस्थान्देवलोके च देवताः ।  
 सतर्पयति शान्तात्मा यो ददाति वसुंधराम् ॥ २५  
 कृशाय म्रियमाणाय वृत्तिम्लानाय सीदते ।  
 भूमि वृत्तिकरी दत्त्वा सत्री भवति मानवः ॥ २६  
 यथा धावति गौर्वत्सं क्षीरमभ्युत्सृजन्त्युत ।  
 एवमेव महाभाग भूमिर्भवति भूमिदम् ॥ २७  
 हलकृष्टां महीं दत्त्वा सवीजां सफलामपि ।  
 उदीर्णं वापि शरणं तथा भवति कामदः ॥ २८  
 ब्राह्मणं वृत्तसंपन्नमाहिताग्निं शुचिव्रतम् ।  
 नरः प्रतिग्राह्य महीं न याति यमसादनम् ॥ २९  
 यथा चन्द्रमसो वृद्धिरहन्यहनि जायते ।  
 तथा भूमिकृतं दानं सत्ये सत्ये विवर्धते ॥ ३०  
 अत्र गाथा भूमिगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।  
 याः श्रुत्वा जामदग्न्येन दत्ता भूः काश्यपाय वै ॥  
 मामेवादत्त मां दत्त मां दत्त्वा मामवाप्स्यथ ।  
 अस्मिन्लोके परे चैव ततश्चाजनने पुनः ॥ ३२  
 य इमां व्यावृत्तिं वेद ब्राह्मणो ब्रह्मसश्रितः ।  
 श्राद्धस्य हूयमानस्य ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥ ३३  
 कृत्यानामभिशस्तानां दुरिष्टशमनं महत् ।  
 प्रायश्चित्तमहं कृत्वा पुनात्युभयतो दश ॥ ३४  
 पुनाति य इदं वेद वेद चाहं तथैव च ।  
 प्रकृतिः सर्वभूतानां भूमिर्वै शाश्वती मता ॥ ३५  
 अभिषिच्यैव नृपति श्रावयेदिममागमम् ।  
 यथा श्रुत्वा महीं दद्यान्नादद्यात्साधुतश्च ताम् ॥ ३६  
 सोऽयं कृत्स्नो ब्राह्मणार्थो राजार्थश्चाप्यसंशयम् ।  
 राजा हि धर्मकुशलः प्रथमं भूतिलक्षणम् ॥ ३७

अथ येषामधर्मज्ञो राजा भवति नास्तिकः ।  
 न ते सुखं प्रबुध्यन्ते न सुखं प्रखपन्ति च ॥ ३८  
 सदा भवन्ति चोद्विग्रास्तस्य दुश्चरितैर्नराः ।  
 योगक्षेमा हि बहवो राष्ट्रं नास्याविशन्ति तत् ॥ ३९  
 अथ येषां पुनः प्राज्ञो राजा भवति धार्मिकः ।  
 सुखं ते प्रतिबुध्यन्ते सुसुखं प्रखपन्ति च ॥ ४०  
 तस्य राज्ञः शुभैरार्यैः कर्मभिर्निर्वृताः प्रजाः ।  
 योगक्षेमेण वृष्ट्या च विवर्धन्ते स्वकर्मभिः ॥ ४१  
 स कुलीनः स पुरुषः स बन्धुः स च पुण्यकृतः ।  
 स दाता स च विक्रान्तो यो ददाति वसुधराम् ॥ ४२  
 आदित्या इव दीप्यन्ते तेजसा भुवि मानवाः ।  
 ददन्ति वसुधां स्फीतां ये वेदविदुषि द्विजे ॥ ४३  
 यथा बीजानि रोहन्ति प्रकीर्णानि महीतले ।  
 तथा कामाः प्ररोहन्ति भूमिदानसमार्जिताः ॥ ४४  
 आदित्यो वरुणो विष्णुर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ।  
 शूलपाणिश्च भगवान्प्रतिनन्दन्ति भूमिदम् ॥ ४५  
 भूमौ जायन्ति पुरुषा भूमौ निष्ठां व्रजन्ति च ।  
 चतुर्विधो हि लोकोऽयं योऽयं भूमिगुणात्मकः ॥ ४६  
 एषा माता पिता चैव जगतः पृथिवीपते ।  
 नानया सदृशं भूतं किञ्चिदस्ति जनाधिप ॥ ४७  
 अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 बृहस्पतेश्च संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर ॥ ४८  
 इष्ट्वा क्रतुशतेनाथ महता दक्षिणावता ।  
 मघवा वाग्विदां श्रेष्ठं पप्रच्छेदं बृहस्पतिम् ॥ ४९  
 भगवन्केन दानेन स्वर्गतः सुखमेधते ।  
 यदक्षयं महार्घं च तद्ब्रूहि वदतां वर ॥ ५०  
 इत्युक्तः स सुरेन्द्रेण ततो देवपुरोहितः ।  
 बृहस्पतिर्महातेजाः प्रत्युवाच शतक्रतुम् ॥ ५१  
 सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं च वृत्रहन् ।  
 ददद्देवान्महाप्राज्ञः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५२

न भूमिदानादेवेन्द्र परं किञ्चिदिति प्रभो ।  
 विशिष्टगिति मन्यामि यथा प्राहुर्मनीषिणः ॥ ५३  
 ये शूरा निहता युद्धे स्वर्गता दानगृद्धिनः ।  
 सर्वे ते विबुधश्रेष्ठ नातिक्रामन्ति भूमिदम् ॥ ५४  
 भर्तुर्निःश्रेयसे युक्तास्तत्तात्मानो रणे हताः ।  
 ब्रह्मलोकगताः शूरा नातिक्रामन्ति भूमिदम् ॥ ५५  
 पञ्च पूर्वादिपुरुषाः षट् च ये वसुधां गताः ।  
 एकादश ददद्भूमिं परित्रातीह मानवः ॥ ५६  
 रत्नोपकीर्णा वसुधां यो ददाति पुरंदर ।  
 स मुक्तः सर्वकलुषैः स्वर्गलोके महीयते ॥ ५७  
 मही स्फीतां ददद्राजा सर्वकामगुणान्विताम् ।  
 राजाधिराजो भवति तद्धि दानमनुत्तमम् ॥ ५८  
 सर्वज्ञमसमायुक्तां काश्यपी यः प्रयच्छति ।  
 सर्वभूतानि मन्यन्ते मां ददातीति वासव ॥ ५९  
 सर्वकामदुधां धेनुं सर्वकामपुरोगमाम् ।  
 ददाति यः सहस्राक्ष स स्वर्गं याति मानवः ॥ ६०  
 मधुसर्पिःप्रपाहिन्यः पयोदधिवहास्तथा ।  
 सरितस्तर्पयन्तीह सुरेन्द्र वसुधाप्रदम् ॥ ६१  
 भूमिप्रदानान्नृपतिर्मुच्यते राजकिल्बिषात् ।  
 न हि भूमिप्रदानेन दानमन्यद्विशिष्यते ॥ ६२  
 ददाति यः समुद्रान्तां पृथिवीं शस्त्रनिर्जिताम् ।  
 तं जनाः कथयन्तीह यावद्धरति गौरियम् ॥ ६३  
 पुण्यामृद्धरसां भूमिं यो ददाति पुरंदर ।  
 न तस्य लोकाः क्षीयन्ते भूमिदानगुणार्जिताः ॥ ६४  
 सर्वथा पार्थिवेनेह सततं भूतिमिच्छता ।  
 भूर्देया विधिवच्छक्र पात्रे सुखमभीप्सता ॥ ६५  
 अपि कृत्वा नरः पापं भूमिं दत्त्वा द्विजातये ।  
 समुत्सृजति तत्पापं जीर्णं त्वचमिवोरगः ॥ ६६  
 सागरान्सरितः शैलान्काननानि च सर्वशः ।  
 सर्वमेतन्नरः शक्र ददाति वसुधां ददत् ॥ ६७

तडागान्युदपानानि स्रोतांसि च सरांसि च ।  
 स्नेहान्सर्वरसांश्चैव ददाति वसुधां ददन् ॥ ६८  
 ओषधीः क्षीरसंपन्ना नगान्पुष्पफलान्वितान् ।  
 काननोपलशैलांश्च ददाति वसुधां ददन् ॥ ६९  
 अग्निष्टोमप्रभृतिभिरिष्ट्वा च स्वाप्तदक्षिणैः ।  
 न तत्फलमवाप्नोति भूमिदानाद्यदश्नुते ॥ ७०  
 दाता दशानुगृह्णाति दश हन्ति तथा क्षिपन् ।  
 पूर्वदत्तां हरन्भूमिं नरकायोपगच्छति ॥ ७१  
 न ददाति प्रतिश्रुत्य दत्त्वा वा हरते तु यः ।  
 स बद्धो वारुणैः पशैस्तप्यते मृत्युशासनान् ॥ ७२  
 आहिताग्नि सदायज्ञ कृशभृत्यं प्रियातिथिम् ।  
 ये भरन्ति द्विजश्रेष्ठ नोपसर्पन्ति ते यमम् ॥ ७३  
 ब्राह्मणेष्वृणभूतं स्यात्पार्थिवस्य पुरंदर ।  
 इतरेषां तु वर्णानां तारयेत्कृशदुर्बलान् ॥ ७४  
 नाच्छिन्वात्सर्पिंशं भूमि परेण त्रिदशधिय ।  
 ब्राह्मणाय सुरश्रेष्ठ कृशभृत्याय कश्चन ॥ ७५  
 अथाश्व पतित तेषां दीनानामवसीदताम् ।  
 ब्राह्मणानां हृते क्षेत्रे हन्यान्निपुरुषं कुलम् ॥ ७६  
 भूमिपाल च्युतं राष्ट्राद्यस्तु संस्थापयेत्पुनः ।  
 तस्य वासः सहस्राक्ष नाकष्ट्रे महीयते ॥ ७७  
 इक्षुभिः संततां भूमिं यवगोधूमसंकुलाम् ।  
 गोऽश्ववाहनसंपूर्णां बाहुवीर्यसमार्जिताम् ॥ ७८  
 निधिगर्भां ददद्भूमिं सर्वरत्नपरिच्छदाय ।  
 अक्षयार्ल्लभते लोकान्भूमिसत्रं हि तस्य तत् ॥ ७९  
 विधूय कलुष सर्वं विरजाः संमतः सताम् ।  
 लोके महीयते सद्भिर्यो ददाति वसुधराम ॥ ८०  
 यथाप्सु पतितः शक्र तैलबिन्दुर्विमर्षति ।  
 तथा भूमिकृतं दानं सरये सरये विसर्पति ॥ ८१  
 ये रणाग्रे महीपालाः शूराः समितिशोभनाः ।  
 वध्यन्तेऽभिमुखाः शक्र ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥ ८२

नृत्यगीतपरा नार्थो दिव्यमाल्यविभूषिताः ।  
 उपनिष्ठन्ति देवेन्द्र सदा भूमिप्रदं दिवि ॥ ८३  
 मोदते च सुख स्वर्गे देवगन्धर्वपूजितः ।  
 यो ददाति महीं सम्यग्विधिनेह द्विजातये ॥ ८४  
 शतमप्सरसश्चैव दिव्यमाल्यविभूषिताः ।  
 उपतिष्ठन्ति देवेन्द्र सदा भूमिप्रदं नरम् ॥ ८५  
 शङ्ख भद्रासनं छत्रं वराश्चा वरवारणाः ।  
 भूमिदानात्पुष्पाणि हिरण्यनिचयास्तथा ॥ ८६  
 आज्ञा सदाप्रतिज्ञा जयशब्दो भवत्यथ ।  
 भूमिदानस्य पुष्पाणि फलं स्वर्गः पुरंदर ॥ ८७  
 हिरण्यपुष्पाश्चोपध्यः कुशकाञ्चनशङ्खलाः ।  
 अमृतप्रसवां भूमि प्राप्नोति पुरुषो ददन् ॥ ८८  
 नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति मातृसमो गुरुः ।  
 नास्ति सत्यसमो धर्मो नास्ति दानसमो निधिः ॥  
 एतदाङ्गिरसाच्छ्रुत्वा वासवो वसुधामिमाम् ।  
 वसुरत्नसमाकीणा ददावाङ्गिरसे तदा ॥ ९०  
 य इमं श्रावयेच्छास्त्रे भूमिदानस्य संस्त्वम् ।  
 न तस्य रक्षसां भागो नासुराणां भवत्युत ॥ ९१  
 अक्षयं च भवेदत्त पितृभ्यस्तत्र संशयः ।  
 तस्माच्छास्त्रेऽग्निदं विप्रो भुञ्जतः श्रावयेद्विजान् ॥ ९२  
 इत्येतत्सर्वदानानां श्रेष्ठमुक्तं तवानघ ।  
 मया भरतशार्दूल किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ९३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

६२

युधिष्ठिर उवाच ।

कानि दानानि लोकेऽस्मिन्दातुकामो महीपतिः ।  
 गुणाधिकेभ्यो विप्रेभ्यो दद्याद्भरतसत्तम ॥ १  
 केन तुष्यन्ति ते सद्यस्तुष्टाः किं प्रदिशन्त्युत ।  
 शस मे तन्महाबाहो फलं पुण्यकृतं महत् ॥ २

दत्तं किं फलवद्वाजनिह लोके परत्र च ।  
भवतः श्रोतुमिच्छामि तन्मे विस्तरतो वद ॥ ३

भीष्म उवाच ।

इममर्थं पुरा पृष्टो नारदो देवदर्शनः ।  
यदुक्तवानसौ तन्मे गदतः शृणु भारत ॥ ४

नारद उवाच ।

अन्नमेव प्रशंसन्ति देवाः सर्षिगणाः पुरा ।  
लोकतन्त्रं हि यज्ञाश्च सर्वमन्त्रे प्रतिष्ठितम् ॥ ५  
अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति ।  
तस्मादन्नं विशेषेण दातुमिच्छन्ति मानवाः ॥ ६  
अन्नमूर्जस्करं लोके प्राणाश्चान्ने प्रतिष्ठिताः ।  
अन्नेन धार्यते सर्वं विश्वं जगदिदं प्रभो ॥ ७  
अन्नाद्गृहस्था लोकेऽस्मिन्मिक्षवस्तत एव च ।  
अन्नात्प्रभवति प्राणः प्रत्यक्षं नात्र संशयः ॥ ८  
कुटुम्बं पीडयित्वापि ब्राह्मणाय महात्मने ।  
दातव्यं भिक्षवे चान्नमात्मनो भूतिमिच्छता ॥ ९  
ब्राह्मणायामिदं यो दद्यादन्नमर्थिने ।  
निदधाति निर्विं श्रेष्ठं पारलौकिकमात्मनः ॥ १०  
श्रान्तमध्वनिं वर्तन्तं वृद्धमर्हमुपस्थितम् ।  
अर्चयेद्भूतिमन्विच्छन्गृहस्थो गृहमागतम् ॥ ११  
क्रोधमुत्पतितं हित्वा सुशीलो वीतमत्सरः ।  
अन्नदः प्राप्नुते राजन्दिवि चेह च यत्सुखम् ॥ १२  
नावमन्येद्भिगतं न प्रणुद्यात्कथंचन ।  
अपि श्वपाके शुनि वा न दानं विप्रणश्यति ॥ १३  
यो दद्यादपरिक्लिष्टमन्नमध्वनिं वर्तते ।  
श्रान्तायादृष्टपूर्वाय स महद्धर्ममाप्नुयात् ॥ १४  
पितृन्देवानृषीन्विप्रानतिथींश्च जनाधिप ।  
यो नरः प्रीणयत्यन्नैस्तस्य पुण्यफलं महत् ॥ १५  
कृत्वापि पापकं कर्म यो दद्यादन्नमर्थिने ।  
ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन युज्यते ॥ १६

ब्राह्मणेष्वक्षयं दानमन्नं शूद्रे महाफलम् ।  
अन्नदानं च शूद्रे च ब्राह्मणे च विशिष्यते ॥ १७  
न पृच्छेद्भोत्रचरणं स्वाध्यायं देशमेव वा ।  
भिक्षितो ब्राह्मणेनेह जन्म वान्नं प्रयाचितः ॥ १८  
अन्नदस्यान्नवृक्षाश्च सर्वकामफलान्विताः ।  
भवन्तीहाथ वामुत्र नृपते नात्र संशयः ॥ १९  
आशंसन्ते हि पितरः सुवृष्टिमिव कर्षकाः ।  
अस्माकमपि पुत्रो वा पौत्रो वान्नं प्रदास्यति ॥ २०  
ब्राह्मणो हि महद्भूतं स्वयं देहीति याचते ।  
अकामो वा सकामो वा दत्त्वा पुण्यमवाप्नुयात् ॥  
ब्राह्मणः सर्वभूतानामतिथिः प्रसूताग्रमुक् ।  
विप्रा यमभिगच्छन्ति भिक्षमाणा गृहं सदा ॥ २२  
सत्कृताश्च निवर्तन्ते तदतीव प्रवर्धते ।  
महाभोगे कुले जन्म प्रेत्य प्राप्नोति भारत ॥ २३  
दत्त्वा त्वन्नं नरो लोके तथा स्थानमनुत्तमम् ।  
मृष्टमृष्टान्नदायी तु स्वर्गे वसति सत्कृतः ॥ २४  
अन्नं प्राणा नराणां हि सर्वमन्त्रे प्रतिष्ठितम् ।  
अन्नदः पशुमान्पुत्री धनवान्भोगवानपि ॥ २५  
प्राणवांश्चापि भवति रूपवांश्च तथा नृप ।  
अन्नदः प्राणदो लोके सर्वतः प्रोच्यते तु सः ॥ २६  
अन्नं हि दत्त्वातिथये ब्राह्मणाय यथाविधि ।  
प्रदाता सुखमाप्नोति देवैश्चाप्यभिपूज्यते ॥ २७  
ब्राह्मणो हि महद्भूतं क्षेत्रं चरति पादवत् ।  
उप्यते तत्र यद्वीजं तद्धि पुण्यफलं महत् ॥ २८  
प्रत्यक्षं प्रीतिजननं भोक्तृदात्रोर्भवत्युत ।  
सर्वाण्यन्यानि दानानि परोक्षफलवन्त्युत ॥ २९  
अन्नाद्धि प्रसवं विद्धि रतिमन्नाद्धि भारत ।  
धर्मार्थावन्नतो विद्धि रोगनाशं तथान्नतः ॥ ३०  
अन्नं ह्यमृतमित्याह पुराकरूपे प्रजापतिः ।  
अन्नं भुवं दिवं खं च सर्वमन्त्रे प्रतिष्ठितम् ॥ ३१



अन्नप्रणाशे भिद्यन्ते शरीरे पञ्च धानवः ।  
 बलं बलवतोऽपीह प्रणश्यत्यन्नहानि न ॥ ३२  
 आवाहाश्च विवाहाश्च यज्ञाश्चान्नमृते तथा ।  
 न वर्तन्ते नरश्रेष्ठ ब्रह्म चात्र प्लीयते ॥ ३३  
 अन्नतः सर्वमेतद्वि यत्किञ्चित्स्याणु जङ्गमम् ।  
 त्रिषु लोकेषु धर्मार्थमन्नं देयमतो बुधैः ॥ ३४  
 अन्नदस्य मनुष्यस्य बलमोजो यशः सुखम् ।  
 कीर्तिश्च वर्धते शश्वत्त्रिषु लोकेषु पार्थिव ॥ ३५  
 मेघेष्वम्भः संनिधत्ते प्राणानां पवनः शिवः ।  
 तच्च मेघगतं वारि शक्रो वर्षति भारत ॥ ३६  
 आदत्ते च रसं भौममादित्यः स्वर्गभस्तिभिः ।  
 वायुरादित्यतस्तांश्च रसान्देवः प्रजापतिः ॥ ३७  
 तद्यदा मेघतो वारि पतितं भवति क्षितौ ।  
 तदा वसुमती देवी स्निग्धा भवति भारत ॥ ३८  
 ततः सस्यानि रोहन्ति येन वर्तयते जगत् ।  
 मांसमेदोस्थिशुक्राणां प्रादुर्भावस्ततः पुनः ॥ ३९  
 संभवन्ति ततः शुक्रात्प्राणिनः पृथिवीपते ।  
 अग्नीषोमौ हि तच्छुक्रं प्रजनः पुण्यतश्च ह ॥ ४०  
 एवमन्नं च सूर्यश्च पवनः शुक्रमेव च ।  
 एक एव स्मृतो राशिर्यतो भूतानि जज्ञिरे ॥ ४१  
 प्राणान्ददाति भूतानां तेजश्च भरतर्षभ ।  
 गृहमभ्यागतायाशु यो दद्यादन्नमर्थिने ॥ ४२  
 भीष्म उवाच ।  
 नारदेनैवमुक्तोऽहमदामन्नं सदा नृप ।  
 अनसूयुस्त्वमप्यन्नं तस्माद्देहि गतज्वरः ॥ ४३  
 दत्त्वान्न विधिवद्वाजन्विप्रेभ्यस्त्वमपि प्रभो ।  
 यथावदनु रूपेभ्यस्ततः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ ४४  
 अन्नदानां हि ये लोकास्तांस्त्वं शृणु नराधिप ।  
 भवनानि प्रकाशन्ते दिवि तेषां महात्मनाम् ।  
 नानासंस्थानरूपाणि नानास्तम्भान्वितानि च ॥ ४५

चन्द्रमण्डलशुभ्राणि किङ्किणीजालवन्ति च ।  
 तरुणादित्यवर्णानि स्थावराणि चराणि च ॥ ४६  
 अनेकशतभौमानि सान्तर्जलवनानि च ।  
 वैदूर्यार्कप्रकाशानि रौप्यरुक्ममयानि च ॥ ४७  
 सर्वकामफलाश्चापि वृक्षा भवनसंस्थिताः ।  
 वाप्यो वीथ्यः समाः कूपा दीर्घिकाश्चैव सर्वशः ॥  
 घोषवन्ति च यानानि युक्तान्यथ सहस्रशः ।  
 भक्ष्यभोज्यमयाः शैला वासांस्याभरणानि च ॥ ४९  
 क्षीरं स्रवन्त्यः सरितस्तथा चैवान्नपर्वताः ।  
 प्रासादाः पाण्डुराभ्राभाः शय्याश्च कनकोज्ज्वलाः ।  
 तानन्नदाः प्रपद्यन्ते तस्मादन्नप्रदो भव ॥ ५०  
 एते लोकाः पुण्यकृतामन्नदानां महात्मनाम् ।  
 तस्मादन्नं विशेषेण दातव्यं मानवैर्भुवि ॥ ५१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

६३

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतं मे भवतो वाक्यमन्नदानस्य यो विधिः ।  
 नक्षत्रयोगस्येदानीं दानकरूपं ब्रवीहि मे ॥ १

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीमसितिहासं पुरातनम् ।  
 देवक्याश्चैव संवादं देवर्षेनारदस्य च ॥ २  
 द्वारकामनुसंप्राप्तं नारदं देवदर्शनम् ।  
 पप्रच्छैनं ततः प्रश्नं देवकी धर्मदर्शिनी ॥ ३  
 तस्याः संपृच्छमानाया देवर्षिनारदस्तदा ।  
 आचष्ट विधिवत्सर्वं यत्तच्छृणु विशां पते ॥ ४

नारद उवाच ।

कृत्तिकासु महाभागे पायसेन ससर्पिषा ।  
 संतर्प्य ब्राह्मणान्साधूँल्लोकानामप्रोत्यनुत्तमान् ॥ ५

रोहिण्यां प्रथितैर्मासैर्मासैर्वैरन्नेन सर्पिषा ।  
 पयोऽनुपानं दातव्यमानृण्यार्थं द्विजातये ॥ ६  
 दोग्धीं दत्त्वा सवत्सां तु नक्षत्रे सोमदैवते ।  
 गच्छन्ति मानुषाहोकास्वर्गलोकमनुत्तमम् ॥ ७  
 आर्द्रायां कृसरं दत्त्वा तैलमिश्रमुपोषितः ।  
 नरस्तरति दुर्गाणि क्षुरधारांश्च पर्वतान् ॥ ८  
 अपूपान्पुनर्वसौ दत्त्वा तथैवान्नानि शोभने ।  
 यशस्वी रूपसंपन्नो बह्वन्ने जायते कुले ॥ ९  
 पुष्ये तु कनकं दत्त्वा कृतं चाकृतमेव च ।  
 अनालोकेषु लोकेषु सोमवत्स विराजते ॥ १०  
 आश्लेषायां तु यो रूप्यमृषभं वा प्रयच्छति ।  
 स सर्वभयनिर्मुक्तः शात्रवानधितिष्ठति ॥ ११  
 मघासु तिलपूर्णानि वर्धमानानि मानवः ।  
 प्रदाय पुत्रपशुमानिह प्रेत्य च मोदते ॥ १२  
 फल्गुनीपूर्वसमये ब्राह्मणानामुपोषितः ।  
 भक्षान्फाणितसंयुक्तान्दत्त्वा सौभाग्यमृच्छति ॥ १३  
 घृतक्षीरसमायुक्तं विधिवत्षष्टिकौदनम् ।  
 उत्तराविषये दत्त्वा स्वर्गलोके महीयते ॥ १४  
 यद्यत्प्रदीयते दानमुत्तराविषये नरैः ।  
 महाफलमनन्तं च भवतीति विनिश्चयः ॥ १५  
 हस्ते हस्तिरथं दत्त्वा चतुर्युक्तमुपोषितः ।  
 प्राप्नोति परमाल्लोकान्पुण्यकामसमन्वितात् ॥ १६  
 चित्रायामृषभं दत्त्वा पुण्याङ्गान्धांश्च भारत ।  
 चरत्यप्सरसां लोके रमते नन्दने तथा ॥ १७  
 स्वातावथ धनं दत्त्वा यदिष्टतममात्मनः ।  
 प्राप्नोति लोकान्स शुभानिह चैव महद्यशः ॥ १८  
 विशाखायामनङ्गाहं धेनुं दत्त्वा च दुग्धदाम् ।  
 सप्रासङ्गं च शकटं सधान्यं वस्त्रसंयुतम् ॥ १९  
 पितृन्देवांश्च प्रीणाति प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ।  
 न च दुर्गाण्यवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ॥

दत्त्वा यथोक्तं विप्रेभ्यो वृत्तिमिष्टां स विन्दति ।  
 नरकादींश्च संक्षेशान्नाप्नोतीति विनिश्चयः ॥ २१  
 अनुराधासु प्रावारं वस्त्रान्तरमुपोषितः ।  
 दत्त्वा युगशतं चापि नरः स्वर्गे महीयते ॥ २२  
 कालशाकं तु विप्रेभ्यो दत्त्वा मर्त्यः समूलकम् ।  
 ज्येष्ठायामृद्धिमिष्टां वै गतिमिष्टां च विन्दति ॥ २३  
 मूले मूलफलं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ।  
 पितृन्प्रीणयते चापि गतिमिष्टां च गच्छति ॥ २४  
 अथ पूर्वास्वपाठासु दधिपात्राण्युपोषितः ।  
 कुलवृत्तोपसंपन्ने ब्राह्मणे वेदपारगे ।  
 प्रदाय जायते प्रेत्य कुले सुबहुगोकुले ॥ २५  
 उदमन्थं ससर्पिष्कं प्रभूतमधुफाणितम् ।  
 दत्त्वोत्तरास्वपाठासु सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ २६  
 दुग्धं त्वभिमज्जिते योगे दत्त्वा मधुघृतासुतम् ।  
 धर्मनित्यो मनीषिभ्यः स्वर्गलोके महीयते ॥ २७  
 श्रवणे कम्बलं दत्त्वा वस्त्रान्तरितमेव च ।  
 श्वेतेन याति यानेन सर्वलोकानसंवृतान् ॥ २८  
 गोप्रयुक्तं धनिष्ठासु यान दत्त्वा समाहितः ।  
 वस्त्ररश्मिधरं सद्यः प्रेत्य राज्यं प्रपद्यते ॥ २९  
 गन्धाञ्छतभिषग्योगे दत्त्वा सागुरुचन्दनान् ।  
 प्राप्नोत्यप्सरसां लोकान्प्रेत्य गन्धांश्च शाश्वतान् ॥ ३०  
 पूर्वभाद्रपदायोगे राजमापान्प्रदाय तु ।  
 सर्वभक्षफलोपेतः स वै प्रेत्य सुखी भवेत् ॥ ३१  
 औरभ्रमुत्तरायोगे यस्तु मांसं प्रयच्छति ।  
 स पितृन्प्रीणयति वै प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ॥ ३२  
 कांस्योपदोहनां धेनुं रेवत्यां यः प्रयच्छति ।  
 सा प्रेत्य कामानादाय दातारमुपतिष्ठति ॥ ३३  
 रथमश्वसमायुक्तं दत्त्वाश्विन्यां नरोत्तमः ।  
 हस्त्यश्वरथसंपन्ने वर्चस्वी जायते कुले ॥ ३४  
 भरणीषु द्विजातिभ्यस्तिलधेनुं प्रदाय वै ।

गाः सुप्रभूताः प्राप्नोति नरः प्रेत्य यशस्तथा ॥ ३५

भीष्म उवाच ।

इत्येष लक्षणोद्देशः प्रोक्तो नक्षत्रयोगतः ।

देवक्या नारदेनेह सा स्तुषाभ्योऽब्रवीदिदम् ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

६४

भीष्म उवाच ।

सर्वान्कामान्प्रयच्छन्ति ये प्रयच्छन्ति काञ्चनम् ।

इत्येवं भगवानन्त्रिः पितामहसुतोऽब्रवीत् ॥ १

पवित्रं शुच्यथायुष्यं पितृणामक्षयं च तत् ।

सुवर्णं मनुजेन्द्रेण हरिश्चन्द्रेण कीर्तितम् ॥ २

पानीयदानं परमं दानानां मनुजब्रवीत् ।

तस्माद्वापीश्च कूपांश्च तडागानि च खानयेत् ॥ ३

अर्थं पापस्य हरति पुरुषस्येह कर्मणः ।

कूपः प्रवृत्तपानीयः सुप्रवृत्तश्च नित्यशः ॥ ४

सर्वं तारयते वंशं यस्य खाते जलाशये ।

गावः पिबन्ति विप्राश्च साधवश्च नराः सदा ॥ ५

निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितम् ।

स दुर्गं विषमं कृच्छ्रं न कदाचिदवाप्नुते ॥ ६

बृहस्पतेर्भगवतः पूष्णश्चैव भगस्य च ।

अश्विनोश्चैव वहेश्च प्रीतिर्भवति सर्पिषा ॥ ७

परमं भेषजं ह्येतद्यज्ञानामेतदुत्तमम् ।

रसानामुत्तमं चैतत्फलानां चैतदुत्तमम् ॥ ८

फलकामो यशस्कामः पुष्टिकामश्च नित्यदा ।

घृतं दद्याद्विजातिभ्यः पुरुषः शुचिरात्मवान् ॥ ९

घृतं मासे आश्वयुजि विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति ।

तस्मै प्रयच्छतो रूपं प्रीतौ देवाविहाश्विनौ ॥ १०

पायसं सर्पिषा मिश्रं द्विजेभ्यो यः प्रयच्छति ।

गृहं तस्य न रक्षांसि धर्षयन्ति कदाचन ॥ ११

पिपासया न म्रियते सोपच्छन्दश्च दृश्यते ।

न प्राप्नुयाच्च व्यसनं करकान्यः प्रयच्छति ॥ १२

प्रयतो ब्राह्मणाग्नेभ्यः श्रद्धया परया युतः ।

उपस्पर्शनपङ्कागं लभते पुरुषः सदा ॥ १३

यः साधनार्थं काष्ठानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।

प्रतापार्थं च राजेन्द्र वृत्तवद्भ्यः सदा नरः ॥ १४

सिध्यन्त्यर्थाः सदा तस्य कार्याणि विविधानि च ।

उपर्युपरि शत्रूणां वपुषा दीप्यते च सः ॥ १५

भगवांश्चास्य सुप्रीतो वह्निर्भवति नित्यशः ।

न तं त्यजन्ते पशवः संप्रामे च जयत्यपि ॥ १६

पुत्राञ्छ्रियं च लभते यश्छत्रं संप्रयच्छति ।

चक्षुर्व्याधिं न लभते यज्ञभागमथाश्रुते ॥ १७

निदाघकाले वर्षे वा यश्छत्रं संप्रयच्छति ।

नास्य कश्चिन्मनोदाहः कदाचिदपि जायते ।

कृच्छ्रात्स विषमाच्चैव विप्र मोक्षमवाप्नुते ॥ १८

प्रदानं सर्वदानानां शकटस्य विशिष्यते ।

एवमाह महाभागः शाण्डिल्यो भगवानृषिः ॥ १९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

६५

युधिष्ठिर उवाच ।

दह्यमानाय विप्राय यः प्रयच्छत्युपानहौ ।

यत्फलं तस्य भवति तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १

भीष्म उवाच ।

उपानहौ प्रयच्छेद्यो ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ।

मर्दते कण्टकान्सर्वान्विषमान्निस्तरत्यपि ।

स शत्रूणामुपरि च संतिष्ठति युधिष्ठिर ॥ २

यानं चाश्वतरीयुक्तं तस्य शुभ्रं विशां पते ।

उपतिष्ठति कौन्तेय रूप्यकाञ्चनभूषणम् ।

शकटं दम्यसंयुक्तं दत्तं भवति चैव हि ॥ ३

युधिष्ठिर उवाच ।

यत्फलं तिलदाने च भूमिदाने च कीर्तितम् ।

गोप्रदानेऽन्नदाने च भूयस्तद्ब्रूहि कौरव ॥ ४

भीष्म उवाच ।

शृणुष्व मम कौन्तेय तिलदानस्य यत्फलम् ।

निशम्य च यथान्यायं प्रयच्छ कुरुसत्तम ॥ ५

पितृणां प्रथमं भोज्यं तिलाः सृष्टाः स्वयंभुवा ।

तिलदानेन वै तस्मात्पितृपक्षः प्रमोदते ॥ ६

माघमासे तिलान्यस्तु ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।

सर्वसत्त्वसमाकीर्णं नरकं स न पश्यति ॥ ७

सर्वकामैः स यजते यस्तिलैर्यजते पितृन् ।

न चाकामेन दातव्यं तिलश्राद्धं कथंचन ॥ ८

महर्षेः कश्यपस्यैते गात्रेभ्यः प्रसृतास्तिलाः ।

ततो दिव्यं गता भावं प्रदानेषु तिलाः प्रभो ॥ ९

पौष्टिका रूपदाश्चैव तथा पापविनाशनाः ।

तस्मात्सर्वप्रदानेभ्यस्तिलदानं विशिष्यते ॥ १०

आपस्तम्बश्च मेधावी शङ्खश्च लिखितस्तथा ।

महर्षिगौतमश्चापि तिलदानैर्दिवं गताः ॥ ११

तिलहोमपरा विप्राः सर्वे संयतमैथुनाः ।

समा गन्धेन हविषा प्रवृत्तिषु च संस्थिताः ॥ १२

सर्वेषामेव दानानां तिलदानं परं स्मृतम् ।

अक्षयं सर्वदानानां तिलदानमिहोच्यते ॥ १३

उत्पन्ने च पुरा हव्ये कुशिकर्षिः परंतप ।

तिलैर्मित्रत्रयं हुत्वा प्राप्तवान्गतिमुत्तमाम् ॥ १४

इति प्रोक्तं कुरुश्रेष्ठ तिलदानमनुत्तमम् ।

विधानं येन विधिना तिलानामिह शस्यते ॥ १५

अत ऊर्ध्वं निबोधेदं देवानां यष्टुमिच्छताम् ।

समागमं महाराज ब्रह्मणा वै स्वयंभुवा ॥ १६

देवाः समेत्य ब्रह्माणं भूमिभागं यियक्ष्वः ।

शुभं देशमयाचन्त यजेम इति पार्थिव ॥ १७

देवा ऊचुः ।

भगवंस्त्वं प्रभुर्भूमेः सर्वस्य त्रिदिवस्य च ।

यजेमहि महाभाग यज्ञं भवदनुज्ञया ।

नाननुज्ञातभूमिर्हि यज्ञस्य फलमश्नुते ॥ १८

त्वं हि सर्वस्य जगतः स्थावरस्य चरस्य च ।

प्रभुर्भवसि तस्मात्त्वं समनुज्ञातुमर्हसि ॥ १९

ब्रह्मोवाच ।

ददामि मेदिनीभागं भवद्भ्योऽहं सुरर्षभाः ।

यस्मिन्देसे करिष्यध्वं यज्ञं काश्यपनन्दनाः ॥ २०

देवा ऊचुः ।

भगवन्कृतकामाः स्मो यक्ष्यामस्त्वाप्तदक्षिणैः ।

इमं तु देशं मुनयः पर्युपासन्त नित्यदा ॥ २१

भीष्म उवाच ।

ततोऽगस्त्यश्च कण्वश्च भृगुरत्रिर्वृषाकपिः ।

असितो देवलश्चैव देवयज्ञमुपागमन् ॥ २२

ततो देवा महात्मान ईजिरे यज्ञमच्युत ।

तथा समापयामासुर्यथाकालं सुरर्षभाः ॥ २३

त इष्टयज्ञास्त्रिदशा हिमवत्यचलोत्तमे ।

षष्ठमंश क्रतोस्तस्य भूमिदानं प्रचक्रिरे ॥ २४

प्रादेशमात्रं भूमेस्तु यो दद्यादनुपस्कृतम् ।

न सीदति स कृच्छ्रेषु न च दुर्गाण्यवाप्नुते ॥ २५

शीतवातातपसहां गृहभूमिं सुसंस्कृताम् ।

प्रदाय सुरलोकस्थः पुण्यान्तेऽपि न चाल्यते ॥ २६

मुदितो वसते प्राज्ञः शक्रेण सह पार्थिव ।

प्रतिश्रयप्रदाता च सोऽपि स्वर्गे महीयते ॥ २७

अध्यापककुले जातः श्रोत्रियो नियतेन्द्रियः ।

गृहे यस्य वसेत्तुष्टः प्रधानं लोकमश्नुते ॥ २८

तथा गवार्थे शरणं शीतवर्षसहं महत् ।

आसप्तमं तारयति कुलं भरतसत्तम ॥ २९  
 क्षेत्रभूमिं ददल्लोके पुत्र श्रियमवाप्नुयात् ।  
 रत्नभूमिं प्रदत्त्वा तु कुलवंशं विवर्धयेत् ॥ ३०  
 न चोषरां न निर्दग्धां मही दद्यात्कथंचन ।  
 न श्मशानपरीतां च न च पापनिषेविताम् ॥ ३१  
 पारक्ये भूमिदेशे तु पितृणां निर्वपेत्तु यः ।  
 तद्भूमिस्वामिपितृभिः श्राद्धकर्म विहन्त्यते ॥ ३२  
 तस्मात्कीत्वा महीं दद्यात्स्वल्पामपि विचक्षणः ।  
 पिण्डः पितृभ्यो दत्तो वै तस्यां भवति शाश्वतः ॥  
 अटवीपर्वताश्चैव नदीतीर्थानि यानि च ।  
 सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न हि तत्र परिग्रहः ॥ ३४  
 इत्येतद्भूमिदानस्य फलमुक्तं विशां पते ।  
 अतः परं तु गोदानं कीर्तयिष्यामि तेऽनघ ॥ ३५  
 गावोऽधिकास्तपस्विभ्यो यस्मात्सर्वेभ्य एव च ।  
 तस्मान्महेश्वरो देवस्तपस्ताभिः समास्थितः ॥ ३६  
 ब्रह्मलोके वसन्त्येताः सोमेन सह भारत ।  
 आसां ब्रह्मर्षयः सिद्धाः प्रार्थयन्ति परां गतिम् ॥  
 पयसा हविषा दध्ना शकृताप्यथ चर्मणा ।  
 अस्थिभिश्चोपकुर्वन्ति शृङ्गैर्वालैश्च भारत ॥ ३८  
 नासां शीतातपौ स्यातां सदैताः कर्म कुर्वते ।  
 न वर्षं विषमं वापि दुःखमासां भवत्युत ॥ ३९  
 ब्राह्मणैः सहिता यान्ति तस्मात्परतरं पदम् ।  
 एकं गोब्राह्मणं तस्मात्प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ४०  
 रन्तिदेवस्य यज्ञे ताः पशुत्वेनोपकल्पिताः ।  
 ततश्चर्मण्वती राजन्गोचर्मभ्यः प्रवर्तिता ॥ ४१  
 पशुत्वाच्च विनिर्मुक्ताः प्रदानायोपकल्पिताः ।  
 ता इमा विप्रमुख्येभ्यो यो ददाति महीपते ।  
 निस्तरदापदं कृच्छ्रां विषमस्थोऽपि पार्थिव ॥ ४२  
 गवां सहस्रदः प्रेत्य नरकं न प्रपश्यति ।  
 सर्वत्र विजयं चापि लभते मनुजाधिप ॥ ४३

अमृतं वै गवां क्षीरमित्याह त्रिदशाधिपः ।  
 तस्माद्ददाति यो धेनुममृतं स प्रयच्छति ॥ ४४  
 अग्नीनामव्ययं ह्येतद्वैम्यं वेदविदो विदुः ।  
 तस्माद्ददाति यो धेनुं स हौम्यं संप्रयच्छति ॥ ४५  
 स्वर्गो वै मूर्तिमानेष वृषभं यो गवां पतिम् ।  
 विप्रे गुणयुते दद्यात्स वै स्वर्गे महीयते ॥ ४६  
 प्राणा वै प्राणिनामेते प्रोच्यन्ते भरतर्षभ ।  
 तस्माद्ददाति यो धेनु प्राणान्वै स प्रयच्छति ॥ ४७  
 गावः शरण्या भूतानाग्निं वेदविदो विदुः ।  
 तस्माद्ददाति यो धेनुं शरणं संप्रयच्छति ॥ ४८  
 न वधार्थं प्रदातव्या न कीनाशे न नास्तिके ।  
 गोजीविने न दातव्या तथा गौः पुरुषर्षभ ॥ ४९  
 ददाति तादृशानां वै नरो गाः पापकर्मणाम् ।  
 अक्षयं नरकं यातीत्येवमाहुर्मनीषिणः ॥ ५०  
 न कृशां पापवत्सां वा बन्ध्यां रोगान्वितां तथा ।  
 न व्यङ्गां न परिश्रान्तां दद्याद्वा ब्राह्मणाय वै ॥ ५१  
 दशगोसहस्रदः सम्यक्शक्रेण सह मोदते ।  
 अक्षयार्ल्लभते लोकाग्ररः शतसहस्रदः ॥ ५२  
 इत्येतद्गोप्रदानं च तिलदानं च कीर्तितम् ।  
 तथा भूमिप्रदानं च शृणुष्वान्नं च भारत ॥ ५३  
 अन्नदानं प्रधानं हि कौन्तेय परिचक्षते ।  
 अन्नस्य हि प्रदानेन रन्तिदेवो दिवं गतः ॥ ५४  
 श्रान्ताय क्षुधितायान्नं यः प्रयच्छति भूषिष ।  
 स्वायंभुवं महाभागं स पश्यति नराधिप ॥ ५५  
 न हिरण्यैर्न वासोभिर्नाश्वदानेन भारत ।  
 प्राप्नुवन्ति नराः श्रेयो यथेहान्नप्रदाः प्रभो ॥ ५६  
 अन्नं वै परमं द्रव्यमन्नं श्रीश्च परा मता ।  
 अन्नात्प्राणः प्रभवति तेजो वीर्यं बलं तथा ॥ ५७  
 सद्भ्यो ददाति यश्चान्नं सदैकाग्रमना नरः ।  
 न स दुर्गाण्यवाप्नोतीत्येवमाह पराशरः ॥ ५८

अर्चयित्वा यथान्यायं देवेभ्योऽन्नं निवेदयेत् ।  
 यदन्नो हि नरो राजस्तदन्नास्तस्य देवताः ॥ ५९  
 कौमुद्यां शुक्लपक्षे तु योऽन्नदानं करोत्युत ।  
 स संतरति दुर्गाणि प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ॥ ६०  
 अमुक्त्वातिथये चान्नं प्रयच्छेद्यः समाहितः ।  
 स वै ब्रह्मविदां लोकान्प्राप्नुयाद्भरतर्षभ ॥ ६१  
 सुकृच्छ्रामापदं प्राप्तश्चान्नदः पुरुषस्तरेत् ।  
 पापं तरति चैवेह दुष्कृतं चापकर्षति ॥ ६२  
 इत्येतदन्नदानस्य तिलदानस्य चैव ह ।  
 भूमिदानस्य च फलं गोदानस्य च कीर्तितम् ॥ ६३  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

षष्ठ्यष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

६६

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतं दानफलं तात यत्त्वया परिकीर्तितम् ।  
 अन्नं तु ते विशेषेण प्रशस्तमिह भारत ॥ १  
 पानीयदानं परमं कथं चेह महाफलम् ।  
 इत्येतच्छ्रोतुमिच्छामि विस्तरेण पितामह ॥ २

भीष्म उवाच ।

हन्त ते वर्तयिष्यामि यथावद्भरतर्षभ ।  
 गदतस्तन्ममाद्येह शृणु सत्यपराक्रम ।  
 पानीयदानात्प्रभृति सर्वं वक्ष्यामि तेऽनघ ॥ ३  
 यदन्नं यच्च पानीयं संप्रदायाश्रुते नरः ।  
 न तस्मात्परमं दानं किञ्चिदस्तीति मे मतिः ॥ ४  
 अन्नात्प्राणभृतस्तात प्रवर्तन्ते हि सर्वशः ।  
 तस्मादन्नं परं लोके सर्वदानेषु कथ्यते ॥ ५  
 अन्नाद्बलं च तेजश्च प्राणिनां वर्धते सदा ।  
 अन्नदानमतस्तस्माच्छ्रेष्ठमाह प्रजापतिः ॥ ६  
 सावित्र्या ह्यपि कौन्तेय श्रुतं ते वचनं शुभम् ।  
 यतश्चैतद्यथा चैतद्देवसत्रे महामते ॥ ७

अन्ने दत्ते नरेणेह प्राणा दत्ता भवन्त्युत ।  
 प्राणदानाद्धि परमं न दानमिह विद्यते ॥ ८  
 श्रुतं हि ते महाबाहो लोमशस्यापि तद्वचः ।  
 प्राणान्दत्त्वा कपोताश्च यत्प्राप्तं शिबिना पुरा ॥ ९  
 तां गतिं लभते दत्त्वा द्विजस्यान्नं विशां पते ।  
 गतिं विशिष्टां गच्छन्ति प्राणदा इति नः श्रुतम् ॥  
 अन्नं चापि प्रभवति पानीयात्कुरुसत्तम ।  
 नीरजातेन हि विना न किञ्चित्संप्रवर्तते ॥ ११  
 नीरजातश्च भगवान्सोमो ग्रहगणेश्वरः ।  
 अमृतं च सुधा चैव स्वाहा चैव वषट् तथा ॥ १२  
 अन्नौषध्यो महाराज वीरुधश्च जलोद्भावाः ।  
 यतः प्राणभृतां प्राणाः सभवन्ति विशां पते ॥ १३  
 देवानाममृतं चान्नं नागानां च सुधा तथा ।  
 पितॄणां च स्वधा प्रोक्ता पशूनां चापि वीरुधः ॥  
 अन्नमेव मनुष्याणां प्राणानाहुर्मनीषिणः ।  
 तच्च सर्वं नरव्याघ्र पानीयात्संप्रवर्तते ॥ १५  
 तस्मात्पानीयदानाद्वै न परं विद्यते क्वचित् ।  
 तच्च दद्यान्नरो नित्यं य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ १६  
 धन्यं यश्चस्यमायुष्यं जलदानं विशां पते ।  
 शत्रूंश्चाप्यधि कौन्तेय सदा तिष्ठति तोयदः ॥ १७  
 सर्वकामानवाप्नोति कीर्तिं चैवेह शाश्वतीम् ।  
 प्रेत्य चानन्त्यमाप्नोति पापेभ्यश्च प्रमुच्यते ॥ १८  
 तोयदो मनुजव्याघ्र स्वर्गं गत्वा महाद्युते ।  
 अक्षयान्समवाप्नोति लोकानित्यब्रवीन्मनुः ॥ १९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

षष्ठ्यष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

६७

युधिष्ठिर उवाच ।

तिलानां कीदृशं दानमथ दीपस्य चैव ह ।  
 अन्नानां वाससां चैव भूय एव ब्रवीहि मे ॥ १

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 ब्राह्मणस्य च संवादं यमस्य च युधिष्ठिर ॥ २  
 मध्यदेशे महान्ग्रामो ब्राह्मणानां बभूव ह ।  
 गङ्गायमुनयोर्मध्ये यामुनस्य गिरेरधः ॥ ३  
 पर्णशालेति विख्यातो रमणीयो नराधिप ।  
 विद्वांसस्तत्र भूयिष्ठा ब्राह्मणाश्चावसंस्तदा ॥ ४  
 अथ प्राह यमः कंचित्पुरुषं कृष्णवाससम् ।  
 रक्ताक्षभूर्ध्वरोमाणं काकजङ्घाक्षिनासिकम् ॥ ५  
 गच्छ त्वं ब्राह्मणग्रामं ततो गत्वा तमानय ।  
 अगस्त्यं गोत्रतश्चापि नामतश्चापि शर्मिणम् ॥ ६  
 शमे निविष्टं विद्वांसमध्यापकमनादृतम् ।  
 मा चान्यमानयेथास्त्वं सगोत्रं तस्य पार्श्वतः ॥ ७  
 स हि तादृग्गुणस्तेन तुल्योऽध्ययनजन्मना ।  
 अपत्येषु तथा वृत्ते समस्तेनैव धीमता ।  
 तमानय यथोद्दिष्टं पूजा कार्या हि तस्य मे ॥ ८  
 स गत्वा प्रतिकूलं तच्चकार यमशासनम् ।  
 तमाक्रम्यानयामास प्रतिपिद्धो यमेन यः ॥ ९  
 तस्मै यमः समुत्थाय पूजां कृत्वा च वीर्यवान् ।  
 प्रोवाच नीयतामेष सोऽन्य आनीयतामिति ॥ १०  
 एवमुक्ते तु वचने धर्मराजेन स द्विजः ।  
 उवाच धर्मराजानं निर्विण्णोऽध्ययनेन वै ।  
 यो मे कालो भवेच्छेषस्तं वसेयमिहाच्युत ॥ ११

यम उवाच ।

नाहं कालस्य विहितं प्राप्नोमीह कथंचन ।  
 यो हि धर्मं चरति वै तं तु जानामि केवलम् ॥ १२  
 गच्छ विप्र त्वमद्यैव आलथं स्वं महाद्युते ।  
 ब्रूहि वा त्वं यथा स्वैरं करवाणि किमित्युत ॥ १३

ब्राह्मण उवाच ।

यत्तत्र कृत्वा सुमहत्पुण्यं स्यात्तद्व्रवीहि मे ।

सर्वस्य हि प्रमाणं त्वं त्रैलोक्यस्यापि सत्तम ॥ १४

यम उवाच ।

शृणु तत्त्वेन विप्रर्षे प्रदानविधिमुत्तमम् ।  
 तिलाः परमकं दानं पुण्यं चैवेह शाश्वतम् ॥ १५  
 तिलाश्च संप्रदातव्या यथाशक्ति द्विजर्षभ ।  
 नित्यदानात्सर्वकामांस्तिला निर्वर्तयन्त्युत ॥ १६  
 तिलाञ्छ्राद्धे प्रशंसन्ति दानमेतद्ध्यनुत्तमम् ।  
 तान्प्रयच्छस्व विप्रेभ्यो विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १७  
 तिला भक्षयितव्याश्च सदा त्वालभनं च तैः ।  
 कार्यं सततमिच्छद्भिः श्रेयः सर्वात्मना गृहे ॥ १८  
 तथापः सर्वदा देयाः पेयाश्चैव न संशयः ।  
 पुष्करिण्यस्तडागानि कूपांश्चैवात्र खानयेत् ॥ १९  
 एतत्सुदुर्लभतरमिह लोके द्विजोत्तम ।  
 आपो नित्यं प्रदेयास्ते पुण्यं ह्येतदनुत्तमम् ॥ २०  
 प्रपाश्च कार्याः पानार्थं नित्यं ते द्विजसत्तम ।  
 भुक्तेऽप्यथ प्रदेयं ते पानीयं वै विशेषतः ॥ २१  
 इत्युक्ते स तदा तेन यमदूतेन वै गृहान् ।  
 नीतश्चकार च तथा सर्वं तद्यमशासनम् ॥ २२  
 नीत्वा तं यमदूतोऽपि गृहीत्वा शर्मिणं तदा ।  
 ययौ स धर्मराजाय न्यवेदयत् चापि तम् ॥ २३  
 तं धर्मराजो धर्मज्ञं पूजयित्वा प्रतापवान् ।  
 कृत्वा च संविद् तेन विससर्ज यथागतम् ॥ २४  
 तस्यापि च यमः सर्वमुपदेशं चकार ह ।  
 प्रत्येत्य च स तत्सर्वं चकारोक्तं यमेन तत् ॥ २५  
 तथा प्रशंसते दीपान्यमः पितृहितेप्सया ।  
 तस्माद्दीपप्रदो नित्यं संतारयति वै पितॄन् ॥ २६  
 दातव्याः सततं दीपास्तस्माद्भरतसत्तम ।  
 देवानां च पितॄणां च चक्षुष्यास्ते मताः प्रभो ॥  
 रत्नदानं च सुमहत्पुण्यमुक्तं जनाधिप ।  
 तानि विक्रीय यजते ब्राह्मणो ह्यभयंकरः ॥ २८

यद्वे ददाति विप्रेभ्यो ब्राह्मणः प्रतिगृह्य वै ।  
 उभयोः स्यात्तदक्षयं दातुरादातुरेव च ॥ २९  
 यो ददाति स्थितः स्थित्यां तादृशाय प्रतिग्रहम् ।  
 उभयोरक्षयं धर्मं तं मनुः ग्राह्यं धर्मवित् ॥ ३०  
 वाससां तु प्रदानेन स्वदारनिरतो नरः ।  
 सुवस्त्रश्च सुवेषश्च भवतीत्यनुशुभम् ॥ ३१  
 गावः सुवर्णं च तथा तिलाश्चैवानुवर्णिताः ।  
 बहुशः पुरुषव्याघ्र वेदप्रामाण्यदर्शनात् ॥ ३२  
 विवाहांश्चैव कुर्वीत पुत्रानुत्पादयेत् च ।  
 पुत्रलाभो हि कौरव्य सर्वलाभाद्विशिष्यते ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनतर्पण

सप्तषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

६८

युधिष्ठिर उवाच ।

भूय एव कुरुश्रेष्ठ दानानां विधिमुत्तमम् ।  
 कथयस्व महाभाग भूमिदानं विशेषतः ॥ १  
 पृथिवी क्षत्रियो दद्याद्ब्राह्मणस्तां स्वकर्मणा ।  
 विधिवत्प्रतिगृह्णीयात् त्वन्यो दातुमर्हति ॥ २  
 सर्ववर्णैस्तु यच्छक्यं प्रदातुं फलकाङ्क्षिभिः ।  
 वेदे वा यत्समाम्नातं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३

भीष्म उवाच ।

तुल्यनामानि देयानि त्रीणि तुल्यफलानि च ।  
 सर्वकामफलानीह गावः पृथ्वी सरस्वती ॥ ४  
 यो ब्रूयाच्चापि शिष्याय धर्म्या ब्राह्मी सरस्वतीम् ।  
 पृथिवीगोप्रदानाभ्यां स तुल्य फलमश्नुते ॥ ५  
 तथैव गाः प्रशंसन्ति न च देयं ततः परम् ।  
 संनिवृष्टफलास्ता हि लघ्वर्थाश्च युधिष्ठिर ।  
 मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः ॥ ६  
 वृद्धिमाकाङ्क्षता नित्यं गावः कार्याः प्रदक्षिणाः ।  
 मङ्गलायतनं देव्यस्तस्मात्पूज्याः सदैव हि ॥ ७

प्रचोदनं देवकृतं गवां कर्मसु वर्तताम् ।  
 पूर्वमेवाक्षरं नान्यदभिधेयं कथंचन ॥ ८  
 प्रचारे वा निपाने वा बुधो नोद्वेजयेत् गाः ।  
 तृपिता ह्यभिवीक्षन्त्यो नरं हन्युः सबान्धवम् ॥  
 पितृसद्धानि सततं देवतायतनानि च ।  
 पूयन्ते शकृता यासां पूतं किमधिकं ततः ॥ १०  
 ग्रासमुष्टिं परगवे दद्यात्संवत्सरं तु यः ।  
 अकृत्वा स्वयमाहारं व्रतं तत्सार्वकामिकम् ॥ ११  
 स हि पुत्रान्यशोऽर्थं च श्रियं चाप्यधिगच्छति ।  
 नाशयत्यशुभं चैव दुःस्वप्नं च व्यपोहति ॥ १२

युधिष्ठिर उवाच ।

देयाः किलक्षणा गावः काश्चापि परिवर्जयेत् ।  
 कीदृशाय प्रदातव्या न देयाः कीदृशाय च ॥ १३

भीष्म उवाच ।

असद्वृत्ताय पापाय लुब्धायानृतवादिने ।  
 हन्यकन्यव्यपेताय न देया गौः कथंचन ॥ १४  
 भिक्षवे बहुपुत्राय श्रोत्रियायाहिताग्नये ।  
 दत्त्वा दशगवां दाता लोकानाप्नोत्यनुत्तमान् ॥ १५  
 यं चैव धर्मं कुरुते तस्य पुण्यफलं च यत् ।  
 सर्वस्यैवांशभागदाता तन्निमित्तं प्रवृत्तयः ॥ १६  
 यश्चैनमुत्पादयति यश्चैनं त्रायते भयात् ।  
 यश्चास्य कुरुते वृत्तिं सर्वे ते पितरस्त्रयः ॥ १७  
 कल्मषं गुरुशुश्रूषा हन्ति मानो महद्यशः ।  
 अपुत्रतां त्रयः पुत्रा अवृत्तिं दश धेनवः ॥ १८

वेदान्तनिष्ठस्य बहुश्रुतस्य

प्रज्ञानवृत्तस्य जितेन्द्रियस्य ।

शिष्टस्य दान्तस्य यतस्य चैव

भूतेषु नित्यं प्रियवादिनश्च ॥ १९

यः क्षुद्रयाद्वै न विकर्म कुर्या-

न्मृदुर्दान्तश्चातिथेयश्च नित्यम् ।



वृत्ति विप्रायातिसृजेत तस्मै

यस्तुल्यशीलश्च सपुत्रदारः ॥ २०

शुभे पात्रे ये गुणा गोप्रदाने

तावान्दोषो ब्राह्मणस्वापहारे ।

सर्वावस्थं ब्राह्मणस्वापहारो

दाराश्चैषां दूरतो वर्जनीयाः ॥ २१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

अष्टषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

६९

भीष्म उवाच ।

अत्रैव कीर्त्यते सद्भिर्ब्राह्मणस्वाभिमर्शने ।

नृगेण सुमहत्कृच्छ्रं यदवाप्तं कुरुद्वह ॥ १

निविशन्त्यां पुरा पार्थ द्वारवत्यामिति श्रुतिः ।

अदृश्यत महाकूपस्तृणवीरुत्समावृतः ॥ २

प्रयत्नं तत्र कुर्वाणास्तस्मात्कूपाज्जलार्थिनः ।

श्रमेण महता युक्तास्तस्मिन्तोये सुसंवृते ॥ ३

ददृशुस्ते महाकायं कृकलासमवस्थितम् ।

तस्य चोद्धरणे यत्नमकुर्वन्ते सहस्रशः ॥ ४

प्रग्रहैश्चर्मपट्टैश्च तं बद्ध्वा पर्वतोपमम् ।

नाशक्वन्समुद्धर्तुं ततो जग्मुर्जनार्दनम् ॥ ५

खमावृत्योदपानस्य कृकलासः स्थितो महान् ।

तस्य नास्ति समुद्धर्तेत्यथ कृष्णे न्यवेदयन् ॥ ६

स वासुदेवेन समुद्धृतश्च

पृष्ठश्च कामान्निजगाद राजा ।

नृगस्तदात्मानमथो न्यवेदय-

त्पुरातनं यज्ञसहस्रयाजिनम् ॥ ७

तथा ब्रुवाणं तमाह माधवः

शुभं त्वया कर्म कृतं न पापकम् ।

कथं भवान्दुर्गतिमीदृशीं गतो

नरेन्द्र तद्ब्रूहि किमेतदीदृशम् ॥ ८

शतं सहस्राणि शत गवां पुनः

पुनः शतान्यष्ट शतायुतानि ।

त्वया पुरा दत्तमितीह शुश्रुम

नृप द्विजेभ्यः क नु तद्गतं तव ॥ ९

नृगस्ततोऽब्रवीत्कृष्णं ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ।

प्रोषितस्य परिभ्रष्टा गौरेका मम गोधने ॥ १०

गवां सहस्रे संख्याता तदा सा पशुपैर्मम ।

सा ब्राह्मणाय मे दत्ता प्रेत्यार्थमभिकाङ्क्षता ॥ ११

अपश्यत्यपरिमार्गश्च तां यां परगृहे द्विजः ।

ममेयमिति चोवाच ब्राह्मणो यस्य साभवत् ॥ १२

तावुभौ समनुप्राप्तौ विवदन्तौ भृशज्वरौ ।

भवान्दाता भवान्द्वर्तेत्यथ तौ मां तदोचतुः ॥ १३

शतेन शतसंख्येन गवां विनिमयेन वै ।

याचे प्रतिग्रहीतारं स तु मामब्रवीदिदम् ॥ १४

देशकालोपसंपन्ना दोग्ध्री क्षान्ताविवत्सला ।

स्वादुक्षीरप्रदा धन्या मम नित्यं निवेशने ॥ १५

कृशं च भरते या गौर्मम पुत्रमपस्तनम् ।

न सा शक्या मया हातुमित्युक्त्वा स जगाम ह ॥

ततस्तमपरं विप्रं याचे विनिमयेन वै ।

गवां शतसहस्रं वै तत्कृते गृह्यतामिति ॥ १७

ब्राह्मण उवाच ।

न राज्ञां प्रतिगृह्णामि शक्तोऽहं स्वस्य मार्गणे ।

सैव गौर्दीयतां शीघ्रं ममेति मधुसूदन ॥ १८

रुक्ममश्वान्श्च ददतो रजतं स्यन्दनांस्तथा ।

न जग्राह ययौ चापि तदा स ब्राह्मणर्षभः ॥ १९

एतस्मिन्नेव काले तु चोदितः कालधर्मणा ।

पितृलोकमहं प्राप्य धर्मराजमुपागमम् ॥ २०

यमस्तु पूजयित्वा मां ततो वचनमब्रवीत् ।

नान्तः संख्यायते राजंस्त्व पुण्यस्य कर्मणः ॥ २१

अस्ति चैव कृतं पापमज्ञानात्तदपि त्वया ।

चरस्व पापं पश्चाद्वा पूर्वं वा त्वं यथेच्छसि ॥ २२  
 रक्षितास्मीति चोक्तं ते प्रतिज्ञा चानृता तव ।  
 ब्राह्मणस्वस्य चादानं त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ॥ २३  
 पूर्वं कृच्छ्रं चरिष्येऽहं पश्चाच्छुभमिति प्रभो ।  
 धर्मराजं ब्रुवन्नेवं पतितोऽस्मि महीतले ॥ २४  
 अश्रौषं प्रच्युतश्चाहं यमस्योच्चैः प्रभाषतः ।  
 वासुदेवः समुद्धर्ता भविता ते जनार्दनः ॥ २५  
 पूर्णे वर्षसहस्रान्ते क्षीणे कर्मणि दुष्कृते ।  
 प्राप्स्यसे शाश्वताल्लोकाञ्जितान्स्वेनैव कर्मणा ॥ २६  
 कूपेऽऽत्मानमधःशीर्षमपश्यं पतितं च ह ।  
 तिर्यग्योनिमनुप्राप्तं न तु मामजहात्स्मृतिः ॥ २७  
 त्वया तु तारितोऽस्म्यद्य किमन्यत्र तपोबलात् ।  
 अनुजानीहि मां कृष्ण गच्छेयं दिवमद्य वै ॥ २८  
 अनुज्ञातः स कृष्णेन नमस्कृत्य जनार्दनम् ।  
 विमानं दिव्यमास्थाय ययौ दिवमरिन्दम ॥ २९  
 ततस्तस्मिन्दिवं प्राप्ते नृगे भरतसत्तम ।  
 वासुदेव इमं श्लोकं जगाद कुरुनन्दन ॥ ३०  
 ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यं पुरुषेण विजानता ।  
 ब्राह्मणस्वं हृतं हन्ति नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥ ३१  
 सतां समागमः सद्भिर्नाफलः पार्थ विद्यते ।  
 विमुक्तं नरकात्पश्य नृगं साधुसमागमात् ॥ ३२  
 प्रदानं फलवत्तत्र द्रोहस्तत्र तथाफलः ।  
 अपचारं गवां तस्माद्वर्जयेत युधिष्ठिर ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

७०

युधिष्ठिर उवाच ।

दत्तानां फलसंप्राप्तिं गवां प्रब्रूहि मेऽनघ ।  
 विस्तरेण महाबाहो न हि तृप्यामि कथ्यताम् ॥ १

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 ऋषेरुद्दालकेर्वाक्यं नाचिकेतस्य चोभयोः ॥ २  
 ऋषिरुद्दालकिर्दीक्षामुपगम्य ततः सुतम् ।  
 त्वं मामुपचरस्वेति नाचिकेतमभाषत ।  
 समाप्ते नियमे तस्मिन्महर्षिः पुत्रमब्रवीत् ॥ ३  
 उपस्पर्शनसक्तस्य स्वाध्यायनिरतस्य च ।  
 इध्मा दर्भाः सुमनसः कलशश्चाभितो जलम् ।  
 विस्मृतं मे तदादाय नदीतीरादिहाव्रज ॥ ४  
 गत्वानवाप्य तत्सर्वं नदीवेगसमाप्लुतम् ।  
 न पश्यामि तदित्येवं पितरं सोऽब्रवीन्मुनिः ॥ ५  
 क्षुत्पिपासाश्रमाविष्टो मुनिरुद्दालकिस्तदा ।  
 यमं पश्येति तं पुत्रमशप्तस महातपाः ॥ ६  
 तथा स पित्राभिहतो वाग्वज्रेण कृताञ्जलिः ।  
 प्रसीदेति ब्रुवन्नेव गतसत्त्वोऽपतद्भुवि ॥ ७  
 नाचिकेतं पिता दृष्ट्वा पतितं दुःखमूर्छितः ।  
 किं मया कृतमित्युक्त्वा निपपात महीतले ॥ ८  
 तस्य दुःखपरीतस्य स्वं पुत्रमुपगूहतः ।  
 व्यतीतं तदहःशेषं सा चोग्रा तत्र शर्वरी ॥ ९  
 पित्र्येणाश्रुप्रपातेन नाचिकेतः कुरुद्वह ।  
 प्रास्पन्दच्छयने कौश्ये वृष्ट्या सस्यमिवाप्लुतम् ॥ १०  
 स पर्यपृच्छत्तं पुत्रं श्लाघ्यं प्रत्यागतं पुनः ।  
 दिव्यैर्गन्धैः समादिग्धं क्षीणस्वप्नमिवोत्थितम् ॥ ११  
 अपि पुत्र जिता लोकाः शुभास्ते स्वेन कर्मणा ।  
 दिष्ट्या चासि पुनः प्राप्तो न हि ते मानुषं वपुः ॥  
 प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य पित्रा पृष्ठो महात्मना ।  
 अन्वर्थं तं पितुर्मध्ये महर्षीणां न्यवेदयत् ॥ १३

कुर्वन्भवच्छासनमाशु यातो

ह्यहं विशालां रुचिरप्रभावाम् ।

वैवस्वतीं प्राप्य सभामपश्यं

सहस्रशो योजनहैमभौमाम् ॥ १४  
 दृष्ट्वैव मामभिमुखमापतन्तं  
 गृहं निवेद्यासनमादिदेश ।  
 वैवस्वतोऽर्घ्यादिभिरर्हणैश्च  
 भवत्कृते पूजयामास मां सः ॥ १५  
 ततस्त्वहं त शनकैरवोचं  
 वृतं सदस्यैरभिपूज्यमानम् ।  
 प्राप्तोऽस्मि ते विषयं धर्मराज  
 लोकानर्हे यान्स्म तान्मे विधत्स्व ॥ १६  
 यमोऽब्रवीन्मां न मृतोऽसि सौम्य  
 यमं पश्येत्याह तु त्वां तपस्वी ।  
 पिता प्रदीप्ताग्निसमानतेजा  
 न तच्छक्यमनृतं विप्र कर्तुम् ॥ १७  
 दृष्टस्तेऽहं प्रतिगच्छस्व तात  
 शोचत्यसौ तव देहस्य कर्ता ।  
 ददामि किं चापि मनःप्रणीतं  
 प्रियातिथे तव कामान्वृणीष्व ॥ १८  
 तेनैवमुक्तस्तमहं प्रत्यवोचं  
 प्राप्तोऽस्मि ते विषयं दुर्निवर्त्यम् ।  
 इच्छाम्यहं पुण्यकृतां समृद्धा-  
 ल्लोकान्द्रष्टुं यदि तेऽहं वरार्हः ॥ १९  
 यानं समारोप्य तु मां स देवो  
 बाहैर्युक्तं सुप्रभं भानुमन्तम् ।  
 संदर्शयामास तदा स्म लोका-  
 न्सर्वास्तदा पुण्यकृता द्विजेन्द्र ॥ २०  
 अपश्यं तत्र वेश्मानि तैजसानि कृतात्मनाम् ।  
 नानासंस्थानरूपाणि सर्वरत्नमयानि च ॥ २१  
 चन्द्रमण्डलशुभ्राणि किङ्किणीजालवन्ति च ।  
 अनेकशतभौमानि सान्तर्जलवनानि च ॥ २२  
 वैडूर्यार्कप्रकाशानि रूप्यरुक्ममयानि च ।

तरुणादित्यवर्णानि स्थावराणि चराणि च ॥ २३  
 भक्ष्यभोज्यमयाञ्छैलान्वासांसि शयनानि च ।  
 सर्वकामफलांश्चैव वृक्षान्भवनसंस्थितान् ॥ २४  
 नद्यो वीथ्यः सभा वापी दीर्घिकाश्चैव सर्वशः ।  
 घोषवन्ति च यानानि युक्तान्येव सहस्रशः ॥ २५  
 क्षीरस्रवा वै सरितो गिरीश्च  
 सर्पिस्तथा विमलं चापि तोयम् ।  
 वैवस्वतस्यानुमतांश्च देशा-  
 नदृष्टपूर्वान्सुबहूनपश्यम् ॥ २६  
 सर्व दृष्ट्वा तदहं धर्मराज-  
 मवोचं वै प्रभविष्णुं पुराणम् ।  
 क्षीरस्थैताः सर्पिषश्चैव नद्यः  
 शश्वत्स्रोताः कस्य भोज्याः प्रदिष्टाः ॥ २७  
 यमोऽब्रवीद्विद्धि भोज्यास्त्वमेता  
 ये दातारः साधवो गोरसानाम् ।  
 अन्ये लोकाः शाश्वता वीतशोकाः  
 समाकीर्णा गोप्रदाने रतानाम् ॥ २८  
 न त्वेवासां दानमात्रं प्रशस्तं  
 पात्रं कालो गोविशेषो विधिश्च ।  
 ज्ञात्वा देया विप्र गवान्तरं हि  
 दुःखं ज्ञातुं पावकादित्यभूतम् ॥ २९  
 स्वाध्यायाढ्यो योऽतिमात्रं तपस्वी  
 वैतानस्थो ब्राह्मणः पात्रमासाम् ।  
 कृच्छ्रोत्सृष्टाः पोषणाभ्यागताश्च  
 द्वारैरेतैर्गोविशेषाः प्रशस्ताः ॥ ३०  
 तिस्रो रात्रीरद्विरूपोष्य भूमौ  
 वृषा गावस्तर्पितेभ्यः प्रदेयाः ।  
 वत्सैः प्रीताः सुप्रजाः सोपचारा-  
 स्त्र्यहं दत्त्वा गोरसैर्वर्तितव्यं ॥ ३१  
 दत्त्वा घेनुं सुव्रतां कांस्यदोहां

कल्याणवत्सामपलायिनीं च ।  
 यावन्ति लोमानि भवन्ति तस्या-  
 स्तावद्वर्षाण्यश्रुते स्वर्गलोकम् ॥ ३२  
 तथानङ्गाहं ब्राह्मणाय प्रदाय  
 दान्तं धुर्यं बलवन्तं युवानम् ।  
 कुलानुजीवं वीर्यवन्तं बृहन्तं  
 भुङ्क्ते लोकान्संमितान्धेनुदस्य ॥ ३३  
 गोषु क्षान्तं गोशरण्यं कृतज्ञं  
 वृत्तिग्लानं तादृशं पात्रमाहुः ।  
 वृत्तिग्लाने संभ्रमे वा महार्थे  
 कृष्यर्थे वा होमहेतोः प्रसूत्याम् ॥ ३४  
 गुर्वर्थे वा बालपुष्ट्याभिषङ्गा-  
 द्भावो दातुं देशकालोऽविशिष्टः ।  
 अन्तर्जाताः सुक्रयज्ञानलब्धाः  
 प्राणक्रीता निर्जिताश्चौदकाश्च ॥ ३५  
 नाचिकेत उवाच ।  
 श्रुत्वा वैवस्वतवचस्तमहं पुनरब्रुवम् ।  
 अगोमी गोप्रदातृणां कथं लोकान्निगच्छति ॥ ३६  
 ततो यमोऽब्रवीद्धीमान्गोप्रदाने परां गतिम् ।  
 गोप्रदानानुकल्पं तु गामृते सन्ति गोप्रदाः ॥ ३७  
 अलाभे यो गवां दद्याद्भृतधेनुं यतव्रतः ।  
 तस्यैता घृतवाहिन्यः क्षरन्ते वत्सला इव ॥ ३८  
 घृतालाभे च यो दद्यात्तिलधेनुं यतव्रतः ।  
 स दुर्गात्तारितो धेन्वा क्षीरनद्यां प्रमोदते ॥ ३९  
 तिलालाभे च यो दद्याज्जलधेनुं यतव्रतः ।  
 स कामप्रवहां शीतां नदीमेतामुषाश्रुते ॥ ४०  
 एवमादीनि मे तत्र धर्मराजो न्यदर्शयत् ।  
 दृष्ट्वा च परमं हर्षमवापमहमच्युत ॥ ४१  
 निवेदये चापि प्रियं भवत्सु  
 क्रतुर्महानल्पधनप्रचारः ।

प्राप्तो मया तात स मत्प्रसूतः  
 प्रपत्स्यते वेदविधिप्रवृत्तः ॥ ४२  
 शापो ह्ययं भवतोऽनुग्रहाय  
 प्राप्तो मया यत्र दृष्टो यमो मे ।  
 दानव्युष्टिं तत्र दृष्ट्वा महार्थं  
 निःसंदिग्धं दानधर्माश्चरिष्ये ॥ ४३  
 इदं च मामब्रवीद्धर्मराजः  
 पुनः पुनः संप्रहृष्टो द्विजर्षे ।  
 दानेन तात प्रयतोऽभूः सदैव  
 विशेषतो गोप्रदानं च कुर्याः ॥ ४४  
 शुद्धो ह्यर्थो नावमन्यः स्वधर्मा-  
 त्पात्रे देयं देशकालोपपन्ने ।  
 तस्माद्भावस्ते नित्यमेव प्रदेया  
 मा भूष्य ते संशयः कश्चिदत्र ॥ ४५  
 एताः पुरा अददन्नित्यमेव  
 शान्तात्मानो दानपथे निविष्टाः ।  
 तपांस्युप्राण्यप्रतिशङ्कमाना-  
 स्ते वै दानं प्रददुश्चापि शक्त्या ॥ ४६  
 काले शक्त्या मत्सरं वर्जयित्वा  
 शुद्धात्मानः श्रद्धिनः पुण्यशीलाः ।  
 दत्त्वा तत्त्वा लोकममुं प्रपन्ना  
 देदीप्यन्ते पुण्यशीलाश्च नाके ॥ ४७  
 एतद्दानं न्यायलब्धं द्विजेभ्यः  
 पात्रे दत्तं प्रापणीयं परीक्ष्य ।  
 काम्याष्टम्यां वर्तितव्यं दशाहं  
 रसैर्गवां शक्ता प्रस्नवैर्वा ॥ ४८  
 वेदव्रती स्याद्वृषभप्रदाता  
 वेदावाप्तिर्गोयुगस्य प्रदाने  
 तीर्थावाप्तिर्गोप्रयुक्तप्रदाने  
 पापोत्सर्गः कपिलायाः प्रदाने ॥ ४९

गामप्येकां कपिलां संप्रदाय  
 न्यायोपेतां कल्मषाद्विप्रमुच्येत् ।  
 गवां रसात्परमं नास्ति किञ्चि-  
 द्गवां दानं सुमहत्तद्वदन्ति ॥ ५०  
 गावो लोकान्धारयन्ति क्षरन्त्यो  
 गावश्चान्नं संजनयन्ति लोके ।  
 यस्तज्जानन्न गवां हार्दमेति  
 स वै गन्ता निरयं पापचेताः ॥ ५१  
 यत्ते दातुं गोसहस्रं शतं वा  
 शतार्धं वा दश वा साधुवत्साः ।  
 अप्येकां वा साधये ब्राह्मणाय  
 सास्यामुष्मिन्पुण्यतीर्था नदी वै ॥ ५२  
 प्रात्या पुष्ट्या लोकसंरक्षणेन  
 गावस्तुल्याः सूर्यपादैः पृथिव्याम् ।  
 शब्दश्चैकः संततिश्चोपभोग-  
 स्तस्माद्गोदः सूर्य इवाभिभाति ॥ ५३  
 गुरुं शिष्यो वरयेद्गोप्रदाने  
 स वै वक्ता नियतं स्वर्गदाता ।  
 विधिज्ञानां सुमहानेष धर्मो  
 विधि ह्याद्यं विधयः संश्रयन्ति ॥ ५४  
 एतद्दानं न्यायलब्धं द्विजेभ्यः  
 पात्रे दत्त्वा प्रापयेथाः परीक्ष्य ।  
 त्वय्याशंसन्त्यमरा मानवाश्च  
 वयं चापि प्रसृते पुण्यशीलाः ॥ ५५  
 इत्युक्तोऽहं धर्मराज्ञा महर्षे  
 धर्मात्मानं शिरसाभिप्रणम्य ।  
 अनुज्ञातस्तेन वैवस्वतेन  
 प्रत्यागमं भगवत्पादमूलम् ॥ ५६  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

७१

युधिष्ठिर उवाच ।

उक्तं वै गोप्रदानं ते नाचिकेतमृषिं प्रति ।  
 माहात्म्यमपि चैवोक्तमुद्देशेन गवां प्रभो ॥ १  
 नृगेण च यथा दुःखमनुभूतं महात्मना ।  
 एकापराधादज्ञानात्पितामह महामते ॥ २  
 द्वारवत्यां यथा चासौ निविशन्त्यां समुद्धृतः ।  
 मोक्षहेतुरभूत्कृष्णस्तदप्यवधृतं मया ॥ ३  
 किं त्वस्ति मम संदेहो गवां लोकं प्रति प्रभो ।  
 तत्त्वतः श्रोतुमिच्छामि गोदा यत्र विशन्त्युत ॥ ४

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 यथापृच्छत्पद्मयोनिमेतदेव शतक्रतुः ॥ ५

शक्र उवाच ।

स्वर्लोकवासिनां लक्ष्मीमभिभूय स्वया त्विषा ।  
 गोलोकवासिनः पश्ये ब्रजतः संशयोऽत्र मे ॥ ६  
 कीदृशा भगवल्लोका गवां तद्ब्रूहि मेऽनघ ।  
 यानावसन्ति दातार एतदिच्छामि वेदितुम् ॥ ७  
 कीदृशाः किंफलाः कःस्वित्परमस्तत्र वै गुणः ।  
 कथं च पुरुषास्तत्र गच्छन्ति विगतज्वराः ॥ ८  
 कियत्कालं प्रदानस्य दाता च फलमश्नुते ।  
 कथं बहुविधं दानं स्यादल्पमपि वा कथम् ॥ ९  
 बहूनां कीदृशं दानमल्पानां वापि कीदृशम् ।  
 अदत्त्वा गोप्रदाः सन्ति केन वा तच्च शंस मे ॥ १०  
 कथं च बहुदाता स्यादल्पदात्रा समः प्रभो ।  
 अल्पप्रदाता बहुदः कथं च स्यादिहेश्वर ॥ ११  
 कीदृशी दक्षिणा चैव गोप्रदाने विशिष्यते ।  
 एतत्तथ्येन भगवन्मम शंसितुमर्हसि ॥ १२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

७२

ब्रह्मोवाच ।

योऽयं प्रभस्त्वया पृष्ठो गोप्रदानाधिकारवात् ।  
 नास्य प्रष्टास्ति लोकेऽस्मिन्स्त्वत्तोऽन्यो हि शतक्रतो ॥  
 सन्ति नानाविधा लोका यांस्त्वं शक्र न पश्यसि ।  
 पश्यामि यानहं लोकानेकपत्न्यश्च याः स्त्रियः ॥२  
 कर्मभिश्चापि सुशुभैः सुव्रता ऋषयस्तथा ।  
 सशरीरा हि तान्यान्ति ब्राह्मणाः शुभवृत्तयः ॥ ३  
 शरीरन्यासमोक्षेण मनसा निर्मलेन च ।  
 स्वप्नभूतांश्च ताल्लोकान्पश्यन्तीहापि सुव्रताः ॥ ४  
 ते तु लोकाः सहस्राक्ष शृणु यादृग्गुणान्विताः ।  
 न तत्र क्रमते कालो न जरा न च पापकम् ।  
 तथान्यत्राशुभं किञ्चिन्न व्याधिसत्र न कुमः ॥ ५  
 यद्यच्च गावो मनसा तस्मिन्वाञ्छन्ति वासव ।  
 तत्सर्वं प्रापयन्ति स्म मम प्रत्यक्षदर्शनात् ।  
 कामगाः कामचारिण्यः कामात्कामांश्च भुञ्जते ॥६  
 वाप्यः सरांसि सरितो विविधानि वनानि च ।  
 गृहाणि पर्वताश्चैव यावद्रव्यं च किञ्चन ॥ ७  
 मनोज्ञं सर्वभूतेभ्यः सर्वं तत्र प्रदृश्यते ।  
 ईदृशान्विद्धि ताल्लोकान्नास्ति लोकस्ततोऽधिकः ॥  
 तत्र सर्वसहाः क्षान्ता वत्सला गुरुवर्तिनः ।  
 अहंकारैर्विरहिता यान्ति शक्र नरोत्तमाः ॥ ९  
 यः सर्वमांसानि न भक्षयति  
 पुमान्सदा यावदन्ताय युक्तः ।  
 मातापित्रोरर्चिता सत्ययुक्तः  
 शुश्रूषिता ब्राह्मणानामनिन्द्यः ॥ १०  
 अक्रोधनो गोषु तथा द्विजेषु  
 धर्मे रतो गुरुशुश्रूषकश्च ।  
 यावज्जीवं सत्यवृत्ते रतश्च  
 दाने रतो यः क्षमी चापराधे ॥ ११

मृदुर्दान्तो देवपरायणश्च

सर्वातिथिश्चापि तथा दयावान् ।

ईदृग्गुणो मानवः संप्रयाति

लोकं गवां शाश्वतं चाव्ययं च ॥ १२

न पारदारी पश्यति लोकमेनं

न वै गुरुघ्नो न मृषाप्रलापी ।

सदापवादी ब्राह्मणः शान्तवेदो

दोषैरन्यैर्यश्च युक्तो दुरात्मा ॥ १३

न मित्रघ्नैर्द्वैकृतिकः कृतघ्नः

शठोऽनृजुर्धर्मविद्वेषकश्च ।

न ब्रह्महा मनसापि प्रपश्ये-

द्वान् लोकं पुण्यकृतां निवासम् ॥ १४

एतत्ते सर्वमाख्यातं नैपुणेन सुरेश्वर ।

गोप्रदानरतानां तु फलं शृणु शतक्रतो ॥ १५

दायाद्यलब्धैरर्थैर्यो गाः क्रीत्वा संप्रयच्छति ।

धर्मार्जितधनक्रीतान्स लोकानश्नुतेऽक्षयान् ॥ १६

यो वै द्यूते धनं जित्वा गाः क्रीत्वा संप्रयच्छति ।

स दिव्यमयुतं शक्र वर्षाणां फलमश्नुते ॥ १७

दायाद्या यस्य वै गावो न्यायपूर्वैरुपार्जिताः ।

प्रदत्तास्ताः प्रदातॄणां संभवन्त्यक्षया ध्रुवाः ॥ १८

प्रतिगृह्य च यो दद्याद्गाः सुशुद्धेन चेतसा ।

तस्यापीहाक्षयाल्लोकान्ध्रुवान्विद्धि शचीपते ॥ १९

जन्मप्रभृति सत्यं च यो ब्रूयान्नियतेन्द्रियः ।

गुरुद्विजसहः क्षान्तस्तस्य गोभिः समा गतिः ॥२०

न जातु ब्राह्मणो वाच्यो यद्वाच्यं शचीपते ।

मनसा गोषु न द्रुह्येद्रोवृत्तिर्गोनुकम्पकः ॥ २१

सत्ये धर्मे च निरतस्तस्य शक्र फलं शृणु ।

गोसहस्रेण समिता तस्य धेनुर्भवत्युत ॥ २२

क्षत्रियस्य गुणैरेभिरन्वितस्य फलं शृणु ।

तस्यापि शततुल्या गौर्भवतीति विनिश्चयः ॥ २३

वैश्यस्यैते यदि गुणास्तस्य पञ्चाशतं भवेत् ।  
 शूद्रस्यापि विनीतस्य चतुर्भागफलं स्मृतम् ॥ २४  
 एतच्चैवं योऽनुतिष्ठेत् युक्तः  
 सत्येन युक्तो गुरुशुश्रूषया च ।  
 दान्तः क्षान्तो देवतार्ची प्रशान्तः  
 शुचिर्बुद्धो धर्मशीलोऽनहंवाक् ॥ २५  
 महत्फलं प्राप्नुते स द्विजाय  
 दत्त्वा दोग्ध्रीं विधितानेन धेनुम् ।  
 नित्यं दद्यादेकभक्तः सदा च  
 सत्ये स्थितो गुरुशुश्रूषिता च ॥ २६  
 वेदाध्यायी गोषु यो भक्तिमांश्च  
 नित्यं दृष्ट्वा योऽभिनन्देत् गाश्च ।  
 आ जातितो यश्च गवां न मेत  
 इदं फलं शक्नोति बोध तस्य ॥ २७  
 यत्स्यादिष्टा राजसूये फलं तु  
 यत्स्यादिष्टा बहुना काञ्चनेन ।  
 एतत्तुल्यं फलमस्यादुरग्यं  
 सर्वे सन्तस्त्वृषयो ये च सिद्धाः ॥ २८  
 योऽग्रं भक्तान्किञ्चिदप्राश्य दद्या-  
 द्भ्यो नित्यं गोव्रती सत्यवादी ।  
 शान्तो वृद्धो गोसहस्रस्य पुण्यं  
 संवत्सरेणाप्रयात्पुण्यशीलः ॥ २९  
 य एकं भक्तमश्रीयाद्दद्यादेकं गवां च यत् ।  
 दश वर्षाण्यनन्तानि गोव्रती गोनुकम्पकः ॥ ३०  
 एकेनैव च भक्तेन यः क्रीत्वा गां प्रयच्छति ।  
 यावन्ति यस्य प्रोक्तानि दिवसानि शतक्रतो ।  
 तावच्छतानां स गवां फलमाप्नोति शाश्वतम् ॥ ३१  
 ब्राह्मणस्य फलं हीदं क्षत्रियेऽभिहितं शृणु ।  
 पञ्चवार्षिकमेतत्तु क्षत्रियस्य फलं स्मृतम् ।  
 ततोऽर्धेन तु वैश्यस्य शूद्रो वैश्यार्धतः स्मृतः ॥ ३२

यश्चात्मविक्रयं कृत्वा गाः क्रीत्वा संप्रयच्छति ।  
 यावतीः स्पर्शयेद्गा वै तावत्तु फलमश्नुते ।  
 लोन्नि लोन्नि महाभाग लोकाश्चास्याक्षयाः स्मृताः ॥  
 संग्रामेष्वर्जयित्वा तु यो वै गाः संप्रयच्छति ।  
 आत्मविक्रयतुल्यास्ताः शाश्वता विद्धि कौशिक ॥  
 अलाभे यो गवां दद्यात्तिलधेनुं यतव्रतः ।  
 दुर्गात्स तारितो धेन्वा क्षीरनद्यां प्रमोदते ॥ ३५  
 न त्वेवासां दानमात्रं प्रशस्तं  
 पात्रं कालो गोविशेषो विधिश्च ।  
 कालज्ञानं विप्र गवान्तरं हि  
 दुःखं ज्ञातुं पावकादित्यभूतम् ॥ ३६  
 स्वाध्यायाह्य शुद्धयोनि प्रशान्तं  
 वैतानस्थं पापभीरुं कृतज्ञम् ।  
 गोषु क्षान्तं नातितीक्ष्णं शरण्यं  
 वृत्तिग्लानं तादृशं पात्रमाहुः ॥ ३७  
 वृत्तिग्लाने सीदति चातिमात्रं  
 कृष्यर्थं वा होमहेतोः प्रसूत्याम् ।  
 गुर्वर्थं वा बालसंवृद्धये वा  
 धेनुं दद्याद्देशकाले विशिष्टे ॥ ३८  
 अन्तर्जाताः सुकृतज्ञानलब्धाः  
 प्राणक्रीता निर्जिताश्चौकजाश्च ।  
 कुच्छ्रोत्सृष्टाः पोषणाभ्यागताश्च  
 द्वारैरेतैर्गोविशेषाः प्रशस्ताः ॥ ३९  
 बलान्विता शीलवयोपपन्नाः  
 सर्वाः प्रशंसन्ति सुगन्धवत्यः ।  
 यथा हि गङ्गा सरितां वरिष्ठा  
 तथार्जुनीनां कपिला वरिष्ठा ॥ ४०  
 तिस्रो रात्रीस्त्वद्भिरुपोष्य भूमौ  
 तृप्ता गावस्तर्पितेभ्यः प्रदेयाः ।  
 वत्सैः पुष्टैः क्षीरपैः सुप्रचारा-

रूयहं दत्त्वा गोरसैर्वर्तितव्यम् ॥ ४१  
 दत्त्वा धेनुं सुव्रतां साधुवत्सां  
 कल्याणवृत्तामपलायिनी च ।  
 यावन्ति लोमानि भवन्ति तस्या-  
 स्तावन्ति वर्षाणि वसत्यमुत्र ॥ ४२  
 तथानुद्वाहं ब्राह्मणायाथ धुर्यं  
 दत्त्वा युवानं बलिनं विनीतम् ।  
 हलस्य वोढारमनन्तवीर्यं  
 प्राप्नोति लोकान्दशधेनुदस्य ॥ ४३  
 कान्तारे ब्राह्मणान्गाश्च यः परित्राति कौशिक ।  
 क्षेमेण च विमुच्येत तस्य पुण्यफलं शृणु ।  
 अश्वमेधक्रतोस्तुल्यं फलं भवति शाश्वतम् ॥ ४४  
 मृत्युकाले सहस्राक्षं यां वृत्तिमनुकाङ्क्षते ।  
 लोकान्वद्बुविधान्दिव्यान्यद्रास्य हृदि वर्तते ॥ ४५  
 तत्सर्वं समवाप्नोति कर्मणा तेन मानवः ।  
 गोभिश्च समनुज्ञातः सर्वत्र स महीयते ॥ ४६  
 यस्त्वेतेनैव विधिना गां वनेष्वनुगच्छति ।  
 तृणगोमयपर्णांशी निःस्पृहो नियतः शुचिः ॥ ४७  
 अकामं तेन वस्तव्यं मुदितेन शतक्रतो ।  
 मम लोके सुरैः सार्धं लोके यत्रापि चेच्छति ॥ ४८  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 द्वासप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥  
 ७३  
 इन्द्र उवाच ।  
 जानन्यो गामपहरेद्विक्रीयाद्वार्थकारणात् ।  
 एतद्विज्ञातुमिच्छामि का नु तस्य गतिर्भवेत् ॥ १  
 ब्रह्मोवाच ।  
 भक्षार्थं विक्रयार्थं वा येऽपहारं हि कुर्वते ।  
 दानार्थं वा ब्राह्मणाय तत्रेदं श्रूयतां फलम् ॥ २  
 विक्रयार्थं हि यो हिंस्याद्भक्षयेद्वा निरङ्कुशः ।

घातयानं हि पुरुषं येऽनुमन्येयुरर्थिनः ॥ ३  
 घातकः खादको वापि तथा यश्चानुमन्यते ।  
 यावन्ति तस्या लोमानि तावद्वर्षाणि मज्जति ॥ ४  
 ये दोषा यादृशाश्चैव द्विजयज्ञोपघातके ।  
 विक्रये चापहारे च ते दोषा वै स्मृताः प्रभो ॥ ५  
 अपहृत्य तु यो गां वै ब्राह्मणाय प्रयच्छति ।  
 यावद्दाने फलं तस्यास्तावन्निरयमृच्छति ॥ ६  
 सुवर्णं दक्षिणामाहुर्गोप्रदाने महाद्युते ।  
 सुवर्णं परमं ह्युक्तं दक्षिणार्थमसंशयम् ॥ ७  
 गोप्रदानं तारयते सप्त पूर्वास्तथा परान् ।  
 सुवर्णं दक्षिणां दत्त्वा तावद्द्विगुणमुच्यते ॥ ८  
 सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा ।  
 सुवर्णं पावनं शक्र पावनानां परं स्मृतम् ॥ ९  
 कुलानां पावनं प्राहुर्जार्तरूपं शतक्रतो ।  
 एषा मे दक्षिणा प्रोक्ता समासेन महाद्युते ॥ १०  
 भीष्म उवाच ।  
 एतत्पितामहेनोक्तमिन्द्राय भरतर्षभ ।  
 इन्द्रो दशरथायाह रामायाह पिता तथा ॥ ११  
 राघवोऽपि प्रियभ्रात्रे लक्ष्मणाय यशस्विने ।  
 ऋषिभ्यो लक्ष्मणेनोक्तमरण्ये वसता विभो ॥ १२  
 पारंपर्यागतं चेदमृषयः संशितव्रताः ।  
 दुर्धरं धारयामासू राजानश्चैव धार्मिकाः ।  
 उपाध्यायेन गदितं मम चेदं युधिष्ठिर ॥ १३  
 य इदं ब्राह्मणो नित्यं वदेद्ब्राह्मणसंसदि ।  
 यज्ञेषु गोप्रदानेषु द्वयोरपि समागमे ॥ १४  
 तस्य लोकाः किलाक्षय्या दैवतैः सह नित्यदा ।  
 इति ब्रह्मा स भगवानुवाच परमेश्वरः ॥ १५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥



अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।  
 अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥ २९  
 सत्येन सूर्यस्तपति सत्येनाग्निः प्रदीप्यते ।  
 सत्येन मारुतो वाति सर्व सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ ३०  
 सत्येन देवान्प्रीणाति पितृन्वै ब्राह्मणांस्तथा ।  
 सत्यमाहुः परं धर्मं तस्मात्सत्यं न लङ्घयेत् ॥ ३१  
 मुनयः सत्यनिरता मुनयः सत्यविक्रमाः ।  
 मुनयः सत्यशपथास्तस्मात्सत्यं विशिष्यते ।  
 सत्यवन्तः स्वर्गलोके मोदन्ते भरतर्षभ ॥ ३२  
 दमः सत्यफलावाप्तिरुक्ता सर्वात्मना मया ।  
 असशयं विनीतात्मा सर्वः स्वर्गे महीयते ॥ ३३  
 ब्रह्मचर्यस्य तु गुणाञ्शृणु मे वसुधाधिप ।  
 आ जन्ममरणाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह ।  
 न तस्य किञ्चिदप्राप्यमिति विद्धि जनाधिप ॥ ३४  
 बह्वयः कोट्यस्तृषीणां तु ब्रह्मलोके वसन्त्युत ।  
 सत्ये रतानां सततं दान्तानामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ३५  
 ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन्सर्वपापान्युपासितम् ।  
 ब्राह्मणेन विशेषेण ब्राह्मणो ह्यग्निरुच्यते ॥ ३६  
 प्रत्यक्षं च तवाप्येतद्ब्राह्मणेषु तपस्विषु ।  
 विभेति हि यथा शक्रो ब्रह्मचारिप्रधर्षितः ।  
 तद्ब्रह्मचर्यस्य फलमृषीणामिह दृश्यते ॥ ३७  
 मातापित्रोः पूजने यो धर्मस्तमपि मे शृणु ।  
 शुश्रूषते यः पितरं न चासूयेत्कथंचन ।  
 मातरं वानहंवादी गुरुमाचार्यमेव च ॥ ३८  
 तस्य राजन्फलं विद्धि स्वर्लोके स्थानमुत्तमम् ।  
 न च पश्येत नरकं गुरुशुश्रूषुरात्मवान् ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

७५

युधिष्ठिर उवाच ।

विधिं गवां परमहं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।  
 येन ताञ्शश्वताल्लोकानखिलानभ्रवीमहि ॥ १

भीष्म उवाच ।

न गोदानात्परं किञ्चिद्विद्यते वसुधाधिप ।  
 गौर्हि न्यायागता दत्ता सद्यस्तारयते कुलम् ॥ २

सतामर्थे सम्यगुत्पादनो यः

स वै क्लृप्तः सम्यगिष्टः प्रजाभ्यः ।

तस्मात्पूर्वं ह्यादिकाले प्रवृत्तं

गवां दाने शृणु राजन्विधिं मे ॥ ३

पुरा गोषूपनीतासु गोषु संदिग्धदर्शिना ।

मान्धात्रा प्रकृतं प्रश्नं बृहस्पतिरभाषत ॥ ४

द्विजातिमभिसत्कृत्य श्वः कालमभिवेद्य च ।

प्रदानार्थे नियुञ्जीत रोहिणी नियतव्रतः ॥ ५

आह्वानं च प्रयुञ्जीत समङ्गे बहुलेति च ।

प्रविश्य च गवां मध्यमिमां श्रुतिमुदाहरेत् ॥ ६

गौर्मे माता गोवृषभः पिता मे

दिवं शर्म जगती मे प्रतिष्ठा ।

प्रपद्यैवं शर्वरीमुख्य गोषु

मुनिर्वाणीमुत्सृजेद्रोप्रदाने ॥ ७

स तामेकां निशां गोभिः समसख्यः समव्रतः ।

ऐकात्म्यगमनात्सद्यः कल्मषाद्विप्रमुच्यते ॥ ८

उत्सृष्टवृषवत्सा हि प्रदेया सूर्यदर्शने ।

त्रिविधं प्रतिपत्तव्यमर्थवादाशिषः स्तवाः ॥ ९

ऊर्जस्विन्य ऊर्जमेधाश्च यज्ञो

गर्भोऽमृतस्य जगतश्च प्रतिष्ठा ।

क्षितौ राधःप्रभवः शश्वदेव

प्राजापत्याः सर्वमित्यर्थवादः ॥ १०

गावो ममैनः प्रणुदन्तु सौर्या-

स्तथा सौम्याः स्वर्गयानाय सन्तु ।

आन्नाता मे ददतीराश्रय तु

तथानुक्ताः सन्तु सर्वाशिषो मे ॥ ११

शेषोत्सर्गे कर्मभिर्देहमोक्षे

सरस्वत्यः श्रेयसि संप्रवृत्ताः ।

यूयं नित्यं पुण्यकर्मोपवाह्या

दिशध्वं मे गतिमिष्टां प्रपन्नाः ॥ १२

या वै यूयं सोऽहमद्यैकभावो

युष्मान्दत्त्वा चाहमात्मप्रदाता ।

मनश्च्युता मनएवोपपन्नाः

संधुक्षध्वं सौम्यरूपोप्ररूपाः ॥ १३

एवं तस्याग्रे पूर्वमर्थं वदेत

गवां दाता विधिवत्पूर्वदृष्टम् ।

प्रतिब्रयाच्छेषमर्थं द्विजातिः

प्रतिगृह्णन्वै गोप्रदाने विधिज्ञः ॥ १४

गां ददानीति वक्तव्यमर्ध्ववस्त्रवसुप्रदः ।

ऊधस्या भरितव्या च वैष्णवीति च चोदयेत् ॥

नाम संकीर्तयेत्तस्या यथासंख्योत्तरं स वै ।

फलं षड्विंशदष्टौ च सहस्राणि च विंशतिः ॥ १६

एवमेतान्गुणान्वृद्धान्वादीनां यथाक्रमम् ।

गोप्रदाता समाप्नोति समस्तानष्टमे क्रमे ॥ १७

गोदः शीली निर्भयश्चार्धदाता

न स्यादुःखी वसुदाता च कामी ।

ऊधस्योढा भारत यश्च विद्वा-

न्याख्यातास्ते वैष्णवाश्चन्द्रलोकाः ॥ १८

गा वै दत्त्वा गोव्रती स्यान्निरात्रं

निशां चैकां संवसेतेह ताभिः ।

काम्याष्टम्यां वर्तितव्यं त्रिरात्रं

रसैर्वा गोः शकृता प्रसूवैर्वा ॥ १९

वेदव्रती स्यादृषभप्रदाता

वेदावाप्तिर्गोयुगस्य प्रदाने ।

तथा गवां विधिमासाद्य यज्वा

लोकानग्न्यान्विन्दते नाविधिज्ञः ॥ २०

कामान्सर्वान्पार्थिवानेकसंस्था-

न्यो वै दद्यात्कामदुषां च धेनुम् ।

सम्यक्ताः स्युर्हव्यकव्यौघवत्य-

स्तासामुक्ष्णां ज्यायसां संप्रदानम् ॥ २१

न चाशिष्यायाव्रतायोपकुर्वा-

न्नाश्रद्धधानाय न वक्रबुद्धये ।

गुह्यो ह्ययं सर्वलोकस्य धर्मो

नेमं धर्मं यत्र तत्र प्रजल्पेत् ॥ २२

सन्ति लोके श्रद्धधाना मनुष्याः

सन्ति क्षुद्रा राक्षसा मानुषेषु ।

येषां दानं दीयमानं ह्यनिष्टं

नास्तिक्यं चाप्याश्रयन्ते ह्यपुण्याः ॥ २३

बार्हस्पत्यं वाक्यमेतन्निशम्य

ये राजानो गोप्रदानानि कृत्वा ।

लोकान्प्राप्ताः पुण्यशीलाः सुवृत्ता-

स्तान्मे राजन्कीर्त्यमानान्निबोध ॥ २४

उशीनरो विष्वगश्चो नृगश्च

भगीरथो विश्रुतो यौवनाश्वः ।

मान्धाता वै मुचुकुन्दश्च राजा

भूरिद्युम्नो नैषधः सोमकश्च ॥ २५

पुरूरवा भरतश्चक्रवर्ती

यस्यान्वये भारताः सर्व एव ।

तथा वीरो दाशरथिश्च रामो

ये चाप्यन्ये विश्रुताः कीर्तिमन्तः ॥ २६

तथा राजा पृथुकर्मा दिलीपो

दिवं प्राप्तो गोप्रदाने विधिज्ञः ।

यज्ञैर्दानैस्तपसा राजधर्मै-

मन्धाताभूद्वोप्रदानैश्च युक्तः ॥ २७

तस्मात्पार्थ त्वमपीमां मयोक्तां

बार्हस्पतीं भारतीं धारयस्व ।

द्विजाग्र्येभ्यः संप्रयच्छ प्रतीतो

गाः पुण्या वै प्राप्य राज्यं कुरुणाम् ॥ २८

वैशंपायन उवाच ।

तथा सर्वं कृतवान्धर्मराजो

भीष्मेणोक्तो विधिवद्वोप्रदाने ।

स मन्धातुर्देवदेवोपदिष्टं

सम्यग्धर्मं धारयामास राजा ॥ २९

इति नृप सततं गवां प्रदाने

यवशकलान्सह गोमयैः पिवानः ।

क्षितितलशयनः शिखी यतात्मा

वृष इव राजवृषस्तदा बभूव ॥ ३०

स नृपतिरभवत्सदैव ताभ्यः

प्रयतमना ह्यभिसंस्तुवंश्च गा वै ।

नृपधुरि च न गामयुङ्क्त भूय-

स्तुरगवरैरगमच्च यत्र तत्र ॥ ३१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

७६

वैशंपायन उवाच ।

ततो युधिष्ठिरो राजा भूयः शान्तनवं नृप ।

गोदाने विस्तरं धीमान्पप्रच्छ विनयान्वितः ॥ १

युधिष्ठिर उवाच ।

गोप्रदाने गुणान्सम्यक्पुनः प्रब्रूहि भारत ।

न हि तृप्याम्यहं वीर शृण्वानोऽमृतमीदृशम् ॥ २

इत्युक्तो धर्मराजेन तदा शान्तनवो नृप ।

सम्यगाह गुणांस्तस्मै गोप्रदानस्य केवलान् ॥ ३

भीष्म उवाच ।

वत्सलां गुणसंपन्नां तरुणीं वस्त्रसंवृताम् ।

दत्त्वेदृशीं गां विप्राय सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४

असुर्या नाम ते लोका गां दत्त्वा तत्र गच्छति ।

पीतोदकां जग्धतृणां नष्टदुग्धां निरिन्द्रियाम् ॥ ५

जरोप्रासुपयुक्तार्था जीर्णा कूपमिवाजलम् ।

दत्त्वा तमः प्रविशति द्विजं ह्येतेन योजयेत् ॥ ६

दुष्टा रुष्टा व्याधिता दुर्बला वा

न दातव्या याश्च मूल्यैरदत्तैः ।

ह्येतेर्विप्रं योऽफलैः संयुनक्ति

तस्यावीर्याश्चाफलाश्चैव लोकाः ॥ ७

बलान्विताः शीलवथोपपन्नाः

सर्वाः प्रशंसन्ति सुगन्धवत्यः ।

यथा हि गङ्गा सरितां वरिष्ठा

तथार्जुनीनां कपिला वरिष्ठा ॥ ८

युधिष्ठिर उवाच ।

कस्मात्समाने बहुलाप्रदाने

सद्भिः प्रशस्तं कपिलाप्रदानम् ।

विशेषमिच्छामि महानुभाव

श्रोतुं समर्थो हि भवान्प्रवक्तुम् ॥ ९

भीष्म उवाच ।

वृद्धानां ब्रुवतां नात श्रुतं मे यत्प्रभाषसे ।

वक्ष्यामि तदंशेण रोहिण्यो निर्मिता यथा ॥ १०

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयंभुवा ।

असृजद्वृत्तिमेवाग्रे प्रजानां हितकाम्यया ॥ ११

यथा ह्यमृतमाश्रित्य वर्तयन्ति दिवौकसः ।

तथा वृत्ति समाश्रित्य वर्तयन्ति प्रजा विभो ॥ १२

अचरेभ्यश्च भूतेभ्यश्चराः श्रेष्ठास्ततो नराः ।

ब्राह्मणाश्च ततः श्रेष्ठास्तेषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥ १३

यज्ञैराप्यायते सोमः च स गोषु प्रतिष्ठितः ।  
 सर्वे देवाः प्रमोदन्ते पूर्ववृत्तास्ततः प्रजाः ॥ १४  
 एतान्येव तु भूतानि प्राक्रोशन्वृत्तिकाङ्क्षया ।  
 वृत्तिदं चान्वपद्यन्त वृषिताः पितृमातृवत् ॥ १५  
 इतीदं मनसा गत्वा प्रजासर्गार्थमात्मनः ।  
 प्रजापतिर्बलाधानममृतं प्रापिबत्तदा ॥ १६  
 स गतस्तस्य वृत्तिं तु गन्धं सुरभिमुद्गिरन् ।  
 ददर्शोद्गारसंवृत्तां सुरभिं मुखजां सुताम् ॥ १७  
 सासृजत्सौरभेयीस्तु सुरभिलोकमातरः ।  
 सुवर्णवर्णाः कपिलाः प्रजानां वृत्तिधेनवः ॥ १८  
 तासाममृतवर्णानां क्षरन्तीनां समन्ततः ।  
 बभूवामृतजः फेनः स्रवन्तीनामिवोर्मिजः ॥ १९  
 स वत्समुखविभ्रष्टो भवस्य भुवि तिष्ठतः ।  
 शिरस्थवाप तत्कुट्टः स तदोदैक्षत प्रभुः ।  
 ललाटप्रभवेनाक्षणा रोहिणीः प्रदहन्निव ॥ २०  
 तत्तेजस्तु ततो रौद्रं कपिला गा विशां पते ।  
 नानावर्णत्वमनयन्मेघानिव दिवाकरः ॥ २१  
 यास्तु तस्मादपक्रम्य सोममेवाभिसंश्रिताः ।  
 यथोत्पन्नाः स्ववर्णस्थास्ता नीता नान्यवर्णताम् ॥ २२  
 अथ क्रुद्धं महादेवं प्रजापतिरभाषत ।  
 अमृतेनावसिक्तस्त्वं नोच्छिष्टं विद्यते गवाम् ॥ २३  
 यथा ह्यमृतमादाय सोमो विष्यन्दते पुनः ।  
 तथा क्षीरं क्षरन्त्येता रोहिण्योऽमृतसभवाः ॥ २४  
 न दुष्यत्यनिलो नाग्निर्न सुवर्णं न चोदधिः ।  
 नामृतेनामृतं पीतं वत्सपीता न वत्सला ॥ २५  
 इमाल्लोकान्भरिष्यन्ति हविषा प्रसूवेन च ।  
 आसामैश्वर्यमश्रीहि सर्वामृतमयं शुभम् ॥ २६  
 वृषभं च ददौ तस्मै सह ताभिः प्रजापतिः ।  
 प्रसादयामास मनस्तेन रुद्रस्य भारत ॥ २७  
 प्रीतश्चापि महादेवश्चकार वृषभं तदा ।

ध्वज च वाहनं चैव तस्मात्स वृषभध्वजः ॥ २८  
 ततो देवैर्महादेवस्तदा पशुपतिः कृतः ।  
 ईश्वरः स गवां मध्ये वृषाङ्क इति चोच्यते ॥ २९  
 एवमव्यग्रवर्णानां कपिलानां महौजसाम् ।  
 प्रदाने प्रथमः कल्पः सर्वासामेव कीर्तितः ॥ ३०  
 लोकज्येष्ठा लोकवृत्तिप्रवृत्ता  
 रुद्रोपेताः सोमविष्यन्दभूताः ।  
 सौम्याः पुण्याः कामदाः प्राणदाश्च  
 गा वै दत्त्वा सर्वकामप्रदः स्यात् ॥ ३१  
 इमं गवां प्रभवविधानमुत्तमं  
 पठन्सदा शुचिरतिमङ्गलप्रियः ।  
 विमुच्यते कलिकलुषेण मानवः  
 प्रियं सुतान्पशुधनमाप्नुयात्तथा ॥ ३२  
 हव्यं कव्यं तर्पणं शान्तिकर्म  
 यानं वासो वृद्धबालस्य पुष्टिम् ।  
 एतान्सर्वान्गोप्रदाने गुणान्वै  
 दाता राजन्नाप्नुयाद्वै सदैव ॥ ३३  
 वैशंपायन उवाच ।  
 पितामहस्याथ निशम्य वाक्यं  
 राजा सह भ्रातृभिराजमीढः ।  
 सौवर्णकांस्योपदुहास्ततो गाः  
 पार्थो ददौ ब्राह्मणसत्तमेभ्यः ॥ ३४  
 तथैव तेभ्योऽभिददौ द्विजेभ्यो  
 गवां सहस्राणि शतानि चैव ।  
 यज्ञान्समुद्दिश्य च दक्षिणार्थे  
 लोकान्विजेतुं परमां च कीर्तिम् ॥ ३५  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

७७

भीष्म उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु वसिष्ठमुनिसत्तमम् ।  
इक्ष्वाकुवंशजो राजा सौदासो ददतां वरः ॥ १  
सर्वलोकचरं सिद्धं ब्रह्मकोशं सनातनम् ।  
पुरोहितमिवं प्रष्टुमभिवाद्योपचक्रमे ॥ २

सौदास उवाच ।

त्रैलोक्ये भगवन्किंस्वित्पवित्रं कथ्यतेऽनघ ।  
यत्कीर्तयन्सदा मर्त्यः प्राप्नुयात्पुण्यमुत्तमम् ॥ ३

भीष्म उवाच ।

तस्मै प्रोवाच वचनं प्रणताय हितं तदा ।  
गवामुपनिषद्विद्वान्नमस्कृत्य गवां शुचिः ॥ ४  
गावः सुरभिगन्धिन्यस्तथा गुग्गुलुगन्धिकाः ।  
गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत् ॥ ५  
गावो भूतं भविष्यच्च गावः पुष्टिः सनातनी ।  
गावो लक्ष्म्यास्ताथा मूलं गोषु दत्तं न नश्यति ।  
अन्नं हि सततं गावो देवानां परमं हविः ॥ ६  
स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ ।  
गावो यज्ञस्य हि फल गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥ ७  
सायं प्रातश्च सततं होमकाले महामते ।  
गावो ददति वै होम्यमृषिभ्यः पुरुषर्षभ ॥ ८  
कानिचिद्यानि दुर्गाणि दुष्कृतानि कृतानि च ।  
तरन्ति चैव पाप्मानं धेनुं ये ददति प्रभो ॥ ९  
एकां च दशगुर्दद्याद्दश दद्याच्च गोशती ।  
शतं सहस्रगुर्दद्यात्सर्वे तुल्यफला हि ते ॥ १०  
अनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः ।  
समृद्धो यश्च कीनाशो नार्घ्यमर्हन्ति ते त्रयः ॥ ११  
कपिलां ये प्रयच्छन्ति सवत्सां कांस्यदोहनम् ।  
सुव्रतां वस्त्रसंवीतामुभौ लोकौ जयन्ति ते ॥ १२

युवानमिन्द्रियोपेतं शतेन सह यूथपम् ।  
गवेन्द्रं ब्राह्मणेन्द्राय भूरिशृङ्गमलंकृतम् ॥ १३  
वृषभं ये प्रयच्छन्ति श्रोत्रियाय परंतप ।  
ऐश्वर्यं तेऽभिजायन्ते जायमानाः पुनः पुनः ॥ १४  
नाकीर्तयित्वा गाः सुप्यान्नास्मृत्य पुनरुत्पतेत् ।  
सायं प्रातर्नमस्येच्च गास्ततः पुष्टिमाप्नुयात् ॥ १५  
गवां मूत्रपुरीषस्य नोद्विजेत कदाचन ।  
न चासां मांसमश्रीयाद्गवां व्युष्टिं तथाश्रुते ॥ १६  
गाश्च संकीर्तयेन्नित्यं नावमन्येत गास्तथा ।  
अनिष्टं स्वप्नमालक्ष्य गां नरः संप्रकीर्तयेत् ॥ १७  
गोमयेन सदा स्नायाद्गोकरीषे च संविशेत् ।  
श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि प्रतिघातं च वर्जयेत् ॥ १८  
सार्द्रचर्मणि भुञ्जीत निरीक्षन्वारूणीं दिशम् ।  
वाग्यतः सर्पिषा भूमौ गवां व्युष्टिं तथाश्रुते ॥ १९  
घृतेन जुहुयादग्निं घृतेन स्वस्ति वाचयेत् ।  
घृतं दद्याद्भूतं प्राशेद्गवां व्युष्टिं तथाश्रुते ॥ २०  
गोमत्या विद्यया धेनुं तिलानामभिमन्त्र्य यः ।  
रसरत्नमयी दद्यान्न स शोचेत्कृताकृते ॥ २१  
गावो मामुपतिष्ठन्तु हेमशृङ्गाः पयोमुचः ।  
सुरभ्यः सौरभेयाश्च सरितः सागरं यथा ॥ २२  
गावः पश्यन्तु मां नित्यं गावः पश्याम्यहं सदा ।  
गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम् ॥ २३  
एवं रात्रौ दिवा चैव समेषु विषमेषु च ।  
महाभयेषु च नरः कीर्तयन्मुच्यते भयात् ॥ २४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

७८

वासिष्ठ उवाच ।

शतं वर्षसहस्राणां तपस्तप्तं सुदुश्चरम् ।  
गोभिः पूर्वविसृष्टाभिर्गच्छेम श्रेष्ठतामिति ॥ १

लोकेऽस्मिन्दक्षिणानां च सर्वासां वयमुत्तमाः ।  
 भवेम न च लिप्येम दोषेणेति परंतप ॥ २  
 स एव चेतसा तेन हतो लिप्येत सर्वदा ।  
 शकृता च पवित्रार्थं कुर्वीरन्देवमानुषाः ॥ ३  
 तथा सर्वाणि भूताति स्थावराणि चराणि च ।  
 प्रदातारश्च गोलोकान्गच्छेयुरिति मानद ॥ ४  
 ताभ्यो वरं ददौ ब्रह्मा तपसोऽन्ते स्वयं प्रभुः ।  
 एवं भवत्विति विभुर्लोकांस्तारयतेति च ॥ ५  
 उत्तस्थुः सिद्धिकामास्ता भूतभव्यस्य मातरः ।  
 तपसोऽन्ते महाराज गावो लोकपरायणाः ॥ ६  
 तस्माद्गावो महाभागाः पवित्रं परमुच्यते ।  
 तथैव सर्वभूतानां गावस्तिष्ठन्ति मूर्धनि ॥ ७  
 समानवत्सां कपिलां धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम् ।  
 सुव्रतां वस्त्रसंवीतां ब्रह्मलोके महीयते ॥ ८  
 रोहिणीं तुल्यवत्सां तु धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम् ।  
 सुव्रतां वस्त्रसंवीतां सूर्यलोके महीयते ॥ ९  
 समानवत्सां शबलां धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम् ।  
 सुव्रतां वस्त्रसंवीतां सोमलोके महीयते ॥ १०  
 समानवत्सां श्वेतां तु धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम् ।  
 सुव्रतां वस्त्रसंवीतामिन्द्रलोके महीयते ॥ ११  
 समानवत्सां कृष्णां तु दत्त्वा धेनुं पयस्विनीम् ।  
 सुव्रतां वस्त्रसंवीतामग्निलोके महीयते ॥ १२  
 समानवत्सां धूम्रां तु दत्त्वा धेनुं पयस्विनीम् ।  
 सुव्रतां वस्त्रसंवीतां याम्यलोके महीयते ॥ १३  
 अपां फेनसवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।  
 प्रदाय वस्त्रसंवीतां वारुणं लोकमश्नुते ॥ १४  
 वातरेणुसवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।  
 प्रदाय वस्त्रसंवीतां वायुलोके महीयते ॥ १५  
 हिरण्यवर्णां पिङ्गाक्षीं सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।  
 प्रदाय वस्त्रसंवीतां कौबेरं लोकमश्नुते ॥ १६

पलालधूम्रवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।  
 प्रदाय वस्त्रसंवीतां पितृलोके महीयते ॥ १७  
 सवत्सां पीवरीं दत्त्वा शितिकण्ठामलंकृताम् ।  
 वैश्वदेवमसंबाधं स्थानं श्रेष्ठं प्रपद्यते ॥ १८  
 समानवत्सां गौरीं तु धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम् ।  
 सुव्रतां वस्त्रसंवीतां वसूनां लोकमश्नुते ॥ १९  
 पाण्डुकम्बलवर्णां तु सवत्सां कांस्यदोहनाम् ।  
 प्रदाय वस्त्रसंवीतां साध्यानां लोकमश्नुते ॥ २०  
 वैराटपृष्ठमुक्षाणं सर्वरत्नैरलंकृतम् ।  
 प्रदाय मरुतां लोकानजरान्प्रतिपद्यते ॥ २१  
 वत्सोपपन्नां नीलाङ्गां सर्वरत्नसमन्विताम् ।  
 गन्धर्वाप्सरसां लोकान्दत्त्वा प्राप्नोति मानवः ॥ २२  
 शितिकण्ठमनङ्गाहं सर्वरत्नैरलंकृतम् ।  
 दत्त्वा प्रजापतेर्लोकान्विशोकः प्रतिपद्यते ॥ २३  
 गोप्रदानरतो याति भित्त्वा जलदसंचयान् ।  
 विमानेनार्कवर्णेन दिवि राजन्विराजता ॥ २४  
 तं चारुवेधाः सुश्रोण्यः सहस्रं वरयोषितः ।  
 रमयन्ति नरश्रेष्ठ गोप्रदानरतं नरम् ॥ २५  
 वीणानां वल्लकीनां च नूपुराणां च शिञ्जितैः ।  
 हासैश्च हरिणाक्षीणां प्रसुप्तः प्रतिबोध्यते ॥ २६  
 यावन्ति लोमानि भवन्ति धेन्वा-  
 स्तावन्ति वर्षाणि महीयते सः ।  
 स्वर्गाञ्ज्युतश्चापि ततो नृलोके  
 कुले समुत्पत्स्यति गोमिनां सः ॥ २७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

७९

वसिष्ठ उवाच ।

घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः ।  
 घृतनद्यो घृतावर्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे ॥ १

घृतं मे हृदये नित्यं घृतं नाभ्यां प्रतिष्ठितम् ।  
 घृतं सर्वेषु गात्रेषु घृतं मे मनसि स्थितम् ॥ २  
 गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च ।  
 गावो मे सर्वतश्चैव गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥ ३  
 इत्याचम्य जपेत्सायं प्रातश्च पुरुषः सदा ।  
 यदह्ना कुरुते पापं तस्मात्स परिमुच्यते ॥ ४  
 प्रासादा यत्र सौवर्णा वसोर्धारा च यत्र सा ।  
 गन्धर्वाप्सरसो यत्र तत्र यान्ति सहस्रदाः ॥ ५  
 नवनीतपङ्काः क्षीरोदाः दधिशैवलसंकुलाः ।  
 वहन्ति यत्र नद्यो वै तत्र यान्ति सहस्रदाः ॥ ६  
 गवां शतसहस्रं तु यः प्रयच्छेद्यथाविधि ।  
 परामृद्धिमवाप्याथ स गोलोके महीयते ॥ ७  
 दश चोभयतः प्रेत्य मातापित्रोः पितामहान् ।  
 दधाति सुकृताल्लोकान्पुनाति च कुलं नरः ॥ ८  
 धेन्वाः प्रमाणेन समप्रमाणां  
 धेनुं तिलानामपि च प्रदाय ।  
 पानीयदाता च यमस्य लोके  
 न यातनां काञ्चिदुपैति तत्र ॥ ९  
 पवित्रमग्न्यं जगतः प्रतिष्ठा  
 दिवौकसां मातरोऽथाप्रमेयाः ।  
 अन्वालभेदक्षिणतो व्रजेच्च  
 दद्याच्च पात्रे प्रसमीक्ष्य कालम् ॥ १०  
 धेनुं सवत्सां कपिलां भूरिशृङ्गां  
 कांस्योपदोहां वसनोत्तरीयाम् ।  
 प्रदाय तां गाहति दुर्विगाह्यां  
 याम्यां सभां वीतभयो मनुष्यः ॥ ११  
 सुरुपा बहुरुपाश्च विश्वरूपाश्च मातरः ।  
 गावो मामुपतिष्ठन्तामिति नित्यं प्रकीर्तयेत् ॥ १२  
 नातः पुण्यतरं दानं नातः पुण्यतरं फलम् ।  
 नातो विशिष्टं लोकेषु भूतं भवितुमर्हति ॥ १३

त्वचा लोम्राथ शृङ्गैश्च वालैः क्षीरेण मेदसा ।  
 यज्ञं वहन्ति संभूय किमस्यभ्यधिकं ततः ॥ १४  
 यया सर्वमिदं व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।  
 तां धेनुं शिरसा बन्दे भूतभव्यस्य मातरम् ॥ १५  
 गुणवचनसमुच्चयैकदेशो  
 नृवर मयैष गवां प्रकीर्तितस्ते ।  
 न हि परमिह दानमस्ति गोभ्यो  
 भवति न चापि परायणं तथान्यत् ॥ १६  
 भीष्म उवाच ।  
 परमिदमिति भूमिपो विचिन्त्य  
 प्रवरमृषेर्वचनं ततो महात्मा ।  
 व्यसृजत नियतात्मवान्द्विजेभ्यः  
 सुबहु च गोधनमाप्तवांश्च लोकान् ॥ १७  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

८०

युधिष्ठिर उवाच ।

पवित्राणां पवित्रं यच्छ्रेष्ठं लोके च यद्ववेत् ।  
 पावनं परमं चैव तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १  
 भीष्म उवाच ।  
 गावो महार्थाः पुण्याश्च तारयन्ति च मानवान् ।  
 धारयन्ति प्रजाश्चेमाः पयसा हविषा तथा ॥ २  
 न हि पुण्यतमं किञ्चिद्गोभ्यो भरतसत्तम ।  
 एताः पवित्राः पुण्याश्च त्रिषु लोकेष्वनुत्तमाः ॥ ३  
 देवानामुपरिष्ठाच्च गावः प्रतिवसन्ति वै ।  
 दत्त्वा चैता नरपते यान्ति स्वर्गं मनीषिणः ॥ ४  
 मान्धाता यौवनाश्वश्च ययातिर्नहुषस्तथा ।  
 गावो ददन्तः सततं सहस्रशतसंमिताः ।  
 गताः परमकं स्थानं देवैरपि सुदुर्लभम् ॥ ५  
 अपि चात्र पुरावृत्तं कथयिष्यामि तेऽनघ ॥ ६

ऋषीणामुत्तमं धीमान्कृष्णद्वैपायनं शुक्रः ।  
 अभिवाद्याह्निकं कृत्वा शुचिः प्रयतमानसः ।  
 पितरं परिपप्रच्छ दृष्टलोकपरावरम् ॥ ७  
 को यज्ञः सर्वयज्ञानां वरिष्ठ उपलक्ष्यते ।  
 किं च कृत्वा परं स्वर्गं प्राप्नुवन्ति मनीषिणः ॥ ८  
 केन देवाः पवित्रेण स्वर्गमश्नन्ति वा विभो ।  
 किं च यज्ञस्य यज्ञत्वं कं च यज्ञः प्रतिष्ठितः ॥ ९  
 दानानामुत्तमं किं च किं च सत्रमतः परम् ।  
 पवित्राणां पवित्रं च यत्तद्ब्रूहि ममानघ ॥ १०  
 एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यासः परमधर्मवित् ।  
 पुत्रायात्कथयत्सर्वं तत्त्वेन भरतर्षभ ॥ ११

व्यास उवाच ।

गावः प्रतिष्ठा भूतानां तथा गावः परायणम् ।  
 गावः पुण्याः पवित्राश्च पावनं धर्म एव च ॥ १२  
 पूर्वमासन्नशृङ्गा वै गावः इत्यनुशुश्रुमः ।  
 शृङ्गार्थे समुपासन्त ताः किल प्रभुमव्ययम् ॥ १३  
 ततो ब्रह्मा तु गाः प्रायमुपविष्टाः समीक्ष्य ह ।  
 ईप्सितं प्रददौ ताभ्यो गोभ्यः प्रत्येकशः प्रभुः ॥  
 तासां शृङ्गाण्यजायन्त यस्या यादृङ्मनोगतम् ।  
 नानावर्णाः शृङ्गवन्त्यस्ता व्यरोचन्त पुत्रक ॥ १५  
 ब्रह्मणा वरदत्तास्ता हव्यकव्यप्रदाः शुभाः ।  
 पुण्याः पवित्राः सुभगा दिव्यसंस्थानलक्षणाः ।  
 गावस्तेजो महद्दिव्यं गवां दानं प्रशस्यते ॥ १६  
 ये चैताः संप्रयच्छन्ति साधवो वीतमत्सराः ।  
 ते वै सुकृतिनः प्रोक्ताः सर्वदानप्रदाश्च ते ।  
 गवां लोकं तथा पुण्यमाप्नुवन्ति च तेऽनघ ॥ १७  
 यत्र वृक्षा मधुफला दिव्यपुष्पफलोपगाः ।  
 पुष्पाणि च सुगन्धीनि दिव्यानि द्विजसत्तम ॥ १८  
 सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मकाञ्चनवालुका ।  
 सर्वत्र सुखसंस्पर्शा निष्पङ्का नीरजा शुभा ॥ १९

रक्तोत्पलवनैश्चैव मणिदण्डैर्हिरण्यैः ।  
 तरूणादित्यसंकाशैर्भान्ति तत्र जलाशयाः ॥ २०  
 महार्हमणिपत्रैश्च काञ्चनप्रभकेसरैः ।  
 नीलोत्पलविमिश्रैश्च सरोमिर्बहुपङ्कजैः ॥ २१  
 करवीरवनैः फुल्लैः सहस्रवर्तसंवृतैः ।  
 संतानकवनैः फुल्लैर्वृक्षैश्च समलंकृताः ॥ २२  
 निर्मलमिश्र मुक्ताभिर्मणिभिश्च महाधनैः ।  
 उद्धूतपुलिनास्तत्र जातरूपैश्च निम्नगाः ॥ २३  
 सर्वरत्नमयैश्चित्रैरवगाढा नगोत्तमैः ।  
 जातरूपमयैश्चान्यैर्हुताशनसमप्रभैः ॥ २४  
 सौवर्णगिरयस्तत्र मणिरत्नशिलोच्चयाः ।  
 सर्वरत्नमयैर्भान्ति शृङ्गैश्चारुभिरुच्छ्रितैः ॥ २५  
 नित्यपुष्पफलास्तत्र नगाः पत्रथाकुलाः ।  
 दिव्यगन्धरसैः पुष्पैः फलैश्च भरतर्षभ ॥ २६  
 रमन्ते पुण्यकर्माणस्तत्र नित्यं युधिष्ठिर ।  
 सर्वकामसमृद्धार्था निःशोका गतमन्यवः ॥ २७  
 विमानेषु विचित्रेषु रमणीयेषु भारत ।  
 मोदन्ते पुण्यकर्माणो विहरन्तो यशस्विनः ॥ २८  
 उपक्रीडन्ति तान् राजञ्जुभाश्चाप्सरसां गणाः ।  
 एताल्लोकानवाप्नोति गां दत्त्वा वै युधिष्ठिर ॥ २९  
 यासामधिपतिः पूषा मारुतो बलवान्वली ।  
 ऐश्वर्ये वरुणो राजा ता मां पान्तु युगंधराः ॥ ३०  
 सुरुपा बहुरूपाश्च विश्वरूपाश्च मातरः ।  
 प्राजापत्या इति ब्रह्मज्जपेन्नित्यं यतव्रतः ॥ ३१  
 गास्तु शुश्रूषते यश्च समन्वेति च सर्वशः ।  
 तस्मै तुष्टाः प्रयच्छन्ति वरानपि सुदुर्लभान् ॥ ३२  
 न द्रुह्येन्मनसा चापि गोषु ता हि सुखप्रदाः ।  
 अर्चयेत् सदा चैव नमस्कारैश्च पूजयेत् ।  
 दान्तः प्रीतमना नित्यं गवां व्युष्टिं तथाश्रुते ॥ ३३  
 येन देवाः पवित्रेण भुञ्जते लोकमुत्तमम् ।



यत्पवित्रं पवित्राणां तद्धृतं शिरसा वहेत् ॥ ३४  
 घृतेन जुहुयादग्निं घृतेन स्वस्ति वाचयेत् ।  
 घृतं प्राशेद्धृतं दद्याद्गवां व्युष्टिं तथाश्रुते ॥ ३५  
 त्र्यहमुष्णं पिबेन्मूत्रं त्र्यहमुष्णं पिबेत्पयः ।  
 गवामुष्णं पयः पीत्वा त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत् ।  
 त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुमक्षो भवेन्नयहम् ॥ ३६  
 निर्हृतैश्च यवैर्गोभिर्मसं प्रस्तयावकः ।  
 ब्रह्महत्यासमं पाप सर्वमेतेन शुध्यति ॥ ३७  
 पराभवार्थं देत्यानां देवैः शौचमिदं कृतम् ।  
 देवत्वमपि च प्राप्ताः संसिद्धाश्च महाबलाः ॥ ३८  
 गावः पवित्राः पुण्याश्च पावनं परमं महत् ।  
 ताश्च दत्त्वा द्विजातिभ्यो नरः स्वर्गमुपाश्रुते ॥ ३९  
 गवां मध्ये शुचिर्भूत्वा गोमतीं मनसा जपेत् ।  
 पूताभिरङ्गिराचम्य शुचिर्भवति निर्मलः ॥ ४०  
 अग्निमध्ये गवां मध्ये ब्राह्मणानां च संसदि ।  
 विद्यावेदव्रतस्नाता ब्राह्मणाः पुण्यकर्मिणः ॥ ४१  
 अध्यापयेरङ्गिष्यन्वै गोमतीं यज्ञसंमिताम् ।  
 त्रिरात्रोपोषितः श्रुत्वा गोमतीं लभते वरम् ॥ ४२  
 पुत्रकामश्च लभते पुत्रं धनमथापि च ।  
 पतिकामा च भर्तारं सर्वकामांश्च मानवः ।  
 गावस्तुष्टाः प्रयच्छन्ति सेविता वै न संशयः ॥ ४३  
 एवमेता महाभागा यज्ञियाः सर्वकामदाः ।  
 रोहिण्य इति जानीहि नैताभ्यो विद्यते परम् ॥ ४४  
 इत्युक्तः स महातेजाः शुकः पित्रा महात्मना ।  
 पूजयामास गा नित्यं तस्मात्त्वमपि पूजय ॥ ४५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

८१

युधिष्ठिर उवाच ।

मया गवां पुरीषं वै श्रिया जुष्टमिति श्रुतम् ।

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं संशयोऽत्र हि मे महान् ॥ १

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

गोभिर्नृपेह संवादं श्रिया भरतसत्तम ॥ २

श्रीः कृत्वेह वपुः कान्तं गोमध्यं प्रविवेश ह ।

गावोऽथ विस्मितास्तस्या दृष्ट्वा रूपस्य संपदम् ॥ ३

गाव ऊचुः ।

कासि देवि कुतो वा त्वं रूपेणाप्रतिमा भुवि ।

विस्मिताः स्म महाभागे तव रूपस्य संपदा ॥ ४

इच्छामस्त्वां वयं ज्ञातुं का त्वं क्व च गमिष्यसि ।

तत्त्वेन च सुवर्णाभिः सर्वमेतद्वीहि नः ॥ ६

श्रीरुवाच ।

लोककान्तास्मि भद्रं वः श्रीर्नाम्नेह परिश्रुता ।

मया दैत्याः परित्यक्ता विनष्टाः शाश्वतीः समाः ॥

इन्द्रो विवस्वान्सोमश्च विष्णुरापोऽग्निरेव च ।

मयाभिपन्ना ऋध्यन्ते ऋषयो देवतास्तथा ॥ ७

यांश्च द्विषाम्यहं गावस्ते विनश्यन्ति सर्वशः ।

धर्मार्थकामहीनाश्च ते भवन्त्यसुखान्विताः ॥ ८

एवंप्रभावां मां गावो विजानीत सुखप्रदाम् ।

इच्छामि चापि युष्मासु वस्तुं सर्वासु नित्यदा ।

आगता प्रार्थयानाहं श्रीजुष्टा भवतानघाः ॥ ९

गाव ऊचुः ।

अध्रुवां चञ्चलां च त्वां सामान्यां बहुभिः सह ।

न त्वामिच्छाम भद्रं ते गम्यतां यत्र रोचते ॥ १०

वपुष्मन्त्यो वयं सर्वाः किमस्माकं त्वयाद्य वै ।

यत्रेष्टं गम्यतां तत्र कृतकार्या वयं त्वया ॥ ११

श्रीरुवाच ।

किमेतद्वः क्षमं गावो यन्मां नेहाभ्यनन्दथ ।

न मां संप्रति गृहीथ कस्माद्वै दुर्लभां सतीम् ॥ १२

सत्यश्च लोकवादोऽयं लोके चरति सुव्रताः ।  
 स्वयं प्राप्ते परिभवो भवतीति विनिश्चयः ॥ १३  
 महदुग्रं तपः कृत्वा मां निषेवन्ति मानवाः ।  
 देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ १४  
 क्षममेतद्धि वो गावः प्रतिगृहीत मामिह ।  
 नावमन्या ह्यहं सौम्यास्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १५

गाव ऊचुः ।

नावमन्यामहे देवि न त्वां परिभवामहे ।  
 अघ्रुवा चलचित्तासि ततस्त्वां वर्जयामहे ॥ १६  
 बहुनात्र किमुक्तेन गम्यतां यत्र वाञ्छसि ।  
 वपुष्मत्यो वयं सर्वाः किमस्माकं त्वयानधे ॥ १७

श्रीरुवाच ।

अवज्ञाता भविष्यामि सर्वलोकेषु मानदाः ।  
 प्रत्याख्यानेन युष्माभिः प्रसादः क्रियतामिति ॥ १८  
 महाभागा भवत्यो वै शरण्याः शरणागताम् ।  
 परित्रायन्तु मां नित्यं भजमानामनिन्दिताम् ।  
 माननां त्वहमिच्छामि भवत्यः सततं शुभाः ॥ १९  
 अप्येकाङ्गे तु वो वस्तुमिच्छामि च सुकुत्सिते ।  
 न वोऽस्ति कुत्सितं किञ्चिदङ्गेष्वालक्ष्यतेऽनघाः ॥ २०  
 पुण्याः पवित्राः सुभगा ममादेश प्रयच्छत ।  
 वसेयं यत्र चाङ्गेऽहं तन्मे व्याख्यातुमर्हथ ॥ २१

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तास्तु ता गावः शुभाः करुणवत्सलाः ।  
 संमन्त्र्य सहिताः सर्वाः श्रियमूचुर्नराधिप ॥ २२  
 अवश्यं मानना कार्या तवास्माभिर्यशस्विनि ।  
 शकृन्मूत्रे निवस नः पुण्यमेतद्धि नः शुभे ॥ २३

श्रीरुवाच ।

दिष्ट्या प्रसादो युष्माभिः कृतो मेऽनुग्रहात्मकः ।  
 एवं भवतु भद्र वः पूजितास्मि सुखप्रदाः ॥ २४

भीष्म उवाच ।

एवं कृत्वा तु समयं श्रीर्गोभिः सह भारत ।  
 पश्यन्तीनां ततस्तासां तत्रैवान्तरधीयत ॥ २५  
 एतद्गोशकृतः पुत्र माहात्म्यं तेऽनुवर्णितम् ।  
 माहात्म्यं च गवां भूयः श्रूयतां गदतो मम ॥ २६  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

८२

भीष्म उवाच ।

ये च गाः संप्रयच्छन्ति हुतशिष्टाशिनश्च ये ।  
 तेषां सत्राणि यज्ञाश्च नित्यमेव युधिष्ठिर ॥ १  
 ऋते दधिघृतेनेह न यज्ञः संप्रवर्तते ।  
 तेन यज्ञस्य यज्ञत्वमतोमूलं च लक्ष्यते ॥ २  
 दानानामपि सर्वेषां गवां दानं प्रशस्यते ।  
 गावः श्रेष्ठाः पवित्राश्च पावनं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३  
 पुष्ट्यर्थमेताः सेवेत शान्त्यर्थमपि चैव ह ।  
 पयो दधि घृतं यासां सर्वपापप्रमोचनम् ॥ ४  
 गावस्तेजः परं प्रोक्तमिह लोके परत्र च ।  
 न गोभ्यः परमं किञ्चित्पवित्रं पुरुषर्षभ ॥ ५  
 अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 पितामहस्य संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर ॥ ६  
 पराभूतेषु दैत्येषु शके त्रिभुवनेश्वरे ।  
 प्रजाः समुदिताः सर्वाः सत्यधर्मपरायणाः ॥ ७  
 अथर्षयः सगन्धर्वाः किंनरोरगराक्षसाः ।  
 देवासुरसुपर्णाश्च प्रजानां पतयस्तथा ।  
 पर्युपासन्त कौरव्य कदाचिद्वै पितामहम् ॥ ८  
 नारदः पर्वतश्चैव विश्वावसुहहाहुह ।  
 दिव्यतानेषु गायन्तः पर्युपासन्त तं प्रभुम् ॥ ९  
 तत्र दिव्यानि पुष्पाणि प्रावहत्पवनस्तथा ।  
 आजहुर्ऋतवश्चापि सुगन्धीनि पृथक्पृथक् ॥ १०

तस्मिन्देवसमावाये सर्वभूतसमागमे ।  
 दिव्यवादित्रसंघुष्टे दिव्यस्त्रीचारणावृते ।  
 इन्द्रः पप्रच्छ देवेशमभिवाद्य प्रणम्य च ॥ ११  
 देवानां भगवन्कस्माल्लोकेशानां पितामह ।  
 उपरिष्ठाद्गवां लोक एतदिच्छामि वेदितुम् ॥ १२  
 किं तपो ब्रह्मचर्यं वा गोभिः कृतमिहेश्वर ।  
 देवानामुपरिष्ठाद्यद्वयसन्त्यरजसः सुखम् ॥ १३  
 ततः प्रोवाच तं ब्रह्मा शक्रं बलनिसूदनम् ।  
 अवज्ञातास्त्वया नित्यं गावो बलनिसूदन ॥ १४  
 तेन त्वमासां माहात्म्यं न वेत्थ शृणु तत्प्रभो ।  
 गवां प्रभावं परमं माहात्म्यं च सुरर्षभ ॥ १५  
 यज्ञाङ्गं कथिता गावो यश एव च वासव ।  
 एताभिश्चाप्यृते यज्ञो न प्रवर्तेत्कथंचन ॥ १६  
 धारयन्ति प्रजाश्चैव पयसा हविषा तथा ।  
 एतासां तनयाश्चापि कृषियोगमुपासते ॥ १७  
 जनयन्ति च धान्यानि बीजानि विविधानि च ।  
 ततो यज्ञाः प्रवर्तन्ते हव्यं कव्यं च सर्वशः ॥ १८  
 पयो दधि घृतं चैव पुण्याश्चैताः सुराधिप ।  
 वहन्ति विविधान्भारान्शुतृष्णापरिपीडिताः ॥ १९  
 मुनींश्च धारयन्तीह प्रजाश्चैवापि कर्मणा ।  
 वासवाकूटवाहिन्यः कर्मणा सुकृतेन च ।  
 उपरिष्ठात्ततोऽस्माकं वसन्त्येताः सदैव हि ॥ २०  
 एतत्ते कारणं शक्र निवासकृतमद्य वै ।  
 गवां देवोपरिष्ठाद्धि समाख्यातं शतक्रतो ॥ २१  
 एता हि वरदत्ताश्च वरदाश्चैव वासव ।  
 सौरभ्यः पुण्यकर्मिण्यः पावनाः शुभलक्षणाः ॥ २२  
 यदर्थं गा गताश्चैव सौरभ्यः सुरसत्तम ।  
 तच्च मे शृणु कात्स्न्येन वदतो बलसूदन ॥ २३  
 पुरा देवयुगे तात दैत्येन्द्रेषु महात्मसु ।  
 त्रील्लोकाननुशासत्सु विष्णौ गर्भत्वमागते ॥ २४

अदित्यास्तप्यमानायास्तपो घोरं सुदुश्चरम् ।  
 पुत्रार्थममरश्रेष्ठ पादेनैकेन नित्यदा ॥ २५  
 तां तु दृष्ट्वा महादेवीं तप्यमानां महत्तपः ।  
 दक्षस्य दुहिता देवी सुरभिर्नाम नामतः ॥ २६  
 अतप्यत तपो घोरं दृष्ट्वा धर्मपरायणा ।  
 कैलासशिखरे रम्ये देवगन्धर्वसेविते ॥ २७  
 व्यतिष्ठदेकपादेन परमं योगमास्थिता ।  
 दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ॥ २८  
 संतप्तास्तपसा तस्या देवाः सर्षिमहोरगाः ।  
 तत्र गत्वा मया सार्धं पर्युपासन्त तां शुभाम् ॥ २९  
 अथाहमब्रुवं तत्र देवीं तां तपसान्विताम् ।  
 किमर्थं तप्यसे देवि तपो घोरमनिन्दिते ॥ ३०  
 प्रीतस्तेऽहं महाभागे तपसानेन शोभने ।  
 वरयस्व वरं देवि दातास्मीति पुरंदर ॥ ३१

सुरभ्युवाच ।

वरेण भगवन्मह्यं कृतं लोकपितामह ।  
 एष एव वरो मेऽद्य यत्प्रीतोऽसि ममानघ ॥ ३२

ब्रह्मोवाच ।

तामेवं ब्रुवतीं देवीं सुरभीं त्रिदशेश्वर ।  
 प्रत्यब्रुवं यदेवेन्द्र तन्निबोध शचीपते ॥ ३३  
 अलोभकाम्यया देवि तपसा च शुभेन च ।  
 प्रसन्नोऽहं वरं तस्मादमरत्वं ददामि ते ॥ ३४  
 त्रयाणामपि लोकानामुपरिष्ठान्निवत्स्यसि ।  
 मत्प्रसादाच्च विख्यातो गोलोकः स भविष्यति ॥  
 मानुषेषु च कुर्वाणाः प्रजाः कर्म सुतास्तव ।  
 निवत्स्यन्ति महाभागे सर्वा दुहितरश्च ते ॥ ३६  
 मनसा चिन्तिता भोगास्त्वया वै दिव्यमानुषाः ।  
 यच्च स्वर्गसुखं देवि तत्ते संपत्स्यते शुभे ॥ ३७  
 तस्या लोकाः सहस्राक्ष सर्वकामसमन्विताः ।  
 न तत्र क्रमते मृत्युन जरा न च पावकः ।

न दैन्यं नाशुभं किञ्चिद्विद्यते तत्र वासव ॥ ३८  
 तत्र दिव्यान्यरण्यानि दिव्यानि भवनानि च ।  
 विमानानि च युक्तानि कामगानि च वासव ॥ ३९  
 व्रतैश्च विविधैः पुण्यैस्तथा तीर्थानुसेवनात् ।  
 तपसा महता चैव सुकृतेन च कर्मणा ।  
 शक्यः समासादयितुं गोलोकः पुष्करेक्ष्ण ॥ ४०  
 एतत्ते सर्वमाख्यातं मया शक्रानुपृच्छते ।  
 न ते परिभवः कार्यो गवामरिनिसूदन ॥ ४१

भीष्म उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा सहस्राक्षः पूजयामास नित्यदा ।  
 गाश्चक्रे बहुमानं च तासु नित्यं युधिष्ठिर ॥ ४२  
 एतत्ते सर्वमाख्यातं पावनं च महाद्युते ।  
 पवित्रं परमं चापि गवां माहात्म्यमुत्तमम् ।  
 कीर्तितं पुरुषव्याघ्र सर्वपापविनाशनम् ॥ ४३  
 य इदं कथयेन्नित्यं ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ।  
 हव्यकव्येषु यज्ञेषु पितृकार्येषु चैव ह ।  
 सार्वकामिकमक्षय्यं पितृस्तस्योपतिष्ठति ॥ ४४  
 गोषु भक्तश्च लभते यद्यदिच्छति मानवः ।  
 स्त्रियोऽपि भक्ता या गोषु ताश्च कामानवाप्नुयुः ॥  
 पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्या पतिमवाप्नुयात् ।  
 धनार्थी लभते वित्तं धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ॥ ४६  
 विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां सुखार्थी प्राप्नुयात्सुखम् ।  
 न किञ्चिदुर्लभं चैव गवां भक्तस्य भारत ॥ ४७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

द्वयशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

८३

युधिष्ठिर उवाच ।

उक्तं पितामहेनेदं गवां दानमनुत्तमम् ।  
 विशेषेण नरेन्द्राणामिति धर्ममवेक्षताम् ॥ १  
 राज्यं हि सततं दुःखमाश्रमाश्च सुदुर्विदाः ।

परिवारेण वै दुःखं दुर्धरं चाकृतात्मभिः ।  
 भूयिष्ठं च नरेन्द्राणां विद्यते न शुभा गतिः ॥ २  
 पूयन्ते तेऽत्र नियतं प्रयच्छन्तो वसुंधराम् ।  
 पूर्वं च कथिता धर्मास्त्वया मे कुरुनन्दन ॥ ३  
 एवमेव गवामुक्तं प्रदानं ते नृगेण ह ।  
 ऋषिणा नाचिकेतेन पूर्वमेव निदर्शितम् ॥ ४  
 वेदोपनिषदे चैव सर्वकर्मसु दक्षिणा ।  
 सर्वकृतुषु चोद्दिष्ट भूमिर्गवोऽथ काञ्चनम् ॥ ५  
 तत्र श्रुतिस्तु परमा सुवर्णं दक्षिणेति वै ।  
 एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं पितामह यथातथम् ॥ ६  
 किं सुवर्णं कथं जातं कस्मिन्काले किमात्मकम् ।  
 किं दानं किं फलं चैव कस्माच्च परमुच्यते ॥ ७  
 कस्माद्दानं सुवर्णस्य पूजयन्ति मनीषिणः ।  
 कस्माच्च दक्षिणार्थं तद्यज्ञकर्मसु शस्यते ॥ ८  
 कस्माच्च पावनं श्रेष्ठं भूमेर्गोभ्यश्च काञ्चनम् ।  
 परमं दक्षिणार्थं च तद्वीहि पितामह ॥ ९

भीष्म उवाच ।

शृणु राजन्नवहितो बहुकारणविस्तरम् ।  
 जातरूपसमुत्पत्तिमनुभूतं च यन्मया ॥ १०  
 पिता मम महातेजाः शंतनुर्निधनं गतः ।  
 तस्य दित्सुरहं श्राद्धं गङ्गाद्वारमुपागमम् ॥ ११  
 तत्रागम्य पितुः पुत्र श्राद्धकर्म समारभम् ।  
 माता मे जाह्नवी चैव साहाय्यमकरोत्तदा ॥ १२  
 ततोऽग्रतस्तपःसिद्धानुपवेश्य बहुनृषीन् ।  
 तोयप्रदानात्प्रभृति कार्याण्यहमधारभम् ॥ १३  
 तत्समाप्य यथोद्दिष्टं पूर्वकर्म समाहितः ।  
 दातुं निर्वपणं सम्यग्यथावदहमारभम् ॥ १४  
 ततस्तं दर्भविन्यासं भित्त्वा सुरुचिराङ्गदः ।  
 प्रलम्बाभरणो बाहुरुदतिष्ठद्विशां पते ॥ १५  
 तमुत्थितमहं दृष्ट्वा परं विस्मयमागमम् ।

प्रतिग्रहीता साक्षान्मे पितेति भरतर्षभ ॥ १६  
 ततो मे पुनरेवासीत्संज्ञा संचिन्त्य शास्त्रतः ।  
 नायं वेदेषु विहितो विधिर्हस्त इति प्रभो ।  
 पिण्डो देयो नरेणेह ततो मतिरभून्मम ॥ १७  
 साक्षात्नेह मनुष्यस्य पितरोऽन्तर्हिताः क्वचित् ।  
 गृह्णन्ति विहितं त्वेवं पिण्डो देयः कुशेष्विति ॥ १८  
 ततोऽहं तदनादृत्य पितुर्हस्तनिदर्शनम् ।  
 शास्त्रप्रमाणात्सूक्ष्मं तु विधिं पार्थिव संस्मरन् ॥ १९  
 ततो दर्भेषु तत्सर्वमददं भरतर्षभ ।  
 शास्त्रमार्गानुसारेण तद्विद्धि मनुजर्षभ ॥ २०  
 ततः सोऽन्तर्हितो बाहुः पितुर्मम नराधिप ।  
 ततो मां दर्शयामासुः स्वप्नान्ते पितरस्तदा ॥ २१  
 प्रीयमाणास्तु मामूचुः प्रीताः स्म भरतर्षभ ।  
 विज्ञानेन तवानेन यन्न मुह्यसि धर्मतः ॥ २२  
 त्वया हि कुर्वता शास्त्रं प्रमाणमिह पार्थिव ।  
 आत्मा धर्मः श्रुतं वेदाः पितरश्च महर्षिभिः ॥ २३  
 साक्षात्पितामहो ब्रह्मा गुरवोऽथ प्रजापतिः ।  
 प्रमाणमुपनीता वै स्थितिश्च न विचालिता ॥ २४  
 तदिदं सम्यगारब्धं त्वयाद्य भरतर्षभ ।  
 किं तु भूमेर्गवां चार्थे सुवर्णं दीयतामिति ॥ २५  
 एवं वयं च धर्मश्च सर्वे चास्मत्पितामहाः ।  
 पाविता वै भविष्यन्ति पावनं परमं हि तत् ॥ २६  
 दश पूर्वान्दश परास्तथा संतारयन्ति ते ।  
 सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति एवं मे पितरोऽब्रुवन् ॥ २७  
 ततोऽहं विस्मितो राजन्प्रतिबुद्धो विशां पते ।  
 सुवर्णदानेऽकरवं मतिं भरतसत्तम ॥ २८  
 इतिहासमिमं चापि शृणु राजन्पुरातनम् ।  
 जामदग्न्यं प्रति विभो धन्यमायुष्यमेव च ॥ २९  
 जामदग्न्येन रामेण तीव्ररोषान्वितेन वै ।  
 त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा ॥ ३०

ततो जित्वा महीं कृत्वा रामो राजीवलोचनः ।  
 आजहार क्रतुं वीरो ब्रह्मक्षत्रेण पूजितम् ॥ ३१  
 वाजिमधं महाराज सर्वकामसमन्वितम् ।  
 पावनं सर्वभूतानां तेजोद्युतिविवर्धनम् ॥ ३२  
 विपाप्मापि स तेजस्वी तेन क्रतुफलैः वै ।  
 नैवात्मनोऽथ लघुतां जामदग्न्योऽभ्याच्छत ॥ ३३  
 स तु क्रतुवरेणेष्टा महात्मा दक्षिणावता ।  
 पप्रच्छागमसंपन्नानृषीन्देवांश्च भार्गवः ॥ ३४  
 पावनं यत्परं नृणामुग्रे कर्मणि वर्तीताम् ।  
 तदुच्यतां महाभागा इति जातघृणोऽब्रवीत् ।  
 इत्युक्ता वेदशास्त्रज्ञास्ते तमूचुर्महर्षयः ॥ ३५

वसिष्ठ उवाच ।

देवतास्ते प्रयच्छन्ति सुवर्णं ये ददतुः ।  
 अग्निर्हि देवताः सर्वाः सुवर्णं च तदात्मकम् ॥ ३६  
 तस्मात्सुवर्णं ददता दत्ताः सर्वाश्च देवताः ।  
 भवन्ति पुरुषव्याघ्र न ह्यतः परमं विदुः ॥ ३७  
 भूय एव च माहात्म्यं सुवर्णस्य निबोध मे ।  
 गदतो मम विप्रर्षे सर्वशस्त्रभृतां वर ॥ ३८  
 मया श्रुतमिदं पूर्वं पुराणे भृगुनन्दन ।  
 प्रजापतेः कथयतो मनोः स्वायंभुवस्य वै ॥ ३९  
 शूलपाणेर्भगवतो रुद्रस्य च महात्मनः ।  
 गिरौ हिमवति श्रेष्ठे तदा भृगुकुलोद्बद्ध ॥ ४०  
 देव्या विवाहे निर्वृत्ते रुद्राण्या भृगुनन्दन ।  
 समागमे भगवतो देव्या सह महात्मनः ।  
 ततः सर्वे समुद्विग्ना भगवन्तमुपागमन् ॥ ४१  
 ते महादेवमासीनं देवीं च वरदामुताम् ।  
 प्रसाद्य शिरसा सर्वे रुद्रमूचुर्भृगूद्वह ॥ ४२  
 अयं समागमो देव देव्या सह तवानथ ।  
 तपस्विनस्तपस्विन्या तेजस्विन्यातिते जसः ।

अमोघतेजास्त्वं देव देवी चेयमुमा तथा ॥ ४३  
 अपत्यं युवयोर्देव बलवद्भविता प्रभो ।  
 तन्नूनं त्रिषु लोकेषु न किञ्चिच्छेषयिष्यति ॥ ४४  
 तदेभ्यः प्रणतेभ्यस्त्वं देवेभ्यः पृथुलोचन ।  
 वरं प्रयच्छ लोकेश त्रैलोक्यहितकाम्यया ।  
 अपत्यार्थं निगृहीष्व तेजो ज्वलितमुत्तमम् ॥ ४५  
 इति तेषां कथयतां भगवान्गोवृषध्वजः ।  
 एवमस्त्विति देवान्स्तान्विप्रर्षे प्रत्यभापत ॥ ४६  
 इत्युक्त्वा चोर्ध्वमनयत्तद्रेतो वृषवाहनः ।  
 ऊर्ध्वरेताः समभवत्ततःप्रभृति चापि सः ॥ ४७  
 रुद्राणी तु ततः क्रुद्धा प्रजोच्छेदे तथा कृते ।  
 देवानथाव्रवीत्तत्र स्त्रीभावात्पुरुषं वचः ॥ ४८  
 यस्मादपत्यकामो वै भर्ता मे विनिवर्तितः ।  
 तस्मात्सर्वे सुरा यूयमनपत्या भविष्यथ ॥ ४९  
 प्रजोच्छेदो मम कृतो तस्माद्युष्माभिरद्य वै ।  
 तस्मात्प्रजा वः खगमाः सर्वेषां न भविष्यति ॥  
 पावकस्तु न तत्रासीच्छापकाले भृगूद्वह ।  
 देवा देव्यास्तथा शापादनपत्यास्तदाभवन् ॥ ५१  
 रुद्रस्तु तेजोऽप्रतिमं धारयामास तत्तदा ।  
 प्रस्कन्नं तु ततस्तस्मात्किञ्चित्त्रापतद्भुवि ॥ ५२  
 तत्पपात तदा चाम्नौ ववृधे चाद्भुतोपमम् ।  
 तेजस्तेजसि संपृक्तमेकयोनित्वमागतम् ॥ ५३  
 एतस्मिन्नेव काले तु देवाः शक्रपुरोगमाः ।  
 असुरस्तारको नाम तेन संतापिता भृशम् ॥ ५४  
 आदित्या वसवो रुद्रा मरुतोऽथाश्विनावपि ।  
 साध्याश्च सर्वे संत्रस्ता दैतेयस्य पराक्रमात् ॥ ५५  
 स्थानानि देवतानां हि विमानानि पुराणि च ।  
 ऋषीणामाश्रमाश्चैव बभूवुरसुरैर्हताः ॥ ५६  
 ते दीनमनसः सर्वे देवाश्च ऋषयश्च ह ।

प्रजग्मुः शरणं देवं ब्रह्माणमजरं प्रभुम् ॥ ५७  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 व्यञ्जीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥  
 ८४  
 देवा ऊचुः ।  
 असुरस्तारको नाम त्वया दत्तवरः प्रभो ।  
 सुरानृषीश्च छिन्नाति वधस्तस्य विधीयताम् ॥ १  
 तस्माद्भयं समुत्पन्नमस्माकं वै पितामह ।  
 परित्रायस्व नो देव न ह्यन्या गतिरस्ति नः ॥ २  
 ब्रह्मोवाच ।  
 समोऽहं सर्वभूतानामधर्मं नेह रोचये ।  
 हन्यतां तारकः क्षिप्रं सुरर्विगणबाधकः ॥ ३  
 वेदा धर्माश्च नोत्सादं गच्छेयुः सुरसत्तमाः ।  
 विहितं पूर्वमेवात्र मया वै व्येतु वो ज्वरः ॥ ४  
 देवा ऊचुः ।  
 वरदानाद्भगवतो दैतेयो बलगर्वितः ।  
 देवैर्न शक्यते हन्तुं स कथं प्रशमं व्रजेत् ॥ ५  
 स हि नैव स्म देवानां नासुराणां न रक्षसाम् ।  
 वध्यः स्यामिति जग्राह वरं त्वत्तः पितामह ॥ ६  
 देवाश्च शप्ता रुद्राण्या प्रजोच्छेदे पुरा कृते ।  
 न भविष्यति वोऽपत्यमिति सर्वजगत्पते ॥ ७  
 ब्रह्मोवाच ।  
 हुताशनो न तत्रासीच्छापकाले सुरोत्तमाः ।  
 स उत्पादयितापत्यं वधार्थं त्रिदशद्विषाम् ॥ ८  
 तद्वै सर्वानतिक्रम्य देवदानवराक्षसान् ।  
 मानुषानथ गन्धर्वाज्जागानथ च पक्षिणः ॥ ९  
 अस्त्रेणामोघपातेन शक्त्या तं घातयिष्यति ।  
 यतो वो भयमुत्पन्नं ये चान्ये सुरशत्रवः ॥ १०  
 सनातनो हि संकल्पः काम इत्यभिधीयते ।

रुद्रस्य तेजः प्रस्कन्नमग्नौ निपतितं च तत् ॥ ११  
 तत्तेजोऽग्निर्महद्भूतं द्वितीयमिव पावकम् ।  
 वधार्थं देवशत्रूणां गङ्गायां जनयिष्यति ॥ १२  
 स तु नावाप तं शापं नष्टः स हुतभुक्तदा ।  
 तस्माद्वो भयहृद्देवाः समुत्पत्स्यति पावकिः ॥ १३  
 अन्विष्यतां वै ज्वलनस्तथा चाद्य नियुज्यताम् ।  
 तारकस्य वधोपायः कथितो वै मयानघाः ॥ १४  
 न हि तेजस्विनां शापास्तेजःसु प्रभवन्ति वै ।  
 बलान्यतिबलं प्राप्य नवलानि भवन्ति वै ॥ १५  
 हन्यादवध्यान्वरदानपि चैव तपस्विनः ।  
 संकल्पाभिरुचिः कामः सनातनतमोऽनलः ॥ १६  
 जगत्पतिरनिर्देयः सर्वगः सर्वभावनः ।  
 हृच्छयः सर्वभूतानां ज्येष्ठो रुद्रादपि प्रभुः ॥ १७  
 अन्विष्यतां स तु क्षिप्रं तेजोराशिहुताशनः ।  
 स वो मनोगतं कामं देवः संपादयिष्यति ॥ १८  
 एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ततो देवा महात्मनः ।  
 जग्मुः ससिद्धसंकल्पाः पर्येषन्तो विभावसुम् ॥ १९  
 ततश्चैलोक्यमृषयो व्यचिन्वन्त सुरैः सह ।  
 काङ्क्षन्तो दर्शनं वह्नेः सर्वे तद्गतमानसाः ॥ २०  
 परेण तपसा युक्ताः श्रीमन्तो लोकविश्रुताः ।  
 लोकानन्वचरन्सिद्धाः सर्व एव भृगूद्वह ॥ २१  
 नष्टमात्मनि संलीनं नाधिजग्मुर्हुताशनम् ॥ २२  
 ततः संजातसंत्रासानभेर्दर्शनलालसान् ।  
 जलेचरः क्लान्तमनास्तेजसाग्नेः प्रदीपितः ।  
 उवाच देवान्मण्डूको रसातलतलोत्थितः ॥ २३  
 रसातलतले देवा वसत्यग्निरिति प्रभो ।  
 संतापादिह संप्राप्तः पावकप्रभवादहम् ॥ २४  
 स संसृप्तो जले देवा भगवान्हव्यवाहनः ।  
 अपः संसृज्य तेजोभिस्तेन संतापिता वयम् ॥ २५  
 तस्य दर्शनमिष्टं वो यदि देवा विभावसोः ।

तत्रैनमभिगच्छध्वं कार्यं वो यदि वह्निना ॥ २५  
 गम्यतां साधयिष्यामो वयं ह्यग्निभयात्सुराः ।  
 एतावदुक्त्वा मण्डूकस्त्वरितो जलमाविशत् ॥ २६  
 हुताशनस्तु बुबुधे मण्डूकस्याथ पैशुनम् ।  
 शशाप स तमासाद्य न रसान्वेत्स्यसीति वै ॥ २७  
 तं स संयुज्य शापेन मण्डूकं पावको ययौ ।  
 अन्यत्र वासाय विभुर्न च देवानदर्शयत् ॥ २८  
 देवास्त्वनुग्रहं चक्रुर्मण्डूकानां भृगूद्वह ।  
 यत्तच्छृणु महाबाहो गदतो मम सर्वशः ॥ २९  
 देवा ऊचुः ।

अग्निशापादजिह्वापि रसज्ञानवहिष्कृताः ।  
 सरस्वतीं बहुविधां यूयमुच्चारयिष्यथ ॥ ३०  
 बिलवासगतांश्चैव निरादानानचेतसः ।  
 गतासूनपि वः शुष्कान्भूमिः संधारयिष्यति ।  
 तमोगतायामपि च निशायां विचरिष्यथ ॥ ३१  
 इत्युक्त्वा तांस्ततो देवाः पुनरेव महीमिमाम् ।  
 परीयुर्ज्वलनस्यार्थं न चाविन्दुताशनम् ॥ ३२  
 अथ तान्द्विरदः कश्चित्सुरेन्द्रद्विरदोपमः ।  
 अश्वत्थस्योऽग्निरित्येवं प्राह देवान्भृगूद्वह ॥ ३३  
 शशाप ज्वलनः सर्वान्द्विरदान्क्रोधमूर्छितः ।  
 प्रतीपा भवतां जिह्वा भवित्रीति भृगूद्वह ॥ ३४  
 इत्युक्त्वा निःसृतोऽश्वत्थादग्निर्वारणसूचितः ।  
 प्रविवेश शमीगर्भमथ वह्निः सुषुप्तया ॥ ३५  
 अनुग्रहं तु नागानां यं चक्रुः शृणु तं प्रभो ।  
 देवा भृगुकुलश्रेष्ठ प्रीताः सत्यपराक्रमाः ॥ ३६  
 देवा ऊचुः ।

प्रतीपया जिह्वयापि सर्वाहारान्करिष्यथ ।  
 वाचं चोच्चारयिष्यध्वमुच्चैरव्यञ्जिताक्षरम् ।  
 इत्युक्त्वा पुनरेवाग्निमनुसस्रुर्दिवौकसः ॥ ३७  
 अश्वत्थान्निःसृतश्चाग्निः शमीगर्भगतस्तदा ।

शुकेन ख्यापितो विप्र तं देवाः समुपाद्रवन् ॥ ३८  
 शशाप शुक्रमग्निस्तु वाग्विहीनो भर्गव्यसि ।  
 जिह्वां चावर्तयामास तस्यापि हुतभुजनादा ॥ ३९  
 दृष्ट्वा तु ज्वलनं देवाः शुक्रमूर्चुर्यान्विताः ।  
 भविता न त्वमत्यन्तं शकुने नष्टवागिति ॥ ४०  
 आवृत्तजिह्वस्य सतो वाक्यं कान्तं भविष्यति ।  
 बालस्येव प्रवृद्धस्य कलमव्यक्तमद्भुतम् ॥ ४१  
 इत्युक्त्वा त शमीगर्भे वह्निमालक्ष्य देवताः ।  
 तदेवायतनं चक्रुः पुण्यं सर्वक्रियास्वपि ॥ ४२  
 ततःप्रभृति चाप्यग्निः शमीगर्भेषु दृश्यते ।  
 उत्पादने तथोपायमनुजग्मुश्च मानवाः ॥ ४३  
 आपो रसातले यास्तु संसृष्टाश्चित्रभानुना ।  
 ताः पर्वतप्रस्रवणैरूष्मां मुञ्चन्ति भार्गव ।  
 पावकेनाधिशयता संतप्तास्तस्य तेजसा ॥ ४४  
 ततोऽग्निर्देवता दृष्ट्वा बभूव व्यथितस्तदा ।  
 किमागमनमित्येवं तानपृच्छत पावकः ॥ ४५  
 तमूर्चुर्विबुधाः सर्वे ते चैव परमर्षयः ।  
 त्वां नियोक्ष्यामहे कार्ये तद्भवान्कर्तुमर्हति ।  
 कृते च तस्मिन्भविता तवापि सुमहान्गुणः ॥ ४६

अग्निरुवाच ।

ब्रूत यद्भवतां कार्यं सर्वं कर्तास्मि तत्सुराः ।  
 भवतां हि नियोज्योऽहं मा वोऽत्रास्तु विचारणा ॥

देवा ऊचुः ।

असुरस्तारको नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः ।  
 अस्मान्प्रबाधते वीर्याद्विधस्तस्य विधीयताम् ॥ ४८  
 इमान्देवगणांस्तात प्रजापतिगणांस्तथा ।  
 ऋषीश्चापि महाभागान्परित्रायस्व पावक ॥ ४९  
 अपत्यं तेजसा युक्तं प्रवीरं जनय प्रभो ।  
 यद्भयं नोऽसुरान्तस्मान्नाशयेद्भववाहन ॥ ५०  
 शप्तानां नो महादेव्या नान्यदस्ति परायणम् ।

अन्यत्र भवतो वीर्यं तस्मान्नायस्व नस्ततः ॥ ५१  
 इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा भगवान्हव्यकव्यमुक् ।  
 जगामाथ दुराधर्षो गङ्गां भागीरथीं प्रति ॥ ५२  
 तथा चाप्यभवन्मिश्रो गर्भश्चास्याभवत्तदा ।  
 बभूवे स तदा गर्भः कक्षे कृष्णगतिर्यथा ॥ ५३  
 तेजसा तस्य गर्भस्य गङ्गा विह्वलचेतना ।  
 संतापमगमत्तीव्रं सा सोढुं न शशाक ह ॥ ५४  
 आहिते ज्वलनेनाथ गर्भे तेजःसमन्विते ।  
 गङ्गायामसुरः कश्चिद्भैरवं नादमुत्सृजत् ॥ ५५  
 अबुद्धापतितेनाथ नादेन विपुलेन सा ।  
 वित्रस्तोद्भ्रान्तनयना गङ्गा विभ्रुतलोचना ।  
 विसंज्ञा नाशकद्रुर्भ संधारयितुमात्मना ॥ ५६  
 सा तु तेजःपरीताङ्गी कम्पमाना च जाह्नवी ।  
 उवाच वचनं विप्र तदा गर्भबलोद्धता ।  
 न ते शक्तास्मि भगवंस्तेजसोऽस्य विधारणे ॥ ५७  
 विमूढास्मि कृतानेन तथास्वास्थ्यं कृतं परम् ।  
 विह्वला चास्मि भगवंस्तेजो नष्टं च मेऽनघ ॥ ५८  
 धारणे नास्य शक्ताहं गर्भस्य तपतां वर ।  
 उत्सृक्ष्येऽहमिमं दुःखान्न तु कामात्कथंचन ॥ ५९  
 न चेतसोऽस्ति संस्पर्शो मम देव विभावसो ।  
 आपदर्थे हि संबन्धः सुसूक्ष्मोऽपि महाद्युते ॥ ६०  
 यदत्र गुणसंपन्नमितरं वा द्रुताशन ।  
 त्वय्येव तदहं मन्ये धर्माधर्मौ च केवलौ ॥ ६१  
 तामुवाच ततो वह्निर्धार्यतां धार्यतामयम् ।  
 गर्भो मत्तेजसा युक्तो महागुणफलोदयः ॥ ६२  
 शक्ता ह्यसि महीं कृत्स्नां वोढुं धारयितुं तथा ।  
 न हि ते किञ्चिदप्राप्यं मद्भैरवोधारणादृते ॥ ६३  
 सा वह्निना वार्यमाणा देवैश्चापि सरिद्धरा ।  
 समुत्ससर्ज तं गर्भं मेरौ गिरिवरे तदा ॥ ६४  
 समर्था धारणे चापि रुद्रतेजःप्रधर्षिता ।



नाशकत्तं तदा गर्भं सधारयितुमोजसा ॥ ६५  
सा समुत्सृज्य तं दुःखादीप्तवैश्वानरप्रभम् ।  
दर्शयामास चाग्निस्तां तदा गङ्गां भृगुद्वह ।  
प्रचल सरितां श्रेष्ठां कच्चिद्गर्भः सुखोदयः ॥ ६६  
कीदृग्वर्णोऽपि वा देवि कीदृग्भूपश्च दृश्यते ।  
तेजसा केन वा युक्तः सर्वमेतद्ब्रवीहि मे ॥ ६७

गङ्गोवाच ।

जातरूपः स गर्भो वै तेजसा त्वमिवानल ।  
सुवर्णो विमलो दीप्तः पर्वतं चावभासयत् ॥ ६८  
पद्मोत्पलविमिश्राणां हृदानामिव शीतलः ।  
गन्धोऽस्य स कदम्बानां तुल्यो वै तपतां वर ॥ ६९  
तेजसा तस्य गर्भस्य भास्करस्येव रश्मिभिः ।  
यद्भव्यं परिसंस्पृष्टं पृथिव्यां पर्वतेषु वा ।  
तत्सर्वं काश्चनीभूतं समन्तात्प्रत्यदृश्यत ॥ ७०  
पर्यधावत शैलांश्च नदीः प्रस्रवणानि च ।  
व्यदीपयत्तेजसा च त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ७१  
एवंरूपः स भगवान्पुत्रस्ते हव्यवाहन ।  
सूर्यवैश्वानरसमः कान्त्या सोम इवापरः ।  
एवमुक्त्वा तु सा देवी तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७२  
पावकश्चापि तेजस्वी कृत्वा कार्यं दिवौकसाम् ।  
जगामेष्टं ततो देशं तदा भार्गवनन्दन ॥ ७३  
एतैः कर्मगुणैर्लोकैः नामाग्रेः परिगीयते ।  
हिरण्यरेता इति वै ऋषिभिर्विबुधैस्तथा ।  
पृथिवी च तदा देवी ख्याता वसुमतीति वै ॥ ७४  
स तु गर्भो महातेजा गाङ्गेयः पावकोद्भवः ।  
दिव्यं शरवणं प्राप्य वयुधेऽद्भुतदर्शनः ॥ ७५  
ददृशुः कृत्तिकारस्तं तु बालाकंसदृशद्युतिम् ।  
जातस्नेहाश्च तं बालं पुपुषुः स्तन्यविस्तैवैः ॥ ७६  
ततः स कार्तिकेयत्वमवाप परमद्युतिः ।  
रक्षत्यात्स्कन्दतां चापि गुहावासाद्ब्रह्मोऽभवत् ॥ ७७

एवं सुवर्णमुत्पन्नमपत्य जातवेदसः ।  
तत्र जाम्बूनदं श्रेष्ठं देवानामपि भूषणम् ॥ ७८  
ततः प्रभृति चाप्येतज्जातरूपमुदाहृतम् ।  
यत्सुवर्णं स भगवानग्निरीशः प्रजापतिः ॥ ७९  
पवित्राणां पवित्रं हि कनकं द्विजसत्तम ।  
अग्नीषोमात्मकं चैव जातरूपमुदाहृतम् ॥ ८०  
रत्नानामुत्तमं रत्नं भूषणानां तथोत्तमम् ।  
पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥ ८१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

८५

वसिष्ठ उवाच ।

अपि चेदं पुरा राम श्रुतं मे ब्रह्मदर्शनम् ।  
पितामहस्य यद्वृत्तं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ १  
देवस्य महत्स्तात वारुणी बिभ्रतस्तनुम् ।  
ऐश्वर्ये वारुणे राम रुद्रस्येशस्य वै प्रभो ॥ २  
आजगमुर्मुनयः सर्वे देवाश्चाग्निपुरोगमाः ।  
यज्ञाङ्गानि च सर्वाणि वषट्कारश्च मूर्तिमान् ॥ ३  
मूर्तिमन्ति च सामानि यजूंषि च सहस्रशः ।  
ऋग्वेदश्चागमत्तत्र पदक्रमविभूषितः ॥ ४  
लक्षणानि स्वराः स्तोभा निरुक्तं स्वरभक्तयः ।  
ओकारश्चावसन्नेत्रे निग्रहप्रग्रहौ तथा ॥ ५  
वेदाश्च सोपनिषदो विद्या सावित्र्यथापि च ।  
भूतं भव्यं भविष्यञ्च दधार भगवाञ्जिशवः ।  
जुह्वात्मान्यथात्मानं स्वयमेव तदा प्रभो ॥ ६  
देवपत्न्यश्च कन्याश्च देवानां चैव मातरः ।  
आजगमुः सहितास्तत्र तदा भृगुकुलोद्भव ॥ ७  
यज्ञं पशुपतेः प्रीता वरुणस्य महात्मनः ।  
स्वयंभुवस्तु ता दृष्ट्वा रेतः समपतद्भुवि ॥ ८  
तस्य शुक्रस्य निष्पन्दात्पांसूंसंगृह्य भूमितः ।

प्रास्यत्पूषा कराभ्यां वै तस्मिन्नेव हुताशने ॥ ९  
 ततस्तस्मिन्संप्रवृत्ते सत्रे ज्वलितपावके ।  
 ब्रह्मणो जुह्वतस्तत्र प्रादुर्भावो बभूव ह ॥ १०  
 स्कन्नमात्रं च तच्छुक्रं सुवेण प्रतिगृह्य सः ।  
 आज्यवन्मन्त्रवच्चापि सोऽजुहोद्भृगुनन्दन ॥ ११  
 ततः संजनयामास भूतग्रामं स वीर्यवान् ।  
 ततस्तु तेजसस्तस्माज्ज्ञे लोकेषु तेजसम् ॥ १२  
 तमसस्तामसा भावा व्यापि सत्त्वं तथोभयम् ।  
 सगुणस्तेजसो नित्यं तमस्याकाशमेव च ॥ १३  
 सर्वभूतेष्वथ तथा सत्त्वं तेजस्तथा तमः ।  
 शुके हुतेऽग्नौ तस्मिन् प्रादुरासंख्यः प्रभो ॥ १४  
 पुरुषा वपुषा युक्ता युक्ताः प्रसवजैर्गुणैः ।  
 भृगित्येव भृगुः पूर्वमङ्गारेभ्योऽङ्गिराभवत् ॥ १५  
 अङ्गारसंश्रयाच्चैव कविरित्यपरोऽभवत् ।  
 सह ज्वालाभिरुपन्नो भृगुस्तस्माद्भृगुः स्मृतः ॥ १६  
 मरीचिभ्यो मरीचिस्तु मरीचः कश्यपो ह्यभूत् ।  
 अङ्गारेभ्योऽङ्गिरास्तात वालखिल्याः शिलोच्चयात् ।  
 अत्रैवात्रेति च विभो जातमग्निं वदन्त्यपि ॥ १७  
 तथा भस्मव्यपोहेभ्यो ब्रह्मर्षिगणसंमिताः ।  
 वैखानसाः समुत्पन्नास्तपःश्रुतगुणेप्सवः ।  
 अश्रुतोऽस्य समुत्पन्नावश्विनौ रूपसंमतौ ॥ १८  
 शेषाः प्रजानां पतयः स्रोतोभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।  
 ऋषयो लोमकूपेभ्यः स्वेदाच्छन्दो मलात्मकम् ॥  
 एतस्मात्कारणादाद्भुर्भिर् सर्वास्तु देवताः ।  
 ऋषयः श्रुतसंपन्ना वेदप्रामाण्यदर्शनात् ॥ २०  
 यानि दारुणि ते मासा निर्यासाः पक्षसंज्ञिताः ।  
 अहोरात्रा मुहूर्तास्तु पित्तं ज्योतिश्च वारुणम् ॥ २१  
 रौद्रं लोहितमित्याहुर्लोहितात्कनकं स्मृतम् ।  
 तन्मैत्रमिति विज्ञेयं धूमाच्च वसवः स्मृताः ॥ २२  
 अर्चिषो याश्च ते रुद्रास्तथादित्या महाप्रभाः ।

उद्दिष्टास्ते तथाङ्गारा ये धिष्ण्येषु दिवि स्थिताः ॥  
 आदिनाथश्च लोकस्य तत्परं ब्रह्म तद्भुवम् ।  
 सर्वकामदमित्याहुस्तत्र हव्यमुदावहत् ॥ २४  
 ततोऽब्रवीन्महादेवो वरुणः परमात्मकः ।  
 मम सत्रमिदं दिव्यमहं गृहपतिस्त्विह ॥ २५  
 त्रीणि पूर्वाण्यपत्यानि मम तानि न संशयः ।  
 इति जानीत खगमा मम यज्ञफलं हि तत् ॥ २६  
 अग्निरुवाच ।

मदङ्गेभ्यः प्रसूतानि मदाश्रयकृतानि च ।  
 ममैव तान्यपत्यानि वरुणो ह्यवशात्मकः ॥ २७  
 अथाब्रवील्लोकगुरुर्ब्रह्मा लोकपितामहः ।  
 ममैव तान्यपत्यानि मम शुक्रं हुतं हि तत् ॥ २८  
 अहं वक्ता च मन्त्रस्य होता शुक्रस्य चैव ह ।  
 यस्य बीजं फलं तस्य शुक्रं चेत्कारणं मतम् ॥ २९  
 ततोऽब्रुवन्देवगणाः पितामहमुपेत्य वै ।  
 कृताञ्जलिपुटाः सर्वे शिरोभिरभिवन्द्य च ॥ ३०  
 वयं च भगवन्सर्वे जगच्च सचराचरम् ।  
 तवैव प्रसवाः सर्वे तस्मादग्निर्विभावसुः ।  
 वरुणश्चेश्वरो देवो लभतां काममीप्सितम् ॥ ३१  
 निसर्गाद्वरुणश्चापि ब्रह्मणो यादसां पतिः ।  
 जग्राह वै भृगुं पूर्वमपत्यं सूर्यवर्चसम् ॥ ३२  
 ईश्वरोऽङ्गिरसं चाग्नेरपत्यार्थेऽभ्यकल्पयत् ।  
 पितामहस्त्वपत्यं वै कवि जग्राह तत्त्ववित् ॥ ३३  
 तदा स दारुणः ख्यातो भृगुः प्रसवकर्मकृत् ।  
 आग्नेयस्त्वङ्गिराः श्रीमान्कविर्ब्राह्मो महायशाः ।  
 भार्गवाङ्गिरसौ लोके लोकसंतानलक्ष्णौ ॥ ३४  
 एते विप्रवराः सर्वे प्रजानां पतयस्त्रयः ।  
 सर्वं संतानमेतेषामिदमित्युपधारय ॥ ३५  
 भृगोस्तु पुत्रास्तत्रासन्सप्त तुल्या भृगोर्गुणैः ।  
 च्यवनो वज्रशीर्षश्च शुचिरौर्वस्तथैव च ॥ ३६

शुक्रो वरेण्यश्च विभुः सवनश्चेति सप्त ते ।  
 भार्गवा वारुणाः सर्वे येषां वंशे भवानपि ॥ ३७  
 अष्टौ चाङ्गिरसः पुत्रा वारुणास्तेऽप्युदाहृताः ।  
 बृहस्पतिरुत्थश्च वयस्यः शान्तिरेव च ॥ ३८  
 घोरो विरूपः संवर्तः सुधन्वा चाष्टमः स्मृतः ।  
 एतेऽष्टावभिजाः सर्वे ज्ञाननिष्ठा निरामयाः ॥ ३९  
 ब्राह्मणस्य कवेः पुत्रा वारुणास्तेऽप्युदाहृताः ।  
 अष्टौ प्रसवजैर्युक्ता गुणैर्ब्रह्मविदः शुभाः ॥ ४०  
 कविः कान्वश्च विष्णुश्च बुद्धिमानुशनास्तथा ।  
 भृगुश्च विरजाश्चैव काशी चोप्रश्च धर्मवित् ॥ ४१  
 अष्टौ कविमुता ह्येते सर्वमेभिर्जगत्ततम् ।  
 प्रजापतय एते हि प्रजानां धैरिमाः प्रजाः ॥ ४२  
 एवमङ्गिरसश्चैव कवेश्च प्रसवान्वयैः ।  
 भृगोश्च भृगुशार्दूल वंशजैः सततं जगत् ॥ ४३  
 वरुणश्चादितो विप्र जग्राह प्रभुरीश्वरः ।  
 कविं तात भृगुं चैव तस्मात्तौ वारुणौ स्मृतौ ॥ ४४  
 जग्राहाङ्गिरसं देवः शिखी तस्माद्भुताशनः ।  
 तस्मादङ्गिरसो ज्ञेयाः सर्व एव तदन्वयाः ॥ ४५  
 ब्रह्मा पितामहः पूर्वं देवताभिः प्रसादितः ।  
 इमे नः संतरिष्यन्ति प्रजाभिर्जगदीश्वराः ॥ ४६  
 सर्वे प्रजानां पतयः सर्वे चातितपस्विनः ।  
 त्वत्प्रसादादिमं लोकं तारयिष्यन्ति शाश्वतम् ॥ ४७  
 तथैव वंशकर्तारस्तव तेजोविवर्धनाः ।  
 भवेयुर्वेदविदुषः सर्वे वाक्पतयस्तथा ॥ ४८  
 देवपक्षधराः सौम्याः प्राजापत्या महर्षयः ।  
 आप्रवन्ति तपश्चैव ब्रह्मचर्यं परं तथा ॥ ४९  
 सर्वे हि वयमेते च तवैव प्रसवः प्रभो ।  
 देवानां ब्राह्मणानां च त्वं हि कर्ता पितामह ॥ ५०  
 मरीचिमादितः कृत्वा सर्वे चैवाथ भार्गवाः ।  
 अपत्यानीति संप्रेक्ष्य क्षमयाम पितामह ॥ ५१

ते त्वनेनैव रूपेण प्रजनिष्यन्ति वै प्रजाः ।  
 स्थापयिष्यन्ति चात्मानं युगादिनिधने तथा ॥ ५२  
 एवमेतत्पुरा वृत्तं तस्य यज्ञे महात्मनः ।  
 देवश्रेष्ठस्य लोकादौ वारुणीं विभ्रतस्तनुम् ॥ ५३  
 अभिर्ब्रह्मा पशुपतिः शर्वो रुद्रः प्रजापतिः ।  
 अभ्रेरपत्यमेतद्वै सुवर्णमिति धारणा ॥ ५४  
 अभ्यभावे च कुर्वन्ति वह्निस्थानेषु काञ्चनम् ।  
 जामदग्न्य प्रमाणज्ञा वेदश्रुतिनिदर्शनात् ॥ ५५  
 कुशस्तम्बे जुहोत्यग्निं सुवर्णं तत्र संस्थितम् ।  
 हृते प्रीतिकरीमृद्धिं भगवांस्तत्र मन्यते ॥ ५६  
 तस्मादभिपराः सर्वा देवता इति शुश्रुम ।  
 ब्रह्मणो हि प्रसूतोऽग्निरग्रेरपि च काञ्चनम् ॥ ५७  
 तस्माद्यै वै प्रयच्छन्ति सुवर्णं धर्मदर्शिनः ।  
 देवतास्ते प्रयच्छन्ति समस्ता इति नः श्रुतम् ॥ ५८  
 तस्य चातमसो लोका गच्छतः परमां गतिम् ।  
 स्वर्लोके राजराज्येन सोऽभिषिच्येत भार्गव ॥ ५९  
 आदित्योदयने प्राप्ते विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ।  
 ददाति काञ्चनं यो वै दुःस्वप्नं प्रतिहन्ति सः ॥ ६०  
 ददात्युदितमात्रे यस्तस्य पाप्मा विधूयते ।  
 मध्याह्ने ददतो रुक्मं हन्ति पापमनागतम् ॥ ६१  
 ददाति पश्चिमां संध्यां यः सुवर्णं धृतव्रतः ।  
 ब्रह्मवाय्वग्निसोमानां सालोक्यमुपयाति सः ॥ ६२  
 सेन्द्रेषु चैव लोकेषु प्रतिष्ठां प्राप्नुते शुभाम् ।  
 इह लोके यशः प्राप्य शान्तपाप्मा प्रमोदते ॥ ६३  
 ततः संपद्यतेऽन्येषु लोकेष्वप्रतिमः सदा ।  
 अनावृतगतिश्चैव कामचारी भवत्युत ॥ ६४  
 न च क्षरति तेभ्यः स शश्वच्चैवाप्रुते महत् ।  
 सुवर्णमक्षयं दत्त्वा लोकानाप्नोति पुष्कलान् ॥ ६५  
 यस्तु संजनयित्वाग्निमादित्योदयनं प्रति ।  
 दद्याद्वै व्रतमुद्दिश्य सर्वान्कामान्समभ्रुते ॥ ६६

अग्निरित्येव तत्प्राहुः प्रदानं वै सुखावहम् ।  
यथेष्टगुणसंपन्नं प्रवर्तकमिति स्मृतम् ॥ ६७  
भीष्म उवाच ।  
इत्युक्तः स वसिष्ठेन जामदग्न्यः प्रतापवान् ।  
ददौ सुवर्णं विप्रेभ्यो व्यमुच्यत च किल्बिषात् ॥  
एतत्ते सर्वमाख्यातं सुवर्णस्य महीपते ।  
प्रदानस्य फलं चैव जन्म चाग्र्यमनुत्तमम् ॥ ६९  
तस्मात्त्वमपि विप्रेभ्यः प्रयच्छ कनकं बहु ।  
ददत्सुवर्णं नृपते किल्बिषाद्विप्रमोक्ष्यसि ॥ ७०

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

८६

युधिष्ठिर उवाच ।

उक्ताः पितामहेनेह सुवर्णस्य विधानतः ।  
विस्तरेण प्रदानस्य ये गुणाः श्रुतिलक्षणाः ॥ १  
यत्तु कारणमुत्पत्तेः सुवर्णस्येह कीर्तितम् ।  
स कथं तारकः प्राप्तो निधनं तद्विवीहि मे ॥ २  
उक्तः स देवतानां हि अवध्य इति पार्थिव ।  
न च तस्येह ते मृत्युर्विस्तरेण प्रकीर्तितः ॥ ३  
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं त्वत्तः कुरुकुलोद्वह ।  
कात्स्न्येन तारकवधं परं कौतूहलं हि मे ॥ ४

भीष्म उवाच ।

विपन्नकृत्या राजेन्द्र देवता ऋषयस्तथा ।  
कृत्तिकाश्चोदयामासुरपत्यभरणाय वै ॥ ५  
न देवतानां काचिद्वि समर्था जातवेदसः ।  
एकापि शक्ता तं गर्भं संधारयितुमोजसा ॥ ६  
षण्णां तासां ततः प्रीतः पावको गर्भधारणात् ।  
स्वेन तेजोविसर्गेण वीर्येण परमेण च ॥ ७  
तासु षट्कृत्तिका गर्भं पुपुषुर्जातवेदसः ।  
षट्सु वर्त्मसु तेजोऽग्नेः सकलं निहितं प्रभो ॥ ८

ततस्ता वर्धमानस्य कुमारस्य महात्मनः ।  
तेजसाभिपरीताङ्गयो न क्वचिच्छर्म लेभिरे ॥ ९  
ततस्तेजःपरीताङ्गयः सर्वाः काल उपस्थिते ।  
समं गर्भं सुषुविरे कृत्तिकास्ता नरर्षभ ॥ १०  
ततस्तं षडधिष्ठानं गर्भमेकत्रमागतम् ।  
पृथिवी प्रतिजग्राह कान्तीपुरसमीपतः ॥ ११  
स गर्भा दिव्यसंस्थानो दीप्तिमान्पावकप्रभः ।  
दिव्यं शरवणं प्राप्य ववृधे प्रियदर्शनः ॥ १२  
ददृशुः कृत्तिकास्तं तु बालं वह्निममद्युतिम् ।  
जातस्नेहाश्च सौहार्दात्पुपुषुः स्तन्यविस्त्रवैः ॥ १३  
अभवत्कार्तिकेयः स त्रैलोक्ये सचराचरे ।  
स्कन्नत्वात्स्कन्दतां चाप गुहावासाद्गुहोऽभवत् ॥ १४  
ततो देवास्त्रयस्त्रिंशद्दिशश्च सदिगीश्वराः ।  
रुद्रो धाता च विष्णुश्च यज्ञः पूषार्यमा भगः ॥  
अंशो मित्रश्च साध्याश्च वसवो वासवोऽश्विनौ ।  
आपो वायुर्नभश्चन्द्रो नक्षत्राणि ग्रहा रविः ॥ १६  
पृथग्भूतानि चान्यानि यानि देवार्पणानि वै ।  
आजग्मुस्तत्र तं द्रष्टुं कुमारं ज्वलनात्मजम् ।  
ऋषयस्तुष्टुवृश्चैव गन्धर्वाश्च जगुस्तथा ॥ १७  
षडाननं कुमारं तं द्विपङ्क्तं द्विजप्रियम् ।  
पीनांसं द्वादशभुजं पावकादित्यवर्चसम् ॥ १८  
शयानं शरगुल्मस्थं दृष्ट्वा देवाः सहर्षिभिः ।  
लेभिरे परमं हर्षं मेनिरे चासुरं हतम् ॥ १९  
ततो देवाः प्रियाण्यस्य सर्वं एव समाचरन् ।  
क्रीडतः क्रीडनीयानि ददुः पक्षिगणांश्च ह ॥ २०  
सुपर्णोऽस्य ददौ पत्रं मयूरं चित्रवर्हिणम् ।  
राक्षसाश्च ददुस्तस्मै वराहमहिषावुभौ ॥ २१  
कुक्कुटं चाग्निसंकाशं प्रददौ वरुणः स्वयम् ।  
चन्द्रमाः प्रददौ मेषमादित्यो रुचिरां प्रभाम् ॥ २२  
गवां माता च गा देवी ददौ शतसहस्रशः ।

छागमग्निगुणोपेतमिला पुष्पफलं बहु ॥ २३  
 सुधन्वा शकटं चैव रथं चामितकूबरम् ।  
 वरुणो वारुणान्दिव्यान्भुजंगान्प्रददौ शुभान् ।  
 सिंहान्सुरेन्द्रो व्याघ्रांश्च द्वीपिनोऽन्यांश्च दंष्ट्रिणः ॥  
 श्वापदांश्च बहून्घोरांश्छत्राणि विविधानि च ।  
 राक्षसासुरसंघाश्च येऽनुजग्मुस्तमीश्वरम् ॥ २५  
 वर्धमानं तु तं दृष्ट्वा प्रार्थयामास तारकः ।  
 उपायैर्बहुभिर्हन्तुं नाशकञ्चापि तं विभुम् ॥ २६  
 सेनापत्येन तं देवाः पूजयित्वा गुहालयम् ।  
 शशंसुर्विप्रकारं तं तस्मै तारककारितम् ॥ २७  
 स विवृद्धो महावीर्यो देवसेनापतिः प्रभुः ।  
 जघानामोघया शक्त्या दानवं तारकं गुहः ॥ २८  
 तेन तस्मिन्कुमारेण क्रीडता निहतेऽसुरे ।  
 सुरेन्द्रः स्थापितो राज्ये देवानां पुनरीश्वरः ॥ २९  
 स सेनापतिरेवाथ बभौ स्कन्दः प्रतापवान् ।  
 ईशो गोप्ता च देवानां प्रियकृच्छंकरस्य च ॥ ३०  
 हिरण्यमूर्तिर्भगवानेष एव च पावकिः ।  
 सदा कुमारो देवानां सेनापत्यमवाप्तवान् ॥ ३१  
 तस्मात्सुवर्णं मङ्गल्यं रत्नमक्षय्यमुत्तमम् ।  
 सहजं कार्तिकेयस्य वहेस्तेजः परं मतम् ॥ ३२  
 एवं रामाय कौरव्य वसिष्ठोऽकथयत्पुरा ।  
 तस्मात्सुवर्णदानाय प्रयतस्व नराधिप ॥ ३३  
 रामः सुवर्णं दत्त्वा हि विमुक्तः सर्वकिल्बिषैः ।  
 त्रिविष्टपे महत्स्थानमवापासुलभं नरैः ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

८७

युधिष्ठिर उवाच ।

चातुर्वर्ण्यस्य धर्मात्मन्धर्मः प्रोक्तस्त्वयानघ ।  
 तथैव मे श्राद्धविधिं कृत्स्नं प्रब्रूहि पार्थिव ॥ १

वैशंपायन उवाच ।

युधिष्ठिरेणैवमुक्तो भीष्मः शांतनवस्तदा ।  
 इमं श्राद्धविधिं कृत्स्नं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २  
 भीष्म उवाच ।  
 शृणुष्वावहितो राजञ्श्राद्धकल्पमिमं शुभम् ।  
 धन्यं यशस्यं पुत्रीयं पितृयज्ञं परंतप ॥ ३  
 देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।  
 पिशाचकिंनराणां च पूज्या वै पितरः सदा ॥ ४  
 पितृन्पूज्यादितः पश्चाद्देवान्संतर्पयन्ति वै ।  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पुरुषः पूजयेत्सदा ॥ ५  
 अन्वाहार्यं महाराज पितॄणां श्राद्धमुच्यते ।  
 तच्चाभिषेण विधिना विधिः प्रथमकल्पितः ॥ ६  
 सर्वेष्वहःसु प्रीयन्ते कृतैः श्राद्धैः पितामहाः ।  
 प्रवक्ष्यामि तु ते सर्वांस्तिथ्यां तिथ्यां गुणागुणान् ॥  
 येष्वहःसु कृतैः श्राद्धैर्यत्फलं प्राप्यतेऽनघ ।  
 तत्सर्वं कीर्तयिष्यामि यथावत्तन्निबोध मे ॥ ८  
 पितृनर्च्यं प्रतिपदि प्राप्नुयात्स्वगृहे स्त्रियः ।  
 अभिरूपप्रजायिन्यो दर्शनीया बहुप्रजाः ॥ ९  
 स्त्रियो द्वितीयां जायन्ते तृतीयायां तु वन्दिनः ।  
 चतुर्थ्यां क्षुद्रपशवो भवन्ति बहवो गृहे ॥ १०  
 पञ्चम्यां बहवः पुत्रा जायन्ते कुर्वतां नृप ।  
 कुर्वाणास्तु नराः षष्ठ्यां भवन्ति द्युतिभागिनः ॥  
 कृषिभागी भवेच्छ्राद्धं कुर्वाणः सप्तमीं नृप ।  
 अष्टम्यां तु प्रकुर्वाणो वाणिज्ये लाभमाप्नुयात् ॥ १२  
 नवम्यां कुर्वतः श्राद्धं भवत्येकशफं बहु ।  
 विवर्धन्ते तु दशमीं गावः श्राद्धानि कुर्वतः ॥ १३  
 कुप्यभागी भवेन्मर्त्यः कुर्वन्नेकादशीं नृप ।  
 ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते तस्य वेश्मनि ॥ १४  
 द्वादश्यामीहमानस्य नित्यमेव प्रदृश्यते ।  
 रजतं बहु चित्रं च सुवर्णं च मनोरमम् ॥ १५

ज्ञातीनां तु भवेच्छ्रेष्ठः कुर्वन्श्राद्धं त्रयोदशीम् ।  
 अवश्यं तु युवानोऽस्य प्रमीयन्ते नरा गृहे ॥ १६  
 युद्धभागी भवेन्मर्त्यः श्राद्धं कुर्वन्चतुर्दशीम् ।  
 अमावास्यां तु निवपन्सर्वान्क्रामानवाप्नुयात् ॥ १७  
 कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।  
 श्राद्धकर्मणि तिथ्यः स्युः प्रशस्ता न तथेतराः ॥ १८  
 यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते ।  
 तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्नादपराह्णे विशिष्यते ॥ १९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

८८

युधिष्ठिर उवाच ।

किंस्विद्वत् पितृभ्यो वै भवत्यक्षयमीश्वर ।  
 किं हविश्चिररात्राय किमानन्त्याय कल्पते ॥ १

भीष्म उवाच ।

हवींषि श्राद्धकल्पे तु यानि श्राद्धविदो विदुः ।  
 तानि मे शृणु काम्यानि फलं चैषां युधिष्ठिर ॥ २  
 तिलैर्व्रीहियवैर्मर्षैरद्भिर्मूलफलैस्तथा ।  
 दत्तेन मांसं ग्रीयन्ते श्राद्धेन पितरो नृप ॥ ३  
 वर्धमानतिलं श्राद्धमक्षयं मनुरब्रवीत् ।  
 सर्वेष्वेव तु भोज्येषु तिलाः प्राधान्यतः स्मृताः ॥ ४  
 द्वौ मासौ तु भवेत्तृप्तिर्मर्त्यैः पितृगणस्य ह ।  
 त्रीन्मासानाविकेनाहुश्चातुर्मास्यं शशेन तु ॥ ५  
 आजेन मासान्ग्रीयन्ते पञ्चैव पितरो नृप ।  
 वाराहेण तु षण्मासान्सप्त वै शाकुनेन तु ॥ ६  
 मासानष्टौ पार्षतेन रौरवेण नवैव तु ।  
 गवयस्य तु मांसेन तृप्तिः स्यादशमासिकी ॥ ७  
 मासानेकादश प्रीतिः पितृणां माहिषेण तु ।  
 गव्येन दत्ते श्राद्धे तु संवत्सरमिहोच्यते ॥ ८  
 यथा गव्यं तथा युक्तं पायसं सर्पिषा सह ।

वाघ्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ९  
 आनन्त्याय भवेद्वत् खड्गमांसं पितृक्षये ।  
 कालशाकं च लौहं चाप्यानन्त्यं छाग उच्यते ॥ १०  
 गाथाश्चाप्यत्र गायन्ति पितृगीता युधिष्ठिर ।  
 सनत्कुमारो भगवानपुरा मय्यभ्यभाषत ॥ ११  
 अपि नः स कुले जायाद्यो नो दद्यान्नयोदशीम् ।  
 मघासु सर्पिषा युक्तं पायसं दक्षिणायने ॥ १२  
 आजेन वापि लौहेन मघास्वेव यतव्रतः ।  
 हस्तिच्छायासु विधिवत्कर्णव्यजनवीजितम् ॥ १३  
 एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।  
 यत्रासौ प्रथितो लोकेष्वक्षय्यकरणो वटः ॥ १४  
 आपो मूलं फलं मांसमन्नं वापि पितृक्षये ।  
 यत्किञ्चिन्मधुसंमिश्रं तदानन्त्याय कल्पते ॥ १५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

८९

भीष्म उवाच ।

यमस्तु यानि श्राद्धानि प्रोवाच शशबिन्दवे ।  
 तानि मे शृणु काम्यानि नक्षत्रेषु पृथक्पृथक् ॥ १  
 श्राद्धं यः कृत्तिकायोगे कुर्वीत सततं नरः ।  
 अग्नीनाधाय सापत्यो यजेत विगतज्वरः ॥ २  
 अपत्यकामो रोहिण्यामोजस्कामो मृगोत्तमे ।  
 क्रूरकर्मा ददच्छ्राद्धमाद्र्यायां मानवो भवेत् ॥ ३  
 कृषिभागी भवेन्मर्त्यः कुर्वन्श्राद्धं पुनर्वसौ ।  
 पुष्टिकामोऽथ पुष्येण श्राद्धमीहेत मानवः ॥ ४  
 आश्लेषायां ददच्छ्राद्धं वीरान्पुत्रान्प्रजायते ।  
 ज्ञातीनां तु भवेच्छ्रेष्ठो मघासु श्राद्धमावपन् ॥ ५  
 फल्गुनीषु ददच्छ्राद्धं सुभगः श्राद्धदो भवेत् ।  
 अपत्यभागुत्तरासु हस्तेन फलभागभवेत् ॥ ६  
 चित्राया तु ददच्छ्राद्धं लभेद्रूपवतः सुतान् ।

स्वातियोगे पितृनर्च्य वाणिज्यमुपजीवति ॥ ७  
 बहुपुत्रो विशाखासु पित्र्यमीहन्भवेन्नरः ।  
 अनुराधासु कुर्वाणो राजचक्रं प्रवर्तयेत् ॥ ८  
 आधिपत्यं व्रजेन्मर्त्यो ज्येष्ठायामपवर्जयन् ।  
 नरः कुरुकुलश्रेष्ठ श्रद्धादमपुरःसरः ॥ ९  
 मूले त्वारोग्यमच्छेत् यशोऽषाढास्वनुत्तमम् ।  
 उत्तरासु त्वपाढासु वीतशोकश्चरेन्महीम् ॥ १०  
 श्राद्धं त्वभिजिता कुर्वन्विद्यां श्रेष्ठामवाप्नुयात् ।  
 श्रवणे तु ददच्छ्राद्धं प्रेत्य गच्छेत्परां गतिम् ॥ ११  
 राज्यभागी धनिष्ठायां प्राप्नुयान्नापदं नरः ।  
 नक्षत्रे वारुणे कुर्वन्मिषक्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १२  
 पूर्वप्रोष्ठपदाः कुर्वन्बहु विन्देदजाविकम् ।  
 उत्तरास्वथ कुर्वाणो विन्दते गाः सहस्रशः ॥ १३  
 बहुरूप्यकृतं वित्तं विन्दते रेवतीं श्रितः ।  
 अश्वान्श्राश्वयुजे वेत्ति भरणीष्वायुरुत्तमम् ॥ १४  
 इमं श्राद्धविधिं श्रुत्वा शशविन्दुस्तथाकरोत् ।  
 अक्लेशेनाजयञ्चापि महीं सोऽनुशशास ह ॥ १५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकोनवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

९०

युधिष्ठिर उवाच ।

कीदृशेभ्यः प्रदातव्यं भवेच्छ्राद्धं पितामह ।  
 द्विजेभ्यः कुरुशार्दूल तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १

भीष्म उवाच ।

ब्राह्मणान्न परीक्षेत क्षत्रियो दानधर्मवित् ।  
 दैवे कर्मणि पित्र्ये तु न्याय्यमाहुः परीक्षणम् ॥ २  
 देवताः पूजयन्तीह दैवेनैवेह तेजसा ।  
 उपेत्य तस्माद्देवेभ्यः सर्वेभ्यो दापयेन्नरः ॥ ३  
 श्राद्धे त्वथ महाराज परीक्षेद्ब्राह्मणान्बुधः ।  
 कुलशीलवयोरूपैर्विद्ययाभिजनेन च ॥ ४

एषामन्ये पङ्क्तिदूपास्तथान्ये पङ्क्तिपावनाः ।  
 अपाङ्केयास्तु ये राजन्कीर्तयिष्यामि ताञ्शृणु ॥ ५  
 कितवो भ्रूणहा यक्ष्मी पशुपालो निराकृतिः ।  
 ग्रामप्रेष्यो वार्धुपिको गायनः सर्वविक्रयी ॥ ६  
 अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ।  
 सामुद्रिको राजभृत्यस्तैलिकः कूटकारकः ॥ ७  
 पित्रा विवदमानश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ।  
 अभिशस्तस्तथा स्तेनः शिल्पं यश्चोपजीवति ॥ ८  
 पर्वकारश्च सूची च मित्रशुक्पारदारिकः ।  
 अन्नतानामुपाध्यायः काण्डवृष्टस्तथैव च ॥ ९  
 श्वभिर्भ्यश्च परिक्रामेद्यः शुना दष्ट एव च ।  
 परिवित्तिश्च यश्च स्याद्दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ।  
 कुशीलवो देवलको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ॥ १०  
 एतानिह विजानीयादपाङ्केयान्द्विजाधमान् ।  
 शूद्राणामुपदेशं च ये कुर्वन्त्यल्पचेतसः ॥ ११  
 षष्टिं काणः शतं षण्ढः श्वित्री यावत्प्रपश्यति ।  
 पङ्क्त्यां समुपविष्टायां तावद्दूषयते नृप ॥ १२  
 यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद्भुङ्क्ते दक्षिणामुखः ।  
 सोपानत्कश्च यद्भुङ्क्ते सर्वं विद्यात्तदासुरम् ॥ १३  
 असूयता च यदत्तं यच्च श्रद्धाविवर्जितम् ।  
 सर्वं तदसुरेन्द्राय ब्रह्मा भागमकल्पयत् ॥ १४  
 श्वानश्च पङ्क्तिदूषाश्च नावेक्षेरन्कथंचन ।  
 तस्मात्परिवृते दद्यात्तिलांश्चान्ववकीरयेत् ॥ १५  
 तिलादाने च क्रव्यादा ये च क्रोधवशा गणाः ।  
 यातुधानाः पिशाचाश्च विप्रलुम्पन्ति तद्विः ॥ १६  
 यावद्ध्यपङ्क्तयः पङ्क्त्यां वै भुञ्जानाननुपश्यति ।  
 तावत्फलाद्भंशयति दातारं तस्य बालिशम् ॥ १७  
 इमे तु भरतश्रेष्ठ विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ।  
 ये त्वतस्तान्प्रवक्ष्यामि परीक्षस्वेह तान्द्रिजान् ॥ १८  
 वेदविद्याव्रतस्नाता ब्राह्मणाः सर्व एव हि ।

पाङ्केयान्यास्तु वक्ष्यामि ज्ञेयास्ते पङ्क्तिपावनाः ॥  
 त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ।  
 ब्रह्मदेयानुसंतानश्छन्दोगो ज्येष्ठसामगः ॥ २०  
 मातापित्रोर्यश्च वश्यः श्रोत्रियो दशपूरुषः ।  
 ऋतुकालाभिगामी च धर्मपत्नीषु यः सदा ।  
 वेदविद्याव्रतस्नातो विप्रः पङ्क्तिं पुनात्युत ॥ २१  
 अथर्वशिरसोऽध्येता ब्रह्मचारी यतव्रतः ।  
 सत्यवादी धर्मशीलः स्वकर्मनिरतश्च यः ॥ २२  
 ये च पुण्येषु तीर्थेषु अभिषेककृतश्रमाः ।  
 मखेषु च समन्त्रेषु भवन्त्यवभृथाप्लुताः ॥ २३  
 अक्रोधना अचपलाः क्षान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ।  
 सर्वभूतहिता ये च श्राद्धेष्वेतान्निमन्त्रयेत् ।  
 एतेषु दत्तमक्षय्यमेते वै पङ्क्तिपावनाः ॥ २४  
 इमे परे महाराज विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ।  
 यतयो मोक्षधर्मज्ञा योगाः सुचरितव्रताः ॥ २५  
 ये चेतिहासं प्रयताः श्रावयन्ति द्विजोत्तमान् ।  
 ये च भाष्यविदः केचित्थे च व्याकरणे रताः ॥  
 अधीयते पुराणं ये धर्मशास्त्राण्यथापि च ।  
 अधीत्य च यथान्यायं विधिवत्तस्य कारिणः ॥ २७  
 उपपन्नो गुरुकुले सत्यवादी सहस्रदः ।  
 अग्र्यः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ॥ २८  
 यावदेते प्रपश्यन्ति पङ्क्त्यास्तावत्पुनन्त्युत ।  
 ततो हि पावनात्पङ्क्त्याः पङ्क्तिपावन उच्यते ॥ २९  
 क्रोशादर्धवृत्तीयास्तु पावयेदेक एव हि ।  
 ब्रह्मदेयानुसंतान इति ब्रह्मविदो विदुः ॥ ३०  
 अनृत्विगनुपाध्यायः स चेदग्रासनं व्रजेत् ।  
 ऋत्विग्भिन्ननुज्ञातः पङ्क्त्या हरति दुष्कृतम् ॥ ३१  
 अथ चेद्वेदवित्सर्वैः पङ्क्तिदोषैर्विर्वर्जितः ।  
 न च स्यात्पतितो राजन्पङ्क्तिपावन एव सः ॥ ३२  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परीक्ष्यामन्त्रयेद्विज्ञान् ।

स्वकर्मनिरतान्दान्तान्कुले जातान्बहुश्रुतान् ॥ ३३  
 यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च ।  
 न प्रीणाति पितृन्देवान्स्वर्गं च न स गच्छति ॥ ३४  
 यश्च श्राद्धे कुरुते संगतानि  
 न देवयानेन पथा स याति ।  
 स वै मुक्तः पिप्पलं बन्धनाद्वा  
 स्वर्गाद्भोकाव्यवते श्राद्धमित्रः ॥ ३५  
 तस्मान्मित्रं श्राद्धकृन्नाद्रियेत  
 दद्यान्मित्रेभ्यः संग्रहार्थं धनानि ।  
 यं मन्यते नैव शत्रुं न मित्रं  
 तं मध्यस्थं भोजयेद्व्यकव्ये ॥ ३६  
 यथोषरे वीजमुपं न रोहे-  
 न चात्योप्ता प्राप्नुयाद्बीजभागम् ।  
 एवं श्राद्धं भुक्तमनर्हमाणै-  
 न चेह नामुत्र फलं ददाति ॥ ३७  
 ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।  
 तस्मै श्राद्धं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते ॥ ३८  
 संभोजनी नाम पिशाचदक्षिणा  
 सा नैव देवान्न पितृनुपैति ।  
 इहैव सा भ्राम्यति क्षीणपुण्या  
 शालान्तरे गौरिव नष्टवत्सा ॥ ३९  
 यथाग्नौ शान्ते घृतमाजुहोति  
 तन्नैव देवान्न पितृनुपैति ।  
 तथा दत्तं नर्तने गायने च  
 यां चानृचे दक्षिणामावृणोति ॥ ४०  
 उभौ हिनस्ति न भुनक्ति चैषा  
 या चानृचे दक्षिणा दीयते वै ।  
 आघातनी गर्हितैषा पतन्ती  
 तेषां प्रेतान्पातयेद्देवयानात् ॥ ४१  
 ऋषीणां समयं नित्यं ये चरन्ति युधिष्ठिर ।



निश्चिताः सर्वधर्मज्ञास्तान्देवा ब्राह्मणान्विदुः ॥ ४२  
 स्वाध्यायनिष्ठा ऋषयो ज्ञाननिष्ठास्तथैव च ।  
 तपोनिष्ठाश्च बोद्धव्याः कर्मनिष्ठाश्च भारत ॥ ४३  
 कव्यानि ज्ञाननिष्ठेभ्यः प्रतिष्ठाप्यानि भारत ।  
 तत्र ये ब्राह्मणाः केचिन्न निन्दति हि ते वराः ॥  
 ये तु निन्दन्ति जल्पेषु न ताञ्श्राद्धेषु भोजयेत् ।  
 ब्राह्मणा निन्दिता राजन्हन्युस्त्रिपुरुषं कुलम् ॥ ४५  
 वैखानसानां वचनमृषीणां श्रूयते नृप ।  
 दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।  
 प्रियान्वा यदि वा द्वेष्यांस्तेषु तच्छ्राद्धमावपेत् ॥  
 यः सहस्रं सहस्राणां भोजयेदनृचां नरः ।  
 एकस्तान्मन्त्रविप्रीतः सर्वानर्हति भारत ॥ ४७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

९१

युधिष्ठिर उवाच ।

केन संकल्पितं श्राद्धं कस्मिन्काले किमात्मकम् ।  
 भृग्वङ्गरसके काले मुनिना कतरेण वा ॥ १  
 कानि श्राद्धेषु वर्ज्यानि तथा मूलफलानि च ।  
 धान्यजातिश्च का वर्ज्या तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २

भीष्म उवाच ।

यथा श्राद्धं संप्रवृत्तं यस्मिन्काले यदात्मकम् ।  
 येन संकल्पितं चैव तन्मे शृणु जनाधिप ॥ ३  
 स्वायंभुवोऽत्रिः कौरव्य परमर्षिः प्रतापवान् ।  
 तस्य वंशे महाराज दत्तात्रेय इति स्मृतः ॥ ४  
 दत्तात्रेयस्य पुत्रोऽभून्निमिर्नाम तपोधनः ।  
 निमेश्राप्यभवत्पुत्रः श्रीमान्नाम श्रिया वृतः ॥ ५  
 पूर्णे वर्षसहस्रान्ते स कृत्वा दुष्करं तपः ।  
 कालधर्मपरीतात्मा निधनं समुपागतः ॥ ६  
 निमिस्तु कृत्वा शौचानि विधिदृष्टेन कर्मणा ।

संतापमगमत्तीव्रं पुत्रशोकपरायणः ॥ ७  
 अथ कृत्वोपहार्याणि चतुर्दश्यां महामतिः ।  
 तमेव गणयन्शोकं विरात्रे प्रत्यबुध्यत ॥ ८  
 तस्यासीत्प्रतिबुद्धस्य शोकेन पिहितात्मनः ।  
 मनः संहृत्य विषये बुद्धिर्विस्तरगामिनी ॥ ९  
 ततः संचिन्तयामास श्राद्धकल्पं समाहितः ।  
 यानि तस्यैव भोज्यानि मूलानि च फलानि च ॥  
 उक्तानि यानि चान्यानि यानि चेष्टानि तस्य ह ।  
 तानि सर्वाणि मनसा विनिश्चित्य तपोधनः ॥ ११  
 अमावास्यां महाप्राज्ञ विप्रानानाग्र्य पूजिताम् ।  
 दक्षिणावर्तिकाः सर्वा वृसीः स्वयमथाकरोत् ॥ १२  
 सप्त विप्रांस्ततो भोज्ये युगपत्समुपाययत् ।  
 ऋते च लवणं भोज्यं श्यामाकान्नं ददौ प्रभुः ॥ १३  
 दक्षिणाम्रास्ततो दर्भा विष्टरेषु निवेशिताः ।  
 पादयोश्चैव विप्राणां ये त्वन्नमुपभुञ्जते ॥ १४  
 कृत्वा च दक्षिणाम्रान्वै दर्भान्सुप्रयतः शुचिः ।  
 प्रददौ श्रीमते पिण्डं नामगोत्रमुदाहरन् ॥ १५  
 तत्कृत्वा स मुनिश्रेष्ठो धर्मसंकरमात्मनः ।  
 पश्चात्तापेन महता तप्यमानोऽभ्यचिन्तयत् ॥ १६  
 अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयैतदनुष्ठितम् ।  
 कथं नु शापेन न मां दहेयुर्ब्राह्मणा इति ॥ १७  
 ततः संचिन्तयामास वंशकर्तारमात्मनः ।  
 ध्यातमात्रस्तथा चात्रिराजगाम तपोधनः ॥ १८  
 अथात्रिस्त्रिं तथा दृष्ट्वा पुत्रशोकेन कर्षितम् ।  
 भृशमाश्वासयामास वाग्भिरिष्टाभिरव्ययः ॥ १९  
 निमे संकल्पितस्तेऽयं पितृयज्ञस्तपोधनः ।  
 मा ते भूद्भीः पूर्वदृष्टो धर्मोऽयं ब्रह्मणा स्वयम् ॥  
 सोऽयं स्वयंभुविहितो धर्मः संकल्पितस्त्वया ।  
 ऋते स्वयंभुवः कोऽन्यः श्राद्धेयं विधिमाहरेत् ॥ २१  
 आख्यास्यामि च ते भूयः श्राद्धेयं विधिमुत्तमम् ।

स्वयंभुविदितं पुत्र तत्कुरुष्व निबोध मे ॥ २२  
 कृत्वाम्निकरणं पूर्वं मन्त्रपूर्वं तपोधन ।  
 ततोऽर्थस्ने च सोमाय वरुणाय च नित्यशः ॥ २३  
 विश्वेदेवाश्च ये नित्यं पितृभिः सह गोचराः ।  
 तेभ्यः संकल्पिता भागाः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ २४  
 स्तोतव्या चेह पृथिवी निवापस्येह धारिणी ।  
 वैष्णवी काश्यपी चेति तथैवेहाक्षयेति च ॥ २५  
 उदकानयने चैव स्तोतव्यो वरुणो विभुः ।  
 ततोऽग्निश्चैव सोमश्च आप्याय्याविह तेऽनघ ॥ २६  
 देवास्तु पितरो नाम निर्मिता वै स्वयंभुवा ।  
 ऊष्मपाः सुमहाभागास्तेषां भागाः प्रकल्पिताः ॥  
 ते श्राद्धेनार्च्यमाना वै विमुच्यन्ते ह किल्बिषात् ।  
 सप्तकः पितृवंशस्तु पूर्वदृष्टः स्वयंभुवा ॥ २८  
 विश्वे चामिमुखा देवाः संख्याताः पूर्वमेव ते ।  
 तेषां नामानि वक्ष्यामि भागार्हाणां महात्मनाम् ॥  
 सहः कृतिर्विपाप्मा च पुण्यकृत्पावनस्तथा ।  
 ग्राम्निः क्षेमः समूहश्च दिव्यसानुस्तथैव च ॥ ३०  
 विवस्वान्वीर्यवान्हीमान्कीर्तिमान्कृत एव च ।  
 विपूर्वः सोमपूर्वश्च सूर्यश्रीश्चेति नामतः ॥ ३१  
 सोमपः सूर्यसावित्रो दत्तात्मा पुष्करियकः ।  
 उष्णीनाभो नभोदश्च विश्वायुर्दीप्तिरेव च ॥ ३२  
 चमूहः सुवेषश्च व्योमारिः शंकरो भवः ।  
 ईशः कर्ता कृतिर्दक्षो भुवनो दिव्यकर्मकृत् ॥ ३३  
 गणितः पञ्चवीर्यश्च आदित्यो रश्मिमांस्तथा ।  
 सप्तकृत्सोमवर्चाश्च विश्वकृत्कविरेव च ॥ ३४  
 अनुगोप्ता सुगोप्ता च नप्ता चेश्वर एव च ।  
 जितात्मा मुनिवीर्यश्च दीप्तलोमा भयंकरः ॥ ३५  
 अतिकर्मा प्रतीतश्च प्रदाता चांशुमास्तथा ।  
 शैलाभः परमक्रोधी धीरोष्णी भूपतिस्तथा ॥ ३६  
 स्रज्जी वज्री वरी चैव विश्वेदेवाः सनातनाः ।

कीर्तितास्ते महाभागाः कालस्य गतिगोचराः ॥ ३७  
 अश्राद्धेयानि धान्यानि कोद्रवाः पुलकास्तथा ।  
 हिङ्गु द्रव्येषु शाकेषु पलाण्डुं लशुनं तथा ॥ ३८  
 पलाण्डुः सौभञ्जनकस्तथा गृञ्जनकादयः ।  
 कूष्माण्डजात्यलाबुं च कृष्णं लवणमेव च ॥ ३९  
 ग्राम्यं वाराहमांसं च यज्ञैवाप्रोक्षितं भवेत् ।  
 कृष्णाजाजी विडश्चैव शीतपाकी तथैव च ।  
 अङ्कुराद्यास्तथा वज्या इह शृङ्गाटकानि च ॥ ४०  
 वर्जयेल्लवणं सर्वं तथा जम्बूफलानि च ।  
 अवक्षुतावरुदित तथा श्राद्धेषु वर्जयत् ॥ ४१  
 निवापे हव्यकव्ये वा गर्हितं च श्वदर्शनम् ।  
 पितरश्चैव देवाश्च नाभिनन्दन्ति तद्विः ॥ ४२  
 चण्डालश्चपचौ वज्यौ निवापे समुपस्थिते ।  
 काषायवासी कुष्ठी वा पतितो ब्रह्महापि वा ॥ ४३  
 संकीर्णयोनिर्विप्रश्च संबन्धी पतितश्च यः ।  
 वर्जनीया बुधैरेते निवापे समुपस्थिते ॥ ४४  
 इत्येवमुक्त्वा भगवान्स्ववंशजमृषि पुरा ।  
 पितामहसभां दिव्यां जगामात्रिस्तपोधनः ॥ ४५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

९२

भीष्म उवाच ।

तथा विधौ प्रवृत्ते तु सर्व एव महर्षयः ।  
 पितृयज्ञानकुर्वन्त विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १  
 ऋषयो धर्मनित्यास्तु कृत्वा निवपनान्युत ।  
 तर्पणं चाप्यकुर्वन्त तीर्थान्भोभिर्यतव्रताः ॥ २  
 निवापैर्दीयमानैश्च चातुर्वर्ण्येन भारत ।  
 तर्पिताः पितरो देवास्ते नान्नं जरयन्ति वै ॥ ३  
 अजीर्णेनाभिहन्यन्ते ते देवाः पितृभिः सह ।  
 सोममेवाभ्यपद्यन्त निवापान्नाभिपीडिताः ॥ ४

तेऽब्रुवन्सोममासाद्य पितरोऽजीर्णऽपीडिताः ।  
 निवापात्रेन पीड्यामः श्रेयो नोऽत्र विधीयताम् ॥  
 तान्सोमः प्रत्युवाचाथ श्रेयश्चेदीप्सितं सुराः ।  
 स्वयंभूसदनं यात स वः श्रेयो विधास्यति ॥ ६  
 ते सोमवचनादेवाः पितृभिः सह भारत ।  
 मेरुशृङ्गे समासीनं पितामहमुपागमन् ॥ ७

पितर ऊचुः ।

निवापात्रेन भगवन्भृशं पीड्यामहे वयम् ।  
 प्रसाद कुरु नो देव श्रेयो नः संविधीयताम् ॥ ८  
 इति तेषां वचः श्रुत्वा स्वयंभूरिदमब्रवीत् ।  
 एष मे पार्श्वतो वह्निर्युष्मच्छ्रेयो विधास्यति ॥ ९

अग्निरुवाच ।

सहितास्तात भोक्ष्यामो निवापे समुपस्थिते ।  
 जरयिष्यथ चाप्यन्नं मया सार्धं न संशयः ॥ १०  
 एतच्छ्रुत्वा तु पितरस्ततस्ते विज्वराभवन् ।  
 एतस्मात्कारणाच्चाग्नेः प्राक्तनं दीयते नृप ॥ ११  
 निवप्ते चाग्निपूर्वे वै निवापे पुरुषर्षभ ।  
 न ब्रह्मराक्षसास्तं वै निवापं धर्षयन्त्युत ।  
 रक्षांसि चापवर्तन्ते स्थिते देवे विभावसौ ॥ १२  
 पूर्वं पिण्डं पितुर्दद्यात्ततो दद्यात्पितामहे ।  
 प्रपितामहाय च तत एष श्राद्धविधिः स्मृतः ॥ १३  
 ब्रूयाच्छ्रद्धे च सावित्रीं पिण्डे पिण्डे समाहितः ।  
 सोमायेति च वक्तव्यं तथा पितृमतेति च ॥ १४  
 रजस्वला च या नारी व्यङ्गिता कर्णयोश्च या ।  
 निवापे नोपतिष्ठेत संग्राह्या नान्यवंशजाः ॥ १५  
 जलं प्रतरमाणश्च कीर्तयेत पितामहान् ।  
 नदीमासाद्य कुर्वीत पितृणां पिण्डतर्पणम् ॥ १६  
 पूर्वं स्ववंशजानां तु कृत्वाद्भिस्तर्पणं पुनः ।  
 सुहृत्संबन्धिवर्गाणां ततो दद्याज्जलाञ्जलिम् ॥ १७  
 कल्माषगोयुगेनाथ युक्तेन तरतो जलम् ।

पितरोऽभिलषन्ते वै नावं चाप्यधिरोहतः ।  
 सदा नावि जलं तज्ज्ञाः प्रयच्छन्ति समाहिताः ॥  
 मासार्धे कृष्णपक्षस्य कुर्यान्नवपनानि वै ।  
 पुष्टिरायुस्तथा वीर्यं श्रीश्चैव पितृवर्तिनः ॥ १९  
 पितामहः पुलस्त्यश्च वसिष्ठः पुलहस्तथा ।  
 अङ्गिराश्च क्रतुश्चैव कश्यपश्च महानृषिः ।  
 एते कुरुकुलश्रेष्ठ महायोगेश्वराः स्मृताः ॥ २०  
 एते च पितरो राजन्नेष श्राद्धविधिः परः ।  
 प्रेतास्तु पिण्डसंबन्धान्मुच्यन्ते तेन कर्मणा ॥ २१  
 इत्येषा पुरुषश्रेष्ठ श्राद्धोत्पत्तिर्यथागमम् ।  
 ख्यापिता पूर्वनिर्दिष्टा दानं वक्ष्याम्यतः परम् ॥ २२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

९३

युधिष्ठिर उवाच ।

द्विजातयो व्रतोपेता हविस्ते यदि भुञ्जते ।  
 अन्नं ब्राह्मणकामाय कथमेतत्पितामह ॥ १

भीष्म उवाच ।

अवेदोक्तव्रताश्चैव भुञ्जानाः कार्यकारिणः ।  
 वेदोक्तेषु तु भुञ्जाना व्रतलुप्ता युधिष्ठिर ॥ २

युधिष्ठिर उवाच ।

यदिदं तप इत्याहुरपवासं पृथग्जनाः ।  
 तपः स्यादेतदिह वै तपोऽन्यद्वापि किं भवेत् ॥ ३

भीष्म उवाच ।

मासार्धमासौ नोपवसेद्यत्तपो मन्यते जनः ।  
 आत्मतन्त्रोपघाती यो न तपस्वी न धर्मवित् ॥ ४  
 त्यागस्यापि च संपत्तिः शिष्यते तप उत्तमम् ।  
 सदोपवासी स भवेद्ब्रह्मचारी तथैव च ॥ ५  
 मुनिश्च स्यात्सदा विप्रो देवांश्चैव सदा यजेत् ।

कुटुम्बिको धर्मकामः सदास्वप्रश्न भारत ॥ ६  
 अमृताशी सदा च स्यात्पवित्री च सदा भवेत् ।  
 ऋतवादी सदा च स्यान्नियतश्च सदा भवेत् ॥ ७  
 विघसाशी सदा च स्यात्सदा चैवातिथिप्रियः ।  
 अमांसाशी सदा च स्यात्पवित्री च सदा भवेत् ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं सदोपवासी स्याद्ब्रह्मचारी च पार्थिव ।  
 विघसाशी कथं च स्यात्कथं चैवातिथिप्रियः ॥ ९

भीष्म उवाच ।

अन्तरा सायमाशं च प्रातराशं तथैव च ।  
 सदोपवासी भवति यो न भुङ्क्तेऽन्तरा पुनः ॥ १०  
 भार्या गच्छन्ब्रह्मचारी सदा भवति चैव ह ।  
 ऋतवादी सदा च स्याद्दानशीलश्च मानवः ॥ ११  
 अभक्ष्यन्वृथा मांसममांसाशी भवत्युत ।  
 दानं ददत्पवित्री स्यादस्वप्रश्न दिवास्वपन् ॥ १२  
 भृत्यातिथिषु यो भुङ्क्ते भुक्तवत्सु नरः सदा ।  
 अमृतं केवलं भुङ्क्ते इति विद्वि युधिष्ठिर ॥ १३  
 अभुक्तवत्सु नाश्राति ब्राह्मणेषु तु यो नरः ।  
 अभोजनेन तेनास्य जितः स्वर्गो भवत्युत ॥ १४  
 देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च भृत्येभ्योऽतिथिभिः सह ।  
 अवशिष्टानि यो भुङ्क्ते तमाहुर्विघसाशिनम् ॥ १५  
 तेषां लोका ह्यपर्यन्ताः सदने ब्रह्मणः स्मृताः ।  
 उपस्थिता ह्यप्सरोभिर्गन्धर्वैश्च जनाधिप ॥ १६  
 देवतातिथिभिः सार्धं पितृभिश्चोपभुङ्गते ।  
 रमन्ते पुत्रपौत्रैश्च तेषां गतिरनुत्तमा ॥ १७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

९४

युधिष्ठिर उवाच ।

ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छन्ति दानानि विविधानि च ।  
 दातृप्रतिग्रहीत्रोर्वा को विशेषः पितामह ॥ १

भीष्म उवाच ।

साधोर्यः प्रतिगृहीयात्तथैवासाधुतो द्विजः ।  
 गुणवत्यल्पदोषः स्यान्निर्गुणे तु निमज्जति ॥ २  
 अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 वृषादर्भेश्च सवाद सप्तर्षीणां च भारत ॥ ३  
 कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः ।  
 विश्वामित्रो जमदग्निः साध्वी चैवाप्यरुधन्ती ॥ ४  
 सर्वेषामथ तेषां तु गण्डाभूत्कर्मकारिका ।  
 शूद्रः पशुसखश्चैव भर्ता चास्या वभूव ह ॥ ५  
 ते वै सर्वे तपस्यन्तः पुरा चैरुर्महीभिमाम् ।  
 समाधिनोपशिक्षन्तो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ६  
 अथाभवदनावृष्टिर्महती कुरुनन्दन ।  
 कृच्छ्राणोऽभवद्यत्र लोकोऽयं वै क्षुधान्वितः ॥ ७  
 कस्मिंश्चिच्च पुरा यज्ञे याज्येन शिविसूनुना ।  
 दक्षिणार्थेऽथ ऋत्विग्भ्यो दत्तः पुत्रो निजः किल ॥  
 तस्मिन्कालेऽथ सोऽल्पायुर्दिष्टान्तमगमत्प्रभो ।  
 ते न क्षुधाभिसंतप्ताः परिवार्योपतस्थिरे ॥ ९  
 याज्यात्मजमथो दृष्ट्वा गतासुमृषिसत्तमाः ।  
 अपचन्त तदा स्यात्या क्षुधार्ताः किल भारत ॥ १०  
 निराद्ये मर्त्यलोकेऽस्मिन्नात्मानं ते परीप्सवः ।  
 कृच्छ्रामापेदिरे वृत्तिमन्नहेतोस्तपस्विनः ॥ ११  
 अटमानोऽथ तान्मार्गे पचमानान्महीपतिः ।  
 राजा शैब्यो वृषादर्भिः क्षिप्रयमानान्दर्श ह ॥ १२

वृषादर्भिरुवाच ।

प्रतिग्रहस्तारयति पुष्टिर्वै प्रतिगृह्यताम् ।  
 मयि यद्विद्यते वित्तं तच्छृणुध्वं तपोधनाः ॥ १३

प्रियो हि मे ब्राह्मणो याचमानो

दद्यामहं वोऽश्वतरीसहस्रम् ।

एकैकशः सवृषाः संप्रसूताः

सर्वेषां वै शीघ्रगाः श्वेतलोमाः ॥ १४

कुलंभराननडुहः शतंशता-

न्धुर्याञ्शुभान्सर्वशोऽहं ददानि ।

पृथ्वीवाहान्पीवरांश्चैव ताव-

दश्या गृध्रो घेनवः सुव्रताश्च ॥ १५

वरान्ग्रामान्ग्रीहियवं रसांश्च

रत्नं चान्यहुर्लभं किं ददानि ।

मा स्माभक्ष्ये भावमेवं कुरुध्वं

पुष्ट्यर्थं वै किं प्रयच्छाम्यहं वः ॥ १६

ऋषय ऊचुः ।

राजन्प्रतिग्रहो राज्ञो मध्वास्वादो विषोपमः ।

तज्ज्ञानमानः कस्मात्त्वं कुरुषे नः प्रलोभनम् ॥ १७

क्षत्रं हि दैवतमिव ब्राह्मणं समुपाश्रितम् ।

अमलो ह्येष तपसा प्रीतः प्रीणाति देवताः ॥ १८

अह्वाप्रीह तपो जातु ब्राह्मणस्योपजायते ।

तद्वाव इव निर्दह्यात्प्राप्तो राजप्रतिग्रहः ॥ १९

कुशलं सह दानेन राजन्नस्तु सदा तव ।

अर्थिभ्यो दीयतां सर्वमित्युक्त्वा ते ततो ययुः ॥

अपक्मेव तन्मांसमभूत्तेषां च धीमताम् ।

अथ हित्वा ययुः सर्वे वनमाहारकाङ्क्षिणः ॥ २१

ततः प्रचोदिता राज्ञा वनं गत्वास्य मन्त्रिणः ।

प्रचीयोदुम्बराणि स्म दानं दातुं प्रचक्रमुः ॥ २२

उदुम्बराण्यथान्यानि हेमगर्भाण्युपाहरन् ।

भृत्यास्तेषां ततस्तानि प्रग्राहितुमुपाद्रवन् ॥ २३

गुरुणीति विदित्वाथ न ग्राह्याण्यत्रिरब्रवीत् ।

न स्म हे मूढविज्ञाना न स्म हे मन्दबुद्धयः ।

हैमानीमानि जानीमः प्रतिबुद्धाः स्म जागृमः ॥ २४

इह ह्येतदुपादत्तं प्रेत्य स्यात्कटुकोदयम् ।

अप्रतिग्राह्यमेवैतत्प्रेत्य चेह सुखेप्सुना ॥ २५

वसिष्ठ उवाच ।

शतेन निष्कं गणितं सहस्रेण च संमितम् ।

यथा बहु प्रतीच्छन्हि पापिष्ठा लभते गतिम् ॥ २६

कश्यप उवाच ।

यत्पृथिव्यां ग्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।

सर्वं तन्नालमेकस्य तस्माद्विद्वाञ्शमं व्रजेत् ॥ २७

भरद्वाज उवाच ।

उत्पन्नस्य रुरोः शृङ्गं वर्धमानस्य वर्धते ।

प्रार्थना पुरुषस्येव तस्य मात्रा न विद्यते ॥ २८

गौतम उवाच ।

न तल्लोके द्रव्यमस्ति यल्लोकं प्रतिपूरयेत् ।

समुद्रकल्पः पुरुषो न कदाचन पूर्यते ॥ २९

विश्वामित्र उवाच ।

कामं कामयमानस्य यदा कामः समृध्यते ।

अथैनमपरः कामस्तृष्णा विध्वसति बाणवत् ॥ ३०

जमदग्निरुवाच ।

प्रतिग्रहे संयमो वै तपो धारयते ध्रुवम् ।

तद्धनं ब्राह्मणस्येह लुभ्यमानस्य विस्त्रवेत् ॥ ३१

अरुन्धत्युवाच ।

धर्मार्थं संचयो यो वै द्रव्याणां पक्षसंमतः ।

तपःसंचय एवेह विशिष्टो द्रव्यसंचयात् ॥ ३२

गण्डोवाच ।

उग्रादितो भयाद्यस्माद्विभ्यतीमे ममेश्वराः ।

बलीयांसो दुर्बलवद्विभेम्यहमतः परम् ॥ ३३

पशुसख उवाच ।

यद्वै धर्मे परं नास्ति ब्राह्मणास्तद्धनं विदुः ।

विनयायं सुविद्वांसमुपासेथं यथातथम् ॥ ३४

ऋषय ऊचुः ।

कुशलं सह दानाय तस्मै यस्य प्रजा इमाः ।

फलान्युपधियुक्तानि य एव नः प्रयच्छसि ॥ ३५

भीष्म उवाच ।

इत्युक्त्वा हेमगर्भाणि हित्वा तानि फलानि ते ।

ऋषयो जग्मुरन्यत्र सर्व एव धृतव्रताः ॥ ३६

मन्त्रिणः ऊचुः ।

उपधि शङ्कमानास्ते हित्वेमानि फलानि वै ।

ततोऽन्येनैव गच्छन्ति विदितं तेऽस्तु पार्थिव ॥ ३७

इत्युक्तः स तु भृत्यैस्तेवृषादर्भिश्चकोप ह ।

तेषां संप्रतिकर्तुं च सर्वेषामगमद्गृहम् ॥ ३८

स गत्वाहवनीयेऽग्नौ तीव्रं नियममास्थितः ।

जुहाव संस्कृतां मन्त्रैरेकैकामाहुतिं नृपः ॥ ३९

तस्मादग्नेः समुत्तस्थौ कृत्या लोकभयंकरी ।

तस्या नाम वृषादर्भिर्यातुधानीत्यथाकरोत् ॥ ४०

सा कृत्या कालरात्रीव कृताञ्जलिरुपस्थिता ।

वृषादर्भिं नरपतिं किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ ४१

वृषादर्भिरुवाच ।

ऋषीणां गच्छ सप्तानामरुन्धत्यास्तथैव च ।

दासीभर्तुश्च दास्याश्च मनसा नाम धारय ॥ ४२

ज्ञात्वा नामानि चैतेषां सर्वानेनान्विनाशय ।

विनष्टेषु यथा स्वैरं गच्छ यत्रेप्सितं तव ॥ ४३

सा तथेति प्रतिश्रुत्य यातुधानी स्वरूपिणी ।

जगाम तद्वनं यत्र विचेरुस्ते महर्षयः ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

९५

भीष्म उवाच ।

अथात्रिप्रमुखा राजन्वने तस्मिन्महर्षयः ।

व्यचरन्भक्षयन्तो वै मूलानि च फलानि च ॥ १

अथापश्यन्सुपीनांसपाणिपादमुखोदरम् ।

परिब्रजन्तं स्थूलाङ्गं परिव्राजं शुनःसखम् ॥ २

अरुन्धती तु तं दृष्ट्वा सर्वाङ्गोपचितं शुभा ।

भवितारो भवन्तो वै नैवमित्यब्रवीद्वपीन् ॥ ३

वसिष्ठ उवाच ।

नैतस्येह यथास्माकमग्निहोत्रमनिर्हुतम् ।

सायं प्रातश्च होतव्यं तेन पीवाञ्शुनःसखः ॥ ४

अत्रिरुवाच ।

नैतस्येह यथास्माकं क्षुधा वीर्यं समाहतम् ।

कृच्छ्राधीनं प्रनष्टं च तेन पीवाञ्शुनःसखः ॥ ५

विश्वामित्र उवाच ।

नैतस्येह यथास्माकं शश्वच्छास्त्रं जरद्वयः ।

अलसः क्षुत्परो मूर्खस्तेन पीवाञ्शुनःसखः ॥ ६

जमदग्निरुवाच ।

नैतस्येह यथास्माकं भक्तमिन्धनमेव च ।

संचिन्त्य वार्षिकं किञ्चित्तेन पीवाञ्शुनःसखः ॥ ७

कश्यप उवाच ।

नैतस्येह यथास्माकं चत्वारश्च सहोदराः ।

देहि देहीति भिक्षन्ति तेन पीवाञ्शुनःसखः ॥ ८

भरद्वाज उवाच ।

नैतस्येह यथास्माकं ब्रह्मबन्धोरचेतसः ।

शोको भार्यापवादेन तेन पीवाञ्शुनःसखः ॥ ९

गौतम उवाच ।

नैतस्येह यथास्माकं त्रिकौशेयं हि राङ्गवम् ।

एकैकं वै त्रिवार्षीयं तेन पीवाञ्शुनःसखः ॥ १०

भीष्म उवाच ।

अथ दृष्ट्वा परिवादू तान्महर्षीञ्शुनःसखः ।

अभिगम्य यथान्याय पाणिस्पर्शमथाचरन् ॥ ११

परिचर्यां वने तां तु क्षुत्प्रतीघातकारिकाम् ।

अन्योन्येन निवेद्याथ प्रातिष्ठन्त सहैव ते ॥ १२

एकनिश्चयकार्याश्च व्यचरन्त वनानि ते ।

आवदानाः समुद्रुत्य मूलानि च फलानि च ॥ १३

कदाचिद्विचरन्तस्ते वृक्षैरविरलैर्वृताम् ।

शुचिवारिप्रसन्नोदां ददृशुः पद्मिनीं शुभाम् ॥ १४

बालादित्यवपुःप्रख्यैः पुष्करैरुपशोभिताम् ।

वैदूर्यवर्णसदृशैः पद्मपत्रैरथावृताम् ॥ १५

नानाविधैश्च विहगैर्जलप्रकरसेविभिः ।

एकद्वारामनादेयां सूपतीर्थमिकर्दमाम् ॥ १६

वृषादर्भिप्रयुक्ता तु कृत्या विस्मृतदर्शना ।

यातुधानीनि विख्याता पद्मिनी तामरक्षत ॥ १७

शुनःसखसहायास्तु विसार्थं ते महर्षयः ।

पद्मिनीमभिजग्मुस्ते सर्वे कृत्याभिरक्षिताम् ॥ १८

ततस्ते यातुधानीं तां दृष्ट्वा विकृतदर्शनाम् ।

स्थितां कमलिनीतीरे कृत्यामूचुर्महर्षयः ॥ १९

एका तिष्ठसि का नु त्वं कस्यार्थं किं प्रयोजनम् ॥

पद्मिनीतीरमाश्रित्य ब्रूहि त्वं किं चिकीर्षसि ॥ २०

यातुधान्युवाच ।

यास्मि सास्यनुयोगो मे न कर्तव्यः कथंचन ।

आरक्षिणीं मां पद्मिन्या वित्तं सर्वं तपोधनाः ॥ २१

ऋषय ऊचुः ।

सर्व एव क्षुधार्ताः स्म न चान्यत्किंचिदस्ति नः ।

भवत्याः संमते सर्वे गृहीमहि विसान्युत ॥ २२

यातुधान्युवाच ।

समयेन विसानीतो गृहीध्वं कामकारतः ।

एकैको नाम मे प्रोक्त्वा ततो गृहीत साचिरम् ॥ २३

भीष्म उवाच ।

विज्ञाय यातुधानीं तां कृत्यामृषिवधैषिणीम् ।

अत्रिः क्षुधापरीतात्मा ततो वचनमब्रवीत् ॥ २४

अरात्रिरेः सा रात्रियां नाधीते त्रिरद्य वै ।

अरात्रिरत्रिरित्येव नाम मे विद्धि शोभने ॥ २५

यातुधान्युवाच ।

यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महामुने ।

दुर्धार्यमेतन्मनसा गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ २६

वसिष्ठ उवाच ।

वसिष्ठोऽस्मि वरिष्ठोऽस्मि वसे वासं गृहेष्वपि ।

वरिष्ठत्वाच्च वासाच्च वसिष्ठ इति विद्धि माम् ॥ २७

यातुधान्युवाच ।

नामनैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।

नैतद्वारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ २८

कश्यप उवाच ।

कुलं कुलं च कुपपः कुपयः कश्यपो द्विजः ।

काश्यः काशनिकाशत्वादेतन्मे नाम धारय ॥ २९

यातुधान्युवाच ।

यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महामुने ।

दुर्धार्यमेतन्मनसा गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ३०

भरद्वाज उवाच ।

भरे सुतान्भरे शिष्यान्भरे देवान्भरे द्विजान् ।

भरे भार्यामनव्याजो भरद्वाजोऽस्मि शोभने ॥ ३१

यातुधान्युवाच ।

नामनैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।

नैतद्वारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ३२

गौतम उवाच ।

गोदमो दमगोऽधूमो दमो दुर्दर्शनश्च ते ।

विद्धि मां गौतमं कृत्ये यातुधानि निबोध मे ॥

यातुधान्युवाच ।

यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महामुने ।

नैतद्वारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ३४

विश्वामित्र उवाच ।

विश्वेदेवाश्च मे मित्रं मित्रमस्मि गवां तथा ।

विश्वामित्रमिति ख्यातं यातुधानि निबोध मे ॥ ३५

यातुधान्युवाच ।

नामनैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।

नैतद्वारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ३६

जमदग्निरुवाच ।

जाजमद्यजजा नाम मृजा माह जिजायिषे ।

जमदग्निरिति ख्यातमतो मां विद्धि शोभने ॥ ३७

यातुधान्युवाच ।

यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महामुने ।

नैतद्वारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ३८

अरुन्धत्युवाच ।

धरां धरित्रीं वसुधां भर्तुस्तिष्ठाम्यनन्तरम् ।

मनोऽनुरुन्धती भर्तुरिति मां विद्ध्यरुन्धतीम् ॥ ३९

यातुधान्युवाच ।

नामनैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।

नैतद्वारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ४०

गण्डोवाच ।

गण्ड गण्डं गतवती गण्डगण्डेति संज्ञिता ।

गण्डगण्डेव गण्डेति विद्धि मानलसभवे ॥ ४१

यातुधान्युवाच ।

नामनैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।

नैतद्वारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ४२

पशुसख उवाच ।

सखा सखे यः सख्येयः पशूनां च सखा सदा ।

गौणं पशुसखेत्येवं विद्धि मामग्निसंभवे ॥ ४३

यातुधान्युवाच ।

नामनैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।

नैतद्वारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ४४

शुनःसख उवाच ।

एभिरुक्तं यथा नाम नाहं वक्तुमिहोत्सहे ।

शुनःसखसखायं मां यातुधान्युपधारय ॥ ४५

यातुधान्युवाच ।

नाम तेऽव्यक्तमुक्तं वै वाक्यं संदिग्धया गिरा ।

तस्यात्सकृदिदानीं त्वं ब्रूहि यन्नाम ते द्विज ॥ ४६

शुनःसख उवाच ।

सकृदुक्तं मया नाम न गृहीतं यदा त्वया ।

तस्मान्निदण्डाभिहता गच्छ भस्मेति माचिरम् ॥ ४७

भीष्म उवाच ।

सा ब्रह्मदण्डकल्पेन तेन मूर्ध्नि हता तदा ।

कृत्या पपात मेदिन्यां भस्मसाञ्च जगाम ह ॥ ४८

शुनःसखश्च हत्वा तां यातुधानीं महाबलाम् ।

भुवि त्रिदण्ड विष्टभ्य शार्दूले समुपाविशत् ॥ ४९

ततस्ते मुनयः सर्वे पुष्कराणि विसानि च ।

यथाकाममुपादाय समुत्तस्थुर्मुदान्विताः ॥ ५०

श्रमेण महता युक्तास्ते विसानि कलापशः ।

तीरे निक्षिप्य पद्मिन्यास्तर्पणं चक्रुरम्भसा ॥ ५१

अथोत्थाय जलात्तस्मात्सर्वे ते वै समागमन् ।

नापश्यंश्चापि ते तानि विसानि पुरुषर्षभ ॥ ५२



कषय ऊचुः ।

केन क्षुधाभिभूतानामस्माकं पापकर्मणा ।  
नृशंसेनापनीतानि विसान्याहारकाङ्क्षिणाम् ॥ ५३  
ते शङ्कमानास्त्वन्योन्यं पप्रच्छुर्द्विजसत्तमाः ।  
त ऊचुः शपथं सर्वे कुर्म इत्यरिकर्शन ॥ ५४  
त उक्त्वा बाढमित्येव सर्व एव शुनःसखम् ।  
क्षुधार्ताः सुपरिश्रान्ताः शपथायोपचक्रमुः ॥ ५५

अत्रिरुवाच ।

स गां स्पृशतु पादेन सूर्यं च प्रतिमेहतु ।  
अनध्यायेष्वधीयीत विसस्तैन्यं करोति यः ॥ ५६

वसिष्ठ उवाच ।

अनध्यायपरो लोके शुनः स परिकर्षतु ।  
परिव्राट्कामवृत्तोऽस्तु विसस्तैन्यं करोति यः ॥ ५७  
शरणागतं हन्तु मित्रं स्वसुतां चोपजीवतु ।  
अर्थान्काङ्क्षतु कीनाशाद्विसस्तैन्यं करोति यः ॥ ५८

कश्यप उवाच ।

सर्वत्र सर्वं पणतु न्यासलोपं करोतु च ।  
कूटसाक्षित्वमभ्येतु विसस्तैन्यं करोति यः ॥ ५९  
वृथामांसं समभ्रातु वृथादानं करोतु च ।  
यातु स्त्रियं दिवा चैव विसस्तैन्यं करोति यः ॥ ६०

भरद्वाज उवाच ।

नृशंसस्यक्तधर्मोऽस्तु स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च ।  
ब्राह्मणं चापि जयतां विसस्तैन्यं करोति यः ॥ ६१  
उपाध्यायमधः कृत्वा ऋचोऽध्येतु यजूंषि च ।  
जुहोतु च स कक्षाग्रौ विसस्तैन्यं करोति यः ॥ ६२

जमदग्निरुवाच ।

पुरीषमुत्सृजत्वप्सु हन्तु गां चापि दोहिनीम् ।  
अनृतौ मैथुनं यातु विसस्तैन्यं करोति यः ॥ ६३  
द्वेष्ट्यो भार्योपजीवी स्याद्भूरवन्धुश्च वैरवान् ।

अन्योन्यस्यातिथिश्चास्तु विसस्तैन्यं करोति यः ॥

गौतम उवाच ।

अधीत्य वेदांस्यजतु त्रीनग्नीनपविध्यतु ।  
विक्रीणातु तथा सोमं विसस्तैन्यं करोति यः ॥ ६५  
उदपानप्लवे ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः ।  
तस्य सालोक्यतां यातु विसस्तैन्यं करोति यः ॥ ६६

विश्वामित्र उवाच ।

जीवतो वै गुरुन्भृत्यान्भरन्त्वस्य परे जनाः ।  
अगतिर्बहुपुत्रः स्याद्विसस्तैन्यं करोति यः ॥ ६७  
अशुचिर्ब्रह्मकूटोऽस्तु ऋद्ध्या चैवाप्यहकृतः ।  
कर्षको मत्सरी चास्तु विसस्तैन्यं करोति यः ॥ ६८  
वर्षान्करोतु भृतको राज्ञश्चास्तु पुरोहितः ।  
अयाज्यस्य भवेद्वत्विग्विसस्तैन्यं करोति यः ॥ ६९

अरुन्धत्युवाच ।

नित्यं परिवदेच्छ्वश्रूं भर्तुर्भवतु दुर्मनाः ।  
एका स्वादु समभ्रातु विसस्तैन्यं करोति या ॥ ७०  
ज्ञातीनां गृहमध्यस्था सक्तूनतु दिनक्षये ।  
अभाग्यावीरसूरस्तु विसस्तैन्यं करोति या ॥ ७१

गण्डोवाच ।

अनृतं भाषतु सदा साधुमिश्र विरुध्यतु ।  
ददातु कन्यां शुल्केन विसस्तैन्यं करोति या ॥ ७२  
साधयित्वा स्वयं प्राशेदास्ये जीवतु चैव ह ।  
विकर्मणा प्रमीयेत विसस्तैन्यं करोति या ॥ ७३

पशुसख उवाच ।

दास्य एव प्रजायेत सोऽप्रसूतिरकिंचनः ।  
दैवतेष्वनमस्कारो विसस्तैन्यं करोति यः ॥ ७४

शुनःसख उवाच ।

अध्वर्यवे दुहितरं ददातु  
च्छन्दोगे वा चरितब्रह्मचर्ये ।

आथर्वणं वेदमधीत्य विप्रः

स्नायीत यो वै हरते विसानि ॥ ७५

ऋषय ऊचुः ।

इष्टमेतद्विजातीनां योऽयं ते शपथः कृतः ।

त्वया कृतं विसस्तैन्यं सर्वेषां नः शुनःसख ॥ ७६

शुनःसख उवाच ।

न्यस्तमाद्यमपश्यद्विर्यदुक्तं कृतकर्मभिः ।

सत्यमेतन्न मिथ्यैतद्विसस्तैन्यं कृतं मया ॥ ७७

मया ह्यन्तर्हितानीह विसानीमानि पश्यत ।

परीक्षार्थं भगवतां कृतमेतन्मयानघाः ।

रक्षणार्थं च सर्वेषां भवतामहमागतः ॥ ७८

यातुधानी ह्यतिक्रुद्धा कृत्यैषा वो वधैषिणी ।

वृषादर्भिप्रयुक्तैषा निहता मे तपोधनाः ॥ ७९

दुष्टा हिंस्यादियं पापा युष्मान्प्रत्यग्निसंभवा ।

तस्मादस्मयागतो विप्रा वासवं मां निबोधत ॥ ८०

अलोभादक्षया लोकाः प्राप्ता वः सार्वकामिकाः ।

उत्तिष्ठध्वमितः क्षिप्रं तानवाप्नुत वै द्विजाः ॥ ८१

भीष्म उवाच ।

ततो महर्षयः प्रीतास्तथेत्युक्त्वा पुरंदरम् ।

सहैव त्रिदशेन्द्रेण सर्वे जग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥ ८२

एवमेते महात्मानो भोगैर्वहुविधैरपि ।

क्षुधा परमया युक्ताश्छन्द्यमाना महात्मभिः ।

नैव लोभं तदा चक्रुस्ततः स्वर्गमवाप्नुवन् ॥ ८३

तस्मात्सर्वास्ववस्थासु नरो लोभं विवर्जयेत् ।

एष धर्मः परो राजन्नलोभ इति विश्रुतः ॥ ८४

इदं नरः सञ्चरितं समवायेषु कीर्तयेत् ।

सुखभागी च भवति न च दुर्गाण्यवाप्नुते ॥ ८५

प्रीयन्ते पितरश्चास्य ऋषयो देवतास्तथा ।

यशोधर्मार्थभागी च भवति प्रेत्य मानवः ॥ ८६

इति श्रीमद्वाभारते अनुशासनपर्वणि

पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

९६

भीष्म उवाच ।

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

यद्वृत्तं तीर्थयात्रायां शपथं प्रति तच्छृणु ॥ १

पुष्करार्थं कृतं स्तैन्यं पुरा भरतसत्तम ।

राजर्षिभिर्महाराज तथैव च द्विजर्षिभिः ॥ २

ऋषयः समेताः पञ्चमे वै प्रभासे

समागता मन्त्रममन्त्रयन्त ।

चराम सर्वे पृथिवीं पुण्यतीर्था

तत्रः कार्यं हन्त गच्छाम सर्वे ॥ ३

शुक्रोऽङ्गिराश्चैव कविश्च विद्वां-

स्तथागस्त्यो नारदपर्वतौ च ।

भृगुर्वसिष्ठः कश्यपो गौतमश्च

विश्वामित्रो जमदग्निश्च राजन् ॥ ४

ऋषिस्तथा गालवोऽथाष्टकश्च

भरद्वाजोऽरुन्धती वालखिल्याः ।

शिविर्दिलीपो नहुषोऽम्बरीषो

राजा ययातिर्धुन्धुमारोऽथ पूरुः ॥ ५

जग्मुः पुरस्कृत्य महानुभावं

शतक्रतुं वृत्रहणं नरेन्द्र ।

तीर्थाणि सर्वाणि परिक्रमन्तो

माध्यां ययुः कौशिकीं पुण्यतीर्थाम् ॥ ६

सर्वेषु तीर्थेष्वथ धूतपापा

जग्मुस्ततो ब्रह्मसरः सुपुण्यम् ।

देवस्य तीर्थे जलमग्निकल्पा

विगाह्य ते भुक्तविसप्रसूनाः ॥ ७

केचिद्विसान्यखनंस्तत्र राज-

न्नन्ये मृणालान्यखनंस्तत्र विप्राः ।  
 अथापश्यन्पुष्करं ते ह्रियन्तं  
 हृदादगस्त्येन समुद्धृतं वै ॥ ८  
 तानाह सर्वानृषिमुख्यानगस्त्यः  
 केनादत्त पुष्करं मे सुजातम् ।  
 युष्माञ्शङ्के दीयतां पुष्करं मे  
 न वै भवन्तो हर्तुमर्हन्ति पद्मम् ॥ ९  
 शृणोमि कालो हिंसते धर्मवीर्यं  
 सेयं प्राप्ता वर्धते धर्मपीडा ।  
 पुराधर्मो वर्धते नेह याव-  
 तावद्ब्रच्छामि परलोकं चिराय ॥ १०  
 पुरा वेदान्ब्राह्मणा ग्राममध्ये  
 घुष्टस्वरा वृषलाञ्श्रावयन्ति ।  
 पुरा राजा व्यवहारानधर्म्या-  
 न्पश्यत्यहं परलोकं व्रजामि ॥ ११  
 पुरावरान्प्रत्यवरान्गरीयसो  
 यावन्नरा नावमंस्थन्ति सर्वे ।  
 तमोत्तरं यावदिदं न वर्तते  
 तावद्ब्रजामि परलोकं चिराय ॥ १२  
 पुरा प्रपश्यामि परेण मर्त्या-  
 न्वलीयसा दुर्बलान्भुज्यमानान् ।  
 तस्माद्यास्यामि परलोकं चिराय  
 न हुत्सहे द्रष्टुमीदृङ्नुलोके ॥ १३  
 तमाहुर्गार्ता ऋषयो महर्षि  
 न ते वयं पुष्करं चोरयामः ।  
 मिथ्याभिषङ्गो भवता न कार्यः  
 शपाम तीक्ष्णाञ्शपथान्महर्षे ॥ १४  
 ते निश्चितास्तत्र महर्षयस्तु  
 संमन्यन्तो धर्ममेवं नरेन्द्र ।  
 ततोऽशपञ्शपथान्पर्ययेण

सहैव ते पार्थिव पुत्रपौत्रैः ॥ १५  
 भृगुरुवाच ।  
 प्रत्याक्रोशेदिहाकुष्ठस्ताडितः प्रतिताडयेत् ।  
 खादेच्च पृष्ठमांसानि यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १६  
 वसिष्ठ उवाच ।  
 अस्वाध्यायपरो लोके श्वानं च परिकर्षतु ।  
 पुरे च भिक्षुर्मवतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १७  
 कश्यप उवाच ।  
 सर्वत्र सर्वं पणतु न्यासे लोभं करोतु च ।  
 कूटसाक्षित्वमभ्येतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १८  
 गौतम उवाच ।  
 जीवत्वहंकृतो बुद्ध्या विपणत्वधमेन सः ।  
 कर्षको मत्सरी चास्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १९  
 अङ्गिरा उवाच ।  
 अशुचिर्ब्रह्मकूटोऽस्तु श्वानं च परिकर्षतु ।  
 ब्रह्महानिकृतिश्चास्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २०  
 धुन्धुमार उवाच ।  
 अकृतज्ञोऽस्तु मित्राणां शूद्रायां तु प्रजायतु ।  
 एकः संपन्नमश्नातु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २१  
 पूरुरुवाच ।  
 चिकित्सायां प्रचरतु भार्यया चैव पुण्यतु ।  
 अशुरात्तस्य वृत्तिः स्याद्यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २२  
 दिलीप उवाच ।  
 उदपानप्लवे ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः ।  
 तस्य लोकान्स व्रजतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २३  
 शुक्र उवाच ।  
 पृष्ठमांसं समश्नातु दिवा गच्छतु मैथुनम् ।  
 प्रेक्ष्यो भवतु राज्ञश्च यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २४

जमदग्निरुवाच ।

अनध्यायेष्वधीयीत मित्रं श्राद्धे च भोजयेत् ।  
श्राद्धे शूद्रस्य चाग्नीयाद्यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २५

शिविरुवाच ।

अनाहिताग्निर्भ्रियतां यज्ञे विघ्नं करोतु च ।  
तपस्विभिर्विरुध्येत यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २६

ययातिरुवाच ।

अनृतौ जटी व्रतिन्यां वै भार्यायां संप्रजायतु ।  
निराकरोतु वेदांश्च यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २७

नहुष उवाच ।

अतिथिं गृहस्थो नुदतु कामवृत्तोऽस्तु दीक्षितः ।  
विद्यां प्रयच्छतु भृतो यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २८

अम्बरीष उवाच ।

नृशंसस्त्यक्तधर्मोऽस्तु स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च ।  
ब्राह्मणं चापि जहतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २९

नारद उवाच ।

गूढोऽज्ञानी बहिः शास्त्रं पठतां विस्तरं पदम् ।  
गरीयसोऽवजानातु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३०

नाभाग उवाच ।

अनृतं भाषतु सदा सद्भिश्चैव विरुध्यतु ।  
शुल्केन कन्यां ददतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३१

कविरुवाच ।

पदा स गां ताडयतु सूर्यं च प्रति मेहतु ।  
शरणागतं च त्यजतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३२

विश्वामित्र उवाच ।

करोतु भृतकोऽवर्षां राज्ञश्चास्तु पुरोहितः ।  
ऋत्विगास्तु ह्यायाज्यस्य यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३३

पर्वत उवाच ।

ग्रामे चाधिकृतः सोऽस्तु खरयानेन गच्छतु ।

शुनः कर्षतु वृत्त्यर्थे यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३४

भरद्वाज उवाच ।

सर्वपापसमादानं नृशंसे चानृते च यत् ।  
तत्तस्यास्तु सदा पाप यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३५

अष्टक उवाच ।

स राजास्त्वकृतप्रज्ञः कामवृत्तिश्च पापकृत् ।  
अधर्मेणानुशास्तूर्वी यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३६

गालव उवाच ।

पापिष्ठेभ्यस्त्वनर्घार्हः स नरोऽस्तु स्वपापकृत् ।  
दत्त्वा दानं कीर्तयतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३७

अरुन्धत्युवाच ।

श्वश्रवापवादं वदतु भर्तुर्भवतु दुर्मनाः ।  
एका स्वादु समश्नातु या ते हरति पुष्करम् ॥ ३८

बालखिल्या ऊचुः ।

एकपादेन वृत्त्यर्थं ग्रामद्वारे स तिष्ठतु ।  
धर्मज्ञस्त्यक्तधर्मोऽस्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३९

पशुसख उवाच ।

अग्निहोत्रमनादृत्य सुखं स्वपतु स द्विजः ।  
परिव्राट्कामवृत्तोऽस्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ४०

सुरभ्युवाच ।

बाल्वजेन निदानेन कांस्यं भवतु दोहनम् ।  
दुह्येत परवत्सेन या ते हरति पुष्करम् ॥ ४१

भीष्म उवाच ।

ततस्तु तैः शपथैः शप्यमानै-  
र्नानाविधैर्बहुभिः कौरवेन्द्र ।

सहस्राक्षो देवराट् संप्रहृष्टः

समीक्ष्य तं कोपनं विप्रमुख्यम् ॥ ४२

अथाब्रवीन्मघवा प्रत्ययं स्वं

समाभाष्य तमृषि जातरोषम् ।

ब्रह्मर्षिदेवर्षिन्पर्विर्मध्ये

यत्तन्निबोधेह ममाद्य राजन् ॥ ४३

शक्र उवाच ।

अध्वर्यवे दुहितरं ददातु

च्छन्दोगे वा चरितब्रह्मचर्ये ।

आथर्वणं वेदमधीत्य विप्रः

स्नायेत यः पुष्करमाददाति ॥ ४४

सर्वान्वेदानधीयीत पुण्यशीलोऽस्तु धार्मिकः ।

ब्रह्मणः सदनं यातु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ४५

अगस्त्य उवाच ।

आशीर्वादस्त्वया प्रोक्तः शपथो बलसूदन ।

दीयतां पुष्करं मह्यमेष धर्मः सनातनः ॥ ४६

इन्द्र उवाच ।

न मया भगवर्ल्लोभाद्धृतं पुष्करमद्य वै ।

धर्मं तु श्रोतुका मेन हृतं न क्रोद्धुमर्हसि ॥ ४७

धर्मः श्रुतिसमुत्कर्षो धर्मसेतुरनामयः ।

आर्षो वै शाश्वतो नित्यमव्ययोऽयं मया श्रुतः ॥ ४८

तदिदं गृह्यतां विद्वन्पुष्करं मुनिसत्तम ।

अतिक्रमं मे भगवन्क्षन्तुमर्हस्यनिन्दित ॥ ४९

इत्युक्तः स महेन्द्रेण तपस्वी कोपनो भृशम् ।

जग्राह पुष्करं धीमान्प्रसन्नश्चाभवन्मुनिः ॥ ५०

प्रययुस्ते ततो भूयस्तीर्थानि वनगोचराः ।

पुण्यतीर्थेषु च तथा गात्राण्याप्लावयन्ति ते ॥ ५१

आख्यानं य इदं युक्तः पठेत्पर्वणि पर्वणि ।

न मूर्खं जनयेत्पुत्रं न भवेच्च निराकृतिः ॥ ५२

न तमापत्पृथोक्ताचिन्नं ज्वरो न रुजश्च ह ।

विरजाः श्रेयसा युक्तः प्रेत्य स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ५३

यश्च शास्त्रमनुध्यायेदृषिभिः परिपालितम् ।

सगच्छेद्ब्रह्मणो लोकमव्ययं च नरोत्तम ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

९७

युधिष्ठिर उवाच ।

यदिदं श्राद्धधर्मेषु दीयते भरतर्षभ ।

छत्रं चोपानहौ चैव केनैतत्संप्रवर्तितम् ।

कथं चैतत्समुत्पन्नं किमर्थं च प्रदीयते ॥ १

न केवलं श्राद्धधर्मे पुण्यकेष्वपि दीयते ।

एतद्विस्तरतो राजञ्श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ २

भीष्म उवाच ।

शृणु राजन्नवहितश्छत्रोपानहविस्तरम् ।

यथैतत्प्रथितं लोके येन चैतत्प्रवर्तितम् ॥ ३

यथा चाक्षय्यतां प्राप्तं पुण्यतां च यथा गतम् ।

सर्वमेतदशेषेण प्रवक्ष्यामि जनाधिप ॥ ४

इतिहासं पुरावृत्तमिमं शृणु नराधिप ।

जमदग्नेश्च संवादं सूर्यस्य च महात्मनः ॥ ५

पुरा स भगवान्साक्षादनुषाक्रीडत प्रभो ।

संधाय संधाय शरांश्चिक्षेप किल भार्गवः ॥ ६

तान्क्षिप्तान्प्रेणुका सर्वास्तस्येषून्दीप्ततेजसः ।

आनाय्य सा तदा तस्मै प्रादादसकृदच्युत ॥ ७

अथ तेन स शब्देन ज्यातलस्य शरस्य च ।

प्रहृष्टः संप्रचिक्षेप सा च प्रत्याजहार तान् ॥ ८

ततो मध्याह्नमारुढे ज्येष्ठामूले दिवाकरे ।

स सायकान्द्विजो विद्ध्वा रेणुकामिदमब्रवीत् ॥ ९

गच्छानय विशालाक्षि शरानेतान्धनुश्च्युतान् ।

यावदेतान्पुनः सुभ्रु क्षिपामीति जनाधिप ॥ १०

सा गच्छत्यन्तरा छायां वृक्षमाश्रित्य भामिनी ।

तस्यौ तस्या हि संतप्तं शिरः पादौ तथैव च ॥ ११

स्थिता सा तु मुहूर्तं वै भर्तुः शापभयाच्छ्रुत्वा ।

ययावानयितुं भूयः सायकानसितेक्षणा ।  
प्रत्याजगाम च शरांस्तानादाय यशस्विनी ॥ १२  
सा प्रस्विन्ना सुचार्वङ्गी पङ्क्यां दुःखं नियच्छती ।  
उपाजगाम भर्तारं भयाद्भुतः प्रवेपती ॥ १३  
स तामृषिस्ततः क्रुद्धो वाक्यमाह शुभाननाम् ।  
रेणुके किं चिरेण त्वमागतेति पुनः पुनः ॥ १४

रेणुकोवाच ।

शिरस्तावत्प्रदीप्तं मे पादौ चैव तपोधन ।  
सूर्यतेजोनिरुद्धाहं वृक्षच्छायामुपाश्रिता ॥ १५  
एतस्मात्कारणाद्ब्रह्मंश्चिरमेतत्कृतं मया ।  
एतज्ज्ञात्वा मम विभो मा क्रुधस्त्वं तपोधन ॥ १६

जमदग्निरुवाच ।

अद्यैनं दीप्तकिरणं रेणुके तव दुःखदम् ।  
शरैर्निपातयिष्यामि सूर्यमग्नितेजसा ॥ १७

भीष्म उवाच ।

स विस्फार्य धनुर्दिव्यं गृहीत्वा च बहूञ्शरान् ।  
अतिष्ठत्सूर्यमभितो यतो याति ततोमुखः ॥ १८  
अथ तं प्रहरिष्यन्तं सूर्योऽभ्येत्य वचोऽब्रवीत् ।  
द्विजरूपेण कौन्तेय किं ते सूर्योऽपराध्यते ॥ १९  
आदत्ते रश्मिभिः सूर्यो दिवि विद्वंस्ततस्ततः ।  
रसं स तं वै वर्षासु प्रवर्षति दिवाकरः ॥ २०  
ततोऽन्नं जायते विप्र मनुष्याणां सुखावहम् ।  
अन्नं प्राणा इति यथा वेदेषु परिपठ्यते ॥ २१  
अथाध्रेषु निगूढश्च रश्मिभिः परिवारितः ।  
सप्त द्वीपानिमान्ब्रह्मन्वर्षेणाभिप्रवर्षति ॥ २२  
ततस्तदौषधीनां च वीरुधां पत्रपुष्पजम् ।  
सर्वं वर्षाभिनिर्वृत्तमन्नं संभवति प्रभो ॥ २३  
जातकर्माणि सर्वाणि व्रतोपनयनानि च ।  
गोदानानि विवाहाश्च तथा यज्ञसमृद्धयः ॥ २४

सत्राणि दानानि तथा संयोगा दित्तसंचयाः ।  
अन्नतः संप्रवर्तन्ते यथा त्वं वेत्थ भार्गव ॥ २५  
रमणीयानि यावन्ति यावदारम्भकाणि च ।  
सर्वमन्नात्प्रभवति विदितं कीर्तयामि ते ॥ २६  
सर्वं हि वेत्थ विप्र त्वं यदेतत्कीर्तितं मया ।  
प्रसादये त्वा विप्रर्षे किं ते सूर्यो निपात्यते ॥ २७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

९८

युधिष्ठिर उवाच ।

एवं तदा प्रयाचन्तं भास्करं मुनिसत्तमः ।  
जमदग्निर्महातेजाः किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ १

भीष्म उवाच ।

तथा प्रयाचमानस्य मुनिरग्निसमप्रभः ।  
जमदग्निः शमं नैव जगाम कुरुनन्दन ॥ २  
ततः सूर्यो मधुरया वाचा तमिदमब्रवीत् ।  
कृताञ्जलिर्विप्ररूपी प्रणम्येदं विशां पते ॥ ३  
चल निमित्तं विप्रर्षे सदा सूर्यस्य गच्छतः ।  
कथं चलं वेत्स्यसि त्वं सदा यान्तं दिवाकरम् ॥ ४

जमदग्निरुवाच ।

स्थिरं वापि चलं वापि जाने त्वां ज्ञानचक्षुषा ।  
अवश्यं विनयाधानं कार्यमद्य मया तव ॥ ५  
अपराहे निमेषार्धं तिष्ठसि त्वं दिवाकर ।  
तत्र वेत्स्यामि सूर्य त्वां न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥

सूर्य उवाच ।

असंशयं मां विप्रर्षे वेत्स्यसे धन्विनां वर ।  
अपकारिणं तु मां विद्धि भगवञ्शरणागतम् ॥ ७

भीष्म उवाच ।

ततः प्रहस्य भगवाञ्जमदग्निरुवाच तम् ।  
न भीः सूर्य त्वया कार्या प्रणिपातगतो ह्यसि ॥ ८

ब्राह्मणेष्वार्जवं यच्च स्थैर्यं च धरणीतले ।  
 सौम्यतां चैव सोमस्य गाम्भीर्यं वरुणस्य च ॥ ९  
 दीप्तिमग्नेः प्रभां मेरोः प्रतापं तपनस्य च ।  
 एतान्यतिक्रमेद्यो वै स हन्याच्छरणागतम् ॥ १०  
 भवेत्स गुरुतल्पी च ब्रह्महा च तथा भवेत् ।  
 सुरापानं च कुर्यात्स यो हन्याच्छरणागतम् ॥ ११  
 एतस्य त्वपनीतस्य समाधिं तात चिन्तय ।  
 यथा सुखगमः पन्था भवेत्त्वद्द्रश्मितापितः ॥ १२

भीष्म उवाच ।

एतावदुक्त्वा स तदा तूष्णीमासीद्भृगूदृढः ।  
 अथ सूर्यो ददौ तस्मै छत्रोपानहमाशु वै ॥ १३  
 सूर्य उवाच ।  
 महर्षे शिरसस्त्राणं छत्रं मद्रश्मिवारणम् ।  
 प्रतिगृह्णीष्व पद्भ्यां च त्राणार्थं चर्मपादुके ॥ १४  
 अद्यप्रभृति चैवैतल्लोके संप्रचरिष्यति ।  
 पुण्यदानेषु सर्वेषु परमक्षय्यमेव च ॥ १५

भीष्म उवाच ।

उपानच्छत्रमेतद्वै सूर्येणेह प्रवर्तितम् ।  
 पुण्यमेतदभिख्यातं त्रिषु लोकेषु भारत ॥ १६  
 तस्मात्प्रयच्छ विप्रेभ्यश्छत्रोपानहमुत्तमम् ।  
 धर्मस्ते सुमहान्भावी न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ १७  
 छत्रं हि भरतश्रेष्ठ यः प्रदद्याद्विजातये ।  
 शुभ्रं शतशलाकं वै स प्रेत्य सुखमेधते ॥ १८  
 स शक्रलोके वसति पूज्यमानो द्विजातिभिः ।  
 अप्सरोभिश्च सततं देवैश्च भरतर्षभ ॥ १९  
 दह्यमानाय विप्राय यः प्रयच्छत्युपानहौ ।  
 स्नातकाय महाबाहो संशिताय द्विजातये ॥ २०  
 सोऽपि लोकानवाप्नोति दैवतैरभिपूजितान् ।  
 गोलोके स मुदा युक्तो वसति प्रेत्य भारत ॥ २१  
 एतत्ते भरतश्रेष्ठ मया कात्स्न्येन कीर्तितम् ।

छत्रोपानहदानस्य फलं भरतसत्तम ॥ २२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

९९

युधिष्ठिर उवाच ।

आरामाणां तडागानां यत्फलं कुरुनन्दन ।  
 तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोऽद्य भरतर्षभ ॥ १

भीष्म उवाच ।

सुप्रदर्शा वनवती चित्रधातुविभूषिता ।  
 उपेता सर्ववीजैश्च श्रेष्ठा भूमिरिहोच्यते ॥ २  
 तस्याः क्षेत्रविशेषं च तडागानां निवेशनम् ।  
 औदकानि च सर्वाणि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ ३  
 तडागानां च वक्ष्यामि कृतानां चापि ये गुणाः ।  
 त्रिषु लोकेषु सर्वत्र पूजितो यस्तडागवान् ॥ ४  
 अथ वा मित्रसदनं मैत्रं मित्रविवर्धनम् ।  
 कीर्तिसंजननं श्रेष्ठं तडागानां निवेशनम् ॥ ५  
 धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः ।  
 तडागं सुकृतं देशे क्षेत्रमेव महाश्रयम् ॥ ६  
 चतुर्विधानां भूतातां तडागमुपलक्षयेत् ।  
 तडागानि च सर्वाणि दिशन्ति श्रियमुत्तमाम् ॥ ७  
 देवा मनुष्या गन्धर्वाः पितरोरगराक्षसाः ।  
 स्थावराणि च भूतानि संश्रयन्ति जलाशयम् ॥ ८  
 तस्मात्तांस्ते प्रवक्ष्यामि तडागे ये गुणाः स्मृताः ।  
 या च तत्र फलावाप्तिर्ऋषिभिः समुदाहृता ॥ ९  
 वर्षमात्रे तडागे तु सलिलं यस्य तिष्ठति ।  
 अग्निहोत्रफलं तस्य फलमाहुर्मनीषिणः ॥ १०  
 शरत्काले तु सलिलं तडागे यस्य तिष्ठति ।  
 गोसहस्रस्य स प्रेत्य लभते फलमुत्तमम् ॥ ११  
 हेमन्तकाले सलिलं तडागे यस्य तिष्ठति ।  
 स वै बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते फलम् ॥ १२

यस्य वै शैशिरे काले तडागे सलिलं भवेत् ।  
 अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमाहुर्मनीषिणः ॥ १३  
 तडागं सुकृतं यस्य वसन्ते तु महाश्रयम् ।  
 अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं स समुपाश्रुते ॥ १४  
 निदाघकाले पानीयं तडागे यस्य तिष्ठति ।  
 वाजपेयसमं तस्य फलं वै मुनयो विदुः ॥ १५  
 स कुलं तारयेत्सर्वं यस्य खाते जलाशये ।  
 गावः पिबन्ति पानीयं साधवश्च नराः सदा ॥ १६  
 तडागे यस्य गावस्तु पिबन्ति तृषिता जलम् ।  
 मृगपक्षिमनुष्याश्च सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ १७  
 यत्पिबन्ति जलं तत्र स्नायन्ते विश्रमन्ति च ।  
 तडागदस्य तत्सर्वं प्रेत्यानन्त्याय कल्पते ॥ १८  
 दुर्लभं सलिलं तात विशेषेण परत्र वै ।  
 पानीयस्य प्रदानेन प्रीतिर्भवति शाश्वती ॥ १९  
 तिलान्ददत पानीयं दीपान्ददत जाग्रत ।  
 ज्ञातिभिः सह मोदध्वमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम् ॥ २०  
 सर्वदानैर्गुरुतरं सर्वदानैर्विशिष्यते ।  
 पानीयं नरशार्दूल तस्मादातव्यमेव हि ॥ २१  
 एवमेतत्तडागेषु कीर्तितं फलमुत्तमम् ।  
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वृक्षाणामपि रोपणे ॥ २२  
 स्थावराणां च भूतानां जातयः षट् प्रकीर्तिताः ।  
 वृक्षगुल्मलतावल्ग्यस्त्वक्सारस्तुणजातयः ॥ २३  
 एता जात्यस्तु वृक्षाणां तेषां रोपे गुणास्त्वमे ।  
 कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रेत्य चैव फलं शुभम् ॥ २४  
 लभते नाम लोके च पितृभिश्च च महीयते ।  
 देवलोकगतस्यापि नाम तस्य न नश्यति ॥ २५  
 अतीतानागते चोभे पितृवंशं च भारत ।  
 तारयेद्वृक्षरोपी च तस्माद्वृक्षान् रोपयेत् ॥ २६  
 तस्य पुत्रा भवन्त्येते पादपा नात्र संशयः ।  
 परलोकगतः स्वर्गं लोकांश्चाप्नोति सोऽव्ययान् ॥ २७

पुष्पैः सुरगणान्वृक्षाः फलैश्चापि तथा पितृन् ।  
 छायाया चातिथीस्तात पूजयन्ति महीरूहाः ॥ २८  
 किंनरोरगरक्षांसि देवगन्धर्वमानवाः ।  
 तथा ऋषिगणाश्चैव संश्रयन्ति महीरूहाः ॥ २९  
 पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान् ।  
 वृक्षदं पुत्रवद्वृक्षास्तारयन्ति परत्र च ॥ ३०  
 तस्मात्तडागे वृक्षा वै रोप्याः श्रेयोर्थिना सदा ।  
 पुत्रवत्परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः स्मृतः ॥ ३१  
 तडागकृद्वृक्षरोपी इष्टयज्ञश्च यो द्विजः ।  
 एते स्वर्गे महीयन्ते ये चान्ये सत्यवादिनः ॥ ३२  
 तस्मात्तडागं कुर्वीत आरामांश्चैव रोपयेत् ।  
 यजेच्च विविधैर्यज्ञैः सत्यं च सततं वदेत् ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

१००

युधिष्ठिर उवाच ।

गार्हस्थ्यं धर्ममखिलं प्रब्रूहि भरतर्षभ ।  
 ऋद्धिमाप्नोति किं कृत्वा मनुष्य इह पार्थिव ॥ १

भीष्म उवाच ।

अत्र ते वर्तयिष्यामि पुरावृत्तं जनाधिप ।  
 वासुदेवस्य संवादं पृथिव्याश्चैव भारत ॥ २  
 संस्तूय पृथिवीं देवीं वासुदेवः प्रतापवान् ।  
 पप्रच्छ भरतश्रेष्ठ यदेतत्पृच्छसेऽद्य माम् ॥ ३

वासुदेव उवाच ।

गार्हस्थ्यं धर्ममाश्रित्य मया वा मद्विधेन वा ।  
 किमवश्यं धरे कार्यं किं वा कृत्वा सुखी भवेत् ॥

पृथिव्युवाच ।

ऋषयः पितरो देवा मनुष्याश्चैव साधवः ।  
 इज्याश्चैवार्चनीयाश्च यथा चैवं निबोध मे ॥ ५



सदा यज्ञेन देवांश्च आतिध्येन च मानवान् ।  
 छन्दतश्च यथानित्यमहान्युद्धीत नित्यशः ।  
 तेन हृपिगणाः प्रीता भवन्ति मधुसूदन ॥ ६  
 नित्यमग्निं परिचरेदमुक्त्वा बलिकर्म च ।  
 कुर्यात्तथैव देवा वै प्रीयन्ते मधुसूदन ॥ ७  
 कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।  
 पयोमूलफलैर्वापि पितॄणां प्रीतिमाहरन् ॥ ८  
 सिद्धान्नाद्वैश्वदेवं वै कुर्यादग्नौ यथाविधि ।  
 अग्नीषोमं वैश्वदेवं धान्वन्तर्धमनन्तरम् ॥ ९  
 प्रजानां पतये चैव पृथग्घोमो विधीयते ।  
 तथैव चानुपूर्व्येण बलिकर्म प्रयोजयेत् ॥ १०  
 दक्षिणायां यमायेह प्रतीच्यां वरुणाय च ।  
 सोमाय चाप्युदीच्यां वै वास्तुमध्ये द्विजातये ॥ ११  
 धन्वन्तरेः प्रागुदीच्यां प्राच्यां शक्राय माधव ।  
 मनोर्वै इति च प्राहुर्बलिं द्वारे गृहस्य वै ।  
 मरुद्भ्यो देवताभ्यश्च बलिमन्तर्गृहे हरेत् ॥ १२  
 तथैव विश्वेदेवेभ्यो बलिमाकाशतो हरेत् ।  
 निशाचरेभ्यो भूतेभ्यो बलिं नक्तं तथा हरेत् ॥  
 एवं कृत्वा बलिं सम्यग्दद्याद्विक्षां द्विजातये ।  
 अलाभे ब्राह्मणस्यान्नावग्रमुत्क्षिप्य निक्षिपेत् ॥ १४  
 यदा श्राद्धं पितृभ्यश्च दातुमिच्छेत मानवः ।  
 तदा पश्चात्प्रकुर्वीत निवृत्ते श्राद्धकर्मणि ॥ १५  
 पितॄन्संतर्पयित्वा तु बलिं कुर्याद्विधानतः ।  
 वैश्वदेवं ततः कुर्यात्पश्चाद्ब्राह्मणवाचनम् ॥ १६  
 ततोऽन्नेनावशेषेण भोजयेदतिथीनपि ।  
 अर्चापूर्वं महाराज ततः प्रीणाति मानुषान् ॥ १७  
 अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ १८  
 आचार्यस्य पितुश्चैव सख्युराप्तस्य चातिथेः ।  
 इदमस्ति गृहे मह्यमिति नित्यं निवेदयेत् ॥ १९  
 ते यद्वदेयुस्तत्कुर्यादिति धर्मो विधीयते ।

गृहस्थः पुरुष कृष्ण शिष्टाशी च सदा भवेत् ॥  
 राजर्त्विजं स्नातकं च गुरुं श्वशुरमेव च ।  
 अर्चयेन्मधुपर्केण परिसंवत्सरोषितान् ॥ २१  
 श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि ।  
 वैश्वदेवं हि नामैतत्सायंप्रातर्विधीयते ॥ २२  
 एतांस्तु धर्मान्गार्हस्थान्यः कुर्यादनसूयकः ।  
 स इहर्द्धिं परां प्राप्य प्रेत्य नाके महीयते ॥ २३  
 भीष्म उवाच ।

इति भूमेर्वचः श्रुत्वा वासुदेवः प्रतापवान् ।  
 तथा चकार सततं त्वमप्येवं समाचर ॥ २४  
 एवं गृहस्थधर्मं त्वं चेतयानो नराधिप ।  
 इहलोके यशः प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ २५  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

१०१

युधिष्ठिर उवाच ।

आलोकदानं नामैतत्कीदृशं भरतर्षभ ।  
 कथमेतत्समुत्पन्नं फलं चात्र ब्रवीहि मे ॥ १  
 भीष्म उवाच ।  
 अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 मनोः प्रजापतेर्वादिं सुवर्णस्य च भारत ॥ २  
 तपस्वी कश्चिदभवत्सुवर्णो नाम नामतः ।  
 वर्णतो हेमवर्णः स सुवर्ण इति पप्रथे ॥ ३  
 कुलशीलगुणोपेतः स्वाध्याये च परं गतः ।  
 बहून्स्ववंशप्रभवान्समतीतः स्वकैर्गुणैः ॥ ४  
 स कदाचिन्मनुं विप्रो ददर्शोपससर्प च ।  
 कुशलप्रश्नमन्योन्यं तौ च तत्र प्रचक्रतुः ॥ ५  
 ततस्तौ सिद्धसंकल्पौ मेरौ काञ्चनपर्वते ।  
 रमणीये शिलापृष्ठे सहितौ संन्यषीदताम् ॥ ६  
 तत्र तौ कथयामास्तां कथा नानाविधाश्रयाः ।

ब्रह्मर्षिर्देवदैत्यानां पुराणानां महात्मनाम् ॥ ७  
 सुवर्णस्त्वब्रवीद्वाक्यं मनुं स्वायम्भुवं प्रभुम् ।  
 हितार्थं सर्वभूतानां प्रभं मे वक्तुमर्हसि ॥ ८  
 सुमनोभिर्यदिज्यन्ते दैवतानि प्रजेश्वर ।  
 किमेतत्कथमुत्पन्नं फलयोगं च शस मे ॥ ९

मनुरुवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 शुक्रस्य च बलेष्वैव संवादं वै समागमे ॥ १०  
 बलेर्वैरोचनस्येह त्रैलोक्यमनुशासतः ।  
 समीपमाजगामाशु शुक्रो भृगुकुलोद्बहः ॥ ११  
 तमर्च्यादिभिरभ्यर्च्य भार्गवं सोऽसुराधिपः ।  
 निषसादासने पश्चाद्विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ १२  
 कथेममभवत्तत्र या त्वया परिकीर्तिता ।  
 सुमनोधूपदीपानां संप्रदाने फलं प्रति ॥ १३  
 ततः पप्रच्छ दैत्येन्द्रः कवीन्द्रं प्रश्नुत्तमम् ।  
 सुमनोधूपदीपानां किं फलं ब्रह्मवित्तम ।  
 प्रदानस्य द्विजश्रेष्ठ तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १४

शुक्र उवाच ।

तपः पूर्वं समुत्पन्नं धर्मस्तस्मादनन्तरम् ।  
 एतस्मिन्नन्तरे चैव वीरुदोषध्य एव च ॥ १५  
 सोमस्यात्मा च बहुधा संभूतः पृथिवीतले ।  
 अमृतं च विषं चैव याश्चान्यास्तुल्यजातयः ॥ १६  
 अमृतं मनसः प्रीति सद्यः पुष्टि ददाति च ।  
 मनो ग्लपयते तीव्रं विषं गन्धेन सर्वशः ॥ १७  
 अमृतं मङ्गलं विद्धि महद्विषममङ्गलम् ।  
 ओषध्यो ह्यमृतं सर्वं विषं तेजोऽग्निसंभवम् ॥ १८  
 मनो ह्लादयते यस्माच्छिद्रयं चापि दधाति ह ।  
 तस्मात्सुमनसः प्रोक्ता नरैः सुकृतकर्मभिः ॥ १९  
 देवताभ्यः सुमनसो यो ददाति नरः शुचिः ।  
 तस्मात्सुमनसः प्रोक्ता यस्मात्पुण्यन्ति देवताः ॥ २०

यं यमुद्दिश्य दीयेरन्देवं सुमनसः प्रभो ।  
 मङ्गलार्थं स तेनास्य प्रीतो भवति दैत्यप ॥ २१  
 ज्ञेयास्तूष्ण्याश्च सौम्याश्च तेजस्विन्यश्च ताः पृथक् ।  
 ओषध्यो बहुवीर्याश्च बहुरूपास्तथैव च ॥ २२  
 यज्ञियानां च वृक्षाणामयज्ञियान्निबोध मे ।  
 आसुराणि च माल्यानि दैवतेभ्यो हितानि च ॥  
 राक्षसानां सुराणां च यक्षाणां च तथा प्रियाः ।  
 पितृणां मानुषाणां च कान्तायास्त्वनुपूर्वशः ॥ २४  
 वन्या ग्राम्याश्चेह तथा कृष्टोत्ताः पर्वताश्रयाः ।  
 अकण्टकाः कण्टकिन्यो गन्धरूपरसान्विताः ॥ २५  
 द्विविधो हि स्मृतो गन्ध इष्टोऽनिष्टश्च पुष्पजः ।  
 इष्टगन्धानि देवानां पुष्पाणीति विभावयेत् ॥ २६  
 अकण्टकानां वृक्षाणां श्वेतप्रायाश्च वर्णतः ।  
 तेषां पुष्पाणि देवानामिष्टानि सततं प्रभो ॥ २७  
 जलजानि च माल्यानि पद्मादीनि च यानि च ।  
 गन्धर्वनागयक्षेभ्यस्तानि दद्याद्विचक्षणः ॥ २८  
 ओषध्यो रक्तपुष्पाश्च कटुकाः कण्टकान्विताः ।  
 शत्रूणामभिचारार्थमथर्वसु निदर्शिताः ॥ २९  
 तीक्ष्णवीर्यास्तु भूतानां दुरालम्भाः सकण्टकाः ।  
 रक्तभूयिष्ठवर्णाश्च कृष्णाश्चैवोपहारयेत् ॥ ३०  
 मनोहृदयनन्दिन्यो विमर्दे मधुराश्च याः ।  
 चारुरूपाः सुमनसो मानुषाणां स्मृता विभो ॥ ३१  
 न तु श्मशानसंभूता न देवायतनोद्भवाः ।  
 संनयेत्पुष्टियुक्तेषु विवाहेषु रहःसु च ॥ ३२  
 गिरिसानुरुहाः सौम्या देवानामुपपादयेत् ।  
 प्रोक्षिताभ्युक्षिताः सौम्या यथायोगं यथास्मृति ॥  
 गन्धेन देवास्तुष्यन्ति दर्शनाद्यक्षराक्षसाः ।  
 नागाः समुपभोगेन त्रिभिरेतैस्तु मानुषाः ॥ ३४  
 सद्यः प्रीणाति देवान्वै ते प्रीता भावयन्त्युत ।  
 संकल्पसिद्धा मर्त्यानामीप्सिनैश्च मनोरथैः ॥ ३५

देवाः प्रीणन्ति सततं मानिता मानयन्ति च ।  
 अवज्ञातावधूताश्च निर्दहन्त्यधमान्नरान् ॥ ३६  
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धूपदानविधौ फलम् ।  
 धूपांश्च विविधान्साधूनसाधूंश्च निबोध मे ॥ ३७  
 निर्यासः सरलश्चैव कृत्रिमश्चैव ते त्रयः ।  
 इष्टानिष्टो भवेद्गन्धस्तन्मे विस्तरतः शृणु ॥ ३८  
 निर्यासाः सल्लकीवर्ज्या देवानां दयितास्तु ते ।  
 गुग्गुलुः प्रवरस्तेषां सर्वेषामिति निश्चयः ॥ ३९  
 अगुरुः सारिणां श्रेष्ठो यक्षराक्षसभोगिनाम् ।  
 दैत्यानां सल्लकीजश्च काङ्क्षितो यश्च तद्विधः ॥ ४०  
 अथ सर्जरसादीनां गन्धैः पार्थिवदारवैः ।  
 फाणितासवसंयुक्तैर्मनुष्याणां विधीयते ॥ ४१  
 देवदानवभूतानां सद्यस्तुष्टिकरः स्मृतः ।  
 येऽन्ये वैहारिकास्ते तु मानुषाणामिति स्मृताः ॥  
 य एवोक्ताः सुमनसां प्रदाने गुणहेतवः ।  
 धूपेष्वपि परिज्ञेयास्त एव प्रीतिवर्धनाः ॥ ४३  
 दीपदाने प्रवक्ष्यामि फलयोगमनुत्तमम् ।  
 यथा येन यदा चैव प्रदेया यादृशाश्च ते ॥ ४४  
 ज्योतिस्तेजः प्रकाशश्चाप्यूर्ध्वगं चापि वर्धयते ।  
 प्रदानं तेजसां तस्मात्तेजो वर्धयते नृणाम् ॥ ४५  
 अन्धं तमस्तमिस्रं च दक्षिणायनमेव च ।  
 उत्तरायणमेतस्माज्ज्योतिर्दानं प्रशस्यते ॥ ४६  
 यस्मादूर्ध्वगमेतत्तु तमसश्चैव भेषजम् ।  
 तस्मादूर्ध्वगतेर्दाता भवेदिति विनिश्चयः ॥ ४७  
 देवास्तेजस्विनो यस्मात्प्रभावन्तः प्रकाशकाः ।  
 तामसा राक्षसाश्चेति तस्माद्दीपः प्रदीयते ॥ ४८  
 आलोकदानाच्चक्षुष्मान्प्रभायुक्तो भवेन्नरः ।  
 तान्दत्त्वा नोपहिंसेत न हरेन्नोपनाशयेत् ॥ ४९  
 दीपहर्ता भवेद्गन्धस्तमोगतिरसुप्रभः ।  
 दीपप्रदः स्वर्गलोके दीपमाली विराजते ॥ ५०

हविषा प्रथमः कल्पो द्वितीयस्त्वौषधीरसैः ।  
 वसामेदोस्थिनिर्यासैर्न कार्यः पुष्टिमिच्छता ॥ ५१  
 गिरिप्रपाते गहने चैत्यस्थाने चतुष्पथे ।  
 दीपदाता भवेन्नित्यं य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ५२  
 कुलोद्द्योतो विशुद्धात्मा प्रकाशत्वं च गच्छति ।  
 ज्योतिषां चैव सालोक्यं दीपदाता नरः सदा ॥ ५३  
 बलिकर्मसु वक्ष्यामि गुणान्कर्मफलोदयान् ।  
 देवयक्षोरगनृणां भूतानामथ रक्षसाम् ॥ ५४  
 येषां नाग्रमुजो विप्रा देवतातिथिबालकाः ।  
 राक्षसानेव तान्विद्वि निर्वषट्कारमङ्गलान् ॥ ५५  
 तस्मादग्रं प्रयच्छेत् देवेभ्यः प्रतिपूजितम् ।  
 शिरसा प्रणतश्चापि हरेर्द्वलितमन्त्रितः ॥ ५६  
 गृह्या हि देवता नित्यमाशंसन्ति गृहात्सदा ।  
 बाह्याश्चागन्तवो येऽन्ये यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ ५७  
 इतो दत्तेन जीवन्ति देवताः पितरस्तथा ।  
 ते प्रीताः प्रीणयन्त्येतानायुषा यशसा धनैः ॥ ५८  
 बलयः सह पुष्पैस्तु देवानामुपहारयेत् ।  
 दधिद्रव्ययुताः पुण्याः सुगन्धाः प्रियदर्शनाः ॥ ५९  
 कार्या रुधिरमांसाढ्या बलयो यक्षराक्षसाम् ।  
 सुरासवपुरस्कारा लाजोल्लेपनभूषिताः ॥ ६०  
 नागानां दयिता नित्यं पद्मोत्पलविमिश्रिताः ।  
 तिलान्गुडसुसंपन्नान्भूतानामुपहारयेत् ॥ ६१  
 अग्रदाताग्रभोगी स्वाद्बलवर्णसमन्वितः ।  
 तस्मादग्रं प्रयच्छेत् देवेभ्यः प्रतिपूजितम् ॥ ६२  
 ज्वलत्यहरतो वेश्म याश्चास्य गृहदेवताः ।  
 ताः पूज्या भूतिकामेन प्रसृताग्रप्रदायिना ॥ ६३  
 इत्येतदसुरेन्द्राय काव्यः प्रोवाच भार्गवः ।  
 सुवर्णाय मनुः प्राह सुवर्णो नारदाय च ॥ ६४  
 नारदोऽपि मयि प्राह गुणानेतान्महाद्युते ।

त्वमप्येतद्विदित्वेह सर्वमाचर पुत्रक ॥ ६५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

१०२

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतं मे भरतश्रेष्ठ धूपधूपप्रदायिनाम् ।

फलं बलिविधाने च तद्भूयो वक्तुमर्हसि । १

धूपप्रदानस्य फलं प्रदीपस्य तथैव च ।

बलयश्च किमर्थं वै क्षिप्यन्ते गृहमेधिभिः ॥ २

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

नहुषं प्रति संवादमगस्त्यस्य भृगोस्तथा ॥ ३

नहुषो हि महाराज राजर्षिः सुमहातपाः ।

देवराज्यमनुप्राप्तः सुकृतेनेह कर्मणा ॥ ४

तत्रापि प्रयतो राजन्नहुषस्त्रिदिवे वसन् ।

मानुषीश्चैव दिव्याश्च कुर्वाणो विविधाः क्रियाः ॥ ५

मानुष्यस्तत्र सर्वाः स्म क्रियास्तस्य महात्मनः ।

प्रवृत्तास्त्रिदिवे राजन्दिव्याश्चैव सनातनाः ॥ ६

अग्निकार्याणि समिधः कुशाः सुमनसस्तथा ।

बलयश्चान्नलजाभिर्धूपनं दीपकर्म च ॥ ७

सर्वं तस्य गृहे राज्ञः प्रावर्तत महात्मनः ।

जपयज्ञान्मनोयज्ञास्त्रिदिवेऽपि चकार सः ॥ ८

दैवतान्यर्चयन्श्चापि विधिवत्स सुरेश्वरः ।

सर्वाण्येव यथान्यायं यथापूर्वमरिंदम ॥ ९

अथेन्द्रस्य भविष्यत्वादहंकारस्तमाविशत् ।

सर्वाश्चैव क्रियास्तस्य पर्यहीयन्त भूपते ॥ १०

स ऋषीन्वाहयामास वरदानमदान्वितः ।

परिहीनक्रियश्चापि दुर्बलत्वमुपेयिवान् ॥ ११

तस्य वाहयतः कालो मुनिमुख्यास्तपोधनान् ।

अहंकाराभिभूतस्य सुमहानत्यवर्तत ॥ १२

अथ पर्यायश ऋषीन्वाहनायोपचक्रमे ।

पर्यायश्चाप्यगस्त्यस्य समपद्यत भारत ॥ १३

अथागम्य महातेजा भृगुर्ब्रह्मविदां वरः ।

अगस्त्यमाश्रमस्थं वै समुपेत्येदमब्रवीत् ॥ १४

एवं वयमसत्कारं देवेन्द्रस्यास्य दुर्मतेः ।

नहुषस्य किमर्थं वै मर्षयाम महामुने ॥ १५

अगस्त्य उवाच ।

कथमेष मया शक्यः शत्रुं यस्य महामुने ।

वरदेन वरो दत्तो भवतो विदितश्च सः ॥ १६

यो मे दृष्टिपथं गच्छेत्स मे वश्यो भवेदिति ।

इत्यनेन वरो देवाद्याचितो गच्छता दिवम् ॥ १७

एवं न दग्धः स मया भवता च न संशयः ।

अन्येनाप्यृषिमुख्येन न शत्रो न च पातितः ॥ १८

अमृतं चैव पानाय दत्तमस्मै पुरा विभो ।

महात्मने तदर्थं च नास्माभिर्विनिपात्यते ॥ १९

प्रायच्छत वरं देवः प्रजानां दुःखकारकम् ।

द्विजेष्वधर्मयुक्तानि स करोति नराधमः ॥ २०

अत्र यत्प्राप्तकाल नस्तद्ब्रूहि वदतां वर ।

भवांश्चापि यथा ब्रूयात्कुर्वीमहि तथा वयम् ॥ २१

भृगुरुवाच ।

पितामहनियोगेन भवन्तमहमागतः ।

प्रतिकर्तुं बलवति नहुषे दर्पमास्थिते ॥ २२

अद्य हि त्वा सुदुर्बुद्धी रथे योक्ष्यति देवराट् ।

अद्यैनमहमुद्धृत्तं करिष्येऽनिन्द्रमोजसा ॥ २३

अद्येन्द्रं स्थापयिष्यामि पश्यतस्ते शतक्रतुम् ।

संचालय पापकर्माणमिन्द्रस्थानात्सुदुर्मतिम् ॥ २४

अद्य चासौ कुदेवेन्द्रस्त्वां पदा धर्षयिष्यति ।

दैवोपहतचित्तत्वादात्मनाशाय मन्दधीः ॥ २५

व्युत्क्रान्तधर्मं तमहं धर्षणामर्षितो भृशम् ।

अहिर्भवस्वेति रुषा शप्स्ये पापं द्विजद्रुहम् ॥ २६

तत एनं सुदुर्बुद्धिं धिक्शब्दाभिहतविषम् ।  
 धरण्यां पातयिष्यामि प्रेक्षतस्ते महामुने ॥ २७  
 नहुषं पापकर्माणैश्चर्यबलमोहितम् ।  
 यथा च रोचते तुभ्यं तथा कर्तास्म्यहं मुने ॥ २८  
 एवमुक्तस्तु भृगुणा मैत्रावरुणिरव्ययः ।  
 अगस्त्यः परमप्रीतो बभूव विगतज्वरः ॥ २९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

१०३

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं स वै विपन्नश्च कथं वै पातितो भुवि ।  
 कथं चानिन्द्रतां प्राप्तस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १

भीष्म उवाच ।

एवं तयोः संवदतोः क्रियास्तस्य महात्मनः ।  
 सर्वा एवाभ्यवर्तन्त या दिव्या याश्च मानुषाः ॥ २  
 तथैव दीपदानानि सर्वोपकरणानि च ।  
 बलिकर्म च यच्चान्यदुत्सेकाश्च पृथग्विधाः ।  
 सर्वास्तस्य समुत्पन्ना देवराज्ञो महात्मनः ॥ ३  
 देवलोके नृलोके च सदाचारा बुधैः स्मृताः ।  
 ते चेद्भवन्ति राजेन्द्र ऋध्यन्ते गृहमेधिनः ।  
 धूपप्रदानैर्दीपैश्च नमस्कारैस्तथैव च ॥ ४  
 यथा सिद्धस्य चान्नस्य द्विजायाग्रं प्रदीयते ।  
 बलयश्च गृहोद्देशे अतः प्रीयन्ति देवताः ॥ ५  
 यथा च गृहिणस्तोषो भवेद्वै बलिकर्मणा ।  
 तथा शतगुणा प्रीतिर्देवतानां स्म जायते ॥ ६  
 एवं धूपप्रदानं च दीपदानं च साधवः ।  
 प्रशंसन्ति नमस्कारैर्युक्तमात्मगुणावहम् ॥ ७  
 स्नानेनाद्भिश्च यत्कर्म क्रियते वै विपश्चिता ।  
 नमस्कारप्रयुक्तेन तेन प्रीयन्ति देवताः ।  
 गृह्याश्च देवताः सर्वाः प्रीयन्ते विधिनाचिताः ॥ ८

इत्येतां बुद्धिमास्थाय नहुषः स नरेश्वरः ।  
 सुरेन्द्रत्वं महत्प्राप्य कृतवानेतदद्भुतम् ॥ ९  
 कस्यचित्त्वथ कालस्य भाग्यक्षय उपस्थिते ।  
 सर्वमेतदवज्ञाय न चकारैतदीदृशम् ॥ १०  
 ततः स परिहीणोऽभूत्सुरेन्द्रो बलिकर्मतः ।  
 धूपदीपोदकविधिं न यथावच्चकार ह ।  
 ततोऽस्य यज्ञविषयो रक्षोभिः पर्यबाध्यत ॥ ११  
 अथागस्त्यमृषिश्रेष्ठं वाहनायाजुहाव ह ।  
 द्रुत सरस्वतीकूलात्मयन्निव महाबलः ॥ १२  
 ततो भृगुर्महातेजा मैत्रावरुणिमब्रवीत् ।  
 निमीलयस्व नयने जटा यावद्विशामि ते ॥ १३  
 स्थाणुभूतस्य तस्याथ जटाः प्राविशदच्युतः ।  
 भृगुः स सुमहातेजाः पातनाय नृपस्य ह ॥ १४  
 ततः स देवराट् प्राप्तस्तमृषिं वाहनाय वै ।  
 ततोऽगस्त्यः सुरपतिं वाक्यमाह विशां पते ॥ १५  
 योजयस्वेन्द्र मां क्षिप्रं कं च देशं वहामि ते ।  
 यत्र वक्ष्यसि तत्र त्वां नयिष्यामि सुराधिप ॥ १६  
 इत्युक्तो नहुषस्तेन योजयामास तं मुनिम् ।  
 भृगुस्तस्य जटासंस्थो बभूव हृषितो भृशम् ॥ १७  
 न चापि दर्शनं तस्य चकार स भृगुस्तदा ।  
 वरदानप्रभावज्ञो नहुषस्य महात्मनः ॥ १८  
 न चुकोप स चागस्त्यो युक्तोऽपि नहुषेण वै ।  
 तं तु राजा प्रतोदेन चोदयामास भारत ॥ १९  
 न चुकोप स धर्मात्मा ततः पादेन देवराट् ।  
 अगस्त्यस्य तदा क्रुद्धो वामेनाभ्यहनच्छिरः ॥ २०  
 तस्मिन्निशरस्यमिहते स जटान्तर्गतो भृगुः ।  
 शशाप बलवत्क्रुद्धो नहुषं पापचेतसम् ॥ २१

भृगुरुवाच ।

यस्मात्पदाहनः क्रोधाच्छिरसीमं महामुनिम् ।  
 तस्मादाशु महीं गच्छ सर्पो भूत्वा सुदुर्मते ॥ २२

इत्युक्तः स तदा तेन सर्पो भूत्वा पपात ह ।  
 अदृष्टेनाथ भृगुणा भूतले भरतर्षभ ॥ २३  
 भृगुं हि यदि सोऽद्राक्षीन्नहुषः पृथिवीपते ।  
 न स शक्तोऽभविष्यद्वै पातने तस्य तेजसा ॥ २४  
 स तु तैस्तैः प्रदानैश्च तपोभिर्नियमैस्तथा ।  
 पतितोऽपि महाराज भूतले स्मृतिमानभूत् ।  
 प्रसादयामास भृगुं शापान्तो मे भवेदिति ॥ २५  
 ततोऽगस्त्यः कृपाविष्टः प्रासादयत तं भृगुम् ।  
 शापान्तार्थं महाराज स च प्रादात्कृपान्वितः ॥ २६  
 भृगुरुवाच ।

राजा युधिष्ठिरो नाम भविष्यति कुरुद्वहः ।  
 स त्वां मोक्षयिता शापादित्युक्त्वान्तरधीयत ॥ २७  
 अगस्त्योऽपि महातेजाः कृत्वा कार्यं शतक्रतोः ।  
 स्वमाश्रमपदं प्रायात्पूज्यमानो द्विजातिभिः ॥ २८  
 नहुषोऽपि त्वया राजस्तस्माच्छापात्समुद्धृतः ।  
 जगाम ब्रह्मसदनं पश्यतस्ते जनाधिप ॥ २९  
 तदा तु पातयित्वा तं नहुष भूतले भृगुः ।  
 जगाम ब्रह्मसदनं ब्रह्मणे च न्यवेदयत् ॥ ३०  
 तत शक्रं समानाय्य देवानाह पितामहः ।  
 वरदानान्मम सुरा नहुषो राज्यमाप्तवान् ।  
 स चागस्त्येन क्रुद्धेन भ्रंशितो भूतलं गतः ॥ ३१  
 न च शक्यं विना राज्ञा सुरा वर्तयितुं कचित् ।  
 तस्मादयं पुनः शक्रो देवराज्येऽभिषिच्यताम् ॥ ३२  
 एवं संभाषमाणं तु देवाः पार्थ पितामहम् ।  
 एवमस्त्विति संहृष्टाः प्रत्यूचुस्ते पितामहम् ॥ ३३  
 सोऽभिषिक्तो भगवता देवराज्येन वासवः ।  
 ब्रह्मणा राजशार्दूल यथापूर्वं व्यरोचत ॥ ३४  
 एवमेतत्पुरावृत्तं नहुषस्य व्यतिक्रमात् ।  
 स च तैरेव संसिद्धो नहुषः कर्मभिः पुनः ॥ ३५  
 तस्माद्दीपाः प्रदातव्याः सायं वै गृहमेधिभिः ।

दिव्यं चक्षुरवाप्नोति प्रेत्य दीपप्रदायकः ।  
 पूर्णचन्द्रप्रतीकाशा दीपदाश्च भवन्त्युत ॥ ३६  
 यावदक्षिनिमेषाणि ज्वलते तावतीः समाः ।  
 रूपवान्धनवांश्चापि नरो भवति दीपदः ॥ ३७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

१०४

युधिष्ठिर उवाच ।

ब्राह्मणस्वानि ये मन्दा हरन्ति भरतर्षभ ।  
 नृशसकारिणो मूढाः क ते गच्छन्ति मानवाः ॥ १  
 भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 चण्डालस्य च संवादं क्षत्रवन्धोश्च भारत ॥ २  
 राजन्य उवाच ।

वृद्धरूपोऽसि चण्डाल बालवच्च विचेष्टसे ।  
 श्वखराणां रजःसेवी कस्मादुद्विजसे गवाम् ॥ ३  
 साधुभिर्गर्हितं कर्म चण्डालस्य विधीयते ।  
 कस्माद्गोरजसा ध्वस्तमपां कुण्डे निषिञ्चसि ॥ ४

चण्डाल उवाच ।

ब्राह्मणस्य गवां राजन्निह्यतीनां रजः पुरा ।  
 सोममुद्ध्वंसयामास तं सोम येऽपिबन्दिजाः ॥ ५  
 दीक्षितश्च स राजापि क्षिप्रं नरकमाविशत् ।  
 सह तैर्यजकैः सर्वैर्ब्रह्मस्वमुपजीव्य तत् ॥ ६  
 येऽपि तत्रापिबन्क्षीरं घृतं दधि च मानवाः ।  
 ब्राह्मणाः सहराजन्याः सर्वे नरकमाविशन् ॥ ७  
 जघ्नुस्ताः पयसा पुत्रांस्तथा पौत्रान्विधुन्वतीः ।  
 पशूनवेक्षमाणाश्च साधुवृत्तेन दंपती ॥ ८  
 अह तत्रावसं राजन्ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।  
 तासां मे रजसा ध्वस्तं भैक्षमासीन्नराधिप ॥ ९  
 चण्डालोऽहं ततो राजन्भुक्त्वा तदभवं मृतः ।

ब्रह्मस्वहारी च नृपः सोऽप्रतिष्ठां गतिं ययौ ॥ १०  
 तस्माद्द्वारेण विप्रस्त्वं कदाचिदपि किञ्चन ।  
 ब्रह्मस्वरजसा ध्वस्तं भुक्त्वा मां पश्य यादृशम् ॥ ११  
 तस्मात्सोमोऽप्यविक्रेयः पुरुषेण विपश्चिता ।  
 विक्रयं हीह सोमस्य गर्हयन्ति मनीषिणः ॥ १२  
 ये चैनं क्रीणते राजन्ये च विक्रीणते जनाः ।  
 ते तु वैवस्वतं प्राप्य रौरवं यान्ति सर्वशः ॥ १३  
 सोमं तु रजसा ध्वस्तं विक्रीयाद्बुद्धिपूर्वकम् ।  
 श्रोत्रियो वार्धुषी भूत्वा चिररात्राय नश्यति ।  
 नरकं त्रिशतं प्राप्य श्वविष्टामुपजीवति ॥ १४  
 श्वचर्यामतिमानं च सखिदारेषु विप्लवम् ।  
 तुलयाधारयद्धर्मो ह्यतिमानोऽतिरिच्यते ॥ १५  
 श्वानं वै पापिनं पश्य विवर्णं हरिणं कुशम् ।  
 अतिमानेन भूतानामिमां गतिमुपागतम् ॥ १६  
 अहं वै विपुले जातः कुले धनसमन्विते ।  
 अन्यस्मिञ्छन्मनि विभो ज्ञानविज्ञानपारगः ॥ १७  
 अभवं तत्र जानानो ह्येतान्दोषान्मदात्तदा ।  
 संरब्ध एव भूतानां पृष्ठमांसान्यभक्षयम् ॥ १८  
 सोऽहं तेन च वृत्तेन भोजनेन च तेन वै ।  
 इमामवस्थां संप्राप्तः पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ १९  
 आदीप्तमिव चैलान्तं भ्रमरैरिव चार्दितम् ।  
 धावमानं सुसंरब्धं पश्य मां रजसान्वितम् ॥ २०  
 स्वाध्यायैस्तु महत्पापं तरन्ति गृहमेधिनः ।  
 दानैः पृथग्विधैश्चापि यथा प्राहुर्मनीषिणः ॥ २१  
 तथा पापकृतं विप्रमाश्रमस्थं महीपते ।  
 सर्वसङ्गविनिर्मुक्तं छन्दांस्युत्तारयन्त्युत ॥ २२  
 अहं तु पापयोन्यां वै प्रसूतः क्षत्रियर्षभ ।  
 निश्चयं नाधिगच्छामि कथं मुच्येयमित्युत ॥ २३  
 जातिस्मरत्वं तु मम केनचित्पूर्वकर्मणा ।  
 शुभेन येन मोक्षं वै प्राप्तुमिच्छाम्यहं नृप ॥ २४

त्वमिमं मे प्रपन्नाय संशयं ब्रूहि पृच्छते ।  
 चण्डालत्वात्कथमहं मुच्येयमिति सत्तम ॥ २५  
 राजन्य उवाच ।  
 चण्डाल प्रतिजानीहि येन मोक्षमवाप्स्यसि ।  
 ब्राह्मणार्थं त्यजन्प्राणान्गतिमिष्टामवाप्स्यसि ॥ २६  
 दत्त्वा शरीरं क्रव्याद्वथो रणाम्नौ द्विजहेतुकम् ।  
 हुत्वा प्राणान्प्रमोक्षस्ते नान्यथा मोक्षमर्हसि ॥ २७

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तः स तदा राजन्ब्रह्मस्वार्थं परंतप ।  
 हुत्वा रणमुखे प्राणान्गतिमिष्टामवाप ह ॥ २८  
 तस्माद्रक्ष्यं त्वया पुत्र ब्रह्मस्वं भरतर्षभ ।  
 यदीच्छसि महाबाहो शाश्वती गतिमुत्तमाम् ॥ २९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

१०५

युधिष्ठिर उवाच ।

एको लोकः सुकृतिनां सर्वे त्वाहो पितामह ।  
 उत तत्रापि नानात्वं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १

भीष्म उवाच ।

कर्मभिः पार्थ नानात्वं लोकानां यान्ति मानवाः ।  
 पुण्यान्पुण्यकृतो यान्ति पापान्पापकृतो जनाः ॥ २  
 अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 गौतमस्य मुनेस्तात संवादं वासवस्य च ॥ ३  
 ब्राह्मणो गौतमः कश्चिन्मृदुर्दान्तो जितेन्द्रियः ।  
 महावने हस्तिशिशुं परिचूनममातृकम् ॥ ४  
 तं दृष्ट्वा जीवयामास सानुक्रोशो धृतव्रतः ।  
 स तु दीर्घेण कालेन बभूवातिबलो महान् ॥ ५  
 तं प्रभिन्नं महानागं प्रसूतं सर्वतो मदम् ।  
 धृतराष्ट्रस्य रूपेण शक्रो जग्राह हस्तिनम् ॥ ६  
 ह्रियमाणं तु तं दृष्ट्वा गौतमः संशितव्रतः ।

अभ्यभाषत राजानं धृतराष्ट्रं महातपाः ॥ ७

मा मे हार्षीर्हस्तिनं पुत्रमेनं

दुःखात्पुष्ट धृतराष्ट्राकृतज्ञ ।

मित्रं सतां सप्तपदं वदन्ति

मित्रद्रोहो नैव राजन्स्पृशेत्त्वाम् ॥ ८

इध्मोदकप्रदातारं शून्यपालकमाश्रमे ।

विनीतमाचार्यकुले सुयुक्तं गुरुकर्मणि ॥ ९

शिष्टं दान्तं कृतज्ञं च प्रियं च सततं मम ।

न मे विक्रोशतो राजन्हर्तुमर्हसि कुञ्जरम् ॥ १०

धृतराष्ट्र उवाच ।

गवां सहस्रं भवते ददासि

दासीशतं निष्कशतानि पञ्च ।

अन्यच्च वित्तं विविधं महर्षे

किं ब्राह्मणस्येह गजेन कृत्यम् ॥ ११

गौतम उवाच ।

त्वामेव गावोऽभि भवन्तु राज-

न्दास्यः सनिष्का विविधं च रत्नम् ।

अन्यच्च वित्तं विविधं नरेन्द्र

किं ब्राह्मणस्येह धनेन कृत्यम् ॥ १२

धृतराष्ट्र उवाच ।

ब्राह्मणानां हस्तिभिर्नास्ति कृत्यं

राजन्यानां नागकुलानि विप्र ।

स्वं वाहनं नयतो नास्त्यधर्मो

नागश्रेष्ठाद्वैतमास्मान्निवर्त ॥ १३

गौतम उवाच ।

यत्र प्रेतो नन्दति पुण्यकर्मा

यत्र प्रेतः शोचति पापकर्मा ।

वैवस्वतस्य सद्ने महात्मन-

स्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ १४

धृतराष्ट्र उवाच ।

ये निष्क्रिया नास्तिका श्रद्धाणाः

पापात्मान इन्द्रियार्थे निविष्टाः ।

यमस्य ते यातनां प्राप्नुवन्ति

परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ १५

गौतम उवाच ।

वैवस्वती संयमनी जनानां

यत्रानृतं नोच्यते यत्र सत्यम् ।

यत्राबला बलिनं यातयन्ति

तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ १६

धृतराष्ट्र उवाच ।

ज्येष्ठां स्वसारं पितरं मातरं च

गुरुं यथा मानयन्तश्चरन्ति ।

तथाविधानामेष लोको महर्षे

परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ १७

गौतम उवाच ।

मन्दाकिनी वैश्रवणस्य राज्ञो

महाभोगा भोगिजनप्रवेश्या ।

गन्धर्वयक्षैरप्सरोभिश्च जुष्टा

तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ १८

धृतराष्ट्र उवाच ।

अतिथिव्रताः सुव्रता ये जना वै

प्रतिश्रयं ददति ब्राह्मणेभ्यः ।

शिष्टाशिनः संविभज्याश्रितांश्च

मन्दाकिनीं तेऽपि विभूषयन्ति ॥ १९

गौतम उवाच ।

मेरोरग्रे यद्वनं भाति रम्यं

सुपुष्पितं किंनरगीतजुष्टम् ।

सुदर्शना यत्र जम्बूर्विशाला



तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २०

धृतराष्ट्र उवाच ।

ये ब्राह्मणा मृदवः सत्यशीला

बहुश्रुताः सर्वभूताभिरामाः ।

येऽधीयन्ते सेतिहासं पुराणं

मध्वाहुत्या जुह्वति च द्विजेभ्यः ॥ २१

तथाविधानामेष लोको महर्षे

परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ।

यद्विद्यते विदितं स्थानमस्ति

तद्ब्रूहि त्वं त्वरितो ह्येष यामि ॥ २२

गौतम उवाच ।

सुपुष्पितं किंनरराजजुष्टं

प्रियं वनं नन्दनं नारदस्य ।

गन्धर्वाणामप्सरसां च सदा

तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २३

धृतराष्ट्र उवाच ।

ये नृत्तगीतकुशला जनाः सदा

ह्ययाचमानाः सहिताश्चरन्ति ।

तथाविधानामेष लोको महर्षे

परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ २४

गौतम उवाच ।

यत्रोत्तराः कुरवो भान्ति रम्या

देवैः सार्धं मोदमाना नरेन्द्र ।

यत्राग्निगौनाश्च वसन्ति विप्रा

ह्ययोनयः पर्वतयोनयश्च ॥ २५

यत्र शक्रो वर्षति सर्वकामा-

न्यत्र स्त्रियः कामचाराश्चरन्ति ।

यत्र चेष्ट्यां नास्ति नारीनराणां

तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २६

धृतराष्ट्र उवाच ।

ये सर्वभूतेषु निवृत्तकामा

अमांसादा न्यस्तदण्डाश्चरन्ति ।

न हिंसन्ति स्थावरं जङ्गमं च

भूतानां ये सर्वभूतात्मभूताः ॥ २७

निराशिषो निर्मगा वीतरागा

लाभालाभे तुल्यनिन्दाप्रशंसाः ।

तथाविधानामेष लोको महर्षे

परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ २८

गौतम उवाच ।

ततः परं भान्ति लोकाः सनातनाः

सुपुण्यगन्धा निर्मला वीतशोकाः ।

सोमस्य राज्ञः सद्ने महात्मन-

स्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २९

धृतराष्ट्र उवाच ।

ये दानशीला न प्रतिगृह्यते सदा

न चाप्यर्थानाददते परेभ्यः ।

येषामदेयमर्हते नास्ति किञ्चि-

त्सर्वातिथ्याः सुप्रसादा जनाश्च ॥ ३०

ये क्षन्तारो नाभिजल्पन्ति चान्या-

कशक्ता भूत्वा सततं पुण्यशीलाः ।

तथाविधानामेष लोको महर्षे

परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३१

गौतम उवाच ।

ततः परं भान्ति लोकाः सनातना

विरजसो वितमस्का विशोकाः ।

आदित्यस्य सुमहान्तः सुवृत्ता-

स्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ३२

धृतराष्ट्र उवाच ।

स्वाध्यायशीला गुरुशुश्रूषणे रता-

स्तपस्विनः सुव्रताः सत्यसंधाः ।

आचार्याणामप्रतिकूलभाषिणो

नित्योत्थिता गुरुकर्मस्वचोद्याः ॥ ३३

तथाविधानामेष लोको महर्षे

विशुद्धानां भावितवाङ्मतीनाम् ।

सत्ये स्थितानां वेदविदां महात्मनां

परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३४

गौतम उवाच ।

ततः परे भान्ति लोकाः सनातनाः

सुपुण्यगन्धा विरजा विशोकाः ।

वरुणस्य राज्ञः सदने महात्मन-

स्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ३५

धृतराष्ट्र उवाच ।

चातुर्मास्यैर्ये यजन्ते जनाः सदा

तथेष्टीनां दशशतं प्राप्नुवन्ति ।

ये चाग्निहोत्रं जुह्वति श्रद्धधाना

यथान्यायं त्रीणि वर्षाणि विप्राः ॥ ३६

स्वदारिणां धर्मधुरे महात्मनां

यथोचिते वर्त्मनि सुस्थितानाम् ।

धर्मात्मनामुद्रहतां गतिं तां

परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३७

गौतम उवाच ।

इन्द्रस्य लोका विरजा विशोका

दुरन्वयाः काङ्क्षिता मानवानाम् ।

तस्याहं ते भवने भूरितेजसो

राजन्निमं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ३८

शतवर्षजीवी यश्च शूरो मनुष्यो

वेदाध्यायी यश्च यज्ञाप्रमनः ।

एते सर्वे शक्रलोकं व्रजन्ति

परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३९

गौतम उवाच ।

प्राजापत्याः सन्ति लोका महान्तो

नाकस्य पृष्ठे पुष्कला वीतशोकाः ।

मनीषिताः सर्वलोकोद्भवानां

तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ४०

धृतराष्ट्र उवाच ।

ये राजानो राजसूयाभिषिक्ता

धर्मात्मानो रक्षितारः प्रजानाम् ।

ये चाश्वमेधावभृथाहुताङ्गा-

स्तेषां लोका धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ४१

गौतम उवाच ।

ततः परं भान्ति लोकाः सनातनाः

सुपुण्यगन्धा विरजा वीतशोकाः ।

तस्मिन्नहं दुर्लभे त्वाप्रभृष्ये

गवां लोके हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ४२

धृतराष्ट्र उवाच ।

यो गोसहस्री शतदः समां समां

यो गोशती दश दद्याच्च शक्त्या ।

तथा दशभ्यो यश्च दद्यादिहैकां

पञ्चभ्यो वा दानशीलस्तथैकाम् ॥ ४३

ये जीर्यन्ते ब्रह्मचर्येण विप्रा

ब्राह्मी वाचं परिरक्षन्ति चैव ।

मनस्विनस्तीर्थयात्रापरायणा-

स्ते तत्र मोदन्ति गवां विमाने ॥ ४४

प्रभासं मानसं पुण्यं पुष्कराणि महत्सरः ।

पुण्यं च नैमिषं तीर्थं बाहुदां करतोयिनीम् ॥ ४५

गयां गयशिरश्चैव विपाशां स्थूलवालुकाम् ।  
तूष्णीगङ्गां दशगङ्गां महाह्रदमथापि च ॥ ४६  
गौतमीं कौशिकीं पाकां महात्मानो धृतव्रताः ।  
सरस्वतीदृषद्वत्यौ यमुनां ये प्रयान्ति च ॥ ४७  
तत्र ते दिव्यसंस्थाना दिव्यमाल्यधराः शिवाः ।  
प्रयान्ति पुण्यगन्धाढ्या धृतराष्ट्रो न तत्र वै ॥ ४८

गौतम उवाच ।

यत्र शीतभयं नास्ति न चोष्णभयमण्वपि ।  
न क्षुत्पिपासे न ग्लानिर्न दुःखं न सुखं तथा ॥  
न द्वेष्यो न प्रियः कश्चिन्न बन्धुर्न रिपुस्तथा ।  
न जरामरणे वापि न पुण्यं न च पातकम् ॥ ५०  
तस्मिन्विरजसि स्फीते प्रज्ञासत्त्वव्यवस्थिते ।  
स्वयंभुभवने पुण्ये हस्तिनं मे यतिष्यति ॥ ५१

धृतराष्ट्र उवाच ।

निर्मुक्ताः सर्वसङ्गेभ्यो कृतात्मानो यतव्रताः ।  
अध्यात्मयोगसंस्थाने युक्ताः स्वर्गगतिं गताः ॥ ५२  
ते ब्रह्मभवनं पुण्यं प्राप्नुवन्तीह सात्त्विकाः ।  
न तत्र धृतराष्ट्रस्ते शक्यो द्रष्टुं महामुने ॥ ५३

गौतम उवाच ।

रथन्तरं यत्र बृहच्च गीयते  
यत्र वेदी पुण्डरीकैः स्तृणोति ।  
यत्रोपयाति हरिभिः सोमपीथी  
तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ५४  
बुध्यामि त्वां वृत्रहणं शतक्रतुं  
व्यतिक्रमन्तं भुवनानि विश्वा ।  
कश्चिन्न वाचा वृजिनं कदाचि-  
दकार्षं ते मनसोऽभिषङ्गात् ॥ ५५

शक्र उवाच ।

यस्मादिमं लोकपथं प्रजाना-

मन्वागमं पदवादे गजस्य  
तस्माद्भवान्प्रणतं मानुशास्तु  
ब्रवीषि यत्तत्करवाणि सर्वम् ॥ ५६

गौतम उवाच ।

श्वेतं करेणुं मम पुत्रनागं  
यं मेऽहार्षादिशवर्षाणि बालम् ।  
यो मे वने वसतोऽभूद्वितीय-  
स्तमेव मे देहि सुरेन्द्र नागम् ॥ ५७

शक्र उवाच ।

अयं सुतस्ते द्विजमुख्य नाग-  
श्चाव्रायते त्वामभिवीक्षमाणः ।  
पादौ च ते नासिकयोपजिघ्रते  
श्रेयो मम ध्याहि नमश्च तेऽस्तु ॥ ५८

गौतम उवाच ।

शिवं सदैवेह सुरेन्द्र तुभ्यं  
ध्यायामि पूजां च सदा प्रयुञ्जे ।  
ममापि त्वं शक्र शिवं ददस्व  
त्वया दत्तं प्रतिगृह्णामि नागम् ॥ ५९

शक्र उवाच ।

येषां वेदा निहिता वै गुहायां  
मनीषिणां सत्त्ववतां महात्मनाम् ।

तेषां त्वयैकेन महात्मनास्मि

बुद्धस्तस्मात्प्रीतिमांस्तेऽहमद्य ॥ ६०

हन्तैहि ब्राह्मण क्षिप्रं सह पुत्रेण हस्तिना ।

प्राप्नुहि त्वं शुभाल्लोकानह्नाय च चिराय च ॥ ६१

भीष्म उवाच ।

स गौतमं पुरस्कृत्य सह पुत्रेण हस्तिना ।

दिवमाचक्रमे वज्री सद्भिः सह दुरासदम् ॥ ६२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

१०६

युधिष्ठिर उवाच ।

दानं बहुविधाकारं शान्तिं सत्यमहिंसता ।  
स्वदारतुष्टिश्चोक्ता ते फलं दानस्य चैव यत् ॥ १  
पितामहस्य विदितं किमन्यत्र तपोबलात् ।  
तपसो यत्परं तेऽद्य तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २

भीष्म उवाच ।

तपः प्रचक्षते यावत्तावल्लोका युधिष्ठिर ।  
मतं मम तु कौन्तेय तपो नानशनात्परम् ॥ ३  
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
भगीरथस्य संवादं ब्रह्मणश्च महात्मनः ॥ ४  
अतीत्य सुरलोकं च गवां लोकं च भारत ।  
ऋषिलोकं च सोऽगच्छद्भगीरथ इति श्रुतिः ॥ ५  
तं दृष्ट्वा स वचः प्राह ब्रह्मा राजन्भगीरथम् ।  
कथं भगीरथागास्त्वमिमं देशं दुरासदम् ॥ ६  
न हि देवा न गन्धर्वा न मनुष्या भगीरथ ।  
आयान्यतस्तपसः कथं वै त्वमिहागतः ॥ ७

भगीरथ उवाच ।

निःशङ्कमन्त्रमददं ब्राह्मणेभ्यः

शतं सहस्राणि सदैव दानम् ।

ब्राह्मं व्रतं नित्यमास्थाय विद्धि

न त्वेवाहं तस्य फलादिहागाम् ॥ ८

दशैकरात्रान्दश पञ्चरात्रा-

नेकादशैकादशकान्कतूँश्च ।

ज्योतिष्टोमानां च शतं यदिष्टं

फलेन तेनापि च नागतोऽहम् ॥ ९

यच्चावसं जाह्नवीतीरनित्यः

शतं समास्तप्यमानस्तपोऽहम् ।

अदां च तत्राश्वतरीसहस्र

नारीपुरं न च तेनाहमागाम् ॥ १०

दशायुतानि चाश्वानामयुतानि च विंशतिम् ।

पुष्करेषु द्विजातिभ्यः प्रादा गाश्च सहस्रशः ॥ ११

सुवर्णचन्द्रोदुपधारिणीनां

कन्योत्तमानामददं स्रग्विणीनाम् ।

पष्टिं सहस्राणि विभूषितानां

जाम्बूनदैराभरणैर्न तेन ॥ १२

दशार्बुदान्यददं गोसवेज्या-

स्वेकैकशो दश गा लोकनाथ ।

समानवत्साः पयसा समन्विताः

सुवर्णकांस्योपदुहा न तेन ॥ १३

अप्नोर्यामेषु नियतमेकैकस्मिन्दशाददम् ।

गृष्टीनां क्षीरदात्रीणां रोहिणीनां न तेन च ॥ १४

दोग्ध्रीणा वै गवां चैव प्रयुतानि दशैव ह ।

प्रादां दशगुणं ब्रह्मन्नं च तेनाहमागतः ॥ १५

वाजिनां बाह्विजातानामयुतान्यददं दश ।

कर्काणां हेममालानां न च तेनाहमागतः ॥ १६

कोटीश्च काञ्चनस्याष्टौ प्रादा ब्रह्मन्दश त्वहम् ।

एकैकस्मिन्कतौ तेन फलेनाहं न चागतः ॥ १७

वाजिनां श्यामकर्णानां हरितानां पितामह ।

प्रादां हेमस्रजां ब्रह्मन्कोटीर्दश च सप्त च ॥ १८

ईषादन्तान्महाकायान्काञ्चनस्रग्विभूषितान् ।

पत्नीमतः सहस्राणि प्रायच्छं दश सप्त च ॥ १९

अलंकृतानां देवेश दिव्यैः कनकभूषणैः ।

रथानां काञ्चनाङ्गानां सहस्राण्यददं दश ।

सप्त चान्यानि युक्तानि वाजिभिः समलंकृतैः ॥ २०

दक्षिणावयवाः केचिद्वेदैर्यैः संप्रकीर्तिताः ।

वाजपेयेषु दशसु प्रादां तेनापि नाप्यहम् ॥ २१

शक्रतुल्यप्रभावानामिज्यया विक्रमेण च ।

सहस्रं निष्ककण्ठानामददं दक्षिणामहम् ॥ २२

विजित्य नृपतीन्सर्वान्मखैरिद्धा पितामह ।

अष्टभ्यो राजसूयेभ्यो न च तेनाहमागतः ॥ २३  
 स्रोतश्च यावद्गङ्गायाश्छन्नासीज्जगत्पते ।  
 दक्षिणाभिः प्रवृत्ताभिर्मम नागां च तत्कृते ॥ २४  
 वाजिनां च सहस्रे द्वे सुवर्णशतभूषिते ।  
 वरं ग्रामशतं चाहमेकैकस्य त्रिधाददम् ।  
 तपस्वी नियताहारः शममास्थाय वाग्यतः ॥ २५  
 दीर्घकालं हिमवति गङ्गायाश्च दुरुत्सहाम् ।  
 मूर्ध्ना धारां महादेवः शिरसा यामधारयत् ।  
 न तेनाप्यहमागच्छं फलेनेह पितामह ॥ २६  
 शम्याक्षेपैरयजं यच्च देवा-  
 न्सचस्कानामयुतैश्चापि यत्तत् ।  
 त्रयोदशद्वादशाहंश्च देव  
 सपौण्डरीकान्न च तेषां फलेन ॥ २७  
 अष्टौ सहस्राणि ककुब्धिनामहं  
 शुक्लर्षभाणामददं ब्राह्मणेभ्यः ।  
 एकैकं वै काञ्चनं शृङ्गमेभ्यः  
 पत्नीश्चैषामददं निष्ककण्ठीः ॥ २८  
 हिरण्यरत्ननिचितानददं रत्नपर्वतान् ।  
 धनधान्यसमृद्धांश्च ग्रामाञ्छतसहस्रशः ॥ २९  
 शतं शतानां गृष्टीनामददं चाप्यतन्द्रितः ।  
 इष्टानेकैर्महायज्ञैर्ब्राह्मणेभ्यो न तेन च ॥ ३०  
 एकादशाहैरयजं सदक्षिणै-  
 र्द्विर्द्वादशाहैरश्वमेधैश्च देव ।  
 आर्कायणैः षोडशभिश्च ब्रह्म-  
 स्तेषां फलेनेह न चागतोऽस्मि ॥ ३१  
 निष्कैककण्ठमददं योजनायतं  
 तद्विस्तीर्णं काञ्चनपादपानाम् ।  
 वनं चूतानां रत्नविभूषितानां  
 न चैव तेषामागतोऽहं फलेन ॥ ३२  
 तुरायणं हि व्रतमप्रवृष्य-

मक्रोधनोऽकरवं त्रिशतोऽब्दान् ।  
 शतं गवामष्ट शतानि चैव  
 दिने दिने ह्यददं ब्राह्मणेभ्यः ॥ ३३  
 पयस्विनीनामथ रोहिणीनां  
 तथैव चाप्यनडुहां लोकनाथ ।  
 प्रादां नित्यं ब्राह्मणेभ्यः सुरेश  
 नेहागतस्तेन फलेन चाहम् ॥ ३४  
 त्रिशदग्निमहं ब्रह्मन्नयजं यच्च नित्यदा ।  
 अष्टाभिः सर्वमेधैश्च नरमेधैश्च सप्तभिः ॥ ३५  
 दशभिर्विंशजिह्विश्च शतैरष्टादशोत्तरैः ।  
 न चैव तेषां देवेश फलेनाहमिहागतः ॥ ३६  
 सरय्वां बाहुदायां च गङ्गायामथ नैमिषे ।  
 गवां शतानामयुतमददं न च तेन वै ॥ ३७  
 इन्द्रेण गुह्यं निहितं वै गुहायां  
 यद्गार्गवस्तपसेहाभ्यविन्दत् ।  
 जाज्वल्यमानमुशनस्तेजसेह  
 तत्साधयामासमहं वरेण्यम् ॥ ३८  
 ततो मे ब्राह्मणास्तुष्टास्तस्मिन्कर्मणि साधिते ।  
 सहस्रमृषयश्चासन्ये वै तत्र समागताः ।  
 उक्तस्तैरस्मि गच्छ त्वं ब्रह्मलोकमिति प्रभो ॥ ३९  
 प्रीतेनोक्तः सहस्रेण ब्राह्मणानामहं प्रभो ।  
 इमं लोकमनुप्राप्तो मा भूत्तेऽत्र विचारणा ॥ ४०  
 कामं यथावद्विहितं विधात्रा  
 पृष्टेन वाच्यं तु मया यथावत् ।  
 तपो हि नान्यच्चानशान्नामृतं मे  
 नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ॥ ४१  
 भीष्म उवाच ।  
 इत्युक्तवन्तं तं ब्रह्मा राजानं स्म भगीरथम् ।

पूजयामास पूजार्हं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ४२

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

१०७

युधिष्ठिर उवाच ।

शतायुक्तः पुरुषः शतवीर्यश्च वैदिके ।

कस्मान्निग्रयन्ते पुरुषा बाला अपि पितामह ॥ १

आयुष्मान्केन भवति स्वल्पायुर्वापि मानवः ।

केन वा लभते कीर्तिं केन वा लभते श्रियम् ॥ २

तपसा ब्रह्मचर्येण जपैहोमैस्तथौषधैः ।

जन्मना यदि वाचारात्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ३

भीष्म उवाच ।

अत्र ते वर्तयिष्यामि यन्मां त्वमनुपृच्छसि ।

अल्पायुर्येन भवति दीर्घायुर्वापि मानवः ॥ ४

येन वा लभते कीर्तिं येन वा लभते श्रियम् ।

यथा च वर्तन्पुरुषः श्रेयसा संप्रयुज्यते ॥ ५

आचारालभते ह्यायुराचारालभते श्रियम् ।

आचारात्कीर्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च ॥ ६

दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत् ।

त्रसन्ति यस्माद्भूतानि तथा परिभवन्ति च ॥ ७

तस्मात्कुर्यादिहाचारं य इच्छेद्भूतिमात्मनः ।

अपि पापशरीरस्य आचारो हन्यलक्षणम् ॥ ८

आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चाचारलक्षणाः ।

साधूनां च यथा वृत्तमेतदाचारलक्षणम् ॥ ९

अप्यदृष्टं श्रुतं वापि पुरुषं धर्मचारिणम् ।

भूतिकर्माणि कुर्वाणं तं जनाः कुर्वते प्रियम् ॥ १०

ये नास्तिका निष्क्रियाश्च गुरुशास्त्रातिलङ्घिनः ।

अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः ॥ ११

विशीला भिन्नमर्यादा नित्यं सकीर्णमैशुनाः ।

अल्पायुषो भवन्तीह नरा निरयगामिनः ॥ १२

सर्वलक्षणहीनोऽपि समुदाचारवान्नरः ।

श्रद्धधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ १३

अक्रोधनः सत्यवादी भूतानामविहिंसकः ।

अनसूयुरजिह्वश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ १४

लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ।

नित्योच्छिष्टः सकुमुको नेहायुर्विन्दते महत् ॥ १५

ब्राह्मे मुहूर्तं बुध्येत धर्माथौ चानुचिन्तयेत् ।

उत्थायाचम्य तिष्ठेत् पूर्वा संध्यां कृताञ्जलिः ॥ १६

एवमेवापरां संध्यां सप्तापासीत् वाग्यतः ।

नेक्षेत्यादित्यमुद्यन्तं नास्तं यान्तं कदाचन ॥ १७

ऋषयो दीर्घसंध्यत्वादीर्घमायुरवाप्नुवन् ।

तस्मात्तिष्ठेत्सदा पूर्वा पश्चिमां चैव वाग्यतः ॥ १८

ये न पूर्वाभुपासन्ते द्विजाः संध्यां न पश्चिमां ।

सर्वास्तान्धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत् ॥ १९

परदारा न गन्तव्याः सर्ववर्णेषु कर्हिचित् ।

न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते ।

यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ २०

प्रसाधनं च केशानामञ्जनं दन्तधावनम् ।

पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च पूजनम् ॥ २१

पुरीषमूत्रे नोदीक्षेत्राधितिष्ठेत्कदाचन ।

उदकयया च संभाषां न कुर्वीत कदाचन ॥ २२

नोत्सजेत पुरीषं च क्षेत्रे ग्रामस्य चान्तिके ।

उभे मूत्रपुरीषे तु नाप्सु कुर्यात्कदाचन ॥ २३

प्राङ्मुखो नित्यमश्रीयाद्वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।

प्रस्कन्दयेच्च मनसा भुक्त्वा चाग्निमुपस्पृशेत् ॥ २४

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।

धन्यं पश्चान्मुखो भुङ्क्ते ऋतुं उदङ्मुखः ॥ २५

नाधितिष्ठेत्तुषाञ्जातु केशभस्मकपालिकाः ।

अन्यस्य चाप्युपस्थानं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ २६

शान्तिहोमांश्च कुर्वीत सावित्राणि च कारयेत् ।

निषण्णश्चापि खादेत न तु गच्छन्कथंचन ॥ २७  
मूत्रं न तिष्ठता कार्यं न भस्मनि न गोव्रजे ॥ २८  
आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ।  
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो वर्षाणां जीवते शतम् ॥ २९  
त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट आलभेत कदाचन ।  
अग्निं गां ब्राह्मणं चैव तथास्यायुर्न रिष्यते ॥ ३०  
त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट उदीक्षेत कदाचन ।  
सूर्याचन्द्रमसौ चैव नक्षत्राणि च सर्वशः ॥ ३१  
ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ।  
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥ ३२  
अभिवादयेत् वृद्धांश्च आसनं चैव दापयेत् ।  
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छन्तं पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ ३३  
न चासीतासने भिन्ने भिन्न कांस्यं च वर्जयेत् ।  
नैकवस्त्रेण भोक्तव्यं न नग्नः स्नातुमर्हति ।  
स्वप्नव्यं नैव नग्नेन न चोच्छिष्टोऽपि संविशेत् ॥  
उच्छिष्टो न स्पृशेच्छीर्षं सर्वे प्राणास्तदाश्रयाः ।  
केशग्रहान्प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत् ॥ ३५  
न पाणिभ्यामुभाभ्यां च कण्डूयज्जातु वै शिरः ।  
न चाभीक्ष्णं शिरः स्नायात्तथास्यायुर्न रिष्यते ॥ ३६  
शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदुपस्पृशेत् ।  
तिलपिष्टं न चाश्रीयात्तथायुर्विन्दते महत् ॥ ३७  
नाभ्यापयेत्तथोच्छिष्टो नाधीयीत कदाचन ।  
वाते च पूतिगन्धे च मनसापि न चिन्तयेत् ॥ ३८  
अत्र गाथा यमोद्गीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।  
आयुरस्य निकृन्तामि प्रजामस्याददे तथा ॥ ३९  
य उच्छिष्टः प्रवदति स्वाभ्यायं चाधिगच्छति ।  
यश्चानभ्यायकालेऽपि मोहादभ्यस्यति द्विजः ।  
तस्माशुक्तोऽप्यनभ्याये नाधीयीत कदाचन ॥ ४०  
प्रत्यादित्यं प्रत्यनिलं प्रति गां च प्रति द्विजान् ।  
ये मेहेन्ति च पन्थानं ते भवन्ति गतायुषः ॥ ४१

उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।  
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ तथास्यायुर्न रिष्यते ॥ ४२  
त्रीन्कृशान्नावजानीयादीर्धमायुर्जिजीविषुः ।  
ब्राह्मणं क्षत्रियं सर्पं सर्वे ह्याशीविषास्त्रयः ॥ ४३  
दहत्याशीविषः क्रुद्धो यावत्पश्यति चक्षुषा ।  
क्षत्रियोऽपि दहेत्क्रुद्धो यावत्स्पृशति तेजसा ॥ ४४  
ब्राह्मणस्तु बुलं हन्याद्द्वानेनावेक्षितेन च ।  
तस्मादेतन्नयं यन्नादुपसेवेत पण्डितः ॥ ४५  
गुरुणा वैरनिर्वन्धो न कर्तव्यः कदाचन ।  
अनुमान्यः प्रसाद्यश्च गुरुः क्रुद्धो युधिष्ठिर ॥ ४६  
सम्यङ्दिग्ध्याप्रवृत्तेऽपि वर्तितव्यं गुराविह ।  
गुरुनिन्दा दहत्यायुर्मनुष्याणां न संशयः ॥ ४७  
दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ।  
उच्छिष्टोत्सर्जनं चैव दूरे कार्यं हितैषिणा ॥ ४८  
नातिकल्पं नातिसायं न च मध्यंदिने स्थिते ।  
नाज्ञातैः सह गच्छेत नैको न वृषलैः सह ॥ ४९  
पन्था देयो ब्राह्मणाय गोभ्यो राजभ्य एव च ।  
वृद्धाय भारतप्राय गर्भिण्यै दुर्बलाय च ॥ ५०  
प्रदक्षिणं च कुर्वीत परिज्ञातान्वनस्पतीन् ।  
चतुष्पथान्प्रकुर्वीत सर्वानेव प्रदक्षिणान् ॥ ५१  
मध्यंदिने निशाकाले मध्यरात्रे च सर्वदा ।  
चतुष्पथान्न सेवेत उभे संध्ये तथैव च ॥ ५२  
उपानहौ च वस्त्रं च धृतमन्यैर्न धारयेत् ।  
ब्रह्मचारी च नित्यं स्यात्पादं पादेन नाक्रमेत् ॥ ५३  
अमावास्यां पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां च सर्वशः ।  
अष्टम्यां सर्वपक्षाणां ब्रह्मचारी सदा भवेत् ॥ ५४  
वृथा मांसं न खादेत पृष्ठमांसं तथैव च ।  
आक्रोशं परिवादं च पैशुन्यं च विवर्जयेत् ॥ ५५  
नारुतुदः स्यान्न नृशंसवादी  
न हीनतः परमभ्याददीत ।

ययास्य वाचा पर उद्विजेत

न तां वदेद्द्रुशती पापलोक्याम् ॥ ५६

वाक्सायका वदनाग्निषपतन्ति

थैराहतः शोचति राज्यहानि ।

परस्य नामर्मसु ते पतन्ति

तान्पण्डितो नावसृजेत्परेषु ॥ ५७

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।

वाचा दुरुक्तं वीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्वयोधिकान् ।

रूपद्रविणहीनांश्च सत्त्वहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥ ५९

नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ।

द्वेषस्तम्भामिमानांश्च तैक्ष्ण्यं च परिवर्जयेत् ॥ ६०

परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्कुट्टो नैनं निपातयेत् ।

अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिक्षार्थं ताडनं स्मृतम् ॥

न ब्राह्मणान्परिवदेन्नक्षत्राणि न निर्दिशेत् ।

तिथिं पक्षस्य न ब्रूयात्तथास्यायुर्न रिष्यते ॥ ६२

कृत्वा मूत्रपुरीषे तु रथ्यामाक्रम्य वा पुनः ।

पादप्रक्षालनं कुर्यात्स्वाध्याये भोजने तथा ॥ ६३

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ।

अदृष्टमद्विर्निर्णक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥ ६४

संयावं कृसरं मांसं शङ्कुली पायसं तथा ।

आत्मार्यं न प्रकर्तव्यं देवार्थं तु प्रकल्पयेत् ॥ ६५

नित्यमग्निं परिचरेद्विक्षां दद्याच्च नित्यदा ।

वाग्यतो दन्तकाष्ठं च नित्यमेव समाचरेत् ।

न चाभ्युदितशायी स्यात्प्रायश्चित्ती तथा भवेत् ॥

मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादेत् ।

आचार्यमथ वाप्येनं तथायुर्विन्दते महत् ॥ ६७

वर्जयेद्दन्तकाष्ठानि वर्जनीयानि नित्यशः ।

भक्षयेच्छास्त्रदृष्टानि पर्वस्वपि च वर्जयेत् ॥ ६८

उदङ्मुखश्च सततं शौचं कुर्यात्समाहितः ॥ ६९

अकृत्वा देवतापूजां नान्यं गच्छेत्कदाचन ।

अन्यत्र तु गुरु वृद्धं धार्मिकं वा विचक्षणम् ॥ ७०

अवलोक्यो न चादर्शो मलिनो बुद्धिमत्तरैः ।

न चाज्ञातां स्त्रियं गच्छेद्भूमिणीं वा कदाचन ॥ ७१

उदक्शिरा न स्वपेत तथा प्रत्यक्शिरा न च ।

प्राक्शिरास्तु स्वपेद्विद्वानथ वा दक्षिणाशिराः ॥ ७२

न भग्ने नावदीर्णे वा शयने प्रस्वपेत च ।

नान्तर्धाने न संयुक्ते न च तिर्यक्कदाचन ॥ ७३

न नग्नः कर्हिचित्स्नायान्न निशायां कदाचन ।

स्नात्वा च नावमृज्येत गात्राणि सुविचक्षणः ॥ ७४

न चानुलिम्पेदस्नात्वा स्नात्वा वासो न निर्धुनेत् ।

आर्द्र एव तु वासांसि नित्यं सेवेत मानवः ।

स्त्रजश्च नावकर्षेत न बहिर्धरियेत च ॥ ७५

रक्तमाल्यं न धार्यं स्याच्छुक्लं धार्यं तु पण्डितैः ।

वर्जयित्वा तु कमलं तथा कुवलयं विभो ॥ ७६

रक्तं शिरसि धार्यं तु तथा वानेयमित्यपि ।

काञ्चनी चैव या माला न सा दुष्यति कर्हिचित् ।

स्नातस्य वर्णकं नित्यमार्द्रं दद्याद्विशां पते ॥ ७७

विपर्ययं न कुर्वीत वाससो बुद्धिमान्नरः ।

तथा नान्यधृतं धार्यं न चापदशमेव च ॥ ७८

अन्यदेव भवेद्वासः शयनीये नरोत्तम ।

अन्यद्रथ्यासु देवानामर्चयामन्यदेव हि ॥ ७९

प्रियङ्गुचन्दनाभ्यां च बिल्वेन तगरेण च ।

पृथगेवानुलिम्पेत केसरेण च बुद्धिमान् ॥ ८०

उपवासं च कुर्वीत स्नातः शुचिरलंकृतः ।

पर्वकालेषु सर्वेषु ब्रह्मचारी सदा भवेत् ॥ ८१

नालीढया परिहृतं भक्षणीतं कदाचन ।

तथा नोद्धृतसाराणि प्रेक्षतां नाप्रदाय च ॥ ८२

न संनिक्वष्टो मेधावी नाशुचिर्न च सत्सु च ।

प्रतिषिद्धान्न धर्मेषु भक्षान्भुञ्जीत पृष्ठतः ॥ ८३



पिप्पलं च वटं चैव शणशाकं तथैव च ।  
 उदुम्बरं न खादेच्च भवार्थी पुरुषोत्तमः ॥ ८४  
 आजं गव्यं च यन्मांसं मायूरं चैव वर्जयेत् ।  
 वर्जयेच्छुष्कमांसं च तथा पर्युषितं च यत् ॥ ८५  
 न पाणौ लवणं विद्वान्प्राग्नीयान्न च रात्रिषु ।  
 दधिसक्तून् भुञ्जीत वृथामांसं च वर्जयेत् ॥ ८६  
 बालेन तु न भुञ्जीत परश्राद्धं तथैव च ।  
 सायं प्रातश्च भुञ्जीत नान्तराले समाहितः ॥ ८७  
 वाग्यतो नैकवस्त्रश्च नासंविष्टः कदाचन ।  
 भूमौ सदैव नाग्नीयान्नानासीनो न शब्दवत् ॥ ८८  
 तोयपूर्वं प्रदायान्नमतिथिभ्यो विशां पते ।  
 पश्चाद्भुञ्जीत मेधावी न चाप्यन्यमना नरः ॥ ८९  
 समानमेकपङ्क्त्यां तु भोज्यमन्नं नरेश्वर ।  
 विषं हालाहलं भुङ्क्ते योऽप्रदाय सुहृज्जने ॥ ९०  
 पानीयं पायसं सर्पिर्दधिसक्तुमधून्यपि ।  
 निरस्य शेषमेतेषां न प्रदेयं तु कस्यचित् ॥ ९१  
 भुञ्जानो मनुजव्याघ्र नैव शङ्कां समाचरेत् ।  
 दधि चाप्यनुपानं वै न कर्तव्यं भवार्थिना ॥ ९२  
 आचम्य चैव हस्तेन परिस्राव्य तथोदकम् ।  
 अङ्गुष्ठं चरणस्याथ दक्षिणस्यावसेचयेत् ॥ ९३  
 पाणि मूर्ध्नि समाधाय स्पृष्ट्वा चाग्निं समाहितः ।  
 ज्ञातिश्रेष्ठमवाप्नोति प्रयोगकुशलो नरः ॥ ९४  
 अद्भिः प्राणान्समालभ्य नाभिं पाणितलेन च ।  
 स्पृशंश्चैव प्रतिष्ठेत् न चाप्यार्द्रेण पाणिना ॥ ९५  
 अङ्गुष्ठस्यान्तराले च ब्राह्मं तीर्थमुदाहृतम् ।  
 कनिष्ठिकायाः पश्चात्तु देवतीर्थमिहोच्यते ॥ ९६  
 अङ्गुष्ठस्य च यन्मध्यं प्रदेशिन्याश्च भारत ।  
 तेन पित्र्याणि कुर्वीत स्पृष्ट्वापो न्यायतस्तथा ॥ ९७  
 परापवादं न ब्रूयान्नाप्रियं च कदाचन ।  
 न मन्युः कश्चिदुत्पाद्यः पुरुषेण भवार्थिना ॥ ९८

पतितैस्तु कथां नेच्छेद्दर्शनं चापि वर्जयेत् ।  
 संसर्गं च न गच्छेत् तथायुर्विन्दते महत् ॥ ९९  
 न दिवा मैथुनं गच्छेन्न कन्यां न च बन्धकीम् ।  
 न चास्नातां स्त्रियं गच्छेत्तथायुर्विन्दते महत् ॥  
 स्वे स्वे तीर्थे समाचम्य कार्ये समुपकल्पिते ।  
 त्रिः पीत्वापो द्विः प्रमृज्य कृतशौचो भवेन्नरः ॥  
 इन्द्रियाणि सकृत्स्पृश्य त्रिरभ्युक्ष्य च मानवः ।  
 कुर्वीत पित्र्यं दैवं च वेददृष्टेन कर्मणा ॥ १०२  
 ब्राह्मणार्थं च यच्छौचं तच्च मे शृणु कौरव ।  
 प्रवृत्तं च हितं चोक्त्वा भोजनाद्यन्तयोस्तथा ॥  
 सर्वशौचेषु ब्राह्मेण तीर्थेन समुपस्पृशेत् ।  
 निष्ठीव्य तु तथा क्षुत्वा स्पृश्यापो हि शुचिर्भवेत् ॥  
 वृद्धो ज्ञातिस्तथा मित्रं दरिद्रो यो भवेदपि ।  
 गृहे वासयितव्यास्ते धन्यमायुष्यमेव च ॥ १०५  
 गृहे पारावता धन्याः शुकाश्च सहसारिकाः ।  
 गृहेष्वेते न पापाय तथा वै तैलपायिकाः ॥ १०६  
 उदीपकाश्च गृध्राश्च कपोता भ्रमरास्तथा ।  
 निविशेयुर्यदा तत्र शान्तिमेव तदाचरेत् ॥ १०७  
 अमङ्गल्यानि चैतानि तथाक्रोशो महात्मनाम् ।  
 महात्मनां च गुह्यानि न वक्तव्यानि कर्हिचित् ॥  
 अगम्याश्च न गच्छेत् राजपत्नीः सखीस्तथा ।  
 वैद्यानां बालवृद्धानां भृत्यानां च युधिष्ठिर ॥ १०९  
 बन्धूनां ब्राह्मणानां च तथा शारणिकस्य च ।  
 संबन्धिनानां च राजेन्द्र तथायुर्विन्दते महत् ॥ ११०  
 ब्राह्मणस्थपतिभ्यां च निर्मितं यन्निवेशनम् ।  
 तदावसेत्सदा प्राज्ञो भवार्थी मनुजेश्वर ॥ १११  
 संध्यायां न स्वपेद्राजन्विद्यां न च समाचरेत् ।  
 न भुञ्जीत च मेधावी तथायुर्विन्दते महत् ॥ ११२  
 नक्तं न कुर्यात्पित्र्याणि भुक्त्वा चैव प्रसाधनम् ।  
 पानीयस्य क्रिया नक्तं न कार्या भूतिमिच्छता ॥

वर्जनीयाश्च वै नित्यं सक्तवो निशि भारत ।  
 शेषाणि चावदातानि पानीयं चैव भोजने ॥ ११४  
 सौहित्यं च न कर्तव्यं रात्रौ नैव समाचरेत् ।  
 द्विजच्छेदं न कुर्वीत भुक्त्वा न च समाचरेत् ॥  
 महाकूलप्रसूतां च प्रशस्तां लक्षणैस्तथा ।  
 वयःस्थां च महाप्राज्ञ कन्यामावोदुमर्हति ॥ ११६  
 अपत्यमुत्पाद्य ततः प्रतिष्ठाप्य कुल तथा ।  
 पुत्राः प्रदेया ज्ञानेषु कुलधर्मेषु भारत ॥ ११७  
 कन्या चोत्पाद्य दातव्या कुलपुत्राय धीमते ।  
 पुत्रा निवेश्याश्च कुलाद्भृत्या लभ्याश्च भारत ॥  
 शिरःस्नातोऽथ कुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि च ।  
 नक्षत्रे न च कुर्वीत यस्मिन्नातो भवेन्नरः ।  
 न प्रोष्ठपदयोः कार्यं तथाग्रेये च भारत ॥ ११९  
 दारुणेषु च सर्वेषु प्रत्यहं च विवर्जयेत् ।  
 ज्योतिषे यानि चोक्तानि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥  
 प्राङ्मुखः श्मश्रुकर्माणि कारयेत् समाहितः ।  
 उदङ्मुखो वा राजेन्द्र तथायुर्विन्दते महत् ॥ १२१  
 परिवादं न च ब्रूयात्परेषामात्मनस्तथा ।  
 परिवादो न धर्माय प्रोच्यते भरतर्षभ ॥ १२२  
 वर्जयेद्व्यङ्गिनीं नारीं तथा कन्यां नरोत्तम ।  
 समार्षा व्यङ्गितां चैव मातुः स्वकुलजां तथा ॥  
 वृद्धां प्रव्रजितां चैव तथैव च पतिव्रताम् ।  
 तथातिकृष्णवर्णां च वर्णोत्कृष्टां च वर्जयेत् ॥ १२४  
 अयोनिं च वियोनिं च न गच्छेत् विचक्षणः ।  
 पिङ्गलां कुष्ठिनीं नारीं न त्वमावोदुमर्हसि ॥ १२५  
 अपस्मारिकुले जातां निहीनां चैव वर्जयेत् ।  
 श्वित्रिणां च कुले जातां त्रयाणां मनुजेश्वर ॥ १२६  
 लक्षणैरन्विता या च प्रशस्ता या च लक्षणैः ।  
 मनोज्ञा दर्शनीया च तां भवान्वोदुमर्हति ॥ १२७  
 महाकुले निवेष्टव्यं सदृशे वा युधिष्ठिर ।

अवरा पतिता चैव न ग्राह्या भूतिमिच्छता ॥ १२८  
 अग्नीनुत्पाद्य यत्नेन क्रियाः सुविहिताश्च याः ।  
 वेदेषु ब्राह्मणैः प्रोक्तास्ताश्च सर्वाः समाचरेत् ॥  
 न चेष्यां स्त्रीषु कर्तव्या दारा रक्ष्याश्च सर्वशः ।  
 अनायुष्या भवेदीर्ष्या तस्मादीर्ष्यां विवर्जयेत् ॥  
 अनायुष्यो दिवास्वप्नस्तथाभ्युदितशायिता ।  
 प्रातर्निशायां च तथा ये चोच्छिष्टाः स्वपन्ति वै ॥  
 पारदार्यमनायुष्यं नापितोच्छिष्टता तथा ।  
 यत्नतो वै न कर्तव्यमभ्यासश्चैव भारत ॥ १३२  
 सध्यां न भुञ्जेन्न स्नायान्न पुरीषं समुत्सजेत् ।  
 प्रयतश्च भवेत्तस्यां न च किञ्चित्समाचरेत् ॥ १३३  
 ब्राह्मणान्पूजयेच्चापि तथा स्नात्वा नराधिप ।  
 देवांश्च प्रणमेत्स्नातो गुरुंश्चाप्यभिवादयेत् ॥ १३४  
 अनिमग्नितो न गच्छेत् यज्ञं गच्छेत्तु दर्शकः ।  
 अनिमग्निते ह्यनायुष्यं गमनं तत्र भारत ॥ १३५  
 न चैकेन परिव्राज्यं न गन्तव्यं तथा निशि ।  
 अनागतायां संभ्यायां पश्चिमायां गृहे वसेत् ॥ १३६  
 मातुः पितुर्गुरुणां च कार्यमेवानुशासनम् ।  
 हितं वाप्यहितं वापि न विचार्य नरर्षभ ॥ १३७  
 धनुर्वेदे च वेदे च यत्नः कार्यो नराधिप ।  
 हस्तिपृष्ठेऽथपृष्ठे च रथचर्यासु चैव ह ।  
 यत्नवान्भव राजेन्द्र यज्ञवान्सुखमेधते ॥ १३८  
 अप्रभृष्यश्च शत्रूणां भृत्यानां स्वजनस्य च ।  
 प्रजापालनयुक्तश्च न क्षतिं लभते कश्चित् ॥ १३९  
 युक्तिशास्त्रं च ते ज्ञेयं शब्दशास्त्रं च भारत ।  
 गन्धर्वशास्त्रं च कलाः परिज्ञेया नराधिप ॥ १४०  
 पुराणमितिहासाश्च तथाख्यानानि यानि च ।  
 महात्मनां च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेव ते ॥ १४१  
 पत्नीं रजस्वलां चैव नाभिगच्छेन्न चाहयेत् ।  
 स्नातां चतुर्थे दिवसे रात्रौ गच्छेद्विचक्षणः ॥ १४२

पञ्चमे दिवसे नारी षष्ठेऽहनि पुमान्भवेत् ।  
 एतेन विधिना पत्नीमुपगच्छेत पण्डितः ॥ १४३  
 ज्ञातिसंबन्धमित्राणि पूजनीयानि नित्यशः ।  
 यष्टव्यं च यथाशक्ति यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ।  
 अत ऊर्ध्वमरण्यं च सेवितव्यं नराधिप ॥ १४४  
 एष ते लक्षणोद्देश आयुष्याणां प्रकीर्तितः ।  
 शेषैर्विविधवृद्धेभ्यः प्रत्याहार्यो युधिष्ठिर ॥ १४५  
 आचारो भूतिजनन आचारः कीर्तिवर्धनः ।  
 आचाराद्धर्धते ह्यायुराचारो ह्यन्यलक्षणम् ॥ १४६  
 आगमानां हि सर्वेषामाचारः श्रेष्ठ उच्यते ।  
 आचारप्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विबर्धते ॥ १४७  
 एतद्यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत् ।  
 अनुकम्पता सर्ववर्णान्ब्रह्मणा समुदाहृतम् ॥ १४८

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

१०८

युधिष्ठिर उवाच ।

यथा ज्येष्ठः कनिष्ठेषु वर्तते भरतर्षभ ।  
 कनिष्ठाश्च यथा ज्येष्ठे वर्तेरस्तद्वीहि मे ॥ १  
 भीष्म उवाच ।  
 ज्येष्ठवत्तात वर्तस्व ज्येष्ठो हि सततं भवान् ।  
 गुरोर्गरीयसी वृत्तिर्या चेच्छिष्यस्य भारत ॥ २  
 न गुरावकृतप्रज्ञे शक्यं शिष्येण वर्जितुम् ।  
 गुरोर्हि दीर्घदर्शित्वं यत्तच्छिष्यस्य भारत ॥ ३  
 अन्धः स्यादन्धवेलायां जडः स्यादपि वा बुधः ।  
 परिहारेण तद्व्याद्यस्तेषां स्याद्व्यतिक्रमः ॥ ४  
 प्रत्यक्षं भिन्नहृदया भेदयेयुः कृतं नराः ।  
 श्रियाभितप्ताः कौन्तेय भेदकामास्तथारयः ॥ ५  
 ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ।  
 हन्ति सर्वमपि ज्येष्ठः कुलं यत्रावजायते ॥ ६

अथ यो विनिकुर्वीत ज्येष्ठो भ्राता यवीयसः ।  
 अज्येष्ठः स्यादभागश्च नियम्यो राजभिश्च सः ॥ ७  
 निकृती हि नरो लोकान्पापान्गच्छत्यसंशयम् ।  
 विदुलस्येव तत्पुष्पं मोघ जनयितुः स्मृतम् ॥ ८  
 सर्वानर्थः कुले यत्र जायते पापपूरुषः ।  
 अकीर्तिं जनयत्येव कीर्तिमन्तर्दधाति च ॥ ९  
 सर्वे चापि विकर्मस्था भागं नार्हन्ति सोदराः ।  
 नाप्रदाय कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥ १०  
 अनुजं हि पितुर्दायो जङ्घाश्रमफलोऽध्वगः ।  
 स्वयमीहितलब्ध तु नाकामो दातुमर्हति ॥ ११  
 भ्रातृणामविभक्तानामुत्थानमपि चेत्सह ।  
 न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कथंचन ॥ १२  
 न ज्येष्ठानवमन्येत दुष्कृतः सुकृतोऽपि वा ।  
 यदि स्त्री यद्यवरजः श्रयः पश्येत्तथाचरेत् ।  
 धर्मं हि श्रेय इत्याहुरिति धर्मविदो विदुः ॥ १३  
 दशाचार्यानुपाध्याय उपाध्यायान्पिता दश ।  
 दश चैव पितृन्माता सर्वा वा पृथिवीमपि ॥ १४  
 गौरवेणाभिभवति नास्ति मातृसमो गुरुः ।  
 माता गरीयसी यच्च तेनैतां मन्यते जनः ॥ १५  
 ज्येष्ठो भ्राता पितृसमो मृते पितरि भारत ।  
 स ह्येषां वृत्तिदाता स्यात्स चैतान्परिपालयेत् ॥ १६  
 कनिष्ठास्तं नमस्येरन्सर्वे छन्दानुवर्तिनः ।  
 तमेव चोपजीवेरन्यथैव पितरं तथा ॥ १७  
 शरीरमेतौ सृजतः पिता माता च भारत ।  
 आचार्यशास्ता या जातिः सा सत्या साजरामरा ॥  
 ज्येष्ठा मातृसमा चापि भगिनी भरतर्षभ ।  
 भ्रातुर्भार्या च तद्वत्स्याद्यस्या बाल्ये स्तनं पिबेत् ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

अष्टोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

१०९

युधिष्ठिर उवाच ।

सर्वेषामेव वर्णानां म्लेच्छानां च पितामह ।  
 उपवासे मतिरियं कारणं च न विद्महे ॥ १  
 ब्रह्मक्षत्रेण नियमाश्चर्तव्या इति नः श्रुतम् ।  
 उपवासे कथं तेषां कृत्यमस्ति पितामह ॥ २  
 नियमं चोपवासानां सर्वेषां ब्रूहि पार्थिव ।  
 अवाप्नोति गतिं कां च उपवासपरायणः ॥ ३  
 उपवासः परं पुण्यमुपवासः परायणम् ।  
 उपोष्येह नरश्रेष्ठ किं फलं प्रतिपद्यते ॥ ४  
 अधर्मान्मुच्यते केन धर्ममाप्नोति वै कथम् ।  
 स्वर्गं पुण्यं च लभते कथं भरतसत्तम ॥ ५  
 उपोष्य चापि किं तेन प्रदेयं स्यान्नराधिप ।  
 धर्मेण च सुखानर्थाल्लभेद्येन ब्रवीहि तम् ॥ ६

वैशंपायन उवाच ।

एवं ब्रुवाणं कौन्तेयं धर्मज्ञं धर्मतत्त्ववित् ।  
 धर्मपुत्रमिदं वाक्यं भीष्मः शातनवोऽब्रवीत् ॥ ७  
 इदं खलु महाराज श्रुतमासीत्पुरातनम् ।  
 उपवासविधौ श्रेष्ठा ये गुणा भरतर्षभ ॥ ८  
 प्राजापत्यं ह्यङ्गिरसं पृष्ठवानस्मि भारत ।  
 यथा मां त्वं तथैवाहं पृष्ठवांस्तं तपोधनम् ॥ ९  
 प्रश्नमेतं मया पृष्ठो भगवानग्निसंभवः ।  
 उपवासविधिं पुण्यमाचष्ट भरतर्षभ ॥ १०

अङ्गिरा उवाच ।

ब्रह्मक्षत्रे त्रिरात्रं तु विहितं कुरुनन्दन ।  
 द्विस्त्रिरात्रमथैवात्र निर्दिष्टं पुरुषर्षभ ॥ ११  
 वैश्यशूद्रौ तु यौ मोहादुपवासं प्रकुर्वते ।  
 त्रिरात्रं द्विस्त्रिरात्रं वा तयोः पुष्टिर्न विद्यते ॥ १२  
 चतुर्थभक्तक्षपणं वैश्यशूद्रे विधीयते ।  
 त्रिरात्रं न तु धर्मज्ञैर्विहितं ब्रह्मवादिभिः ॥ १३

पञ्चम्यां चैव षष्ठ्यां च पौर्णमास्यां च भारत ।  
 क्षमावान्स्पृशसपन्नः श्रुतवाञ्छैव जायते ॥ १४  
 नानपत्यो भवेत्प्राज्ञो दरिद्रो वा कदाचन ।  
 यजिष्णुः पञ्चमीं पष्टी क्षपेद्यो भोजयेद्विजान् ॥ १५  
 अष्टमीमथ कौन्तेय शुक्लपक्षे चतुर्दशीम् ।  
 उपोष्य व्याधिरहितो वीर्यवानभिजायते ॥ १६  
 मार्गशीर्षं तु यो मासमेकभक्तेन संक्षिपेत् ।  
 भोजयेच्च द्विजान्भक्त्या स मुच्येद्व्याधिकिल्बिषैः ॥  
 सर्वकल्याणसंपूर्णः सर्वौषधिसमन्वितः ।  
 कृपिभागी बहुधनो बहुपुत्रश्च जायते ॥ १८  
 पौषमासं तु कौन्तेय भक्तेनैकेन यः क्षपेत् ।  
 सुभगो दर्शनीयश्च यशोभागी च जायते ॥ १९  
 पितृभक्तो माघमासमेकभक्तेन यः क्षपेत् ।  
 श्रीमत्कुले ज्ञातिमध्ये स महत्त्वं प्रपद्यते ॥ २०  
 भगदैवं तु यो मासमेकभक्तेन यः क्षपेत् ।  
 स्त्रीषु बह्वभतां याति वश्याश्चास्य भवन्ति ताः ॥  
 चैत्रं तु नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षपेत् ।  
 सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये कुले महति जायते ॥ २२  
 निस्तरेदेकभक्तेन वैशाखं यो जितेन्द्रियः ।  
 नरो वा यदि वा नारी ज्ञातीनां श्रेष्ठतां व्रजेत् ॥  
 ज्येष्ठामूलं तु यो मासमेकभक्तेन संक्षपेत् ।  
 ऐश्वर्यमतुलं श्रेष्ठं पुमान्स्त्री वाभिजायते ॥ २४  
 आषाढमेकभक्तेन स्थित्वा मासमतन्द्रितः ।  
 बहुधान्यो बहुधनो बहुपुत्रश्च जायते ॥ २५  
 श्रावणं नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षपेत् ।  
 यत्र तत्राभिषेकेण युज्यते ज्ञातिवर्धनः ॥ २६  
 प्रौष्ठपदं तु यो मासमेकाहारो भवेन्नरः ।  
 धनाढ्यं स्फीतमचलमैश्वर्यं प्रतिपद्यते ॥ २७  
 तथैवाश्वयुजं मासमेकभक्तेन यः क्षपेत् ।  
 प्रजावान्वाहनाढ्यश्च बहुपुत्रश्च जायते ॥ २८

कार्तिकं तु नरो मासं यः कुर्यादेकभोजनम् ।  
 शूरश्च बहुभार्यश्च कीर्तिमांश्चैव जायते ॥ २९  
 इति मासा नरव्याघ्र क्षपतां परिकीर्तिताः ।  
 तिथीनां नियमा ये तु शृणु तानपि पार्थिव ॥ ३०  
 पक्षे पक्षे गते यस्तु भक्तमभ्राति भारत ।  
 गवाढ्यो बहुपुत्रश्च दीर्घायुश्च स जायते ॥ ३१  
 मासि मासि त्रिरात्राणि कृत्वा वर्षाणि द्वादश ।  
 गणाधिपत्यं प्राप्नोति निःसपत्नमनाविलम् ॥ ३२  
 एते तु नियमाः सर्वे कर्तव्याः शरदो दश ।  
 द्वे चान्ये भरतश्रेष्ठ प्रवृत्तिमनुवर्तता ॥ ३३  
 यस्तु प्रातस्तथा सायं भुञ्जानो नान्तरा पिबेत् ।  
 अर्हिसानिरतो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ३४  
 षड्भिः स वर्षैर्नृपते सिध्यते नात्र संशयः ।  
 अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ३५  
 अधिवासे सोऽप्सरसां नृत्यगीतविनादिते ।  
 तप्तकाञ्चनवर्णाभं विमानमधिरोहति ॥ ३६  
 पूर्णं वर्षसहस्रं तु ब्रह्मलोके महीयते ।  
 तत्क्षयादिह चागम्य माहात्म्यं प्रतिपद्यते ॥ ३७  
 यस्तु संवत्सरं पूर्णमेकाहारो भवेन्नरः ।  
 अतिरात्रस्य यज्ञस्य स फलं समुपाश्रुते ॥ ३८  
 दशवर्षसहस्राणि स्वर्गे च स महीयते ।  
 तत्क्षयादिह चागम्य माहात्म्यं प्रतिपद्यते ॥ ३९  
 यस्तु संवत्सरं पूर्णं चतुर्थं भक्तमश्रुते ।  
 अर्हिसानिरतो नित्यं सत्यवाङ्मयतेन्द्रियः ॥ ४०  
 वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं वै समुपाश्रुते ।  
 त्रिंशद्वर्षसहस्राणि स्वर्गे च स महीयते ॥ ४१  
 षष्ठे काले तु कौन्तेय नरः संवत्सरं क्षपेत् ।  
 अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ४२  
 चक्रवाकप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति ।  
 चत्वारिंशत्सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥ ४३

अष्टमेन तु भक्तेन जीवन्संवत्सरं नृप ।  
 गवामयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ४४  
 हंससारसयुक्तेन विमानेन स गच्छति ।  
 पञ्चाशतं सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥ ४५  
 पक्षे पक्षे गते राजन्योऽश्रीयाद्वर्षमेव तु ।  
 षण्मासानशनं तस्य भगवानङ्गिराब्रवीत् ।  
 षष्टिं वर्षसहस्राणि दिवमावसते च सः ॥ ४६  
 वीणानां वल्लकीनां च वेणूनां च विशां पते ।  
 सुघोषैर्मधुरैः शब्दैः सुप्तः स प्रतिबोध्यते ॥ ४७  
 सवत्सरमिहैकं तु मासि मासि पिबेत्पयः ।  
 फलं विश्वजितस्तात प्राप्नोति स नरो नृप ॥ ४८  
 सिंहव्याघ्रप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति ।  
 सप्तति च सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥ ४९  
 मासादूर्ध्वं नरव्याघ्र नोपवासो विधीयते ।  
 विधि त्वनशनस्याहुः पार्थ धर्मविदो जनाः ॥ ५०  
 अनातो व्याधिरहितो गच्छेदनशनं तु यः ।  
 पदे पदे यज्ञफलं स प्राप्नोति न संशयः ॥ ५१  
 दिवं हंसप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति ।  
 शतं चाप्सरसः कन्या रमयन्त्यपि तं नरम् ॥ ५२  
 आतो वा व्याधितो वापि गच्छेदनशनं तु यः ।  
 शतं वर्षसहस्राणां मोदते दिवि स प्रभो ।  
 काञ्चीनूपुरशब्देन सुप्तश्चैव प्रबोध्यते ॥ ५३  
 सहस्रहंससयुक्ते विमाने सोमवर्चसि ।  
 स गत्वा स्त्रीशताकीर्णे रमते भरतर्षभ ॥ ५४  
 क्षीणस्याप्यायनं दृष्टं क्षतस्य क्षतरोहणम् ।  
 व्याधितस्यौषधग्रामः क्रुद्धस्य च प्रसादनम् ॥ ५५  
 दुःखितस्यार्थमानाभ्यां द्रव्याणां प्रतिपादनम् ।  
 न चैते स्वर्गकामस्य रोचन्ते सुखमेधसः ॥ ५६  
 अतः स कामसंयुक्तो विमाने हेमसंनिभे ।  
 रमते स्त्रीशताकीर्णे पुरुषोऽलंकृतः शुभे ॥ ५७

स्वस्थः सफलसंकल्पः सुखी विगतकलमषः ।  
 अनश्वन्देहमुत्सृज्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ५८  
 बालसूर्यप्रतीकाशे विमाने हेमवर्चसि ।  
 वैदूर्यमुक्ताखचिते वीणामुरजनादिते ॥ ५९  
 पताकादीपिकाकीर्णे दिव्यघण्टानिनादिते ।  
 स्त्रीसहस्रानुचरिते स नरः सुखमेधते ॥ ६०  
 यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु पाण्डव ।  
 तावन्त्येव सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥ ६१  
 नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातृसमो गुरुः ।  
 न धर्मात्परमो लाभस्तपो नानशनात्परम् ॥ ६२  
 ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति पावनं दिवि चेह च ।  
 उपवासैस्तथा तुल्यं तपःकर्म न विद्यते ॥ ६३  
 उपोष्य विधिवद्देवास्त्रिदिवं प्रतिपेदिरे ।  
 ऋषयश्च परां सिद्धिमुपवासैरवाप्नुवन् ॥ ६४  
 दिव्य वर्षसहस्रं हि विश्वामित्रेण धीमता ।  
 क्षान्तमेकेन भक्तेन तेन विप्रत्वमागतः ॥ ६५  
 च्यवनो जमदग्निश्च वसिष्ठो गौतमो भृगुः ।  
 सर्व एव दिवं प्राप्ताः क्षमावन्तो महर्षयः ॥ ६६  
 इदमङ्गिरसा पूर्वं महर्षिभ्यः प्रदर्शितम् ।  
 यः प्रदर्शयते नित्यं न स दुःखमवाप्नुते ॥ ६७  
 इमं तु कौन्तेय यथाक्रमं विधिं  
 प्रवर्तितं ह्यङ्गिरसा महर्षिणा ।  
 पठेत् यो वै शृणुयाच्च नित्यदा  
 न विद्यते तस्य नरस्य किल्बिषम् ॥ ६८  
 विमुच्यते चापि स सर्वसंकरै-  
 र्न चास्य दोषैरभिभूयते मनः ।  
 वियोनिजानां च विजानते रूतं  
 ध्रुवां च कीर्तिं लभते नरोत्तमः ॥ ६९  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

११०

युधिष्ठिर उवाच ।

पितामहेन विधिवद्यज्ञाः प्रोक्ता महात्मना ।  
 गुणाश्चैषां यथातत्त्वं प्रेत्य चेह च सर्वशः ॥ १  
 न ते शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं पितामह ।  
 बहूपकरणा यज्ञा नानासंभारविस्ताराः ॥ २  
 पार्थिवे राजपुत्रैर्वा शक्याः प्राप्तुं पितामह ।  
 नार्थन्यूनैरवगुणैरेकात्मभिरसहजैः ॥ ३  
 यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं सदा भवेत् ।  
 तुल्यो यज्ञफलैरेतैस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ४  
 भीष्म उवाच ।  
 इदमङ्गिरसा प्रोक्तमुपवासफलात्मकम् ।  
 विधिं यज्ञफलैस्तुल्यं तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ ५  
 यस्तु कल्यं तथा सायं भुञ्जानो नान्तरा पिबेत् ।  
 अहिंसानिरतो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ६  
 षड्भिरेव तु वर्षैः स सिध्यते नात्र सशयः ।  
 तप्तकाञ्चनवर्णं च विमानं लभते नरः ॥ ७  
 देवस्त्रीणामधीवासे नृत्यगीतनिनादिते ।  
 प्राजापत्ये वसेत्पद्मं वर्षाणामग्निसनिभे ॥ ८  
 त्रीणि वर्षाणि यः प्राशेत्सततं त्वेकभोजनम् ।  
 धर्मपत्नीरतो नित्यमग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ९  
 द्वितीये दिवसे यस्तु प्राश्रीयादेकभोजनम् ।  
 सदा द्वादशमासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ।  
 यज्ञं बहुसुवर्णं वा वासवप्रियमाहरेत् ॥ १०  
 सत्यवाग्दानशीलश्च ब्रह्मण्यश्चानसूयकः ।  
 क्षान्तो दान्तो जितक्रोधः स गच्छति परां गतिम् ॥  
 पाण्डुराभ्रप्रतीकाशे विमाने हंसलक्षणे ।  
 द्वे समाप्ते ततः पद्मे सोऽप्सरोभिर्वसेत्सह ॥ १२  
 तृतीये दिवसे यस्तु प्राश्रीयादेकभोजनम् ।  
 सदा द्वादशमासास्तु जुह्वानो जातवेदसम् ॥ १३

अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।  
 मयूरहंससंयुक्त विमानं लभते नरः ॥ १४  
 सप्तर्षीणां सदा लोके सोऽप्सरसोर्भिरवसेत्सह ।  
 निवर्तनं च तत्रास्य त्रीणि पद्मानि वै विदुः ॥ १५  
 दिवसे यश्चतुर्थे तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ।  
 सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ॥ १६  
 वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।  
 इन्द्रकन्याभिरूढं च विमानं लभते नरः ॥ १७  
 सागरस्य च पर्यन्ते वासवं लोकमावसेत् ।  
 देवराजस्य च क्रीडां नित्यकालमवेक्षते ॥ १८  
 दिवसे पञ्चमे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ।  
 सदा द्वादशमासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ॥ १९  
 अलुब्धः सत्यवादी च ब्रह्मण्यश्चाविर्हिसकः ।  
 अनसूयुरपापस्थो द्वादशाहफलं लभेत् ॥ २०  
 जाम्बूनदमयं दिव्यं विमानं हंसलक्षणम् ।  
 सूर्यमालासमाभासमारोहेत्पाण्डुरं गृहम् ॥ २१  
 आवर्तनानि चत्वारि तथा पद्मानि द्वादश ।  
 शराग्निपरिमाणं च तत्रासौ वसते सुखम् ॥ २२  
 दिवसे यस्तु षष्ठे वै मुनिः प्राशेत भोजनम् ।  
 सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ॥ २३  
 सदा त्रिषवणस्त्रायी ब्रह्मचार्यनसूयकः ।  
 गवामयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ २४  
 अग्निज्वालासमाभासं हंसबर्हिणसेवितम् ।  
 शातकुम्भमयं युक्तं साधयेद्यानमुत्तमम् ॥ २५  
 तथैवाप्सरसामङ्गे प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते ।  
 नूपुराणां निनादेन मेखलानां च निखनैः ॥ २६  
 कोटीसहस्रं वर्षाणां त्रीणि कोटिशतानि च ।  
 पद्मान्यष्टादश तथा पताके द्वे तथैव च ॥ २७  
 अयुतानि च पञ्चाशदक्षचर्मशतस्य च ।  
 लोभ्रां प्रमाणेन सम ब्रह्मलोके महीयते ॥ २८

दिवसे सप्तमे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ।  
 सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ॥ २९  
 सरस्वतीं गोपयानो ब्रह्मचर्यं समाचरन् ।  
 सुमनोवर्णकं चैव मधुमांसं च वर्जयेत् ॥ ३०  
 पुरुषो मरुतां लोकमिन्द्रलोकं च गच्छति ।  
 तत्र तत्र च सिद्धार्थो देवकन्याभिरुह्यते ॥ ३१  
 फलं बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते नरः ।  
 संख्यामतिगुणां चापि तेषु लोकेषु मोदते ॥ ३२  
 यस्तु संवत्सरं क्षान्तो भुङ्क्तेऽहन्यष्टमे नरः ।  
 देवकार्यपरो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ३३  
 पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।  
 पद्मवर्णनिभं चैव विमानमधिरोहति ॥ ३४  
 कृष्णाः कनकगौर्यश्च नार्यः श्यामास्तथापराः ।  
 वयोरूपविलासिन्यो लभते नात्र संशयः ॥ ३५  
 यस्तु संवत्सरं भुङ्क्ते नवमे नवमेऽहनि ।  
 सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ३६  
 अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।  
 पुण्डरीकप्रकाशं च विमानं लभते नरः ॥ ३७  
 दीप्तसूर्याग्नितेजोभिर्दिव्यमालाभिरेव च ।  
 नीयते रुद्रकन्याभिः सोऽन्तरिक्षं सनातनम् ॥ ३८  
 अष्टादशसहस्राणि वर्षाणां कल्पमेव च ।  
 कोटीशतसहस्रं च तेषु लोकेषु मोदते ॥ ३९  
 यस्तु संवत्सरं भुङ्क्ते दशाहे वै गते गते ।  
 सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ४०  
 ब्रह्मकन्यानिवेशे च सर्वभूतमनोहरे ।  
 अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ४१  
 रूपवत्यश्च तं कन्या रमयन्ति सदा नरम् ।  
 नीलोत्पलनिभैर्वर्णै रक्तोत्पलनिभैस्तथा ॥ ४२  
 विमानं मण्डलावर्तमावर्तगहनावृतम् ।  
 सागरोर्मिप्रतीकाशं साधयेद्यानमुत्तमम् ॥ ४३

विचित्रमणिमालाभिर्नादितं गङ्गपुष्करैः ।  
 स्फाटिकैर्वज्रसारैश्च स्तम्भैः सुकृतवेदिकम् ॥ ४४  
 आरोहति महान्नं हंससारसवाहनम् ।  
 एकादशे तु दिवसे यः प्राप्ते प्राशते हविः ।  
 सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ४५  
 परस्त्रियो नाभिलषेद्वाचाथ मनसापि वा ।  
 अनृतं च न भाषेत मातापित्रोः कृतेऽपि वा ॥ ४६  
 अभिगच्छेन्महादेव विमानस्थ महाबलम् ।  
 स्वयंभुवं च पश्येत् विमानं समुपस्थितम् ॥ ४७  
 कुमार्यः काञ्चनाभासा रूपवत्यो नयन्ति तम् ।  
 रुद्राणां तमधीवासं दिवि दिव्य मनोहरम् ॥ ४८  
 वर्षाण्यपरिमेयानि युगान्तमपि चावसेत् ।  
 कोटीशतसहस्रं च दश कोटिशतानि च ॥ ४९  
 रुद्रं नित्यं प्रणमते देवदानवसंमतम् ।  
 स तस्मै दर्शनं प्राप्नोति दिवसे दिवसे भवेत् ॥ ५०  
 दिवसे द्वादशे यस्तु प्राप्ते वै प्राशते हविः ।  
 सदा द्वादशमासान्वै सर्वमेधफलं लभेत् ॥ ५१  
 आदित्यैर्द्वादशैस्तस्य विमानं संविधीयते ।  
 मणिमुक्ताप्रवालैश्च महाहैरूपशोभितम् ॥ ५२  
 हंसमालापरिक्षिप्तं नागवीथीसमाकुलम् ।  
 मयूरैश्चक्रवाकैश्च कूजद्विरूपशोभितम् ॥ ५३  
 अट्टैर्महद्भिः संयुक्तं ब्रह्मलोके प्रतिष्ठितम् ।  
 नित्यमावसते राजन्नरनारीसमावृतम् ।  
 ऋषिरेवं महाभागस्त्वङ्गिराः प्राह धर्मवित् ॥ ५४  
 त्रयोदशे तु दिवसे यः प्राप्ते प्राशते हविः ।  
 सदा द्वादश मासान्वै देवसत्रफलं लभेत् ॥ ५५  
 रक्तपद्मोदयं नाम विमानं साधयेन्नरः ।  
 जातरूपप्रयुक्तं च रत्नसंचयभूषितम् ॥ ५६  
 देवकन्याभिराकीर्णं दिव्याभरणभूषितम् ।  
 पुण्यगन्धोदयं दिव्यं वायव्यैरुपशोभितम् ॥ ५७

तत्र शङ्खपताकं च युगान्तं कल्पमेव च ।  
 अयुतायुतं तथा पद्म समुद्रं च तथा वसेत् ॥ ५८  
 गीतगन्धर्वघोषैश्च भेरीपणवनिस्वनैः ।  
 सदा प्रमुदितस्ताभिर्देवकन्याभिराङ्ग्यते ॥ ५९  
 चतुर्दशे तु दिवसे यः पूर्णे प्राशते हविः ।  
 सदा द्वादश मासान्वै महामेधफलं लभेत् ॥ ६०  
 अनिर्देश्यवयोरूपा देवकन्याः स्वलंकृताः ।  
 मृष्टतप्ताङ्गदधरा विमानैरनुयान्ति तम् ॥ ६१  
 कलहंसविनिर्घोषैर्नूपुराणां च निस्वनैः ।  
 काञ्चीनां च समुत्कर्षैस्तत्र तत्र विबोध्यते ॥ ६२  
 देवकन्यानिवासे च तस्मिन्वसति मानवः ।  
 जाह्नवीवालुकाकीर्णे पूर्णं संवत्सरं नरः ॥ ६३  
 यस्तु पक्षे गते मुङ्गे एकभक्तं जितेन्द्रियः ।  
 सदा द्वादश मासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ।  
 राजसूयसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ६४  
 यानमारोहते नित्यं हंसबर्हिणसेवितम् ।  
 मणिमण्डलैश्चित्र जातरूपसमावृतम् ॥ ६५  
 दिव्याभरणशोभाभिर्वरस्त्रीभिरलंकृतम् ।  
 एकस्तम्भं चतुर्द्वारं सप्रभौमं सुमङ्गलम् ।  
 वैजयन्तीसहस्रं च गोभितं गीतनिस्वनैः ॥ ६६  
 दिव्यं दिव्यगुणोपेतं विमानमधिरोहति ।  
 मणिमुक्ताप्रवालैश्च भूषितं वैद्युतप्रभम् ।  
 वसेद्युगसहस्रं च खड्गकुञ्जरवाहनः ॥ ६७  
 षोडशे दिवसे यस्तु संप्राप्ते प्राशते हविः ।  
 सदा द्वादश मासान्वै सोमयज्ञफलं लभेत् ॥ ६८  
 सोमकन्यानिवासेषु सोऽध्यावसति नित्यदा ।  
 सौम्यगन्धानुलिप्तश्च कामचारगतिर्भवेत् ॥ ६९  
 सुदर्शनाभिर्नारीभिर्मधुराभिस्तथैव च ।  
 अर्च्यते वै विमानस्थः कामभोगैश्च सेव्यते ॥ ७०  
 फलं पद्मशतप्रख्यं महाकल्पं दशाधिकम् ।



आवर्तनानि चत्वारि सागरे यात्यसौ नरः ॥ ७१  
 दिवसे सप्तदशमे यः प्राप्ते प्राशने हविः ।  
 सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ७२  
 स्थानं वारुणमेन्द्रं च रौद्रं चैवाधिगच्छति ।  
 मारुतौशनसे चैव ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥ ७३  
 तत्र देवतकन्याभिरासनेनोपचर्यते ।  
 भूर्भुवं चापि देवर्षिं विश्वरूपमवेक्षते ॥ ७४  
 तत्र देवाधिदेवस्य कुमार्यो रमयन्ति तम् ।  
 द्वात्रिंशद्रूपधारिण्यो मधुराः समलंकृताः ॥ ७५  
 चन्द्रादित्यावुभौ यावद्गगने चरतः प्रभो ।  
 तावच्चरत्यसौ वीरः सुधामृतरसाशनः ॥ ७६  
 अष्टादशे तु दिवसे प्राश्रीयादेकभोजनम् ।  
 सदा द्वादश मासान्वै सप्त लोकान्स पश्यति ॥ ७७  
 रथैः सनन्दिघोषैश्च पृष्ठतः सोऽनुगम्यते ।  
 देवकन्याधिरूढैस्तु भ्राजमानैः स्वलंकृतैः ॥ ७८  
 व्याघ्रसिंहप्रयुक्तं च मेघस्वननिनादितम् ।  
 विमानमुत्तम दिव्यं सुसुखी ह्यधिरोहति ॥ ७९  
 तत्र कल्पसहस्रं स कान्ताभिः सह मोदते ।  
 सुधारसं च भुञ्जीत अमृतोपममुत्तमम् ॥ ८०  
 एकोनविंशे दिवसे यो भुङ्क्ते एकभोजनम् ।  
 सदा द्वादश मासान्वै सप्त लोकान्स पश्यति ॥ ८१  
 उत्तमं लभते स्थानमप्सरोगणसेवितम् ।  
 गन्धर्वैरुपगीतं च विमानं सूर्यवर्चसम् ॥ ८२  
 तत्रामरवरस्त्रीभिर्मोदते विगतज्वरः ।  
 दिव्याम्बरधरः श्रीमानयुतानां शतं समाः ॥ ८३  
 पूर्णेऽथ दिवसे विंशे यो भुङ्क्ते ह्येकभोजनम् ।  
 सदा द्वादश मासांस्तु सत्यवादी धृतव्रतः ॥ ८४  
 अमांसाशी ब्रह्मचारी सर्वभूतहिते रतः ।  
 स लोकान्विपुलान्दिव्यानादित्यानामुपाश्रुते ॥ ८५  
 गन्धर्वैरप्सरोगणैश्च दिव्यमाल्यानुलेपनैः ।

विमानैः काञ्चनैर्दिव्यैः पृष्ठतश्चानुगम्यते ॥ ८६  
 एकविंशे तु दिवसे यो भुङ्क्ते ह्येकभोजनम् ।  
 सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ८७  
 लोकमौशनसं दिव्यं शक्रलोकं च गच्छति ।  
 अश्विनोर्मरुतां चैव सुखेष्वभिरतः सदा ॥ ८८  
 अनभिज्ञश्च दुःखानां विमानवरमास्थितः ।  
 सेव्यमानो वरस्त्रीभिः क्रीडत्यमरवत्प्रभुः ॥ ८९  
 द्वाविंशे दिवसे प्राप्ते यो भुङ्क्ते ह्येकभोजनम् ।  
 सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ९०  
 धृतिमानहिंसाशिरतः सत्यवागनसूयकः ।  
 लोकान्वसूनामाप्नोति दिवाकरसमप्रभः ॥ ९१  
 कामचारी सुधाहारो विमानवरमास्थितः ।  
 रमते देवकन्याभिर्दिव्याभरणभूषितः ॥ ९२  
 त्रयोविंशे तु दिवसे प्राशेद्यस्त्वेकभोजनम् ।  
 सदा द्वादश मासांस्तु मिताहारो जितेन्द्रियः ॥ ९३  
 वायोरुशनसश्चैव सद्रलोकं च गच्छति ।  
 कामचारी कामगमः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ॥ ९४  
 अनेकगुणपर्यन्तं विमानवरमास्थितः ।  
 रमते देवकन्याभिर्दिव्याभरणभूषितः ॥ ९५  
 चतुर्विंशे तु दिवसे यः प्राशेदेकभोजनम् ।  
 सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ९६  
 आदित्यानामधीवासे मोदमानो वसेच्चिरम् ।  
 दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥ ९७  
 विमाने काञ्चने दिव्ये हंसयुक्ते मनोरमे ।  
 रमते देवकन्यानां सहस्रैरयुतैस्तथा ॥ ९८  
 पञ्चविंशे तु दिवसे यः प्राशेदेकभोजनम् ।  
 सदा द्वादश मासांस्तु पुष्कलं यानमारुहेत् ॥ ९९  
 सिंहव्याघ्रप्रयुक्तैश्च मेघस्वननिनादितैः ।  
 रथैः सनन्दिघोषैश्च पृष्ठतः सोऽनुगम्यते ॥ १००  
 देवकन्यासमारूढैः राजतैर्विमलैः शुभैः ।

विमानमुत्तमं दिव्यमास्थाय सुमनोहरम् ॥ १०१  
 तत्र कल्पसहस्रं वै वसते स्त्रीशतावृते ।  
 सुधारसं चोपजीवन्नमृतोपममुत्तमम् ॥ १०२  
 षड्विंशे दिवसे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ।  
 सदा द्वादश मासांस्तु नियतो नियताशनः ॥ १०३  
 जितेन्द्रियो वीतरागो जुह्वानो जातवेदसम् ।  
 स प्राप्नोति महाभागः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ॥  
 सप्तानां मरुतां लोकान्वसूनां चापि सोऽश्रुते ।  
 विमाने स्फाटिके दिव्ये सर्वरत्नैरलङ्कृते ॥ १०५  
 गन्धर्वैरप्सरोमिश्र पूज्यमानः प्रमोदते ।  
 द्वे युगानां सहस्रे तु दिव्ये दिव्येन तेजसा ॥ १०६  
 सप्तविंशे तु दिवसे यः प्राशेदेकभोजनम् ।  
 सदा द्वादश मासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ॥ १०७  
 फलं प्राप्नोति विपुलं देवलोके च पूज्यते ।  
 अमृताशी वसंस्तत्र स वितृप्तः प्रमोदते ॥ १०८  
 देवर्षिचरितं राजन्राजर्षिभिरधिष्ठितम् ।  
 अध्यावसति दिव्यात्मा विमानवरमास्थितः ॥ १०९  
 स्त्रीभिर्मनोभिरामाभी रममाणो मदोत्कटः ।  
 युगकल्पसहस्राणि त्रीण्यावसति वै सुखम् ॥ ११०  
 योऽष्टाविंशे तु दिवसे प्राश्नीयादेकभोजनम् ।  
 सदा द्वादश मासांस्तु जितात्मा विजितेन्द्रियः ॥  
 फलं देवर्षिचरितं विपुलं समुपाश्रुते ।  
 भोगवांस्तेजसा भाति सहस्रांशुरिवामलः ॥ ११२  
 सुकुमार्यश्च नार्यस्तं रममाणाः सुवर्चसः ।  
 पीनस्तनोरुजघना दिव्याभरणभूषिताः ॥ ११३  
 रमयन्ति मनः कान्ता विमाने सूर्यसंनिभे ।  
 सर्वकामगमे दिव्ये कल्पायुतगतं समाः ॥ ११४  
 एकोनत्रिंशे दिवसे यः प्राशेदेकभोजनम् ।  
 सदा द्वादश मासान्वै सत्यव्रतपरायणः ॥ ११५  
 तस्य लोकाः शुभा दिव्या देवराजर्षिपूजिताः ।

विमानं चन्द्रशुभ्राभ दिव्यं समधिगच्छति ॥ ११६  
 जातरूपमयं युक्तं सर्वरत्नविभूषितम् ।  
 अप्सरोगणसंपूर्णं गन्धर्वैरभिनादितम् ॥ ११७  
 तत्र चैनं शुभा नार्यो दिव्याभरणभूषिताः ।  
 मनोभिरामा मधुरा रमयन्ति मदोत्कटाः ॥ ११८  
 भोगवांस्तेजसा युक्तो वैश्वानरसमप्रभः ।  
 दिव्यो दिव्येन वपुषा भ्राजमान इवामरः ॥ ११९  
 वसूनां मरुतां चैव साध्यानामग्निनोस्तथा ।  
 रुद्राणां च तथा लोकान्ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥  
 यस्तु मासे गते भुङ्क्ते एकभक्तं शमात्मकः ।  
 सदा द्वादश मासान्वै ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ १२१  
 सुधारसकृताहारः श्रीमान्सर्वमनोहरः ।  
 तेजसा वपुषा लक्ष्म्या भ्राजते रश्मिवानिव ॥ १२२  
 दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः ।  
 सुखेष्वभिरतो योगी दुःखानामविजानकः ॥ १२३  
 स्वयंप्रभाभिर्नारीभिर्विमानस्थो महीयते ।  
 रुद्रदेवर्षिकन्याभिः सततं चामिपूज्यते ॥ १२४  
 नानाविधसुररूपाभिर्नारारागाभिरेव च ।  
 नानामधुरभाषाभिर्नारतिभिरेव च ॥ १२५  
 विमाने नगराकारे सूर्यवत्सूर्यसंनिभे ।  
 पृष्ठतः सोमसकाशे उदक्चैवाभ्रसंनिभे ॥ १२६  
 दक्षिणायां तु रक्ताभे अधस्तात्रीलमण्डले ।  
 ऊर्ध्वं चित्राभिसकाशे नैको वसति पूजितः ॥ १२७  
 यावद्वर्षसहस्रं तु जम्बूद्वीपे प्रवर्षति ।  
 तावत्संवत्सराः प्रोक्ता ब्रह्मलोकस्य धीमतः ॥ १२८  
 विप्रुषश्चैव यावन्त्यो निपतन्ति नभस्तलात् ।  
 वर्षासु वर्षतस्तावन्निवसत्यमरप्रभः ॥ १२९  
 मासोपवासी वर्षेस्तु दशभिः स्वर्गमुत्तमम् ।  
 महर्षित्वमथासाद्य सशरीरगतिर्भवेत् ॥ १३०  
 मुनिर्दान्तो जितक्रोधो जितशिश्रोदरः सदा ।

जुह्वन्मयीश्च नियतः संध्योपासनसेविना ॥ १३१  
 बहुभिर्नियमैरेवं मासानभ्राति यो नरः ।  
 भ्राम्यकाशशीलश्च तस्य वासो निरुच्यते ॥ १३२  
 दिवं गत्वा शरीरेण स्वेन राजन्यथामरः ।  
 स्वर्गं पुण्यं यथाकाममुपभुङ्क्ते यथाविधि ॥ १३३  
 एष ते भरतश्रेष्ठ यज्ञानां विधिरुत्तमः ।  
 व्याख्यातो ह्यानुपूर्व्येण उपवासफलात्मकः ॥ १३४  
 दरिद्रैर्मनुजैः पार्थ प्राप्यं यज्ञफलं यथा ।  
 उपवासमिमं कृत्वा गच्छेच्च परमां गतिम् ।  
 देवद्विजातिपूजायां रतो भरतसत्तम ॥ १३५  
 उपवासविधिस्त्वेष विस्तरेण प्रकीर्तितः ।  
 नियतेष्वप्रमत्तेषु शौचवत्सु महात्मसु ॥ १३६  
 दम्भद्रोहनिवृत्तेषु कृतबुद्धिषु भारत ।  
 अचलेष्वप्रकम्पेषु मा ते भूदत्र संशयः ॥ १३७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

१११

युधिष्ठिर उवाच ।

यद्वरं सर्वतीर्थानां तद्वीहि पितामह ।  
 यत्र वै परमं शौचं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १

भीष्म उवाच ।

सर्वाणि खलु तीर्थानि गुणवन्ति मनीषिणाम् ।  
 यत्तु तीर्थं च शौचं च तन्मे शृणु समाहितः ॥ २  
 अगाधे विमले शुद्धे सत्यतोये धृतिहृदे ।  
 स्नातव्यं मानसे तीर्थे सत्त्वमालम्ब्य शाश्वतम् ॥ ३  
 तीर्थशौचमनर्थित्वमार्दवं सत्यमार्जवम् ।  
 अहिंसा सर्वभूतानामानृशंस्यं दमः शमः ॥ ४  
 निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ।  
 शुचयस्तीर्थभूतास्ते ये भैक्षमुपभुञ्जते ॥ ५  
 तत्त्ववित्त्वनहंबुद्धिस्तीर्थं परमुच्यते ।

शौचलक्षणमेतत्ते सर्वत्रैवान्ववेक्षणम् ॥ ६  
 रजस्तमः सत्त्वमथो येषां निर्धौतमात्मनः ।  
 शौचाशौचे न ते सक्ताः स्वकार्यपरिमार्गिणः ॥ ७  
 सर्वत्यागेष्वभिरताः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ।  
 शौचेन वृत्तशौचार्थास्ते तीर्थाः शुचयश्च ते ॥ ८  
 नोदकक्लिन्नगात्रस्तु स्नात इत्यभिधीयते ।  
 स स्नातो यो दमस्नातः सबाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ ९  
 अतीतेष्वनपेक्षा ये प्राप्तेष्वर्थेषु निर्ममाः ।  
 शौचमेव परं तेषां येषां नोत्पद्यते स्पृहा ॥ १०  
 प्रज्ञानं शौचमेवेह शरीरस्य विशेषतः ।  
 तथा निष्किचनत्वं च मनसश्च प्रसन्नता ॥ ११  
 वृत्तशौचं मनःशौचं तीर्थशौचं परं हितम् ।  
 ज्ञानोत्पन्नं च यच्छौचं तच्छौचं परम मतम् ॥ १२  
 मनसाथ प्रदीपेन ब्रह्मज्ञानबलेन च ।  
 स्नाता ये मानसे तीर्थे तज्ज्ञाः क्षेत्रज्ञदर्शिनः ॥ १३  
 समारोपितशौचस्तु नित्यं भावसमन्वितः ।  
 केवलं गुणसंपन्नः शुचिरेव नरः सदा ॥ १४  
 शरीरस्थानि तीर्थानि प्रोक्तान्येतानि भारत ।  
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यानि शृणु तान्यपि ॥  
 यथा शरीरस्योद्देशाः शुचयः परिनिर्मिताः ।  
 तथा पृथिव्या भागाश्च पुण्यानि सलिलानि च ॥ १६  
 प्रार्थनाच्चैव तीर्थस्य स्नानाच्च पितृतर्पणात् ।  
 धुनन्ति पापं तीर्थेषु पूता यान्ति दिवं सुखम् ॥ १७  
 परिग्रहाच्च साधूनां पृथिव्याश्चैव तेजसा ।  
 अतीव पुण्यास्ते भागाः सलिलस्य च तेजसा ॥ १८  
 मनसश्च पृथिव्याश्च पुण्यतीर्थास्तथापरे ।  
 उभयोरेव यः स्नातः स सिद्धिं शीघ्रमाप्नुयात् ॥  
 यथा बलं क्रियाहीनं क्रिया वा बलवर्जिता ।  
 नेह साधयते कार्यं समायुक्तस्तु सिध्यति ॥ २०  
 एव शरीरशौचेन तीर्थशौचेन चान्वितः ।

ततः सिद्धिमवाप्नोति द्विविधं शौचमुत्तमम् ॥ २१

इति श्रीमद्भागवते अनुशासनपर्वणि

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

११२

युधिष्ठिर उवाच ।

पितामह महाबाहो सर्वशास्त्रविशारद ।

श्रोतुमिच्छामि मर्त्यानां संसारविधिमुत्तमम् ॥ १

केन वृत्तेन राजेन्द्र वर्तमाना नरा युधि ।

प्राप्नुवन्त्युत्तमं स्वर्गं कथं च नरकं नृप ॥ २

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः ।

प्रयान्त्यमुं लोकमितः को वै ताननुगच्छति ॥ ३

भीष्म उवाच ।

भसावायाति भगवान्बृहस्पतिरुदारधीः ।

पृच्छैनं सुमहाभागमेतद्ब्रह्म सनातनम् ॥ ४

नैतदन्येन शक्यं हि वक्तुं केनचिदद्य वै ।

वक्ता बृहस्पतिसमो न ह्यन्यो विद्यते क्वचित् ॥ ५

वैशंपायन उवाच ।

तथोः संवदतोरेवं पार्थगाङ्गेययोस्तदा ।

आजगाम विशुद्धात्मा भगवान्स बृहस्पतिः ॥ ६

ततो राजा समुत्थाय धृतराष्ट्रपुरोगमः ।

पूजामनुपमां चक्रे सर्वे ते च सभासदः ॥ ७

ततो धर्मसुतो राजा भगवन्तं बृहस्पतिम् ।

उपगम्य यथान्यायं प्रश्नं पप्रच्छ सुव्रतः ॥ ८

युधिष्ठिर उवाच ।

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।

मर्त्यस्य कः सहायो वै पिता माता सुतो गुरुः ॥

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः ।

गच्छन्त्यमुत्रलोकं वै क एनमनुगच्छति ॥ १०

बृहस्पतिरुवाच ।

एकः प्रसूतो राजेन्द्र जन्तुरेको विनश्यति ।

एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकश्च दुर्गतिम् ॥ ११

असहायः पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरुः ।

ज्ञातिसंबन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च ॥ १२

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः ।

मुहूर्तमुपतिष्ठन्ति ततो यान्ति पराङ्मुखाः ।

तैस्तच्छरीरमुत्सृष्टं धर्म एकोऽनुगच्छति ॥ १३

तस्माद्धर्मः सहायार्थं सेवितव्यः सदा नृभिः ।

प्राणी धर्मसमायुक्तो गच्छते स्वर्गतिं पराम् ।

तथैवाधर्मसंयुक्तो नरकायोपपद्यते ॥ १४

तस्मान्नायायागैरर्थैर्धर्मं सेवेत पण्डितः ।

धर्म एको मनुष्याणां सहायः पारलौकिकः ॥ १५

लोभान्मोहादनुक्रोशाद्भयाद्वाप्यबहुश्रुतः ।

नरः करोत्यकार्याणि परार्थं लोभमोहितः ॥ १६

धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रितयं जीविते फलम् ।

एतत्रयमवाप्तव्यमधर्मपरिवर्जितम् ॥ १७

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतं भगवतो वाक्यं धर्मयुक्तं परं हितम् ।

शरीरविचयं ज्ञातुं बुद्धिस्तु मम जायते ॥ १८

मृतं शरीररहितं सूक्ष्ममव्यक्तां गतम् ।

अचक्षुर्विषयं प्राप्तं कथं धर्मोऽनुगच्छति ॥ १९

बृहस्पतिरुवाच ।

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ।

बुद्धिरात्मा च सहिता धर्मं पश्यन्ति नित्यदा ॥ २०

प्राणिनामिह सर्वेषां साक्षिभूतानि चानिशम् ।

एतैश्च स ह धर्मोऽपि तं जीवमनुगच्छति ॥ २१

त्वगस्थिमांसं शुक्रं च शोणितं च महामते ।

शरीरं वर्जयन्त्येते जीवितेन विवर्जितम् ॥ २२

ततो धर्मसमायुक्तः स जीवः सुखमेधते ।

इह लोके परे चैव किं भूयः कथयामि ते ॥ २३

युधिष्ठिर उवाच ।

अनुदर्शितं भगवता यथा धर्मोऽनुगच्छति ।  
एतत्तु ज्ञातुमिच्छामि कथं रेतः प्रवर्तते ॥ २४

बृहस्पतिरुवाच ।

अन्नमश्नन्ति ये देवाः शरीरस्था नरेश्वर ।  
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनस्तथा ॥ २५  
ततस्तृप्तेषु राजेन्द्र तेषु भूतेषु पञ्चसु ।  
मनःषष्ठेषु शुद्धात्मनरेतः संपद्यते महत् ॥ २६  
ततो गर्भः संभवति स्त्रीपुंसोः पार्थ संगमे ।  
एतत्ते सर्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ २७

युधिष्ठिर उवाच ।

आख्यातमेतद्भवता गर्भः संजायते यथा ।  
यथा जातस्तु पुरुषः प्रपद्यति तदुच्यताम् ॥ २८

बृहस्पतिरुवाच ।

आसन्नमात्रः सततं तैर्भूतैरभिभूयते ।  
विप्रमुक्तश्च तैर्भूतैः पुनर्यात्यपरां गतिम् ।  
स तु भूतसमायुक्तः प्राप्नुते जीव एव ह ॥ २९  
ततोऽस्य कर्म पश्यन्ति शुभं वा यदि वाशुभम् ।  
देवताः पञ्चभूतस्थाः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ३०

युधिष्ठिर उवाच ।

त्वगस्थिमांसमुत्सृज्य तैश्च भूतैर्विवर्जितः ।  
जीवः स भगवन्कथः सुखदुःखे समश्नुते ॥ ३१

बृहस्पतिरुवाच ।

जीवो धर्मसमायुक्तः शीघ्रं रेतस्त्वमागतः ।  
स्त्रीणां पुष्पं समासाद्य सूते कालेन भारत ॥ ३२  
यमस्य पुरुषैः क्लेशं यमस्य पुरुषैर्बधम् ।  
दुःखं संसारचक्रं च नरः क्लेशं च विन्दति ॥ ३३  
इहलोके च स प्राणी जन्मप्रभृति पार्थिव ।  
स्वकृतं कर्म वै भुङ्क्ते धर्मस्य फलमाश्रितः ॥ ३४

यदि धर्मं यथाशक्ति जन्मप्रभृति सेवते ।

ततः स पुरुषो भूत्वा सेवते नित्यदा सुखम् ॥ ३५

अथान्तरा तु धर्मस्य अधर्ममुपसेवते ।

सुखस्यानन्तरं दुःखं स जीवोऽप्यधिगच्छति ॥ ३६

अधर्मेण समायुक्तो यमस्य विषयं गतः ।

महद्दुःखं समासाद्य तिर्यग्योनौ प्रजायते ॥ ३७

कर्मणा येन येनेह यस्यां योनौ प्रजायते ।

जीवो मोहसमायुक्तस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ३८

यदेतदुच्यते शास्त्रे सेतिहासे सच्छन्दसि ।

यमस्य विषयं घोरं मर्त्यो लोकः प्रपद्यते ॥ ३९

अधीत्य चतुरो वेदान्द्विजो मोहसमन्वितः ।

पतितात्प्रतिगृह्याथ खरयोनौ प्रजायते ॥ ४०

खरो जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ।

खरो मृतो बलीवर्दः सप्त वर्षाणि जीवति ॥ ४१

बलीवर्दो मृतश्चापि जायते ब्रह्मराक्षसः ।

ब्रह्मराक्षस्तु त्रीन्मासांस्ततो जायति ब्राह्मणः ॥ ४२

पतितं याजयित्वा तु कृमियोनौ प्रजायते ।

तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ॥ ४३

कृमिभावात्प्रमुक्तस्तु ततो जायति गर्दभः ।

गर्दभः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि सूकरः ।

श्वा वर्षमेकं भवति ततो जायति मानवः ॥ ४४

उपाध्यायस्य यः पापं शिष्यः कुर्यादबुद्धिमान् ।

स जीव इह संसारांस्त्रीनाप्नोति न संशयः ॥ ४५

प्राक्श्वा भवति राजेन्द्र ततः क्रव्यात्ततः खरः ।

ततः प्रेतः परिक्लिष्टः पञ्चाज्जायति ब्राह्मणः ॥ ४६

मनसापि गुरोर्भार्या यः शिष्यो याति पापकृत् ।

सोऽधमान्याति संसारानधर्मेणेह चेतसा ॥ ४७

श्वयोनौ तु स संभूतस्त्रीणि वर्षाणि जीवति ।

तत्रापि निधनं प्राप्तः कृमियोनौ प्रजायते ॥ ४८

कृमिभावमनुप्राप्तो वर्षमेकं स जीवति ।

ततस्तु निधनं प्राप्य ब्रह्मयोनौ प्रजायते ॥ ४९  
 यदि पुत्रसमं शिष्यं गुरुर्हन्त्यादकारणे ।  
 आत्मनः कामकारेण सोऽपि हंसः प्रजायते ॥ ५०  
 पितरं मातरं वापि यस्तु पुत्रोऽवमन्यते ।  
 सोऽपि राजन्मृतो जन्तुः पूर्वं जायति गर्दभः ॥ ५१  
 खरो जीवति मासांस्तु दश आ च चतुर्दश ।  
 बिडालः सप्त मासांस्तु ततो जायति मानवः ॥ ५२  
 मातापितरमाकुश्य सारिकः संप्रजायते ।  
 ताडयित्वा तु तावेव जायते कच्छपो नृप ॥ ५३  
 कच्छपो दश वर्षाणि त्रीणि वर्षाणि शल्यकः ।  
 व्यालो भूत्वा तु षण्मासांस्ततो जायति मानुषः ॥  
 भर्तृपिण्डमुपाश्रन्यो राजद्विष्टानि सेवते ।  
 सोऽपि मोहसमापन्नो मृतो जायति वानरः ॥ ५५  
 वानरो दश वर्षाणि त्रीणि वर्षाणि मूषकः ।  
 आ भूत्वा चाथ षण्मासांस्ततो जायति मानुषः ॥  
 न्यासापहर्ता तु नरो यमस्य विषयं गतः ।  
 संसाराणां शतं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ॥ ५७  
 तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ।  
 दुष्कृतस्य क्षयं गत्वा ततो जायति मानुषः ॥ ५८  
 असूयको नरश्चापि मृतो जायति शार्ङ्गकः ।  
 विश्वासहर्ता तु नरो मीनो जायति दुर्मतिः ॥ ५९  
 भूत्वा मीनोऽष्ट वर्षाणि मृगो जायति भारत ।  
 मृगस्तु चतुरो मासांस्ततश्छागः प्रजायते ॥ ६०  
 छागस्तु निधनं प्राप्य पूर्णं संवत्सरे ततः ।  
 कीटः संजायते जन्तुस्ततो जायति मानुषः ॥ ६१  
 धान्यान्यवांस्तिलान्माषान्कुलत्थान्सर्षपांश्चणान् ।  
 कलायानथ मुद्गांश्च गोधूमानतसीस्तथा ॥ ६२  
 सस्यस्यान्यस्य हर्ता च मोहाज्जन्तुरचेतनः ।  
 स जायते महाराज मूषको निरपत्रपः ॥ ६३  
 ततः प्रेत्य महाराज पुनर्जायति सूकरः ।

सूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियते नृप ॥ ६४  
 आ ततो जायते मूढः कर्मणा तेन पार्थिव ।  
 आ भूत्वा पञ्च वर्षाणि ततो जायति मानुषः ॥  
 परदाराभिर्मर्श तु कृत्वा जायति वै वृकः ।  
 आ सृगालस्ततो गृध्रो व्यालः कङ्को वकस्तथा ॥  
 भ्रातुर्भार्या तु दुर्बुद्धिर्यो धर्षयति मोहितः ।  
 पुंस्कोकिलत्वमाप्नोति सोऽपि संवत्सरं नृप ॥ ६७  
 सखिभार्या गुरोर्भार्या राजभार्या तथैव च ।  
 प्रधर्षयित्वा कामाद्यो मृतो जायति सूकरः ॥ ६८  
 सूकरः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि आविधः ।  
 पिपीलिकस्तु षण्मासान्कीटः स्यान्मासमेव च ।  
 एतानासाद्य ससारान्कृमियोनौ प्रजायते ॥ ६९  
 तत्र जीवति मासांस्तु कृमियोनौ त्रयोदश ।  
 ततोऽधर्मक्षयं कृत्वा पुनर्जायति मानुषः ॥ ७०  
 उपस्थिते विवाहे तु दाने यज्ञेऽपि वामिभो ।  
 मोहात्करोति यो विघ्नं स मृतो जायते कृमिः ॥  
 कृमिर्जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ।  
 अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायति मानुषः ॥ ७२  
 पूर्वं दत्त्वा तु यः कन्यां द्वितीये संप्रयच्छति ।  
 सोऽपि राजन्मृतो जन्तुः कृमियोनौ प्रजायते ॥ ७३  
 तत्र जीवति वर्षाणि त्रयोदश युधिष्ठिर ।  
 अधर्मसक्षये युक्तस्ततो जायति मानुषः ॥ ७४  
 देवकार्यमुपाकृत्य पितृकार्यसथापि च ।  
 अनिर्वाप्य समश्नन्वै ततो जायति वायसः ॥ ७५  
 वायसो दश वर्षाणि ततो जायति कुक्कुटः ।  
 जायते लवकश्चापि मासं तस्मात् मानुषः ॥ ७६  
 ज्येष्ठ पितृसमं चापि भ्रातरं योऽवमन्यते ।  
 सोऽपि मृत्युमुपागम्य क्रौञ्चयोनौ प्रजायते ॥ ७७  
 क्रौञ्चो जीवति मासांस्तु दश द्वौ सप्त पञ्च च ।  
 ततो निधनमापन्नो मानुषत्वमुपाश्रुते ॥ ७८

वृषलो ब्राह्मणी गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ।  
 तत्रापत्यं समुत्पाद्य ततो जायति मूषकः ॥ ७९  
 कृतघ्नस्तु मृतो राजन्यस्य विषयं गतः ।  
 यमस्य विषये कुट्टैर्वयं प्राप्नोति दारुणम् ॥ ८०  
 पट्टिमं मुद्गरं शूलमग्निकुम्भं च दारुणम् ।  
 असिपत्रवनं घोरं बालुकां कूटशाल्मलीम् ॥ ८१  
 एताश्चान्याश्च बह्वीः स यमस्य विषयं गतः ।  
 यातनाः प्राप्य तत्रोग्रास्ततो वध्यति भारत ॥ ८२  
 संसारचक्रमासाद्य कृमियोनौ प्रजायते ।  
 कृमिर्भवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ।  
 ततो गर्भं समासाद्य तत्रैव म्रियते शिशुः ॥ ८३  
 ततो गर्भशतैर्जन्तुर्बहुभिः संप्रजायते ।  
 संसारांश्च बहून्गत्वा ततस्तिर्यक्प्रजायते ॥ ८४  
 मृतो दुःखमनुप्राप्य बहुवर्षगणानिह ।  
 अपुनर्भावि संयुक्तस्ततः कूर्मः प्रजायते ॥ ८५  
 अशस्त्रं पुरुषं हत्वा सशस्त्रः पुरुषाधमः ।  
 अर्थार्थी यदि वा वैरी स मृतो जायते खरः ॥ ८६  
 खरो जीवति वर्षे द्वे ततः शस्त्रेण वध्यते ।  
 स मृतो मृगयो नौ तु नित्योद्विग्नोऽभिजायते ॥ ८७  
 मृगो वध्यति शस्त्रेण गते संवत्सरे तु सः ।  
 हतो मृगस्ततो मीनः सोऽपि जालेन वध्यते ॥ ८८  
 मासे चतुर्थे संप्राप्ते श्वापदः संप्रजायते ।  
 श्वापदो दश वर्षाणि द्वीपी वर्षाणि पञ्च च ॥ ८९  
 ततस्तु निधनं प्राप्तः कालपर्यायचोदितः ।  
 अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायति मानुषः ॥ ९०  
 स्त्रियं हत्वा तु दुर्बुद्धिर्यमस्य विषय गतः ।  
 बहून्केशान्समासाद्य संसारांश्चैव विंशतिम् ॥ ९१  
 ततः पश्चान्महाराज कृमियोनौ प्रजायते ।  
 कृमिर्विंशतिवर्षाणि भूत्वा जायति मानुषः ॥ ९२  
 भोजनं चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः ।

मक्षिकासंघवशगो बहून्मासान्भवत्युत ।  
 ततः पापक्षयं कृत्वा मानुषत्वमवाप्नुते ॥ ९३  
 वाद्यं हत्वा तु पुरुषो मशकः संप्रजायते ।  
 तथा पिण्यालसंमिश्रमशनं चोरयेन्नरः ।  
 स जायते बभ्रुसमो दारुणो मूषको नरः ॥ ९४  
 लवणं चोरयित्वा तु चीरीवाकः प्रजायते ।  
 दधि हत्वा बक्रश्चापि प्लवो मत्स्यानसंस्कृतान् ॥ ९५  
 चोरयित्वा पयश्चापि बलाका संप्रजायते ।  
 यस्तु चोरयते तैलं तैलपायी प्रजायते ।  
 चोरयित्वा तु दुर्बुद्धिर्मधु दंशः प्रजायते ॥ ९६  
 अथो हत्वा तु दुर्बुद्धिर्वायसो जायते नरः ।  
 पायसं चोरयित्वा तु तित्तिरित्वमवाप्नुते ॥ ९७  
 हत्वा पैष्टमपूपं च कुम्भोलूकः प्रजायते ।  
 फलं वा मूलकं हत्वा अपूपं वा पिपीलिकः ॥ ९८  
 कांस्यं हत्वा तु दुर्बुद्धिर्हारीतो जायते नरः ।  
 राजतं भाजनं हत्वा कपोतः संप्रजायते ॥ ९९  
 हत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते ।  
 क्रौञ्चः कार्पासिकं हत्वा मृतो जायति मानवः ॥  
 चोरयित्वा नरः पट्टं त्वाविकं वापि भारत ।  
 क्षौमं च वस्त्रमादाय शशो जन्तुः प्रजायते ॥ १०१  
 वर्णान्हत्वा तु पुरुषो मृतो जायति बर्हिणः ।  
 हत्वा रक्तानि वस्त्राणि जायते जीवजीवकः ॥ १०२  
 वर्णकार्दीस्तथा गन्धांश्चोरयित्वा तु मानवः ।  
 लुच्छुन्दरित्वमाप्नोति राजल्लोभपरायणः ॥ १०३  
 विश्वासेन तु निक्षिप्तं यो निह्वति मानवः ।  
 स गतासुर्नरस्तादृङ्मात्स्योनौ प्रजायते ॥ १०४  
 मात्स्योनिमनुप्राप्य मृतो जायति मानुषः ।  
 मानुषत्वमनुप्राप्य क्षीणायुरुपपद्यते ॥ १०५  
 पापानि तु नरः कृत्वा तिर्यग्जायति भारत ।  
 न चात्मनः प्रमाणं ते धर्मं जानन्ति किञ्चन ॥

ये पापानि नराः कृत्वा निरस्यन्ति द्वैः सदा ।  
 सुखदुःखसमायुक्ता व्याधितास्ते भवन्त्युत ॥ ०७  
 असंवासाः प्रजायन्ते म्लेच्छाश्चापि न संशयः ।  
 नराः पापसमाचारा लोभमोहसमन्विताः ॥ १०८  
 वर्जयन्ति च पापानि जन्मप्रभृति ये नराः ।  
 अरोगा रूपवन्तस्ते धनिनश्च भवन्त्युत ॥ १०९  
 स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन कृत्वा पापमवाप्नुयुः ।  
 एतेषामेव जन्तूनां पत्नीत्वमुपयान्ति ताः ॥ ११०  
 परस्वहरणे दोषाः सर्व एव प्रकीर्तिताः ।  
 एतद्वै लेशमात्रेण कथितं ते मयानघ ।  
 अपरस्मिन्कथायोगे भूयः श्रोष्यसि भारत ॥ १११  
 एतन्मया महाराज ब्रह्मणो वदतः पुरा ।  
 सुरर्षीणां श्रुतं मध्ये पृष्ठश्चापि यथातथम् ॥ ११२  
 मयापि तव कात्स्न्येन यथावदनुवर्णितम् ।  
 एतच्छ्रुत्वा महाराज धर्मे कुरु मनः सदा ॥ ११३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

११३

युधिष्ठिर उवाच ।

अधर्मस्य गतिर्ब्रह्मन्कथिता मे त्वयानघ ।  
 धर्मस्य तु गतिं श्रोतुमिच्छामि वदतां वर ।  
 कृत्वा कर्माणि पापानि कथं यान्ति शुभां गतिम् ॥

बृहस्पतिरुवाच ।

कृत्वा पापानि कर्माणि अधर्मवशमागतः ।  
 मनसा विपरीतेन निरयं प्रतिपद्यते ॥ २  
 मोहाद्धर्मं यः कृत्वा पुनः समनुत्पद्यते ।  
 मनःसमाधिसंयुक्तो न स सेवेत दुष्कृतम् ॥ ३  
 यथा यथा नरः सम्यगधर्ममनुभाषते ।  
 समाहितेन मनसा विमुच्यति तथा तथा ।

भुजंग इव निर्मोकात्पूर्वमुक्ताज्जराव्वितात् ॥ ४  
 अदत्त्वापि प्रदानानि विविधानि समाहितः ।  
 मनःसमाधिसंयुक्तः सुगतिं प्रतिपद्यते ॥ ५  
 प्रदानानि तु वक्ष्यामि यानि दत्त्वा युधिष्ठिर ।  
 नरः कृत्वाप्यकार्याणि तदा धर्मेण युज्यते ॥ ६  
 सर्वेषामेव दानानामन्नं श्रेष्ठमुदाहृतम् ।  
 पूर्वमन्नं प्रदातव्यमृजुना धर्ममिच्छता ॥ ७  
 प्राणा ह्यन्नं मनुष्याणां तस्माज्जन्तुश्च जायते ।  
 अन्ने प्रतिष्ठिता लोकास्तस्मादन्नं प्रकाशते ॥ ८  
 अन्नमेव प्रशंसन्ति देवर्षिपितृमानवाः ।  
 अन्नस्य हि प्रदानेन स्वर्गमाप्नोति कौशिकः ॥ ९  
 न्यायलब्धं प्रदातव्यं द्विजेभ्यो ह्यन्नमुत्तमम् ।  
 स्वाध्यायसमुपेतेभ्यः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १०  
 यस्य ह्यन्नमुपाश्रन्ति ब्राह्मणानां शता दश ।  
 हृष्टेन मनसा दत्तं न स तिर्यग्गतिर्भवेत् ॥ ११  
 ब्राह्मणानां सहस्राणि दश भोज्यं नरर्षभ ।  
 नरोऽधर्मात्प्रमुच्येत पापेष्वभिरतः सदा ॥ १२  
 भैक्षेणान्नं समाहृत्य विप्रो वेदपुरस्कृतः ।  
 स्वाध्यायनिरते विप्रे दत्त्वेह सुखमेधते ॥ १३  
 अहिंसन्ब्राह्मणं नित्यं न्यायेन परिपाल्य च ।  
 क्षत्रियस्तरसा प्राप्तमन्नं यो वै प्रयच्छति ॥ १४  
 द्विजेभ्यो वेदवृद्धेभ्यः प्रयतः सुसमाहितः ।  
 तेनापोहति धर्मात्मा दुष्कृतं कर्म पाण्डव ॥ १५  
 षड्भागपरिशुद्धं च कृपेर्भागमुपार्जितम् ।  
 वैश्यो ददद्द्विजातिभ्यः पापेभ्यः परिमुच्यते ॥ १६  
 अवाप्य प्राणसंदेहं कार्कश्येन समार्जितम् ।  
 अन्नं दत्त्वा द्विजातिभ्यः शूद्रः पापात्प्रमुच्यते ॥ १७  
 औरसेन बलेनान्नमर्जयित्वाविहिंसकः ।  
 यः प्रयच्छति विप्रेभ्यो न स दुर्गाणि सेवते ॥ १८  
 न्यायेनावाप्तमन्नं तु नरो लोभविवर्जितः ।



द्विजेभ्यो वेदवृद्धेभ्यो दत्त्वा पापात्प्रमुच्यते ॥ १९  
 अन्नमूर्जस्करं लोके दत्त्वोर्जस्वी भवेन्नरः ।  
 सतां पन्थानमाश्रित्य सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ २०  
 दानकृद्भिः कृतः पन्था येन यान्ति मनीषिणः ।  
 ते स्म प्राणस्य दातारस्तेभ्यो धर्मः सनातनः ॥ २१  
 सर्वावस्थं मनुष्येण न्यायेनान्नमुपार्जितम् ।  
 कार्यं पात्रगतं नित्यमन्नं हि परमा गतिः ॥ २२  
 अन्नस्य हि प्रदानेन नरो दुर्गं न सेवते ।  
 तस्मादन्नं प्रदातव्यमन्यायपरिवर्जितम् ॥ २३  
 यतेद्ब्राह्मणपूर्वं हि भोक्तुमन्नं गृही सदा ।  
 अवन्ध्यं दिवसं कुर्यादन्नदानेन सानवः ॥ २४  
 भोजयित्वा दशशतं नरो वेदविदां नृप ।  
 न्यायविद्धर्मविदुषामितिहासविदां तथा ॥ २५  
 न याति नरकं घोरं संसारांश्च न सेवते ।  
 सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते फलम् ॥ २६  
 एवं सुखसमायुक्तो रमते विगतज्वरः ।  
 रूपवान्कीर्तिमांश्चैव धनवांश्चोपपद्यते ॥ २७  
 एतत्ते सर्वमाख्यातमन्नदानफलं महत् ।  
 मूलमेतद्धि धर्माणां प्रदानस्य च भारत ॥ २८

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

११४

युधिष्ठिर उवाच ।

अहिंसा वैदिकं कर्म ध्यानमिन्द्रियसंयमः ।  
 तपोऽथ गुरुश्रूपा किं श्रेयः पुरुषं प्रति ॥ १

बृहस्पतिरुवाच ।

सर्वाण्येतानि धर्मस्य पृथग्द्वाराणि सर्वशः ।  
 शृणु संकीर्त्यमानानि षडेव भरतर्षभ ॥ २  
 हन्त निःश्रेयसं जन्तोरहं वक्ष्याम्यनुत्तमम् ।  
 अहिंसापाश्रयं धर्मं यः साधयति वै नरः ॥ ३

त्रीन्दोषान्सर्वभूतेषु निधाय पुरुषः सदा ।  
 कामक्रोधौ च संयम्य ततः सिद्धिमवाप्नुते ॥ ४  
 अहिंसकानि भूतानि दण्डेन विनिहन्ति यः ।  
 आत्मनः सुखमन्विच्छन्न स प्रेत्य सुखी भवेत् ॥ ५  
 आत्मोपमश्च भूतेषु यो वै भवति पूरुषः ।  
 न्यस्तदण्डो जितक्रोधः स प्रेत्य सुखमेधते ॥ ६  
 सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतानि पश्यतः ।  
 देवापि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः ॥ ७  
 न तत्परस्य संदयात्प्रतिकूलं यदात्मनः ।  
 एष संक्षेपतो धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते ॥ ८  
 प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये ।  
 आत्म्यौपम्येन पुरुषः समाधिमाधिगच्छति ॥ ९

यथा परः प्रक्रमतेऽपरेषु

तथापरः प्रक्रमते परस्मिन् ।

एषैव तेऽस्तूपमा जीवलोके

यथा धर्मो नैपुणेनोपदिष्टः ॥ १०

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्त्वा तं सुरगुरुर्वर्मराजं युधिष्ठिरम् ।  
 दिवमाचक्रमे धीमान्पश्यतामेव नस्तदा ॥ ११

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

११५

वैशंपायन उवाच ।

ततो युधिष्ठिरो राजा शरतरूपे पितामहम् ।  
 पुनरेव महातेजाः पप्रच्छ वदतां वरम् ॥ १  
 ऋषयो ब्राह्मणा देवाः प्रशंसन्ति महामते ।  
 अहिंसालक्षणं धर्मं वेदप्रामाण्यदर्शनात् ॥ २  
 कर्मणा मनुजः कुर्वीहंसां पार्थिवसत्तम ।  
 वाचा च मनसा चैव कथं दुःखात्प्रमुच्यते ॥ ३

भीष्म उवाच ।

चतुर्विधेयं निर्दिष्टा अहिंसा ब्रह्मवादिभिः ।  
 एषैकतोऽपि विभ्रष्टा न भग्न्यरिसूदन ॥ ४  
 यथा सर्वश्चतुष्पादस्त्रिभिः पादैर्न तिष्ठति ।  
 तथैवेय महीपाल प्रोच्यते कारणैस्त्रिभिः ॥ ५  
 यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम् ।  
 सर्वाण्येवापिधीयन्ते पदजातानि कौञ्जरे ।  
 एवं लोकेष्वहिंसा तु निर्दिष्टा धर्मतः परा ॥ ६  
 कर्मणा लिप्यते जन्तुर्वाचा च मनसैव च ॥ ७  
 पूर्वं तु मनसा त्यक्त्वा तथा वाचाथ कर्मणा ।  
 त्रिकारणं तु निर्दिष्टं श्रूयते ब्रह्मवादिभिः ॥ ८  
 मनोवाचि तथास्वादे दोषा ह्येषु प्रतिष्ठिताः ।  
 न भक्षयन्त्यसौ मांसं तपोयुक्ता मनीषिणः ॥ ९  
 दोषास्तु भक्षणे राजन्मांसस्येह निबोध मे ।  
 पुत्रमांसोपमं जानन्वादत्ते यो विचेतनः ॥ १०  
 मातापितृसमायोगे पुत्रत्वं जायते यथा ।  
 रसं च प्रति जिह्वाया प्रज्ञानं जायते तथा ।  
 तथा शास्त्रेषु नियतं रागो ह्यास्वादितोद्भवेत् ॥ ११  
 असंस्कृताः संस्कृताश्च लवणालवणास्तथा ।  
 प्रज्ञायन्ते यथा भावास्तथा चित्तं निरुध्यते ॥ १२  
 भेरीशङ्खमृदङ्गाद्यांस्तन्त्रीशब्दाश्च पुष्कलान् ।  
 निषेविष्यन्ति वै मन्दा मांसभक्षाः कथं नराः ॥ १३  
 अचिन्तितमनुदिष्टमसकल्पितमेव च ।  
 रसं गृह्णाभिभूता वै प्रशंसन्ति फलार्थिनः ।  
 प्रशंसा ह्येव मांसस्य दोषकर्मफलान्विता ॥ १४  
 जीवितं हि परित्यज्य बहवः साधवो जनाः ।  
 स्वमांसैः परमासानि परिपाल्य दिवं गताः ॥ १५  
 एवमेषा महाराज चतुर्भिः कारणैर्वृता ।

अहिंसा तव निर्दिष्टा सर्वधर्मार्थसंहिता ॥ १६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

पञ्चाधिरुज्जतमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

११६

युधिष्ठिर उवाच ।

अहिंसा परमो धर्म इत्युक्तं बहुशस्त्वया ।  
 श्राद्धेषु च भवानाह पितृनामिपकाङ्क्षिणः ॥ १  
 मांसैर्बहुविधैः प्रोक्तस्त्वया श्राद्धविधिः पुरा ।  
 अहत्वा च कृतो मांसमेवमेतद्विरुध्यते ॥ २  
 जातो नः संशयो धर्मे मांसस्य परिवर्जने ।  
 दोषो भक्षयतः कः स्यात्कश्चाभक्षयतो गुणः ॥ ३  
 हत्वा भक्षयतो वापि परेणोपहतस्य वा ।  
 हन्याद्वा यः परस्वार्थे क्रीत्वा वा भक्षयेन्नरः ॥ ४  
 एतदिच्छामि तत्त्वेन कथ्यमानं त्वयानघ ।  
 निश्चयेन चिकीर्षामि धर्ममेतं सनातनम् ॥ ५  
 कथमायुरवाप्नोति कथं भवति सत्त्ववान् ।  
 कथमव्यङ्गतामेति लक्षण्यो जायते कथम् ॥ ६

भीष्म उवाच ।

मांसस्य भक्षणे राजन्योऽधर्मः कुरुपुंगव ।  
 तं मे शृणु यथातत्त्वं यश्चास्य विधिरुत्तमः ॥ ७  
 रूपमव्यङ्गतामायुर्बुद्धि सत्त्व बलं स्मृतिम् ।  
 प्राप्तुकामैर्नरैर्हिंसा वर्जिता वै कृतात्मभिः ॥ ८  
 ऋषीणामत्र संवादो बहुशः कुरुपुंगव ।  
 बभूव तेषां तु मतं यत्तच्छृणु युधिष्ठिर ॥ ९  
 यो यजेताश्चमेधेन मांसि मांसि यतव्रतः ।  
 वर्जयेन्मधु मांसं च सममेतद्युधिष्ठिर ॥ १०  
 सप्तर्षयो बालखिल्यास्तथैव च मरीचिपाः ।  
 अमांसभक्षणं राजन्प्रशंसन्ति मनीषिणः ॥ ११  
 न भक्षयति यो मांसं न हन्यान्न च घातयेत् ।  
 तं मित्रं सर्वभूतानां मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ १२

अधृष्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु ।  
 साधूनां संमतो नित्यं भवेन्मासस्य वर्जनात् ॥ १३  
 स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।  
 नारदः प्राह धर्मात्मा नियतं सोऽवसीदति ॥ १४  
 ददाति यजेते चापि तपस्वी च भवत्यपि ।  
 मधुमांसनिवृत्त्येति प्राहैवं स बृहस्पतिः ॥ १५  
 मांसि मास्यश्चमेधेन यो यजेत शतं समाः ।  
 न खादति च यो मांसं सममेतन्मतं मम ॥ १६  
 सदा यजति सत्रेण सदा दानं प्रयच्छति ।  
 सदा तपस्वी भवति मधुमांसस्य वर्जनात् ॥ १७  
 सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वयज्ञाश्च भारत ।  
 यो भक्षयित्वा मांसानि पञ्चादपि निवर्तते ॥ १८  
 दुष्करं हि रसज्ञेन मांसस्य परिवर्जनम् ।  
 चतुर्ब्रतमिदं श्रेष्ठं सर्वप्राण्यभयप्रदम् ॥ १९  
 सर्वभूतेषु यो विद्वान्ददात्यभयदक्षिणाम् ।  
 दाता भवति लोके स प्राणानां नात्र संशयः ॥ २०  
 एवं वै परमं धर्मं प्रशसन्ति मनीषिणः ।  
 प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा ॥ २१  
 आत्मौपम्येन गन्तव्यं बुद्धिमद्भिर्महात्मभिः ।  
 मृत्युतो भयमस्तीति विदुषां भूतिमिच्छताम् ॥ २२  
 किं पुनर्हन्यमानानां तरसा जीवितार्थिनाम् ।  
 अरोगाणामपापानां पापैर्मांसोपजीविभिः ॥ २३  
 तस्माद्विद्धि महाराज मांसस्य परिवर्जनम् ।  
 धर्मस्यायतनं श्रेष्ठं स्वर्गस्य च सुखस्य च ॥ २४  
 अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परं तपः ।  
 अहिंसा परमं सत्यं ततो धर्मः प्रवर्तते ॥ २५  
 न हि मांसं तृणात्काष्ठादुपलाद्वापि जायते ।  
 हत्वा जन्तुं ततो मांसं तस्माद्दोषोऽस्य भक्षणे ॥ २६  
 स्वाहास्वधामृतभुजो देवाः सत्यार्जवप्रियाः ।  
 क्रव्यादान् राक्षसान्विद्धि जिह्वानृतपरायणान् ॥ २७

कान्तारेष्वथ घोरेषु दुर्गेषु गहनेषु च ।  
 रात्रावहनि संध्यासु चत्वरेषु सभासु च ।  
 अमांसभक्षणे राजन्भयमन्ते न गच्छति ॥ २८  
 यदि चेत्खादको न स्यान्न तदा घातको भवेत् ।  
 घातकः खादकार्थाय तं घातयति वै नरः ॥ २९  
 अभक्ष्यमेतदिति वा इति हिंसा निवर्तते ।  
 खादकार्थमतो हिंसा मृगादीनां प्रवर्तते ॥ ३०  
 यस्माद्भुजति चैवायुर्हिंसकानां महाद्युते ।  
 तस्माद्विवर्जयेन्मांसं य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ३१  
 त्रातारं नाधिगच्छन्ति रौद्राः प्राणिविहिंसकाः ।  
 उद्वेजनीया भूतानां यथा व्यालमृगास्तथा ॥ ३२  
 लोभाद्वा बुद्धिमोहाद्वा बलवीर्यार्थमेव च ।  
 संसर्गाद्वाथ पापानामधर्मरुचिता नृणाम् ॥ ३३  
 स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।  
 उद्विग्नवासे वसति यत्र तत्राभिजायते ॥ ३४  
 धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत् ।  
 मांसस्याभक्षणं प्राहुर्नियताः परमर्षयः ॥ ३५  
 इदं तु खलु कौन्तेय श्रुतमासीत्पुरा मया ।  
 मार्कण्डेयस्य वदतो ये दोषा मांसभक्षणे ॥ ३६  
 यो हि खादति मांसानि प्राणिनां जीवितार्थिनाम् ।  
 हतानां वा मृतानां वा यथा हन्ता तथैव सः ॥ ३७  
 धनेन क्रायको हन्ति खादकश्चोपभोगतः ।  
 घातको वधबन्धाभ्यामित्येष त्रिविधो वधः ॥ ३८  
 अखादन्ननुमोदंश्च भावदोषेण मानवः ।  
 योऽनुमन्येत हन्तव्यं सोऽपि दोषेण लिप्यते ॥ ३९  
 अधृष्यः सर्वभूतानामायुष्मान्नीरुजः सुखी ।  
 भवत्यभक्ष्यन्मांसं दयावान्प्राणिनामिह ॥ ४०  
 हिरण्यदानैर्गोदानैर्भूमिदानैश्च सर्वशः ।  
 मांसस्याभक्षणे धर्मो विशिष्टः स्यादिति श्रुतिः ॥ ४१  
 अप्रोक्षितं वृथामांसं विधिहीनं न भक्षयेत् ।

भक्षयन्निरयं याति नरो नास्त्यत्र संशयः ॥ ४२  
 प्रोक्षिताभ्युक्षितं मांसं तथा ब्राह्मणकाम्यया ।  
 अल्पदोषमिह ज्ञेयं विपरीते तु लिप्यते ॥ ४३  
 खादकस्य कृते जन्तुं यो हन्यात्पुरुषाधमः ।  
 महादोषकरस्तत्र खादको न तु घातकः ॥ ४४  
 इज्यायज्ञश्रुतिकृतैर्यो मार्गैरबुधो जनः ।  
 हन्याज्जन्तुं मांसगृह्णी स वै नरकभाङ्गरः ॥ ४५  
 भक्षयित्वा तु यो मांसं पश्चादपि निवर्तते ।  
 तस्यापि सुमहान्धर्मो यः पापाद्विनिवर्तते ॥ ४६  
 आहर्ता चानुमन्ता च विशस्ता क्रयविक्रयी ।  
 संस्कर्ता चोपभोक्ता च घातकाः सर्व एव ते ॥ ४७  
 इदमन्यत्तु वक्ष्यामि प्रमाणं विधिनिर्मितम् ।  
 पुराणमृषिभिर्जुष्टं वेदेषु परिनिश्चितम् ॥ ४८  
 प्रवृत्तिलक्षणे धर्मे फलार्थिभिरभिद्रुते ।  
 यथोक्तं राजशार्दूल न तु तन्मोक्षकाङ्क्षिणाम् ॥ ४९  
 हविर्यत्संस्कृतं मन्त्रैः प्रोक्षिताभ्युक्षितं शुचि ।  
 वेदोक्तेन प्रमाणेन पितृणां प्रक्रियासु च ।  
 अतोऽन्यथा वृथामांसमभक्ष्यं मनुरब्रवीत् ॥ ५०  
 अस्वर्ग्यमयशस्यं च रक्षोवद्भरतर्षभ ।  
 विधिना हि नराः पूर्वं मांसं राजन्नभक्ष्यन् ॥ ५१  
 यः इच्छेत्पुरुषोऽत्यन्तमात्मानं निरुपद्रवम् ।  
 स वर्जयेत् मांसानि प्राणिनामिह सर्वशः ॥ ५२  
 श्रूयते हि पुराकल्पे नृणां ब्रीहिमयः पशुः ।  
 येनायजन्त यज्वानः पुण्यलोकपरायणाः ॥ ५३  
 ऋषिभिः संशयं पृष्ठो वसुश्चेदिपतिः पुरा ।  
 अभक्ष्यमिति मांसं स ग्राह भक्ष्यमिति प्रभो ॥ ५४  
 आकाशान्मेदिनीं प्राप्तस्ततः स पृथिवीपतिः ।  
 एतदेव पुनश्चोक्त्वा विवेश धरणीतलम् ॥ ५५  
 प्रजानां हितकामेन त्वगस्त्येन महात्मना ।  
 आरण्याः सर्वदैवत्याः प्रोक्षितास्तपसा मृगाः ॥ ५६

क्रिया ह्येवं न हीयन्ते पितृदैवतसंश्रिताः ।  
 प्रीयन्ते पितरश्चैव न्यायतो मांसतर्पिताः ॥ ५७  
 इदं तु शृणु राजेन्द्र कीर्त्यमान मयानघ ।  
 अभक्षणे सर्वसुख मांसस्य मनुजाधिप ॥ ५८  
 यस्तु वर्षशत पूर्णं तपस्तप्येत्सुदारुणम् ।  
 यश्चैकं वर्जयेन्मांसं सममेतन्मत मम ॥ ५९  
 कौमुदे तु विशेषेण शुद्धपक्षे नराधिप ।  
 वर्जयेत्सर्वमांसानि धर्मां ह्यत्र विधीयते ॥ ६०  
 चतुरो वार्षिकान्मासान्धो मांसं परिवर्जयेत् ।  
 चत्वारि भद्राण्याप्नोति कीर्तिमायुर्यशो बलम् ॥ ६१  
 अथ वा मासमप्येकं सर्वमांसान्यभक्ष्यन् ।  
 अतीत्य सर्वदुःखानि सुखी जीवेन्निरामयः ॥ ६२  
 ये वर्जयन्ति मांसानि मासशः पक्षशोऽपि वा ।  
 तेषां हिंसानिवृत्तानां ब्रह्मलोको विधीयते ॥ ६३  
 मांसं तु कौमुदं पक्षं वर्जितं पार्थ राजभिः ।  
 सर्वभूतात्मभूतैस्तैर्विज्ञातार्थपरावरैः ॥ ६४  
 नाभागेनाम्बरीषेण गयेन च महात्मना ।  
 आयुषा चानरण्येन दिलीपश्चुपूरुभिः ॥ ६५  
 कार्तवीर्यानिरुद्धाभ्यां नहुषेण ययातिना ।  
 नृगेण विष्वगश्वेन तथैव शशबिन्दुना ।  
 युवनाश्वेन च तथा शिविनौशीनरेण च ॥ ६६  
 श्येनचित्रेण राजेन्द्र सोमकेन वृकेण च ।  
 रैवतेन रन्तिदेवेन वसुना सृञ्जयेन च ॥ ६७  
 दुःषन्तेन करूपेण रामालर्कनलैस्तथा ॥ ।  
 विरूपाश्वेन निमिना जनकेन च धीमता ॥ ६८  
 सिलेन पृथुना चैव वीरसेनेन चैव ह ।  
 इक्ष्वाकुणा शंभुना च श्वेतेन सगरेण च ॥ ६९  
 एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र पुरा मांसं न भक्षितम् ।  
 शारदं कौमुदं मांसं ततस्ते स्वर्गमाप्नुवन् ॥ ७०  
 ब्रह्मलोके च तिष्ठन्ति ज्वलमानाः श्रियान्विताः ।

उपास्यमाना गन्धर्वैः स्त्रीसहस्रसमन्विताः ॥ ७१  
तदेतदुत्तमं धर्ममहिंसालक्षण शुभम् ।  
ये चरन्ति महान्मानो नाकपृष्ठे वसन्ति ते ॥ ७२  
मधु मांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह धार्मिकाः ।  
जन्मप्रभृति मद्यं च सर्वे ते मुनयः स्मृताः ।  
विशिष्टां ज्ञातिषु च लभन्ते नात्र सशयः ॥ ७३  
आपन्नश्चापदो मुच्येद्बुद्धो मुच्येत बन्धनात् ।  
मुच्येतथातुरो रोगाहुः खान्मुच्येत दुःखितः ॥ ७४  
तिर्यग्योति न गच्छेत रूपवांश्च भवेन्नरः ।  
बुद्धिमान् वै कुरुश्रेष्ठ प्राप्नुयाच्च महद्यशः ॥ ७५  
एतत्ते कथितं राजन्मांसस्य परिवर्जने ।  
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च विधानमृषिनिर्मितम् ॥ ७६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

११७

युधिष्ठिर उवाच ।

इमे वै मानवा लोके भृशं मांसस्य गृद्धिनः ।  
विसृज्य भक्षान्विविधान्यथा रक्षोगणास्तथा ॥ १  
नापूपान्विविधाकाराऽऽकाङ्क्षाणि विविधानि च ।  
षाडवान्रसयोगांश्च तथेच्छन्ति यथालिपम् ॥ २  
तत्र मे बुद्धिरत्रैव विसर्गे परिमुह्यते ।  
न मन्ये रसतः किञ्चिन्मांसतोऽस्तीह किञ्चन ॥ ३  
तदिच्छामि गुणाऽश्रोतुं मांसस्याभक्षणेऽपि वा ।  
भक्षणे चैव ये दोषास्तांश्चैव पुरुषर्षभ ॥ ४  
सर्वं तत्त्वेन धर्मज्ञ यथावदिह धर्मतः ।  
किं वा भक्ष्यमभक्ष्यं वा सर्वमेतद्वदस्व मे ॥ ५

भीष्म उवाच ।

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।  
न मांसात्परमत्रान्यद्रसतो विद्यते भुवि ॥ ६  
क्षतक्षीणाभितप्तानां ग्राम्यधर्मरताश्च ये ।

अध्वना कर्शितानां च न मांसाद्विद्यते परम् ॥ ७  
सद्यो वर्धयति प्राणान्पुष्टिमय्यां ददाति च ।  
न भक्षोऽभ्यधिकः कश्चिन्मांसादस्ति परंतप ॥ ८  
विवर्जने तु बहवो गुणाः कौरवनन्दन ।  
ये भवन्ति मनुष्याणां तान्मे निगदतः शृणु ॥ ९  
स्वमांस परमांसैर्यो विवर्धयितुमिच्छति ।  
नास्ति क्षुद्रतरस्तस्मान्न नृशसतरो नरः ॥ १०  
न हि प्राणात्प्रियतरं लोके किञ्चन विद्यते ।  
तस्मादयां नरः कुर्याद्यथात्मनि तथा परे ॥ ११  
शुक्राच्च तात संभूतिर्मांसस्येह न संशयः ।  
भक्षणे तु महादोषो वधेन सह कल्पते ॥ १२  
अहिंसाभक्षणो धर्म इति वेदविदो विदुः ।  
यदहिंस्त्रं भवेत्कर्म तत्कुर्यादात्मवान्नरः ॥ १३  
पितृदैवतयज्ञेषु प्रोक्षितं हविरुच्यते ।  
विधिना वेददृष्टेन तद्भुक्त्वेह न दुष्यति ॥ १४  
यज्ञार्थे पशवः सृष्टा इत्यपि श्रूयते श्रुतिः ।  
अतोऽन्यथा प्रवृत्तानां राक्षसो विधिरुच्यते ॥ १५  
क्षत्रियाणां तु यो दृष्टो विधिस्तमपि मे शृणु ।  
वीर्येणोपार्जितं मांसं यथा खादन्न दुष्यति ॥ १६  
आरण्याः सर्वदैवत्याः प्रोक्षिताः सर्वशो मृगाः ।  
अगस्त्येन पुरा राजन्मृगया येन पूज्यते ॥ १७  
नात्मानमपरित्यज्य मृगया नाम विद्यते ।  
समतामुपसंगम्य रूपं हन्यान्न वा नृप ॥ १८  
अतो राजर्षयः सर्वे मृगयां यान्ति भारत ।  
लिप्यन्ते न हि दोषेण न चैतत्पातकं विदुः ॥ १९  
न हि तत्परमं किञ्चिदिह लोके परत्र च ।  
यत्सर्वेष्विह लोकेषु दया कौरवनन्दन ॥ २०  
न भयं विद्यते जातु नरस्येह दयावतः ।  
दयावतामिमे लोकाः परे चापि तपस्विनाम् ॥ २१  
अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापरः ।

अभयं तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुमः ॥ २२  
क्षतं च स्वलितं चैव पतितं छिष्टमाहतम् ।  
सर्वभूतानि रक्षन्ति समेषु विधमेषु च ॥ २३  
नैनं व्यालमृगा व्रन्ति न पिशाचा न राक्षसाः ।  
मुच्यन्ते भयकालेषु मोक्षयन्ति च ये परान् ॥ २४  
प्राणदानात्परं दानं न भूतं न अजिघ्र्यति ।  
न ह्यात्मनः प्रियतरः कश्चेदस्तीति निश्चितम् ॥ २५  
अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत ।  
मृत्युकाले हि भूतानां सद्यो जायति वेपथुः ॥ २६  
जातिजन्मजरादुःखे नित्यं संसारसागरे ।  
जन्तवः परिवर्तन्ते मरणादुद्दिजन्ते च ॥ २७  
गर्भवासेषु पच्यन्ते क्षाराम्लकटुकै रसैः ।  
मूत्रश्लेष्मपुरीषाणां स्पर्शैश्च भृशदारुणैः ॥ २८  
जाताश्चाप्यवशास्तत्र भिद्यमानाः पुनः पुनः ।  
पात्यमानाश्च दृश्यन्ते विवशा मांसगृद्धिनः ॥ २९  
कुम्भीपाके च पच्यन्ते तां तां योनिमुपागताः ।  
आक्रम्य मार्यमाणाश्च भ्राम्यन्ते वै पुनः पुनः ॥  
नात्मनोऽस्ति प्रियतरः पृथिव्यामनुमृत्यु ह ।  
तस्मात्प्राणिषु सर्वेषु दयावानात्मवान्भवेत् ॥ ३१  
सर्वमांसानि यो राजन्यावजीवं न भक्षयेत् ।  
स्वर्गे स विपुलं स्थानं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥ ३२  
ये भक्षयन्ति मांसानि भूतानां जीवितैषिणाम् ।  
भक्षयन्ते तेऽपि तैर्भूतैरिति मे नास्ति संशयः ॥ ३३  
मांसं स भक्षयते यस्माद्भक्षयिष्ये तमप्यहम् ।  
एतन्मांसस्य मांसत्वमतो बुध्यस्व भारत ॥ ३४  
घातको वध्यते नित्यं तथा वध्येत बन्धकः ।  
आक्रोष्टाक्रुश्यते राजन्द्रेष्टा द्वेष्ट्यत्वमाप्नुते ॥ ३५  
येन येन शरीरेण यद्यत्कर्म करोति यः ।  
तेन तेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाप्नुते ॥ ३६  
अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परो दमः ।

अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः ॥ ३७  
अहिंसा परमो यज्ञस्तथाहिंसा परं बलम् ।  
अहिंसा परमं विद्वग्गहिंसा परमं सुखम् ।  
अहिंसा परमं सत्यमहिंसा परमं श्रुतम् ॥ ३८  
सर्वयज्ञेषु वा दानं सर्वतीर्थेषु चाष्टुतम् ।  
सर्वदानफलं वापि नैतत्तुल्यमहिंसया ॥ ३९  
अहिंसस्य तपोऽक्षय्यमहिंसो यजते सदा ।  
अहिंसः सर्वभूतानां यथा माता यथा पिता ॥ ४०  
एतत्फलमहिंसाया भूयश्च कुरुपुंगव ।  
न हि शक्या जुषा वक्तुमिह वर्षशतैरपि ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वोऽध्यायः

सप्ततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

११८

युधिष्ठिर उवाच ।

अकामाश्च सकामाश्च हता येऽस्मिन्महाहवे ।  
कां योनिं प्रतिपन्नास्ते तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १  
दुःखं प्राणपरित्यागः पुरुषाणां महामृधे ।  
जानामि तत्त्वं धर्मज्ञ प्राणत्यागं सुदुष्करम् ॥ २  
समृद्धे वासमृद्धे वा शुभे वा यदि वाशुभे ।  
कारणं तत्र मे ब्रूहि सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ॥ ३  
भीष्म उवाच ।  
समृद्धे वासमृद्धे वा शुभे वा यदि वाशुभे ।  
ससारेऽस्मिन्समाजाताः प्राणिनः पृथिवीपते ॥ ४  
निरता येन भावेन तत्र मे शृणु कारणम् ।  
सम्यक्चायमनुग्रहस्तवयोक्तश्च युधिष्ठिर ॥ ५  
अत्र ते वर्तयिष्यामि पुरावृत्तमिदं नृप ।  
द्वैपायनस्य सवादं कीटस्य च युधिष्ठिर ॥ ६  
ब्रह्मभूतश्चरन्निग्रः कृष्णद्वैपायनः पुरा ।  
ददर्श कीटं धावन्तं शीघ्रं शकटवर्त्मनि ॥ ७  
गतिज्ञः सर्वभूतानां स्तब्धश्च शरीरिणाम् ।

सर्वज्ञः सर्वतो दृष्ट्वा कीट वचनमब्रवीत् ॥ ८  
कीट सत्रस्तरूपोऽसि त्वरितश्चैव लक्ष्यसे ।  
क धावसि तदाचक्ष्व कुतस्ते भयमागतम् ॥ ९

कीट उवाच ।

शकटस्यास्य महतो घोषं श्रुत्वा भयं मम ।  
आगतं वै महाबुद्धे स्वन एष हि दारुणः ।  
श्रूयते न स मां हन्यादिति तस्मादपाक्रमे ॥ १०  
श्वसतां च शृणोम्येवं गोपुत्राणां प्रचोद्यताम् ।  
बहतां सुमहाभारं संनिकर्षे स्वनं प्रभो ।  
नृणां च संवाहयतां श्रूयते विविधः स्वनः ॥ ११  
सोढुमस्मद्विधेनैष न शक्यः कीटयोनिना ।  
तस्मादपक्राम्येष भयादस्मात्सुदारुणात् ॥ १२  
दुःखं हि मृत्युर्भूतानां जीवितं च सुदुर्लभम् ।  
अतो भीतः पलायामि गच्छेय नासुखं सुखात् ॥

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तः स तु तं प्राह कुतः कीट सुखं तव ।  
मरणं ते सुखं मन्ये तिर्यग्योनौ हि वर्तसे ॥ १४  
शब्दं स्पर्शं रसं गन्धं भोगांश्चोच्चावचान्बहून् ।  
नाभिजानासि कीट त्वं श्रेयो मरणमेव ते ॥ १५

कीट उवाच ।

सर्वत्र निरतो जीव इतीहापि सुखं मम ।  
चेतयामि महाप्राज्ञ तस्मादिच्छामि जीवितुम् ॥ १६  
इहापि विषयः सर्वो यथादेहं प्रवर्तितः ।  
मानुषास्तिर्यगाश्चैव पृथग्भोगा विशेषतः ॥ १७  
अहमासं मनुष्यो वै शूद्रो बहुधनः पुरा ।  
अब्रह्मण्यो नृशंसश्च कदर्यो वृद्धिजीवनः ॥ १८  
वाक्तीक्ष्णो निष्कृतिप्रज्ञो मोष्टा विश्वस्य सर्वशः ।  
मिथःकृतोऽपनिधनः परस्वहरणे रतः ॥ १९  
भृत्यातिथिजनश्चापि गृहे पर्युषितो मया ।

मात्सर्यात्स्वादुकामेन नृशंसेन बुभूषता ॥ २०  
देवार्थं पितृयज्ञार्थमन्नं श्रद्धाकृतं मया ।  
न दत्तमर्थकामेन देयमन्नं पुनाति ह ॥ २१  
गुप्तं शरणमाश्रित्य भयेषु शरणागताः ।  
अकस्मान्नो भयात्त्यक्ता न च त्राताभयैषिणः ॥ २२  
धनं धान्यं प्रियान्दारान्यानं वासस्तथाद्भुतम् ।  
श्रियं दृष्ट्वा मनुष्याणामसूयामि निरर्थकम् ॥ २३  
ईर्ष्युः परसुखं दृष्ट्वा आतताय्यबुभूषकः ।  
त्रिवर्गहन्ता चान्येषामात्मकामानुवर्तकः ॥ २४  
नृशंसगुणभूयिष्ठं पुरा कर्म कृतं मया ।  
स्मृत्वा तदनुत्पयेऽहं त्यक्त्वा प्रियमिवात्मजम् ॥  
शुभानामपि जानामि कृतानां कर्मणां फलम् ।  
माता च पूजिता वृद्धा ब्राह्मणश्चार्चितो मया ॥ २६  
सकृज्जातिगुणोपेतः संगत्या गृहमागतः ।  
अतिथिः पूजितो ब्रह्मंस्तेन मां नाजहात्स्मृतिः ॥ २७  
कर्मणा तेन चैवाहं सुखाशामिह लक्ष्ये ।  
तच्छ्रोतुमहमिच्छामि त्वत्तः श्रेयस्तपोधन ॥ २८

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

११९

व्यास उवाच ।

शुभेन कर्मणा यद्वै तिर्यग्योनौ न मुह्यसे ।  
ममैव कीट तत्कर्म येन त्वं न प्रमुह्यसे ॥ १  
अहं हि दर्शनादेव तारयामि तपोबलात् ।  
तपोबलाद्धि बलबद्धलमन्यन्न विद्यते ॥ २  
जानामि पापैः स्वकृतैर्गतं त्वां कीट कीटताम् ।  
अवाप्स्यसि परं धर्मं धर्मस्थो यदि मन्यसे ॥ ३  
कर्म भूमिकृतं देवा भुञ्जते तिर्यगाश्च ये ।  
धर्मादपि मनुष्येषु कामोऽर्थश्च यथा गुणैः ॥ ४  
वाग्बुद्धिपाणिपादैश्चाप्युपेतस्य विपश्चितः ।

किं हीयते मनुष्यस्य मन्दस्यापि हि जीवतः ॥ ५  
जीवन्हि कुरुते पूजां विप्राग्र्यः शशिमूर्त्ययोः ।  
ब्रुवन्नपि कथां पुण्यां तत्र कीट त्वमेष्यसि ॥ ६  
गुणभूतानि भूतानि तत्र त्वमुपभोक्ष्यसे ।  
तत्र तेऽहं विनेष्यामि ब्रह्मत्वं यत्र चेच्छसि ॥ ७  
स तथेति प्रतिश्रुत्य कीटो वर्त्मन्यतिष्ठत ।  
तमृषिं द्रष्टुमगमत्सर्वास्वन्यासु योनिषु ॥ ८  
श्वाविहोधावराहाणां तथैव मृगपक्षिणाम् ।  
श्वपाकवैश्यशूद्राणां क्षत्रियाणां च योनिषु ॥ ९  
स कीटेत्येवमाभाष्य ऋषिणा सत्यवादिना ।  
प्रतिस्मृत्याथ जग्राह पादो मूर्ध्ना कृताञ्जलिः ॥ १०

कीट उवाच ।

इदं तदतुलं स्थानमीप्सितं दशभिर्गुणैः ।  
यदहं प्राप्य कीटत्वमागतो राजपुत्रताम् ॥ ११  
वहन्ति मामतिबलाः कुञ्जरा हेममालिनः ।  
स्यन्दनेषु च काम्बोजा युक्ताः परमवाजिनः ॥ १२  
उष्ट्राश्चतरयुक्तानि यानानि च वहन्ति माम् ।  
सवान्धवः सहामात्यश्चाभामि पिशितौदनम् ॥ १३  
गृहेषु सुनिवासेषु सुलेषु शयनेषु च ।  
परार्थेषु महाभाग स्वपामीह सुपूजितः ॥ १४  
सर्वेष्वपररात्रेषु सूतमागधवन्दिनः ।  
स्तुवन्ति मां यथा देवं महेन्द्रं प्रियवादिनः ॥ १५  
प्रसादात्सत्यसंधस्य भवतोऽमिततेजसः ।  
यदहं कीटतां प्राप्य संप्राप्तो राजपुत्रताम् ॥ १६  
नमस्तेऽस्तु महाप्राज्ञ किं करोमि प्रशाधि माम् ।  
त्वत्तपोबलनिर्दिष्टमिदं ह्यधिगतं मया ॥ १७

व्यास उवाच ।

अर्चितोऽहं त्वया राजन्वाग्भिरद्य यदृच्छया ।  
अद्य ते कीटतां प्राप्य स्मृतिर्जाताजुगुप्सिता ॥ १८  
न तु नाशोऽस्ति पापस्य यत्त्वयोपचितं पुरा ।

शूद्रेणार्थप्रधानेन नृशंसेनाततायिना ॥ १९  
मम ते दर्शनं प्राप्त तच्चैव सुकृतं पुरा ।  
तिर्यग्योनौ स्म जातेन मम चाग्यर्चनात्तथा ॥ २०  
इतस्त्वं राजपुत्रत्वाद्ब्राह्मण्यं समवाप्स्यसि ।  
गोब्राह्मणकृते प्राणान्हुत्वात्मीयान् राजजिरे ॥ २१  
राजपुत्रसुखं प्राप्य ऋतुंश्चैवाप्तदक्षिणान् ।  
अथ मोदिष्यसे स्वर्गे ब्रह्मभूतोऽव्ययः सुखी ॥ २२  
तिर्यग्योन्याः शूद्रतामभ्युपैति  
शूद्रो वैश्यत्वं क्षत्रियत्वं च वैश्यः ।  
वृत्तश्लाघी क्षत्रियो ब्राह्मणत्वं  
स्वर्गं पुण्यं ब्राह्मणः साधुवृत्तः ॥ २३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
एकोनविंशधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

१२०

भीष्म उवाच ।

क्षत्रधर्ममनुप्राप्तः स्मरन्नेव स वीर्यवान् ।  
त्यक्त्वा स कीटतां राजञ्चचार विपुलं तपः ॥ १  
तस्य धर्मार्थविदुषो दृष्ट्वा तद्विपुलं तपः ।  
आजगाम द्विजश्रेष्ठः कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ २

व्यास उवाच ।

क्षात्रं चैव व्रतं कीट भूतानां परिपालनम् ।  
क्षात्रं चैव व्रतं ध्यायंस्ततो विप्रत्वमेष्यसि ॥ ३  
पाहि सर्वाः प्रजाः सम्यक्शुभाशुभविदात्मवान् ।  
शुभैः संविभजन्कामैरशुभानां च पावनैः ॥ ४  
आत्मवान्भव सुप्रीतः स्वधर्मचरणे रतः ।  
क्षात्रीं तनुं समुत्सृज्य ततो विप्रत्वमेष्यसि ॥ ५

भीष्म उवाच ।

सोऽथारण्यमभिप्रेत्य पुनरेव युधिष्ठिर ।  
महर्षेर्वचनं श्रुत्वा प्रजा धर्मेण पाल्य च ॥ ६



अचिरेणैव कालेन कीटः पार्थिवसत्तम ।  
प्रजापालनधर्मेण प्रेत्य विप्रत्वमागतः ॥ ७  
ततस्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा पुनरेव महायशः ।  
आजगाम महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ ८

व्यास उवाच ।

भो भो विप्रर्षभ श्रीमन्मा व्यथिष्ठाः कथंचन ।  
शुभकृच्छ्रभयोनीषु पापकृत्पापयोनिषु ।  
उपपद्यति धर्मज्ञ यथाधर्मं यथागमम् ॥ ९  
तस्मान्मृत्युभयात्कीट मा व्यथिष्ठाः कथंचन ।  
धर्मलोपाद्भयं ते स्यात्तस्माद्धर्मं चरोत्तमम् ॥ १०

कीट उवाच ।

सुखात्सुखतरं प्राप्तो भगवंस्त्वत्कृते ह्यहम् ।  
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य पाप्मा नष्ट इहाद्य मे ॥ ११

भीष्म उवाच ।

भगवद्वचनात्कीटो ब्राह्मण्यं प्राप्य दुर्लभम् ।  
अकरोत्पृथिवीं राजन्यज्ञयूपशताङ्किताम् ।  
ततः सालोक्यमगमद्ब्रह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ १२  
अवाप च परं कीटः पार्थ ब्रह्म सनातनम् ।  
स्वकर्मफलनिवृत्तं व्यासस्य वचनात्तदा ॥ १३  
तेऽपि यस्मात्स्वभावेन हताः क्षत्रियपुंगवाः ।  
संप्राप्तास्ते गतिं पुण्यां तस्मान्मा शोच पुत्रक ॥ १४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

१२१

युधिष्ठिर उवाच ।

विद्या तपश्च दानं च किमेतेषां विशिष्यते ।  
पृच्छामि त्वा सतां श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

मैत्रेयस्य च संवादं कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ २  
कृष्णद्वैपायनो राजन्नज्ञातचरितं चरन् ।  
वाराणस्यामुपातिष्ठन्मैत्रेयं स्वैरिणीकुले ॥ ३  
तमुपस्थितमासीनं ज्ञात्वा स मुनिसत्तमम् ।  
अर्चित्वा भोजयामास मैत्रेयोऽशनमुत्तमम् ॥ ४  
तदन्नमुत्तमं भुक्त्वा गुणवत्सार्वकामिकम् ।  
प्रतिष्ठमानोऽस्मयत प्रीतः कृष्णो महामनाः ॥ ५  
तमुत्स्मयन्तं संप्रेक्ष्य मैत्रेयः कृष्णमब्रवीत् ।  
कारणं ब्रूहि धर्मात्मन्योऽस्मयिष्ठाः कुतश्च ते ।  
तपस्विनो धृतिमतः प्रमोदः समुपागतः ॥ ६  
एतत्पृच्छामि ते विद्वन्नभिवाद्य प्रणम्य च ।  
आत्मनश्च तपोभाग्यं महाभाग्यं तथैव च ॥ ७  
पृथगाचरतस्तात पृथगात्मनि चात्मनोः ।  
अल्पान्तरमहं मन्ये विशिष्टमपि वा त्वया ॥ ८

व्यास उवाच ।

अतिच्छेदातिवादाभ्यां स्मर्योऽयं समुपागतः ।  
असत्यं वेदवचनं कस्माद्वेदोऽनृतं वदेत् ॥ ९  
त्रीण्येव तु पदान्याहुः पुरुषस्योत्तमं व्रतम् ।  
न द्रुह्येच्चैव दद्याच्च सत्यं चैव परं वदेत् ।  
इदानीं चैव नः कृत्यं पुरस्ताच्च परं स्मृतम् ॥ १०  
अल्पोऽपि तादृशो दायो भवत्युत महाफलः ।  
तृषिताय च यद्वत्तं हृदयेनानसूयता ॥ ११  
तृषितस्तृषिताय त्वं दत्त्वैतदशन मम ।  
अजैषीर्महतो लोकान्महायज्ञैरिवाभिभो ।  
अतो दानपवित्रेण प्रीतोऽस्मि तपसैव च ॥ १२  
पुण्यस्यैव हि ते गन्धः पुण्यस्यैव च दर्शनम् ।  
पुण्यश्च वाति गन्धस्ते मन्ये कर्मविधानतः ॥ १३  
अधिकं मार्जनात्तात तथैवाप्यनुलेपनात् ।  
शुभं सर्वपवित्रेभ्यो दानमेव परं भवेत् ॥ १४  
यानीमान्युत्तमानीह वेदोक्तानि प्रशंससि ।

तेषां श्रेष्ठतमं दानमिति मे नास्ति संशयः ॥ १५  
 दानकृद्भिः कृतः पन्था येन यान्ति मनीषिणः ।  
 ते हि प्राणस्य दातारस्तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः ॥ १६  
 यथा वेदाः स्वधीताश्च यथा चेन्द्रियसंयमः ।  
 सर्वत्यागो यथा चेह तथा दानमनुत्तमम् ॥ १७  
 त्वं हि तात सुखादेव सुखमेष्यसि शोभनम् ।  
 सुखात्सुखतरप्राप्तिमाप्नुते मतिमान्नरः ॥ १८  
 तन्नः प्रत्यक्षमेवेदमुपलब्धमसंशयम् ।  
 श्रीमन्तमाप्नुवन्त्यर्था दानं यज्ञस्तथा सुखम् ॥ १९  
 सुखादेव परं दुःखं दुःखादन्यत्परं सुखम् ।  
 दृश्यते हि महाप्राज्ञ नियतं वै स्वभावतः ॥ २०  
 त्रिविधानीह वृत्तानि नरस्याहुर्मनीषिणः ।  
 पुण्यमन्यत्पापमन्यन्न पुण्यं न च पापकम् ॥ २१  
 न वृत्तं मन्यतेऽन्यस्य मन्यतेऽन्यस्य पापकम् ।  
 तथा स्वकर्मनिवृत्तं न पुण्यं न च पापकम् ॥ २२  
 रमस्वैधस्व मोदस्व देहि चैव यजस्व च ।  
 न त्वामभिभविष्यन्ति वैद्या न च तपस्विनः ॥ २३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

१२२

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तः प्रत्युवाच मैत्रेयः कर्मपूजकः ।  
 अत्यन्तं श्रीमति कुले जातः प्राज्ञो बहुश्रुतः ॥ १  
 असंशयं महाप्राज्ञ यथैवात्थ तथैव तत् ।  
 अनुज्ञातस्तु भवता किञ्चिद्भूयामहं विभो ॥ २

व्यास उवाच ।

यद्यदिच्छसि मैत्रेय यावद्यावद्यथा तथा ।  
 ब्रूहि तावन्महाप्राज्ञ शुश्रूषे वचनं तव ॥ ३

मैत्रेय उवाच ।

निर्दोषं निर्मलं चैव वचनं दानसंहितम् ।  
 विद्यातपोभ्यां हि भवान्भावितात्मा न संशयः ॥ ४  
 भवतो भावितात्मत्वाद्वायोऽयं सुमहान्मम ।  
 भूयो बुद्ध्यानुपश्यामि सुसमृद्धतपा इव ॥ ५  
 अपि मे दर्शनादेव भवतोऽभ्युदयो महान् ।  
 मन्ये भवत्प्रसादोऽयं तद्धि कर्म स्वभावतः ॥ ६  
 तपः श्रुतं च योनिश्चाप्येतद्ब्राह्मण्यकारणम् ।  
 त्रिभिर्गुणैः समुदितस्ततो भवति वै द्विजः ॥ ७  
 तस्मिंस्तृप्ते च तृप्यन्ते पितरो देवतानि च ।  
 न हि श्रुतवतां किञ्चिदधिकं ब्राह्मणादृते ॥ ८  
 यथा हि सुकृते क्षेत्रे फलं विन्दति मानवः ।  
 एवं दत्त्वा श्रुतवति फलं दाता समश्नुते ॥ ९  
 ब्राह्मणश्चेन्न विद्येत श्रुतवृत्तोपसंहितः ।  
 प्रतिग्रहीता दानस्य मोघं स्याद्वनिनां धनम् ॥ १०  
 अदन्त्यविद्वान्हन्यन्नमद्यमानं च हन्ति तम् ।  
 तं च हन्यति यस्यान्नं स हत्वा हन्यतेऽबुधः ॥ ११  
 प्रभुर्ह्यन्नमदन्विद्वान्पुनर्जनयतीश्वरः ।  
 स चान्नाज्जायते तस्मात्सूक्ष्म एव व्यनिक्रमः ॥ १२  
 यदेव ददतः पुण्यं तदेव प्रतिगृह्यतः ।  
 न ह्येकचक्रं वर्तेत इत्येवमृषयो विदुः ॥ १३  
 यत्र वै ब्राह्मणाः सन्ति श्रुतवृत्तोपसंहिताः ।  
 तत्र दानफलं पुण्यमिह चामुत्र चाश्नुते ॥ १४  
 ये योनिशुद्धाः सततं तपस्यभिरता भृशम् ।  
 दानाध्ययनसंपन्नास्ते वै पूज्यतमाः सदा ॥ १५  
 तैर्हि सद्भिः कृतः पन्थाश्चेतयानो न मुह्यते ।  
 ते हि स्वर्गस्य नेतारो यज्ञवाहाः सनातनाः ॥ १६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

१२३

भीष्म उवाच ।

एवमुक्तः स भगवान्मैत्रेय प्रत्यभाषत ।  
 दिष्ट्यैवं त्वं विजानासि दिष्ट्या ते बुद्धिरीदृशी ।  
 लोको ह्ययं गुणानेव भूयिष्ठ स्म प्रशंसति ॥ १  
 रूपमानवयोमानश्रीमानाश्चाप्यसंशयम् ।  
 दिष्ट्या नाभिभवन्ति त्वां दैवस्तेऽयमनुग्रहः ।  
 यत्ते भृशतरं दानाद्वर्तयिष्यामि तच्छृणु ॥ २  
 यानीहागमशास्त्राणि याश्च काश्चित्प्रवृत्तयः ।  
 तानि वेदं पुरस्कृत्य प्रवृत्तानि यथाक्रमम् ॥ ३  
 अहं दानं प्रशंसामि भवानपि तपःश्रुते ।  
 तपः पवित्रं वेदस्य तपः स्वर्गस्य साधनम् ॥ ४  
 तपसा महदाप्नोति विद्यया चेति नः श्रुतम् ।  
 तपसैव चापनुदेयञ्चान्यदपि दुष्कृतम् ॥ ५  
 यद्यद्वि किञ्चित्संवाय पुरुषस्तप्यते तपः ।  
 सर्वमेतदवाप्नोति ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ ६  
 दुरन्वयं दुष्प्रवृत्त्यं दुरापं दुरतिक्रमम् ।  
 सर्वं वै तपसाभ्येति तपो हि बलवत्तरम् ॥ ७  
 सुरापोऽसंमतादायी भूणहा गुरुतल्पगः ।  
 तपसा तरते सर्वमेनसश्च प्रमुच्यते ॥ ८  
 सर्वविद्यस्तु चक्षुष्मानपि यादृशतादृशः ।  
 तपस्विनौ च तावाहुस्ताभ्यां कार्यं सदा नमः ॥ ९  
 सर्वे पूज्याः श्रुतधनास्तथैव च तपस्विनः ।  
 दानप्रदाः सुखं प्रेत्य प्राप्नुवन्तीह च श्रियम् ॥ १०  
 इमं च ब्रह्मलोकं च लोकं च बलवत्तरम् ।  
 अन्नदानैः सुकृतिनः प्रतिपद्यन्ति लौकिकाः ॥ ११  
 पूजिताः पूजयन्त्येतान्मानिता मानयन्ति च ।  
 अदाता यत्र यत्रैति सर्वतः संप्रणुद्यते ॥ १२  
 अकर्ता चैव कर्ता च लभते यस्य यादृशम् ।  
 यद्येवोर्ध्वं यद्यवाक्च त्वं लोकमभियास्यसि ॥ १३

प्राप्स्यसे त्वन्नपानानि यानि दास्यसि कानिचित् ।  
 मेधाव्यसि कुले जातः श्रुतवाननृशंसवान् ॥ १४  
 कौमारदारव्रतवान्मैत्रेय निरतो भव ।  
 एतद्गृहाण प्रथमं प्रशस्तं गृहमेधिनाम् ॥ १५  
 यो भर्ता वासितातुष्टो भर्तुस्तुष्टा च वासिता ।  
 यस्मिन्नेवं कुले सर्वं कल्याणं तत्र वर्तते ॥ १६  
 अद्विर्गात्रान्मलमिव तमोऽग्निप्रभया यथा ।  
 दानेन तपसा चैव सर्वपापमपोहते ॥ १७  
 स्वस्ति प्राप्नुहि मैत्रेय गृहान्साधु व्रजाम्यहम् ।  
 एतन्मनसि कर्तव्यं श्रेय एवं भविष्यति ॥ १८  
 तं प्रणम्याथ मैत्रेयः कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।  
 स्वस्ति प्राप्नोतु भगवानित्युवाच कृताञ्जलिः ॥ १९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

१२४

युधिष्ठिर उवाच ।

सत्स्त्रीणां समुदाचारं सर्वधर्मभृतां वर ।  
 श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वत्तस्तं मे ब्रूहि पितामह ॥ १  
 भीष्म उवाच ।  
 सर्वज्ञां सर्वधर्मज्ञां देवल्लोके मनस्विनीम् ।  
 कैकेयीं सुमना नाम शाण्डिलीं पर्यपृच्छत ॥ २  
 केन वृत्तेन कल्याणि समाचारेण केन वा ।  
 विधूय सर्वपापानि देवल्लोकं त्वमागता ॥ ३  
 हुताशनशिखेव त्वं ज्वलमाना स्वतेजसा ।  
 सुता ताराधिपस्येव प्रभया दिनमागता ॥ ४  
 अरजांसि च वस्त्राणि धारयन्ती गतक्लमा ।  
 विमानस्था शुभे भासि सहस्रगुणमोजसा ॥ ५  
 न त्वमल्पेन तपसा दानेन नियमेन वा ।  
 इमं लोकमनुप्राप्ता तस्मात्तत्त्वं वदस्व मे ॥ ६  
 इति पृष्ट्वा सुमनया मधुरं चारुहासिनी ।

शाण्डिली निभृतं वाक्यं सुमनामिदमब्रवीत् ॥ ७  
 नाहं काषायवसना नापि वल्कलधारिणी ।  
 न च मुण्डा न जटिला भूत्वा देवत्वमागता ॥ ८  
 अहितानि च वाक्यानि सर्वाणि परुषाणि च ।  
 अप्रमत्ता च भर्तारं कदाचिन्नाहमब्रुवम् ॥ ९  
 देवतानां पितॄणां च ब्राह्मणानां च पूजने ।  
 अप्रमत्ता सदायुक्ता श्वश्रूश्चशुरवर्तिनी ॥ १०  
 पैशुन्ये न प्रवर्तामि न ममैतन्मनोगतम् ।  
 अद्वारे न च तिष्ठामि चिरं न कथयामि च ॥ ११  
 असद्वा हसितं किञ्चिदहितं वापि कर्मणा ।  
 रहस्यमरहस्यं वा न प्रवर्तामि सर्वथा ॥ १२  
 कार्यार्थं निर्गतं चापि भर्तारं गृहमागतम् ।  
 आसनेनोपसंयोज्य पूजयामि समाहिता ॥ १३  
 यद्यच्च नाभिजानाति यद्भोज्यं नाभिनन्दति ।  
 भक्ष्यं वाप्यथ वा लेह्यं तत्सर्वं वर्जयाम्यहम् ॥ १४  
 कुटुम्बार्थं समानीतं यत्किञ्चित्कार्यमेव तु ।  
 प्रातरुत्थाय तत्सर्वं कारयामि करोमि च ॥ १५  
 प्रवासं यदि मे भर्ता याति कार्येण केनचित् ।  
 मङ्गलैर्बहुभिर्युक्ता भवामि नियता सदा ॥ १६  
 अञ्जनं रोचनां चैव स्नानं माल्यानुलेपनम् ।  
 प्रसाधनं च निष्क्रान्ते नाभिनन्दामि भर्तरि ॥ १७  
 नोत्थापयामि भर्तारं सुखसुप्तमहं सदा ।  
 आतुरेष्वपि कार्येषु तेन तुष्यति मे मनः ॥ १८  
 नायासयामि भर्तारं कुटुम्बार्थं च सर्वदा ।  
 गुप्तगुह्या सदा चास्मि सुसमृष्टनिवेशना ॥ १९  
 इमं धर्मपथं नारी पालयन्ती समाहिता ।  
 अरुन्धतीव नारीणां स्वर्गलोके महीयते ॥ २०

भीष्म उवाच ।

एतदाख्याय सा देवी सुमनायै तपस्विनी ।  
 पतिधर्मं महाभागा जगामादर्शनं तदा ॥ २१

यश्चेदं पाण्डवाख्यानं पठेत्पर्वणि पर्वणि ।  
 स देवलोकं सप्राप्य नन्दने सुसुखं वसेत् ॥ २२  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

१२५

युधिष्ठिर उवाच ।

साम्ना वापि प्रदाने वा ज्यायः किं भवतो मतम् ।  
 प्रब्रूहि भरतश्रेष्ठ यदत्र व्यतिरिच्यते ॥ १

भीष्म उवाच ।

साम्ना प्रसाद्यते कश्चिद्दानेन च तथापरः ।  
 पुरुषः प्रकृतिं ज्ञात्वा तयोरेकतरं भजेत् ॥ २  
 गुणास्तु शृणु मे राजन्सान्त्वस्य भरतर्षभ ।  
 दारुणान्यपि भूतानि सान्त्वेनाराधयेद्यथा ॥ ३  
 अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 गृहीत्वा रक्षसा मुक्तो द्विजातिः कानने यथा ॥ ४  
 कश्चित्तु बुद्धिसंपन्नो ब्राह्मणो विजने वने ।  
 गृहीतः कृच्छ्रमापन्नो रक्षसा भक्षयिष्यता ॥ ५  
 स बुद्धिश्रुतसपन्नस्तं दृष्ट्वातीव भीषणम् ।  
 सामैवास्मिन्प्रयुयुजे न मुमोह न विव्यथे ॥ ६  
 रक्षस्तु वाचा सपूज्य प्रश्नं पप्रच्छ तं द्विजम् ।  
 मोक्षयसे ब्रूहि मे प्रश्नं केनास्मि हरिणः कृशः ॥ ७  
 मुहूर्तमथ मंचित्य ब्राह्मणस्तस्य रक्षसः ।  
 आभिर्गाथाभिरव्यग्रः प्रश्नं प्रतिजगाद ह ॥ ८  
 विदेशस्थो विलोकस्थो विना नूनं सुहृज्जनैः ।  
 विषयानतुलान्मुह्ये तेनासि हरिणः कृशः ॥ ९  
 नूनं मित्राणि ते रक्षः साधूपचरितान्यपि ।  
 स्वदोषादपरज्यन्ते तेनासि हरिणः कृशः ॥ १०  
 धनैश्चर्याधिकाः स्तब्धास्त्वद्गुणैः परमावराः ।  
 अवजानन्ति नूनं त्वां तेनासि हरिणः कृशः ॥ ११  
 गुणवान्विगुणानन्यान्नूनं पश्यसि सत्कृतान् ।

प्राज्ञोऽप्राज्ञान्विनीतात्मा तेनासि हरिणः कृशः ॥ १२  
 अवृत्त्या क्लिश्यमानोऽपि वृत्त्युपायान्विगर्हयन् ।  
 माहात्म्याद्वयथमे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ १३  
 सपीड्यात्मानमार्यत्वात्त्वया कश्चिदुपस्कृतः ।  
 जितं त्वां मन्यते साधो तेनासि हरिणः कृशः ॥ १४  
 क्लिश्यमानान्विमार्गेषु कामक्रोधावृतात्मनः ।  
 मन्ये नु ध्यायसि जनांस्तेनासि हरिणः कृशः ॥  
 प्राप्तैः संभावितो नूनं नप्राप्तरूपसंहितः ।  
 ह्रीमानमर्षी दुर्वृत्तैस्तेनासि हरिणः कृशः ॥ १६  
 नूनं मित्रमुखः शत्रुः कश्चिदार्थवदाचरन् ।  
 वञ्चयित्वा गतस्त्वा वै तेनासि हरिणः कृशः ॥ १७  
 प्रकाशार्थगतिर्नूनं रहस्यकुशलः कृती ।  
 तज्जैर्न पूज्यसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ १८  
 असत्स्वभिनिविष्टेषु ब्रुवतो मुक्तसंशयम् ।  
 गुणास्ते न विराजन्ते तेनासि हरिणः कृशः ॥ १९  
 धनबुद्धिश्चतैर्हीनः केवलं तेजसान्वितः ।  
 महत्प्रार्थयसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ २०  
 तपःप्रणिहितात्मान मन्ये त्वारण्यकाङ्क्षिणम् ।  
 बन्धुवर्गो न गृह्णाति तेनासि हरिणः कृशः ॥ २१  
 नूनमर्थवतां मध्ये तव वाक्यमनुत्तमम् ।  
 न भाति कालेऽभिहितं तेनासि हरिणः कृशः ॥ २२  
 दृढपूर्वश्रुत मूर्खं कुपितं हृदयप्रियम् ।  
 अनुनेतुं न शक्नोषि तेनासि हरिणः कृशः ॥ २३  
 नूनमासंजयित्वा ते कृत्ये कस्मिंश्चिदीप्सिते ।  
 कश्चिदर्थयतेऽत्यर्थं तेनासि हरिणः कृशः ॥ २४  
 नूनं त्वा स्वगुणापेक्षं पूजयानं सुहृद्बुधम् ।  
 मयार्थं इति जानाति तेनासि हरिणः कृशः ॥ २५  
 अन्तर्गतमभिप्रायं न नूनं लज्जयेच्छसि ।  
 विवक्तुं प्राप्तिशैथिल्यात्तेनासि हरिणः कृशः ॥ २६  
 नानाबुद्धिरुचिल्लोके मनुष्यान्नूनमिच्छसि ।

ग्रहीतुं स्वगुणैः सर्वास्तेनासि हरिणः कृशः ॥ २७  
 अविद्वान्भीरुरल्पार्थो विद्याविक्रमदानजम् ।  
 यशः प्रार्थयसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ २८  
 चिराभिलषित किञ्चित्फलमप्राप्तमेव ते ।  
 कृतमन्यैरपहृतं तेनासि हरिणः कृशः ॥ २९  
 नूनमात्मकृतं दोषमपश्यन्किञ्चिदात्मनि ।  
 अकारणेऽभिशस्तोऽसि तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३०  
 सुहृदामप्रमत्तानामप्रमोक्ष्यार्थहानिजम् ।  
 दुःस्वमर्थगुणैर्हीनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३१  
 साधून्गृहस्थान्दृष्ट्वा च तथासाधून्वनेचरान् ।  
 मुक्तांश्चावसथे सक्तांस्तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३२  
 धर्म्यमर्थं च काले च देशे चाभिहितं वचः ।  
 न प्रतिष्ठति ते नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३३  
 दत्तानकुशलैरर्थान्मनीषी संजिजीविषुः ।  
 प्राप्य वर्तयसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३४  
 पापान्विवर्धतो दृष्ट्वा कल्याणांश्चावसीदतः ।  
 भ्रुवं मृगयसे योग्यं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३५  
 परस्परविरुद्धानां प्रियं नूनं चिकीर्षसि ।  
 सुहृदामविरोधेन तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३६  
 श्रोत्रियांश्च विकर्मस्थान्प्राज्ञांश्चाप्यजितेन्द्रियान् ।  
 मन्येऽनुध्यायसि जनांस्तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३७  
 एवं संपूजितं रक्षो विप्रं तं प्रत्यपूजयन् ।  
 सखायमकरोच्चैनं सयोज्यार्थैर्मुमोच ह ॥ ३८

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

१२६

युधिष्ठिर उवाच ।

पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।

आगमैर्वहुभिः स्फीतो भवान्नः प्रथितः कुले ॥ १

त्वत्तो धर्मार्थसंयुक्तमायत्यां च सुखोदयम् ।

आश्चर्यभूतं लोकस्य श्रोतुमिच्छाम्यरिदम ॥ २  
 अयं च कालः संप्राप्तो दुर्लभज्ञातिबान्धवः ।  
 शास्ता च न हि नः कश्चित्त्वामृते भरतर्षभ ॥ ३  
 यदि तेऽहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सहितोऽनघ ।  
 वक्तुमर्हसि नः प्रश्नं यत्त्वां पृच्छामि पार्थिव ॥ ४  
 अयं नारायणः श्रीमान्सर्वपार्थिवसंमतः ।  
 भवन्तं बहुमानेन प्रश्रयेण च सेवते ॥ ५  
 अस्य चैव समक्षं त्वं पार्थिवानां च सर्वशः ।  
 भ्रातृणां च प्रियार्थं मे स्नेहाद्भाषितुमर्हसि ॥ ६

वैशंपायन उवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स्नेहादागतसभ्रमः ।  
 भीष्मो भागीरथीपुत्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ ७  
 हन्त ते कथयिष्यामि कथामतिमनोरमाम् ।  
 अस्य विष्णोः पुरा राजन्प्रभावोऽयं मया श्रुतः ॥ ८  
 यश्च गोवृषभाङ्गस्य प्रभावस्तं च मे शृणु ।  
 रुद्राण्याः संशयो यश्च दंपत्योस्तं च मे शृणु ॥ ९  
 व्रतं चचार धर्मात्मा कृष्णो द्वादशवार्षिकम् ।  
 दीक्षितं चागतौ द्रष्टुमुभौ नारदपर्वतौ ॥ १०  
 कृष्णद्वैपायनश्चैव धौम्यश्च जपतां वरः ।  
 देवलः काश्यपश्चैव हस्तिकाश्यप एव च ॥ ११  
 अपरे ऋषयः सन्तो दीक्षादमसमन्विताः ।  
 शिष्यैरनुगताः सर्वे देवकल्पैस्तपोधनैः ॥ १२  
 तेषामतिथिसत्कारमर्चनीयं कुलोचितम् ।  
 देवकीतनयः प्रीतो देवकल्पमकल्पयत् ॥ १३  
 हरितेषु सुवर्णेषु बर्हिष्केषु नवेषु च ।  
 उपोषविशुः प्रीता विष्टरेषु महर्षयः ॥ १४  
 कथाश्चक्रुस्तस्ते तु मधुरा धर्मसहिताः ।  
 राजर्षीणां सुराणां च ये वसन्ति तपोधनाः ॥ १५  
 ततो नारायणं तेजो व्रतचर्येन्धनोत्थितम् ।  
 वक्त्रान्निःसृत्य कृष्णस्य बहिरद्भुतकर्मणः ॥ १६

सोऽग्निर्देवाह तं शैलं सद्रुमं सलताक्षुपम् ।  
 सपक्षिमृगमंघातं सश्वापदसरीसृपम् ॥ १७  
 मृगैश्च विविधाकारैर्हृद्भाभूतमचेतनम् ।  
 शिखरं तस्य गैलस्य मथिनं दीप्तदर्शनम् ॥ १८  
 स तु वह्निर्महाज्वालो दग्ध्वा सर्वमशेषतः ।  
 विष्णोः समीपमागम्य पादौ शिष्यवदस्पृशत् ॥ १९  
 ततो विष्णुर्वनं दृष्ट्वा निर्दग्धमरिकर्शनः ।  
 सौम्यैर्दृष्टिनिपातैस्तपुनः प्रकृतिमानयत् ॥ २०  
 तथैव स गिरिभूयः प्रपुष्पितलताद्रुमः ।  
 सपक्षिगणसमुष्टः सश्वापदसरीसृपः ॥ २१  
 तदद्भुतमचिन्त्यं च दृष्ट्वा मुनिगणस्तदा ।  
 विस्मितो दृष्टलोमा च बभूवास्त्राविलेक्षणः ॥ २२  
 ततो नारायणो दृष्ट्वा तानृषीन्विस्मयान्वितान् ।  
 प्रश्रित मधुरं स्निग्ध पप्रच्छ वदतां वरः ॥ २३  
 किमस्य ऋषिपूगस्य त्यक्तसङ्गस्य नित्यशः ।  
 निर्ममस्यागमवतो विस्मयः समुपागतः ॥ २४  
 एतं मे संशयं सर्वं याथातथ्यमनिन्दिताः ।  
 ऋषयो वक्तुमर्हन्ति निश्चितार्थं तपोधनाः ॥ २५

ऋषय ऊचुः ।

भवान्विसृजते लोकान्भवान्सहरते पुनः ।  
 भवाञ्शीतं भवानुष्णं भवानेव प्रवर्षति ॥ २६  
 पृथिव्यां यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।  
 तेषां पिता त्वं माता च प्रभुः प्रभव एव च ॥ २७  
 एतन्नो विस्मयकरं प्रशंस मधुसूदन ।  
 त्वमेवार्हसि कल्याण वक्तुं बह्वैर्विनिर्गमम् ॥ २८  
 ततो विगतसंत्रासा वयमप्यरिकर्शन ।  
 यच्छ्रुतं यच्च दृष्टं नस्तत्प्रवक्ष्यामहे हरे ॥ २९

वासुदेव उवाच ।

एतत्तद्वैष्णवं तेजो मम वक्त्राद्विनिःसृतम् ।  
 कृष्णवर्त्मा युगान्ताभो येनाय मथितो गिरिः ॥ ३०

ऋषयश्चार्तिमापन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।  
 भवन्तो व्यथिताश्चासन्देवकल्पास्तपोधनाः ॥ ३१  
 व्रतचर्यापरीतस्य तपस्विव्रतसेवया ।  
 मम बह्निः समुद्भूतो न वै व्यथितुमर्हथ ॥ ३२  
 व्रतं चर्तुमिहायातस्त्वहं गिरिमिमं शुभम् ।  
 पुत्रं चात्मसमं वीर्यं तपसा स्रष्टुमागतः ॥ ३३  
 ततो ममात्मा यो देहे सोऽग्निर्भूत्वा विनिःसृतः ।  
 गतश्च वरदं द्रष्टुं सर्वलोकपितामहम् ॥ ३४  
 तेन चात्मानुशिष्टो मे पुत्रत्वे मुनिसत्तमाः ।  
 तेजसोऽर्धेन पुत्रस्ते भवितेति वृषध्वजः ॥ ३५  
 सोऽयं वह्निरुपागम्य पादमूले ममान्तिकम् ।  
 शिष्यवत्परिचर्याथ शान्तः प्रकृतिमागतः ॥ ३६  
 एतदस्य रहस्यं वः पद्मनाभस्य धीमतः ।  
 मया प्रेम्णा समाख्यातं न भीः कार्या तपोधनाः ॥  
 सर्वत्र गतिरव्यग्रा भवतां दीर्घदर्शनाः ।  
 तपस्विव्रतसंदीप्ता ज्ञानविज्ञानशोभिताः ॥ ३८  
 यच्छ्रुतं यच्च वो दृष्टं दिवि वा यदि वा भुवि ।  
 आश्चर्यं परम किञ्चित्तद्भवन्तो ब्रुवन्तु मे ॥ ३९  
 तस्यामृतनिकाशस्य बाष्पाधोरस्ति मे स्पृहा ।  
 भवद्भिः कथितस्येह तपोवननिवासिभिः ॥ ४०  
 यद्यप्यहमदृष्टं वा दिव्यमद्भुतदर्शनम् ।  
 दिवि वा भुवि वा किञ्चित्पश्याम्यमलदर्शनाः ॥ ४१  
 प्रकृतिः सा मम परा न क्वचित्प्रतिहन्यते ।  
 न चात्मगतमैश्वर्यमाश्चर्यं प्रतिभाति मे ॥ ४२  
 श्रद्धेयः कथितो ह्यर्थः सज्जनश्रवणं गतः ।  
 चिरं तिष्ठति मेदिन्यां शैले लेख्यमिवापितम् ॥ ४३  
 तदहं सज्जनमुखान्निःसृतं तत्समागमे ।  
 कथयिष्याम्यहरहर्बुद्धिदीपकरं नृणाम् ॥ ४४  
 ततो मुनिगणाः सर्वे प्रश्रिताः कृष्णसंनिधौ ।  
 नेत्रैः पद्मदलप्रख्यैरपश्यन्त जनार्दनम् ॥ ४५

वर्धयन्तस्तथैवान्ये पूजयन्तस्तथापरे ।  
 वाग्भिर्ऋग्भूपितार्थाभिः स्तुवन्तो मधुसूदनम् ॥ ४६  
 ततो मुनिगणाः सर्वे नारदं देवदर्शनम् ।  
 तदा नियोजयामासुर्वचने वाक्यकोविदम् ॥ ४७  
 यदाश्चर्यमचिन्त्यं च गिरौ हिमवति प्रभो ।  
 अनुभूतं मुनिगणैस्तीर्थयात्रापरायणैः ॥ ४८  
 तद्भवानृषिसघस्य हितार्थं सर्वचोदितः ।  
 यथादृष्टं हृषीकेशे सर्वमाख्यातुमर्हति ॥ ४९  
 एवमुक्तः स मुनिभिर्नारदो भगवानृषिः ।  
 कथयामास देवर्षिः पूर्ववृत्तां कथां शुभाम् ॥ ५०

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

१२७

भीष्म उवाच ।

ततो नारायणसुहृन्नारदो भगवानृषिः ।  
 शंकरस्योमया सार्धं संवादं प्रत्यभाषत ॥ १  
 तपश्चचार धर्मात्मा वृषभाङ्कः सुरेश्वरः ।  
 पुण्ये गिरौ हिमवति सिद्धचारणसेविते ॥ २  
 नानौषधियुते रम्ये नानापुष्पसमाकुले ।  
 अप्सरोगणसंकीर्णे भूतसघनिषेविते ॥ ३  
 तत्र देवो मुदा युक्तो भूतसंघशतैर्वृतः ।  
 नानारूपैर्विरूपैश्च दिव्यैरद्भुतदर्शनैः ॥ ४  
 सिंहव्याघ्रगजप्रख्यैः सर्वजातिसमन्वितैः ।  
 क्रोष्टुकद्वीपिवदनैर्ऋक्षर्षभमुखैस्तथा ॥ ५  
 उलूकवदनैर्भीमैः श्येनभासमुखैस्तथा ।  
 नानावर्णमृगप्रख्यैः सर्वजातिसमन्वितैः ॥ ६  
 किन्नरैर्देवगन्धर्वैर्यक्षभूतगणैस्तथा ॥ ६  
 दिव्यपुष्पसमाकीर्णं दिव्यमालाविभूषितम् ।  
 दिव्यचन्दनसंयुक्तं दिव्यधूपेन धूपितम् ।  
 तत्सदो वृषभाङ्कस्य दिव्यवादित्रनादितम् ॥ ७

मृदङ्गपणवोद्भुष्टं शङ्खभेरीनिनादितम् ।  
 नृत्यद्विभूतसंघैश्च बर्हिणैश्च समन्ततः ॥ ८  
 प्रनृत्ताप्सरसं दिव्यं दिव्यस्त्रीगणसेवितम् ।  
 दृष्टिकान्तमनिर्देश्यं दिव्यमद्भुतदर्शनम् ॥ ९  
 स गिरिस्तपसा तस्य भूतेशस्य व्यरोचत ॥ १०  
 स्वाध्यायपरमैर्विप्रेर्ब्रह्मघोषैर्विनादितः ।  
 षट्पदैरुपगीतैश्च माधवाप्रतिमो गिरिः ॥ ११  
 तं महोत्सवसकाशं भीमरूपधरं पुनः ।  
 दृष्ट्वा मुनिगणस्यासीत्परा प्रीतिर्जनार्दन ॥ १२  
 मुनयश्च महाभागाः सिद्धाश्चैवोर्ध्वरेतसः ।  
 मरुतो वसवः साध्या विश्वेदेवाः सनातनाः ॥ १३  
 यक्षा नागाः पिशाचाश्च लोकपाला हुताशनाः ।  
 भावाश्च सर्वे न्यग्भूतास्तत्रैवासन्समागताः ॥ १४  
 ऋतवः सर्वपुष्पैश्च व्यकिरन्त महाद्भुतैः ।  
 ओषधयो ज्वलमानाश्च द्योतयन्ति स्म तद्वनम् ॥ १५  
 विहगाश्च मुदा युक्ताः प्रानृत्यन्यनदंश्च ह ।  
 गिरिपृष्ठेषु रम्येषु व्याहरन्तो जनप्रियाः ॥ १६  
 तत्र देवो गिरितटे दिव्यधातुविभूषिते ।  
 पर्यङ्क इव विभ्राजन्नपविष्टो महामनाः ॥ १७  
 व्याघ्रचर्माम्बरधरः सिंहचर्मोत्तरच्छदः ।  
 व्यालघ्नोपवीती च लोहिताङ्गदभूषणः ॥ १८  
 हरिश्मश्रुर्जटी भीमो भयकर्ता सुरद्विषाम् ।  
 अभयः सर्वभूतानां भक्तानां वृषभध्वजः ॥ १९  
 दृष्ट्वा तमृषयः सर्वे शिरोभिरवनीं गताः ।  
 विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः क्षान्ता विगतकल्मषाः ॥ २०  
 तस्य भूतपतेः स्थानं भीमरूपधरं बभौ ।  
 अप्रवृष्यतरं चैव महोरगसमाकुलम् ॥ २१  
 क्षणेनैवाभवत्सर्वमद्भुतं मधुसूदन ।  
 तत्सदो वृषभाङ्गस्य भीमरूपधरं बभौ ॥ २२  
 तमभ्ययाच्छैलसुता भूतस्त्रीगणसंवृता ।

हरतुल्याम्बरधरा समानव्रतचारिणी ॥ २३  
 विभ्रती कलश रौक्मं सर्वतीर्थजलोद्भवम् ।  
 गिरिस्त्रिवाभिः पुण्याभिः सर्वतोऽनुगता शुभा ॥ २४  
 पुष्पवृष्ट्याभिवर्पन्ती गन्धैर्वहुविधैस्तथा ।  
 सेवन्ती हिमवत्पार्श्वं हरपार्श्वमुपागमत् ॥ २५  
 ततः स्मयन्ती पाणिभ्यां नमार्थं चारुदर्शना ।  
 हरनेत्रे शुभे देवी सहसा सा समावृणोत् ॥ २६  
 संवृताभ्यां तु नेत्राभ्यां तमोभूतमचेतनम् ।  
 निर्होमं निर्वषट्कारं तत्सदः सहसाभवत् ॥ २७  
 जनश्च विमनाः सर्वो भयत्राससमन्वितः ।  
 निमीलिते भूतपतौ नष्टसूर्य इवाभवत् ॥ २८  
 ततो वित्तिमिरो लोकः क्षणेन समपद्यत् ।  
 ज्वाला च महती दीप्ता ललाटात्तस्य निःसृता ॥ २९  
 तृतीय चास्य सभूतं नेत्रमादित्यसंनिभम् ।  
 युगान्तसदृशं दीप्तं येनासौ मथितो गिरिः ॥ ३०  
 ततो गिरिसुता दृष्ट्वा दीप्ताग्निसदृशेक्षणम् ।  
 हरं प्रणम्य शिरसा ददर्शयितलोचना ॥ ३१  
 दह्यमाने वने तस्मिन्सशालसरलद्रुमे ।  
 सचन्दनवने रम्ये दिव्यौषधिविदीपिते ॥ ३२  
 मृगयूथैर्द्रुतैर्भीतैर्हरपार्श्वमुपागतैः ।  
 शरणं चाप्यविन्दद्भिस्तत्सदः संकुलं बभौ ॥ ३३  
 ततो नभःस्पृशज्वालो विगुह्योलार्चिरुज्ज्वलः ।  
 द्वादशादित्यसदृशो युगान्ताग्निरिवापरः ॥ ३४  
 क्षणेन तेन दग्धः स हिमवानभवन्नगः ।  
 सधातुशिखराभोगो दीनदग्धवनौषधिः ॥ ३५  
 तं दृष्ट्वा मथित शैलं शैलराजसुता ततः ।  
 भगवन्तं प्रपन्ना सा साञ्जलिप्रग्रहा स्थिता ॥ ३६  
 उमां शर्वस्तदा दृष्ट्वा स्त्रीभावागतमार्दवाम् ।  
 पितुर्दैन्यमनिच्छन्तीं प्रीत्यापश्यत्ततो गिरिम् ॥ ३७  
 ततोऽभवत्पुनः सर्वः प्रकृतिस्थः सुदर्शनः ।



प्रहृष्टविहगश्चैव प्रपुष्पितवनद्रुमः ॥ ३८  
 प्रकृतिस्थं गिरिं दृष्ट्वा प्रीता देवी महेश्वरम् ।  
 उवाच सर्वभूतानां पति पतिमनिन्दिता ॥ ३९  
 भगवन्सर्वभूतेश शूलपाणे महाव्रत ।  
 संशयो मे महाञ्जातस्तं मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४०  
 किमर्थं ते ललाटे वै तृतीयं नेत्रमुत्थितम् ।  
 किमर्थं च गिरिर्दग्धः सपक्षिगणकाननः ॥ ४१  
 किमर्थं च पुनर्देव प्रकृतिस्थः क्षणात्कृतः ।  
 तथैव द्रुमसंलघ्नः कृतोऽयं ते महेश्वर ॥ ४२

महेश्वर उवाच ।

नेत्रे मे संवृते देवि त्वया बाल्यादनिन्दिते ।  
 नष्टालोकस्ततो लोकः क्षणेन समपद्यत ॥ ४३  
 नष्टादित्ये तथा लोके तमोभूते नगात्मजे ।  
 तृतीयं लोचनं दीप्तं सृष्टं ते रक्षता प्रजाः ॥ ४४  
 तस्य चाक्ष्णो महत्तेजो येनायं मथितो गिरिः ।  
 त्वत्प्रियार्थं च मे देवि प्रकृतिस्थः क्षणात्कृतः ॥ ४५

उमोवाच ।

भगवन्केन ते वक्त्रं चन्द्रवत्प्रियदर्शनम् ।  
 पूर्वं तथैव श्रीकान्तमुत्तरं पश्चिमं तथा ॥ ४६  
 दक्षिणं च मुखं रौद्रं केनोर्ध्वं कपिला जटाः ।  
 केन कण्ठश्च ते नीलो बर्हिबर्हनिभः कृतः ॥ ४७  
 हस्ते चैतत्पिनाकं ते सततं केन तिष्ठति ।  
 जटिलो ब्रह्मचारी च किमर्थमसि नित्यदा ॥ ४८  
 एतं मे संशयं सर्वं वद भूतपतेऽनघ ।  
 सधर्मचारिणी चाहं भक्ता चेति वृषध्वज ॥ ४९  
 एवमुक्तः स भगवान्शैलपुत्र्या पिनाकधृक् ।  
 तस्या वृत्त्या च बुद्ध्या च प्रीतिमानभवत्प्रभुः ॥  
 ततस्ताम्रव्रीहिवः सुभगे श्रूयतामिति ।

हेतुभिर्यैर्ममैतानि रूपाणि रुचिरानने ॥ ५१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

१२८

महेश्वर उवाच ।

तिलोत्तमा नाम पुरा ब्रह्मणा योषिदुत्तमा ।  
 तिल तिलं समुद्भूत्य रत्नानां निर्मिता शुभा ॥ १  
 साभ्यगच्छत मां देवि रूपेणाप्रतिमा भुवि ।  
 प्रदक्षिणं लोभयन्ती मां शुभे रुचिरानना ॥ २  
 यतो यतः सा सुवती मामुपाधावदन्तिके ।  
 ततस्ततो मुखं चारु मम देवि विनिर्गतम् ॥ ३  
 तां दिदृक्षुरहं योगाच्चतुर्मूर्तित्वमागतः ।  
 चतुर्मुखश्च संवृत्तो दर्शयन्योगमात्मनः ॥ ४  
 पूर्वेण वदनेनाहमिन्द्रत्वमनुशासि ह ।  
 उत्तरेण त्वया सार्धं रमाम्यहमनिन्दिते ॥ ५  
 पश्चिमं मे मुख सौम्यं सर्वप्राणिसुखावहम् ।  
 दक्षिणं भीमसंकाश रौद्रं संहरति प्रजाः ॥ ६  
 जटिलो ब्रह्मचारी च लोकानां हितकाम्यया ।  
 देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं पिनाकं मे करे स्थितम् ॥ ७  
 इन्द्रेण च पुरा वक्त्रं क्षिप्तं श्रीकाङ्क्षिणा मम ।  
 दग्ध्वा कण्ठं तु तद्यात तेन श्रीकण्ठता मम ॥ ८

उमोवाच ।

वाहनेषु प्रभूतेषु श्रीमत्स्वन्येषु सत्सु ते ।  
 कथं गोवृषभो देव वाहनत्वमुपागतः ॥ ९

महेश्वर उवाच ।

सुरभीं ससृजे ब्रह्मामृतधेनुं पयोमुचम् ।  
 सा सृष्टा बहुधा जाता क्षरमाणा पयोऽमृतम् ॥ १०  
 तस्या वत्समुखोत्सृष्टः केनो मद्गात्रमागतः ।  
 ततो दग्धा मया गावो नानावर्णत्वमागताः ॥ ११

ततोऽहं लोकगुरुणा शमं नीतोऽर्थवेदिना ।

वृषं चेमं ध्वजार्थं मे ददौ वाहनमेव च ॥ १२

उमोवाच ।

निवासा बहुरूपास्ते विश्वरूपगुणान्विताः ।

तांश्च संत्यज्य भगवन्ऽश्मशाने रमसे कथम् ॥ १३

केशास्थिकलिले भीमे कपाटघटसंकुले ।

गृध्रगोमायुकलिले चिताग्निशतसंकुले ॥ १४

अशुचौ मासकलिले वसाशोणितकर्दमे ।

विनिकीर्णामिषचये शिवानादविनादिते ॥ १५

महेश्वर उवाच ।

मेध्यान्वेषी महीं कृत्स्ना विचरामि निशाखहम् ।

न च मेभ्यतरं किञ्चित्छशानादिह विद्यते ॥ १६

तेन मे सर्ववासानां श्मशाने रमते मनः ।

न्यग्रोधशाखासंछन्ने निर्भुक्तस्रग्विभूषिते ॥ १७

तत्र चैव रमन्ते मे भूतसंघाः शुभानने ।

न च भूतगणैर्देवि विनाहं वस्तुमुत्सहे ॥ १८

एष वासो हि मे मेध्यः स्वर्गीयश्च मतो हि मे ।

पुण्यः परमकश्चैव मेध्यकामैरुपास्यते ॥ १९

उमोवाच ।

भगवन्सर्वभूतेश सर्वधर्मभृतां वर ।

पिनाकपाणे वरद संशयो मे महानयम् ॥ २०

अयं मुनिगणः सर्वस्तपस्तप इति प्रभो ।

तपोन्वेषकरो लोके भ्रमते विविधाकृतिः ॥ २१

अस्य चैवर्षिसंघस्य मम च प्रियकाम्यया ।

एतं ममेह संदेहं वक्तुमर्हस्यरिदम् ॥ २२

धर्मः किलक्षणः प्रोक्तः कथं वाचरितुं नरैः ।

शक्यो धर्ममविन्दद्विधर्मज्ञ वद मे प्रभो ॥ २३

नारद उवाच ।

ततो मुनिगणः सर्वस्तां देवीं प्रत्यपूजयत् ।

वाग्भिर्ऋग्भूपितार्थाभिः स्तवैश्चार्थविदां वर ॥ २४

महेश्वर उवाच ।

आदिसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम् ।

शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः ॥ २५

परदारेष्वसंकल्पो न्यासस्त्रीपरिरक्षणम् ।

अदत्तादानविरमो मधुमांसस्य वर्जनम् ॥ २६

एष पञ्चविधो धर्मो बहुशाखः सुखोदयः ।

देहिभिर्धर्मपरमैः कर्तव्यो धर्मसंचयः ॥ २७

उमोवाच ।

भगवन्सशयं पृष्टस्तं मे व्याख्यातुमर्हसि ।

चातुर्वर्ण्यस्य यो धर्मः स्वे स्वे वर्णे गुणावहः ॥ २८

ब्राह्मणे कीदृशो धर्मः क्षत्रिये कीदृशो भवेत् ।

वैश्ये किलक्षणो धर्मः शूद्रे किलक्षणो भवेत् ॥ २९

महेश्वर उवाच ।

न्यायतस्ते महाभागे सशयः समुदीरितः ।

भूमिदेवा महाभागाः सदा लोके द्विजातयः ॥ ३०

उपवासः सदा धर्मो ब्राह्मणस्य न संशयः ।

स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ३१

तस्य धर्मक्रिया देवि व्रतचर्या च न्यायतः ।

तथोपनयनं चैव द्विजायैवोपपद्यते ॥ ३२

गुरुदैवतपूजार्थं स्वाध्यायाभ्यसनात्मकः ।

देहिभिर्धर्मपरमैश्चर्तव्यो धर्मसंभवः ॥ ३३

उमोवाच ।

भगवन्संशयो मेऽत्र तं मे व्याख्यातुमर्हसि ।

चातुर्वर्ण्यस्य धर्मं हि नैपुणेन प्रकीर्तय ॥ ३४

महेश्वर उवाच ।

रहस्यश्रवणं धर्मो वेदव्रतनिषेवणम् ।

व्रतचर्यापरो धर्मो गुरुपादप्रसादनम् ॥ ३५

भैक्षचर्यापरो धर्मो धर्मो नित्योपवासिता ।

नित्यस्वाध्यायिता धर्मो ब्रह्मचर्याश्रमस्तथा ॥ ३६  
 गुरुणा त्वभ्यनुज्ञातः समावर्तेत वै द्विजः ।  
 विन्देतानन्तरं भार्यामनुरूपां यथाविधि ॥ ३७  
 शूद्रान्नवर्जनं धर्मस्तथा सत्पथसेवनम् ।  
 धर्मो नित्योपवासित्वं ब्रह्मचर्यं तथैव च ॥ ३८  
 आहिताग्निरधीयानो जुह्वानः संयतेन्द्रियः ।  
 विघसाशी यताहारो गृहस्थः सत्यवाक्शुचिः ॥ ३९  
 अतिथिव्रतता धर्मो धर्मस्त्रेताग्निधारणम् ।  
 इष्टीश्च पशुबन्धांश्च विधिपूर्वं समाचरेत् ॥ ४०  
 यज्ञश्च परमो धर्मस्तथा हिंसा च देहिषु ।  
 अपूर्वभोजनं धर्मो विघसाशित्वमेव च ॥ ४१  
 भुक्ते परिजने पश्चाद्भोजनं धर्म उच्यते ।  
 ब्राह्मणस्य गृहस्थस्य श्रोत्रियस्य विशेषतः ॥ ४२  
 दंपत्योः समशीलत्वं धर्मश्च गृहमेधिनाम् ।  
 गृह्याणां चैव देवानां नित्यं पुष्पबलिक्रिया ॥ ४३  
 नित्योपलेपनं धर्मस्तथा नित्योपवासिता ।  
 सुसंमृष्टोपलिप्ते च साज्यधूमोद्गमे गृहे ॥ ४४  
 एष द्विजजने धर्मो गार्हस्थ्यो लोकधारणः ।  
 द्विजातीनां सतां नित्यं सदैवैष प्रवर्तते ॥ ४५  
 यस्तु क्षत्रगतो देवि त्वया धर्म उदीरितः ।  
 तमहं ते प्रवक्ष्यामि तं मे शृणु समाहिता ॥ ४६  
 क्षत्रियस्य स्मृतो धर्मः प्रजापालनमादितः ।  
 निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥ ४७  
 प्रजाः पालयते यो हि धर्मेण मनुजाधिपः ।  
 तस्य धर्माजिता लोकाः प्रजापालनसंचिताः ॥ ४८  
 तत्र राज्ञः परो धर्मो दमः स्वाध्याय एव च ।  
 अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥ ४९  
 यज्ञोपवीतधरणं यज्ञो धर्मक्रियास्तथा ।  
 भृत्यानां भरणं धर्मः कृते कर्मण्यमोघता ॥ ५०  
 सम्यग्दण्डे स्थितिर्धर्मो धर्मो वेदक्रतुक्रियाः ।

व्यवहारस्थितिर्धर्मः सत्यवाक्यरतिस्तथा ॥ ५१  
 आर्तहस्तप्रदो राजा प्रेत्य चेह महीयते ।  
 गोब्राह्मणार्थे विक्रान्तः संप्रामे निधनं गतः ।  
 अश्वमेधजिताल्लोकान्प्राप्नोति त्रिदिवालये ॥ ५२  
 वैश्यस्य सततं धर्मः पाशुपाल्यं कृषिस्तथा ।  
 अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥ ५३  
 वाणिज्यं सत्पथस्थानमातिथ्य प्रशमो दमः ।  
 विप्राणां स्वागतं त्यागो वैश्यधर्मः सनातनः ॥ ५४  
 तिलान्गन्धान्सांश्चैव न विक्रीणीत वै क्वचित् ।  
 वणिक्पथमुपासीनो वैश्यः सत्पथमाश्रितः ॥ ५५  
 सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य यथाशक्ति यथार्हतः ।  
 शूद्रधर्मः परो नित्यं शुश्रूषा च द्विजातिषु ॥ ५६  
 स शूद्रः संशिततपाः सत्यसंधो जितेन्द्रियः ।  
 शुश्रूषन्नतिथिं प्राप्तं तपः संचिनुते महत् ॥ ५७  
 त्यक्तहिसः शुभाचारो देवताद्विजपूजकः ।  
 शूद्रो धर्मफलैरिष्टैः संप्रयुज्येत बुद्धिमान् ॥ ५८  
 एतत्ते सर्वमाख्यातं चातुर्वर्ण्यस्य शोभने ।  
 एकैकस्येह सुभगे किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ५९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

१२९

उमोवाच ।

उक्तास्त्वया पृथग्धर्माश्चातुर्वर्ण्यहिताः शुभाः ।  
 सर्वव्यापी तु यो धर्मो भगवंस्तं ब्रवीहि मे ॥ १

महेश्वर उवाच ।

ब्राह्मणा लोकसारेण सृष्टा धात्रा गुणार्थिना ।  
 लोकांस्तारयितुं कृत्स्नान्मर्त्येषु क्षितिदेवताः ॥ २  
 तेषामिमं प्रवक्ष्यामि धर्मकर्मफलोदयम् ।  
 ब्राह्मणेषु हि यो धर्मः स धर्मः परमो मतः ॥ ३

इमे तु लोकधर्मार्थं त्रयः सृष्टाः स्वयंभुवा ।  
 पृथिव्याः सर्जने नित्यं सृष्टास्तानपि मे शृणु ॥ ४  
 वेदोक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः ।  
 शिष्टाचीर्णः परः प्रोक्तस्त्रयो धर्माः सनातनाः ॥ ५  
 त्रैविद्यो ब्राह्मणो विद्वान्न चाध्ययनजीवनः ।  
 त्रिकर्मा त्रिपरिक्रान्तो मैत्र एष स्मृतो द्विजः ॥ ६  
 षडिमानि तु कर्माणि प्रोवाच भुवनेश्वरः ।  
 वृत्त्यर्थं ब्राह्मणानां वै शृणु तानि समाहिता ॥ ७  
 यजनं याजनं चैव तथा दानप्रतिग्रहौ ।  
 अध्यापनमधीतं च षट्कर्मा धर्मभाग्द्विजः ॥ ८  
 नित्यस्वाध्यायता धर्मो धर्मो यज्ञः सनातनः ।  
 दानं प्रशस्यते चास्य यथाशक्ति यथाविधि ॥ ९  
 अयं तु परमो धर्मः प्रवृत्तः सत्सु नित्यशः ।  
 गृहस्थता विशुद्धानां धर्मस्य निचयो महान् ॥ १०  
 पञ्चयज्ञविशुद्धात्मा सत्यवागनसूयकः ।  
 दाता ब्राह्मणसत्कर्ता सुसंमृष्टनिवेशनः ॥ ११  
 अमानी च सदाजिह्वाः स्निग्धवाणीप्रदस्तथा ।  
 अतिथ्यभ्यागतरतिः शेषान्नकृतभोजनः ॥ १२  
 पाद्यमर्घ्यं यथान्यायमासनं शयनं तथा ।  
 दीपं प्रतिश्रयं चापि यो ददाति स धार्मिकः ॥ १३  
 प्रातरुत्थाय चाचम्य भोजनेनोपमन्त्र्य च ।  
 सत्कृत्यानुव्रजेद्यश्च तस्य धर्मः सनातनः ॥ १४  
 सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य यथाशक्ति दिवानिशम् ।  
 शूद्रधर्मः समाख्यातस्त्रिवर्णपरिचारणम् ॥ १५  
 प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो गृहस्थेषु विधीयते ।  
 तमहं कीर्तयिष्यामि सर्वभूतहितं शुभम् ॥ १६  
 दातव्यमसकृच्छक्त्या यष्टव्यमसकृत्तथा ।  
 पुष्टिकर्मविधानं च कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ १७  
 धर्मेणार्थः समाहार्यो धर्मलब्धं त्रिधा धनम् ।  
 कर्तव्यं धर्मपरमं मानवेन प्रयत्नतः ॥ १८

एकेनांशेन धर्मार्थश्चर्तव्यो भूतिमिच्छता ।  
 एकेनांशेन कामार्थं एकमंशं विवर्धयेत् ॥ १९  
 निवृत्तिलक्षणस्त्वन्यो धर्मो मोक्ष इति स्मृतः ।  
 तस्य वृत्तिं प्रवक्ष्यामि शृणु मे देवि तत्त्वतः ॥ २०  
 सर्वभूतदया धर्मो न चैकग्रामवासिता ।  
 आशापाशविमोक्षश्च शस्यते मोक्षकाङ्क्षिणाम् ॥ २१  
 न कुण्ड्यां नोदके सङ्गो न वाससि न चासने ।  
 न त्रिदण्डे न शयने नाम्नौ न शरणालये ॥ २२  
 अध्यात्मगतचित्तो यस्तन्मनास्तत्परायणः ।  
 युक्तो योगं प्रति सदा प्रतिसख्यानमेव च ॥ २३  
 वृक्षमूलशयो नित्यं शून्यागारनिवेशनः ।  
 नदीपुलिनशायी च नदीतीररतिश्च यः ॥ २४  
 विमुक्तः सर्वसङ्गेषु स्नेहबन्धेषु च द्विजः ।  
 आत्मन्येवात्मनो भावं समासज्याटति द्विजः ॥ २५  
 स्थाणुभूतो निराहारो मोक्षदृष्टेन कर्मणा ।  
 परिव्रजति यो युक्तस्तस्य धर्मः सनातनः ॥ २६  
 न चैकत्र चिरासक्तो न चैकग्रामगोचरः ।  
 युक्तो ह्यटति निर्मुक्तो न चैकपुलिनेशयः ॥ २७  
 एष मोक्षविदां धर्मो वेदोक्तः सत्पथः सताम् ।  
 यो मार्गमनुयातीम पदं तस्य न विद्यते ॥ २८  
 चतुर्विधा भिक्षवस्ते कुटीचरकृतोदकः ।  
 हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात्स उत्तमः ॥ २९  
 अतः परतरं नास्ति नाधरं न तिरोऽग्रतः ।  
 अदुःखमसुखं सौम्यमजरामरमव्ययम् ॥ ३०

उमोवाच ।

गार्हस्थ्यो मोक्षधर्मश्च सज्जनाचरितस्त्वया ।  
 भाषितो मर्त्यलोकस्य मार्गः श्रेयस्करो महान् ॥ ३१  
 ऋषिधर्मं तु धर्मज्ञ श्रोतुमिच्छाम्यनुत्तमम् ।  
 स्पृहा भवति मे नित्यं तपोवननिवासिषु ॥ ३२  
 आज्यधूमोद्भवो गन्धो रुणद्धीव तपोवनम् ।

तं दृष्ट्वा मे मनः प्रीतं महेश्वर सदा भवेत् ॥ ३३  
एतं मे संशयं देव मुनिधर्मकृत विभो ।  
सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञ देवदेव वदस्व मे ।  
निखिलेन मया पृष्ठं महादेव यथातथम् ॥ ३४

महेश्वर उवाच ।

हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि मुनिधर्ममनुत्तमम् ।  
यं कृत्वा मुनयो यान्ति सिद्धिं स्वतपसा शुभे ॥  
फेनपानामृषीणां यो धर्मो धर्मविदां सदा ।  
तं मे शृणु महाभागे धर्मज्ञे धर्ममादितः ॥ ३६  
उच्छन्ति सतत तस्मिन्ब्राह्मं फेनोत्करं शुभम् ।  
अमृतं ब्रह्मणा पीत मधुरं प्रसूनं दिवि ॥ ३७  
एष तेषां विशुद्धानां फेनपानां तपोधने ।  
धर्मचर्याकृतो मार्गो बालखिल्यगणे शृणु ॥ ३८  
बालखिल्यास्तपःसिद्धा मुनयः सूर्यमण्डले ।  
उच्छमुच्छन्ति धर्मज्ञाः शाकुनी वृत्तिमास्थिताः ॥  
मृगनिर्मोकवसनाश्चरिबलकलवाससः ।  
निर्द्विधाः सत्पथं प्राप्ता बालखिल्यास्तपोधनाः ॥ ४०  
अङ्गुष्ठपर्वमात्रास्ते स्वेष्टवज्रेषु व्यवस्थिताः ।  
तपश्चरणमीहन्ते तेषां धर्मफलं महत् ॥ ४१  
ते सुरैः समतां यान्ति सुरकार्यार्थसिद्धये ।  
द्योतयन्तो दिशः सर्वास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ ४२  
ये त्वन्ये शुद्धमनसो दयाधर्मपरायणाः ।  
सन्तश्चक्रचराः पुण्याः सोमलोकचराश्च ये ॥ ४३  
पितृलोकसमीपस्थास्त उच्छन्ति यथाविधि ।  
संप्रक्षालाश्मकुट्टाश्च दन्तोल्लखलिनस्तथा ॥ ४४  
सोमपानां च देवानामूष्मपाणां तथैव च ।  
उच्छन्ति ये समीपस्थाः स्वभावनियतेन्द्रियाः ॥ ४५  
तेषामग्निपरिष्यन्दः पितृदेवार्चनं तथा ।  
यज्ञानां चापि पञ्चानां यजनं धर्म उच्यते ॥ ४६  
एष चक्रचरैर्देवि देवलोकचरैर्द्विजैः ।

ऋषिधर्मः सदा चीर्णो योऽन्यस्तमपि मे शृणु ॥ ४७  
सर्वेष्वेवर्षिधर्मेषु जेय आत्मा जितेन्द्रियः ।  
कामक्रोधौ ततः पञ्चाज्जेतव्याविति मे मतिः ॥ ४८  
अग्निहोत्रपरिस्पन्दो धर्मरात्रिसमासनम् ।  
सोमयज्ञाभ्यनुज्ञानं पञ्चमी यज्ञदक्षिणा ॥ ४९  
नित्यं यज्ञक्रिया धर्मः पितृदेवार्चने रतिः ।  
सर्वातिथ्यं च कर्तव्यमन्नेनोच्छार्जितेन वै ॥ ५०  
निवृत्तिरूपभोगस्य गोरसानां च वै रतिः ।  
स्थण्डिले शयनं योगः शाकपर्णनिषेवणम् ॥ ५१  
फलमूलाशन वायुरापः शैबलभक्षणम् ।  
ऋषीणां नियमा ह्येते यैर्जन्यजितां गतिम् ॥ ५२  
विधूमे न्यस्तमुसले व्यङ्ग्यारे भुक्तवज्जने ।  
अतीतपात्रसंचारे काले विगतमैक्षके ॥ ५३  
अतिथिं काङ्क्षमाणो वै शेषान्नकृतभोजनः ।  
सत्यधर्मरतिः क्षान्तो मुनिधर्मेण युज्यते ॥ ५४  
न स्तम्भी न च मानी यो न प्रमत्तो न विस्मितः ।  
मित्रामित्रसमो मैत्रो यः स धर्मविदुत्तमः ॥ ५५

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

१३०

उमोवाच ।

देशेषु रमणीयेषु गिरीणां निर्गरेषु च ।  
स्रवन्तीनां च कुक्षेषु पर्वतोपवनेषु च ॥ १  
देशेषु च विचित्रेषु फलवत्सु समाहिताः ।  
मूलवत्सु च देशेषु वसन्ति नियतव्रताः ॥ २  
तेषामपि विधिं पुण्यं श्रोतुमिच्छामि शंकर ।  
वानप्रस्थेषु देवेश स्वशरीरोपजीविषु ॥ ३  
महेश्वर उवाच ।  
वानप्रस्थेषु यो धर्मस्तं मे शृणु समाहिता ।  
श्रुत्वा चैकमना देवि धर्मबुद्धिपरा भव ॥ ४

संसिद्धैर्नियतैः सद्भिर्वनवाममुपागतैः ।  
 वानप्रस्थैरिदं कर्म कर्तव्यं शृणु यादृशम् ॥ ५  
 त्रिकालमभिषेकार्थः पितृदेवार्चनं क्रिया ।  
 अग्निहोत्रपरिस्पन्द इष्टिहोमविधिस्तथा ॥ ६  
 नीवारग्रहणं चैव फलमूलनिषेवणम् ।  
 इन्द्रुदैरण्डतैलानां स्नेहार्थं च निषेवणम् ॥ ७  
 योगचर्याकृतैः सिद्धैः कामक्रोधविवर्जनम् ।  
 वीरशय्यामुपासद्भिर्वीरस्थानोपसेविभिः ॥ ८  
 युक्तैर्योगवहैः सद्भिर्ग्रीष्मे पञ्चातपैस्तथा ।  
 मण्डूकयोगनियतैर्यथान्यायान्निषेविभिः ॥ ९  
 वीरासनगतैर्नित्यं स्थण्डिले शयनैस्तथा ।  
 शीतयोगोऽग्नियोगश्च चर्तव्यो धर्मबुद्धिभिः ॥ १०  
 अम्भक्षैर्वायुभक्षैश्च शैवालात्तरभोजनैः ।  
 अश्मकुट्टैस्तथा दानैः संप्रक्षालैस्तथापरैः ॥ ११  
 चीरवल्कलसंवीतैर्मृगचर्मनिवासिभिः ।  
 कार्या यात्रा यथाकालं यथाधर्मं यथाविधि ॥ १२  
 वननित्यैर्वनचरैर्वनपैर्वनगोचरैः ।  
 वनं गुरुमिवासाद्य वस्तव्यं वनजीविभिः ॥ १३  
 तेषां होमक्रिया धर्मः पञ्चयज्ञनिषेवणम् ।  
 नागपञ्चमयज्ञस्य वेदोक्तस्यानुपालनम् ॥ १४  
 अष्टमीयज्ञपरता चातुर्मास्यनिषेवणम् ।  
 पौर्णमास्यां तु यो यज्ञो नित्ययज्ञस्तथैव च ॥ १५  
 विमुक्ता दारसंयोगैर्विमुक्ताः सर्वसंकरैः ।  
 विमुक्ताः सर्वपापैश्च चरन्ति मुनयो वने ॥ १६  
 सुगन्धमाण्डपरमा नित्यं त्रेताग्निशरणाः सदा ।  
 सन्तः सत्पथनित्या ये ते यान्ति परमां गतिम् ॥  
 ब्रह्मलोकं महापुण्यं सोमलोकं च शाश्वतम् ।  
 गच्छन्ति मुनयः सिद्धा ऋषिधर्मव्यपाश्रयान् ॥ १८  
 एष धर्मो मया देवि वानप्रस्थाश्रितः शुभः ।  
 विस्तरेणार्थसंपन्नो यथास्थूलमुदाहृतः ॥ १९

उमोवाच ।

भगवन्देवदेवेश सर्वभूतनमस्कृत ।  
 यो धर्मो मुनिसघस्य सिद्धिवादिषु तं वद ॥ २०  
 सिद्धिवादिषु ससिद्धास्तथा वननिवासिनः ।  
 स्वैरिणो दारसंयुक्तास्तेषां धर्मः कथं स्मृतः ॥ २१  
 महेश्वर उवाच ।  
 स्वैरिणस्तापसा देवि सर्वे दारविहारिणः ।  
 तेषां मौण्ड्यं कषायश्च वासरात्रिश्च कारणम् ॥ २२  
 त्रिकालमभिषेकश्च होत्रं त्वृषिकृतं महत् ।  
 समाधिः सत्पथस्थानं यथोदितनिषेवणम् ॥ २३  
 ये च ते पूर्वकथिता धर्मा वननिवाasiनाम् ।  
 यदि सेवन्ति धर्मास्तानाप्रवन्ति तपःफलम् ॥ २४  
 ये च दपतिधर्माणः स्वदारनियतेन्द्रियाः ।  
 चरन्ति विधिदृष्टं तदनुकालाभिगामिनः ॥ २५  
 तेषामृषिकृतो धर्मो धर्मिणामुपपद्यते ।  
 न कामकारात्कामोऽन्यः ससेव्यो धर्मदर्शिभिः ॥  
 सर्वभूतेषु यः सम्यग्ददात्यभयदक्षिणाम् ।  
 हिसारोषविमुक्तात्मा स वै धर्मेण युज्यते ॥ २७  
 सर्वभूतानुकम्पी यः सर्वभूतार्जवव्रतः ।  
 सर्वभूतात्मभूतश्च स वै धर्मेण युज्यते ॥ २८  
 सर्ववेदेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम् ।  
 उभे एते समे स्यातामार्जव वा विशिष्यते ॥ २९  
 आर्जव धर्म इत्यादुरधर्मो जिह्वा उच्यते ।  
 आर्जवेनेह संयुक्तो नरो धर्मेण युज्यते ॥ ३०  
 आर्जवो भुवने नित्यं वसत्यमरसंनिधौ ।  
 तस्मादार्जवनित्यः स्याद्य इच्छेद्धर्ममात्मनः ॥ ३१  
 क्षान्तो दान्तो जितक्रोधो धर्मभूतोऽविहिसकः ।  
 धर्मं रतमना नित्यं नरो धर्मेण युज्यते ॥ ३२  
 व्यपेततन्द्रो धर्मात्मा शक्या सत्पथमाश्रितः ।  
 चारित्रपरमो बुद्धो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ३३

उमोवाच ।

आश्रमाभिरता देव तापसा ये तपोधनाः ।  
दीप्तिमन्तः कया चैव चर्ययाथ भवन्ति ते ॥ ३४  
राजानो राजपुत्राश्च निर्धना वा महाधनाः ।  
कर्मणा केन भगवन्प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥ ३५  
नित्यं स्थानमुपागम्य दिव्यचन्दनरूषिताः ।  
केन वा कर्मणा देव भवन्ति वनगोचराः ॥ ३६  
एतं मे संशयं देव तपश्चर्यागतं शुभम् ।  
शंस सर्वमशेषेण त्र्यक्ष त्रिपुरनाशन ॥ ३७

महेश्वर उवाच ।

उपवासव्रतैर्दान्ता अहिस्त्राः सत्यवादिनः ।  
संसिद्धाः प्रेत्य गन्धर्वैः सह मोदन्यनामयाः ॥ ३८  
मण्डूकयोगशयनो यथास्थान यथाविधि ।  
दीक्षां चरति धर्मात्मा स नागैः सह मोदते ॥ ३९  
शष्पं मृगमुखोत्सृष्टं यो मृगैः सह सेवते ।  
दीक्षितो वै मुदा युक्तः स गच्छत्यमरावतीम् ॥ ४०  
शैवालं शीर्णपर्णं वा तद्व्रतो यो निषेवते ।  
शीतयोगवहो नित्यं स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ ४१  
वायुभक्षोऽम्बुभक्षो वा फलमूलाशनोऽपि वा ।  
यक्षेष्वाश्वैश्चर्यमाधाय मोदतेऽप्सरसां गणैः ॥ ४२  
अग्नियोगवहो ग्रीष्मे विधिदृष्टेन कर्मणा ।  
चीर्त्वा द्वादश वर्षाणि राजा भवति पार्थिवः ॥ ४३  
आहारनियमं कृत्वा मुनिर्द्वादशवार्षिकम् ।  
मरुं संसाध्य यत्नेन राजा भवति पार्थिवः ॥ ४४  
स्थण्डिले शुद्धमाकाशं परिगृह्य समन्ततः ।  
प्रविश्य च मुदा युक्तो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ॥  
स्थण्डिलस्य फलान्याहुर्नाना शयनानि च ।  
गृहाणि च महार्हाणि चन्द्रशुभ्राणि भामिनि ॥ ४६  
आत्मानमुपजीवन्यो नियतो नियताशनः ।  
देहं वानशने त्यक्त्वा स स्वर्गं समुपाश्रुते ॥ ४७

आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ।  
त्यक्त्वा महार्णवे देहं वारुणं लोकमश्रुते ॥ ४८  
आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ।  
अश्मना चरणौ भित्त्वा गुह्यकेषु स मोदते ॥ ४९  
साधयित्वात्मनात्मानं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।  
चीर्त्वा द्वादश वर्षाणि दीक्षामेकां मनोगताम् ।  
स्वर्गलोकमवाप्नोति देवैश्च सह मोदते ॥ ५०  
आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ।  
हुत्वाभौ देहमुत्सृज्य वह्निलोके महीयते ॥ ५१  
यस्तु देवि यथान्यायं दीक्षितो नियतो द्विजः ।  
आत्मन्यात्मानमाधाय निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥ ५२  
चीर्त्वा द्वादश वर्षाणि दीक्षामेकां मनोगताम् ।  
अरणीसहितं स्कन्धे बद्ध्वा गच्छत्यनावृतः ॥ ५३  
वीराध्वानमना नित्यं वीरासनरतस्तथा ।  
वीरस्थायी च सततं स वीरगतिमाप्नुयात् ॥ ५४  
स शक्रलोकगो नित्यं सर्वकामपुरस्कृतः ।  
दिव्यपुष्पसमाकीर्णो दिव्यचन्दनभूषितः ।  
सुखं वसति धर्मात्मा दिवि देवगणैः सह ॥ ५५  
वीरलोकगतो वीरो वीरयोगवहः सदा ।  
सत्त्वस्थः सर्वमुत्सृज्य दीक्षितो नियतः शुचिः ।  
वीराध्वानं प्रपद्येद्यस्तस्य लोकाः सनातनाः ॥ ५६  
कामगेन विमानेन स वै चरति च्छन्दतः ।  
शक्रलोकगतः श्रीमान्मोदते च निरामयः ॥ ५७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

त्रिशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

१३१

उमोवाच ।

भगवन्भगनेत्रन्न पूष्णो दशनपातन ।  
दक्षक्तुह्र त्र्यक्ष संशयो मे महानयम् ॥ १  
चातुर्वर्ण्यं भगवता पूर्वं सृष्टं स्वयंभुवा ।

केन कर्मविपाकेन वैश्यो गच्छति शूद्रताम् ॥ २  
 वैश्यो वा क्षत्रियः केन द्विजो वा क्षत्रियो भवेत् ।  
 प्रतिलोमः कथं देव शक्यो धर्मो निषेवितुम् ॥ ३  
 केन वा कर्मणा विप्रः शूद्रयोनौ प्रजायते ।  
 क्षत्रियः शूद्रतामेति केन वा कर्मणा विभो ॥ ४  
 एतं मे सशयं देव वद भूतपतेऽनघ ।  
 त्रयो वर्णाः प्रकृत्येह कथं ब्राह्मण्यमाप्नुयुः ॥ ५

महेश्वर उवाच ।

ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्राप निसर्गाद्ब्राह्मणः शुभे ।  
 क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा निसर्गादिति मे मतिः ॥ ६  
 कर्मणा दुष्कृतेनेह स्थानाद्भ्रश्यति वै द्विजः ।  
 ज्येष्ठं वर्णमनुप्राप्य तस्माद्भ्रक्षेत वै द्विजः ॥ ७  
 स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति ।  
 क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयाय गच्छति ॥ ८  
 यस्तु विप्रत्वमुत्सृज्य क्षात्रं धर्मं निषेवते ।  
 ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्रयोनौ प्रजायते ॥ ९  
 वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यपाश्रयः ।  
 ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा ॥ १०  
 स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात् ।  
 स्वधर्मात्प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्वमाप्नुते ॥ ११  
 तत्रासौ निरयं प्राप्तो वर्णभ्रष्टो बहिष्कृतः ।  
 ब्रह्मलोकपरिभ्रष्टः शूद्रः समुपजायते ॥ १२  
 क्षत्रियो वा महाभागे वैश्यो वा धर्मचारिणि ।  
 स्वानि कर्माण्यपाहाय शूद्रकर्माणि सेवते ॥ १३  
 स्वस्थानात्स परिभ्रष्टो वर्णसंकरतां गतः ।  
 ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रत्वं याति तादृशः ॥ १४  
 यस्तु शुद्धः स्वधर्मेण ज्ञानविज्ञानवाञ्छुचिः ।  
 धर्मज्ञो धर्मनिरतः स धर्मफलमश्नुते ॥ १५  
 इदं चैवापरं देवि ब्राह्मणा समुदीरितम् ।  
 अध्यात्मं नैष्ठिकं सद्भिर्धर्मकामैर्निषेव्यते ॥ १६

उग्रान्नं गर्हितं देवि गणान्नं श्राद्धसूतकम् ।  
 घुष्टान्नं नैव भोक्तव्यं शूद्रान्नं नैव कर्हिचित् ॥ १७  
 शूद्रान्नं गर्हितं देवि देवदेवैर्महात्मभिः ।  
 पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः ॥ १८  
 शूद्रान्नेनावशेषेण जठरे यो म्रियेत वै ।  
 आहिताग्निस्था यज्वा स शूद्रगतिभागभवेत् ॥ १९  
 तेन शूद्रान्नशेषेण ब्रह्मस्थानादपाकृतः ।  
 ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्ति तत्र विचारणा ॥ २०  
 यस्यान्नेनावशेषेण जठरे यो म्रियेत वै ।  
 तां ता योनिं व्रजेद्विप्रो यस्यान्नमुपजीवति ॥ २१  
 ब्राह्मणत्वं शुभं प्राप्य दुर्लभं योऽवमन्यते ।  
 अभोज्यान्नानि चाश्नाति स द्विजत्वात्पतेत वै ॥ २२  
 सुरापो ब्रह्महा क्षुद्रश्चौरौ भग्नव्रतोऽशुचिः ।  
 स्वाध्यायवर्जितः पापो लुब्धो नैकृतिकः शठः ॥ २३  
 अव्रती वृषलीभर्ता कुण्डाशी सोमविक्रयी ।  
 निहीनसेवी विप्रो हि पतति ब्रह्मयोनितः ॥ २४  
 गुरुतल्पी गुरुद्वेषी गुरुकुत्सारतिश्च यः ।  
 ब्रह्मद्विष्टापि पतति ब्राह्मणो ब्रह्मयोनितः ॥ २५  
 एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा ।  
 शूद्रो ब्राह्मणतां गच्छेद्वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत् ॥ २६  
 शूद्रकर्माणि सर्वाणि यथान्यायं यथाविधि ।  
 शुश्रूषा परिचर्या च ज्येष्ठे वर्णे प्रयत्नतः ।  
 कुर्यादविमनाः शूद्रः सततं सत्पथे स्थितः ॥ २७  
 दैवतद्विजसत्कर्ता सर्वातिथ्यकृतव्रतः ।  
 ऋतुकालाभिगामी च नियतो नियताशनः ॥ २८  
 चौक्षश्चौक्षजनान्वेषी शेषान्नकृतभोजनः ।  
 वृथामांसान्यभुञ्जानः शूद्रो वैश्यत्वमृच्छति ॥ २९  
 ऋतवागनहवादी निर्द्विद्धः शमकोविदः ।  
 यजते नित्ययज्ञैश्च स्वाध्यायपरमः शुचिः ॥ ३०  
 दान्तो ब्राह्मणसत्कर्ता सर्ववर्णबुभूषकः ।



गृहस्थव्रतमातिष्ठन्द्रिकालकृतभोजनः ॥ ३१  
 शेषाशी विजिताहारो निष्कामो निरहंवदः ।  
 अग्निहोत्रमुपासंश्च जुह्वानश्च यथाविधि ॥ ३२  
 सर्वातिथ्यमुपातिष्ठन्शेषान्नकृतभोजनः ।  
 त्रेताग्निमन्त्रविहितो वैश्यो भवति वै यदि ।  
 स वैश्यः क्षत्रियकुले शुचौ महति जायते ॥ ३३  
 स वैश्यः क्षत्रियो जातो जन्मप्रभृति संस्कृतः ।  
 उपनीतो व्रतपरो द्विजो भवति सत्कृतः ॥ ३४  
 ददाति यजते यज्ञैः संस्कृतैराप्तदक्षिणैः ।  
 अधीते स्वर्गमन्विच्छंस्त्रेताग्निशरणः सदा ॥ ३५  
 भार्ताहस्तप्रदो नित्यं प्रजा धर्मेण पालयन् ।  
 सत्यः सत्यानि कुरुते नित्यं यः सुखदर्शनः ॥ ३६  
 धर्मदण्डो न निर्दण्डो धर्मकार्यानुशासकः ।  
 यस्त्रितः कार्यकरणे षड्भागाकृतलक्षणः ॥ ३७  
 ग्राम्यधर्मान्न सेवेत स्वच्छन्देनार्थकोविदः ।  
 ऋतुकाले तु धर्मात्मा पत्नी सेवेत नित्यदा ॥ ३८  
 सर्वोपवासी नियतः स्वाध्यायपरमः शुचिः ।  
 बर्हिष्कान्तरिते नित्यं शयानोऽग्निगृहे सदा ॥ ३९  
 सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य कुर्वाणः सुमनाः सदा ।  
 शूद्राणां चान्नकामानां नित्यं सिद्धमिति ब्रुवन् ॥ ४०  
 स्वार्थाद्वा यदि वा कामान्न किञ्चिदुपलक्षयेत् ।  
 पितृदेवातिथिकृते साधनं कुरुते च यः ॥ ४१  
 स्ववेश्मनि यथान्यायमुपास्ते भैक्षमेव च ।  
 त्रिकालमग्निहोत्रं च जुह्वानो वै यथाविधि ॥ ४२  
 गोब्राह्मणहितार्थाय रणे चाभिमुखो हतः ।  
 त्रेताग्निमन्त्रपूतं वा समाविश्य द्विजो भवेत् ॥ ४३  
 ज्ञानविज्ञानसंपन्नः संस्कृतो वेदपारगः ।  
 विप्रो भवति धर्मात्मा क्षत्रियः स्वेन कर्मणा ॥ ४४  
 एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भवः ।  
 शूद्रोऽप्यागमसंपन्नो द्विजो भवति संस्कृतः ॥ ४५

ब्राह्मणो वाप्यसद्वृत्तः सर्वसंकरभोजनः ।  
 ब्राह्मण्यं पुण्यमुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः ॥ ४६  
 कर्मभिः शुचिभिर्देवि शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः ।  
 शूद्रोऽपि द्विजवत्सेव्य इति ब्रह्माब्रवीत्स्वयम् ॥ ४७  
 स्वभावकर्म च शुभ यत्र शूद्रोऽपि तिष्ठति ।  
 विशुद्धः स द्विजातिर्वै विज्ञेय इति मे मतिः ॥ ४८  
 न योनिर्नापि सत्कारो न श्रुतं न च संनतिः ।  
 कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् ॥ ४९  
 सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते ।  
 वृत्ते स्थितश्च सुश्रोणि ब्राह्मणत्व निगच्छति ॥ ५०  
 ब्राह्मः स्वभावः कल्याणि समः सर्वत्र मे मतिः ।  
 निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः ॥ ५१  
 एते योनिफला देवि स्थानभागनिदर्शकाः ।  
 स्वयं च वरदेनोक्ता ब्रह्मणा सृजता प्रजाः ॥ ५२  
 ब्राह्मणो हि महत्क्षेत्रं लोके चरति पादवत् ।  
 यत्तत्र बीजं वपति सा कृषिः पारलौकिकी ॥ ५३  
 मिताशिना सदा भाव्यं सत्पथालम्बिना सदा ।  
 ब्राह्ममार्गमतिक्रम्य वर्तितव्यं बुभूषता ॥ ५४  
 संहिताध्यायिना भाव्यं गृहे वै गृहमेधिना ।  
 नित्यं स्वाध्याययुक्तेन दानाध्ययनजीविना ॥ ५५  
 एवंभूतो हि यो विप्रः सततं सत्पथे स्थितः ।  
 आहिताग्निरधीयानो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५६  
 ब्राह्मण्यमेव संप्राप्य रक्षितव्यं यतात्मभिः ।  
 योनिप्रतिग्रहादानैः कर्मभिश्च शुचिस्मिते ॥ ५७  
 एतत्ते सर्वमाख्यातं यथा शूद्रो भवेद्द्विजः ।  
 ब्राह्मणो वा च्युतो धर्माद्यथा शूद्रत्वमाप्नुते ॥ ५८

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

१३२

उमोवाच ।

भगवन्सर्वभूतेश सुरासुरनमस्कृत ।  
धर्माधर्मे नृणां देव ब्रूहि मे संशय विभो ॥ १  
कर्मणा मनसा वाचा त्रिविधं हि नरः सदा ।  
बध्यते बन्धनैः पाशैर्मुच्यतेऽप्यथ वा पुनः ॥ २  
केन शीलेन वा देव कर्मणा कीदृशेन वा ।  
समाचारैर्गुणैर्वाक्यैः स्वर्गं यान्तीह मानवाः ॥ ३

महेश्वर उवाच ।

देवि धर्मार्थतत्त्वज्ञे सत्यनित्ये दमे रते ।  
सर्वप्राणिहितः प्रभः श्रूयतां बुद्धिवर्धनः ॥ ४  
सत्यधर्मरताः सन्तः सर्वलिप्साविवर्जिताः ।  
नाधर्मेण न धर्मेण बध्यन्ते छिन्नसंशयाः ॥ ५  
प्रलयोत्पत्तितत्त्वज्ञाः सर्वज्ञाः समदर्शिनः ।  
वीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषाः सर्वबन्धनैः ॥ ६  
कर्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किञ्चन ।  
ये न सज्जन्ति कस्मिंश्चिद्बध्यन्ते ते न कर्मभिः ॥ ७  
प्राणातिपाताद्विरताः शीलवन्तो दयान्विताः ।  
तुल्यद्वेष्यप्रिया दान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनैः ॥ ८  
सर्वभूतदयावन्तो विश्वास्याः सर्वजन्तुषु ।  
त्यक्त्वा हिंसासमाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ९  
परस्वे निर्ममा नित्यं परदारविवर्जकाः ।  
धर्मलब्धार्थभोक्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ १०  
मातृवत्स्वसृवच्चैव नित्यं दुहितृवच्च ये ।  
परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ११  
स्तैन्यान्निवृत्ताः सततं संतुष्टाः स्वधनेन च ।  
स्वभाग्यान्युपजीवन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ १२  
स्वदारनिरता ये च ऋतुकालाभिगामिनः ।  
अग्राभ्यसुखभोगाश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ १३  
परदारेषु ये नित्यं चारित्रावृतलोचनाः ।

यतेन्द्रियाः शीलपरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ १४  
एष देवकृतो मार्गः सेवितव्यः सदा नरैः ।  
अकषायकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा बुधैः ॥ १५  
दानधर्मतपोयुक्तः शीलशौचदयात्मकः ।  
वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा सेवितव्यः सदा नरैः ।  
स्वर्गवासममीप्सद्भिर्न सेव्यस्त्वत उत्तरः ॥ १६

उमोवाच ।

वाचाथ बध्यते येन मुच्यतेऽप्यथ वा पुनः ।  
तानि कर्माणि मे देव वद भूतपतेऽनघ ॥ १७

महेश्वर उवाच ।

आत्महेतोः परार्थे वा नर्महास्याश्रयात्तथा ।  
ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ १८  
वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा कामकारात्तथैव च ।  
अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ १९  
ऋषणां वाणीं निरावाधां मधुरां पापवर्जिताम् ।  
स्वागतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २०  
कटुकां ये न भाषन्ते परुषां निष्ठुरां गिरम् ।  
अपैशुन्यरताः सन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २१  
पिशुना ये न भाषन्ते मित्रभेदकरीं गिरम् ।  
ऋता मैत्रीं प्रभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २२  
वर्जयन्ति सदा सूच्यं परद्रोहं च मानवाः ।  
सर्वभूतसमा दान्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २३  
शठप्रलापाद्विरता विरुद्धपरिवर्जकाः ।  
सौम्यप्रलापिनो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २४  
न कोपाद्व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारणीम् ।  
सान्त्वं वदन्ति क्रुद्धापि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २५  
एष वाणीकृतो देवि धर्मः सेव्यः सदा नरैः ।  
शुभः सत्यगुणो नित्यं वर्जनीया मृषा बुधैः ॥ २६

उमोवाच ।

मनसा बध्यते येन कर्मणा पुरुषः सदा ।

तन्मे ब्रूहि महाभाग देवदेव पिनाकधृक् ॥ २७

महेश्वर उवाच ।

मानसेनेह धर्मेण संयुक्ताः पुरुषाः सदा ।

स्वर्गं गच्छन्ति कल्याणि तन्मे कीर्तयतः शृणु ॥ २८

दुष्प्रणीतेन मनसा दुष्प्रणीततराकृतिः ।

बध्यते मानवो येन शृणु चान्यच्छुभानने ॥ २९

अरण्ये विजने न्यस्तं परस्वं वीक्ष्य ये नराः ।

मनसापि न हिसन्ति ते स्वर्गगामिनः ॥ ३०

ग्रामे गृहे वा यद्व्यं पारव्यं विजने स्थितम् ।

नाभिनन्दन्ति वै नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३१

तथैव परदारान्ये कामवृत्तान् रहोगताम् ।

मनसापि न हिसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३२

शत्रुं मित्रं च ये नित्यं तुल्येन मनसा नराः ।

भजन्ति मैत्राः संगम्य ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३३

श्रुतवन्तो दयावन्तः शुचयः सत्यसंगराः ।

स्वैरर्थैः परिसंतुष्टास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३४

अवैरा ये त्वनायासा मैत्रचित्तपराः सदा ।

सर्वभूतदयावन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३५

श्रद्धावन्तो दयावन्तश्चोक्षाश्चोक्षजनप्रियाः ।

धर्माधर्मविदो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३६

शुभानामशुभानां च कर्मणां फलसंचये ।

विपाकज्ञाश्च ये देवि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३७

न्यायोपेता गुणोपेता देवद्विजपराः सदा ।

समतां समनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३८

शुभैः कर्मफलैर्देवि मयैते परिकीर्तिताः ।

स्वर्गमार्गोपगा भूयः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३९

उमोवाच ।

महान्मे संशयः कश्चिन्मर्त्यान्प्रति महेश्वर ।

तस्मात्तं नैपुणेनाद्य ममाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ ४०

केनायुर्लभते दीर्घं कर्मणा पुरुषः प्रभो ।

तपसा वापि देवेश केनायुर्लभते महत् ॥ ४१

क्षीणायुः केन भवति कर्मणा भुवि मानवः ।

विपाकं कर्मणां देव वक्तुमर्हस्यनिन्दित ॥ ४२

अपरे च महाभोगा मन्दभोगास्तथापरे ।

अकुलीनास्तथा चान्ये कुलीनाश्च तथापरे ॥ ४३

दुर्दर्शाः केचिदाभान्ति नराः काष्ठमया इव ।

प्रियदर्शास्तथा चान्ये दर्शनादेव मानवाः ॥ ४४

दुष्प्रज्ञाः केचिदाभान्ति केचिदाभान्ति पण्डिताः ।

महाप्रज्ञास्तथैवान्ये ज्ञानविज्ञानदर्शिनः ॥ ४५

अल्पाबाधास्तथा केचिन्महाबाधास्तथापरे ।

दृश्यन्ते पुरुषा देव तन्मे शंसितुमर्हसि ॥ ४६

महेश्वर उवाच ।

हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि देवि कर्मफलोदयम् ।

मर्त्यलोके नराः सर्वे येन स्वं भुञ्जते फलम् ॥ ४७

प्राणातिपाती यो रौद्रो दण्डहस्तोद्यतस्तथा ।

नित्यमुद्यतदण्डश्च हन्ति भूतगणान्नरः ॥ ४८

निर्दयः सर्वभूतानां नित्यमुद्वेगकारकः ।

अपि कीटपिपीलानामशरण्यः सुनिर्घृणः ॥ ४९

एवंभूतो नरो देवि निरयं प्रतिपद्यते ।

विपरीतस्तु धर्मात्मा रूपवानभिजायते ॥ ५०

निरयं याति हिंसात्मा याति स्वर्गमहिसकः ।

यातनां निरये रौद्रां स कृच्छ्रां लभते नरः ॥ ५१

अथ चेन्निरयात्तस्मात्समुत्तरति कर्हिचित् ।

मानुष्यं लभते चापि हीनायुस्तत्र जायते ॥ ५२

पापेन कर्मणा देवि बद्धो हिसारतिर्नरः ।

अप्रियः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते ॥ ५३

यस्तु शुक्लाभिजातीयः प्राणिघातविवर्जकः ।

निश्क्षिप्तदण्डो निर्दण्डो न हिनस्ति कदाचन ॥ ५४

न घातयति नो हन्ति घ्नन्तं नैवानुमोदते ।

सर्वभूतेषु सस्नेहो यथात्मनि तथापरे ॥ ५५

ईदृशः पुरुषोत्कर्षो देवि देवत्वमश्रुते ।  
 उपपन्नान्सुखान्भोगानुपाश्रानि मुदा युतः ॥ ५६  
 अथ चेन्मानुषे लोके कदाचिदुपपद्यते ।  
 तत्र दीर्घायुरुत्पन्नः स नरः सुखमेधते ॥ ५७  
 एवं दीर्घायुषां मार्गः सुवृत्तानां सुकर्मणाम् ।  
 प्राणिर्हिंसाविमोक्षेण ब्रह्मणा समुदीरितः ॥ ५८

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

१३३

उमोवाच ।

किंशीलाः किंसमाचाराः पुरुषाः कैश्च कर्मभिः ।  
 स्वर्गं समभिपद्यन्ते सप्रदानेन केन वा ॥ १

महेश्वर उवाच ।

दाता ब्राह्मणसत्कर्ता दीनान्धकृपणादिषु ।  
 भक्ष्यभोज्यान्नपानानां वाससां च प्रदायकः ॥ २  
 प्रतिश्रयान्सभाः कूपान्प्रपाः पुष्करिणीस्तथा ।  
 नैत्यकानि च सर्वाणि किमिच्छकमतीव च ॥ ३  
 आसनं शयनं यानं धनं रत्नं गृहांस्तथा ।  
 सस्यजातानि सर्वाणि गाः क्षेत्राण्यथ योषितः ॥ ४  
 सुप्रतीतमना नित्यं यः प्रयच्छति मानवः ।  
 एवंभूतो मृतो देवि देवलोकेऽभिजायते ॥ ५  
 तत्रोष्य सुचिरं कालं भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् ।  
 सहाप्सरोभिर्मुदितो रमित्वा नन्दनादिषु ॥ ६  
 तस्मात्स्वर्गाद्भ्युतो लोकान्मानुषेषूपजायते ।  
 महाभोगे कुले देवि धनधान्यसमाचिते ॥ ७  
 तत्र कामगुणैः सर्वैः समुपेतो मुदा युतः ।  
 महाभोगो महाकोशो धनी भवति मानवः ॥ ८  
 एते देवि महाभोगाः प्राणिनो दानशीलिनः ।  
 ब्रह्मणा वै पुरा प्रोक्ताः सर्वस्य प्रियदर्शनाः ॥ ९  
 अपरे मानवा देवि प्रदानकृपणा द्विजैः ।

याचिता न प्रयच्छन्ति विद्यमानेऽप्यबुद्धयः ॥ १०  
 दीनान्धकृपणान्दृष्ट्वा भिक्षुकानतिथीनपि ।  
 याच्यमाना निवर्तन्ते जिह्वालोभसमन्विताः ॥ ११  
 न धनानि न वासासि न भोगान्न च काञ्चनम् ।  
 न गावो नान्नविकृतिं प्रयच्छन्ति कदाचन ॥ १२  
 अप्रवृत्तास्तु ये लुब्धा नास्तिका दानवर्जिताः ।  
 एवंभूता नरा देवि निरयं यान्त्यबुद्धयः ॥ १३  
 ते चेन्मनुष्यतां यान्ति यदा कालस्य पर्ययात् ।  
 धनरिक्ते कुले जन्म लभन्ते स्वल्पबुद्धयः ॥ १४  
 क्षुत्पिपासापरीताश्च सर्वभोगब्रह्मिष्कृताः ।  
 निराशाः सर्वभोगेभ्यो जीवन्त्यधमजीविकाम् ॥ १५  
 अल्पभोगकुले जाता अल्पभोगरता नराः ।  
 अनेन कर्मणा देवि भवन्त्यधनिनो नराः ॥ १६  
 अपरे स्तम्भिनो नित्यं मानिनः पापतो रताः ।  
 आसन्नार्हस्य ये पीठं न प्रयच्छन्त्यचेतसः ॥ १७  
 मार्गार्हस्य च ये मार्गं न यच्छन्त्यल्पबुद्धयः ।  
 पादार्हस्य च ये पादं न ददन्त्यल्पबुद्धयः ॥ १८  
 अर्घार्हान्न च सत्कारैरर्चयन्ति यथाविधि ।  
 अर्घ्यमाचमनीयं वा न यच्छन्त्यल्पबुद्धयः ॥ १९  
 गुरुं चाभिगतं प्रेम्णा गुरुवन्न बुभूषते ।  
 अभिमानप्रवृत्तेन लोभेन समवस्थिताः ॥ २०  
 समान्याश्चावमन्यन्ते वृद्धान्परिभवन्ति च ।  
 एवंविधा नरा देवि सर्वे निरयगामिनः ॥ २१  
 ते वै यदि नरास्तस्मान्निरयादुत्तरन्ति वै ।  
 वर्षपूगैस्ततो जन्म लभन्ते कुत्सिते कुले ॥ २२  
 श्वपाकपुल्कसादीनां कुत्सितानामचेतसाम् ।  
 कुलेषु तेषु जायन्ते गुरुवृद्धापचायिनः ॥ २३  
 न स्तम्भी न च मानी यो देवताद्विजपूजकः ।  
 लोकपूज्यो नमस्कर्ता प्रश्रितो मधुर वदन ॥ २४  
 सर्ववर्णप्रियकरः सर्वभूतहितः सदा ।

अद्वेषी सुमुखः शृङ्गणः स्निग्धवाणीप्रदः सदा ॥ २५  
 स्वागतैर्नैव सर्वेषां भूतानामविहिंसकः ।  
 यथार्हसत्क्रियापूर्वमर्चयन्नपतिष्ठति ॥ २६  
 मार्गार्हाय ददन्मार्गं गुरुं गुरुवदर्चयन् ।  
 अतिथिप्रग्रहरतस्तथाभ्यागतपूजकः ॥ २७  
 एवंभूतो नरो देवि स्वर्गतिं प्रतिपद्यते ।  
 ततो मानुषतां प्राप्य विशिष्टकुलजो भवेत् ॥ २८  
 तत्रासौ विपुलैर्भोगैः सर्वरत्नसमायुतः ।  
 यथार्हदाता चार्हेषु धर्मचर्यापरो भवेत् ॥ २९  
 संमतः सर्वभूतानां सर्वलोकनमस्कृतः ।  
 स्वकर्मफलमाप्नोति स्वयमेव नरः सदा ॥ ३०  
 वृद्धात्कुलजातीय वृद्धात्ताभिजनः सदा ।  
 एष धर्मो मया प्रोक्तो विधात्रा स्वयमीरितः ॥ ३१  
 यस्तु रौद्रसमाचारः सर्वसत्त्वभयंकरः ।  
 इस्ताभ्यां यदि वा पद्भ्यां रज्ज्वा दण्डेन वा पुनः ॥ ३२  
 लोष्टैः स्तम्भैरुपायैर्वा जन्तून्बाधति शोभने ।  
 हिंसार्थं निकृतिप्रज्ञः प्रोद्वेजयति चैव ह ॥ ३३  
 उपक्रामति जन्तून् उद्वेगजननः सदा ।  
 एवंशीलसमाचारो निरयं प्रतिपद्यते ॥ ३४  
 स चेन्मानुषतां गच्छेद्यदि कालस्य पर्ययात् ।  
 ब्रह्माबाधपरिच्छिष्टे सोऽधमे जायते कुले ॥ ३५  
 लोकद्वेष्योऽधमः पुंसां स्वयं कर्मकृतैः फलैः ।  
 एष देवि मनुष्येषु बोद्धव्यो ज्ञातिबन्धुषु ॥ ३६  
 अपरः सर्वभूतानि दयावाननुपश्यति ।  
 मैत्रदृष्टिः पितृसमो निर्वैरो नियतेन्द्रियः ॥ ३७  
 नोद्वेजयति भूतानि न विहिसयते तथा ।  
 हस्तपादैः सुनियतैर्विश्वास्यः सर्वजन्तुषु ॥ ३८  
 न रज्ज्वा न च दण्डेन न लोष्टैर्नायुधेन च ।  
 उद्वेजयति भूतानि शृङ्गणकर्मा दयापरः ॥ ३९  
 एवंशीलसमाचारः स्वर्गे समुपजायते ।

तत्रासौ भवने दिव्ये मुदा वसति देववत् ॥ ४०  
 स चेत्कर्मक्षयान्मर्त्यो मनुष्येषूपजायते ।  
 अल्पाबाधो निरीतीकः स जातः सुखमेधते ॥ ४१  
 सुखभागी निरायासो निरुद्वेगः सदा नरः ।  
 एष देवि सतां मार्गो बाधा यत्र न विद्यते ॥ ४२  
 उमोवाच ।

इमे मनुष्या दृश्यन्ते ऊहापोहविशारदाः ।  
 ज्ञानविज्ञानसंपन्नाः प्रज्ञावन्तोऽर्थकोषिदाः ।  
 दुष्प्रज्ञाश्चापरे देव ज्ञानविज्ञानवर्जिताः ॥ ४३  
 केन कर्मविपाकेन प्रज्ञावान्पुरुषो भवेत् ।  
 अल्पप्रज्ञो विरूपाक्ष कथं भवति मानवः ।  
 एतं मे संशयं छिन्द्व सर्वधर्मविदां वर ॥ ४४  
 जात्यन्धाश्चापरे देव रोगार्ताश्चापरे तथा ।  
 नराः क्लीबाश्च दृश्यन्ते कारणं ब्रूहि तत्र वै ॥ ४५  
 महेश्वर उवाच ।

ब्राह्मणान्वेदविदुषः सिद्धान्धर्मविदस्तथा ।  
 परिपृच्छन्त्यहरहः कुशलाकुशलं तथा ॥ ४६  
 वर्जयन्त्यशुभं कर्म सेवमानाः शुभं तथा ।  
 लभन्ते स्वर्गतिं नित्यमिह लोके सुखं तथा ॥ ४७  
 स चेन्मानुषतां याति मेधावी तत्र जायते ।  
 श्रुतं प्रज्ञानुगं चास्य कल्याणमुपजायते ॥ ४८  
 परदारेषु ये मूढाश्चक्षुर्दुष्ट प्रयुञ्जते ।  
 तेन दुष्टस्वभावेन जात्यन्धास्ते भवन्ति ह ॥ ४९  
 मनसा तु प्रदुष्टेन नग्नां पश्यन्ति ये स्त्रियम् ।  
 रोगार्तास्ते भवन्तीह नरा दुष्कृतकर्मिणः ॥ ५०  
 ये तु मूढा दुराचारा वियोनौ मैथुने रताः ।  
 पुरुषेषु सुदुष्टप्रज्ञाः क्लीबत्वमुपयान्ति ते ॥ ५१  
 पशून् ये बन्धयन्ति ये चैव गुरुतल्पगाः ।  
 प्रकीर्णमैथुना ये च क्लीबा जायन्ति ते नराः ॥ ५२

उमोवाच ।

सावद्यं किं नु वै कर्म निरवद्यं तथैव च ।  
श्रेयः कुर्वन्नवाप्नोति मानवो देवसत्तम ॥ ५३

महेश्वर उवाच ।

श्रेयांसं मार्गमातिष्ठन्सदा यः पृच्छते द्विजान् ।  
धर्मान्वेषी गुणाकाङ्क्षी स स्वर्गं समुपाश्रुते ॥ ५४  
यदि मानुषतां देवि कदाचित्स निगच्छति ।  
मेधावी धारणायुक्तः प्राज्ञस्तत्राभिजायते ॥ ५५  
एष देवि सतां धर्मो मन्तव्यो भूतिकारकः ।  
नृणां हितार्थाय तव मया वै समुदाहृतः ॥ ५६

उमोवाच ।

अपरे स्वल्पविज्ञाना धर्मविद्वेषिणो नराः ।  
ब्राह्मणान्वेदविदुषो नेच्छन्ति परिसर्पितुम् ॥ ५७  
व्रतवन्तो नराः केचिच्छूद्रादमपरायणाः ।  
अव्रता भ्रष्टनियमास्तथान्ये राक्षसोपमाः ॥ ५८  
यज्वानश्च तथैवान्ये निर्होमाश्च तथापरे ।  
केन कर्मविपाकेन भवन्तीह वदस्व मे ॥ ५९

महेश्वर उवाच ।

आगमाल्लोकधर्माणां मर्यादाः पूर्वनिर्मिताः ।  
प्रामाण्येनानुवर्तन्ते दृश्यन्ते हि दृढव्रताः ॥ ६०  
अधर्मं धर्ममित्याहुर्न च मोहवशं गताः ।  
अव्रता नष्टमर्यादास्ते प्रोक्ता ब्रह्मराक्षसाः ॥ ६१  
ते चेत्कालकृतोद्योगात्संभवन्तीह मानुषाः ।  
निर्होमा निर्बन्धद्वारास्ते भवन्ति नराधमाः ॥ ६२  
एष देवि मया सर्वः संशयच्छेदनाय ते ।  
कुशलाकुशलो नृणां व्याख्यातो धर्मसागरः ॥ ६३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

१३४

महेश्वर उवाच ।

परावरज्ञे धर्मज्ञे तपोवननिवासिनि ।  
साध्वि सुभ्रु सुकेशान्ते हिमवत्पर्वतात्मजे ॥ १  
दक्षे शमदमोपेते निर्ममे धर्मचारिणि ।  
पृच्छामि त्वां वरारोहे पृष्टा वद ममेप्सितम् ॥ २  
सावित्री ब्रह्मणः साध्वी दौशिकस्य शची सती ।  
मार्तण्डजस्य धूमोर्णा ऋद्धिर्वैश्रवणस्य च ॥ ३  
वरुणस्य तथा गौरी सूर्यस्य च सुवर्चला ।  
रोहिणी शशिनः साध्वी स्वाहा चैव विभावसोः ॥  
अदितिः कश्यपस्याथ सर्वास्ताः पतिदेवताः ।  
पृष्टाश्चोपासिताश्चैव तास्तव्या देवि नित्यशः ॥ ५  
तेन त्वां परिपृच्छामि धर्मज्ञे धर्मवादिनि ।  
स्त्रीधर्मं श्रोतुमिच्छामि त्वयोदाहृतमादिनः ॥ ६  
सहधर्मचरी मे त्वं समशीला समव्रता ।  
समानसारवीर्या च तपस्तीव्रं कृतं च ते ।  
त्वया ह्युक्तो विशेषेण प्रमाणत्वमुपैष्यति ॥ ७  
स्त्रियश्चैव विशेषेण स्त्रीजनस्य गतिः सदा ।  
गौर्गा गच्छति सुश्रोणि लोकेष्वेषा स्थितिः सदा ॥  
मम चार्धं शरीरस्य मम चार्धाद्विनिःसृता ।  
सुरकार्यकरी च त्वं लोकसंतानकारिणी ॥ ९  
तव सर्वः सुविदितः स्त्रीधर्मः शाश्वतः शुभे ।  
तस्मादशेषतो ब्रूहि स्त्रीधर्मं विस्तरेण मे ॥ १०

उमोवाच ।

भगवन्सर्वभूतेश भूतभव्यभवोद्भव ।  
त्वरप्रभावादियं देव वाक्चैव प्रतिभाति मे ॥ ११  
इमास्तु नद्यो देवेश सर्वतीर्थोदकैर्युताः ।  
उपस्पर्शनहेतोस्त्वा समीपस्था उपासते ॥ १२  
एताभिः सह संमग्न्य प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।  
प्रभवन्त्योऽनहवादी स वै पुरुष उच्यते ॥ १३

स्त्री च भूतेश सततं स्त्रियमेवानुधावति ।  
 मया संमानिताश्चैव भविष्यन्ति सरिद्वराः ॥ १४  
 एषा सरस्वती पुण्या नदीनामुत्तमा नदी ।  
 प्रथमा सर्वसरितां नदी सागरगामिनी ॥ १५  
 विपाशा च वितस्ता च चन्द्रभागा इरावती ।  
 शतद्रुदेविका सिन्धुः कौशिकी गोमती तथा ॥ १६  
 तथा देवनदी चैव सर्वतीर्थीभिसंवृता ।  
 गगनाद्गां गता देवी गङ्गा सर्वसरिद्वरा ॥ १७  
 इत्युक्त्वा देवदेवस्य पत्नी धर्मभृतां वरा ।  
 स्मितपूर्वमिवाभाष्य सर्वास्ताः सरितस्तदा ॥ १८  
 अपृच्छदेवमहिषी स्त्रीधर्मं धर्मवत्सला ।  
 स्त्रीधर्मकुशलास्ता वै गङ्गाद्याः सरितां वराः ॥ १९  
 अयं भगवता दत्तः प्रश्नः स्त्रीधर्मसंश्रितः ।  
 तं तु संमन्य युष्माभिर्वक्तुमिच्छामि शंकरे ॥ २०  
 न चैकसाध्यं पश्यामि विज्ञानं भुवि कस्यचित् ।  
 दिवि वा सागरगमास्तेन वो मानयाम्यहम् ॥ २१

भीष्म उवाच ।

एवं सर्वाः सरिच्छ्रेष्ठाः पृष्ठाः पुण्यतमाः शिवाः ।  
 ततो देवनदी गङ्गा नियुक्ता प्रतिपूज्य ताम् ॥ २२  
 बह्वीर्भुवुद्विभिः स्फीता स्त्रीधर्मज्ञा शुचिस्मिता ।  
 शैलराजसुतां देवीं पुण्या पापापहां शिवाम् ॥ २३  
 बुद्ध्या विनयसंपन्ना सर्वज्ञानविशारदा ।  
 सस्मितं बहुबुद्ध्याढ्या गङ्गा वचनमब्रवीत् ॥ २४  
 धन्याः स्मोऽनुगृहीताः स्मो देवि धर्मपरायणा ।  
 या त्वं सर्वजगन्मान्या नदीर्मानयसेऽनघे ॥ २५  
 प्रभवन्पृच्छते यो हि संमानयति वा पुनः ।  
 नूनं जनमदुष्टात्मा पण्डिताख्यां स गच्छति ॥ २६  
 ज्ञानविज्ञानसपन्नानूहापोहविशारदान ।  
 प्रवक्तुं पृच्छते योऽन्यान्स वै ना पदमर्हति ॥  
 अन्यथा बहुबुद्ध्याढ्यो वाक्यं वदति संसदि ।

अन्यथैव ह्यहंमानी दुर्बलं वदते वचः ॥ २८  
 दिव्यज्ञाने दिवि श्रेष्ठे दिव्यपुण्ये सदोत्थिते ।  
 त्वमेवार्हसि नो देवि स्त्रीधर्ममनुशासितुम् ॥ २९

भीष्म उवाच ।

ततः साराधिता देवी गङ्गाया बहुभिर्गुणैः ।  
 ग्राह सर्वमशेषेण स्त्रीधर्मं सुरसुन्दरी ॥ ३०  
 स्त्रीधर्मो मां प्रति यथा प्रतिभाति यथाविधि ।  
 तमहं कीर्तयिष्यामि तथैव प्रथितो भवेत् ॥ ३१  
 स्त्रीधर्मः पूर्वं एवायं विवाहे बन्धुभिः कृतः ।  
 सहधर्मचरी भर्तुर्भवत्यग्निसमीपतः ॥ ३२  
 सुखभावा सुवचना सुवृत्ता सुखदर्शना ।  
 अनन्यचित्ता सुमुखी भर्तुः सा धर्मचारिणी ॥ ३३  
 सा भवेद्धर्मपरमा सा भवेद्धर्मभागिनी ।  
 देववत्सततं साध्वी या भर्तारं प्रपश्यति ॥ ३४  
 शुश्रूषां परिचार च देववद्या करोति च ।  
 नान्यभावा ह्यविमनाः सुव्रता सुखदर्शना ॥ ३५  
 पुत्रवक्त्रमिवाभीक्ष्ण भर्तुर्वदनमीक्षते ।  
 या साध्वी नियताचारा सा भवेद्धर्मचारिणी ॥ ३६  
 श्रुत्वा दंपतिधर्मं वै सहधर्मकृतं शुभम् ।  
 अनन्यचित्ता सुमुखी भर्तुः सा धर्मचारिणी ॥ ३७  
 परुषाण्यपि चोक्ता या दृष्टा वा क्रूरचक्षुषा ।  
 सुप्रसन्नमुखी भर्तुर्या नारी सा पतिव्रता ॥ ३८  
 न चन्द्रसूर्यौ न तरुं पुंनामो या निरीक्षते ।  
 भर्तृवर्जं वरारोहा सा भवेद्धर्मचारिणी ॥ ३९  
 दरिद्रं व्याधितं दीनमध्वना परिकर्षितम् ।  
 पति पुत्रमिवोपास्ते सा नारी धर्मभागिनी ॥ ४०  
 या नारी प्रयता दक्षा या नारी पुत्रिणी भवेत् ।  
 पतिप्रिया पतिप्राणा सा नारी धर्मभागिनी ॥ ४१  
 शुश्रूषां परिचर्या च करोत्यविमनाः सदा ।  
 सुप्रतीता विनीता च सा नारी धर्मभागिनी ॥ ४२

न कामेषु न भोगेषु नैश्वर्ये न सुखे तथा ।  
 स्पृहा यस्या यथा पत्यौ सा नारी धर्मभागिनी ॥  
 कल्योत्थानरता नित्यं गुरुशुश्रूषणे रता ।  
 सुसंमृष्टक्षया चैव गोशकृत्कृतलेपना ॥ ४४  
 अग्निकार्यपरा नित्यं सदा पुष्पबलिप्रदा ।  
 देवतातिथिभृत्यानां निरूप्य पतिना सह ॥ ४५  
 शेषान्नमुपभुञ्जाना यथान्याय यथाविधि ।  
 तुष्टपुष्टजना नित्यं नारी धर्मेण युज्यते ॥ ४६  
 श्वश्रूश्चशुरयोः पादौ तोषयन्ती गुणान्विता ।  
 मातापितृपरा नित्यं या नारी सा तपोधना ॥ ४७  
 ब्राह्मणान्दुर्वेलानाथान्दीनान्धकृपणांस्तथा ।  
 विभर्त्यन्नेन या नारी सा पतिव्रतभागिनी ॥ ४८  
 व्रतं चरति या नित्यं दुश्चरं लघुसत्त्वया ।  
 पतिचित्ता पतिहिता सा पतिव्रतभागिनी ॥ ४९  
 पुण्यमेतत्तपश्चैव स्वर्गश्चैष सनातनः ।  
 या नारी भर्तृपरमा भवेद्भर्तृव्रता शिवा ॥ ५०  
 पतिर्हि देवो नारीणां पतिर्वन्धुः पतिर्गतिः ।  
 पत्या समा गतिर्नास्ति दैवतं वा यथा पतिः ॥ ५१  
 पतिप्रसादः स्वर्गो वा तुल्यो नार्या न वा भवेत् ।  
 अहं स्वर्गं न हीच्छेयं त्वय्यप्रीते महेश्वर ॥ ५२  
 यद्यकार्यमधर्मं वा यदि वा प्राणनाशनम् ।  
 पतिर्ब्रूयाद्हरिद्रो वा व्याधितो वा कथंचन ॥ ५३  
 आपन्नो रिपुसंस्थो वा ब्रह्मशापार्दितोऽपि वा ।  
 आपद्धर्माननुप्रेक्ष्य तत्कार्यमविशङ्कया ॥ ५४  
 एष देव मया प्रोक्तः स्त्रीधर्मो वचनात्तव ।  
 या त्वेवंभाविनी नारी सा भवेद्धर्मभागिनी ॥ ५५

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तः स तु देवेशः प्रतिपूज्य गिरेः सुताम् ।  
 लोकान्विसर्जयामास सर्वैरनुचरैः सह ॥ ५६  
 ततो ययुर्भूतगणाः सरितश्च यथागतम् ।

गन्धर्वाप्सरसश्चैव प्रणम्य शिरसा भवम् ॥ ५७

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

१३५

वैशंपायन उवाच ।

श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः ।  
 युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत ॥ १  
 किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् ।  
 स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥ २  
 को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः ।  
 किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ३

भीष्म उवाच ।

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम् ।  
 स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥ ४  
 तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम् ।  
 ध्यायन्स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च ॥ ५  
 अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ।  
 लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ ६  
 ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम् ।  
 लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥ ७  
 एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः ।  
 यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चयन्नरः सदा ॥ ८  
 परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ।  
 परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥ ९  
 पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम् ।  
 दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता ॥ १०  
 यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे ।  
 यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥ ११  
 तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते ।  
 विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम् ॥ १२



यानि नामानि गोणानि विख्यातानि महात्मनः ।  
 ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥ १३  
 \* \* \*  
 विश्व विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः ।  
 भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥ १४  
 पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः ।  
 अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥ १५  
 योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः ।  
 नारसिंहवपुः श्रीमान्केशवः पुरुषोत्तमः ॥ १६  
 सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः ।  
 संभवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥ १७  
 स्वयंभूः शंभुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः ।  
 अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः ॥ १८  
 अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः ।  
 विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः ॥ १९  
 अप्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः ।  
 प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मङ्गलं परम् ॥ २०  
 ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः ।  
 हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः ॥ २१  
 ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः ।  
 अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान् ॥ २२  
 सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः ।  
 अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ॥ २३  
 अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिर्च्युतः ।  
 वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिस्तः ॥ २४  
 वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मा संमितः समः ।  
 अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः ॥ २५  
 रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः ।  
 अमृतः शाश्वतः स्थाणुर्वरारोहो महातपाः ॥ २६  
 सर्वगः सर्वविद्वानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः ।

वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित्कविः ॥ २७  
 लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः ।  
 चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥ २८  
 भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदादिजः ।  
 अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः ॥ २९  
 रुपेन्द्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः ।  
 अतीन्द्रः संग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः ॥ ३०  
 वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः ।  
 अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः ॥ ३१  
 महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः ।  
 अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक् ॥ ३२  
 महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतां गतिः ।  
 अनिरुद्धः सुरानन्दो गोविन्दो गोविदां पतिः ॥ ३३  
 मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः ।  
 हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः ॥ ३४  
 अमृत्युः सर्वदृक्सिंहः संधाता संधिमान्स्थिरः ।  
 अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा ॥ ३५  
 गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः ।  
 निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः ॥ ३६  
 अप्रणीर्गामिणीः श्रीमान्न्यायो नेता समीरणः ।  
 सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ ३७  
 आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः संप्रमर्दनः ।  
 अहः संवर्तको वह्निरनिलो धरणीधरः ॥ ३८  
 सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग्विश्वभुग्विभुः ।  
 सत्कर्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः ॥ ३९  
 असंख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः ।  
 सिद्धार्थः सिद्धसंकल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ॥  
 वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः ।  
 वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ॥ ४१  
 सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः ।

नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः ॥ ४२  
 ओजस्तेजो द्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः ।  
 ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः ॥ ४३  
 अमृतांशूद्भवो भानुः शशविन्दुः सुरेश्वरः ।  
 औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः ॥ ४४  
 भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनिलः ।  
 कामहा कामकृत्कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः ॥ ४५  
 युगादिकृद्युगावर्तो नैकमायो महाशनः ।  
 अदृश्यो व्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनन्तजित् ॥ ४६  
 इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः शिखण्डी नहुषो वृषः ।  
 क्रोधहा क्रोधकृत्कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः ॥ ४७  
 अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः ।  
 अपां निधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः ॥ ४८  
 स्कन्दः स्कन्दधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः ।  
 वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरंदरः ॥ ४९  
 अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः ।  
 अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ॥ ५०  
 पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत् ।  
 महर्द्धिर्ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः ॥ ५१  
 अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः ।  
 सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान्समितिजयः ॥ ५२  
 विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः ।  
 महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः ॥ ५३  
 उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः ।  
 करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ॥ ५४  
 व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः ।  
 परर्द्धिः परमः स्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः ॥ ५५  
 रामो विरामो विरतो मार्गो नेयो नयोऽनयः ।  
 वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः ॥ ५६  
 वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः ।

हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः ॥ ५७  
 ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः ।  
 उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः ॥ ५८  
 विस्तारः स्थावरः स्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम् ।  
 अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः ॥ ५९  
 अनिर्विण्णः स्थविष्ठो भूर्धर्मयूपो महामखः ।  
 नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः ॥ ६०  
 यज्ञ इज्यो महेज्यश्च ऋतुः सत्रं सतां गतिः ।  
 सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ॥ ६१  
 सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत् ।  
 मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः ॥ ६२  
 स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत् ।  
 वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ॥ ६३  
 धर्मगुणधर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम् ।  
 अविज्ञाता सहस्रांशुर्विवाता कृतलक्षणः ॥ ६४  
 गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः ।  
 आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद्गुरुः ॥ ६५  
 उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।  
 शरीरभूतभृद्भोक्ता कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः ॥ ६६  
 सोमपोऽमृतपः सोमः पुरुजित्पुरुसत्तमः ।  
 विनयो जयः सत्यसंधो दाशार्हः सात्वतां पतिः ॥  
 जीवो विनयिता साक्षी मुकुन्दोऽमितविक्रमः ।  
 अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोऽन्तकः ॥ ६८  
 अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः ।  
 आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः ॥  
 महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः ।  
 त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृङ्गः कृतान्तकृत् ॥ ७०  
 महावराहो गोविन्दः सुषेणः कनकाङ्गदी ।  
 गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधरः ॥ ७१  
 वेधाः स्वाङ्गोऽजितः कृष्णो दृढः संकर्षणोऽच्युतः ।

वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः ॥ ७२  
 भगवान्भगवा नन्दी वनमाली हलायुधः ।  
 आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिस्तमः ॥ ७३  
 सुधन्वा खण्डपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः ।  
 दिवःस्पृक्सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः ॥ ७४  
 त्रिसामा सामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषक् ।  
 संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम् ॥  
 शुभाङ्गः शान्तिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलयेश्वरः ।  
 गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः ॥ ७६  
 अनिवर्ती निवृत्तात्मा संक्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः ।  
 श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतां वरः ॥ ७७  
 श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः ।  
 श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाल्लोकत्रयाश्रयः ॥ ७८  
 स्वक्षः स्वङ्गः शतानन्दो नन्दिज्योतिर्गणेश्वरः ।  
 विजितात्मा विधेयात्मा सत्कीर्तिर्द्विजसंशयः ॥ ७९  
 उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतः स्थिरः ।  
 भूशयो भूषणो भूनिर्विशोकः शोकनाशनः ॥ ८०  
 अर्चिष्मानर्चितः कुम्भो विशुद्धात्मा विशोधनः ।  
 अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥ ८१  
 कालनेमिनिहा वीरः शूरः शौरिर्जनेश्वरः ।  
 त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः ॥ ८२  
 कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः ।  
 अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनंजयः ॥ ८३  
 ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः ।  
 ब्रह्मविद्ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥ ८४  
 महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः ।  
 महाक्रतुर्महायज्ञा महायज्ञो महाहविः ॥ ८५  
 स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्र स्तुतिः स्तोता रणप्रियः ।  
 पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥ ८६  
 मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः ।

वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः ॥ ८७  
 सद्गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः ।  
 शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः ॥ ८८  
 भूतावासो वासुदेवो सर्वासुनिलयोऽनलः ।  
 दर्पहा दर्पदो दृष्टो दुर्धरोऽथापराजितः ॥ ८९  
 विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् ।  
 अनेकमूर्तिरन्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥ ९०  
 एको नैकः सवः कः किं यत्तत्पदमनुत्तमम् ।  
 लोकबन्धुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः ॥ ९१  
 सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्द्रनाङ्गदी ।  
 वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः ॥ ९२  
 अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक् ।  
 सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः ॥ ९३  
 तेजो वृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।  
 प्रग्रहो निग्रहोऽन्यग्रो नैकशृङ्गो गदाग्रजः ॥ ९४  
 चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः ।  
 चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ॥ ९५  
 समावर्तो निवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः ।  
 दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ॥ ९६  
 शुभाङ्गो लोकसारङ्गः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ।  
 इन्द्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः ॥ ९७  
 उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः ।  
 अर्को वाजसनः शृङ्गी जयन्तः सर्वविजयी ॥ ९८  
 सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः ।  
 महाह्रदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः ॥ ९९  
 कुमुदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पवनोऽनिलः ।  
 अमृतांशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ॥ १००  
 सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः ।  
 न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थश्चापूरान्ध्रनिषूदनः ॥ १०१  
 सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः ।

अमूर्तिरनघोऽचिन्त्यो भयकृद्भयनाशनः ॥ १०२  
 अणुर्वृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान् ।  
 अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्धनः ॥ १०३  
 भारभृत्कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः ।  
 आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः ॥ १०४  
 धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः ।  
 अपराजितः सर्वसहो नियन्ता नियमो यमः ॥ १०५  
 सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः ।  
 अभिप्रायः प्रियाहोऽर्हः प्रियकृत्प्रीतिवर्धनः ॥ १०६  
 विहायसगतिज्योतिः सुरुचिर्दुतभुग्विभुः ।  
 रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः ॥ १०७  
 अनन्तो द्रुतभुग्भोक्ता सुखदो नैकदोऽग्रजः ।  
 अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतम् ॥ १०८  
 सनात्सनातनतमः कपिलः कपिरव्ययः ।  
 स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्स्वस्ति स्वस्तिभुक्स्वस्तिदक्षिणः ॥  
 अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः ।  
 शब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः शर्वरीकरः ॥ ११०  
 अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणां वरः ।  
 विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ १११  
 उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः ।  
 वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः ॥ ११२  
 अनन्तरूपोऽनन्तश्रीर्जितमन्युर्भयापहः ।  
 चतुरस्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः ॥  
 अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिराङ्गदः ।  
 जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ ११४  
 आधारनिलयो धाता पुष्पहासः प्रजागरः ।  
 ऊर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः ॥ ११५  
 प्रमाणं प्राणनिलयः प्राणकृत्प्राणजीवनः ।  
 तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युर्जरातिगः ॥ ११६  
 भूर्भुवःस्वस्तरुत्तारः सविता प्रपितामहः ।

यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः ॥ ११७  
 यद्यभ्युद्यज्ञकृद्यज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः ।  
 यज्ञान्तकृद्यज्ञगुह्यमन्त्रमन्त्राद एव च ॥ ११८  
 आत्मयोनिः स्ययजातो वैखानः सामगायनः ।  
 देवकीनन्दनः स्रष्टा क्षितीशः पापनाशनः ॥ ११९  
 शङ्खभृन्नन्दकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ।  
 रथाङ्गपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः ॥ १२०

\* \* \* \*

इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः ।  
 नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम् ॥ १२१  
 य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ।  
 नाशुभं प्राप्नुयात्किञ्चित्सोऽमुत्रेह च मानवः ॥ १२२  
 वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत् ।  
 वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥ १२३  
 धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात् ।  
 कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी चाप्नुयात्प्रजाः ॥ १२४  
 भक्तिमान्यः सदात्थाय शुचिस्तद्गतमानसः ।  
 सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत्प्रकीर्तयेत् ॥ १२५  
 यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च ।  
 अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयश्चाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ १२६  
 न भयं कचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विन्दति ।  
 भवत्यरोगो द्युतिमान्बलरूपगुणान्वितः ॥ १२७  
 रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।  
 भयान्मुच्येत भीतश्च मुच्येतापन्न आपदः ॥ १२८  
 दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम् ।  
 स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥ १२९  
 वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः ।  
 सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥ १३०  
 न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते कचित् ।  
 जन्ममृत्युजराव्याधिभयं वायुपजायते ॥ १३१

इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।  
 युज्येतात्मसुखक्षान्तिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥ १३२  
 न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।  
 भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥ १३३  
 द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः ।  
 वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ॥ १३४  
 ससुरासुरगन्धर्व सयक्षोरगराक्षसम् ।  
 जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥ १३५  
 इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः ।  
 वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ॥ १३६  
 सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्प्यते ।  
 आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥ १३७  
 ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः ।  
 जङ्गमाजङ्गम चेद जगन्नारायणोद्भवम् ॥ १३८  
 योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पानि कर्म च ।  
 वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत्सर्वं जनार्दनात् ॥ १३९  
 एको विष्णुर्महद्भूतं पृथक्भूतान्यनेकशः ।  
 त्रील्लोकान्व्याप्य भूतात्मा भुङ्क्ते विश्वभुगव्ययः ॥  
 इमं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम् ।  
 पठेद्य इच्छेत्पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥ १४१  
 विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ।  
 भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभवम् ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

१३६

युधिष्ठिर उवाच ।

के पूज्याः के नमस्कार्याः कथं वर्तेत केषु च ।  
 किमाचारः कीदृशेषु पितामह न रिष्यते ॥ १

भीष्म उवाच ।

ब्राह्मणानां परिभवः सादयेदपि देवताः ।

ब्राह्मणानां नमस्कर्ता युधिष्ठिर न रिष्यते ॥ २  
 ते पूज्यास्ते नमस्कार्या वर्तेथास्तेषु पुत्रवत् ।  
 ते हि लोकानिमान्सर्वान्धारयन्ति मनीषिणः ॥ ३  
 ब्राह्मणाः सर्वलोकानां महान्तो धर्मसेतवः ।  
 धनत्यागाभिरामाश्च वाक्संयमरताश्च ये ॥ ४  
 रमणीयाश्च भूतानां निधानं च धृतव्रताः ।  
 प्रणेतारश्च लोकानां शास्त्राणां च यशस्विनः ॥ ५  
 तपो येषां धनं नित्यं वाक्चैव विपुलं बलम् ।  
 प्रभवश्चापि धर्माणां धर्मज्ञाः सूक्ष्मदर्शिनः ॥ ६  
 धर्मकामाः स्थिता धर्मे सुकृतैर्धर्मसेतवः ।  
 यानुपाश्रित्य जीवन्ति प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ॥ ७  
 पन्थानः सर्वनेतारो यज्ञवाहाः सनातनाः ।  
 पितृपैतामही गुर्वीमुद्रहन्ति धुरं सदा ॥ ८  
 धुरि ये नावसीदन्ति विषमे सद्रवा इव ।  
 पितृदेवातिथिमुखा हव्यकव्याग्रभोजिनः ॥ ९  
 भोजनादेव ये लोकांस्त्रायन्ते महतो भयात् ।  
 दीपाः सर्वस्य लोकस्य चक्षुश्चक्षुष्मतामपि ॥ १०  
 सर्वशिल्पादिनिधयो निपुणाः सूक्ष्मदर्शिनः ।  
 गतिज्ञाः सर्वभूतानामध्यात्मगतिचिन्तकाः ॥ ११  
 आदिमध्यावसानानां ज्ञातारश्छिन्नसंशयाः ।  
 परावरविशेषज्ञा गन्तारः परमां गतिम् ॥ १२  
 विमुक्ता धृतपाप्मानो निर्द्विद्वा निष्परिग्रहाः ।  
 मानार्हा मानिता नित्यं ज्ञानविद्धिर्महात्मभिः ॥ १३  
 चन्दने मलपङ्के च भोजनेऽभोजने समाः ।  
 समं येषां दुक्कलं च शाणक्षौमाजिनानि च ॥ १४  
 तिष्ठेयुरप्यभुञ्जाना बहूनि दिवसान्यपि ।  
 शोषयेयुश्च गात्राणि स्वाध्यायैः संयतेन्द्रियाः ॥ १५  
 अदैवं दैवतं कुर्युदैवतं चाप्यदैवतम् ।  
 लोकानन्यान्सृजेयुश्च लोकपालांश्च कोपिताः ॥ १६  
 अपेयः सागरो येषामभिशापान्महात्मनाम् ।

येषां कोपाग्निरद्यापि दण्डके नोपशाम्यति ॥ १७  
 देवानामपि ये देवाः कारणं कारणस्य च ।  
 प्रमाणस्य प्रमाणं च कस्तानभिभवेद्बुधः ॥ १८  
 येषां वृद्धश्च बालश्च सर्वः संमानमर्हति ।  
 तपोविद्याविशेषात्तु मानयन्ति परस्परम् ॥ १९  
 अविद्वान्ब्राह्मणो देवः पात्र वै पावनं महत् ।  
 विद्वान्भूयस्तरो देवः पूर्णसागरसन्निभः ॥ २०  
 अविद्वान्श्चैव विद्वान्श्च ब्राह्मणो देवत महत् ।  
 प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्देवतं महत् ॥ २१  
 इमशाने ह्यपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ।  
 हविर्यज्ञेषु च वहन्भूय एवाभिभोभते ॥ २२  
 एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तते सर्वकर्मसु ।  
 सर्वथा ब्राह्मणो मान्यो देवतं विद्धि तत्परम् ॥ २३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

१३७

युधिष्ठिर उवाच ।

कां तु ब्राह्मणपूजायां व्युष्टिं दृष्ट्वा जनाधिप ।  
 कं वा कर्मोदयं मत्वा तानर्चसि महामते ॥ १

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 पवनस्य च संवादमर्जुनस्य च भारत ॥ २  
 सहस्रभुजभृच्छ्रीमान्कार्तवीर्योऽभवत्प्रभुः ।  
 अस्य लोकस्य सर्वस्य माहिष्मत्यां महाबलः ॥ ३  
 स तु रत्नाकरवतीं सद्दीपां सागराम्बराम् ।  
 शशास सर्वां पृथिवीं हैहयः सत्यविक्रमः ॥ ४  
 स्ववित्तं तेन दत्तं तु दत्तात्रेयाय कारणे ।  
 क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य विनयं श्रुतमेव च ॥ ५  
 आराधयामास च तं कृतवीर्यात्मजो मुनिम् ।  
 न्यमन्त्रयत संहृष्टः स द्विजश्च वरौहिभिः ॥ ६

स वरैश्छन्दिस्तस्तेन नृपो वचनमब्रवीत् ।  
 सहस्रबाहुर्भूयां वै चमूमध्ये गृहेऽन्यथा ॥ ७  
 मम बाहुमहस्रं तु पश्यन्तां सैनिका रणे ।  
 विक्रमेण मही कृत्स्नां जयेय विपुलव्रत ।  
 तां च धर्मेण संप्राप्य पालयेयमतन्द्रितः ॥ ८  
 चतुर्थं तु वरं याचे त्वामहं द्विजसत्तम ।  
 तं ममानुग्रहकृते दातुमर्हस्यनिन्दित ।  
 अनुशासन्तु मां सन्तो मिथ्यावृत्त तदाश्रयम् ॥ ९  
 इत्युक्तः स द्विजः प्राह तथास्त्विति नराधिपम् ।  
 एवं समभवंस्तस्य वरास्ते दीप्ततेजसः ॥ १०  
 ततः स रथमास्थाय ज्वलनार्कसमद्युतिः ।  
 अब्रवीद्वीर्यसमोहात्क्रो न्वस्ति सदृशो मया ।  
 वीर्यधैर्ययशःशौचैर्विक्रमेणौजसापि वा ॥ ११  
 तद्वाक्यान्ते चान्तरिक्षे वागुवाचाशरीरिणी ।  
 न त्वं मूढ विजानीपे ब्राह्मणं क्षत्रियाद्वरम् ।  
 सहितो ब्राह्मणेनेह क्षत्रियो रक्षति प्रजाः ॥ १२

अर्जुन उवाच ।

कुर्यां भूतानि तुष्टोऽहं क्रुद्धो नाश तथा नये ।  
 कर्मणा मनसा वाचा न मत्तोऽस्ति वरो द्विजः ॥  
 पूर्वं ब्रह्मोत्तरो वादो द्वितीयः क्षत्रियोत्तरः ।  
 त्वयोक्तौ यौ तु तौ हेतू विशेषस्त्वत्र दृश्यते ॥ १४  
 ब्राह्मणाः संश्रिताः क्षत्रं न क्षत्रं ब्राह्मणाश्रितम् ।  
 श्रितान्ब्रह्मोपधा विप्राः खादन्ति क्षत्रियान्भुवि ॥  
 क्षत्रियेष्वश्रितो धर्मः प्रजानां परिपालनम् ।  
 क्षत्राद्वृत्तिर्ब्राह्मणानां तैः कथं ब्राह्मणो वरः ॥ १६  
 सर्वभूतप्रधानांस्तान्भैक्षवृत्तिनहं सदा ।  
 आत्मसमावितान्विप्रान्स्थापयाम्यात्मनो वशे ॥ १७  
 कथितं ह्यनया सत्यं गायत्र्या कन्यया दिवि ।  
 विजेष्याम्यवशान्सर्वान्ब्राह्मणाश्चर्मवाससः ॥ १८  
 न च मां च्यावयेद्राष्ट्रात्रिषु लोकेषु कश्चन ।

देवो वा मानुषो वापि तस्माज्ज्येष्ठो द्विजादहम् ॥  
 अद्य ब्रह्मोत्तरं लोकं करिष्ये क्षत्रियोत्तरम् ।  
 न हि मे संयुगे कश्चित्सोढुमुत्सहते बलम् ॥ २०  
 अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा वित्रस्ताभून्निशाचरी ।  
 अथैनमन्तरिक्षस्थस्ततो वायुरमाषत ॥ २१  
 त्यजैनं कलुषं भावं ब्राह्मणेभ्यो नमस्कुरु ।  
 एतेषां कुर्वतः पापं राष्ट्रक्षोभो हि ते भवेत् ॥ २२  
 अथ वा त्वां महीपाल शमयिष्यन्ति वै द्विजाः ।  
 निरसिष्यन्ति वा राष्ट्राद्धतोत्साहं महाबलाः ॥ २३  
 तं राजा कस्त्वमित्याह ततस्तं प्राह मारुतः ।  
 वायुर्वै देवदूतोऽस्मि हितं त्वां प्रब्रवीम्यहम् ॥ २४

अर्जुन उवाच ।

अहो त्वयाद्य विप्रेषु भक्तिरागः प्रदर्शितः ।  
 यादृशं पृथिवी भूतं तादृशं ब्रूहि वै द्विजम् ॥ २५  
 वायोर्वा सदृशं किंचिद्ब्रूहि त्वं ब्राह्मणोत्तमम् ।  
 अपां वै सदृशं ब्रूहि सूर्यस्य नभसोऽपि वा ॥ २६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

१३८

वायुरुवाच ।

शृणु मूढ गुणान्कांश्चिद्ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।  
 ये त्वया कीर्तिता राजंस्तेभ्योऽथ ब्राह्मणो वरः ॥ १  
 त्यक्त्वा महीत्यं भूमिस्तु स्पर्धयाङ्गनृपस्य ह ।  
 नाशं जगाम तां विप्रो व्यष्टम्भयत कश्यपः ॥ २  
 अक्षया ब्राह्मणा राजन्दिवि चेह च नित्यदा ।  
 अपिबत्तेजसा ह्यापः स्वयमेवाङ्गिराः पुरा ॥ ३  
 स ताः पिबन्क्षीरमिव नातृप्यत महातपाः ।  
 अपूरयन्महौघेन महीं सर्वां च पार्थिव ॥ ४  
 तस्मिन्नहं च क्रुद्धे वै जगत्त्यक्त्वा ततो गतः ।  
 व्यतिष्ठमग्निहोत्रे च चिरमङ्गिरसो भयात् ॥ ५

अभिशाप्तश्च भगवान्गौतमेन पुरंदरः ।

अहल्यां कामयानो वै धर्मार्थं च न हिंसितः ॥ ६  
 तथा समुद्रो नृपते पूर्णो मृष्टेन वारिणा ।  
 ब्राह्मणैरभिशाप्तः सल्लवणोदः कृतो विभो ॥ ७  
 सुवर्णवर्णो निर्धूमः संहतोर्ध्वशिखः कविः ।  
 क्रुद्धेनाङ्गिरसा शप्तो गुणैरेतैर्विवर्जितः ॥ ८  
 मरुतश्चूर्णितान्पश्य येऽहसन्त महोदधिम् ।  
 सुवर्णधारिणा नित्यमवशप्ता द्विजातिना ॥ ९  
 समो न त्वं द्विजातिभ्यः श्रेष्ठं विद्धि नराधिप ।  
 गर्भस्थान्ब्राह्मणान्सम्यङ्ममस्यति किल प्रभुः ॥ १०  
 दण्डकानां महद्राज्यं ब्राह्मणेन विनाशितम् ।  
 तालजङ्घं महत्क्षत्रमौर्वेणैकेन नाशितम् ॥ ११  
 त्वया च विपुलं राज्यं बल धर्मः श्रुतं तथा ।  
 दत्तात्रेयप्रसादेन प्राप्तं परमदुर्लभम् ॥ १२  
 अग्नि त्वं यजसे नित्यं कस्मादर्जुन ब्राह्मणम् ।  
 स हि सर्वस्य लोकस्य हव्यवाङ्मि न वेत्सि तम् ॥  
 अथ वा ब्राह्मणश्रेष्ठमनु भूतानुपालकम् ।  
 कर्तारं जीवलोकस्य कस्माज्ज्ञानन्विमुह्यसे ॥ १४  
 तथा प्रजापतिर्ब्रह्मा अव्यक्तः प्रभवाप्ययः ।  
 येनेदं निखिलं विश्वं जनितं स्थावरं चरम् ॥ १५  
 अण्डजातं तु ब्रह्माणं केचिदिच्छन्त्यपण्डिताः ।  
 अण्डाद्विन्नाद्भुः शैला दिशोऽम्भः पृथिवी दिवम् ॥  
 द्रष्टव्यं नैतदेवं हि कथं ज्यायस्तमो हि सः ।  
 स्मृतमाकाशमण्डं तु तस्माज्जातः पितामहः ॥ १७  
 तिष्ठेत्कथमिति ब्रूहि न किंचिद्धि तदा भवेत् ।  
 अहंकार इति प्रोक्तः सर्वतेजोगतः प्रभुः ॥ १८  
 नास्त्यण्डमस्ति तु ब्रह्मा स राजल्लोकभावनः ।  
 इत्युक्तः स तदा तूष्णीमभूदायुस्तमब्रवीत् ॥ १९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

१३९

वायुरुवाच ।

इमां भूमि ब्राह्मणेभ्यो दित्सुर्वै दक्षिणां पुरा ।  
 अङ्गो नाम नृपो राजंस्ततश्चिन्तां मही ययौ ॥ १  
 धारणीं सर्वभूतानामयं प्राप्य वरो नृपः ।  
 कथमिच्छति मां दातुं द्विजेभ्यो ब्रह्मणः सुताम् ॥ २  
 साहं त्यक्त्वा गमिष्यामि भूमित्वं ब्रह्मणः पदम् ।  
 अयं सराष्ट्रो नृपतिर्मा भूदिति ततोऽगमत् ॥ ३  
 ततस्तां कश्यपो दृष्ट्वा ब्रजन्ती पृथिवीं तदा ।  
 प्रविवेश मही सद्यो मुक्त्वात्मानं समाहितः ॥ ४  
 रुद्धा सा सर्वतो जज्ञे तृणौषधिसमन्विता ।  
 धर्मोत्तरा नष्टभया भूमिरासीत्ततो नृप ॥ ५  
 एवं वर्षसहस्राणि दिव्यानि विपुलव्रतः ।  
 त्रिंशतं कश्यपो राजन्भूमिरासीदतन्द्रितः ॥ ६  
 अथागम्य महाराज नमस्कृत्य च कश्यपम् ।  
 पृथिवी काश्यपी जज्ञे सुता तस्य महात्मनः ॥ ७  
 एष राजन्नीदृशो वै ब्राह्मणः कश्यपोऽभवत् ।  
 अन्यं प्रब्रूहि वापि त्वं कश्यपात्क्षत्रियं वरम् ॥ ८  
 तूष्णीं बभूव नृपतिः पवनस्त्वब्रवीत्पुनः ।  
 शृणु राजन्नुतथ्यस्य जातस्याङ्गिरसे कुले ॥ ९  
 भद्रा सोमस्य दुहिता रूपेण परमा मता ।  
 तस्यास्तुल्यं पतिं सोम उतथ्यं समपश्यत ॥ १०  
 सा च तीव्रं तपस्तेपे महाभागा यशस्विनी ।  
 उतथ्यं तु महाभाग तत्कृतेऽवरयत्तदा ॥ ११  
 तत आहूय सोतथ्यं ददावत्र यशस्विनीम् ।  
 भार्यार्थे स च जग्राह विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ १२  
 तां त्वकामयत श्रीमान्वरुणः पूर्वमेव ह ।  
 स चागम्य वनप्रस्थं यमुनायां जहार ताम् ॥ १३  
 जलेश्वरस्तु हृत्वा तामनयत्स्वपुरं प्रति ।  
 परमाद्भुतसंकाशं षट्सहस्रशतहृदम् ॥ १४

न हि रम्यतरं किञ्चित्स्मादन्यत्पुरोत्तमम् ।  
 प्रासादैरप्सरोभिश्च दिव्यैः कामैश्च शोभितम् ।  
 तत्र देवस्तया सार्धं रेमे राजञ्जलेश्वरः ॥ १५  
 अथाख्यातमुतथ्याय ततः पत्न्यवमर्दनम् ॥ १६  
 तच्छ्रुत्वा नारदात्सर्वमुतथ्यो नारदं तथा ।  
 प्रोवाच गच्छ ब्रूहि त्वं वरुणं परुषं वचः ।  
 मद्वाक्यान्मुञ्च मे भार्या कस्माद्वा हृतवानसि ॥ १७  
 लोकपालोऽसि लोकानां न लोकस्य विलोपकः ।  
 सोमेन दत्ता भार्या मे त्वया चापहृताद्य वै ॥ १८  
 इत्युक्तो वचनात्तस्य नारदेन जलेश्वरः ।  
 मुञ्च भार्यामुतथ्यस्येत्यथ तं वरुणोऽब्रवीत् ।  
 ममैषा सुप्रिया भार्या नैनामुत्सृष्टमुत्सहे ॥ १९  
 इत्युक्तो वरुणेनाथ नारदः प्राप्य तं मुनिम् ।  
 उतथ्यमब्रवीद्वाक्यं नातिहृष्टमना इव ॥ २०  
 गले गृहीत्वा क्षिप्तोऽस्मि वरुणेन महामुने ।  
 न प्रयच्छति ते भार्या यत्ते कार्यं कुरुष्व तत् ॥ २१  
 नारदस्य वचः श्रुत्वा क्रुद्धः प्राञ्जलदङ्गिराः ।  
 अपिबत्तेजसा वारि विष्टभ्य सुमहातपाः ॥ २२  
 पीयमाने च सर्वस्मिस्तोये वै सलिलेश्वरः ।  
 सुहृद्भिः क्षिप्यमाणोऽपि नैवामुञ्चत तां तदा ॥ २३  
 ततः क्रुद्धोऽब्रवीद्भूमिमुतथ्यो ब्राह्मणोत्तमः ।  
 दर्शयस्व स्थलं भद्रे षट्सहस्रशतहृदम् ॥ २४  
 ततस्तदिरिणं जातं समुद्रश्चापसर्पितः ।  
 तस्मादेशान्नदीं चैव प्रोवाचासौ द्विजोत्तमः ॥ २५  
 अदृश्या गच्छ भीरु त्वं सरस्वति मरुं प्रति ।  
 अपुण्य एष भवतु देशस्त्यक्तस्त्वया शुभे ॥ २६  
 तस्मिन्संचूर्णिते देशे भद्रामादाय वारिपः ।  
 अददाच्छरणं गत्वा भार्यामाङ्गिरसाय वै ॥ २७  
 प्रतिगृह्य तु तां भार्यामुतथ्यः सुमनाभवत् ।  
 मुमोच च जगद्गुःखाद्वरुणं चैव हैहय ॥ २८



ततः स लब्ध्वा तां भार्यां वरुणं प्राह धर्मवित् ।  
 उत्थ्यः सुमहातेजा यत्तच्छृणु नराधिप ॥ २९  
 मयैषा तपसा प्राप्ता क्रोशतस्ते जलाधिप ।  
 इत्युक्त्वा तामुपादाय स्वमेव भवनं ययौ ॥ ३०  
 एष राजन्नीदृशो वै उत्थ्यो ब्राह्मणर्षभः ।  
 ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वमुतथ्यात्क्षत्रियं वरम् ॥ ३१  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

१४०

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तः स तदा तूष्णीमभूद्रायुस्ततोऽब्रवीत् ।  
 शृणु राजन्नगस्त्यस्य माहात्म्यं ब्राह्मणस्य ह ॥ १  
 असुरैर्निर्जिता देवा निरुत्साहाश्च ते कृताः ।  
 यज्ञाश्चैषां हृता सर्वे पितृभ्यश्च स्वधा तथा ॥ २  
 कर्मज्या मानवानां च दानवैर्हैहयर्षभ ।  
 भ्रष्टैश्चर्यास्ततो देवाश्चेरुः पृथ्वीमिति श्रुतिः ॥ ३  
 ततः कदाचित्ते राजन्दीप्तमादित्यवर्चसम् ।  
 ददृशुस्तेजसा युक्तमगस्त्यं विपुलव्रतम् ॥ ४  
 अभिवाद्य च तं देवा दृष्ट्वा च यशसा वृतम् ।  
 इदमूचुर्महात्मानं वाक्यं काले जनाधिप ॥ ५  
 दानवैर्युधि भग्नाः स्म तथैश्वर्याच्च भ्रंशिताः ।  
 तदस्मान्नो भयात्तीव्रात्राहि त्वं मुनिपुंगव ॥ ६  
 इत्युक्तः स तदा देवैरगस्त्यः कुपितोऽभवत् ।  
 प्रज्ज्वाल च तेजस्वी कालाग्निरिव संक्षये ॥ ७  
 तेन दीप्तांशुजालेन निर्दग्धा दानवास्तदा ।  
 अन्तरिक्षान्महाराज न्यपतन्त सहस्रशः ॥ ८  
 दह्यमानास्तु ते दैत्यास्तस्यागस्त्यस्य तेजसा ।  
 उभौ लोकौ परित्यज्य ययुः काष्ठां स्म दक्षिणाम् ॥  
 बलिस्तु यजते यज्ञमश्वमेध मही गतः ।  
 येऽन्ये खस्था महीस्थाश्च ते न दग्धा महासुराः ॥

ततो लोकाः पुनः प्राप्ताः सुरैः शान्तं च तद्रजः ।  
 अथैनमश्रुवन्देवा भूमिष्ठानसुराञ्जहि ॥ ११  
 इत्युक्त आह देवान्स न शक्नोमि महीगतान् ।  
 दग्धुं तपो हि क्षीयेन्मे धक्ष्यामीति च पार्थिव ॥  
 एव दग्धा भगवता दानवाः स्वेन तेजसा ।  
 अगस्त्येन तदा राजंस्तपसा भावितात्मना ॥ १३  
 ईदृशश्चाप्यगस्त्यो हि कथितस्ते मयानघ ।  
 ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वमगमस्यात्क्षत्रिय वरम् ॥ १४  
 इत्युक्तः स तदा तूष्णीमभूद्रायुस्ततोऽब्रवीत् ।  
 शृणु राजन्वसिष्ठस्य मुख्यं कर्म यशस्विनः ॥ १५  
 आदित्याः सत्रमासन्त सरो वै मानसं प्रति ।  
 वसिष्ठं मनसा गत्वा श्रुत्वा तत्रास्य गोचरम् ॥ १६  
 यजमानांस्तु तान्दृष्ट्वा व्यग्रान्दीक्षानुकर्शितान् ।  
 हन्तुमिच्छन्ति शैलाभाः खलिनो नाम दानवाः ॥  
 अदूरात्तु ततस्तेषां ब्रह्मदत्तवरं सरः ।  
 हता हता वै ते तत्र जीवन्त्याद्भुत्य दानवाः ॥ १८  
 ते प्रगृह्य महाघोरान्पर्वतान्परिघान्दुमान् ।  
 विक्षोभयन्तः सलिलमुत्थिताः शतयोजनम् ॥ १९  
 अभ्यद्रवन्त देवांस्ते सहस्राणि दशैव ह ।  
 ततस्तैरर्दिता देवाः शरणं वासवं ययुः ॥ २०  
 स च तैर्व्यथितः शक्नो वसिष्ठं शरणं ययौ ।  
 ततोऽभयं ददौ तेभ्यो वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ २१  
 तथा तान्दुःखिताञ्जानन्नानृशंस्यपरो मुनिः ।  
 अयत्नेनादहत्सर्वान्खलिनः स्वेन तेजसा ॥ २२  
 कैलासं प्रस्थितां चापि नदी गङ्गां महातपाः ।  
 आनयत्तत्सरो दिव्यं तथा भिन्नं च तत्सरः ॥ २३  
 सरो भिन्नं तथा नद्या सरयूः सा ततोऽभवत् ।  
 हताश्च खलिनो यत्र स देशः खलिनोऽभवत् ॥ २४  
 एवं सेन्द्रा वसिष्ठेन रक्षितास्त्रिदिवौकसः ।  
 ब्रह्मदत्तवराश्चैव हता दैत्या महात्मना ॥ २५

एतत्कर्म वसिष्ठस्य कथितं ते मयानघ ।

ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्व वसिष्ठाक्षत्रियं वरम् ॥ २६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

१४१

भीष्म उवाच ।

इत्युक्तस्त्वर्जुनस्तूष्णीमभूद्वायुस्तमब्रवीत् ।

शृणु मे हैहयश्रेष्ठ कर्मात्रेः सुमहात्मनः ॥ १

घोरे तमस्युध्यन्त सहिता देवदानवाः ।

अविध्यत शरैस्तत्र स्वर्भानुः सोमभास्करो ॥ २

अथ ते तमसा प्रस्ता निहन्यन्ते स्म दानवैः ।

देवा नृपतिशार्दूल सहैव बलिभिस्तदा ॥ ३

असुरैर्वध्यमानास्ते क्षीणप्राणा दिवौकसः ।

अपश्यन्त तपस्यन्तमत्रि विप्रं महावने ॥ ४

अथैनमब्रुवन्देवाः शान्तश्रोत्रं जितेन्द्रियम् ।

असुरैरिषुभिर्विद्वौ चन्द्रादित्याविमावुभौ ॥ ५

वयं वध्यामहे चापि शत्रुभिस्तमसावृते ।

नाधिगच्छाम शान्तिं च भयात्रायस्व नः प्रभो ॥ ६

कथं रक्षामि भवतस्तेऽब्रुवन्श्चन्द्रमा भव ।

तिमिरघ्नश्च सविता दस्युहा चैव नो भव ॥ ७

एवमुक्तस्तदात्रिस्तु तमोनुदभवच्छशी ।

अपश्यत्सौम्यभावं च सूर्यस्य प्रतिदर्शनम् ॥ ८

दृष्ट्वा नातिप्रभ सोमं तथा सूर्यं च पार्थिव ।

प्रकाशमकरोदत्रिस्तपसा स्वेन संयुगे ॥ ९

जगद्व्रितिमिरं चापि प्रदीप्तमकरोत्तदा ।

व्यजयच्छत्रुसंघांश्च देवानां स्वेन तेजसा ॥ १०

अत्रिणा दह्यमानांस्तान्दृष्ट्वा देवा महासुरान् ।

पराक्रमैस्तेऽपि तदा व्ययन्नन्नत्रिरक्षिताः ॥ ११

उद्भासितश्च सविता देवास्त्राता हतासुराः ।

अत्रिणा त्वथ सोमत्वं कृतमुत्तमतेजसा ॥ १२

अद्वितीयेन मुनिना जपता चर्मवाससा ।

फलभक्षेण राजर्षे पश्य कर्मात्रिणा कृतम् ॥ १३

तस्यापि विस्तरेणोक्तं कर्मात्रेः सुमहात्मनः ।

ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वमत्रितः क्षत्रियं वरम् ॥ १४

इत्युक्तस्त्वर्जुनस्तूष्णीमभूद्वायुस्तमब्रवीत् ।

शृणु राजन्महत्कर्म च्यवनस्य महात्मनः ॥ १५

अश्विनोः प्रतिसंश्रुत्य च्यवनः पाकशासनम् ।

प्रोवाच सहितं देवैः सोमपावश्विनौ कुरु ॥ १६

इन्द्र उवाच ।

अस्माभिर्वर्जितावेतौ भवेतां सोमपौ कथम् ।

देवैर्न संमितावेतौ तस्मान्मैवं वदस्व नः ॥ १७

अश्विभ्यां सह नेच्छामः पातुं सोमं महाव्रत ।

पिबन्त्वन्ये यथाकामं नाहं पातुमिहोत्सहे ॥ १८

च्यवन उवाच ।

न चेत्करिष्यसि वधो मयोक्तं बलसूदन ।

मया प्रमथितः सद्यः सोमं पास्यसि वै मखे ॥ १९

ततः कर्म समारब्धं हिताय सहसाश्विनोः ।

च्यवनेन ततो मञ्चैरभिभूताः सुराभवन् ॥ २०

तत्तु कर्म समारब्धं दृष्ट्वेन्द्रः क्रोधमूर्छितः ।

उद्यम्य विपुलं शैलं च्यवनं समुपाद्रवत् ।

तथा वज्रेण भगवानमर्षाकुललोचनः ॥ २१

तमापतन्तं दृष्ट्वैव च्यवनस्तपसान्वितः ।

अद्भिः सिक्त्वास्तम्भयत्तं सवज्रं सहपर्वतम् ॥ २२

अथेन्द्रस्य महाघोरं सोऽसृजच्छत्रुमेव ह ।

मदं मन्त्राहुतिमयं व्यादितास्यं महामुनिः ॥ २३

तस्य दन्तसहस्रं तु बभूव शतयोजनम् ।

द्वियोजनशतास्तस्य दंष्ट्राः परमदारुणाः ।

हनुस्तस्याभवद्भूमावेकश्चास्यास्पृशद्विमम् ॥ २४

जिह्वामूले स्थितास्तस्य सर्वे देवाः सवासवाः ।

तिमेरास्यमनुप्राप्ता यथा मत्स्या महार्णवे ॥ २५

ते संमन्त्रय ततो देवा मदस्यास्यगतास्तदा ।  
 अब्रुवन्सहिताः शक्रं प्रणमासमै द्विजातये ।  
 अश्विभ्यां सह सोमं च पिबामो विगतज्वराः ॥२६॥  
 ततः स प्रणतः शक्रश्चकार च्यवनस्य तत् ।  
 च्यवनः कृतवांस्तौ चाप्यश्विनौ सोमपीथिनौ ॥२७॥  
 ततः प्रत्याहरत्कर्म मदं च व्यभजन्मुनिः ।  
 अक्षेपु मृगयायां च पाने स्त्रीषु च वीर्यवान् ॥२८॥  
 एतैर्दोषैर्नरो राजन्क्षयं याति न संशयः ।  
 तस्मादेतान्नरो नित्यं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ २९॥  
 एतत्ते च्यवनस्यापि कर्म राजन्प्रकीर्तितम् ।  
 ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्व च्यवनात्क्षत्रियं वरम् ॥३०॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

१४२

भीष्म उवाच ।

तूष्णीमासीदर्जुनस्तु पवनस्त्वब्रवीत्पुनः ।  
 शृणु मे ब्राह्मणेष्वेव मुख्यं कर्म जनाधिप ॥ १॥  
 मदस्यास्यमनुप्राप्ता यदा सेन्द्रा दिवौकसः ।  
 तदेयं च्यवनेनेह हृता तेषां वसुंधरा ॥ २॥  
 उभौ लोकौ हृतौ मत्वा ते देवा दुःखिताभवन् ।  
 शोकार्ताश्च महात्मानं ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ३॥

देवा ऊचुः ।

मदास्यव्यतिषिक्तानामस्माकं लोकपूजित ।  
 च्यवनेन हृता भूमिः कपैश्चापि दिवं प्रभो ॥ ४॥

ब्रह्मोवाच ।

गच्छध्वं शरणं विप्रानाशु सेन्द्रा दिवौकसः ।  
 प्रसाद्य तानुभौ लोकाववाप्स्यथ यथा पुरा ॥ ५॥  
 ते ययुः शरणं विप्रास्त ऊचुः काङ्क्षामहे ।  
 इत्युक्तास्ते द्विजान्ब्राह्मण्यतेह कपानिति ।  
 भूगतान्हि विजेतारो वयमित्येव पार्थिव ॥ ६॥

ततः कर्म समारब्धं ब्राह्मणैः कपनाशनम् ।  
 तच्छ्रुत्वा प्रेषितो दूतो ब्राह्मणेभ्यो धनी कपैः ॥ ७॥  
 स च तान्ब्राह्मणानाह धनी कपवचो यथा ।  
 भवद्भिः सदृशाः सर्वे कपाः किमिह वर्तते ॥ ८॥  
 सर्वे वेदविदः प्राज्ञाः सर्वे च क्रतुयाजिनः ।  
 सर्वे सत्यव्रताश्चैव सर्वे तुल्या महर्षिभिः ॥ ९॥  
 श्रीश्चैव रमते तेषु धारयन्ति श्रियं च ते ।  
 वृथा दारान्न गच्छन्ति वृथामांसं न भुञ्जते ॥ १०॥  
 दीप्तमग्निं जुह्वति च गुरुणां वचने स्थिताः ।  
 सर्वे च नियतात्मानो बालानां संविभागिनः ॥ ११॥  
 उपेत्य शकटैर्यान्ति न सेवन्ति रजस्वलाम् ।  
 अभुक्तवत्सु नाश्रन्ति दिवा चैव न शेरते ॥ १२॥  
 एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्गुणैर्युक्तान्कथं कपान् ।  
 विजेष्यथ निवर्तध्वं निवृत्तानां शुभं हि वः ॥ १३॥

ब्राह्मणा ऊचुः ।

कपान्वयं विजेष्यामो ये देवास्ते वयं स्मृताः ।  
 तस्माद्व्याः कपास्माकं धनिन्याहि यथागतम् ॥ १४॥  
 धनी गत्वा कपानाह न वो विप्राः प्रियंकराः ।  
 गृहीत्वास्त्राप्यथो विप्रान्कपाः सर्वे समाद्रवन् ॥ १५॥  
 समुद्रग्रभवजान्दृष्ट्वा कपान्सर्वे द्विजातयः ।  
 व्यसृजञ्ज्वलितानग्नीन्कपानां प्राणनाशनान् ॥ १६॥  
 ब्रह्मसृष्टा हव्यभुजः कपान्भुक्त्वा सनातनाः ।  
 नभसीव यथाभ्राणि व्यराजन्त नराधिप ।  
 प्रशशंसुर्द्विजांश्चैव ब्रह्माणं च यशस्विनम् ॥ १७॥  
 तेषां तेजस्तथा वीर्यं देवानां बधुधे ततः ।  
 अवाप्नुवन्नामरत्वं त्रिषु लोकेषु पूजितम् ॥ १८॥  
 इत्युक्तवचनं वायुमर्जुनः प्रत्यभाषत ।  
 प्रतिपूज्य महाबाहो यत्तच्छृणु नराधिप ॥ १९॥  
 जीवाम्यहं ब्राह्मणार्थे सर्वथा सततं प्रभो ।  
 ब्रह्मणे ब्राह्मणेभ्यश्च प्रणमामि च नित्यशः ॥ २०॥

दत्तात्रेयप्रसादाच्च मया प्राप्तमिदं यशः ।  
लोके च परमा कीर्तिर्धर्मश्च चरितो महान् ॥ २१  
अहो ब्राह्मणकर्माणि यथा मारुत तत्त्वतः ।  
त्वया प्रोक्तानि कात्स्न्येन श्रुतानि प्रयतेन ह ॥ २२

वायुरुवाच ।

ब्राह्मणान्क्षत्रधर्मेण पालयस्वेन्द्रियाणि च ।  
भृगुभ्यस्ते भय घोरं तत्तु कालाद्भविष्यति ॥ २३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
द्विचत्वारिंशदधिकतमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

१४३

युधिष्ठिर उवाच ।

ब्राह्मणानर्चसे राजन्सततं संशितव्रतान् ।  
कं तु कर्मोदयं दृष्ट्वा तानर्चसि नराधिप ॥ १  
कां वा ब्राह्मणपूजायां व्युष्टिं दृष्ट्वा महाव्रत ।  
तानर्चसि महाबाहो सर्वमेतद्वदस्व मे ॥ २

भीष्म उवाच ।

एष ते केशवः सर्वमाख्यास्यति महामतिः ।  
व्युष्टिं ब्राह्मणपूजायां दृष्ट्व्युष्टिर्महाव्रतः ॥ ३

बलं श्रोत्रे वाङ्मनश्चक्षुषी च  
ज्ञानं तथा न विशुद्धं ममाद्य ।

देहन्त्यासो नातिचिरान्मतो मे  
न चातितूर्णं संविताद्य याति ॥ ४

उक्ता धर्मा ये पुराणे महान्तो  
ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां विशां च ।

पौराणं ये दण्डमुपासते च  
शेषं कृष्णादुपशिक्षस्व पार्थ ॥ ५

अहं ह्येनं वेद्मि तत्त्वेन कृष्णं  
योऽयं हि यज्ञास्य बलं पुराणम् ।

अमेयात्मा केशवः कौरवेन्द्र

सोऽयं धर्म वक्ष्यति संशयेषु ॥ ६  
कृष्णः पृथ्वीमसृजत्स्वं दिवं च  
वराहोऽय भीमबलः पुराणः ।  
अस्य चाधोऽथान्तरिक्षं दिवं च  
दिशश्चतस्रः प्रदिशश्चतस्रः ।  
सृष्टिस्तथैवेयमनुप्रसूता  
स निर्ममे विश्वमिदं पुराणम् ॥ ७  
अस्य नाभ्या पुष्करं संप्रसूत  
यत्रोत्पन्नः स्वयमेवामितौजाः ।  
येनाच्छिन्नं तत्तमः पार्थ घोरं  
यत्तत्तिष्ठत्यर्णवं तर्जयानम् ॥ ८  
कृते युगे धर्म आसीत्समग्र-  
स्नेताकाले ज्ञानमनुप्रपन्नः ।  
बलं त्वासीद्वापरे पार्थ कृष्णः  
कलावधर्मः क्षितिमाजगाम ॥ ९  
स पूर्वदेवो निजघान दैत्या-  
न्स पूर्वदेवश्च बभूव सम्राट् ।  
स भूतानां भावनो भूतभव्यः  
स विश्वस्यास्य जगतश्चापि गोप्ता ॥ १०  
यदा धर्मो ग्लायति वै सुराणां  
तदा कृष्णो जायते मानुषेषु ।  
धर्मे स्थित्वा स तु वै भावितात्मा  
पराश्च लोकानपरांश्च याति ॥ ११  
त्याज्यांस्त्यक्त्वाथासुराणां वधाय  
कार्याकार्ये कारणं चैव पार्थ ।  
कृतं करिष्यत्क्रियते च देवो  
मुहुः सोमं विद्धि च शक्रमेतम् ॥ १२  
स विश्वकर्मा स च विश्वरूपः  
स विश्वभृद्विश्वसृग्विश्वजिह्व ।  
स शूलभृच्छोणितभृत्कराल-

स्तं कर्मभिर्विदितं वै स्तुवन्ति ॥ १३  
 तं गन्धर्वा अप्सरसश्च नित्य-  
 मुपतिष्ठन्ते विबुधानां शतानि ।  
 तं राक्षसाश्च परिसंवहन्ते  
 रायस्पोषः स विजिगीषुरेकः ॥ १४  
 तमध्वरे शंसितारः स्तुवन्ति  
 रथंतरे सामगाश्च स्तुवन्ति ।  
 तं ब्राह्मणा ब्रह्ममन्त्रैः स्तुवन्ति  
 तस्मै हविरध्वर्यवः कल्पयन्ति ॥ १५  
 स पौराणीं ब्रह्मगुहां प्रविष्टो  
 महीसत्रं भारतग्रे वदर्श ।  
 स चैव गामुद्धारार्थकर्मार्थं  
 विक्षोभ्य दैत्यानुरगान्दानवांश्च ॥ १६  
 तस्य भक्षान्विविधान्वेदयन्ति  
 तमेवाजौ वाहनं वेदयन्ति ।  
 तस्यान्तरिक्षं पृथिवी दिवं च  
 सर्वं वशे तिष्ठति शाश्वतस्य ॥ १७  
 स कुम्भरेताः ससृजे पुराणं  
 यत्रोत्पन्नमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ।  
 स मातरिश्वा विभुश्चवाजी  
 स रश्मिमान्सविता चादिदेवः ॥ १८  
 तेनासुरा विजिताः सर्व एव  
 तस्य विक्रान्तैर्विजितानीह त्रीणि ।  
 स देवानां मानुषाणां पितृणां  
 तमेवाहुर्विज्ञविदां वितानम् ॥ १९  
 स एव कालं विभजन्नुदेति  
 तस्योत्तरं दक्षिणं चायने द्वे ।  
 तस्यैवोर्ध्वं तिर्यग्धश्चरन्ति  
 गभस्तयो मेदिनीं तापयन्तः ॥ २०  
 तं ब्राह्मणा वेदविदो जुषन्ति

तस्यादित्यो भामुपयुज्य भाति ।  
 स मासि मास्यध्वरकृद्विधत्ते  
 तमध्वरे वेदविदः पठन्ति ॥ २१  
 स एकयुक्चक्रमिदं त्रिनाभि  
 सप्ताश्वयुक्तं वहते वै त्रिधामा ।  
 महातेजाः सर्वगः सर्वसिंहः  
 कृष्णो लोकान्धारयते तथैकः ।  
 अश्रन्ननश्रंश्च तथैव धीरः  
 कृष्णं सदा पार्थ कर्तारमेहि ॥ २२  
 स एकदा कक्षगतो महात्मा  
 तृप्तो विभुः खण्डवे धूमकेतुः ।  
 स राक्षसानुरगांश्चावजित्य  
 सर्वत्रगः सर्वमग्नौ जुहोति ॥ २३  
 स एवाश्वः श्वेतमश्वं प्रयच्छ-  
 त्स एवाश्वानथ सर्वांश्चकार ।  
 त्रिवन्धुरस्तस्य रथस्त्रिचक्र-  
 स्त्रिवृच्छिराश्चतुरस्रश्च तस्य ॥ २४  
 स विहायो व्यदधात्पञ्चनाभिः  
 स निर्ममे गां दिवमन्तरिक्षम् ।  
 एव रम्यानसृजत्पर्वतांश्च  
 हृषीकेशोऽमितदीप्ताग्नितेजाः ॥ २५  
 स लङ्घयन्वै सरितो जिघांस-  
 न्स तं वज्रं प्रहरन्तं निरास ।  
 स महेन्द्रः स्तूयते वै महाध्वरे  
 विप्रैरेको ऋक्सहस्रैः पुराणैः ॥ २६  
 दुर्वासा वै तेन नान्येन शक्यो  
 गृहे राजन्वासयितुं महौजाः ।  
 तमेवाहुर्ऋषिमेकं पुराणं  
 स विश्वकृद्विदधात्यात्मभावान् ॥ २७  
 वेदांश्च यो वेदयतेऽधिदेवो

विधींश्च यश्चाश्रयते पुराणान् ।  
 कामे वेदे लौकिके यत्फलं च  
 विष्वक्सेने सर्वमेतत्प्रतीहि ॥ २८  
 ज्योतीषि शुक्लानि च सर्वलोके  
 त्रयो लोका लोकपालास्त्रयश्च ।  
 त्रयोऽग्नयो व्याहृतयश्च तिस्रः  
 सर्वे देवा देवकीपुत्र एव ॥ २९  
 संवत्सरः स ऋतुः सोऽर्धमासः  
 सोऽहोरात्रः स कला वै स काष्ठाः ।  
 मात्रा मुहूर्ताश्च लवाः क्षणाश्च  
 विष्वक्सेने सर्वमेतत्प्रतीहि ॥ ३०  
 चन्द्रादित्यौ ग्रहनक्षत्रताराः  
 सर्वाणि दर्शन्यथ पौर्णमास्यः ।  
 नक्षत्रयोगा ऋतवश्च पार्थ  
 विष्वक्सेनात्सर्वमेतत्प्रसूतम् ॥ ३१  
 रुद्रादित्या वसवोऽथाश्विनौ च  
 साध्या विश्वे मरुतां षड्गणाश्च ।  
 प्रजापतिर्देवमातादितिश्च  
 सर्वे कृष्णाहृषयश्चैव सप्त ॥ ३२  
 वायुर्भूत्वा विक्षिपते च विश्व-  
 मग्निर्भूत्वा दहते विश्वरूपः ।  
 आपो भूत्वा मज्जयते च सर्वं  
 ब्रह्मा भूत्वा सृजते विश्वसधान् ॥ ३३  
 वेद्यं च यद्वेदयते च वेदा-  
 न्विधिश्च यश्चाश्रयते विधेयान् ।  
 धर्मे च वेदे च बले च सर्वं  
 चराचरं केशवं त्वं प्रतीहि ॥ ३४  
 ज्योतिर्भूतः परमोऽसौ पुरस्ता-  
 त्प्रकाशयन्प्रभया विश्वरूपः ।  
 अपः सृष्ट्वा ह्यात्मभूरात्मयोनिः

पुराकरोत्सर्वमेवाथ विश्वम् ॥ ३५  
 ऋतून्तृपातान्विविधान्यद्भुतानि  
 मेघान्विद्युत्सर्वमैरावतं च ।  
 सर्वं कृष्णात्स्थावरं जङ्गमं च  
 विश्वाख्याताद्विष्णुमेनं प्रतीहि ॥ ३६  
 विश्वावासं निर्गुणं वासुदेवं  
 संकर्षणं जीवभूतं वदन्ति ।  
 ततः प्रद्युम्नमनिरुद्धं चतुर्थ-  
 माज्ञापयत्यात्मयोनिर्महात्मा ॥ ३७  
 स पञ्चधा पञ्चजनोपपन्नं  
 संचोदयन्विश्वमिदं सिसृक्षुः ।  
 ततश्चकारावनिमारुतौ च  
 खं ज्योतिरापश्च तथैव पार्थ ॥ ३८  
 स स्थावरं जङ्गमं चैवमेत-  
 द्चतुर्विधं लोकमिमं च कृत्वा ।  
 ततो भूमिं व्यदधात्पञ्चबीजां  
 द्यौः पृथिव्यां धास्यति भूरि वारि ।  
 तेन विश्वं कृतमेतद्वि राज-  
 न्म जीवयत्यात्मनैवात्मयोनिः ॥ ३९  
 ततो देवानसुरान्मानुषांश्च  
 लोकानृषींश्चाथ पितृन्प्रजाश्च ।  
 समासेन विविधान्प्राणिलोका-  
 न्सर्वान्सदा भूतपतिः सिसृक्षुः ॥ ४०  
 शुभाशुभं स्थावरं जङ्गमं च  
 विष्वक्सेनात्सर्वमेतत्प्रतीहि ।  
 यद्वर्तते यच्च भविष्यतीह  
 सर्वमेतत्केशवं त्वं प्रतीहि ॥ ४१  
 मृत्युश्चैव प्राणिनामन्तकाले  
 साक्षात्कृष्णः शाश्वतो धर्मवाहः ।  
 भूतं च यच्चेह न विद्म किञ्चि-

द्विष्वक्सेनात्सर्वमेतत्प्रतीहि ॥ ४२  
 यत्प्रशस्तं च लोकेषु पुण्यं यच्च शुभाशुभम् ।  
 तत्सर्वं केशवोऽचिन्त्यो विपरीतमतो भवेत् ॥ ४३  
 एतादृशः केशवोऽयं स्वयंभू-  
 नारायणः परमश्चाव्ययश्च ।  
 मध्यं चास्य जगतस्तस्थुषश्च  
 सर्वेषां भूतानां प्रभवश्चाप्ययश्च ॥ ४४  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

१४४

युधिष्ठिर उवाच ।

ब्रूहि ब्राह्मणपूजायां व्युष्टिं त्वं मधुसूदन ।  
 वेत्ता त्वमस्य चार्थस्य वेद त्वां हि पितामहः ॥ १  
 वासुदेव उवाच ।  
 शृणुष्वावहितो राजन्निजानां भरतर्षभ ।  
 यथातत्त्वेन वदतो गुणान्मे कुरुसत्तम ॥ २  
 प्रद्युम्नः परिपप्रच्छ ब्राह्मणैः परिकोपितः ।  
 किं फलं ब्राह्मणेष्वस्ति पूजायां मधुसूदन ।  
 ईश्वरस्य सतस्तस्य इह चैव परत्र च ॥ ३  
 सदा द्विजातीन्संपूज्य किं फलं तत्र मानद ।  
 एतद्ब्रूहि पितः सर्वं सुमहान्संशयोऽत्र मे ॥ ४  
 इत्युक्तवचनस्तेन प्रद्युम्नेन तदा त्वहम् ।  
 प्रत्यब्रुवं महाराज यत्तच्छृणु समाहितः ॥ ५  
 व्युष्टिं ब्राह्मणपूजायां रौक्मिणेय निबोध मे ।  
 एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ॥ ६  
 अस्मिल्लोके रौक्मिणेय तथासुष्मिश्च पुत्रक ।  
 ब्राह्मणप्रमुखं मौख्यं न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ ७  
 ब्राह्मणप्रमुखं वीर्यमायुः कीर्तिर्यशो बलम् ।  
 लोका लोकेश्वराश्चैव सर्वे ब्राह्मणपूर्वकाः ॥ ८  
 तत्कथं नाद्रियेयं वै ईश्वरोऽस्मीति पुत्रक ।

मा ते मन्युर्महाबाहो भवत्वत्र द्विजान्प्रति ॥ ९  
 ब्राह्मणो हि महद्भूतस्मिल्लोके परत्र च ।  
 भस्म कुर्युर्जगदिदं क्रुद्धाः प्रत्यक्षदर्शिनः ॥ १०  
 अन्यानपि सृजेयुश्च लोकाल्लोकेश्वरांस्तथा ।  
 कथं तेषु न वर्तेय सम्यग्ज्ञानात्सुतेजसः ॥ ११  
 अवसन्मद्गृहे तात ब्राह्मणो हरिपिङ्गलः ।  
 चीरवासा बिल्वदण्डी दीर्घश्मश्रुनखादिमान् ।  
 दीर्घेभ्यश्च मनुष्येभ्यः प्रमाणादधिको भुवि ॥ १२  
 स स्म संचरते लोकान्ये दिव्या ये च मानुषाः ।  
 इमा गाथा गायमानश्चत्वरेषु सभासु च ॥ १३  
 दुर्वाससं वासयेत्को ब्राह्मणं सत्कृतं गृहे ।  
 परिभाषां च मे श्रुत्वा को नु दद्यात्प्रतिश्रयम् ।  
 यो मां कश्चिद्वासयेत न स मां कोपयेदिह ॥ १४  
 तं स्म नाद्रियते कश्चित्ततोऽहं तमवासयम् ॥ १५  
 स स्म भुङ्क्ते सहस्राणां बहूनामन्नमेकदा ।  
 एकदा स्माल्पकं भुङ्क्ते न वैति च पुनर्गृहान् ॥ १६  
 अकस्माच्च प्रहसति तथाकस्मात्प्ररोदिति ।  
 न चास्य वयसा तुल्यः पृथिव्यामभवत्तदा ॥ १७  
 सोऽस्मदावसथं गत्वा शय्याश्चास्तरणानि च ।  
 कन्याश्चालंकृता दग्ध्वा ततो व्यपगतः स्वयम् ॥  
 अथ मामब्रवीद्भूयः स मुनिः संशितव्रतः ।  
 कृष्ण पायसमिच्छामि भोक्तुमित्येव सत्वरः ॥ १९  
 सदैव तु मया तस्य चित्तज्ञेन गृहे जनः ।  
 सर्वाण्येवान्नपानानि भक्ष्याश्चोच्चावचास्तथा ।  
 भवन्तु सत्कृतानीति पूर्वमेव प्रचोदितः ॥ २०  
 ततोऽहं ज्वलमानं वै पायसं प्रत्यवेदयम् ।  
 तद्भुक्त्वैव तु स क्षिप्रं ततो वचनमब्रवीत् ।  
 क्षिप्रमङ्गानि लिम्पस्व पायसेनेति स स्म ह ॥ २१  
 अविमृश्यैव च ततः कृतवानस्मि तत्तथा ।  
 तेनोच्छिष्टेन गात्राणि शिरश्चैवाभ्यमृक्षयम् ॥ २२

स ददर्श तदाभ्याशे मातरं ते शुभाननाम् ।  
 तामपि स्मयमानः स पायसेनाभ्यलेपयत् ॥ २३  
 मुनिः पायसदिग्धाङ्गी रथे तूर्णमयोजयत् ।  
 तमारुह्य रथं चैव निर्ययौ स गृहान्मम ॥ २४  
 अग्निवर्णो ज्वलन्धीमान्स द्विजो रथधुर्यवत् ।  
 प्रतोदेनातुदद्वालां रुक्मिणी मम पश्यतः ॥ २५  
 न च मे स्तोकमप्यासीदुःखमीर्ष्याकृतं तदा ।  
 ततः स राजमार्गेण महता निर्ययौ बहिः ॥ २६  
 तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं दाशार्हा जातमन्यवः ।  
 तत्राजल्पन्मिथः केचित्समाभाष्य परस्परम् ॥ २७  
 ब्राह्मणा एव जायेरन्नान्यो वर्णः कथंचन ।  
 को ह्येन रथमास्थाय जीवेदन्यः पुमानिह ॥ २८  
 आशीविषविष तीक्ष्णं ततस्तीक्ष्णतरं विषम् ।  
 ब्रह्माशीविषदग्धस्य नास्ति कश्चिच्चिकित्सकः ॥ २९  
 तस्मिन्त्रजति दुर्धर्षे प्रास्वल्हदुक्मिणी पथि ।  
 तां नामर्षयत श्रीमांस्ततस्तूर्णमचोदयत् ॥ ३०  
 ततः परमसंकुद्धो रथात्प्रस्कन्य स द्विजः ।  
 पदातिरूपथेनैव प्राधावदक्षिणामुखः ॥ ३१  
 तमुत्पथेन धावन्तमन्वधावं द्विजोत्तमम् ।  
 तथैव पायसादिग्धः प्रसीद भगवन्निति ॥ ३२  
 ततो विलोक्य तेजस्वी ब्राह्मणो मामुवाच ह ।  
 जितः क्रोधस्त्वया कृष्ण प्रकृत्यैव महाभुज ॥ ३३  
 न तेऽपराधमिह वै दृष्टवानस्मि सुव्रत ।  
 प्रीतोऽस्मि तव गोविन्द वृणु कामान्यथेप्सितान् ।  
 प्रसन्नस्य च मे तात पश्य व्युष्टिर्यथाविधा ॥ ३४  
 यावदेव मनुष्याणामन्ने भावो भविष्यति ।  
 यथैवाग्ने तथा तेषां त्वयि भावो भविष्यति ॥ ३५  
 यावच्च पुण्या लोकेषु त्वयि कीर्तिर्भविष्यति ।  
 त्रिषु लोकेषु तावच्च वैशिष्ट्यं प्रतिपत्स्यसे ।  
 सुप्रियः सर्वलोकस्य भविष्यसि जनार्दन ॥ ३६

यत्ते मित्रं च दग्धं च यच्च किञ्चिद्विनाशितम् ।  
 सर्वं तथैव द्रष्टासि विशिष्टं वा जनार्दन ॥ ३७  
 तावदेतत्प्रलिप्तं ते गात्रेषु मधुसूदन ।  
 अतो मृत्युभयं नास्ति यावदिच्छा तवाच्युत ॥ ३८  
 न तु पादतले लिप्ते कस्मात्ते पुत्रकाय वै ।  
 नैतन्मे प्रियमित्येव स मां प्रीतोऽब्रवीत्तदा ।  
 इत्युक्तोऽहं शरीरं स्वमपश्यं श्रीसमायुतम् ॥ ३९  
 रुक्मिणीं चाब्रवीत्प्रीतः सर्वस्त्रीणां वरं यशः ।  
 कीर्तिं चानुत्तमां लोके समवाप्स्यसि शोभने ॥ ४०  
 न त्वां जरा वा रोगो वा वैवर्ण्यं चापि भामिनि ।  
 स्पृक्ष्यन्ति पुण्यगन्धा च कृष्णमाराधयिष्यसि ॥ ४१  
 षोडशानां सहस्राणां वधूनां केशवस्य ह ।  
 वरिष्ठा सहलोक्या च केशवस्य भविष्यसि ॥ ४२  
 तव मातरमित्युक्त्वा ततो मां पुनरब्रवीत् ।  
 प्रस्थितः सुमहातेजा दुर्वासा वह्निवज्ज्वलन् ॥ ४३  
 एषैव ते बुद्धिरस्तु ब्राह्मणान्प्रति केशव ।  
 इत्युक्त्वा स तदा पुत्र तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४४  
 तस्मिन्नन्तर्हिते चाहमुपांशुव्रतमादिशम् ।  
 यत्किञ्चिद्ब्राह्मणो ब्रूयात्सर्वं कुर्यामिति प्रभो ॥ ४५  
 एतद्व्रतमहं कृत्वा मात्रा ते सह पुत्रक ।  
 ततः परमदृष्टात्मा प्राविशं गृहमेव च ॥ ४६  
 प्रविष्टमात्रश्च गृहे सर्वं पश्यामि तन्नवम् ।  
 यद्विभ्रं यच्च वै दग्धं तेन विप्रेण पुत्रक ॥ ४७  
 ततोऽहं विस्मयं प्राप्तः सर्वं दृष्ट्वा नवं दृढम् ।  
 अपूजयं च मनसा रौक्मिणेय द्विजं तदा ॥ ४८  
 इत्यहं रौक्मिणेयस्य पृच्छतो भरतर्षभ ।  
 माहात्म्यं द्विजमुख्यस्य सर्वमाख्यातवांस्तदा ॥ ४९  
 तथा त्वमपि कौन्तेय ब्राह्मणान्सततं प्रभो ।  
 पूजयस्व महाभागान्वाग्भिर्दानैश्च नित्यदा ॥ ५०  
 एवं व्युष्टिमहं प्राप्तो ब्राह्मणानां प्रसादजाम् ।



यच्च मामाह भीष्मोऽयं तत्सत्यं भरतर्षभ ॥ ५१  
इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥  
१४५

युधिष्ठिर उवाच ।

दुर्वाससः प्रसादात्ते यत्तदा मधुसूदन ।  
अवाप्तमिह विज्ञानं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १  
महाभाग्यं च यत्तस्य नामानि च महात्मनः ।  
तत्त्वतो ज्ञातुमिच्छामि सर्वं मतिमतां वर ॥ २  
वासुदेव उवाच ।  
हन्त ते कथयिष्यामि नमस्कृत्वा कपर्दिने ।  
यदवाप्तं महाराज श्रेयो यच्चार्जितं यशः ॥ ३  
प्रयतः प्रातरुत्थाय यदधीये विशां पते ।  
प्राञ्जलिः शतरुद्रीयं तन्मे निगदतः शृणु ॥ ४  
प्रजापतिस्तत्सृजे तपसोऽन्ते महातपाः ।  
शंकरस्त्वसृजत्तात प्रजाः स्थावरजङ्गमाः ॥ ५  
नास्ति किञ्चित्परं भूतं महादेवाद्विशां पते ।  
इह त्रिष्वपि लोकेषु भूतानां प्रभवो हि सः ॥ ६  
न चैवोत्सहते स्थातुं कश्चिदग्रे महात्मनः ।  
न हि भूतं समं तेन त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ७  
गन्धेनापि हि संग्रामे तस्य क्रुद्धस्य शत्रवः ।  
विसंज्ञा हतभूयिष्ठा वेपन्ति च पतन्ति च ॥ ८  
घोरं च निनदं तस्य पर्जन्यनिनदोपमम् ।  
श्रुत्वा विदीर्येद्धृदयं देवानामपि संयुगे ॥ ९  
यांश्च घोरेण रूपेण पश्येत्क्रुद्धः पिनाकधृक् ।  
न सुरा नासुरा लोके न गन्धर्वा न पन्नगाः ।  
कुपिते सुखमेधन्ते तस्मिन्नपि गुहागताः ॥ १०  
प्रजापतेश्च दक्षस्य यजतो वितते क्रतौ ।  
विन्याध कुपितो यज्ञं निर्भयस्तु भवस्तदा ।  
धनुषा बाणमुत्सृज्य सघोषं विननाद च ॥ ११

ते न शर्म कुतः शान्तिं विषादं लेभिरे सुराः ।  
विद्रुते सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे ॥ १२  
तेन ज्यातलघोषेण सर्वे लोकाः समाकुलाः ।  
बभूवुरवशाः पार्थ विषेदुश्च सुरासुराः ॥ १३  
आपश्चक्षुभिरे चैव चकम्पे च वसुंधरा ।  
व्यद्रवन्गिरयश्चापि द्यौः पफाल च सर्वशः ॥ १४  
अन्धेन तमसा लोकाः प्रावृता न चकाशिरे ।  
प्रनष्टा ज्योतिषां भाश्च सह सूर्येण भारत ॥ १५  
भृशं भीतास्ततः शान्तिं चक्रुः स्वस्त्ययनानि च ।  
ऋषयः सर्वभूतानामात्मनश्च हितैषिणः ॥ १६  
ततः सोऽभ्यद्रवद्देवान्क्रुद्धो रौद्रपराक्रमः ।  
भगस्य नयने क्रुद्धः प्रहारेण व्यशातयत् ॥ १७  
पूषाणं चाभिदुद्राव परेण वपुषान्वितः ।  
पुरोडाशं भक्षयतो दशनान्वै व्यशातयत् ॥ १८  
ततः प्रणेमुर्देवास्ते वेपमानाः स्म शंकरम् ।  
पुनश्च संदधे रुद्रो दीप्तं सुनिशितं शरम् ॥ १९  
रुद्रस्य विक्रमं दृष्ट्वा भीता देवाः सहर्षिभिः ।  
ततः प्रसादयामासुः शर्वं ते विबुधोत्तमाः ॥ २०  
जेपुश्च शतरुद्रीयं देवाः कृत्वाञ्जलिं ततः ।  
संस्तूयमानस्त्रिदशैः प्रससाद महेश्वरः ॥ २१  
रुद्रस्य भागं यज्ञे च विशिष्टं ते त्वकल्पयन् ।  
भयेन त्रिदशा राजञ्शरणं च प्रपेदिरे ॥ २२  
तेन चैवातिकोपेन स यज्ञः संधितोऽभवत् ।  
यद्यच्चापि हतं तत्र तत्तथैव प्रदीयते ॥ २३  
असुराणां पुराण्यासंख्यीणि वीर्यवतां दिवि ।  
आयसं राजतं चैव सौवर्णमपरं तथा ॥ २४  
नाशकत्तानि मघवा भेरुं सर्वायुधैरपि ।  
अथ सर्वेऽमरा रुद्रं जग्मुः शरणमर्दिताः ॥ २५  
तत ऊचुर्महात्मानो देवाः सर्वे समागताः ।  
रुद्र रौद्रा भविष्यन्ति पशवः सर्वकर्मसु ।

जहि दैत्यान्सह पुरैल्लोकांस्त्रायस्व मानद ॥ २६  
 स तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा विष्णु कृत्वा शरोत्तमम् ।  
 शल्यमग्निं तथा कृत्वा पुङ्खं वैवस्वतं यमम् ।  
 वेदान्कृत्वा धनुः सर्वाङ्ग्यां च सावित्रिमुत्तमाम् ॥  
 देवान्प्रथवरं कृत्वा विनियुज्य च सर्वशः ।  
 त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तेन तानि विभेद सः ॥ २८  
 शरेणादित्यवर्णेन कालाग्निसमतेजसा ।  
 तेऽसुराः सपुरास्तत्र दग्धा रुद्रेण भारत ॥ २९  
 तं चैवाङ्कगत दृष्ट्वा बालं पञ्चशिखं पुनः ।  
 उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत्तदा ॥ ३०  
 असूयतश्च शक्रस्य वज्रेण प्रहरिष्यतः ।  
 सवज्र स्तम्भयामास तं बाहुं परिघोपमम् ॥ ३१  
 न संबुबुधिरे चैनं देवास्त भुवनेश्वरम् ।  
 सप्रजापतयः सर्वे तस्मिन्मुमुहुरीश्वरे ॥ ३२  
 ततो ध्यात्वाथ भगवान्ब्रह्मा तममितौजसम् ।  
 अयं श्रेष्ठ इति ज्ञात्वा ववन्दे तमुमापतिम् ॥ ३३  
 ततः प्रसादयामासुरूमां रुद्रं च ते सुराः ।  
 बभूव स तदा बाहुर्वलहन्तुर्यथा पुरा ॥ ३४  
 स चापि ब्राह्मणो भूत्वा दुर्वासा नाम वीर्यवान् ।  
 द्वारवत्यां मम गृहे चिरं कालमुपावसत् ॥ ३५  
 विप्रकारान्प्रयुङ्क्ते स्म सुबहून्मम वेश्मनि ।  
 तानुदारतया चाहमक्षमं तस्य दुःसहम् ॥ ३६  
 स देवेन्द्रश्च वायुश्च सोऽश्विनौ स च विद्युतः ।  
 स चन्द्रमाः स चेशानः स सूर्यो वरुणश्च सः ॥  
 स कालः सोऽन्तको मृत्युः स तमो रात्र्यहानि च ।  
 मासार्धमासा ऋतवः संध्ये संवत्सरश्च सः ॥ ३८  
 स धाता स विधाता च विश्वकर्मा च सर्ववित् ।  
 नक्षत्राणि दिशश्चैव प्रदिशोऽथ ग्रहास्तथा ।  
 विश्वमूर्तिरमेयात्मा भगवानस्मितद्युतिः ॥ ३९  
 एकधा च द्विधा चैव बहुधा च स एव च ।

शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा ॥ ४०  
 ईदृशः स महादेवो भूयश्च भगवानतः ।  
 न हि शक्या गुणा वक्तुमपि वर्षशतैरपि ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

१४६

वासुदेव उवाच ।

युधिष्ठिर महाबाहो महाभाग्यं महात्मनः ।  
 रुद्राय बहुरूपाय बहुनाम्ने निबोध मे ॥ १  
 वदन्त्यग्निं महादेवं तथा स्थाणुं महेश्वरम् ।  
 एकाक्ष त्र्यम्बकं चैव विश्वरूपं शिवं तथा ॥ २  
 द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः ।  
 घोरामन्यां शिवामन्यां ते तनू बहुधा पुनः ॥ ३  
 उग्रा घोरा तनूर्यास्य सोऽग्निर्विद्युत्स भास्करः ।  
 शिवा सौम्या च या तस्य धर्मस्त्वापोऽथ चन्द्रमाः ॥  
 आत्मनोऽर्धं तु तस्याग्निरुच्यते भरतर्षभ ।  
 ब्रह्मचर्यं चरत्येष शिवा यास्य तनुस्तथा ॥ ५  
 यास्य घोरतमा मूर्तिर्जगत्संहरते तथा ।  
 ईश्वरत्वान्महत्त्वाच्च महेश्वर इति स्मृतः ॥ ६  
 यन्निर्दहति यत्तीक्ष्णो यदुग्रो यत्प्रतापवान् ।  
 मांसशोणितमज्जादो यत्ततो रुद्र उच्यते ॥ ७  
 देवानां सुमहान्यच्च यच्चास्य विषयो महान् ।  
 यच्च विश्वं महत्पाति महादेवस्ततः स्मृतः ॥ ८  
 समेधयति यन्नित्यं सर्वार्थान्सर्वकर्मभिः ।  
 शिवमिच्छन्मनुष्याणां तस्मादेष शिवः स्मृतः ॥ ९  
 दहत्यूर्ध्वं स्थितो यच्च प्राणोत्पत्तिः स्थितिश्च यत् ।  
 स्थिरलिङ्गश्च यन्नित्यं तस्मात्स्थानुरिति स्मृतः ॥ १०  
 यदस्य बहुधा रूपं भूतं भव्यं भवत्तथा ।  
 स्थावरं जङ्गमं चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः ॥ ११  
 धूम्रं रूपं च यत्तस्य धूर्जटीत्यत उच्यते ।

विश्वे देवाश्च यत्तस्मिन्विश्वरूपस्ततः स्मृतः ॥ १२  
 सहस्राक्षोऽयुताक्षो वा सर्वतोक्षिमयोऽपि वा ।  
 चक्षुषः प्रभवस्तेजो नास्त्यन्तोऽथास्य चक्षुषाम् ॥  
 सर्वथा यत्पशून्पाति तैश्च यद्रमते पुनः ।  
 तेषामधिपतिर्यच्च तस्मात्पशुपतिः स्मृतः ॥ १४  
 नित्येन ब्रह्मचर्येण लिङ्गमस्य यदा स्थितम् ।  
 महयन्त्यस्य लोकाश्च महेश्वर इति स्मृतः ॥ १५  
 विप्रहं पूजयेद्यो वै लिङ्गं वापि महात्मनः ।  
 लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते ॥ १६  
 ऋषयश्चापि देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।  
 लिङ्गमेवार्चयन्ति स्म यत्तदूर्ध्वं समास्थितम् ॥ १७  
 पूज्यमाने ततस्तस्मिन्मोदते स महेश्वरः ।  
 सुखं ददाति प्रीतात्मा भक्तानां भक्तवत्सलः ॥ १८  
 एष एव इमशानेषु देवो वसति नित्यशः ।  
 यजन्ते तं जनास्तत्र वीरस्थाननिषेविणम् ॥ १९  
 विषमस्थः शरीरेषु स मृत्युः प्राणिनामिह ।  
 स च वायुः शरीरेषु प्राणोऽपानः शरीरिणाम् ॥  
 तस्य घोराणि रूपाणि दीप्तानि च बहूनि च ।  
 लोके यान्यस्य पूज्यन्ते विप्रास्तानि विदुर्बुधाः ॥ २१  
 नामधेयानि वेदेषु बहून्यस्य यथार्थतः ।  
 निरुच्यन्ते महत्त्वाच्च विभुत्वात्कर्मभिस्तथा ॥ २२  
 वेदे चास्य विदुर्विप्राः शतरुद्रीयमुत्तमम् ।  
 व्यासादनन्तरं यच्चाप्युपस्थानं महात्मनः ॥ २३  
 प्रदाता सर्वलोकानां विश्वं चाप्युच्यते महत् ।  
 ज्येष्ठभूतं वदन्त्येनं ब्राह्मणा ऋषयोऽपरे ॥ २४  
 प्रथमो ह्येष देवानां मुखादग्निरजायत ।  
 प्रह्रैर्बहुविधैः प्राणान्संरुद्धानुत्सृजत्यपि ॥ २५  
 स मोचयति पुण्यात्मा शरण्यः शरणागतान् ।  
 आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान् ॥ २६  
 स ददाति मनुष्येभ्यः स एवाक्षिपते पुनः ।

शक्रादिषु च देवेषु तस्य चैश्वर्यमुच्यते ॥ २७  
 स एवाभ्यधिको नित्यं त्रैलोक्यस्य शुभाशुभे ।  
 ऐश्वर्याच्चैव कामानामीश्वरः पुनरुच्यते ॥ २८  
 महेश्वरश्च लोकानां महतामीश्वरश्च सः ।  
 बहुभिर्विविधै रूपैर्विश्वं व्याप्नोति जगत् ।  
 तस्य देवस्य यद्वक्त्रं समुद्रे वडवामुखम् ॥ २९  
 इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
 षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

१४७

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्तवति वाक्यं तु कृष्णे देवकिनन्दने ।  
 भीष्म शांतनवं भूयः पर्यष्टच्छद्यधिष्ठिरः ॥ १  
 निर्णये वा महाबुद्धे सर्वधर्मभृतां वर ।  
 प्रत्यक्षमागमो वेति किं तयोः कारणं भवेत् ॥ २

भीष्म उवाच ।

नास्त्यत्र संशयः कश्चिदिति मे वर्तते मतिः ।  
 शृणु वक्ष्यामि ते प्राज्ञ सम्यक्त्वमनुवृच्छसि ॥ ३  
 संशयः सुगमो राजन्निर्णयस्त्वत्र दुर्गमः ।  
 दृष्टं श्रुतमनन्तं हि यत्र संशयदर्शनम् ॥ ४  
 प्रत्यक्षं कारणं दृष्टं हेतुकाः प्राज्ञमानिनः ।  
 नास्तीत्येवं व्यवस्यन्ति सत्यं संशयमेव च ।  
 तदयुक्तं व्यवस्यन्ति बालाः पण्डितमानिनः ॥ ५  
 अथ चेन्मन्यसे चैकं कारणं किं भवेदिति ।  
 शक्यं दीर्घेण कालेन युक्तेनातन्द्रितेन च ।  
 प्राणयात्रामनेकां च कल्पयानेन भारत ॥ ६  
 तत्परेणैव नान्येन शक्यं ह्येतत्तु कारणम् ।  
 हेतूनामन्तमासाद्य विपुलं ज्ञानमुत्तमम् ।  
 ज्योतिः सर्वस्य लोकस्य विपुलं प्रतिपद्यते ॥ ७  
 तत्त्वेनागमनं राजन्हेत्वन्तगमनं तथा ।  
 अप्राह्ममनिबद्धं च वाचः सपरिवर्जनम् ॥ ८

## युधिष्ठिर उवाच ।

प्रत्यक्षं लोकतः सिद्धं लोकाश्चागमपूर्वकाः ।  
शिष्टाचारो बहुविधो ब्रूहि तन्मे पितामह ॥ ९

## भीष्म उवाच ।

धर्मस्य ह्रियमाणस्य बलवद्भिर्दुरात्मभिः ।  
संस्था यत्नैरपि कृता कालेन परिमिद्यते ॥ १०  
अधर्मा धर्मरूपेण तृणैः कूपा इवावृताः ।  
ततस्तैर्भिद्यते वृत्तं शृणु चैव युधिष्ठिर ॥ ११  
अवृत्त्या ये च भिन्दन्ति श्रुतत्यागपरायणाः ।  
धर्मविद्वेषिणो मन्दा इत्युक्तस्तेषु संशयः ॥ १२  
अतृप्यन्तस्तु साधूनां य एवागमबुद्धयः ।  
परमित्येव संतुष्टास्तानुपास्व च पृच्छ च ॥ १३  
कामार्थौ पृष्ठतः कृत्वा लोभमोहानुसारिणौ ।  
धर्म इत्येव संतुष्टास्तानुपास्व च पृच्छ च ॥ १४  
न तेषां भिद्यते वृत्तं यज्ञस्वाध्यायकर्मभिः ।  
आचारः कारणं चैव धर्मश्चैव त्रयं पुनः ॥ १५

## युधिष्ठिर उवाच ।

पुनरेवेह मे बुद्धिः संशये परिमुह्यते ।  
अपारे मार्गमाणस्य परं तीरमपश्यतः ॥ १६  
वेदाः प्रत्यक्षमाचारः प्रमाणं तत्रयं यदि ।  
पृथक्त्वं लभ्यते चैषां धर्मश्चैकस्त्रयं कथम् ॥ १७

## भीष्म उवाच ।

धर्मस्य ह्रियमाणस्य बलवद्भिर्दुरात्मभिः ।  
यद्येवं मन्यसे राजंस्त्रिधा धर्मविचारणा ॥ १८  
एक एवेति जानीहि त्रिधा तस्य प्रदर्शनम् ।  
पृथक्त्वे चैव मे बुद्धिस्त्रयाणामपि वै तथा ॥ १९  
उक्तो मार्गस्त्रयाणां च तत्तथैव समाचर ।  
जिज्ञासा तु न कर्तव्या धर्मस्य परितर्कणात् ॥ २०  
सदैव भरतश्रेष्ठ मा ते भूदत्र संशयः ।

अन्धो जड इवाशङ्को यद्वीमि तदाचर ॥ २१  
अहिंसा सत्यमक्रोधो दानमेतच्चतुष्टयम् ।  
अजातशत्रो सेवस्व धर्म एष सनातनः ॥ २२  
ब्राह्मणेषु च वृत्तिर्या पितृपैतामहोचिता ।  
तामन्वेहि महाबाहो स्वर्गस्यैते हि देशिकाः ॥ २३  
प्रमाणमप्रमाण वै यः कुर्यादबुधो नरः ।  
न स प्रमाणतामर्हो विवादजननो हि सः ॥ २४  
ब्राह्मणानेव सेवस्व सत्कृत्य बहुमन्य च ।  
एतेष्वेव त्विमे लोकाः कृत्स्ना इति निबोध तान् ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

१४८

## युधिष्ठिर उवाच ।

ये च धर्ममसूयन्ति ये चैनं पर्युपासते ।  
ब्रवीतु भगवानेतत्क ते गच्छन्ति तादृशाः ॥ १

## भीष्म उवाच ।

रजसा तमसा चैव समवस्तीर्णचेतसः ।  
नरकं प्रतिपद्यन्ते धर्मविद्वेषिणो नराः ॥ २  
ये तु धर्मं महाराज सततं पर्युपासते ।  
सत्यार्जवपराः सन्तस्ते वै स्वर्गमुजो नराः ॥ ३  
धर्म एव रतिस्तेषामाचार्योपासनाद्भवेत् ।  
देवलोकं प्रपद्यन्ते ये धर्मं पर्युपासते ॥ ४  
मनुष्या यदि वा देवाः शरीरमुपताप्य वै ।  
धर्मिणः सुखमेधन्ते लोभद्वेषविवर्जिताः ॥ ५  
प्रथमं ब्रह्मणः पुत्र धर्ममाहुर्मनीषिणः ।  
धर्मिणः पर्युपासन्ते फलं पक्वमिवाशयः ॥ ६

## युधिष्ठिर उवाच ।

असतां कीदृशं रूपं साधवः किं च कुर्वते ।  
ब्रवीतु मे भवानेतत्सन्तोऽसन्तश्च कीदृशाः ॥ ७

भीष्म उवाच ।

दुराचाराश्च दुर्धर्षा दुर्मुखाश्चाप्यसाधवः ।  
साधवः शीलसंपन्नाः शिष्टाचारस्य लक्षणम् ॥ ८  
राजमार्गे गवां मध्ये गोष्ठमध्ये च धर्मिणः ।  
नोपसेवन्ति राजेन्द्र सर्गं मूत्रपुरीषयोः ॥ ९  
पञ्चानामशनं दत्त्वा शेषमश्नन्ति साधवः ।  
न जल्पन्ति च भुञ्जाना न निद्रान्त्यार्द्रपाणयः ॥ १०  
चित्रभानुमनद्वाह देवं गोष्ठं चतुष्पथम् ।  
ब्राह्मणं धार्मिकं चैत्य ते कुर्वन्ति प्रदक्षिणम् ॥ ११  
वृद्धानां भारतज्ञानां स्त्रीणां बालातुरस्य च ।  
ब्राह्मणानां गवां राज्ञां पन्थानं ददते च ते ॥ १२  
अतिथीनां च सर्वेषां प्रेक्ष्याणां स्वजनस्य च ।  
तथा शरणकामानां गोप्ता स्यात्स्वागतप्रदः ॥ १३  
सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं देवनिर्मितम् ।  
नान्तरा भोजनं दृष्टमुपवासविधिर्हि सः ॥ १४  
होमकाले यथा वह्निः कालमेव प्रतीक्षते ।  
ऋतुकाले तथा नारी ऋतुमेव प्रतीक्षते ।  
न चान्यां गच्छते यस्तु ब्रह्मचर्यं हि तत्स्मृतम् ॥ १५  
अमृतं ब्राह्मणा गाव इत्येतन्नयमेकतः ।  
तस्माद्ब्राह्मणं नित्यमर्चयेत् यथाविधि ॥ १६  
यजुषा संस्कृतं मांसमुपभुञ्जन्न दुष्यति ।  
पृष्ठमांसं वृथामांसं पुत्रमांसं च तत्समम् ॥ १७  
स्वदेशे परदेशे वाप्यतिथिं नोपवासयेत् ।  
कर्म वै सफलं कृत्वा गुरुणां प्रतिपादयेत् ॥ १८  
गुरुभ्य आसनं देयमभिवाद्याभिपूज्य च ।  
गुरुनभ्यर्च्य वर्धन्ते आयुषा यशसा श्रिया ॥ १९  
वृद्धान्नातिवदेज्जातु न च संप्रेषयेदपि ।  
नासीनः स्यात्स्थितेष्वेवमायुरस्य न रिष्यते ॥ २०  
न नग्नमीक्षते नारीं न विद्वान्पुरुषानपि ।  
मैथुनं सततं गुप्तामाहारं च समाचरेत् ॥ २१

तीर्थानां गुरवस्तीर्थं शुचीनां हृदयं शुचि ।  
दर्शनानां परं ज्ञानं संतोषः परमं सुखम् ॥ २२  
सायं प्रातश्च वृद्धानां शृणुयात्पुष्कला गिरः ।  
श्रुतमाप्नोति हि नरः सततं वृद्धसेवया ॥ २३  
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ।  
यच्छेद्वाङ्मनसी नित्यमिन्द्रियाणां च विभ्रमम् ॥  
सस्कृतं पायसं नित्यं यवागूं कृसरं हविः ।  
अष्टकाः पितृदैवत्या वृद्धानामभिपूजनम् ॥ २५  
इमश्चुर्मणि मङ्गल्यं क्षुतानामभिनन्दनम् ।  
व्याधितानां च सर्वेषामायुषः प्रतिनन्दनम् ॥ २६  
न जातु त्वमिति ब्रूयादापन्नोऽपि महत्तरम् ।  
त्वंकारो वा बधो वेति विद्वत्सु न विशिष्यते ।  
अवराणां समानानां शिष्याणां च समाचरेत् ॥ २७  
पापमाचक्षते नित्यं हृदयं पापकर्मिणाम् ।  
ज्ञानपूर्वं विनश्यन्ति गूहमाना महाजने ॥ २८  
ज्ञानपूर्वं कृतं कर्म च्छाद्यन्ते हासाधवः ।  
न मां मनुष्याः पश्यन्ति न मां पश्यन्ति देवताः ।  
पापेनाभिहतः पापः पापमेवाभिजायते ॥ २९  
यथा वार्षुषिको वृद्धिं देहभेदे प्रतीक्षते ।  
धर्मेणापिहितं पापं धर्ममेवाभिवर्धयेत् ॥ ३०  
यथा लवणमम्भोभिराप्नुतं प्रविलीयते ।  
प्रायश्चित्तहतं पापं तथा सद्यः प्रणश्यति ॥ ३१  
तस्मात्पापं न गूहेत गूहमानं विवर्धते ।  
कृत्वा तु साधुष्वाख्येयं ते तत्प्रशमयन्त्युत ॥ ३२  
आशया संचितं द्रव्यं यत्काले नोपभुज्यते ।  
अन्ये चैतत्प्रपद्यन्ते वियोगे तस्य देहिनः ॥ ३३  
मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणः ।  
तस्मात्सर्वाणि भूतानि धर्ममेव समासते ॥ ३४  
एक एव चरेद्धर्मं न धर्मध्वजिको भवेत् ।  
धर्मवाणिजका ह्येते ये धर्ममुपभुञ्जते ॥ ३५

अर्चेद्देवानदम्भेन सेवेतामायया गुरुन् ।  
निधिं निदध्यात्पारय्यं यात्रार्थं दानशब्दितम् ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

१४९

युधिष्ठिर उवाच ।

नाभागधेयः प्राप्नोति धनं सुबलवानपि ।  
भागधेयान्वितस्त्वर्थान्कृशो बालश्च विन्दति ॥ १  
नालभकाले लभते प्रयत्नेऽपि कृते सति ।  
लाभकालेऽप्रयत्नेन लभते विपुलं धनम् ।  
कृतयत्नाफलाश्चैव दृश्यन्ते शतशो नराः ॥ २  
यदि यत्नो भवेन्मर्त्यः स सर्वं फलमाप्नुयात् ।  
नालभ्यं चोपलभ्येत नृणां भरतसत्तम ॥ ३  
यदा प्रयत्नं कृतवान्दृश्यते ह्यफलो नरः ।  
मार्गन्नयशतैरर्थानिमार्गश्चापरः सुखी ॥ ४  
अकार्यमसकृत्कृत्वा दृश्यन्ते ह्यधना नराः ।  
धनयुक्तास्त्वधर्मस्था दृश्यन्ते चापरे जनाः ॥ ५  
अधीत्य नीतिं यस्माच्च नीतियुक्तो न दृश्यते ।  
अनभिज्ञश्च साविध्यं गमितः केन हेतुना ।  
विद्यायुक्तो ह्यविद्यश्च धनवान्दुर्गतस्तथा ॥ ६  
यदि विद्यामुपाश्रित्य नरः सुखमवाप्नुयात् ।  
न विद्वान्विद्यया हीनं वृत्त्यर्थमुपसंश्रयेत् ॥ ७  
यथा पिपासां जयति पुरुषः प्राप्य वै जलम् ।  
दृष्टार्थो विद्ययाप्येवमविद्यां प्रजहेन्नरः ॥ ८  
नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि ।  
तृणाग्रेणापि संपृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ॥ ९

भीष्म उवाच ।

ईहमानः समारम्भान्यदि नासादयेद्धनम् ।  
उग्रं तपः समारोहेन्न ह्यनुग्रं प्ररोहति ॥ १०  
दानेन भोगी भवति मेधावी वृद्धसेवया ।

अहिंसया च दीर्घायुरिति प्राहुर्मनीषिणः ॥ ११  
तस्माद्वयान्न याचेत पूजयेद्धार्मिकानपि ।  
स्वाभाषी प्रियकृच्छुद्रः सर्वसत्त्वाविहिंसकः ॥ १२  
यदा प्रमाणप्रभवः स्वभावश्च सुखासुखे ।  
मशकीटपिपीलानां स्थिरो भव युधिष्ठिर ॥ १३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

१५०

भीष्म उवाच ।

कार्यते यच्च क्रियते सच्चासच्च कृतं ततः ।  
तत्राश्वसीत सत्कृत्वा असत्कृत्वा न विश्वसेत् ॥ १  
काल एवात्र कालेन निग्रहानुग्रहौ ददत् ।  
बुद्धिमाविश्य भूतानां धर्मार्थेषु प्रवर्तते ॥ २  
यदा त्वस्य भवेद्बुद्धिर्धर्म्या चार्थप्रदर्शिनी ।  
तदाश्वसीत धर्मात्मादृढबुद्धिर्न विश्वसेत् ॥ ३  
एतावन्मात्रमेतद्वि भूतानां प्राज्ञलक्षणम् ।  
कालयुक्तोऽप्युभयविच्छेषमर्थं समाचरेत् ॥ ४  
यथा ह्युपस्थितैश्वर्याः पूजयन्ते नरा नरान् ।  
एवमेवात्मनात्मानं पूजयन्तीह धार्मिकाः ॥ ५  
न ह्यधर्मतया धर्मं दद्यात्कालः कथंचन ।  
तस्माद्विशुद्धमात्मानं जानीयाद्धर्मचारिणम् ॥ ६  
स्पृष्टमप्यसमर्थो हि ज्वलन्तमिव पावकम् ।  
अधर्मः सततो धर्मं कालेन परिरक्षितम् ॥ ७  
कार्यावेतौ हि कालेन धर्मो हि विजयावहः ।  
त्रयाणामपि लोकानामालोककरणो भवेत् ॥ ८  
तत्र कश्चिन्नयेत्प्राज्ञो गृहीत्वैव करे नरम् ।  
उह्यमानः स धर्मेण धर्मे बहुभयच्छले ॥ ९

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि  
पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

१५१

युधिष्ठिर उवाच ।

किं श्रेयः पुरुषस्येह किं कुर्वन्सुखमेधते ।

विपाप्मा च भवेत्केन किं वा कल्मषनाशनम् ॥ १

भीष्म उवाच ।

अयं दैवतवंशो वै ऋषिवंशसमन्वितः ।

द्विसंध्यं पठितः पुत्र कल्मषापहरः परः ॥ २

देवासुरगुरुर्देवः सर्वभूतनमस्कृतः ।

अचिन्त्योऽथाप्यनिर्देश्यः सर्वप्राणो ह्ययोनिजः ॥ ३

पितामहो जगन्नाथः सावित्री ब्रह्मणः सती ।

वेदभूरथ कर्ता च विष्णुर्नारायणः प्रभुः ॥ ४

उमापतिर्विरूपाक्षः स्कन्दः सेनापतिस्तथा ।

विशाखो हुतभुग्वायुश्चन्द्रादित्यौ प्रभाकरौ ॥ ५

शक्रः शचीपतिर्देवो यमो धूमोर्णया सह ।

वरुणः सह गौर्या च सह ऋद्ध्या धनेश्वरः ॥ ६

सौम्या गौः सुरभिर्देवी विश्रवाश्च महानृषिः ।

षट्कालः सागरो गङ्गा स्रवन्त्योऽथ मरुद्गणाः ॥ ७

बालखिल्यास्तपःसिद्धाः कृष्णद्वैपायनस्तथा ।

नारदः पर्वतश्चैव विश्वावसुर्हृदाहुहूः ॥ ८

तुम्बरश्चित्रसेनश्च देवदूतश्च विश्रुतः ।

देवकन्या महाभागा दिव्याश्चाप्सरसां गणाः ॥ ९

उर्वशी मेनका रम्भा मिश्रकेशी अलम्बुषा ।

विश्रवाची च घृताची च पञ्चचूडा तिलोत्तमा ॥ १०

आदित्या वसवो रुद्राः साश्विनः पितरोऽपि च ।

धर्मः सत्यं तपो दीक्षा व्यवसायः पितामहः ॥ ११

शर्वर्यो दिवसाश्चैव मारीचः कश्यपस्तथा ।

शुक्रो बृहस्पतिर्भौमो बुधो राहुः शनैश्चरः ॥ १२

नक्षत्राण्यृतवश्चैव मासाः संध्याः सवत्सराः ।

वैनतेयाः समुद्राश्च कद्रुजाः पन्नगास्तथा ॥ १३

शतद्रुश्च विपाशा च चन्द्रभागा सरस्वती ।

सिन्धुश्च देविका चैव पुष्करं तीर्थमेव च ॥ १४

गङ्गा महानदी चैव कपिला नर्मदा तथा ।

कम्पुना च विशल्या च करतोयाम्बुवाहिनी ॥ १५

सरयूर्गण्डकी चैव लोहित्यश्च महानदः ।

ताम्रारुणा वेत्रवती पर्णाशा गौतमी तथा ॥ १६

गोदावरी च वेण्णा च कृष्णवेणा तथाद्रिजा ।

हृषद्वती च कावेरी वंक्षुर्मन्दाकिनी तथा ॥ १७

प्रयागं च प्रभासं च पुण्यं नैमिषमेव च ।

तच्च विश्वेश्वरस्थानं यत्र तद्विमलं सरः ॥ १८

पुण्यतीर्थैश्च कलिलं कुरुक्षेत्रं प्रकीर्तितम् ।

सिन्धूत्तमं तपोदानं जम्बूमार्गमथापि च ॥ १९

हिरण्वती वितस्ता च तथैवेक्षुमती नदी ।

वेदस्मृतिर्वेदसिनी मलवासाश्च नद्यपि ॥ २०

भूमिभागास्तथा पुण्या गङ्गाद्वारमथापि च ।

ऋषिकुल्यास्तथा मेध्या नदी चित्रपथा तथा ॥ २१

कौशिकी यमुना सीता तथा चर्मण्वती नदी ।

नदी भीमरथी चैव बाहुदा च महानदी ।

महेन्द्रवाणी त्रिदिवा नीलिका च सरस्वती ॥ २२

नन्दा चापरनन्दा च तथा तीर्थं महाहृदम् ।

गयाथ फल्गुतीर्थं च धर्मरिण्यं सुरैर्वृतम् ॥ २३

तथा देवनदी पुण्या सरश्च ब्रह्मनिर्मितम् ।

पुण्यं त्रिलोकविख्यात सर्वपापहरं शिवम् ॥ २४

हिमवान्पर्वतश्चैव दिव्यौषधिसमन्वितः ।

विन्ध्यो धातुविचित्राङ्गस्तीर्थवानौषधान्वितः ॥ २५

मेरुर्महेन्द्रो मलयः श्वेतश्च रजताचितः ।

शृङ्गवान्मन्दरो नीलो निषधो दर्दुरस्तथा ॥ २६

चित्रकूटोऽञ्जनाभश्च पर्वतो गन्धमादनः ।

पुण्यः सोमगिरिश्चैव तथैवान्ये महीधराः ।

दिशश्च विदिशश्चैव क्षितिः सर्वे महीरुहाः ॥ २७

विश्वेदेवा नभश्चैव नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।

पान्तु वः सततं देवा कीर्तिताकीर्तिना मया ॥२८  
 कीर्तयानो नरो ह्येतान्मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।  
 स्तुवंश्च प्रतिनन्दश्च मुच्यते सर्वतो भयात् ।  
 सर्वसंकरपापेभ्यो देवतास्तवनन्दकः ॥ २९  
 देवतानन्तरं विप्रांस्तपःसिद्धांस्तपोधिकान् ।  
 कीर्तितान्कीर्तयिष्यामि सर्वपापप्रमोचनान् ॥ ३०  
 यवक्रीतोऽथ रैभ्यश्च कक्षीवानौशिजस्तथा ।  
 भृग्वङ्गिरास्तथा कण्वो मेधातिथिरथ प्रभुः ।  
 बर्ही च गुणसंपन्नः प्राची दिशमुपाश्रिताः ॥ ३१  
 भद्रां दिशं महाभागा उल्मुचुः प्रमुचुस्तथा ।  
 मुमुचुश्च महाभागः स्वस्त्यात्रेयश्च वीर्यवान् ॥ ३२  
 मित्रावरुणयोः पुत्रस्तथागस्त्यः प्रतापवान् ।  
 दृढायुश्चोर्ध्वबाहुश्च विश्रुतावृषिसत्तमौ ॥ ३३  
 पश्चिमां दिशमाश्रित्य य एधन्ते निबोध तान् ।  
 उषद्भुः सह सोदर्यैः परिव्याधश्च वीर्यवान् ॥ ३४  
 ऋषिर्द्विर्धत्तमाश्चैव गौतमः कश्यपस्तथा ।  
 एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षयः ।  
 अत्रेः पुत्रश्च धर्मात्मा तथा सारस्वतः प्रभुः ॥३५  
 उत्तरां दिशमाश्रित्य य एधन्ते निबोध तान् ।  
 अत्रिर्वसिष्ठः शक्तिश्च पाराशर्यश्च वीर्यवान् ॥ ३६  
 विश्वामित्रो भरद्वाजो जमदग्निस्तथैव च ।  
 ऋचीकपौत्रो रामश्च ऋषिरौद्दालकिस्तथा ॥ ३७  
 श्वेतकेतुः कोहलश्च विपुलो देवलस्तथा ।  
 देवशर्मा च धौम्यश्च हस्तिकाश्यप एव च ॥ ३८  
 लोमशो नाचिकेतश्च लोमहर्षण एव च ।  
 ऋषिरुग्रश्रवाश्चैव भार्गवश्चयवनस्तथा ॥ ३९  
 एष वै समवायस्ते ऋषिदेवसमन्वितः ।  
 आद्यः प्रकीर्तितो राजन्सर्वपापप्रमोचनः ॥ ४०  
 नृगो ययातिर्निहुषो यदुः पूरुश्च वीर्यवान् ।  
 धुन्धुमारो विलीपश्च सगरश्च प्रतापवान् ॥ ४१

म, भा. ३४४

कृशाश्वो यौवनाश्वश्च चित्राश्वः सत्यवांस्तथा ।  
 दुःषन्तो भरतश्चैव चक्रवर्ती महायशः ॥ ४२  
 यवनो जनकश्चैव तथा दृढरथो नृपः ।  
 रघुर्नरवरश्चैव तथा दशरथो नृपः ॥ ४३  
 रामो राक्षसहा वीरः शशविन्दुर्भगीरथः ।  
 हरिश्चन्द्रो मरुत्तश्च जहुर्जह्निविसेविता ॥ ४४  
 महोदयो ह्यलर्कश्च ऐलश्चैव नराधिपः ।  
 करंधमो नरश्रेष्ठः कध्मोरश्च नराधिपः ॥ ४५  
 दक्षोऽम्बरीषः कुकुरो रवतश्च महायशः ।  
 मुचुकुन्दश्च राजर्षिर्मित्रभानुः प्रियंकरः ॥ ४६  
 त्रसदस्युस्तथा राजा श्वेतो राजर्षिसत्तमः ।  
 महाभिषश्च विख्यातो निमिराजस्तथाष्टकः ॥ ४७  
 आयुः क्षुपश्च राजर्षिः कक्षेयुश्च नराधिपः ।  
 शिविरौशीनरश्चैव गयश्चैव नराधिपः ॥ ४८  
 प्रतर्दनो दिवोदासः सौदासः कोसलेश्वरः ।  
 ऐलो नलश्च राजर्षिर्मनुश्चैव प्रजापतिः ॥ ४९  
 हविध्रश्च पृषध्रश्च प्रतीपः शंतनुस्तथा ।  
 कक्षसेनश्च राजर्षियं चान्ये नानुकीर्तिताः ॥ ५०  
 मा विघ्न मा च मे पापं मा च मे परिपन्थिनः ।  
 श्रुवो जयो मे नित्यं स्यात्परत्र च परा गतिः ॥५१

इति श्रीमहाभारते अनुशासनतत्पर्वणि

एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

१५२

वैशंपायन उवाच ।

तूष्णीभूते तदा भीष्मे पटे चित्रमिवापितम् ।  
 मुहूर्तमिव च ध्यात्वा व्यासः सत्यवतीसुतः ।  
 नृपं शयानं गाङ्गेयमिदमाह वचस्तदा ॥ १  
 राजन्प्रकृतिमापन्नः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।  
 सहितो भ्रातृभिः सर्वैः पार्थिवैश्चानुयायिभिः ॥ २  
 उपास्ते त्वां नरव्याघ्र सह कृष्णेन धीमता ।



तमिमं पुरयानाय त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥ ३  
 एवमुक्तो भगवता व्यासेन पृथिवीपतिः ।  
 युधिष्ठिरं सहामात्यमनुजज्ञे नदीसुतः ॥ ४  
 उवाच चैनं मधुरं ततः शांतनवो नृपः ।  
 प्रविशस्व पुरं राजन्व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ५  
 यजस्व विविधैर्यज्ञैर्वह्नैः स्वाप्तदक्षिणैः ।  
 ययातिरिव राजेन्द्र श्रद्धादमपुरःसरः ॥ ६  
 क्षत्रधर्मरतः पार्थ पितृन्देवांश्च तर्पय ।  
 श्रेयसा योक्ष्यसे चैव व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ७  
 रञ्जयस्व प्रजाः सर्वाः प्रकृतीः परिसान्त्वय ।  
 सुहृदः फलसत्कारैरभ्यर्चय यथार्हतः ॥ ८  
 अनु त्वां तात जीवन्तु मित्राणि सुहृदस्तथा ।  
 चैत्यस्थाने स्थितं वृक्षं फलवन्तमिव द्विजाः ॥ ९  
 आगन्तव्यं च भवता समये मम पार्थिव ।  
 विनिवृत्ते दिनकरे प्रवृत्ते चोत्तरायणे ॥ १०  
 तथेत्युक्त्वा तु कौन्तेयः सोऽभिवाद्य पितामहम् ।  
 प्रययौ सपरीवारो नगरं नागसाह्वयम् ॥ ११  
 धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गान्धारीं च पतिव्रताम् ।  
 सह तैर्ऋषिभिः सर्वैर्भ्रातृभिः केशवेन च ॥ १२  
 पौरजानपदैश्चैव मन्त्रिवृद्धैश्च पार्थिवः ।  
 प्रविवेश कुरुश्रेष्ठ पुरं वारणसाह्वयम् ॥ १३

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

॥ समाप्तं दानधर्मपर्व ॥

१५३

वैशंपायन उवाच ।

ततः कुन्तीसुतो राजा पौरजानपदं जनम् ।  
 पूजयित्वा यथान्यायमनुजज्ञे गृहान्प्रति ॥ १  
 सान्त्वयामास नारीश्च हतवीरा हतेश्वराः ।  
 विपुलैरर्थदानैश्च तदा पाण्डुसुतो नृपः ॥ २

सोऽभिषिक्तो महाप्राज्ञः प्राप्य राज्यं युधिष्ठिरः ।  
 अवस्थाप्य नरश्रेष्ठः सर्वाः स्वप्रकृतीस्तदा ॥ ३  
 द्विजेभ्यो बलमुख्येभ्यो नैगमेभ्यश्च सर्वशः ।  
 प्रतिगृह्णाशिषो मुख्यास्तदा धर्मभृतां वरः ॥ ४  
 उषित्वा शर्वरीः श्रीमान्पञ्चाशन्नगरोत्तमे ।  
 समयं कौरवाग्र्यस्य सस्मार पुरुषर्षभः ॥ ५  
 स निर्ययौ गजपुराद्याजकैः परिवारितः ।  
 दृष्ट्वा निवृत्तमादित्यं प्रवृत्तं चोत्तरायणम् ॥ ६  
 धृतं माल्यं च गन्धांश्च क्षौमाणि च युधिष्ठिरः ।  
 चन्दनागरुमुख्यानि तथा कालागारूणि च ॥ ७  
 प्रस्थाप्य पूर्वं कौन्तेयो भीष्मसंसाधनाय वै ।  
 माल्यानि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च ॥ ८  
 धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गान्धारीं च यशस्विनीम् ।  
 मातरं च पृथां धीमान्भ्रातृंश्च पुरुषर्षभः ॥ ९  
 जनार्दनेनानुगतो विदुरेण च धीमता ।  
 युयुत्सुना च कौरव्यो युयुधानेन चाभिभो ॥ १०  
 महता राजभोग्येन परिबर्हेण संवृतः ।  
 स्तूयमानो महाराज भीष्मस्याग्नीननुव्रजन् ॥ ११  
 निश्चक्राम पुरातन्माद्यथा देवपतिस्तथा ।  
 आससाद कुरुक्षेत्रे ततः शांतनवं नृपम् ॥ १२  
 उपास्यमानं व्यासेन पाराशर्येण धीमता ।  
 नारदेन च राजर्षे देवलेनासितेन च ॥ १३  
 हतशिष्टैर्नृपैश्चान्यैर्नादेशसमागतैः ।  
 रक्षिभिश्च महात्मानं रक्ष्यमाणं समन्ततः ॥ १४  
 शयानं वीरशयने ददर्श नृपतिस्ततः ।  
 ततो रथादवारोहद्भ्रातृभिः सह धर्मराट् ॥ १५  
 अभिवाद्याथ कौन्तेयः पितामहमरिंदमम् ।  
 द्वैपायनादीन्विप्रांश्च तैश्च प्रत्यभिनन्दितः ॥ १६  
 ऋत्विग्भिर्ब्रह्मकल्पैश्च भ्रातृभिश्च सहाच्युतः ।  
 आसाद्य शरतल्पस्थमृषिभिः परिवारितम् ॥ १७

अब्रवीद्भरतश्रेष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।  
 भ्रातृभिः सह कौरव्य शयानं निम्नगासुतम् ॥ १८  
 युधिष्ठिरोऽहं नृपते नमस्ते जाह्नवीसुत ।  
 शृणोषि चेन्महाबाहो ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १९  
 प्राप्तोऽस्मि समये राजन्नग्नीनादाय ते विभो ।  
 आचार्या ब्राह्मणाश्चैव ऋत्विजो भ्रातरश्च मे ॥ २०  
 पुत्रश्च ते महातेजा धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।  
 उपस्थितः सहामात्यो वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ २१  
 हतशिष्टाश्च राजानः सर्वे च कुरुजाङ्गलाः ।  
 तान्पश्य कुरुशार्दूल ससुन्मीलय लोचने ॥ २२  
 यच्चेह किञ्चित्कर्तव्यं तत्सर्वं प्रापितं मया ।  
 यथोक्तं भवता काले सर्वमेव च तत्कृतम् ॥ २३  
 एवमुक्तस्तु गाङ्गेयः कुन्तीपुत्रेण धीमता ।  
 ददर्श भारतान्सर्वान्स्थितान्संपरिवार्य तम् ॥ २४  
 ततश्चलवलिर्भीष्मः प्रगृह्य विपुलं भुजम् ।  
 ओघमेघस्वनो वाग्मी काले वचनमब्रवीत् ॥ २५  
 दिष्ट्या प्राप्तोऽसि कौन्तेय सहामात्यो युधिष्ठिर ।  
 परिवृत्तो हि भगवान्सहस्रांशुर्दिवाकरः ॥ २६  
 अष्टपञ्चाशतं राज्यः शयानस्याद्य मे गताः ।  
 शरेषु निशिताग्नेषु यथा वर्षशतं तथा ॥ २७  
 माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः पुण्यो युधिष्ठिर ।  
 विभागशेषः पक्षोऽयं शुद्धो भवितुमर्हति ॥ २८  
 एवमुक्त्वा तु गाङ्गेयो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।  
 धृतराष्ट्रमथामन्त्र्य काले वचनमब्रवीत् ॥ २९  
 राजन्विदितधर्मोऽसि सुनिर्णीतार्थसंशयः ।  
 बहुश्रुता हि ते विप्रा बहवः पर्युपासिताः ॥ ३०  
 वेदशास्त्राणि सर्वाणि धर्माश्च मनुजेश्वर ।  
 वेदांश्च चतुरः साङ्गान्निखिलेनावबुध्यसे ॥ ३१  
 न शोचितव्यं कौरव्य भवितव्यं हि तत्तथा ।  
 श्रुतं देवरहस्य ते कृष्णद्वैपायनादपि ॥ ३२

यथा पाण्डोः सुता राजंस्तथैव तव धर्मतः ।  
 तान्पालय स्थितो धर्मे गुरुशुश्रूपणे रतान् ॥ ३३  
 धर्मराजो हि शुद्धात्मा निदेशे स्थास्यते तव ।  
 आनुशंस्यपरं ह्येनं जानामि गुरुवत्सलम् ॥ ३४  
 तव पुत्रा दुरात्मानः क्रोधलोभपरायणाः ।  
 ईर्ष्याभिभूता दुर्वृत्तास्तान्न शोचितुमर्हसि ॥ ३५  
 वैशंपायन उवाच ।  
 एतावदुक्त्वा वचनं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।  
 वासुदेवं महाबाहुमभ्यभाषत कौरवः ॥ ३६  
 भगवन्देवदेवेश सुरासुरनमस्कृत ।  
 त्रिविक्रम नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर ॥ ३७  
 अनुजानीहि मां कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम ।  
 रक्षयाश्च ते पाण्डवेया भवान्हेपां परायणम् ॥ ३८  
 उक्तवानस्मि दुर्बुद्धिं मन्दं दुर्योधनं पुरा ।  
 यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ३९  
 वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः ।  
 संधानस्य परः कालस्तवेति च पुनः पुनः ॥ ४०  
 न च मे तद्वचो मूढः कृतवान्स सुमन्दधीः ।  
 घातयित्वेह पृथिवी ततः स निधनं गतः ॥ ४१  
 त्वां तु जानाम्यहं वीर पुराणमृषिसत्तमम् ।  
 नरेण सहितं देवं बदर्यां सुचिरोषितम् ॥ ४२  
 तथा मे नारदः प्राह व्यासश्च सुमहातपाः ।  
 नरनारायणावेतौ संभूतौ मनुजेष्विति ॥ ४३  
 वासुदेव उवाच ।  
 अनुजानामि भीष्म त्वां वसूनाग्रुहि पार्थिव ।  
 न तेऽस्ति वृजिन किञ्चिन्मया दृष्टं महाद्युते ॥ ४४  
 पितृभक्तोऽसि राजर्षे मार्कण्डेय इवापरः ।  
 तेन मृत्युस्तव वशे स्थितो भूत्य इवानतः ॥ ४५  
 वैशंपायन उवाच ।  
 एवमुक्तस्तु गाङ्गेयः पाण्डवानिदमब्रवीत् ।

धृतराष्ट्रमुखांश्चापि सर्वान्समुद्ददस्तथा ॥ ४६  
 प्राणानुत्सृष्टमिच्छामि तन्मानुज्जातुमर्हथ ।  
 सत्ये प्रयतितव्यं वः सत्यं हि परमं बलम् ॥ ४७  
 आनुशंस्यपरैर्भावि्यं सदैव नियतात्माभिः ।  
 ब्रह्मण्यैर्धर्मशीलैश्च तपोनित्यैश्च भारत ॥ ४८  
 इत्युक्त्वा सुहृदः सर्वान्संपरिष्वज्य चैव ह ।  
 पुनरेवाब्रवीद्वीमान्युधिष्ठिरमिदं वचः ॥ ४९  
 ब्राह्मणाश्चैव ते नित्यं प्राज्ञाश्चैव विशेषतः ।  
 आचार्या ऋत्विजश्चैव पूजनीया नराधिप ॥ ५०

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

१५४

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वा कुरुन्सर्वान्भीष्मः शान्तनवस्तदा ।  
 तूष्णीं बभूव कौरव्यः स सुहृत्तमरिदम् ॥ १  
 धारयामास चात्मानं धारणासु यथाक्रमम् ।  
 तस्योर्ध्वमगमन्प्राणाः संनिरुद्धा महात्मनः ॥ २  
 इदमाश्चर्यमासीच्च मध्ये तेषां महात्मनाम् ।  
 यद्यन्मुञ्चति गात्राणां स शान्तनुस्तदा ।  
 तत्तद्विशल्यं भवति योगयुक्तस्य तस्य वै ॥ ३  
 क्षणेन प्रेक्षतां तेषां विशल्यः सोऽभवत्तदा ।  
 तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे वासुदेवपुरोगमाः ।  
 सह तैर्मुनिभिः सर्वैस्तदा व्यासादिभिर्नृप ॥ ४  
 संनिरुद्धस्तु तेनात्मा सर्वेष्वायतनेषु वै ।  
 जगाम भित्त्वा मूर्धानं दिवमभ्युत्पपात च ॥ ५  
 महोल्के च भीष्मस्य मूर्धदेशाज्जनाधिप ।  
 निःसृत्याकाशमाविश्य क्षणेनान्तरधीयत ॥ ६  
 एवं स नृपशार्दूल नृपः शान्तनवस्तदा ।  
 समयुज्यत लोकैः स्वैर्भरतानां कुलोद्बहः ॥ ७  
 ततस्त्वादाय दारुणि गन्धांश्च विविधान्वहून् ।

चितां चकुरुर्मात्मानः पाण्डवा विदुरस्तथा ।  
 युयुत्सुश्चापि कौरव्यः प्रेक्षकास्त्वितरेऽभवन् ॥ ८  
 युधिष्ठिरस्तु गाङ्गेयं विदुरश्च महामतिः ।  
 छादयामासतुरुभौ क्षौमैर्माल्यैश्च कौरवम् ॥ ९  
 धारयामास तस्याथ युयुत्सुश्छत्रमुत्तमम् ।  
 चामरव्यजने शुभ्रे मीमसेनार्जुनावुभौ ।  
 उष्णीषे पर्यगृहीतां माद्रीपुत्रावुभौ तदा ॥ १०  
 स्त्रियः कौरवनाथस्य भीष्मं कुरुकुलोद्बहम् ।  
 तालवृन्तान्युपादाय पर्यवीजन्समन्ततः ॥ ११  
 ततोऽस्य विधिवच्चक्रुः पितृमेधं महात्मनः ।  
 याजका जुहुवुश्चाग्निं जगुः सामानि सामगाः ॥ १२  
 ततश्चन्दनकाष्ठैश्च तथा कालेयकैरपि ।  
 कालागरुप्रभृतिभिर्गन्धैश्चोच्चावचैस्तथा ॥ १३  
 समवच्छाद्य गाङ्गेयं प्रबाल्य च हुताशनम् ।  
 अपसव्यमकुर्वन्त धृतराष्ट्रमुखा नृपाः ॥ १४  
 संस्कृत्य च कुरुश्रेष्ठं गाङ्गेयं कुरुसत्तमाः ।  
 जग्मुर्भागीरथीतीरमृषिजुष्टं कुरुद्वहाः ॥ १५  
 अनुगम्यमाना व्यासेन नारदेनासितेन च ।  
 कृष्णेन च भरतस्त्रीभिर्ये च पौराः समागताः ॥ १६  
 उदकं चक्रिरे चैव गाङ्गेयस्य महात्मनः ।  
 विधिवत्क्षत्रियश्रेष्ठाः स च सर्वो जनस्तदा ॥ १७  
 ततो भागीरथी देवी तनयस्योदके कृते ।  
 उत्थाय सलिलात्तस्माद्ब्रुदती शोकलालसा ॥ १८  
 परिदेवयती तत्र कौरवानभ्यभाषत ।  
 निबोधत यथावृत्तमुच्यमानं मयानघाः ॥ १९  
 राजवृत्तेन संपन्नः प्रज्ञयाभिजनेन च ।  
 सत्कर्ता कुरुवृद्धानां पितृभक्तो दृढव्रतः ॥ २०  
 जामदग्न्येन रामेण पुरा यो न पराजितः ।  
 दिव्यैरस्त्रैर्महावीर्यः स हतोऽद्य शिखण्डिना ॥ २१  
 अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम पार्थिवाः ।

अपश्यन्त्याः प्रियं पुत्रं यत्र दीर्यति मेऽद्य वै ॥ २२  
 समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिपुर्यां स्वयवरे ।  
 विजित्यैकरथेनाजौ कन्यास्ता यो जहार ह ॥ २३  
 यस्य नास्ति बले तुल्यः पृथिव्यामपि कश्चन ।  
 हतं शिखण्डिना श्रुत्वा यन्न दीर्यति मे मनः ॥ २४  
 जामदग्नयः कुरुक्षेत्रे युधि येन महात्मना ।  
 पीडितो नातियत्नेन निहतः स शिखण्डिना ॥ २५  
 एवंविधं बहु तदा विलपन्ती महानदीम् ।  
 आश्वासयामास तदा साम्ना दामोदरो विभुः ॥ २६  
 समाश्रसिहि भद्रे त्वं मा शुचः शुभदर्शने ।  
 गतः स परमां सिद्धिं तव पुत्रो न सशयः ॥ २७  
 वसुरेष महातेजाः शापदोषेण शोभने ।  
 मनुष्यतामनुप्राप्तो नैनं शोचितुमर्हसि ॥ २८  
 स एष क्षत्रधर्मेण युध्यमानो रणाजिरे ।

धनंजयेन निहतो नैष नुन्नः शिखण्डिना ॥ २९  
 भीष्मं हि कुरुशार्दूलमुद्यतेषु महारणे ।  
 न शक्तः संयुगे हन्तुं साक्षादपि शतक्रतुः ॥ ३०  
 स्वच्छन्देन सुतस्तुभ्य गतः स्वर्गं शुभानने ।  
 न शक्ताः स्युर्निहन्तु द्वि रणे तं सर्वदेवताः ॥ ३१  
 तस्मान्मा त्व सरिच्छ्रेष्ठे शोचस्व कुरुनन्दनम् ।  
 वसूनेष गतो देवि पुत्रस्ते विज्वरा भव ॥ ३२  
 इत्युक्त्वा सा तु कृष्णेन व्यासेन च सरिद्वरा ।  
 त्यक्त्वा शोक महाराज स्वं वार्यवततार ह ॥ ३३  
 सत्कृत्य ते तां सरितं ततः कृष्णमुखा नृपाः ।  
 अनुज्ञातास्तया सर्वे न्यवर्तन्त जनाधिपाः ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि

चतुष्वध्याशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

समाप्तं भीष्मस्वर्गारोहणपर्वं ॥

॥ समाप्तमनुशासनपर्वं ॥

## आश्वमेधिकपर्व

१

वैशंपायन उवाच ।

कृतोदकं तु राजानं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरः ।  
 पुरस्कृत्य महाबाहुस्तताराकुलेन्द्रियः ॥ १  
 उत्तीर्य च महीपालो बाष्पव्याकुललोचनः ।  
 पपात तीरे गङ्गाया व्याधविद्ध इव द्विपः ॥ २  
 तं सीदमान जग्राह मीमः कृष्णेन चोदितः ।  
 मैवमित्यब्रवीच्चैनं कृष्णः परबलार्दनः ॥ ३  
 तमार्तं पतितं भूमौ निश्चसन्तं पुनः पुनः ।  
 ददृशुः पाण्डवा राजन्धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ ४  
 तं दृष्ट्वा दीनमनसं गतसत्त्वं जनेश्वरम् ।  
 भूयः शोकसमाविष्टाः पाण्डवाः समुपाविशन् ॥ ५  
 राजा च धृतराष्ट्रस्तमुपासीनो महाभुजः ।  
 वाक्यमाह महाप्राज्ञो महाशोकप्रपीडितम् ॥ ६  
 उत्तिष्ठ कुरुशार्दूल कुरु कार्यमनन्तरम् ।  
 क्षत्रधर्मेण कौरव्य जितेयमवनिस्त्वया ॥ ७  
 तां भुङ्क्तु भ्रातृभिः सार्धं सुहृद्भिश्च जनेश्वर ।  
 न शोचितव्यं पश्यामि त्वया धर्मभृतां वर ॥ ८  
 शोचितव्यं मया चैव गान्धार्या च विशां पते ।  
 पुत्रैर्विहीनो राज्येन स्वप्रलब्धधनो यथा ॥ ९  
 अश्रुत्वा हितकामस्य विदुरस्य महात्मनः ।  
 वाक्यानि सुमहार्थानि परितप्यामि दुर्मतिः ॥ १०  
 उक्तवानेष मां पूर्वं धर्मात्मा दिव्यदर्शनः ।

दुर्योधनापराधेन कुलं ते विनशिष्यति ॥ ११  
 स्वस्ति चेदिच्छसे राजन्कुलस्यात्मन एव च ।  
 वध्यतामेष दुष्टात्मा मन्दो राजा सुयोधनः ॥ १२  
 कर्णश्च शकुनिश्चैव मैत्रं पश्यन्तु कर्हिचित् ।  
 द्यूतसंपातमप्येषामप्रमत्तो निवारय ॥ १३  
 अभिषेचय राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।  
 स पालयिष्यति वशी धर्मेण पृथिवीमिमाम् ॥ १४  
 अथ नेच्छसि राजानं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।  
 मेढीभूतः स्वयं राज्यं प्रतिगृहीष्व पार्थिव ॥ १५  
 समं सर्वेषु भूतेषु वर्तमानं नराधिप ।  
 अनुजीवन्तु सर्वे त्वां ज्ञातयो ज्ञातिवर्धन ॥ १६  
 एवं श्रुवति कौन्तेय विदुरे दीर्घदर्शिनि ।  
 दुर्योधनमहं पापमन्ववर्तं वृथामतिः ॥ १७  
 अश्रुत्वा ह्यस्य वीरस्य वाक्यानि मधुराण्यहम् ।  
 फलं प्राप्य महदुःखं निमग्नः शोकसागरे ॥ १८  
 वृद्धौ हि ते स्वः पितरौ पश्यावां दुःखितौ नृप ।  
 न शोचितव्यं भवता पश्यामीह जनाधिप ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु राजा स धृतराष्ट्रेण धीमता ।  
 तूष्णीं बभूव मेधावी तमुवाचाथ केशवः ॥ १

अतीव मनसा शोकः क्रियमाणो जनाधिप ।  
 संतापयति वैतस्य पूर्वप्रेतान्पितामहान् ॥ २  
 यजस्व विविधैर्यज्ञैर्बहुभिः स्वाप्रदक्षिणैः ।  
 देवांस्तर्पय सोमेन स्वधया च पितृनपि ॥ ३  
 त्वद्विधस्य महाबुद्ध नैतदद्योपपद्यते ।  
 विदितं वेदितव्यं ते कर्तव्यमपि ते कृतम् ॥ ४  
 श्रुताश्च राजधर्मास्ते भीष्माद्वागीरथीसुतात् ।  
 कृष्णद्वैपायनाच्चैव नारदाद्विदुरात्तथा ॥ ५  
 नेमामर्हसि मूढानां वृत्तिं त्वमनुवर्तितुम् ।  
 पितृपैतामहीं वृत्तिमास्थाय धुरमुद्वह ॥ ६  
 युक्तं हि यशसा क्षत्रं स्वर्गं प्राप्तुमसंशयम् ।  
 न हि कश्चन शूराणां निहतोऽत्र पराङ्मुखः ॥ ७  
 त्यज शोकं महाराज भवितव्यं हि तत्तथा ।  
 न शक्यास्ते पुनर्द्रष्टुं त्वया ह्यस्मिन्रणे हताः ॥ ८  
 एतावदुक्त्वा गोविन्दो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।  
 विरराम महातेजास्तमुवाच युधिष्ठिरः ॥ ९  
 गोविन्द मयि या प्रीतिस्तव सा विविता मम ।  
 सौहृदेन तथा प्रेम्णा सदा मामनुकम्पसे ॥ १०  
 प्रियं तु मे स्यात्सुमहत्कृतं चक्रगदाधर ।  
 श्रीमन्प्रीतेन मनसा सर्वं यादवनन्दन ॥ ११  
 यदि मामनुजानीयाद्भवान्गन्तुं तपोवनम् ।  
 न हि शान्तिं प्रपश्यामि घातयित्वा पितामहम् ।  
 कर्णं च पुरुषव्याघ्रं संग्रामेष्वपलायिनम् ॥ १२  
 कर्मणा येन मुच्येयमस्मात्क्रूरादरिदम् ।  
 कर्मणस्तद्विधत्स्वेह येन शुध्यति मे मनः ॥ १३  
 तमेवंवादिनं व्यासस्ततः प्रोवाच धर्मवित् ।  
 सान्त्वयन्सुमहातेजाः शुभं वचनमर्थवत् ॥ १४  
 अकृता ते मतिस्तात पुनर्बाल्येन मुह्यसे ।  
 किमाकाशे वयं सर्वे प्रलपाम मुहूर्मुहुः ॥ १५  
 विदिताः क्षत्रधर्मास्ते येषां युद्धेन जीविका ।

यथा प्रवृत्तो नृपतिर्नाधिबन्धेन युज्यते ॥ १६  
 मोक्षधर्माश्च निखिला याथातथ्येन ते श्रुताः ।  
 असकृच्चैव संदेहाश्छिन्नास्ते कामजा मया ॥ १७  
 अश्रद्धधानो दुर्मेधा लुप्तस्मृतिरसि ध्रुवम् ।  
 मैव भव न ते युक्तमिदमज्ञानमीदृशम् ॥ १८  
 प्रायश्चित्तानि सर्वाणि विदितानि च तेऽनघ ।  
 युद्धधर्माश्च ते सर्वे दानधर्माश्च ते श्रुताः ॥ १९  
 स कथं सर्वधर्मज्ञः सर्वांगमविशारदः ।  
 परिमुह्यसि भूयस्त्वमज्ञानादिव भारत ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

३

व्यास उवाच ।

युधिष्ठिर तव प्रज्ञा न सम्यगिति मे मतिः ।  
 न हि कश्चित्स्वयं मर्त्यः स्ववशः कुरुते क्रियाः ॥ १  
 ईश्वरेण नियुक्तोऽयं साध्वसाधु च मानवः ।  
 करोति पुरुषः कर्म तत्र का परिदेवना ॥ २  
 आत्मानं मन्यसे चाथ पापकर्माणमन्ततः ।  
 शृणु तत्र यथा पापमपकृष्येत भारत ॥ ३  
 तपोभिः क्रतुभिश्चैव दानेन च युधिष्ठिर ।  
 तरन्ति नित्यं पुरुषा ये स्म पापानि कुर्वते ॥ ४  
 यज्ञेन तपसा चैव दानेन च नराधिप ।  
 पूयन्ते राजशार्दूल नरा दुष्कृतकर्मिणः ॥ ५  
 असुराश्च सुराश्चैव पुण्यहेतोर्मखक्रियाम् ।  
 प्रयतन्ते महात्मानस्तस्माद्यज्ञाः परायणम् ॥ ६  
 यज्ञैरेव महात्मानो बभूवुरधिकाः सुराः ।  
 ततो देवाः क्रियावन्तो दानवानभ्यधर्षयन् ॥ ७  
 राजसूयाश्वमेधौ च सर्वमेधं च भारत ।  
 नरमेधं च नृपते त्वमाहर युधिष्ठिर ॥ ८  
 यजस्व वाजिमेधेन विधिवदक्षिणावता ।

बहुकामान्नचित्तेन रामो दाशरथिर्यथा ॥ ९  
यथा च भरतो राजा दौःषन्तिः पृथिवीपतिः ।  
शाकुन्तलो महावीर्यस्तव पूर्वपितामहः ॥ १०

युधिष्ठिर उवाच ।

असंशयं वाजिमेधः पावयेत्पृथिवीमपि ।  
अभिप्रायस्तु मे कश्चित्तं त्वं श्रोतुमिहार्हसि ॥ ११  
इमं ज्ञातिवधं कृत्वा सुमहान्तं द्विजोत्तम ।  
दानमल्पं न शक्यामि दातुं वित्तं च नास्ति मे ॥  
न च बालानिमान्दीनानुत्सहे वसु याचितुम् ।  
तथैवार्द्रव्रणान्कृच्छ्रे वर्तमानान्नृपात्मजान् ॥ १३  
स्वयं विनाश्य पृथिवीं यज्ञार्थे द्विजसत्तम ।  
करमाहारयिष्यामि कथं शोकपरायणान् ॥ १४  
दुर्योधनापराधेन वसुधा वसुधाधिपाः ।  
प्रनष्टा योजयित्वास्मानकीर्त्या मुनिसत्तम ॥ १५  
दुर्योधनेन पृथिवी क्षयिता वित्तकारणात् ।  
कोशश्चापि विशीर्णोऽसौ धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ॥ १६  
पृथिवी दक्षिणा चात्र विधिः प्रथमकल्पिकः ।  
विद्वद्भिः परिदृष्टोऽयं शिष्टो विधिविपर्ययः ॥ १७  
न च प्रतिनिधिं कर्तुं चिकीर्षामि तपोधन ।  
अत्र मे भगवन्सम्यक्सचिन्त्य कर्तुमर्हसि ॥ १८

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु पार्थेन कृष्णद्वैपायनस्तदा ।  
मुहूर्तमनुसंचिन्त्य धर्मराजानमब्रवीत् ॥ १९  
विद्यते द्रविणं पार्थ गिरौ हिमवति स्थितम् ।  
उत्सृष्टं ब्राह्मणैर्यज्ञे मरुत्तस्य महीपतेः ।  
तदानयस्व कौन्तेय पर्याप्तं तद्भविष्यति ॥ २०

युधिष्ठिर उवाच ।

कथं यज्ञे मरुत्तस्य द्रविणं तत्समाचितम् ।  
कस्मिंश्च काले स नृपो बभूव वदतां वर ॥ २१

व्यास उवाच ।

यदि शुश्रूषसे पार्थ शृणु कारंधमं नृपम् ।  
यस्मिन्काले महावीर्यः स राजासीन्महाधनः ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

युधिष्ठिर उवाच ।

शुश्रूषे तस्य धर्मज्ञ राजर्षेः परिकीर्तनम् ।  
द्वैपायन मरुत्तस्य कथां प्रब्रूहि मेऽनघ ॥ १

व्यास उवाच ।

आसीत्कृतयुगे पूर्व मनुर्दण्डधरः प्रभुः ।  
तस्य पुत्रो महेष्वासः प्रजातिरिति विश्रुतः ॥ २  
प्रजातेरभवत्पुत्रः क्षुप इत्यभिविश्रुतः ।  
क्षुपस्य पुत्रस्त्विक्ष्वाकुर्महीपालोऽभवत्प्रभुः ॥ ३  
तस्य पुत्रशतं राजन्नासीत्परमधार्मिकम् ।  
तांस्तु सर्वान्महीपालानिक्ष्वाकुरकरोत्प्रभुः ॥ ४  
तेषां ज्येष्ठस्तु विशोऽभूत्प्रतिमानं धनुष्मताम् ।  
विशस्य पुत्रः कल्याणो विविशो नाम भारत ॥ ५  
त्रिविंशस्य सुता राजन्बभूवुर्दश पञ्च च ।  
सर्वे धनुषि विक्रान्ता ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥ ६  
दानधर्मरताः सन्तः सततं प्रियवादिनः ।  
तेषां ज्येष्ठः खनीनेत्रः स तान्सर्वानपीडयत् ॥ ७  
खनीनेत्रस्तु विक्रान्तो जित्वा राज्यमकण्टकम् ।  
नाशक्रोद्रक्षितुं राज्यं नान्वरज्यन्त तं प्रजाः ॥ ८  
तमपास्य च तद्राष्ट्रं तस्य पुत्रं सुवर्चसम् ।  
अभ्यषिञ्चत राजेन्द्र मुदितं चाभवत्तदा ॥ ९  
स पितुर्विक्रियां दृष्ट्वा राज्यान्निरसनं तथा ।  
नियतो वर्तयामास प्रजाहितचिकीर्षया ॥ १०  
ब्रह्मण्यः सत्यवादी च शुचिः शमदमान्वितः ।

प्रजास्तं चान्वरज्यन्त धर्मनित्यं मनस्विनम् ॥ ११  
 तस्य धर्मप्रवृत्तस्य व्यशीर्यत्कोशवाहनम् ।  
 तं क्षीणकोश सामन्ताः समन्तात्पर्यपीडयन् ॥ १२  
 स पीड्यमानो बहुभिः क्षीणकोशस्त्ववाहनः ।  
 आर्तिमार्छित्परां राजा सह भृत्यैः पुरेण च ॥ १३  
 न चैनं परिहर्तुं तेऽशक्रवन्परिसंक्षये ।  
 सम्यग्वृत्तो हि राजा स धर्मनित्यो युधिष्ठिर ॥ १४  
 यदा तु परमामार्तिं गतोऽसौ सपुरो नृपः ।  
 ततः प्रदध्मौ स करं प्रादुरासीत्ततो बलम् ॥ १५  
 ततस्तानजयत्सर्वान्प्रातिसीमान्नराधिपान् ।  
 एतस्मात्कारणाद्राजन्विश्रुतः स करंधमः ॥ १६  
 तस्य करंधमः पुत्रस्त्रेतायुगमुखेऽभवत् ।  
 इन्द्रादनवरः श्रीमान्देवैरपि सुदुर्जयः ॥ १७  
 तस्य सर्वे महीपाला वर्तन्ते स्म वशे तदा ।  
 स हि सम्राडभूत्तेषां वृत्तेन च बलेन च ॥ १८  
 अविक्षिन्नाम धर्मात्मा शौर्येणैन्द्रसमोऽभवत् ।  
 यज्ञशीलः कर्मरतिर्धृतिमान्संयतेन्द्रियः ॥ १९  
 तेजसादित्यसदृशः क्षमया पृथिवीसमः ।  
 बृहस्पतिसमो बुद्ध्या हिमवानिव सुस्थिरः ॥ २०  
 कर्मणा मनसा वाचा दमेन प्रशमेन च ।  
 मनांस्वाराधयामास प्रजानां स महीपतिः ॥ २१  
 य ईजे ह्यमेधानां शतेन विधिवत्प्रभुः ।  
 याजयामास यं विद्वान्स्वयमेवाङ्गिराः प्रभुः ॥ २२  
 तस्य पुत्रोऽतिचक्राम पितरं गुणवत्तया ।  
 मरुतो नाम धर्मज्ञश्चक्रवर्ती महायशः ॥ २३  
 नागायुतसमप्राणः साक्षाद्विष्णुरिवापरः ।  
 स यक्ष्यमाणो धर्मात्मा शातकुम्भमयान्युत ।  
 कारयामास शुभ्राणि भाजनानि सहस्रशः ॥ २४  
 मेरु पर्वतमासाद्य हिमवत्पार्श्व उत्तरे ।  
 काञ्चनः सुमहान्पादस्तत्र कर्म चकार सः ॥ २५

ततः कुण्डानि पात्रीश्च पिठराण्यासनानि च ।  
 चक्रुः सुवर्णकर्तारो येषां संख्या न विद्यते ॥ २६  
 तस्यैव च समीपे स यज्ञवाटो बभूव ह ।  
 ईजे तत्र स धर्मात्मा विधिवत्पृथिवीपतिः ।  
 मरुतः सहितैः सर्वैः प्रजापालैर्नराधिपः ॥ २७  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि  
 चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

५

युधिष्ठिर उवाच ।

कथंवीर्यः समभवत्स राजा वदतां वरः ।  
 कथं च जातरूपेण समयुज्यत स द्विज ॥ १  
 क्व च तत्संप्रतं द्रव्यं भगवन्नवतिष्ठते ।  
 कथं च शक्यमस्माभिस्तदवाप्तुं तपोधन ॥ २  
 व्यास उवाच ।  
 असुराश्चैव देवाश्च दक्षस्यासन्प्रजापतेः ।  
 अपत्यं बहुलं तात तेऽस्पर्धन्त परस्परम् ॥ ३  
 तथैवाङ्गिरसः पुत्रौ व्रततुल्यौ बभूवतुः ।  
 बृहस्पतिर्बृहत्तेजाः संवर्तश्च तपोधनः ॥ ४  
 तावपि स्पर्धिनौ राजन्पृथगास्तां परस्परम् ।  
 बृहस्पतिश्च संवर्तं बाधते स्म पुनः पुनः ॥ ५  
 स बाध्यमानः सततं भ्रात्रा ज्येष्ठेन भारत ।  
 अर्थानुत्सृज्य दिग्वासा वनवासमरोचयत् ॥ ६  
 वासवोऽप्यसुरान्सर्वान्निर्जित्य च निहत्य च ।  
 इन्द्रत्वं प्राप्य लोकेषु ततो वव्रे पुरोहितम् ।  
 पुत्रमङ्गिरसो ज्येष्ठं विप्रश्रेष्ठं बृहस्पतिम् ॥ ७  
 याज्यस्त्वङ्गिरसः पूर्वमासीद्राजा करंधमः ।  
 वीर्येणाप्रतिमो लोके वृत्तेन च बलेन च ।  
 शतक्रतुरिवौजस्वी धर्मात्मा संशितव्रतः ॥ ८  
 वाहनं यस्य योधाश्च द्रव्याणि विविधानि च ।  
 ध्यानादेवाभवद्राजन्मुखवातेन सर्वशः ॥ ९



स गुणैः पार्थिवान्सर्वान्वशे चक्रे नराधिपः ।  
 संजीव्य कालमिष्टं च सशरीरो दिवं गतः ॥ १०  
 बभूव तस्य पुत्रस्तु यथातिरिव धर्मवित् ।  
 अविशिन्नाम शत्रुक्षित्स वशे कृतवान्महीम् ।  
 विक्रमेण गुणैश्चैव पितेवासीत्स पार्थिवः ॥ ११  
 तस्य वासवतुल्योऽभून्मरुतो नाम वीर्यवान् ।  
 पुत्रस्तमनुरक्ताभूत्पृथिवी सागराम्बरा ॥ १२  
 स्पर्धते सततं स स्म देवराजेन पार्थिवः ।  
 वासवोऽपि मरुत्तेन स्पर्धते पाण्डुनन्दन ॥ १३  
 शुचिः स गुणवानासीन्मरुतः पृथिवीपतिः ।  
 यतमानोऽपि यं शक्रो न विशेषयति स्म ह ॥ १४  
 सोऽशकुवन्पिशोषाय समाहूय बृहस्पतिम् ।  
 उवाचेदं वचो देवैः सहितो हरिवाहनः ॥ १५  
 बृहस्पते मरुत्तस्य मा स्म कार्पीः कथंचन ।  
 दैवं कर्माथ वा पित्र्यं कर्तासि मम चेत्प्रियम् ॥  
 अहं हि त्रिषु लोकेषु सुराणां च बृहस्पते ।  
 इन्द्रत्वं प्राप्तवानेको मरुत्तस्तु महीपतिः ॥ १७  
 कथं ह्यमर्त्यं ब्रह्मस्त्वं याजयित्वा सुराधिपम् ।  
 याजयेमृत्युसंयुक्तं मरुत्तमविशङ्कया ॥ १८  
 मां वा वृणीष्व भद्रं ते मरुत्तं वा महीपतिम् ।  
 परित्यज्य मरुत्तं वा यथाजोषं भजस्व माम् ॥ १९  
 एवमुक्तः स कौरव्य देवराज्ञा बृहस्पतिः ।  
 मुहूर्तमिव संचिन्त्य देवराजानमब्रवीत् ॥ २०  
 त्वं भूतानामधिपतिस्त्वयि लोकाः प्रतिष्ठिताः ।  
 नमुचेर्विश्वरूपस्य निहन्ता त्वं बलस्य च ॥ २१  
 त्वमाजहर्थं देवानामेको वीर श्रियं पराम् ।  
 त्वं बिभर्षि भुवं द्यां च सदैव बलसूदन ॥ २२  
 पौरोहित्यं कथं कृत्वा तव देवगणेश्वर ।  
 याजयेयमहं मर्त्यं मरुत्तं पाकशासन ॥ २३  
 समाश्वसिहि देवेश नाहं मर्त्याय कर्हिचित् ।

प्रहीष्यामि सुवं यज्ञे शृणु चेदं वचो मम ॥ २४  
 हिरण्यरेतसोऽम्भः स्यात्परिवर्तेत मेदिनी ।  
 भासं च न रविः कुर्यान्मत्सत्यं विचलेद्यदि ॥ २५  
 बृहस्पतिवचः श्रुत्वा शक्रो विगतमत्सरः ।  
 प्रशस्येनं विवेशाथ स्वमेव भवनं तदा ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

व्यास उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 बृहस्पतेश्च संवादं मरुत्तस्य च भारत ॥ १  
 देवराजस्य समयं कृतमाङ्गिरसेन ह ।  
 श्रुत्वा मरुतो नृपतिर्मन्युमाहारयत्तदा ॥ २  
 संकल्प्य मनसा यज्ञं करंधमसुतात्मजः ।  
 बृहस्पतिमुपागम्य वाग्मी वचनमब्रवीत् ॥ ३  
 भगवन्त्यन्मया पूर्वमभिगम्य तपोधन ।  
 कृतोऽभिसंधिर्यज्ञाय भवतो वचनाद्गुरो ॥ ४  
 तमहं यष्टुमिच्छामि संभाराः संभृताश्च मे ।  
 याज्योऽस्मि भवतः साधो तत्प्राप्नुहि विधत्स्व च ॥

बृहस्पतिरुवाच ।

न कामये याजयितुं त्वामहं पृथिवीपते ।  
 वृतोऽस्मि देवराजेन प्रतिज्ञातं च तस्य मे ॥ ६

मरुत्त उवाच ।

पित्र्यमस्मि तव क्षेत्रं बहु मन्ये च ते भृशम् ।  
 न चास्म्ययाज्यतां प्राप्तो भजमानं भजस्व माम् ॥

बृहस्पतिरुवाच ।

अमर्त्यं याजयित्वाहं याजयिष्ये न मानुषम् ।  
 मरुत्त गच्छ वा मा वा निवृत्तोऽस्म्यद्य याजनात् ॥  
 न त्वां याजयितास्म्यद्य वृणु त्वं यमिहेच्छसि ।

उपाध्यायं महाबाहो यस्ते यज्ञं करिष्यति ॥ ९

न्यास उवाच ।

एवमुक्तस्तु नृपतिर्मरुतो ब्रीडितोऽभवत् ।  
प्रत्यागच्छच्च संविप्रो ददर्श पथि नारदम् ॥ १०  
देवर्षिणा समागम्य नारदेन स पार्थिवः ।  
विधिवत्प्राञ्जलिस्तस्यावथैनं नारदोऽब्रवीत् ॥ ११  
राजर्षे नातिहृष्टोऽसि कश्चित्क्षेमं तवानघ ।  
क गतोऽसि कुतो वेदमप्रीतिस्थानमागतम् ॥ १२  
श्रोतव्यं चेन्मया राजन्मूहि मे पार्थिवर्षभ ।  
व्यपनेष्यामि ते मन्युं सर्वयत्नैर्नराधिप ॥ १३  
एवमुक्तो मरुतस्तु नारदेन महर्षिणा ।  
विप्रलम्भमुपाध्यायात्सर्वमेव न्यवेदयत् ॥ १४  
गतोऽस्म्यङ्गिरसः पुत्रं देवाचार्यं बृहस्पतिम् ।  
यज्ञार्थमृत्विजं द्रष्टुं स च मां नाभ्यनन्दत ॥ १५  
प्रत्याख्यातश्च तेनाहं जीवितुं नाद्य कामये ।  
परित्यक्तश्च गुरुणा दूषितश्चास्मि नारद ॥ १६  
एवमुक्तस्तु राजा स नारदः प्रत्युवाच ह ।  
आविक्षितो महाराज वाचा संजीवयन्निव ॥ १७  
राजन्नङ्गिरसः पुत्रः संवर्तो नाम धार्मिकः ।  
चङ्कमीति दिशः सर्वा दिग्वासा मोहयन्प्रजाः ॥ १८  
तं गच्छ यदि याज्यं त्वां न वाञ्छति बृहस्पतिः ।  
प्रसन्नस्त्वां महाराज संवर्तो याजयिष्यति ॥ १९

मरुत उवाच ।

संजीवितोऽहं भवता वाक्येनानेन नारद ।  
पश्येयं क नु संवर्तं शंस मे वदतां वर ॥ २०  
कथं च तस्मै वर्तेयं कथं मां न परित्यजेत् ।  
प्रत्याख्यातश्च तेनापि नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ २१

नारद उवाच ।

उन्मत्तवेषं बिभ्रत्स चङ्कमीति यथासुखम् ।  
वाराणसीं तु नगरीमभीक्ष्णमुपसेवते ॥ २२

तस्या द्वारं समासाद्य न्यसेथाः कुणपं क्वचित् ।  
तं दृष्ट्वा यो निवर्तेत स संवर्तो महीपते ॥ २३  
तं पृष्ठतोऽनुगच्छेथा यत्र गच्छेत्स वीर्यवान् ।  
तमेकान्ते समासाद्य प्राञ्जलिः शरणं ब्रजेः ॥ २४  
पृच्छेत्त्वां यदि केनाहं तवाख्यात इति स्म ह ।  
ब्रूयास्त्वं नारदेनेति सतत इव शत्रुहन् ॥ २५  
स चेत्त्वामनुयुञ्जीत ममाभिगमनेप्सया ।  
शंसेथा वह्निमारूढ मामपि त्वमशङ्कया ॥ २६

न्यास उवाच ।

स तथेति प्रतिभृत्य पूजयित्वा च नारदम् ।  
अभ्यनुज्ञाय राजर्षिर्ययौ वाराणसीं पुरीम् ॥ २७  
तत्र गत्वा यथोक्तं स पुर्यां द्वारे महायशः ।  
कुणपं स्थापयामास नारदस्य वचः स्मरन् ॥ २८  
यौगपदेन विप्रश्च स पुरीद्वारमाविशत् ।  
ततः स कुणपं दृष्ट्वा सहसा स न्यवर्तत ॥ २९  
स तं निवृत्तमालक्ष्य प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽन्वगात् ।  
आविक्षितो महीपालः संवर्तमुपशिक्षितुम् ॥ ३०  
स एनं विजने दृष्ट्वा पांसुभिः कर्दमेन च ।  
श्लेष्मणां चापि राजानं शीघ्रैश्च समाकिरत् ॥ ३१  
स तथा बाध्यमानोऽपि संवर्तेन महीपतिः ।  
अन्वगादेव तन्मृषिं प्राञ्जलिः संप्रसादयन् ॥ ३२  
ततो निवृत्य संवर्तः परिश्रान्त उदाविशत् ।  
शीतलच्छायमासाद्य न्यग्रोधं बहुशाखिनम् ॥ ३३

इति श्रीमद्वाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

७

संवर्त उवाच ।

कथमस्मि त्वया ज्ञातः केन वा कथितोऽस्मि ते ।  
एतदाचक्ष्व मे तत्त्वमिच्छसे चेत्प्रियं मम ॥ १  
सत्यं ते श्रुवतः सर्वे संपत्स्यन्ते मनोरथाः ।

मिथ्या तु ब्रुवतो मूर्धा सप्तधा ते फलिष्यति ॥२

मरुत्त उवाच ।

नारदेन भवान्मह्यमाख्यातो ह्यटता पथि ।

गुरुपुत्रो ममेति त्वं ततो मे प्रीतिरुत्तमा ॥ ३

संवर्त उवाच ।

सत्यमेतद्भवानाह स मां जानाति सत्रिणम् ।

कथयस्वैतदेकं मे क नु संप्रति नारदः ॥ ४

मरुत्त उवाच ।

भवन्तं कथयित्वा तु मम देवर्षिसत्तमः ।

ततो मामभ्यनुज्ञाय प्रविष्टो हव्यवाहनम् ॥ ५

व्यास उवाच ।

श्रुत्वा तु पार्थिवस्थेतत्संवर्तः परया मुदा ।

एतावद्दहमप्येनं कुर्यामिति तदाब्रवीत् ॥ ६

ततो मरुत्तमुन्मत्तो वाचा निर्भर्त्सयन्निव ।

रूक्षया ब्राह्मणो राजन्पुनः पुनरथाब्रवीत् ॥ ७

वातप्रधानेन मया स्वचित्तवशवर्तिना ।

एवं विकृतरूपेण कथं याजितुमिच्छसि ॥ ८

भ्राता मम समर्थश्च वासवेन च सत्कृतः ।

वर्तते याजने चैव तेन कर्माणि कारय ॥ ९

गृहं स्वं चैव याज्याश्च सर्वा गृह्याश्च देवताः ।

पूर्वजेन ममाक्षिप्तं शरीरं वर्जितं त्विदम् ॥ १०

नाह तेनाननुज्ञातस्त्वामाविक्षितं कर्हिचित् ।

याजयेयं कथंचिद्वै स हि पूज्यतमो मम ॥ ११

स त्वं बृहस्पतिं गच्छ तमनुज्ञाप्य चात्रज ।

ततोऽहं याजयिष्ये त्वां यदि यष्टुमिहेच्छसि ॥१२

मरुत्त उवाच ।

बृहस्पतिं गतः पूर्वमहं संवर्तं तच्छृणु ।

न मां कामयते याज्यमसौ वासववारितः ॥ १३

अमरं याज्यमासाद्य मामृषे मा स्म मानुषम् ।

याजयेथा मरुतं त्वं मर्त्यधर्माणमातुरम् ॥ १४

स्पर्धते च मया विप्र सदा वै स हि पार्थिवः ।

एवमस्त्विति चाप्युक्तो भ्रात्रा ते बलवृत्रहा ॥ १५

स मामभिगतं प्रेम्णा याज्यवन्न बुभूषति ।

देवराजमुपाश्रित्य तद्विद्धि मुनिपुंगव ॥ १६

सोऽहमिच्छामि भवता सर्वस्वेनापि याजितुम् ।

कामये समतिक्रान्तुं वासवं त्वत्कृतैर्गुणैः ॥ १७

न हि मे वर्तते बुद्धिर्गन्तुं ब्रह्मबृहस्पतिम् ।

प्रत्याख्यातो हि तेनास्मि तथानपकृते सति ॥ १८

संवर्त उवाच ।

चिकीर्षसि यथाकामं सर्वमेतत्त्वयि ध्रुवम् ।

यदि सर्वानभिप्रायान्कर्तासि मम पार्थिव ॥ १९

याज्यमानं मया हि त्वां बृहस्पतिपुरंदरौ ।

द्विषेतां समभिक्रुद्धावेतदेकं समर्थय ॥ २०

स्थैर्यमत्र कथं ते स्यात्स त्वं निःसंशयं कुरु ।

कुपितस्त्वां न हीदानीं भस्म कुर्यां सबान्धवम् ॥

मरुत्त उवाच ।

यावत्तपेत्सहस्रांशुस्तिष्ठेरंश्चापि पर्वताः ।

तावल्लोकान्न लभेयं त्यजेयं संगतं यदि ॥ २२

मा चापि शुभबुद्धित्वं लभेयमिह कर्हिचित् ।

सम्यग्ज्ञाने वैषये वा त्यजेयं संगतं यदि ॥ २३

संवर्त उवाच ।

आविक्षितं शुभा बुद्धिर्धीयतां तव कर्मसु ।

याजनं हि ममाप्येवं वर्तते त्वयि पार्थिव ॥ २४

संविधास्ये च ते राजन्नक्षयं द्रव्यमुत्तमम् ।

येन देवान्सगन्धर्वाञ्शक्रं चाभिभविष्यसि ॥ २५

न तु मे वर्तते बुद्धिर्धने याज्येषु वा पुनः ।

विप्रियं तु चिकीर्षामि भ्रातुश्चेन्द्रस्य चोभयोः ॥

गमयिष्यामि चेन्द्रेण समतामपि ते ध्रुवम् ।

प्रियं च ते करिष्यामि सत्यमेतद्वीमि ते ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

८

संवर्त उवाच ।

गिरेर्हिमवतः पृष्ठे मुञ्जवानाम पर्वतः ।  
तप्यते यत्र भगवांस्तपो नित्यमुमापतिः ॥ १  
वनस्पतीनां मूलेषु टङ्केषु शिखरेषु च ।  
गुहासु शैलराजस्य यथाकामं यथासुखम् ॥ २  
उमासहायो भगवान्यत्र नित्यं महेश्वरः ।  
आस्ते शूली महातेजा नानाभूतगणावृतः ॥ ३  
तत्र रुद्राश्च साध्याश्च विश्वेऽथ वसवस्तथा ।  
यमश्च वरुणश्चैव कुबेरश्च सहानुगः ॥ ४  
भूतानि च पिशाचाश्च नासत्यावश्विनावपि ।  
गन्धर्वाप्सरसश्चैव यक्षा देवर्षयस्तथा ॥ ५  
आदित्या मरुतश्चैव यातुधानाश्च सर्वशः ।  
उपासन्ते महात्मानं बहुरूपमुमापतिम् ॥ ६  
रमते भगवांस्तत्र कुबेरानुचरैः सह ।  
विकृतैर्विकृताकारैः क्रीडद्भिः पृथिवीपते ।  
श्रिया ज्वलन्द्दृश्यते वै बालादित्यसमद्युतिः ॥ ७  
न रूपं दृश्यते तस्य संस्थानं वा कथंचन ।  
निर्देष्टुं प्राणिभिः कैश्चित्प्राकृतैर्मांसलोचनैः ॥ ८  
नोष्णं न शिशिरं तत्र न वायुर्न च भास्करः ।  
न जरा क्षुत्पिपासे वा न मृत्युर्न भयं नृप ॥ ९  
तस्य शैलस्य पार्श्वेषु सर्वेषु जयतां वर ।  
धातवो जातरूपस्य रश्मयः सवितुर्यथा ॥ १०  
रक्ष्यन्ते ते कुबेरस्य सहायैरुद्यतायुधैः ।  
चिकीर्षद्भिः प्रियं राजन्कुबेरस्य महात्मनः ॥ ११  
तस्मै भगवते कृत्वा नमः शर्वाय वेधसे ।  
रुद्राय शितिकण्ठाय सुरुपाय सुवर्चसे ॥ १२

कपर्दिने करालाय हर्यक्षणे वरदाय च ।  
त्र्यक्षणे पूष्णो दन्तभिदे वामनाय शिवाय च ॥ १३  
याम्यायाव्यक्तकेशाय सद्गुप्ते शंकराय च ।  
क्षेम्याय हरिनेत्राय स्थाणवे पुरुषाय च ॥ १४  
हरिकेशाय मुण्डाय कुशायोत्तारणाय च ।  
भास्कराय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥ १५  
उष्णीपिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे ।  
गिरिशाय प्रशान्ताय यतये चीरवाससे ॥ १६  
विल्वदण्डाय सिद्धाय सर्वदण्डधराय च ।  
मृगव्याधाय महते धन्विनेऽथ भवाय च ॥ १७  
वराय सौम्यवक्त्राय पशुहस्ताय वर्षिणे ।  
हिरण्यवाहवे राजन्नुग्राय पतये दिशाम् ॥ १८  
पशूनां पतये चैव भूतानां पतये तथा ।  
वृषाय मातृभक्ताय सेनान्ये मध्यमाय च ॥ १९  
सुवहस्ताय पतये धन्विने भार्गवाय च ।  
अजाय कृष्णनेत्राय विरूपाक्षाय चैव ह ॥ २०  
तीक्ष्णदंष्ट्राय तीक्ष्णाय वैश्वानरमुखाय च ।  
महाद्युतयेऽनङ्गाय सर्वाङ्गाय प्रजावते ॥ २१  
तथा शुक्राधिपतये पृथवे कृत्तिवाससे ।  
कपालमालिने नित्यं सुवर्णमुकुटाय च ॥ २२  
महादेवाय कृष्णाय त्र्यम्बकायानघाय च ।  
क्रोधनाय नृशसाय मृदवे बाहुशालिने ॥ २३  
दण्डिने तप्ततपसे तथैव क्रूरकर्मणे ।  
सहस्रशिरसे चैव सहस्रचरणाय च ।  
नमः स्वधास्वरूपाय बहुरूपाय दंष्ट्रिणे ॥ २४  
पिनाकिनं महादेव महायोगिनमव्ययम् ।  
त्रिशूलपाणि वरदं त्र्यम्बकं भुवनेश्वरम् ॥ २५  
त्रिपुरघ्नं त्रिनयनं त्रिलोकेशं महौजसम् ।  
प्रभव सर्वभूतानां धारणं धरणीधरम् ॥ २६  
ईशानं शंकरं सर्वं शिवं विश्वेश्वरं भवम् ।

उमापति पशुपति विश्वरूपं महेश्वरम् ॥ २७  
 विरूपाक्षं दशभुजं तिष्यगोवृषभध्वजम् ।  
 उग्रं स्थाणुं शिवं घोरं शर्वं गौरीशमीश्वरम् ॥ २८  
 शितिकण्ठमजं शुक्रं पृथुं पृथुहरं हरम् ।  
 विश्वरूपं विरूपाक्षं बहुरूपमुमापतिम् ॥ २९  
 प्रणम्य शिरसा देवमननङ्गाङ्गहरं हरम् ।  
 शरण्यं शरणं याहि महादेवं चतुर्मुखम् ॥ ३०  
 एवं कृत्वा नमस्तस्मै महादेवाय रंहसे ।  
 महात्मने क्षितिपते तत्सुवर्णमवाप्स्यसि ।  
 सुवर्णमाहरिष्यन्तस्तत्र गच्छन्तु ते नराः ॥ ३१

व्यास उवाच ।

इत्युक्तः स वचस्तस्य चक्रे कार्धमात्मजः ।  
 ततोऽतिमानुषं सर्वं चक्रे यज्ञस्य संविधिम् ।  
 सौवर्णानि च भाण्डानि संचक्रुस्तत्र शिल्पिनः ॥  
 बृहस्पतिस्तु तां श्रुत्वा मरुत्तस्य महीपतेः ।  
 समृद्धिमति देवेभ्यः संतापमकरोद्धृशम् ॥ ३३  
 स तप्यमानो वैवर्ण्यं कृशत्वं चागमत्परम् ।  
 भविष्यति हि मे शत्रुः संवर्तो वसुमानिति ॥ ३४  
 तं श्रुत्वा भृशसंतप्तं देवराजो बृहस्पतिम् ।  
 अभिगम्यामरवृतः प्रोवाचेदं वचस्तदा ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि  
 अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

९

इन्द्र उवाच ।

कञ्चित्सुखं स्वपिषि त्वं बृहस्पते  
 कञ्चिन्मनोऽज्ञाः परिचारकास्ते ।  
 कञ्चिद्देवानां सुखकामोऽसि विप्र  
 कञ्चिद्देवास्त्वां परिपालयन्ति ॥ १  
 बृहस्पतिरुवाच ।  
 सुखं शयेऽहं शयने महेन्द्र

तथा मनोऽज्ञाः परिचारका मे ।  
 तथा देवानां सुखकामोऽस्मि शक्र  
 देवाश्च मां सुभृशं पालयन्ति ॥ २  
 इन्द्र उवाच ।  
 कुतो दुःखं मानसं देहजं वा  
 पाण्डुर्विवर्णश्च कुतस्त्वमद्य ।  
 आचक्ष्व मे तद्विज यावदेता-  
 न्निहन्मि सर्वांस्तव दुःखकर्तृन् ॥ ३

बृहस्पतिरुवाच ।

मरुत्तमाहुर्मघवन्यक्ष्यमाणं  
 महायज्ञेनोत्तमदक्षिणेन ।  
 तं संवर्तो याजयितेति मे श्रुतं  
 तदिच्छामि न स तं याजयेत् ॥ ४

इन्द्र उवाच ।

सर्वान्कामाननुजातोऽसि विप्र  
 यस्त्वं देवानां मन्त्रयसे पुरोधाः ।  
 उभौ च ते जन्ममृत्यू व्यतीतौ  
 किं संवर्तस्तव कर्ताद्यि विप्र ॥ ५

बृहस्पतिरुवाच ।

देवैः सह त्वमसुरान्संप्रणुद्य  
 जिघांससेऽद्याप्युत सानुबन्धान् ।

यं यं समृद्धं पश्यसि तत्र तत्र  
 दुःखं सपत्नेषु समृद्धभावः ॥ ६

अतोऽस्मि देवेन्द्र विवर्णरूपः  
 सपत्नो मे वर्धते तन्निशम्य ।

सर्वोपायैर्मघवन्संनियच्छ  
 संवर्तं वा पार्थिवं वा मरुत्तम् ॥ ७

इन्द्र उवाच ।

एहि गच्छ प्रहितो जातवेदो

बृहस्पति परिदातु मरुते  
अयं वै त्वा याजयिता बृहस्पति-  
स्तथामरं चैव करिष्यतीति ॥ ८

अग्निरुवाच ।

अयं गच्छामि तव शक्राद्य दूतो  
बृहस्पति परिदातुं मरुते ।  
वाचं सत्यां पुरुहूतस्य कर्तुं  
बृहस्पतेश्चापचितिं चिकीर्षुः ॥ ९  
व्यास उवाच ।

ततः प्रायाद्धूमकेतुर्महात्मा  
वनस्पतीन्वीरुधश्चावमृदन् ।  
कामाद्विमान्ते परिवर्तमानः  
काष्ठातिगो मातरिश्वेव नर्दन् ॥ १०

मरुत्त उवाच ।

आश्चर्यमद्य पश्यामि रूपिणं वह्निमागतम् ।  
आसनं सलिलं पाद्यं गां चोपानय वै मुने ॥ ११

अग्निरुवाच ।

आसनं सलिलं पाद्यं प्रतिनन्दामि तेऽनघ ।  
इन्द्रेण तु समादिष्टं विद्धि मा दूतमागतम् ॥ १२

मरुत्त उवाच ।

कश्चिच्छ्रीमान्देवराजः सुखी च  
कश्चिच्चास्मान्प्रीयते धूमकेतो ।  
कश्चिद्देवाश्चास्य वशे यथाव-  
त्तद्ब्रूहि त्व मम कात्स्न्येन देव ॥ १३

अग्निरुवाच ।

शक्रो भृशं सुसुखी पार्थिवेन्द्र  
प्रीतिं चेच्छत्यजरां वै त्वया सः ।  
देवाश्च सर्वे वशगास्तस्य राज-  
न्संदेशं त्वं शृणु मे देवराज्ञः ॥ १४

यदर्थं मां प्राहिणोत्वत्सकाशं  
बृहस्पति परिदातुं मरुते ।  
अयं गुरुर्याजयिता नृप त्वां  
मर्त्यं सन्तममरं त्वा करोतु ॥ १५

मरुत्त उवाच ।

संवर्तोऽयं याजयित्वा द्विजो मे  
बृहस्पतेरञ्जलिरेष तस्य ।  
नासौ देवं याजयित्वा महेन्द्रं  
मर्त्यं सन्तं याजयन्नद्य शोभेत् ॥ १६

अग्निरुवाच ।

ये वै लोका देवलोके महान्तः  
संप्राप्स्यसे तान्देवराजप्रसादात् ।  
त्वां चेदसौ याजयेद्वै बृहस्पति-  
नूतनं स्वर्गं त्वं जयेः कीर्तियुक्तः ॥ १७

तथा लोका मानुषा ये च दिव्याः

प्रजापतेश्चापि ये वै महान्तः ।

ते ते जिता देवराज्यं च कृत्स्नं

बृहस्पतिश्चेद्याजयेत्त्वां नरेन्द्र ॥ १८

संवर्त उवाच ।

मास्मानेवं त्वं पुनरागाः कथंचि-  
बृहस्पतिं परिदातुं मरुते ।  
मा त्वां धक्ष्ये चक्षुषा दारुणेन  
संकुद्धोऽहं पावक तन्निबोध ॥ १९

व्यास उवाच ।

ततो देवानगमद्धूमकेतु-  
र्दाहाद्भीतो व्यथितोऽश्वत्थपर्णवत् ।  
तं वै दृष्ट्वा प्राह शक्रो महात्मा  
बृहस्पतेः सनिधौ हव्यवाहम् ॥ २०  
यत्त्वं गतः प्रहितो जातवेदो

बृहस्पति परिदातुं मरुते  
तत्किं प्राह स नृपो यक्ष्यमाणः  
कश्चिद्वचः प्रतिगृह्णाति तच्च ॥ २१

अग्निरुवाच ।

न ते वाचं रोचयते मरुतो  
बृहस्पतेरञ्जलिं प्राहिणोत्सः ।  
संवर्तो मां याजयितेत्यभीक्ष्णं  
पुनः पुनः स मया प्रोच्यमानः ॥ २२  
उवाचेदं मानुषा ये च दिव्याः  
प्रजापतेर्ये च लोका महान्तः ।  
तांश्चेल्लभेयं संविदं तेन कृत्वा  
तथापि नेच्छेयमिति प्रतीतः ॥ २३

इन्द्र उवाच ।

पुनर्भवान्पार्थिवं तं समेत्य  
वाक्यं मदीयं प्रापय स्वार्थयुक्तम् ।  
पुनर्यद्युक्तो न करिष्यते वच-  
स्ततो वज्रं संप्रहर्तास्मि तस्मै ॥ २४

अग्निरुवाच ।

गन्धर्वराड्यात्वयं तत्र दूतो  
बिभेम्यहं वासव तत्र गन्तुम् ।  
संरब्धो मामब्रवीत्तीक्ष्णरोषः  
संवर्तो वाक्यं चरितब्रह्मचर्यः ॥ २५  
यद्यागच्छेः पुनरेवं कथंचि-  
बृहस्पतिं परिदातुं मरुते ।  
दहेयं त्वां चक्षुषा दारुणेन  
संकुद्ध इत्येतद्वैहि शक्र ॥ २६

इन्द्र उवाच ।

त्वमेवान्यान्दहसे जातवेदो  
न हि त्वदन्यो विद्यते भस्मकर्ता ।

त्वत्संस्पर्शात्सर्वलोको बिभे-  
त्यश्रद्धेयं वदसे हव्यवाह ॥ २७

अग्निरुवाच ।

दिवं देवेन्द्र पृथिवीं चैव सर्वां  
संवेष्टयेस्त्वं स्वबलेनैव शक्र ।  
एवंविधस्येह सतस्तवासौ  
कथं वृत्रस्त्रिदिवं प्राग्जहार ॥ २८

इन्द्र उवाच ।

न चण्डिका जङ्गमा नो करेणु-  
र्न वारिसोमं प्रपिबामि बहे ।  
न दुर्बले वै त्रिसृजामि वज्रं  
को मेऽसुखाय प्रहरेन्मनुष्यः ॥ २९  
प्रव्राजयेयं कालकेयान्पृथिव्या-  
मपाकर्षं दानवानन्तरिक्षात् ।  
दिवः प्रह्लादमवसानमानयं  
को मेऽसुखाय प्रहरेत मर्त्यः ॥ ३०

अग्निरुवाच ।

यत्र शर्याति च्यवनो याजयिष्य-  
न्सहाश्विभ्यां सोममगृह्णदेकः ।  
तं त्वं क्रुद्धः प्रत्यषेधीः पुरस्ता-  
च्छर्यातियज्ञं स्मर तं महेन्द्र ॥ ३१  
वज्रं गृहीत्वा च पुरंदर त्वं  
संप्राहार्षींश्च्यवनस्यातिघोरम् ।  
स ते विप्रः सह वज्रेण बाहु-  
मपागृह्णात्तपसा जातमन्युः ॥ ३२  
ततो रोषात्सर्वतो घोररूपं  
सपत्नं ते जनयामास भूयः ।  
मदं नामासुरं विश्वरूपं  
यं त्वं दृष्ट्वा चक्षुषी संन्यमीलः ॥ ३३

हनुरेका जगतीस्था तथैका  
 दिवं गता महतो दानवस्य ।  
 सहस्रं दन्तानां शतयोजनानां  
 सुतीक्ष्णानां धोररूपं बभूव ॥ ३४  
 वृत्ताः स्थूला रजतस्तम्भवर्णा  
 दंष्ट्राश्चतस्रो द्वे शते योजनानाम् ।  
 स त्वां दन्तान्विदग्धभयधाव-  
 जिघांसया शूलमुद्यम्य घोरम् ॥ ३५  
 अपश्यस्त्वं तं तदा घोररूपं  
 सर्वे त्वन्ये ददृशुर्दर्शनीयम् ।  
 यस्माद्भीतः प्राञ्जलिस्त्वं महर्षि-  
 मागच्छेथाः शरणं दानवघ्न ॥ ३६  
 क्षत्रादेवं ब्रह्मबलं गरीयो  
 न ब्रह्मतः किञ्चिदन्यद्वरीयः ।  
 सोऽहं जानन्नब्रह्मतेजो यथाव-  
 न्न संवर्तं गन्तुमिच्छामि शक्र ॥ ३७  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि  
 नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

१०

इन्द्र उवाच ।  
 एवमेतद्ब्रह्मबलं गरीयो  
 न ब्रह्मतः किञ्चिदन्यद्वरीयः ।  
 आविक्षितस्य तु बलं न मृष्ये  
 वज्रमस्मै प्रहरिष्यामि घोरम् ॥ १  
 धृतराष्ट्र प्रहितो गच्छ मरुत्तं  
 संवर्तेन सहितं तं वदस्व ।  
 बृहस्पति त्वमुपशिक्षस्व राज-  
 न्वज्रं वा ते प्रहरिष्यामि घोरम् ॥ २  
 व्यास उवाच ।  
 ततो गत्वा धृतराष्ट्रो नरेन्द्रं

प्रोवाचेदं वचनं वासवस्य ।  
 गन्धर्व मां धृतराष्ट्रं निबोध  
 त्वामागतं वक्तुकामं नरेन्द्र ॥ ३  
 ऐन्द्रं वाक्यं शृणु मे राजसिंह  
 यत्प्राह लोकाधिपतिर्महात्मा ।  
 बृहस्पति याजकं त्वं वृणीष्व  
 वज्रं वा ते प्रहरिष्यामि घोरम् ।  
 वचश्चेदेतन्न करिष्यसे मे  
 प्राहेतदेतावदचिन्त्यकर्मा ॥ ४  
 मरुत्त उवाच ।  
 त्वं चैवैतद्वेत्थ पुरंदरश्च  
 विश्वेदेवा वसवश्चाश्विनो च ।  
 मित्रद्रोहे निष्कृतिर्यै यथैव  
 नास्तीति लोकेषु सदैव वादः ॥ ५  
 बृहस्पतिर्यातयिता महेन्द्रं  
 देवश्रेष्ठ वज्रभृतां वरिष्ठम् ।  
 संवर्तो मां याजयिताद्य राज-  
 न्न ते वाक्यं तस्य वा रोचयामि ॥ ६  
 गन्धर्व उवाच ।  
 घोरो नादः श्रूयते वासवस्य  
 नभस्तले गर्जतो राजसिंह ।  
 व्यक्तं वज्रं मोक्ष्यते ते महेन्द्रः  
 क्षेमं राजंश्चिन्त्यतामेष कालः ॥ ७  
 व्यास उवाच ।  
 इत्येवमुक्तां धृतराष्ट्रेण राजा  
 श्रुत्वा नादं नदतो वासवस्य ।  
 तपोनित्यं धर्मविदां वरिष्ठं  
 संवर्तं तं ज्ञापयामास कार्यम् ॥ ८  
 मरुत्त उवाच ।  
 इममश्मानं पूवमानमारा-



दध्वा दूरं तेन न दृश्यतेऽद्य ।  
 प्रपद्येऽहं शर्म विप्रेन्द्र त्वत्तः  
 प्रयच्छ तस्मादभयं विप्रमुख्य ॥ ९  
 अयमायाति वै वज्री दिशो विद्योतयन्दश ।  
 अमानुषेण घोरेण सदस्यास्त्रासिता हि नः ॥ १०

संवर्त उवाच ।

भयं शक्नाद्व्येतु ते राजसिंह  
 प्रणोत्स्येऽहं भयमेतत्सुघोरम् ।  
 संस्तम्भिन्या विद्यया क्षिप्रमेव  
 मा भैस्त्वमस्माद्भव चापि प्रतीतः ॥ ११  
 अहं संस्तम्भयिष्यामि मा भैस्त्व शक्रतो नृप ।  
 सर्वेषामेव देवानां क्षपितान्यायुधानि मे ॥ १२  
 दिशो वज्रं व्रजतां वायुरेतु  
 वर्षं भूत्वा निपततु काननेषु ।  
 आपः प्लवन्त्वन्तरिक्षे वृथा च  
 सौदामिनी दृश्यतां मा विभस्त्वम् ॥ १३  
 अथो वह्निस्त्रातु वा सर्वतस्ते  
 कामं वर्षं वर्षतु वासवो वा ।  
 वज्रं तथा स्थापयतां च वायु-  
 मेहाघोरं प्लवमानं जलौघैः ॥ १४

मरुत्त उवाच ।

घोरः शब्दः श्रूयते वै महास्वनो  
 वज्रस्यैष सहितो मास्तेन  
 आत्मा हि मे प्रव्यथते मुहुर्मुहु-  
 र्न मे स्वास्थ्यं जायते चाद्य विप्र ॥ १५

संवर्त उवाच ।

वज्रादुप्राद्व्येतु भयं तवाद्य  
 वातो भूत्वा हन्मि नरेन्द्र वज्रम् ।  
 भय त्यक्त्वा वरमन्यं वृणीष्व

कं ते कामं तपसा साधयामि ॥ १६

मरुत्त उवाच ।

इन्द्रः साक्षात्सहसाभ्येतु विप्र  
 हविर्यज्ञे प्रतिगृह्णातु चैव ।  
 स्वं स्व धिष्यत चैव जुपन्तु देवाः  
 सुतं सोमं प्रतिगृह्णन्तु चैव ॥ १७

संवर्त उवाच ।

अयमिन्द्रो हरिभिरायाति राज-  
 न्देवैः सर्वैः सहितः सोमपीथी ।  
 मन्त्राहूतो यज्ञमिमं मयाद्य  
 पश्यस्वैनं मन्त्रविस्त्रस्तकायम् ॥ १८

व्यास उवाच ।

ततो देवैः सहितो देवराजो  
 रथे युक्त्वा तान्दरीन्वाजिमुख्यान् ।  
 आयाद्यज्ञमधि राज्ञः पिपासु-  
 राविक्षितस्याप्रमेयस्य सोमम् ॥ १९  
 तमायान्तं सहित देवसंघैः  
 प्रत्युद्ययौ सपुरोधा मरुत्तः ।  
 चक्रे पूजां देवराजाय चाग्र्यां  
 यथाशास्त्रं विधिवत्प्रीयमाणः ॥ २०

संवर्त उवाच ।

स्वागतं ते पुरुहूतेह विद्व-  
 न्यज्ञोऽद्यायं सनिहिते त्वयीन्द्र ।  
 शोशुभ्यते बलवृत्रघ्न भूयः  
 पिबस्व सोमं सुतमुद्यतं मया ॥ २१

मरुत्त उवाच ।

शिवेन मां पश्य नमश्च तेऽस्तु  
 प्राप्नो यज्ञः सफलं जीवितं मे ।  
 अयं यज्ञं कुरुते मे सुरेन्द्र

बृहस्पतेरवरो जन्मना यः ॥ २२  
 इन्द्र उवाच ।  
 जानामि ते गुरुमेनं तपोधनं  
 बृहस्पतेरनुज तिग्मतेजसम् ।  
 यस्याह्वानादागतोऽहं नरेन्द्र  
 प्रीतिर्मेऽद्य त्वयि मन्युः प्रनष्टः ॥ २३  
 संवर्त उवाच ।  
 यदि प्रीतस्त्वमसि वै देवराज  
 तस्मात्स्वयं शाधि यज्ञे विधानम् ।  
 स्वयं सर्वान्कुरु मार्गान्सुरेन्द्र  
 जानात्वयं सर्वलोकश्च देव ॥ २४  
 व्यास उवाच ।  
 एवमुक्तस्त्वाङ्गिरसेन शक्रः  
 समादिदेश स्वयमेव देवान् ।  
 सभाः क्रियन्तामावसथाश्च मुह्यताः  
 सहस्रशश्चित्रभौमाः समृद्धाः ॥ २५  
 क्लृप्तस्थूणाः कुरुतारोहणानि  
 गन्धर्वाणामप्सरसां च शीघ्रम् ।  
 येषु नृत्येरज्जप्सरसः सहस्रशः  
 स्वर्गोद्देशः क्रियतां यज्ञवाटः ॥ २६  
 इत्युक्तास्ते चक्रुराशु प्रतीता  
 दिवौकसः शक्रवाक्यान्नरेन्द्र ।  
 ततो वाक्यं प्राह राजानमिन्द्रः  
 प्रीतो राजन्पूजयानो मरुत्तम् ॥ २७  
 एष त्वयाहमिह राजन्समेत्य  
 ये चाप्यन्ये तव पूर्वं नरेन्द्राः ।  
 सर्वाश्चान्या देवताः प्रीयमाणा  
 हविस्तुभ्यं प्रतिगृह्णन्तु राजन् ॥ २८  
 आप्रेयं वै लोहितमालभन्तां  
 वैश्वदेवं बहुरूपं विराजन् ।

नीलं चोक्षाणं मेध्यमभ्यालभन्ता  
 चलच्छिन्नं मत्प्रदिष्टं द्विजेन्द्राः ॥ २९  
 ततो यज्ञो बभूवे तस्य राज्ञो  
 यत्र देवाः म्वयमन्नानि जहुः ।  
 यस्मिन्शक्रो ब्राह्मणैः पूज्यमानः  
 सदस्योऽभूद्धरिमान्देवराजः ॥ ३०  
 ततः संवर्तश्चित्यगतो महात्मा  
 यथा वह्निः प्रज्वलितो द्वितीयः ।  
 हवीष्युच्चैराह्वयन्देवसंधा-  
 ङ्जुहावाग्नौ मन्त्रयत्सुप्रतीतः ॥ ३१  
 ततः पीत्वा बलभित्तोममग्र्य  
 ये चाप्यन्ये सोमपा वै दिवौकसः ।  
 सर्वेऽनुज्ञाताः प्रययुः पार्थिवेन  
 यथाजोप तर्पिताः प्रीतिमन्तः ॥ ३२  
 ततो राजा जानरूपस्य राशी-  
 न्पदे पदे कारयामास हृष्टः ।  
 द्विजातिभ्यो विमृजन्भूरि वित्तं  
 रराज वित्तेषु इवारिहन्ता ॥ ३३  
 ततो वित्तं विविधं संनिधाय  
 यथोत्साहं कारयित्वा च कोशम् ।  
 अनुज्ञातो गुरुणा संनिवृत्य  
 शशास गामखिला सागरान्ताम् ॥ ३४  
 एवंगुणः संवभूवेह राजा  
 यस्य क्रनौ तत्सुवर्णं प्रभूतम् ।  
 तत्त्वं समादाय नरेन्द्र वित्तं  
 यजस्व देवांस्तर्पयानो विधानैः ॥ ३५  
 वैशंपायन उवाच ।  
 ततो राजा पाण्डवो हृष्टरूपः  
 श्रुत्वा वाक्यं सत्यवत्याः सुतस्य ।

• मनश्चक्रे तेन वित्तेन यष्टु

ततोऽमात्यैर्मन्त्रयामास भूयः ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

११

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्ते नृपतौ तस्मिन्व्यासेनाद्भुतकर्मणा ।

वासुदेवो महातेजास्ततो वचनमाददे ॥ १

तं नृपं दीनमनस निहतज्ञातिवान्धवम् ।

उपप्लुतमिवादित्यं सधूममिव पात्रकम् ॥ २

निर्विण्णमनसं पार्थ ज्ञात्वा वृष्णिकुलोद्भवः ।

आश्वासयन्धर्मसुतं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ३

वासुदेव उवाच ।

सर्वं जिह्वां मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम् ।

एतावाञ्ज्ञानविषयः किं प्रलापः करिष्यति ॥ ४

नैव ते निष्ठितं कर्म नैव ते शत्रवो जिताः ।

कथं शत्रु शरीरस्थमात्मानं नावबुध्यसे ॥ ५

अत्र ते वर्तयिष्यामि यथाधर्मं यथाश्रुतम् ।

इन्द्रस्य सह वृत्रेण यथा युद्धमवर्तत ॥ ६

वृत्रेण पृथिवी व्याप्ता पुरा किल नराधिप ।

दृष्ट्वा स पृथिवी व्याप्तां गन्धस्य विषये हृते ।

धराहरणदुर्गन्धो विषयः समपद्यत ॥ ७

शतक्रतुश्चुकोपाथ गन्धस्य विषये हृते ।

वृत्रस्य स ततः क्रुद्धो वज्रं घोरमवासृजत् ॥ ८

स बध्यमानो वज्रेण पृथिव्यां भूरितेजसा ।

विवेश सहसैवापो जग्राह विषयं ततः ॥ ९

व्याप्तास्वथासु वृत्रेण रसे च विषये हृते ।

शतक्रतुरभिक्रुद्धस्तासु वज्रमवासृजत् ॥ १०

स बध्यमानो वज्रेण सलिले भूरितेजसा ।

विवेश सहसा ज्योतिर्जग्राह विषयं ततः ॥ ११

व्याप्ते ज्योतिषि वृत्रेण रूपेऽथ विषये हृते ।

शतक्रतुरभिक्रुद्धस्तत्र वज्रमवासृजत् ॥ १२

स बध्यमानो वज्रेण सुभृशं भूरितेजसा ।

विवेश सहसा वायुं जग्राह विषयं ततः ॥ १३

व्याप्ते वायौ तु वृत्रेण स्पर्शेऽथ विषये हृते ।

शतक्रतुरभिक्रुद्धस्तत्र वज्रमवासृजत् ॥ १४

स बध्यमानो वज्रेण तस्मिन्नमिततेजसा ।

आकाशमभिक्रुद्धाव जग्राह विषयं ततः ॥ १५

आकाशे वृत्रभूते च शब्दे च विषये हृते ।

शतक्रतुरभिक्रुद्धस्तत्र वज्रमवासृजत् ॥ १६

स बध्यमानो वज्रेण तस्मिन्नमिततेजसा ।

विवेश सहसा शक्रं जग्राह विषयं ततः ॥ १७

तस्य वृत्रगृहीतस्य मोहः समभवन्महान् ।

रथंतरेण तं तात वसिष्ठः प्रत्यबोधयत् ॥ १८

ततो वृत्रं शरीरस्थं जघान भरतर्षभ ।

शतक्रतुरदृश्येन वज्रेणेतीह नः श्रुतम् ॥ १९

इदं धर्मरहस्यं च शक्रेणोक्तं महर्षिषु ।

ऋषिभिश्च मम प्रोक्तं तन्निबोध नराधिप ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

१२

वासुदेव उवाच ।

द्विविधो जायते व्याधिः शारीरो मानसस्तथा ।

परस्परं तयोर्जन्म निर्वृद्धं नोपलभ्यते ॥ १

शरीरे जायते व्याधिः शारीरो नात्र सशयः ।

मानसो जायते व्याधिर्मनस्येवेति निश्चयः ॥ २

शीतोष्णे चैव वायुश्च गुणा राजञ्शरीरजाः ।

तेषां गुणानां साम्यं चेत्तदाहुः स्वस्थलक्षणम् ।

उष्णेन बाध्यते शीतं शीतेनोष्णं च बाध्यते ॥ ३

सत्त्वं रजस्तमश्चेति त्रयस्वात्मगुणा स्मृताः ।

तेषां गुणानां साम्यं चेत्तदाहुः स्वस्थलक्षणम् ।  
 तेषामन्यतमोत्सेके विधानमुपदिश्यते ॥ ४  
 हर्षेण बाध्यते शोको हर्षः शोकेन बाध्यते ।  
 कश्चिद्दुःखे वर्तमानः सुखस्य स्मर्तुमिच्छति ।  
 कश्चित्सुखे वर्तमानो दुःखस्य स्मर्तुमिच्छति ॥ ५  
 स त्वं न दुःखी दुःखस्य न सुखी सुसुखस्य वा ।  
 स्मर्तुमिच्छसि कौन्तेय दिष्टं हि बलवत्तरम् ॥ ६  
 अथ वा ते स्वभावोऽयं येन पार्थावकृष्यसे ।  
 दृष्ट्वा सभागतां कृष्णामेकवस्त्रां रजस्वलाम् ।  
 सिपतां पाण्डवेयानां न तत्संस्मर्तुमिच्छसि ॥ ७  
 प्रव्राजन् च नगरादजिनैश्च विवासनम् ।  
 महारण्यनिवासश्च न तस्य स्मर्तुमिच्छसि ॥ ८  
 जटासुरात्परिक्रेशश्चित्रसेनेन चाहवः ।  
 सैन्धवाश्च परिक्रेशो न तस्य स्मर्तुमिच्छसि ॥ ९  
 पुनरज्ञातचर्यायां कीचकेन पदा बधः ।  
 याज्ञसेन्यास्तदा पार्थ न तस्य स्मर्तुमिच्छसि ॥ १०  
 यच्च ते द्रोणभीष्माभ्यां युद्धमासीदरिन्दम् ।  
 मनसैकेन योद्धव्यं तत्ते युद्धमुपस्थितम् ।  
 तस्मादभ्युपगन्तव्यं युद्धाय भरतर्षभ ॥ ११  
 परमव्यक्तरूपस्य परं मुक्त्वा स्वकर्मभिः ।  
 यत्र नैव शरैः कार्यं न भृत्यैर्न च बन्धुभिः ।  
 आत्मनैकेन योद्धव्यं तत्ते युद्धमुपस्थितम् ॥ १२  
 तस्मिन्ननिर्जिते युद्धे कामवस्थां गमिष्यसि ।  
 एतज्ज्ञात्वा तु कौन्तेय कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ १३  
 एतां बुद्धिं विनिश्चित्य भूतानामागतिं गतिम् ।  
 पितृपैतामहे वृत्ते शाधि राज्यं यथोचितम् ॥ १४

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

१३

वासुदेव उवाच ।

न बाह्यं द्रव्यमुत्सृज्य सिद्धिर्भवति भारत ।  
 शरीरं द्रव्यमुत्सृज्य सिद्धिर्भवति वा न वा ॥ १  
 बाह्यद्रव्यविमुक्तस्य शरीरेषु च गृध्यतः ।  
 यो धर्मो यत्सुखं चैव द्विषतामस्तु तत्तथा ॥ २  
 द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युर्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम् ।  
 ममेति द्व्यक्षरो मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम् ॥ ३  
 ब्रह्म मृत्युश्च तो राजन्नात्मन्येव व्यवस्थितौ ।  
 अदृश्यमानो भूतानि योधयेतामसंशयम् ॥ ४  
 अविनाशोऽस्य सत्त्वस्य नियतो यदि भारत ।  
 भित्त्वा शरीरं भूतानामहिंसां प्रतिपद्यते ॥ ५  
 लब्ध्वापि पृथिवी सर्वा सहस्रावरजङ्गमाम् ।  
 ममत्वं यस्य नैव स्यात्किं तया स करिष्यति ॥ ६  
 अथ वा वसतः पार्थ वने वन्येन जीवतः ।  
 ममता यस्य द्रव्येषु मृत्योरास्ये स वर्तते ॥ ७  
 बाह्यान्तराणां शत्रूणां स्वभावं पश्य भारत ।  
 यन्न पश्यति तद्भूतं मुच्यते स महाभयात् ॥ ८  
 कामात्मानं न प्रशंसन्ति लोके  
 न चाकामात्काचिदस्ति प्रवृत्तिः ।  
 दानं हि वेदाध्ययनं तपश्च  
 कामेन कर्माणि च वैदिकानि ॥ ९  
 व्रतं यज्ञान्नियमान्ध्यानयोगा-  
 न्कामेन यो नारभते विदित्वा ।  
 यद्यद्भयं कामयते स धर्मो  
 न यो धर्मो नियमस्तस्य मूलम् ॥ १०  
 अत्र गाथाः कामगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।  
 शृणु संकीर्त्यमानास्ता निखिलेन युधिष्ठिर ॥ ११  
 नाहं शक्योऽनुपायेन हन्तुं भूतेन केनचित् ।  
 यो मां प्रयतते हन्तुं ज्ञात्वा प्रहरणे बलम् ।

तस्य तस्मिन्प्रहरणे पुनः प्रादुर्भवाम्यहम् ॥ १२  
 यो मां प्रयतते हन्तुं यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ।  
 जङ्गमेष्विव कर्मात्मा पुनः प्रादुर्भवाम्यहम् ॥ १३  
 यो मां प्रयतते हन्तुं वेदैर्वेदान्तसाधनैः ।  
 स्थावरेष्विव शान्तात्मा तस्य प्रादुर्भवाम्यहम् ॥ १४  
 यो मां प्रयतते हन्तुं धृत्या सत्यपराक्रमः ।  
 भावो भवामि तस्याहं स च मां नावबुध्यते ॥ १५  
 यो मां प्रयतते हन्तुं तपसा संशितव्रतः ।  
 ततस्तपसि तस्याथ पुनः प्रादुर्भवाम्यहम् ॥ १६  
 यो मां प्रयतते हन्तुं मोक्षमास्थाय पण्डितः ।  
 तस्य मोक्षरतिस्थस्य नृत्यामि च हसामि च ।  
 अवध्यः सर्वभूतानामहमेकः सनातनः ॥ १७  
 तस्मात्त्वमपि तं कामं यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ।  
 धर्मं कुरु महाराज तत्र मे स भविष्यति ॥ १८  
 यजस्व वाजिमेधेन विधिवदक्षिणावता ।  
 अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैः समृद्धैराप्तदक्षिणैः ॥ १९  
 मा ते व्यथास्तु निहतान्वन्धून्वीक्ष्य पुनः पुनः ।  
 न शक्यास्ते पुनर्द्रष्टुं ये हतास्मिन्प्राज्ञिरे ॥ २०  
 स त्वमिष्ट्वा महायज्ञः समृद्धैराप्तदक्षिणैः ।  
 लोके कीर्तिं परां प्राप्य गतिमग्न्यां गमिष्यसि ॥

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

१४

वैशंपायन उवाच ।

एवं बहुविधैर्वाक्यैर्मुनिभिस्तैस्तपोधनैः ।  
 समाश्रस्यत राजर्षिर्हृतबन्धुर्युधिष्ठिरः ॥ १  
 सोऽनुनीतो भगवता विष्टरश्रवसा स्वयम् ।  
 द्वैपायनेन कृष्णेन देवस्थानेन चामिभूः ॥ २  
 नारदेनाथ भीमेन नकुलेन च पार्थिवः ।  
 कृष्णया सहदेवेन विजयेन च धीमता ॥ ३

अन्यैश्च पुरुषव्याघ्रैर्ब्राह्मणैः शास्त्रदृष्टिभिः ।  
 व्यजहाच्छोकजं दुःखं सतापं शैव मानसम् ॥ ४  
 अर्चयामास देवांश्च ब्राह्मणांश्च युधिष्ठिरः ।  
 कृत्वाथ प्रेतकार्याणि बन्धूनां स पुनर्नृपः ।  
 अन्वशासत धर्मात्मा पृथिवीं सागरान्बराम् ॥ ५  
 प्रशान्तचेताः कौरव्यः स्वराज्यं प्राप्य केवलम् ।  
 व्यासं च नारदं चैव तांश्चान्यान्ब्रवीन्नृपः ॥ ६  
 आश्वासितोऽहं प्राग्वृद्धैर्भवद्भिर्मुनिपुंगवैः ।  
 न सूक्ष्ममपि मे किञ्चिद्व्यलीकमिह विद्यते ॥ ७  
 अर्थश्च सुमहान्प्राप्तो येन यक्ष्यामि देवताः ।  
 पुरस्कृत्येह भवतः समानेष्यामहे मखम् ॥ ८  
 हिमवन्तं त्वया गुप्ता गमिष्यामः पितामह ।  
 बह्वाश्रयो हि देशः स श्रूयते द्विजसत्तम ॥ ९  
 तथा भगवता चित्रं कल्याणं बहु भाषितम् ।  
 देवर्षिणा नारदेन देवस्थानेन चैव ह ॥ १०  
 नाभागधेयः पुरुषः कश्चिदेवंविधान्गुरुन् ।  
 लभते व्यसनं प्राप्य सुहृदः साधुसंमतान् ॥ ११  
 एवमुक्तास्तु ते राजा सर्व एव महर्षयः ।  
 अभ्यनुज्ञाप्य राजानं तथोभौ कृष्णफल्गुनौ ।  
 पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवादर्शनं ययुः ॥ १२  
 ततो धर्मसुतो राजा तत्रैवोपाविशत्प्रभुः ।  
 एवं नातिमहान्कालः स तेपामभ्यवर्तत ॥ १३  
 कुर्वतां शौचकर्माणि भीष्मस्य निधने तदा ।  
 महादानानि विप्रभ्यो ददतामौर्ध्वदैहिकम् ॥ १४  
 भीष्मकर्णपुरोगाणां कुरुणां कुरुनन्दन ।  
 सहितो धृतराष्ट्रेण प्रददावौर्ध्वदैहिकम् ॥ १५  
 ततो दत्त्वा बहु धनं विप्रेभ्यः पाण्डवर्षभः ।  
 धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विवेश गजसाह्वयम् ॥ १६  
 स समाश्रस्य पितरं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।

अन्वशाद्वै स धर्मात्मा पृथिवी भ्रातृभिः सह ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

१५

जनमेजय उवाच ।

विजिते पाण्डवेयैस्तु प्रशान्ते च द्विजोत्तम ।

राष्ट्रे किं चक्रतुर्वीरौ वासुदेवधनजयौ ॥ १

वैशंपायन उवाच ।

विजिते पाण्डवेयैस्तु प्रशान्ते च विशां पते ।

राष्ट्रे वभूवतुर्हृष्टौ वासुदेवधनजयौ ॥ २

विजहाते मुदा युक्तौ दिवि देवेश्वराविव ।

तौ वनेषु विचित्रेषु पर्वतानां च सानुषु ॥ ३

शैलेषु रमणीयेषु पल्वलेषु नदीषु च ।

चङ्क्रम्यमाणौ संहृष्टावश्विनाविव नन्दने ॥ ४

इन्द्रप्रस्थे महात्मानौ रेमाते कृष्णपाण्डवौ ।

प्रविश्य तां सभां रम्यां विजहाते च भारत ॥ ५

तत्र युद्धकथाश्चित्राः परिहृशेऽश्व पार्थिव ।

कथायोगे कथायोगे कथयामासतुस्तदा ॥ ६

ऋषीणां देवतानां च वंशांस्तावाहतुस्तदा ।

प्रीयमाणौ महात्मानौ पुराणावृषिसत्तमौ ॥ ७

मधुरास्तु कथाश्चित्राश्चित्रार्थपदनिश्चयाः ।

निश्चयज्ञः स पार्थाय कथयामास केशवः ॥ ८

पुत्रशोकाभिसंतप्त ज्ञातीनां च सहस्रशः ।

कथाभिः शमयामास पार्थ शौरिर्जनार्दनः ॥ ९

स तमाश्वस्य विधिवद्विधानज्ञो महातपाः ।

अपहृत्यात्मनो भारं विशश्रामेव सात्वतः ॥ १०

ततः कथान्ते गोविन्दो गुडाकेशमुवाच ह ।

सान्त्वयन्श्रद्धाक्षया वाचा हेतुयुक्तमिदं वचः ॥ ११

विजितेयं धरा कृत्स्ना सव्यसाचिन्परंतप ।

तद्वाहुबलमाश्रित्य राज्ञा धर्मसुतेन ह ॥ १२

असपत्नां मही भुङ्क्ते धर्मराजो युधिष्ठिरः ।

भीमसेनप्रभावेन यमयोश्च नरोत्तम ॥ १३

धर्मेण राज्ञा धर्मज्ञ प्राप्त राज्यमकण्टकम् ।

धर्मेण निहतः सख्ये स च राजा सुयोधनः ॥ १४

अधर्मरुचयो लुब्धाः सदा चाप्रियवादिनः ।

धार्तराष्ट्रा दुरात्मानः सानुबन्धा निपातिताः ॥ १५

प्रशान्तामखिलां पार्थ पृथिवी पृथिवीपतिः ।

भुङ्क्ते धर्मसुतो राजा त्वया गुप्तः कुरुद्वह ॥ १६

रमे चाह त्वया सार्धमरण्येष्वपि पाण्डव ।

किमु यत्र जनोऽयं वै पृथा चामित्रकर्शन ॥ १७

यत्र धर्मसुतो राजा यत्र भीमो महाबलः ।

यत्र माद्रवतीपुत्रौ रलिस्तत्र परा मम ॥ १८

तथैव स्वर्गकल्पेषु सभोद्देशेषु भारत ।

रमणीयेषु पुण्येषु सहितस्य त्वयानघ ॥ १९

कालो महांस्त्वतीतो मे शूरपुत्रमपश्यतः ।

बलदेवं च कौरव्य तथा न्यान्वृष्णिगपुंगवान् ॥ २०

सोऽहं गन्तुमभीप्सामि पुरी द्वारवतीं प्रति ।

रोचतां गमनं मद्य तवापि पुरुपर्षभ ॥ २१

उक्तो बहुविधं राजा तत्र तत्र युधिष्ठिरः ।

स ह भीष्मेण यद्युक्तमस्माभिः शोककारिते ॥ २२

शिष्टो युधिष्ठिरोऽस्माभिः शास्ता सन्नपि पाण्डवः ।

तेन तच्च वचः सम्यग्गृहीतं सुमहात्मना ॥ २३

धर्मपुत्रे हि धर्मज्ञे कृतज्ञे सत्यवादिनि ।

सत्यं धर्मो मतिश्चाग्र्या स्थितिश्च सततं स्थिरा ॥

तद्गत्वा तं महात्मानं यदि ते रोचतेऽर्जुन ।

अस्मद्रसनसंयुक्तं वचो ब्रूहि जनाधिपम् ॥ २५

न हि तस्याप्रिय कुर्यां प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते ।

कुतो गन्तुं महाबाहो पुरी द्वारवतीं प्रति ॥ २६

सर्वं त्विदमहं पार्थ त्वत्प्रीतिहितकाम्यया ।

ब्रवीमि सत्यं कौरव्य न मिथ्यैतत्कथंचन ॥ २७

प्रयोजनं च निर्वृत्तमिह वासे ममार्जुन ।  
 धार्तराष्ट्रो हतो राजा सखलः सपदानुगः ॥ २८  
 पृथिवी च वशे तात धर्मपुत्रस्य धीमतः ।  
 स्थिता समुद्रवसना सशैलवनकानना ।  
 चिता रत्नैर्बहुविधैः कुरुराजस्य पाण्डव ॥ २९  
 धर्मेण राजा धर्मज्ञः पातु सर्वा वसुंधराम् ।  
 उपास्यमानो बहुभिः सिद्धैश्चापि महात्मभिः ।  
 स्तूयमानश्च सततं बन्दिभिर्भरतर्षभ ॥ ३०  
 तन्मया सह गत्वाद्य राजानं कुरुवर्धनम् ।  
 आपृच्छ कुरुशार्दूल गमनं द्वारकां प्रति ॥ ३१  
 इदं शरीरं वसु यच्च मे गृहे  
 निवेदितं पार्थ सदा युधिष्ठिरे ।  
 प्रियश्च मान्यश्च हि मे युधिष्ठिरः  
 सदा कुरुणामधिपो महामतिः ॥ ३२  
 प्रयोजनं चापि निवासकारणे  
 न विद्यते मे त्वद्वते महाभुज ।  
 स्थिता हि पृथ्वी तव पार्थ शासने  
 गुरोः सुवृत्तस्य युधिष्ठिरस्य ह ॥ ३३  
 इतीदमुक्तं स तदा महात्मना  
 जनार्दनेनामितविक्रमोऽर्जुनः ।  
 तथेति कृच्छ्रादिव वाचमीरय-  
 जनार्दनं संप्रतिपूज्य पार्थिव ॥ ३४  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

१६

जनमेजय उवाच ।  
 सभायां वसतोस्तस्यां निहत्यारीन्महात्मनोः ।  
 केशवार्जुनयोः का तु कथा समभवद्भिज्ज ॥ १  
 वैशंपायन उवाच ।  
 कृष्णेन सहितः पार्थः स्वराज्यं प्राप्य केवलम् ।

तस्यां सभायां रम्यायां विजहार मुदा युतः ॥ २  
 ततः कचित्सभोद्देशं स्वर्गोद्देशमनं नृप ।  
 यदृच्छया तौ मुदितौ जग्मतुः स्वजनावृतौ ॥ ३  
 ततः प्रतीतः कृष्णेन सहितः पाण्डवोऽर्जुनः ।  
 निरीक्ष्य तां सभां रम्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४  
 विदितं ते महाबाहो संग्रामे समुपस्थिते ।  
 माहात्म्यं देवकीमातस्तच्च ते रूपमैश्वरम् ॥ ५  
 यत्तु तद्भवता प्रोक्तं तदा केशव सौहृदात् ।  
 तत्सर्वं पुरुषव्याघ्र नष्टं मे नष्टचेतसः ॥ ६  
 मम कौतूहलं त्वस्ति तेष्वर्थेषु पुनः प्रभो ।  
 भवांश्च द्वारकां गन्ता नचिरादिव माधव ॥ ७  
 एवमुक्तस्ततः कृष्णः फलगुनं प्रत्यभाषत ।  
 परिष्वज्य महातेजा वचनं वदतां वरः ॥ ८  
 श्रावितस्त्वं मया गुह्यं ज्ञापितश्च सनातनम् ।  
 धर्मं स्वरूपिणं पार्थ सर्वलोकांश्च शाश्वतान् ॥ ९  
 अबुद्धा यन्न गृहीथास्तन्मे सुमहदप्रियम् ।  
 नूनमश्रद्धधानोऽसि दुर्मेधाश्चासि पाण्डव ॥ १०  
 स हि धर्मः सुपर्याप्तो ब्रह्मणः पदवेदने ।  
 न शक्यं तन्मया भूयस्तथा वक्तुमशेषतः ॥ ११  
 परं हि ब्रह्म कथितं योगयुक्तेन तन्मया ।  
 इतिहासं तु वक्ष्यामि तस्मिन्नर्थे पुरातनम् ॥ १२  
 यथा तां बुद्धिमास्थाय गतिमग्न्यां गमिष्यसि ।  
 शृणु धर्मभृतां श्रेष्ठ गदतः सर्वमेव मे ॥ १३  
 आगच्छद्ब्राह्मणः कश्चित्स्वर्गलोकादरिदम् ।  
 ब्रह्मलोकाच्च दुर्धर्षः सोऽस्माभिः पूजितोऽभवत् ॥  
 अस्माभिः परिपृष्टश्च यदाह भरतर्षभ ।  
 दिव्येन विविना पार्थ तच्छृणुष्वविचारयन् ॥ १५  
 ब्राह्मण उवाच ।  
 मोक्षधर्मं समाश्रित्य कृष्ण यन्मानुपृच्छसि ।  
 भूतानामनुकम्पार्थ यन्मोहच्छेदनं प्रभो ॥ १६

तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि यथावन्मधुसूदन ।  
 शृणुष्वविहितो भूत्वा गदतो मम माधव ॥ १७  
 कश्चिद्विप्रस्तपोयुक्तः काश्यपो धर्मवित्तमः ।  
 आससाद् द्विज कंचिद्वर्माणामागतागमम् ॥ १८  
 गतागते सुबहुशो ज्ञानविज्ञानपारगम् ।  
 लोकतत्त्वार्थकुशल ज्ञातार सुखदुःखयोः ॥ १९  
 जातीमरणतत्त्वज्ञ कोविद पुण्यपापयोः  
 द्रष्टारमुच्चनीचानां कर्मभिर्देहिनां गतिम् ॥ २०  
 चरन्तं मुक्तवत्सिद्धं प्रशान्तं संयतेन्द्रियम् ।  
 दीप्यमानं श्रिया ब्राह्म्या क्रममाणं च सर्वशः ॥  
 अन्तर्धानगतिज्ञ च श्रुत्वा तत्त्वेन काश्यपः ।  
 तथैवान्तर्हितैः सिद्धैर्यन्तं चक्रधरैः सह ॥ २२  
 संभाषमाणमेकान्ते समासीन च तैः सह ।  
 यदृच्छया च गच्छन्तमसक्त पवनं यथा ॥ २३  
 तं समासाद्य मेधावी स तदा द्विजसत्तमः ।  
 चरणौ धर्मकामो वै तपस्वी सुसमाहितः ।  
 प्रतिपेदे यथान्यायं भक्त्या परमया युतः ॥ २४  
 विस्मितश्चाद्भुत दृष्ट्वा काश्यपस्तं द्विजोत्तमम् ।  
 परिचारेण महता गुरु वैद्यमतोषयत् ॥ २५  
 प्रीतात्मा चोपपन्नश्च श्रुतचारित्रसंयुतः ।  
 भावेन तोषयच्चैनं गुरुवृत्त्या परंतपः ॥ २६  
 तस्मै तुष्टः स शिष्याय प्रसन्नोऽथाब्रवीद्गुरुः ।  
 सिद्धिं परामभिप्रेक्ष्य शृणु तन्मे जनार्दन ॥ २७  
 विविधैः कर्मभिस्तात पुण्ययोगैश्च केवलैः ।  
 गच्छन्तीह गति मर्त्या देवल्लोकेऽपि च स्थितिम् ॥  
 न क्वचित्सुखमत्यन्तं न क्वचिच्छाश्वती स्थितिः ।  
 स्थानाच्च महतो भ्रशो दुःखलब्धात्पुनः पुनः ॥ २९  
 अशुभा गतयः प्राप्ताः कष्टा मे पापसेवनात् ।  
 काममन्युपरीतेन तृष्णया मोहितेन च ॥ ३०  
 पुनः पुनश्च मरण जन्म चैव पुनः पुनः ।

आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः ॥  
 मातरो विविधा दृष्टाः पितरश्च पृथग्विधाः ।  
 सुखानि च विचित्राणि दुःखानि च मयानघ ॥  
 प्रियैर्विवासो बहुशः संवासश्चाप्रियैः सह ।  
 धननाशश्च सप्राप्तो लब्ध्वा दुःखेन तद्धनम् ॥ ३३  
 अवमानाः सुकष्टाश्च परतः स्वजनात्तथा ।  
 शरीरा मानसाश्चापि वेदना भृशदारुणाः ॥ ३४  
 प्राप्ता विमाननाश्चोग्रा वधबन्धाश्च दारुणाः ।  
 पतनं निरये चैव यातनाश्च यमक्षये ॥ ३५  
 जरा रोगाश्च सततं वासनानि च भूरिशः ।  
 लोकेऽस्मिन्ननुभूतानि द्वद्वजानि भृशं मया ॥ ३६  
 ततः कदाचिन्निर्वेदान्निकारान्निकृतेन च ।  
 लोकतत्र परित्यक्त दुःखार्तेन भृश मया ।  
 ततः सिद्धिरियं प्राप्ता प्रसादादात्मनो मया ॥ ३७  
 नाहं पुनरिहागन्ता लोकानालोक्याम्यहम् ।  
 आ सिद्धेरा प्रजासर्गादात्मनो मे गतिः शुभा ॥  
 उपलब्धा द्विजश्रेष्ठ तथेयं सिद्धिरुत्तमा ।  
 इतः परं गमिष्यामि ततः परतरं पुनः ।  
 ब्रह्मणः पदमव्यग्रं मा ते भूदत्र संशयः ॥ ३९  
 नाहं पुनरिहागन्ता मर्त्यलोकं परंतप ।  
 प्रीतोऽस्मि ते महाप्राज्ञ ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ ४०  
 यदीप्सुरुपपन्नस्त्वं तस्य कालोऽयमागतः ।  
 अभिजाने च तदहं यदर्थं मा त्वमागतः ।  
 अचिरात्तु गमिष्यामि येनाहं त्वामचूचुदम् ॥ ४१  
 भृशं प्रीतोऽस्मि भवतश्चारित्रेण विचक्षण ।  
 परिपृच्छ यावद्भवते भाषेयं यत्तवेप्सितम् ॥ ४२  
 बहु मन्ये च ते बुद्धिं भृशं संपूजयामि च ।  
 येनाहं भवता बुद्धो मेधावी ह्यसि काश्यप ॥ ४३

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥



१७

वासुदेव उवाच ।

ततस्तस्योपरांगृह्य पादौ प्रश्रान्सुदुर्वचान् ।

पप्रच्छ तांश्च सर्वान्सि प्राह धर्मभृतां वरः ॥ १

काश्यप उवाच ।

कथं शरीरं च्यवते कथं चैवोपपद्यते ।

कथं कष्टाच्च संसारात्ससरन्परिमुच्यते ॥ २

आत्मानं वा कथं युक्त्या तच्छरीरं विमुञ्चति ।

शरीरतश्च निर्मुक्तः कथमन्यत्प्रपद्यते ॥ ३

कथं शुभाशुभे चायं कर्मणी स्वकृते नरः ।

उपभुङ्क्ते क्व वा कर्म विदेहस्योपतिष्ठति ॥ ४

ब्राह्मण उवाच ।

एव संचोदितः सिद्धः प्रश्रान्स्तान्प्रत्यभाषत ।

आनुपूर्व्येण वार्ष्णेय यथा तन्मे वचः शृणु ॥ ५

सिद्ध उवाच ।

आयुःकीर्तिकराणीह यानि कर्माणि सेवते ।

शरीरग्रहणेऽन्यस्मिंस्तेषु क्षीणेषु सर्वशः ॥ ६

आयुःक्षयपरीतात्मा विपरीतानि सेवते ।

बुद्धिर्व्यावर्तते चास्य विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥ ७

सत्त्वं बलं च कालं चाप्यविदित्वात्मनस्तथा ।

अतिबेलमुपाश्रान्ति तैर्विरुद्धान्यनात्मवान् ॥ ८

यदायमतिकष्टानि सर्वाण्युपनिषेवते ।

अत्यर्थमपि वा भुङ्क्ते न वा भुङ्क्ते कदाचन ॥ ९

दुष्टान्नं विषमन्नं च सोऽन्योन्येन विरोधि च ।

गुरु वापि समं भुङ्क्ते नातिजीर्णेऽपि वा पुनः ॥ १०

व्यायाममतिमात्रं वा व्यवायं चोपसेवते ।

सततं कर्मलोभाद्वा प्राप्तं वेगविधारणम् ॥ ११

रसादियुक्तमन्नं वा दिवास्वप्नं निषेवते ।

अज्ञानागो काले स्वयं दोषान्प्रकोपयन् ॥ १२

स्वदोषकोपनाद्गो लभते मरणान्तिकम् ।

अथ चोद्धन्धनादीनि परीतानि व्यवस्थिति ॥ १३

तस्य तैः कारणैर्जन्तोः शरीराच्यवते यथा ।

जीवितं प्रोच्यमानं तद्यथावदुपधारय ॥ १४

ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः ।

शरीरमनुपर्येति सर्वान्प्राणान्रुणद्धि वै ॥ १५

अत्यर्थं बलवानूष्मा शरीरे परिकोपितः ।

भिनत्ति जीवस्थानानि तानि मर्माणि विद्धि च ॥

ततः सवेदनः सद्यो जीवः प्रच्यवते क्षरन् ।

शरीरं त्यजते जन्तुश्छिद्यमानेषु मर्मसु ।

वेदनाभिः परीतात्मा तद्विद्धि द्विजसत्तम ॥ १७

जातीमरणसंविन्नाः सततं सर्वजन्तवः ।

दृश्यन्ते संत्यजन्तश्च शरीराणि द्विजर्षभ ॥ १८

गर्भसंक्रमणे चापि मर्मणामतिसर्पणे ।

तादृशीमेव लभते वेदनां मानवः पुनः ॥ १९

भिन्नसंधिरथ ह्रेदमद्भिः स लभते नरः ।

यथा पञ्चसु भूतेषु संश्रितत्वं निगच्छति ।

शैत्यात्प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः ॥ २०

यः स पञ्चसु भूतेषु प्राणापाने व्यवस्थितः ।

स गच्छत्यूर्ध्वगो वायुः कृच्छ्रान्मुक्त्वा शरीरिणम् ॥

शरीरं च जहात्येव निरुच्छ्वासश्च दृश्यते ।

निरूष्मा स निरुच्छ्वासो निःश्रीको गतचेतनः ॥ २२

ब्रह्मणा संपरित्यक्तो मृत इत्युच्यते नरः ।

स्रोतोभिर्यैर्विजानाति इन्द्रियार्थांश्शरीरभृत् ।

तैरेव न विजानाति प्राणमाहारसंभवम् ॥ २३

तत्रैव कुरुते काये यः स जीवः सनातनः ।

तेषां यद्यद्भवेद्युक्तं संनिपाते कचित्कचित् ।

तत्तन्मर्म विजानीहि शास्त्रदृष्टं हि तत्तथा ॥ २४

तेषु मर्मसु भिन्नेषु ततः स समुदीरयन् ।

आविश्य हृदयं जन्तोः सत्त्वं चाशु रुणद्धि वै ।

ततः स चेतनो जन्तुर्नाभिजानाति किंचन ॥ २५  
तमसा संवृतज्ञानः संवृतेष्वथ मर्मसु ।  
स जीवो निरधिष्ठानश्चाव्यते मातरिश्वना ॥ २६  
ततः स तं महोच्छ्वासं भृशमुच्छ्वस्य दारुणम् ।  
निष्क्रामन्कम्पयत्याशु तच्छरीरमचेतनम् ॥ २७  
स जीवः प्रच्युतः कायात्कर्मभिः स्वैः समावृतः ।  
अङ्कितः स्वैः शुभैः पुण्यैः पापैर्वाप्युपपद्यते ॥ २८  
ब्राह्मणा ज्ञानसंपन्ना यथावच्छ्रुतनिश्चयाः ।  
इतरं कृतपुण्य वा तं विजानन्ति लक्षणैः ॥ २९  
यथान्धकारे खद्योतं लीयमानं ततस्ततः ।  
चक्षुष्मन्तः प्रपश्यन्ति तथा तं ज्ञानचक्षुषः ॥ ३०  
पश्यन्त्येवंविधाः सिद्धा जीवं दिव्येन चक्षुषा ।  
च्यवन्तं जायमानं च योनिं चानुप्रवेशितम् ॥ ३१  
तस्य स्थानानि दृष्टानि त्रिविधानीह शास्त्रतः ।  
कर्मभूमिरियं भूमिर्यत्र तिष्ठन्ति जन्तवः ॥ ३२  
ततः शुभाशुभं कृत्वा लभन्ते सर्वदेहिनः ।  
इहैवोच्चावचान्भोगान्प्राप्नुवन्ति स्वकर्मभिः ॥ ३३  
इहैवाशुभकर्मा तु कर्मभिर्निरयं गतः ।  
अवाक्स निरये पापो मानवः पच्यते भृशम् ।  
तस्मात्सुदुर्लभो मोक्ष आत्मा रक्ष्यो भृशं ततः ॥ ३४  
ऊर्ध्वं तु जन्तवो गत्वा येषु स्थानेष्ववस्थिताः ।  
कीर्त्यमानानि तानीह तत्त्वतः संनिबोध मे ।  
तच्छ्रुत्वा नैष्ठिकीं बुद्धिं बुद्ध्येथाः कर्मनिश्चयान् ॥  
तारारूपाणि सर्वाणि यच्चैतच्चन्द्रमण्डलम् ।  
यच्च विभ्राजते लोके स्वभासा सूर्यमण्डलम् ।  
स्थानान्येतानि जानीहि नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥ ३६  
कर्मक्षयाच्च ते सर्वे च्यवन्ते वै पुनः पुनः ।  
तत्रापि च विशेषोऽस्ति दिवि नीचोच्चमध्यमः ॥  
न तत्राप्यस्ति संतोषो दृष्ट्वा दीप्ततरां श्रियम् ।  
इत्येता गतयः सर्वाः पृथक्त्वे समुदीरिताः ॥ ३८

उपपत्तिं तु गर्भस्य वक्ष्याम्यहमतः परम् ।  
यथावत्तां निगदतः शृणुष्ववहितो द्विज ॥ ३९  
इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि  
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥  
१८  
ब्राह्मण उवाच ।  
शुभानामशुभानां च नेह नाशोऽस्ति कर्मणाम् ।  
प्राप्य प्राप्य तु पच्यन्ते क्षेत्रं क्षेत्रं तथा तथा ॥ १  
यथा प्रसूयमानस्तु फली दद्यात्फलं बहु ।  
तथा स्याद्विपुलं पुण्यं शुद्धेन मनसा कृतम् ॥ २  
पापं चापि तथैव स्यात्पापेन मनसा कृतम् ।  
पुरोधाय मनो हीह कर्मण्यात्मा प्रवर्तते ॥ ३  
यथा कर्मसमादिष्टं काममन्युसमावृतः ।  
नरो गर्भं प्रविशति तच्चापि शृणु चोत्तरम् ॥ ४  
शुक्रं शोणितससृष्टं स्त्रिया गर्भाशयं गतम् ।  
क्षेत्रं कर्मजमाप्नोति शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ ५  
सौक्ष्म्यादव्यक्तभावाच्च न स कचन सज्जते ।  
संप्राप्य ब्रह्मणः कार्यं तस्मात्तद्ब्रह्म शाश्वतम् ।  
तद्वीजं सर्वभूतानां तेन जीवन्ति जन्तवः ॥ ६  
स जीवः सर्वगात्राणि गर्भस्याविश्य भागशः ।  
दधाति चेतसा सद्यः प्राणस्थानेष्ववस्थितः ।  
ततः स्पन्दयतेऽङ्गानि स गर्भश्चेतनान्वितः ॥ ७  
यथा हि लोहनिष्यन्दां निषिक्तो विम्बविग्रहम् ।  
उपैति तद्वज्जानीहि गर्भे जीवप्रवेशनम् ॥ ८  
लोहपिण्डं यथा वह्निः प्रविशत्यभितापयन् ।  
तथा त्वमपि जानीहि गर्भे जीवोपपादनम् ॥ ९  
यथा च दीपः शरणं दीप्यमानः प्रकाशयेत् ।  
एवमेव शरीराणि प्रकाशयति चेतना ॥ १०  
यद्यच्च कुरुते कर्म शुभं वा यदि वाशुभम् ।  
पूर्वदेहकृतं सर्वमवश्यमुपभुज्यते ॥ ११

ततस्तत्क्षीयते चैव पुनश्चान्यत्प्रचीयते ।  
यावत्तन्मोक्षयोगस्थं धर्मं नैवावबुध्यते ॥ १२  
तत्र धर्मं प्रवक्ष्यामि सुखी भवति येन वै ।  
आवर्तमानो जातीषु तथान्योन्यासु सत्तम ॥ १३  
दानं व्रतं ब्रह्मचर्यं यथोक्तव्रतधारणम् ।  
दमः प्रशान्तता चैव भूतानां चानुकम्पनम् ॥ १४  
संयमश्चानृशंस्यं च परस्वादानवर्जनम् ।  
व्यलीकानामकरणं भूतानां यत्र सा भुवि ॥ १५  
मातापित्रोश्च शुश्रूषा देवतातिथिपूजनम् ।  
गुरुपूजा घृणा शौचं नित्यमिन्द्रियसंयमः ॥ १६  
प्रवर्तनं शुभानां च तत्सतां वृत्तमुच्यते ।  
ततो धर्मः प्रभवति यः प्रजाः पाति शाश्वतीः ॥  
एव सत्सु सदा पश्येत्तत्र ह्येषा ध्रुवा स्थितिः ।  
आचारो धर्ममाचष्टे यस्मिन्सन्तो व्यवस्थिताः ॥  
तेषु तद्धर्मनिक्षिप्तं यः स धर्मः सनातनः ।  
यस्तं समभिपद्येत न स दुर्गतिमाप्नुयात् ॥ १९  
अतो नियम्यते लोकः प्रमुह्य धर्मवर्त्मसु ।  
यस्तु योगी च मुक्तश्च स एतेभ्यो विशिष्यते ॥  
वर्तमानस्य धर्मेण पुरुषस्य यथा तथा ।  
संसारतारणं ह्यस्य कालेन महता भवेत् ॥ २१  
एवं पूर्वकृतं कर्म सर्वो जन्तुर्निषेवते ।  
सर्वं तत्कारणं येन निकृतोऽयमिहागतः ॥ २२  
शरीरग्रहणं चास्य केन पूर्वं प्रकल्पितम् ।  
इत्येवं संशयो लोके तच्च वक्ष्याम्यतः परम् ॥ २३  
शरीरमात्मनः कृत्वा सर्वभूतपितामहः ।  
त्रैलोक्यमसृजद्ब्रह्मा कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम् ॥ २४  
ततः प्रधानमसृजच्चेतना सा शरीरिणाम् ।  
यया सर्वमिदं व्याप्तं यां लोके परमां विदुः ॥ २५  
इह तत्क्षरमित्युक्तं परं त्वमृतमक्षरम् ।  
त्रयाणां मिथुनं सर्वमेकैकस्य पृथक्पृथक् ॥ २६

असृजत्सर्वभूतानि पूर्वसृष्टः प्रजापतिः ।  
स्थावराणि च भूतानि इत्येषा पौर्विकी श्रुतिः ॥ २७  
तस्य कालपरीमाणमकरोत्स पितामहः ।  
भूतेषु परिवृत्तिं च पुनरावृत्तिमेव च ॥ २८  
यथात्र कश्चिन्मेधावी दृष्टात्मा पूर्वजन्मनि ।  
यत्प्रवक्ष्यामि तत्सर्वं यथावदुपपद्यते ॥ २९  
सुखदुःखे सदा सम्यगनित्ये यः प्रपश्यति ।  
कायं चामेध्यसंघातं विनाशं कर्मसंहितम् ॥ ३०  
यच्च किञ्चित्सुखं तच्च सर्वं दुःखमिति स्मरन् ।  
संसारसागरं घोरं तरिष्यति सुदुस्तरम् ॥ ३१  
जातीमरणरोगैश्च समाविष्टः प्रधानवित् ।  
चेतनावत्सु चैतन्यं समं भूतेषु पश्यति ॥ ३२  
निर्विद्यते ततः कृत्स्नं मार्गमाणः परं पदम् ।  
तस्योपदेशं वक्ष्यामि याथातथ्येन सत्तम ॥ ३३  
शाश्वतस्याव्ययस्याथ पदस्य ज्ञानमुत्तमम् ।  
प्रोच्यमानं मया विप्र निबोधेदमशेषतः ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

१९

ब्राह्मण उवाच ।

यः स्यादेकायने लीनस्तूष्णीं किञ्चिदचिन्तयन् ।  
पूर्वं पूर्वं परित्यज्य स निरारम्भको भवेत् ॥ १  
सर्वमित्रः सर्वसहः समरक्तो जितेन्द्रियः ।  
व्यपेतभयमन्युश्च कामहा मुच्यते नरः ॥ २  
आत्मवत्सर्वभूतेषु यश्चरेन्नियतः शुचिः ।  
अमानी निरभीमानः सर्वतो मुक्त एव सः ॥ ३  
जीवितं मरणं चोभे सुखदुःखे तथैव च ।  
लाभालाभे प्रियद्वेष्ये यः समः स च मुच्यते ॥ ४  
न कस्यचित्स्पृह्यते नावजानाति किञ्चन ।  
निर्द्वन्द्वो वीतरागात्मा सर्वतो मुक्त एव सः ॥ ५

अनमित्रोऽथ निर्वन्धुरनपत्यश्च यः कश्चित् ।  
 त्यक्तधर्मार्थकामश्च निराकाङ्क्षी स मुच्यते ॥ ६  
 नैव धर्मी न चाधर्मी पूर्वोपचितहा च यः ।  
 धातुक्षयप्रशान्तात्मा निर्वृद्धः स विमुच्यते ॥ ७  
 अकर्मा चाविकाङ्क्षश्च पश्यञ्जगदशाश्वतम् ।  
 अस्वस्थमवशं नित्यं जन्मसंसारमोहितम् ॥ ८  
 वैराग्यबुद्धिः सततं तापदोषव्यपेक्षकः ।  
 आत्मबन्धविनिर्मोक्ष स करोत्यचिरादिव ॥ ९  
 अगन्धरसमस्पर्शमशब्दमपरिग्रहम् ।  
 अरूपमनभिज्ञेयं दृष्ट्वात्मानं विमुच्यते ॥ १०  
 पञ्चभूतगुणैर्हीनममूर्तिमदलेपकम् ।  
 अगुणं गुणभोक्तारं यः पश्यति स मुच्यते ॥ ११  
 विहाय सर्वसंकल्पान्बुद्ध्या शारीरमानसान् ।  
 शनैर्निर्वाणमाप्नोति निरिन्धन इवानलः ॥ १२  
 विमुक्तः सर्वसंस्कारैस्ततो ब्रह्म सनातनम् ।  
 परमाप्नोति संशान्तमचलं दिव्यमक्षरम् ॥ १३  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि योगशास्त्रमनुत्तमम् ।  
 यज्ज्ञात्वा सिद्धमात्मानं लोके पश्यन्ति योगिनः ॥  
 तस्योपदेशं पश्यामि यथावत्तन्निबोध मे ।  
 यैर्द्वारैश्चारयन्नित्यं पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥ १५  
 इन्द्रियाणि तु संहृत्य मन आत्मनि धारयेत् ।  
 तीव्रं तप्त्वा तपः पूर्वं ततो योक्तुमुपक्रमेत् ॥ १६  
 तपस्वी त्यक्तसंकल्पो दम्भाहंकारवर्जितः ।  
 मनीषी मनसा विप्रः पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥ १७  
 स चेच्छक्नोत्ययं साधुर्योक्तुमात्मानमात्मनि ।  
 तत एकान्तशीलः स पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥ १८  
 संयतः सततं युक्त आत्मवान्विजितेन्द्रियः ।  
 तथायमात्मानात्मानं साधु युक्तः प्रपश्यति ॥ १९  
 यथा हि पुरुषः स्वप्ने दृष्ट्वा पश्यत्यसाविति ।  
 तथारूपमिवात्मानं साधु युक्तः प्रपश्यति ॥ २०

इषीकां वा यथा मुञ्जात्कश्चिन्निर्हृत्य दर्शयेत् ।  
 योगी निष्कृष्टमात्मानं तथा संपश्यते तनौ ॥ २१  
 मुञ्जं शरीरं तस्याद्वुरिषीकामात्मनि श्रिताम् ।  
 एतन्निर्दर्शनं प्रोक्तं योगविद्भिर्नुत्तमम् ॥ २२  
 यदा हि युक्तमात्मानं सम्यक्पश्यति देहभृत् ।  
 तदास्य नेशते कश्चिन्नैलोक्यस्यापि यः प्रभुः ॥ २३  
 अन्योन्याश्चैव तनवो यथेष्टं प्रतिपद्यते ।  
 विनिवृत्य जरामृत्यू न दृश्यति न शोचति ॥ २४  
 देवानामपि देवत्व युक्तः कारयते वशी ।  
 ब्रह्म चाव्ययमाप्नोति हित्वा देहमशाश्वतम् ॥ २५  
 विनश्यत्स्वपि लोकेषु न भयं तस्य जायते ।  
 क्लिश्यमानेषु भूतेषु न स क्लिश्यति केनचित् ॥ २६  
 दुःखशोकमयैर्धैरैः सङ्गस्नेहसमुद्भवैः ।  
 न विचाल्येत युक्तात्मा निःस्पृहः शान्तमानसः ॥  
 नैनं शस्त्राणि विध्यन्ते न मृत्युश्चास्य विद्यते ।  
 नातः सुखतरं किञ्चिल्लोके कचन विद्यते ॥ २८  
 सम्यग्युक्त्वा यदात्मानमात्मन्येव प्रपश्यति ।  
 तदैव न स्पृहयते साक्षादपि शतक्रतोः ॥ २९  
 निर्वेदस्तु न गन्तव्यो युञ्जानेन कथंचन ।  
 योगमेकान्तशीलस्तु यथा युञ्जीत तच्छृणु ॥ ३०  
 दृष्टपूर्वा दिशं चिन्त्य यस्मिन्सनिवसेत्पुरे ।  
 पुरस्याभ्यन्तरे तस्य मनश्चार्यं न बाह्यतः ॥ ३१  
 पुरस्याभ्यन्तरे तिष्ठन्यस्मिन्नावसथे वसेत् ।  
 तस्मिन्नावसथे धार्यं सबाह्याभ्यन्तरं मनः ॥ ३२  
 प्रचिन्त्यावसथं कृत्स्नं यस्मिन्कायेऽवतिष्ठते ।  
 तस्मिन्काये मनश्चार्यं न कथंचन बाह्यतः ॥ ३३  
 संनियम्येन्द्रियग्राम निर्घोषे निर्जने वने ।  
 कायमभ्यन्तरं कृत्स्नमेकाग्रः परिचिन्तयेत् ॥ ३४  
 दन्तांस्तालु च जिह्वां च गलं ग्रीवां तथैव च ।  
 हृदयं चिन्तयेच्चापि तथा हृदयबन्धनम् ॥ ३५

इत्युक्तः स मया शिष्यो मेधावी मधुसूदन ।  
 पप्रच्छ पुनरेवेमं मोक्षधर्मं सुदुर्वचम् ॥ ३६  
 भुक्तं भुक्तं कथमिदमन्नं कोष्ठे विपच्यते ।  
 कथं रसत्वं व्रजति शोणितं जायते कथम् ।  
 तथा मांसं च मेदश्च क्वाय्वस्थीनि च पोषति ॥ ३७  
 कथमेतानि सर्वाणि शरीराणि शरीरिणाम् ।  
 वर्धन्ते वर्धमानस्य वर्धते च कथं बलम् ।  
 निरोजसां निष्क्रमणं मलानां च पृथक् पृथक् ॥ ३८  
 कुनो वायं प्रश्वसिति उच्छ्वसित्यपि वा पुनः ।  
 कं च देशमधिष्ठाय तिष्ठत्यात्मायमात्मनि ॥ ३९  
 जीवः कायं वहति चेच्छ्रेष्ठयानः कलेवरम् ।  
 किंविण् क्रीडश चैव निवेशयति वै मनः ।  
 याथातथ्येन भगवन्वक्तुमर्हसि मेऽनघ ॥ ४०  
 इति संपरिपृष्टोऽहं तेन विप्रेण माधव ।  
 प्रत्यश्रुयं महाबाहो यथाश्रुतमरिदम् ॥ ४१  
 यथा स्वकोष्ठे प्रक्षिप्य कोष्ठं भाण्डमना भवेत् ।  
 तथा स्वकाये प्रक्षिप्य मनो द्वारैरनिश्चलैः ।  
 आत्मानं तत्र मार्गेत प्रमादं परिवर्जयेत् ॥ ४२  
 एवं सततमुद्युक्तः प्रीतात्मा नचिरादिव ।  
 आसादयति तद्ब्रह्म यदृष्ट्वा स्यात्प्रधानवित् ॥ ४३  
 न त्वसौ चक्षुषा ग्राह्यो न च सर्वैरपीन्द्रियैः ।  
 मनसैव प्रदीपेन महानात्मनि दृश्यते ॥ ४४  
 सर्वतःपाणिपादं तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।  
 जीवो निष्क्रान्तमात्मानं शरीरात्संप्रपश्येति ॥ ४५  
 स तदुत्सृज्य देहं स्वं धारयन्ब्रह्म केवलम् ।  
 आत्मानमालोकयति मनसा प्रहसन्निव ॥ ४६  
 इदं सर्वरहस्यं ते मयोक्तं द्विजसत्तम ।  
 आपृच्छे साधयिष्यामि गच्छ शिष्य यथासुखम् ॥  
 इत्युक्तः स तदा कृष्ण मया शिष्यो महातपाः ।  
 अगच्छत यथाकामं ब्राह्मणश्छिन्नसंशयः ॥ ४८

वासुदेव उवाच ।

इत्युक्त्वा स तदा वाक्य मा पार्थ द्विजपुंगवः ।  
 मोक्षधर्माश्रितः सम्यक्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४९  
 कश्चिदेतत्त्वया पार्थ श्रुतमेकाग्रचेतसा ।  
 तदापि हि रथस्थस्त्वं श्रुतवानेतदेव हि ॥ ५०  
 नैतत्पार्थ सुविज्ञेयं व्यामिश्रेणेति मे मतिः ।  
 नरेणाकृतसज्जेन विदग्धेनाकृतात्मना ॥ ५१  
 सुरहस्यमिदं प्रोक्तं देवानां भरतर्षभ ।  
 कश्चिन्नेदं श्रुतं पार्थ मर्त्यैरनान्येन केनचित् ॥ ५२  
 न ह्येतच्छ्रोतुमर्होऽन्यो मनुष्यस्त्वामृतेऽनघ ।  
 नैतदद्य सुविज्ञेयं व्यामिश्रेणान्तरात्मना ॥ ५३  
 क्रियावद्भिर्हि कौन्तेय देवलोकः समावृतः ।  
 न चैतदिष्टं देवानां मर्त्यै रूपनिवर्तनम् ॥ ५४  
 परा हि सा गतिः पार्थ यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ।  
 यत्रामृतत्वं प्राप्नोति त्यक्त्वा दुःखं सदा सुखी ॥  
 एवं हि धर्ममास्थाय येऽपि स्युः पापयोनयः ।  
 स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥  
 किं पुनर्ब्राह्मणाः पार्थ क्षत्रिया वा बहुश्रुताः ।  
 स्वधर्मरतयो नित्यं ब्रह्मलोकपरायणाः ॥ ५७  
 हेतुमच्चैतदुद्दिष्टमुपायाश्चास्य साधने ।  
 सिद्धेः फलं च मोक्षश्च दुःखस्य च विनिर्णयः ।  
 अतः परं सुख त्वन्यत्किं नु स्याद्भरतर्षभ ॥ ५८  
 श्रुतवाञ्छ्रद्धानश्च पराक्रान्तश्च पाण्डव ।  
 यः परित्यजते मर्त्यो लोकतन्मसारवत् ।  
 एतैरुपायैः स क्षिप्रं परां गतिमवाप्नुयात् ॥ ५९  
 एतावदेव वक्तव्यं नातो भूयोऽस्ति किंचन ।  
 षण्मासान्नित्ययुक्तस्य योगः पार्थ प्रवर्तते ॥ ६०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

२०

वासुदेव उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 दंपत्योः पार्थ संवादमभयं नाम नामतः ॥ १  
 ब्राह्मणी ब्राह्मणं कंचिज्ज्ञानविज्ञानपारगम् ।  
 दृष्ट्वा विविक्त आसीनं भार्या भर्तारमब्रवीन् ॥ २  
 क नु लोकं गमिष्यामि त्वामहं पतिमाश्रिता ।  
 न्यस्तकर्माणमासीनं कीनाशमविचक्षणम् ॥ ३  
 भार्याः पतिकृतल्लोकानाप्रवर्न्ताति नः श्रुतम् ।  
 त्वामहं पतिमासाद्य कां गमिष्यामि वै गतिम् ॥ ४  
 एवमुक्तः स शान्तात्मा तामुवाच हसन्निव ।  
 सुभगे नाभ्यसूयामि वाक्यस्यास्य तवानघे ॥ ५  
 ग्राह्यं दृश्यं च श्राव्यं च यदिदं कर्म विद्यते ।  
 एतदेव व्यवस्यन्ति कर्म कर्मेति कर्मिणः ॥ ६  
 मोहमेव नियच्छन्ति कर्मणा ज्ञानवर्जिताः ।  
 नैष्कर्म्यं न च लोकेऽस्मिन्मौर्तमित्युपलभ्यते ॥ ७  
 कर्मणा मनसा वाचा शुभं वा यदि वाशुभम् ।  
 जन्मादिमूर्तिभेदानां कर्म भूतेषु वर्तते ॥ ८  
 रक्षोभिर्वध्यमानेषु दृश्यद्रव्येषु कर्मसु ।  
 आत्मस्थमात्मना तेन दृष्टमायतनं मया ॥ ९  
 यत्र तद्ब्रह्म निर्द्वंद्वं यत्र सोमः सहाग्निना ।  
 व्यवायं कुरुते नित्यं धीरो भूतानि धारयन् ॥ १०  
 यत्र ब्रह्मादयो युक्तास्तदक्षरमुपासते ।  
 विद्वांसः सुव्रता यत्र शान्तात्मानो जितेन्द्रियाः ॥  
 घ्राणेन न तदाग्रेय न तदाद्यं च जिह्वया ।  
 स्पर्शेन च न तत्स्पृश्य मनसा त्वेव गम्यते ॥ १२  
 चक्षुषा न विषह्यं च यत्किंचिच्छ्रवणात्परम् ।  
 अगन्धमरसस्पर्शमरूपाशब्दमव्ययम् ॥ १३  
 यतः प्रवर्तते तन्नं यत्र च प्रतितिष्ठति ।  
 प्राणोऽपानः समानश्च व्यानश्चोदान एव च ॥ १४

तत एव प्रवर्तन्ते तमेव प्रविशन्ति च ।  
 समानव्यानयोर्मध्ये प्राणापानौ विचेरतुः ॥ १५  
 तस्मिन्मुपे प्रलीयेते समानो व्यान एव च ।  
 अपानप्राणयोर्मध्ये उदानो व्याप्य तिष्ठति ।  
 तस्माच्छ्यान पुरुष प्राणापानौ न मुञ्चतः ॥ १६  
 प्राणानायम्यते येन तमुदान प्रचक्षते ।  
 तस्मात्तपो व्यवस्यन्ति तद्भवं ब्रह्मवादिनः ॥ १७  
 तेषामन्योन्यभक्षाणां सर्वेषां देहचारिणाम् ।  
 अग्निर्वैश्वानरो मध्ये सप्तधा विहितोऽन्तरा ॥ १८  
 घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक्च श्रोत्रं च पञ्चमम् ।  
 मनो बुद्धिश्च सप्तैता जिह्वा वैश्वानरार्चिषः ॥ १९  
 घ्रेयं पेयं च दृश्यं च स्पृश्यं श्रव्यं तथैव च ।  
 मन्तव्यमथ बोद्धव्यं ताः सप्त समिधो मम ॥ २०  
 घ्राता भक्षयिता दृष्टा स्पृष्टा श्रोता च पञ्चमः ।  
 मन्ता बोद्धा च सप्तैते भवन्ति परमर्त्विजः ॥ २१  
 घ्रेये पेये च दृश्ये च स्पृश्ये श्रव्ये तथैव च ।  
 हवीष्यग्निषु होतारः सप्तधा सप्त सप्तसु ।  
 सम्यक्प्रक्षिप्य विद्वांसो जनयन्ति स्वयोनिषु ॥ २२  
 पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ।  
 मनो बुद्धिश्च सप्तैते योनिरित्येव शब्दिताः ॥ २३  
 हविर्भूता गुणाः सर्वे प्रविशन्त्यग्निजं मुखम् ।  
 अन्तर्वासमुषित्वा च जायन्ते स्वासु योनिषु ।  
 तत्रैव च निरुध्यन्ते प्रलये भूतभावेन ॥ २४  
 ततः संजायते गन्धस्ततः सजायते रसः ।  
 ततः संजायते रूपं ततः स्पर्शोऽभिजायते ॥ २५  
 ततः संजायते शब्दः संशयस्तत्र जायते ।  
 ततः संजायते त्रिष्टा जन्मेतत्सप्तधा विदुः ॥ २६  
 अनेनैव प्रकारेण प्रगृहीतं पुरातनैः ।

पूर्णाहुतिभिरापूर्णास्तेऽभिपूर्यन्ति तेजसा ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

२१

ब्राह्मण उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

निबोध दशहोतृणां विधानमिह यादृशम् ॥ १

सर्वमेवात्र विज्ञेयं चित्तं ज्ञानमवेक्षते ।

रेतः शरीरभृत्काये विज्ञाता तु शरीरभृत् ॥ २

शरीरभृद्गार्हपत्यस्तस्मादन्यः प्रणीयते ।

ततश्चाहवनीयस्तु तस्मिन्सक्षिप्यते हविः ॥ ३

ततो वाचस्पतिर्जज्ञे समानः पर्यवेक्षते ।

रूपं भवति वै व्यक्तं तदनुद्रवते मनः ॥ ४

ब्राह्मण्युवाच ।

कस्माद्वागभवत्पूर्वं कस्मात्प्रश्नान्मनोऽभवत् ।

मनसा चिन्तित वाक्यं यदा समभिपद्यते ॥ ५

केन विज्ञानयोगेन मतिश्चित्तं समास्थिता ।

समुन्नीता नाध्यगच्छत्को वैनानां प्रतिषेधति ॥ ६

ब्राह्मण उवाच ।

तामपानः पतिर्भूत्वा तस्मात्प्रेष्यत्यपानताम् ।

तां मति मनसः प्राहुर्मनस्तस्मादवेक्षते ॥ ७

प्रश्नं तु वाङ्मनसोर्मां यस्माच्चमनुपृच्छसि ।

तस्मात्ते वर्तयिष्यामि तयोरेव समाह्वयम् ॥ ८

उभे वाङ्मनसी गत्वा भूतात्मानमपृच्छताम् ।

आवयोः श्रेष्ठमाचक्ष्व छिन्धि नौ संशयं विभो ॥

मन इत्येव भगवांस्तदा प्राह सरस्वतीम् ।

अहं वै कामधुक्तुभ्यमिति तं प्राह वागथ ॥ १०

स्थावरं जङ्गमं चैव विद्वद्युभे मनसी मम ।

स्थावरं मत्सकाशे वै जङ्गमं विषये तव ॥ ११

यस्तु ते विषयं गच्छेन्मन्त्रो वर्णः स्वरोऽपि वा ।

तन्मनो जङ्गमं नाम तस्मादसि गरीयसी ॥ १२

यस्मादसि च मा वोचः स्वयमभ्येत्य शोभने ।

तस्मादुच्छ्वासमासाद्य न वक्ष्यसि सरस्वति ॥ १३

प्राणापानान्तरे देवी वाग्वै नित्यं स्म तिष्ठति ।

प्रेर्यमाणा महाभागे विना प्राणमपानती ।

प्रजापतिमुपाधावत्प्रसीद भगवन्निति ॥ १४

ततः प्राणः प्रादुरभूद्वाचमाप्याययन्पुनः ।

तस्मादुच्छ्वासमासाद्य न वाग्वदति कर्हिचित् ॥

घोषिणी जातनिर्घोषा नित्यमेव प्रवर्तते ।

तयोरपि च घोषिण्योर्निर्घोषैव गरीयसी ॥ १६

गौरिव प्रस्रवत्येषा रसमुत्तमशालिनी ।

सततं स्यन्दते ह्येषा शाश्वतं ब्रह्मवादिनी ॥ १७

दिव्यादिव्यप्रभावेन भारती गौः शुचिस्मिते ।

एतयोरन्तरं पश्य सूक्ष्मयोः स्यन्दमानयोः ॥ १८

अनुत्पन्नेषु वाक्येषु चोद्यमाना सिसृक्षया ।

किं नु पूर्वं ततो देवी व्याजहार सरस्वती ॥ १९

प्राणेन या संभवते शरीरे

प्राणादपानं प्रतिपद्यते च ।

उदानभूता च विसृज्य देहं

व्यानेन सर्वं दिवमावृणोति ॥ २०

ततः समाने प्रतितिष्ठतीह

इत्येव पूर्वं प्रजजल्प चापि ।

तस्मान्मनः स्थावरत्वाद्विशिष्टं

तथा देवी जङ्गमत्वाद्विशिष्टा ॥ २१

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

२२

ब्राह्मण उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

सुभगे सप्तहोतृणां विधानमिह यादृशम् ॥ १

घ्राणं चक्षुश्च जिह्वा च त्वक्श्रोत्रं चैव पञ्चमम् ।  
मनो बुद्धिश्च सप्तैते होतारः पृथगाश्रिताः ॥ २  
सूक्ष्मेऽवकाशे सन्तस्ते न पश्यन्तीतिरेतरम् ।  
एतान्वै सप्तहोतृत्वं स्वभावाद्बुद्धि शोभने ॥ ३

ब्राह्मण्युवाच ।

सूक्ष्मेऽवकाशे सन्तस्ते कथं नान्योन्यदर्शिनः ।  
कथंस्वभावा भगवन्नेतदाचक्ष्व मे विभो ॥ ४

ब्राह्मण उवाच ।

गुणाज्ञानमविज्ञानं गुणिज्ञानमभिज्ञता ।  
परस्परगुणानेते न विजानन्ति कर्हिचित् ॥ ५  
जिह्वा चक्षुस्तथा श्रोत्रं त्वङ्मनो बुद्धिरेव च ।  
न गन्धानधिगच्छन्ति घ्राणस्तानधिगच्छति ॥ ६  
घ्राणं चक्षुस्तथा श्रोत्रं त्वङ्मनो बुद्धिरेव च ।  
न रसानधिगच्छन्ति जिह्वा तानधिगच्छति ॥ ७  
घ्राणं जिह्वा तथा श्रोत्रं त्वङ्मनो बुद्धिरेव च ।  
न रूपाण्यधिगच्छन्ति चक्षुस्तान्यधिगच्छति ॥ ८  
घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च श्रोत्रं बुद्धिर्मनस्तथा ।  
न स्पर्शानधिगच्छन्ति त्वक्च तानधिगच्छति ॥ ९  
घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वङ्मनो बुद्धिरेव च ।  
न शब्दानधिगच्छन्ति श्रोत्रं तानधिगच्छति ॥ १०  
घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक्श्रोत्रं बुद्धिरेव च ।  
संशयान्नाधिगच्छन्ति मनस्तानधिगच्छति ॥ ११  
घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक्श्रोत्रं मन एव च ।  
न निष्ठामधिगच्छन्ति बुद्धिस्तामधिगच्छति ॥ १२  
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
इन्द्रियाणां च संवादं मनसश्चैव भामिनि ॥ १३

मन उवाच ।

न घ्राति मामृते घ्राणं रसं जिह्वा न बुध्यते ।  
रूपं चक्षुर्न गृह्णाति त्वक्स्पर्शं नावबुध्यते ॥ १४

न श्रोत्रं बुध्यते शब्दं मया हीनं कथंचन ।  
प्रवरं सर्वभूतानामहमस्मि सनातनम् ॥ १५  
अगाराणीव शून्यानि शान्तार्चिष इवाग्नयः ।  
इन्द्रियाणि न भासन्ते मया हीनानि नित्यशः ॥  
काष्ठानीवार्द्रशुष्काणि यतमानैरपीन्द्रियैः ।  
गुणार्थान्नाधिगच्छन्ति मामृते सर्वजन्तवः ॥ १७

इन्द्रियाण्युचुः ।

एवमेतद्भवेत्सत्यं यथैतन्मन्यते भवान् ।  
ऋतेऽस्मान्स्मदर्थस्तु भोगान्भुङ्क्ते भवान्यदि ॥ १८  
यद्यस्मासु प्रलीनेषु तर्पणं प्राणधारणम् ।  
भोगान्भुङ्क्ते रसान्भुङ्क्ते यथैतन्मन्यते तथा ॥ १९  
अथ वास्मासु लीनेषु तिष्ठत्सु विषयेषु च ।  
यदि संकल्पमात्रेण भुङ्क्ते भोगान्यथार्थवन् ॥ २०  
अथ चेन्मन्यसे सिद्धिमस्मदर्थेषु नित्यदा ।  
घ्राणेन रूपमादत्स्व रसमादत्स्व चक्षुषा ॥ २१  
श्रोत्रेण गन्धमादत्स्व निष्ठामादत्स्व जिह्वया ।  
त्वचा च शब्दमादत्स्व बुद्ध्या स्पर्शमथापि च ॥  
बलवन्तो ह्यनियमा नियमा दुर्वलीयसाम् ।  
भोगानपूर्वानादत्स्व नोच्छिष्टं भोक्तुमर्हसि ॥ २३  
यथा हि शिष्यः शास्त्रारं श्रुत्यर्थमभिधावति ।  
ततः श्रुतमुपादाय श्रुतार्थमुपतिष्ठति ॥ २४  
विषयानेवमस्माभिर्दर्शितानभिमन्यसे ।  
अनागतानतीतांश्च स्वप्ने जागरणे तथा ॥ २५  
वैमनस्यं गतानां च जन्तूनामल्पचेतसाम् ।  
अस्मदर्थे कृते कार्ये दृश्यते प्राणधारणम् ॥ २६  
बहूनपि हि संकल्पान्मत्वा स्वप्नानुपास्य च ।  
बुभुक्षया पीड्यमानो विषयानेव धावसि ॥ २७

अगारमद्वारमिव प्रविश्य

संकल्पभोगो विषयानविन्दन् ।

प्राणक्षये शान्तिमुपैति नित्यं



दारुक्षयेऽग्निर्ज्वलितो यथैव ॥ २८  
 कामं तु नः स्वेषु गुणेषु सङ्गः  
 कामं च नान्योन्यगुणोपलब्धिः ।  
 अस्मानृते नास्ति तवोपलब्धि-  
 स्वामप्यृतेऽस्मान्न भजेत हर्षः ॥ २९  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि  
 द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥  
 २३

ब्राह्मण उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 सुभगे पञ्चहोतृणां विधानमिह यादृशम् ॥ १  
 प्राणापानावुदानश्च समानो व्यान एव च ।  
 पञ्चहोतृनथैतान्वै परं भावं विदुर्बुधाः ॥ २  
 ब्राह्मण्युवाच ।  
 स्वभावात्सप्त होतार इति ते पूर्विका मतिः ।  
 यथा वै पञ्च होतारः परो भावस्तथोच्यताम् ॥ ३

ब्राह्मण उवाच ।

प्राणेन संभृतो वायुरपानो जायते ततः ।  
 अपाने संभृतो वायुस्ततो व्यानः प्रवर्तते ॥ ४  
 व्यानेन संभृतो वायुस्ततोदानः प्रवर्तते ।  
 उदाने संभृतो वायुः समानः संप्रवर्तते ॥ ५  
 वेऽपृच्छन्त पुरा गत्वा पूर्वजातं प्रजापतिम् ।  
 यो नो ज्येष्ठस्तमाचक्ष्व स नः श्रेष्ठो भविष्यति ॥

ब्रह्मोवाच ।

यस्मिन्प्रलीने प्रलयं व्रजन्ति  
 सर्वे प्राणाः प्राणभृतां शरीरे ।  
 यस्मिन्प्रचीर्णे च पुनश्चरन्ति  
 स वै श्रेष्ठो गच्छत यत्र कामः ॥ ७

प्राण उवाच ।

मयि प्रलीने प्रलयं व्रजन्ति

सर्वे प्राणाः प्राणभृतां शरीरे ।  
 मयि प्रचीर्णे च पुनश्चरन्ति  
 श्रेष्ठो ह्यहं पश्यत मां प्रलीनम् ॥ ८  
 ब्राह्मण उवाच ।  
 प्राणः प्रलीयत ततः पुनश्च प्रचचार ह ।  
 समानश्चाप्युदानश्च वचोऽब्रूतां ततः शुभे ॥ ९  
 न त्वं सर्वमिदं व्याप्य तिष्ठसीह यथा वयम् ।  
 न त्वं श्रेष्ठोऽसि नः प्राण अपानो हि वशे तव ।  
 प्रचचार पुनः प्राणस्तमपानोऽभ्यभाषत ॥ १०  
 मयि प्रलीने प्रलयं व्रजन्ति  
 सर्वे प्राणाः प्राणभृतां शरीरे ।  
 मयि प्रचीर्णे च पुनश्चरन्ति  
 श्रेष्ठो ह्यहं पश्यत मां प्रलीनम् ॥ ११  
 व्यानश्च तमुदानश्च भाषमाणमथोचतुः ।  
 अपान न त्वं श्रेष्ठोऽसि प्राणो हि वशगस्तव ॥ १२  
 अपानः प्रचचाराथ व्यानस्तं पुनरब्रवीत् ।  
 श्रेष्ठोऽहमस्मि सर्वेषां श्रूयतां येन हेतुना ॥ १३  
 मयि प्रलीने प्रलयं व्रजन्ति  
 सर्वे प्राणाः प्राणभृतां शरीरे ।  
 मयि प्रचीर्णे च पुनश्चरन्ति  
 श्रेष्ठो ह्यहं पश्यत मां प्रलीनम् ॥ १४  
 प्रालीयत ततो व्यानः पुनश्च प्रचचार ह ।  
 प्राणापानावुदानश्च समानश्च तमब्रुवन् ।  
 न त्वं श्रेष्ठोऽसि नो व्यान समानो हि वशे तव ॥ १५  
 प्रचचार पुनर्व्यानः समानः पुनरब्रवीत् ।  
 श्रेष्ठोऽहमस्मि सर्वेषां श्रूयतां येन हेतुना ॥ १६  
 मयि प्रलीने प्रलयं व्रजन्ति  
 सर्वे प्राणाः प्राणभृतां शरीरे ।  
 मयि प्रचीर्णे च पुनश्चरन्ति  
 श्रेष्ठो ह्यहं पश्यत मां प्रलीनम् ॥ १७

ततः समानः प्रालिल्ये पुनश्च प्रचचार ह ।  
 प्राणापानावुदानश्च व्यानश्चैव तमश्रुवन् ।  
 समान न त्वं श्रेष्ठोऽसि व्यान एव वशे तव ॥ १८  
 समानः प्रचचाराथ उदानस्तमुवाच ह ।  
 श्रेष्ठोऽहमस्मि सर्वेषां श्रूयतां येन हेतुना ॥ १९

मयि प्रलीने प्रलय व्रजन्ति

सर्वे प्राणाः प्राणभृतां शरीरे ।

मयि प्रचीर्णे च पुनश्चरन्ति

श्रेष्ठो ह्यहं पश्यत मां प्रलीनम् ॥ २०

ततः प्रालीयतोदानः पुनश्च प्रचचार ह ।  
 प्राणापानौ समानश्च व्यानश्चैव तमश्रुवन् ।  
 उदान न त्वं श्रेष्ठोऽसि व्यान एव वशे तव ॥ २१  
 ततस्तानब्रवीद्ब्रह्मा समवेतान्प्रजापतिः ।  
 सर्वे श्रेष्ठा न वा श्रेष्ठाः सर्वे चान्योन्यधर्मिणः ।  
 सर्वे स्वविषये श्रेष्ठाः सर्वे चान्योन्यरक्षिणः ॥ २२  
 एकः स्थिरश्चास्थिरश्च विशेषात्पञ्च वायवः ।  
 एक एव ममैवात्मा बहुधाप्युपचीयते ॥ २३  
 परस्परस्य सुहृदो भावयन्तः परस्परम् ।  
 स्वस्ति व्रजत भद्रं वो धारयध्वं परस्परम् ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

२४

ब्राह्मण उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 नारदस्य च संवादमृषेर्देवमतस्य च ॥ १  
 देवमत उवाच ।  
 जन्तोः संजायमानस्य किं नु पूर्वं प्रवर्तते ।  
 प्राणोऽपानः समानो वा व्यानो वोदान एव च ॥

नारद उवाच ।

येनायं सृज्यते जन्तुस्ततोऽन्यः पूर्वमेति तम् ।

प्राणद्वंद्वं च विज्ञेयं तिर्यगं चोर्ध्वगं च यत् ॥ ३  
 देवमत उवाच ।

केनायं सृज्यते जन्तुः कश्चान्यः पूर्वमेति तम् ।  
 प्राणद्वंद्वं च मे ब्रूहि तिर्यगूर्ध्वं च निश्चयात् ॥ ४  
 नारद उवाच ।

संकल्पाज्जायते हर्षः शब्दादपि च जायते ।

रसात्संजायते चापि रूपादपि च जायते ॥ ५

स्पर्शात्संजायते चापि गन्धादपि च जायते ।

एतद्रूपमुदानस्य हर्षो मिथुनसंभवः ॥ ६

कामात्संजायते शुकं कामात्संजायते रसः ।

समानव्यानजनिते सामान्ये शुक्रशोणिते ॥ ७

शुक्राच्छोणितसंसृष्टात्पूर्वं प्राणः प्रवर्तते ।

प्राणेन विकृते शुके ततोऽपानः प्रवर्तते ॥ ८

प्राणापानाविदं द्वंद्वमवाकचोर्ध्वं च गच्छतः ।

व्यानः समानश्चैवोभौ तिर्यग्द्वंद्वत्वमुच्यते ॥ ९

अग्निर्वै देवताः सर्वा इति वेदस्य शासनम् ।

संजायते ब्राह्मणेषु ज्ञानं बुद्धिसमन्वितम् ॥ १०

तस्य धूमस्तमोरूप रजो भस्म सुरेतसः ।

सत्त्वं सजायते तस्य यत्र प्रक्षिप्यते हविः ॥ ११

आधारौ समानो व्यानश्च इति यज्ञविदो विदुः ।

प्राणापानावाज्यभागौ तयोर्मध्ये हुताशनः ।

एतद्रूपमुदानस्य परमं ब्राह्मणा विदुः ॥ १२

निर्द्वंद्वमिति यत्त्वेतत्तन्मे निगदतः शृणु ॥ १३

अहोरात्रमिदं द्वंद्वं तयोर्मध्ये हुताशनः ।

एतद्रूपमुदानस्य परमं ब्राह्मणा विदुः ॥ १४

उभे चैवायने द्वंद्वं तयोर्मध्ये हुताशनः ।

एतद्रूपमुदानस्य परमं ब्राह्मणा विदुः ॥ १५

उभे सत्यानृते द्वंद्वं तयोर्मध्ये हुताशनः ।

एतद्रूपमुदानस्य परमं ब्राह्मणा विदुः ॥ १६

उभे शुभाशुभे द्वंद्वं तयोर्मध्ये हुताशनः ।

एतद्रूपमुदानस्य परमं ब्राह्मणा विदुः ॥ १७  
 सञ्चासचैव तद्द्वन्द्वं तयोर्मध्ये हुताशनः ।  
 एतद्रूपमुदानस्य परमं ब्राह्मणा विदुः ॥ १८  
 प्रथमं समानो व्यानो व्यस्यते कर्म तेन तत् ।  
 तृतीयं तु समानेन पुनरेव व्यवस्यते ॥ १९  
 शान्त्यर्थं वामदेवं च शान्तिर्ब्रह्म सनातनम् ।  
 एतद्रूपमुदानस्य परमं ब्राह्मणा विदुः ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

२५

ब्राह्मण उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीमसितिहास पुरातनम् ।  
 चातुर्होत्रविधानस्य विधानमिह यादृशम् ॥ १  
 तस्य सर्वस्य विधिवद्विधानमुपदेक्ष्यते ।  
 शृणु मे गदतो भद्रे रहस्यमिदमुत्तमम् ॥ २  
 करणं कर्म कर्ता च मोक्ष इत्येव भासिनि ।  
 चत्वार एते होतारो यैरिदं जगदावृतम् ॥ ३  
 होतृणां साधनं चैव शृणु सर्वमशेषतः ।  
 घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक्च श्रोत्रं च पञ्चमम् ।  
 मनो बुद्धिश्च सप्तैते विज्ञेया गुणहेतवः ॥ ४  
 गन्धो रसश्च रूपं च शब्दः स्पर्शश्च पञ्चमः ।  
 मन्तव्यमथ बोद्धव्यं सप्तैते कर्महेतवः ॥ ५  
 घ्राता भक्षयिता द्रष्टा स्पर्ष्टा श्रोता च पञ्चमः ।  
 मन्ता बोद्धा च सप्तैते विज्ञेयाः कर्तृहेतवः ॥ ६  
 स्वगुणं भक्षयन्त्येते गुणवन्तः शुभाशुभम् ।  
 अहं च निर्गुणोऽत्रेति सप्तैते मोक्षहेतवः ॥ ७  
 विदुषां बुध्यमानानां स्वं स्वं स्थानं यथाविधि ।  
 गुणास्ते देवताभूताः सततं भुञ्जते हविः ॥ ८  
 अदन्त्यविद्वानन्नानि ममत्वेनोपपद्यते ।  
 आत्मार्थं पाचयन्नित्यं ममत्वेनोपहन्यते ॥ ९

अभक्ष्यभक्षणं चैव मद्यपानं च हन्ति तम् ।  
 स चान्नं हन्ति तच्चान्नं स हत्वा हन्यते बुधः ॥ १०  
 अन्ता ह्यन्नमिदं विद्वान्पुनर्जनयतीश्वरः ।  
 स चान्नाज्जायते तस्मिन्सूक्ष्मो नाम व्यतिक्रमः ॥  
 मनसा गम्यते यच्च यच्च वाचा निरुद्यते ।  
 श्रोत्रेण श्रूयते यच्च चक्षुषा यच्च दृश्यते ॥ १२  
 स्पर्शेन स्पृश्यते यच्च घ्राणेन घ्रायते च यत् ।  
 मनःषष्ठानि संयम्य हवींष्येतानि सर्वशः ॥ १३  
 गुणवत्पावको मह्यं दीप्यते हव्यवाहनः ।  
 योगयज्ञः प्रवृत्तो मे ज्ञानब्रह्ममनोद्भवः ।  
 प्राणस्तोत्रोऽपानशस्त्रः सर्वत्यागसुदक्षिणः ॥ १४  
 कर्मानुमन्ता ब्रह्मा मे कर्ताध्वर्युः कृतस्तुतिः ।  
 कृतप्रशास्ता तच्छास्त्रगपवर्गोऽस्य दक्षिणा ॥ १५  
 ऋचश्चाप्यत्र शंसन्ति नारायणविदो जनाः ।  
 नारायणाय देवाय यदबध्नन्पशून्पुरा ॥ १६  
 तत्र सामानि गायन्ति तानि चाहुर्निदर्शनम् ।  
 देवं नारायणं भीरु सर्वात्मानं निबोध मे ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

२६

ब्राह्मण उवाच ।

एकः शास्ता न द्वितीयोऽस्ति शास्ता  
 यथा नियुक्तोऽस्मि तथा चरासि ।  
 हृद्येष तिष्ठन्पुरुषः शास्ति शास्ता  
 तेनैव युक्तः प्रवणादिवोदकम् ॥ १  
 एको गुरुर्नास्ति ततो द्वितीयो  
 यो हृच्छयस्तमहमनुब्रवीमि ।  
 तेनानुशिष्टा गुरुणा सदैव  
 पराभूता दानवाः सर्व एव ॥ २  
 एको बन्धुर्नास्ति ततो द्वितीयो

यो हृच्छयस्तमहमनुब्रवीमि ।  
 तेनानुशिष्टा बान्धवा बन्धुमन्तः  
 सप्तर्षयः सप्त दिवि प्रभान्ति ॥ ३  
 एकः श्रोता नास्ति ततो द्वितीयो  
 यो हृच्छयस्तमहमनुब्रवीमि ।  
 तस्मिन्गुरौ गुरुवासं निरूप्य  
 शक्रो गतः सर्वलोकामरत्वम् ॥ ४  
 एको द्वेष्टा नास्ति ततो द्वितीयो  
 यो हृच्छयस्तमहमनुब्रवीमि ।  
 तेनानुशिष्टा गुरुणा सदैव  
 लोकद्विष्टाः पन्नगाः सर्व एव ॥ ५

अत्राप्युदाहरतीमितिहासं पुरातनम् ।  
 प्रजापतौ पन्नगानां देवर्षीणां च संविदम् ॥ ६  
 देवर्षयश्च नागाश्च असुराश्च प्रजापतिम् ।  
 पर्यपृच्छन्नुपासीनाः श्रेयो नः प्रोच्यतामिति ॥ ७  
 तेषां प्रोवाच भगवान्श्रेयः समनुपृच्छताम् ।  
 ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ते श्रुत्वा प्राद्रवन्दिशः ॥ ८  
 तेषां प्राद्रवमाणानामुपदेशार्थमात्मनः ।  
 सर्पाणां दशने भावः प्रवृत्तः पूर्वमेव तु ॥ ९  
 असुराणां प्रवृत्तस्तु दम्भभावः स्वभावजः ।  
 दानं देवा व्यवसिता दम्भमेव महर्षयः ॥ १०  
 एकं शास्त्रारमासाद्य शब्देनैकेन संस्कृताः ।  
 नाना व्यवसिताः सर्वे सर्पदेवर्षिदानवाः ॥ ११  
 शृणोत्ययं प्रोच्यमानं गृह्णाति च तथातथम् ।  
 पृच्छतस्तावतो भूयो गुरुरन्योऽनुमन्यते ॥ १२  
 तस्य चानुमते कर्म ततः पश्चात्प्रवर्तते ।  
 गुरुर्बोद्धा च शत्रुश्च द्वेष्टा च हृदि संश्रितः ॥ १३  
 पापेन विचरल्लोके पापचारी भवत्ययम् ।  
 शुभेन विचरल्लोके शुभचारी भवत्युत ॥ १४  
 कामचारी तु कामेन य इन्द्रियसुखे रतः ।

व्रतचारी सदैवैष य इन्द्रियजये रतः ॥ १५  
 अपेतव्रतकर्मा तु केवल ब्रह्मणि श्रितः ।  
 ब्रह्मभूतश्चरल्लोके ब्रह्मचारी भवत्ययम् ॥ १६  
 ब्रह्मैव समिधस्तस्य ब्रह्माग्निर्ब्रह्मसंस्तरः ।  
 आपो ब्रह्म गुरुर्ब्रह्म स ब्रह्मणि समाहितः ॥ १७  
 एतदेतादृशं सूक्ष्मं ब्रह्मचर्यं विदुर्बुधाः ।  
 विदित्वा चान्वपद्यन्त क्षेत्रज्ञेनानुदर्शिनः ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

२७

ब्राह्मण उवाच ।

संकल्पदंशमशकं शोकहर्षहिमातपम् ।  
 मोहान्धकारतिमिरं लोभन्यालसरीसृपम् ॥ १  
 विषयैकात्म्याध्वानं कामक्रोधविरोधकम् ।  
 तदतीत्य महादुर्गं प्रविष्टोऽस्मि महद्वनम् ॥ २

ब्राह्मण्युवाच ।

क तद्वनं महाप्राज्ञ के वृक्षाः सरितश्च काः ।  
 गिरयः पर्वताश्चैव कियत्यध्वनि तद्वनम् ॥ ३

ब्राह्मण उवाच ।

न तदस्ति पृथग्भावे किञ्चिदन्यत्ततः समम् ।  
 न तदस्त्यपृथग्भावे किञ्चिद्दूरतरं ततः ॥ ४  
 तस्माद्भूस्वतरं नास्ति न ततोऽस्ति बृहत्तरम् ।  
 नास्ति तस्माद्दुःखतरं नास्त्यन्यत्तत्समं सुखम् ॥ ५  
 न तत्प्रविश्य शोचन्ति न प्रहृष्यन्ति च द्विजाः ।  
 न च विभ्यति केषांचित्तेभ्यो विभ्यति के च न ॥ ६

तस्मिन्वने सप्त महाद्रुमाश्च

फलानि सप्तातिथयश्च सप्त ।

सप्ताश्रमाः सप्त समाधयश्च

दीक्षाश्च सप्तैतदरण्यरूपम् ॥ ७

पञ्चवर्णानि दिव्यानि पुष्पाणि च फलानि च ।  
 सृजन्तः पादपास्तत्र व्याप्य तिष्ठन्ति तद्वनम् ॥ ८  
 सुवर्णानि द्विवर्णानि पुष्पाणि च फलानि च ।  
 सृजन्तः पादपास्तत्र व्याप्य तिष्ठन्ति तद्वनम् ॥ ९  
 चतुर्वर्णानि दिव्यानि पुष्पाणि च फलानि च ।  
 सृजन्तः पादपास्तत्र व्याप्य तिष्ठन्ति तद्वनम् ॥ १०  
 शंकराणि त्रिवर्णानि पुष्पाणि च फलानि च ।  
 सृजन्तः पादपास्तत्र व्याप्य तिष्ठन्ति तद्वनम् ॥ ११  
 सुरभीण्येकवर्णानि पुष्पाणि च फलानि च ।  
 सृजन्तः पादपास्तत्र व्याप्य तिष्ठन्ति तद्वनम् ॥ १२  
 बहून्यव्यक्तवर्णानि पुष्पाणि च फलानि च ।  
 विसृजन्तौ महावृक्षौ तद्वनं व्याप्य तिष्ठतः ॥ १३

एको ह्यग्निः सुमना ब्राह्मणोऽत्र

पञ्चेन्द्रियाणि समिधश्चात्र सन्ति ।

तेभ्यो मोक्षाः सप्त भवन्ति दीक्षा

गुणाः फलान्यतिथयः फलाशाः ॥ १४

आतिथ्यं प्रतिगृह्णन्ति तत्र सप्त महर्षयः ।

अर्चितेषु प्रलीनेषु तेष्वन्यद्रोचते वनम् ॥ १५

प्रतिज्ञावृक्षमफलं शान्तिच्छायासमन्वितम् ।

ज्ञानाश्रयं तृप्तितोयमन्तःक्षेत्रज्ञभास्करम् ॥ १६

येऽधिगच्छन्ति तत्सन्तस्तेषां नास्ति भयं पुनः ।

ऊर्ध्वं चावाक्च तिर्यक्च तस्य नान्तोऽधिगम्यते ॥

सप्त स्त्रियस्तत्र वसन्ति सद्यो

अवाङ्मुखा भानुमत्यो जनित्र्यः ।

ऊर्ध्वं रसानां ददते प्रजाभ्यः

सर्वान्यथा सर्वमनित्यतां च ॥ १८

तत्रैव प्रतितिष्ठन्ति पुनस्तत्रोदयन्ति च ।

सप्त सप्तर्षयः सिद्धा वसिष्ठप्रमुखाः सह ॥ १९

यशो वर्चो भगश्चैव विजयः सिद्धितेजसी ।

एवमेवानुवर्तन्ते सप्त ज्योतींषि भास्करम् ॥ २०

गिरयः पर्वताश्चैव सन्ति तत्र समासतः ।

नद्यश्च सरितो वारि वहन्त्यो ब्रह्मसंभवम् ॥ २१

नदीनां संगमस्तत्र वैतानः समुपह्वरे ।

स्वात्मवृत्ता यतो यान्ति साक्षाद्भान्ताः पितामहम् ॥

कृशाशाः सुव्रताशाश्च तपसा दग्धकिल्बिषाः ।

आत्मन्यात्मानमावेश्य ब्रह्माण समुपासते ॥ २३

ऋचमप्यत्र शसन्ति विद्यारण्यविदो जनाः ।

तदरण्यमभिप्रेत्य यथाधीरमजायत ॥ २४

एतदेतादृशं दिव्यमरण्यं ब्राह्मणा विदुः ।

विदित्वा चान्वतिष्ठन्त क्षेत्रज्ञेनानुदर्शितम् ॥ २५

इति श्रीमहाभारते भाष्यमेधिकपर्वणि

सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

२८

ब्राह्मण उवाच ।

गन्धान्न जिघ्रामि रसान्न वेद्मि

रूपं न पश्यामि न च स्पृशामि ।

न चापि शब्दान्विविधाः शृणोमि

न चापि संकल्पमुपैमि किञ्चित् ॥ १

अर्थानिष्ठान्कामयते स्वभावः

सर्वान्द्वेष्ट्यान्प्रद्विषते स्वभावः ।

कामद्वेषानुद्भवतः स्वभावा-

त्प्राणापानौ जन्तुदेहान्निवेश्य ॥ २

तेभ्यश्चान्यांस्तेष्वनित्यांश्च भावा-

न्भूतात्मानं लक्षयेयं शरीरे ।

तस्मिंस्तिष्ठन्नास्मि शक्यः कथञ्चि-

त्कामक्रोधाभ्यां जरया मृत्युना च ॥ ३

अकामयानस्य च सर्वकामा-

नविद्विषाणस्य च सर्वदोषान् ।

न मे स्वभावेषु भवन्ति लेपा-

स्तोयस्य बिन्दोरिव पुष्करेषु ॥ ४

नित्यस्य चैतस्य भवन्ति नित्या

निरीक्षमाणस्य बहून्स्वभावान् ।

न सज्जते कर्मसु भोगजालं

दिवीव सूर्यस्य मयूखजालम् ॥ ५

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

अध्वर्युतिसंवादं तं निबोध यशस्विनि ॥ ६

प्रोक्ष्यमाणं पशुं दृष्ट्वा यज्ञकर्मण्यथाब्रवीत् ।

यतिरध्वर्युमासीनो हिंसेयमिति कुत्सयन् ॥ ७

तमध्वर्युः प्रत्युवाच नायं छागो विनश्यति ।

श्रेयसा योक्ष्यते जन्तुर्यदि श्रुतिरियं तथा ॥ ८

यो ह्यस्य पार्थिवो भागः पृथिवी स गमिष्यति ।

यदस्य वारिजं किञ्चिदपस्तप्रतिपद्यते ॥ ९

सूर्यं चक्षुर्दिशः श्रोत्रे प्राणोऽस्य दिवमेव च ।

आगमे वर्तमानस्य न मे दोषोऽस्ति कश्चन ॥ १०

यतिरुवाच ।

प्राणैर्वियोगे छागस्य यदि श्रेयः प्रपश्यसि ।

छागार्थं वर्तते यज्ञो भवतः किं प्रयोजनम् ॥ ११

अनु त्वा मन्यतां माता पिता भ्राता सखापि च ।

मन्त्रयस्त्वेनमुन्नीय परवन्तं विशेषतः ॥ १२

य एवमनुमन्येरंस्तान्भवान्प्रष्टुमर्हति ।

तेषामनुमतं श्रुत्वा शक्या कर्तुं विचारणा ॥ १३

प्राणा अप्यस्य छागस्य प्रापितास्ते स्वयोनिषु ।

शरीरं केवलं शिष्टं निश्चेष्टमिति मे मतिः ॥ १४

इन्धनस्य तु तुल्येन शरीरेण विचेतसा ।

हिंसा निर्वेष्टुकामानामिन्धनं पशुसंज्ञितम् ॥ १५

अहिंसा सर्वधर्माणामिति वृद्धानुशासनम् ।

यदहिंस्र भवेत्कर्म तत्कार्यमिति विद्महे ॥ १६

अहिंसेति प्रतिज्ञेयं यदि वक्ष्याम्यतः परम् ।

शक्यं बहुविधं वक्तुं भवतः कार्यदूषणम् ॥ १७

अहिंसा सर्वभूतानां नित्यमस्मासु रोचते ।

प्रत्यक्षतः साधयामो न परोक्षमुपास्महे ॥ १८

अध्वर्युरुवाच ।

भूमेर्गन्धगुणान्भुङ्क्ते पितृत्यापोमयान्रसान् ।

ज्योतिषां पश्यसे रूपं स्पृशस्यनिलजान्गुणान् ॥ १९

शृणोष्याकाशजं शब्दं मनसा मन्यसे मतिम् ।

सर्वाण्येतानि भूतानि प्राणा इति च मन्यसे ॥ २०

प्राणादाने च नित्योऽसि हिंसायां वर्तते भवान् ।

नास्ति चेष्टा विना हिंसां किं वा त्वं मन्यसे द्विज ॥

यतिरुवाच ।

अक्षरं च क्षरं चैव द्वैधीभावोऽयमात्मनः ।

अक्षरं तत्र सद्भावः स्वभावः क्षर उच्यते ॥ २२

प्राणो जिह्वा मनः सत्त्वं स्वभावो रजसा सह ।

भावैरेतैर्विमुक्तस्य निर्वृद्धस्य निराशिषः ॥ २३

समस्य सर्वभूतेषु निर्ममस्य जितात्मनः ।

समन्तात्परिमुक्तस्य न भयं विद्यते कश्चित् ॥ २४

अध्वर्युरुवाच ।

सद्भिरेवेह संवासः कार्यो मतिमतां वर ।

भवतो हि मतं श्रुत्वा प्रतिभानि मतिर्मम ॥ २५

भगवन्भगवद्बुद्ध्या प्रतिबुद्धो ब्रवीम्यहम् ।

मतं मन्तु कर्तुं कर्तुं नापराधोऽस्ति मे द्विज ॥ २६

ब्राह्मण उवाच ।

उपपत्त्या यतिस्तूष्णीं वर्तमानस्ततः परम् ।

अध्वर्युरपि निर्मोहः प्रचचार महामखे ॥ २७

एवमेतादृशं मोक्षं सुसूक्ष्मं ब्राह्मणा विदुः ।

विदित्वा चानुतिष्ठन्ति क्षेत्रज्ञेनानुदर्शिना ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

२९

ब्राह्मण उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 कार्त्तवीर्यस्य संवादं समुद्रस्य च भामिनि ॥ १  
 कार्त्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान् ।  
 येन सागरपर्यन्ता धनुषा निर्जिता मही ॥ २  
 स कदाचित्समुद्रान्ते विचरन्बलदर्पितः ।  
 अवाकिरच्छरशतैः समुद्रमिति न श्रुतम् ॥ ३  
 तं समुद्रो नमस्कृत्य कृताञ्जलिरुवाच ह ।  
 मा मुञ्च वीर नाराचान्ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ ४  
 मदाश्रयाणि भूतानि त्वद्विसृष्टैर्महेषुभिः ।  
 वध्यन्ते राजशार्दूल तेभ्यो देह्यभयं विभो ॥ ५

अर्जुन उवाच ।

मत्समो यदि संग्रामे शरासनधरः कश्चित् ।  
 विद्यते तं ममाचक्ष्व यः समासीत मां मृगे ॥ ६

समुद्र उवाच ।

महर्षिर्जमदग्निस्ते यदि राजन्परिश्रुतः ।  
 तस्य पुत्रस्तवातिथ्यं यथावत्कर्तुमर्हति ॥ ७  
 ततः स राजा प्रययौ क्रोधेन महता वृतः ।  
 स तमाश्रममागम्य राममेवान्वपद्यत ॥ ८  
 स रामप्रतिकूलानि चकार सह बन्धुभिः ।  
 आयासं जनयामास रामस्य च महात्मनः ॥ ९  
 ततस्तेजः प्रज्ज्वाल रामस्यामिततेजसः ।  
 प्रदहद्रिपुसैन्यानि तदा कमललोचने ॥ १०  
 ततः परशुमादाय स तं बाहुसहस्रिणम् ।  
 चिच्छेद सहसा रामो बाहुशाखमिव द्रुमम् ॥ ११  
 तं हतं पतितं दृष्ट्वा समेताः सर्वबान्धवाः ।  
 असीनादाय शक्तीश्च भार्गवं पर्यवारयन् ॥ १२  
 रामोऽपि धनुरादाय रथमारुह्य सत्वरः ।

विसृजञ्जशरवर्षाणि व्यधमत्पार्थिवं बलम् ॥ १३  
 ततस्तु क्षत्रियाः केचिज्जमदग्निं निहत्य च ।  
 विविशुर्गिरिदुर्गाणि मृगाः सिंहार्दिता इव ॥ १४  
 तेषां खविहितं कर्म तद्भयान्नानुतिष्ठताम् ।  
 प्रजा वृषलतां प्राप्ता ब्राह्मणानामदर्शनात् ॥ १५  
 त एते द्रमिडाः काशाः पुण्ड्राश्च शबरैः सह ।  
 वृषलत्वं परिगता व्युत्थानात्क्षत्रधर्मतः ॥ १६  
 ततस्तु हतवीरासु क्षत्रियासु पुनः पुनः ।  
 द्विजैरुत्पादितं क्षत्रं जामदग्न्यो न्यकृन्तत ॥ १७  
 एकविंशतिमेधान्ते रामं वागशरीरिणी ।  
 दिव्या प्रोवाच मधुरा सर्वलोकपरिश्रुता ॥ १८  
 राम राम निवर्तस्व कं गुणं तात पश्यसि ।  
 क्षत्रबन्धूनिमान्प्राणैर्विप्रयोज्य पुनः पुनः ॥ १९  
 तथैव तं महात्मानमृचीकप्रमुखास्तदा ।  
 पितामहा महाभाग निवर्तस्वेत्यथाशुवन् ॥ २०  
 पितुर्वधममृष्यंस्तु रामः प्रोवाच तानृषीन् ।  
 नार्हन्तीह भवन्तो मां निवारयितुमित्युत ॥ २१

पितर ऊचुः ।

नार्हसे क्षत्रबन्धूंस्त्वं निहन्तुं जयतां वर ।  
 न हि युक्तं त्वया हन्तुं ब्राह्मणेन सता नृपान् ॥ २२  
 इति श्रीमहाभारते आश्रमेधिकपर्वणि  
 एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

३०

पितर ऊचुः ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 श्रुत्वा च तत्तथा कार्यं भवता द्विजसत्तम ॥ १  
 अलर्को नाम राजर्षिर्भवत्सुमहातपाः ।  
 धर्मज्ञः सत्यसंधश्च महात्मा सुमहाव्रतः ॥ २  
 स सागरान्तां धनुषा विनिर्जित्य महीमिमाम् ।  
 कृत्वा सुदुष्करं कर्म मनः सूक्ष्मे समादधे ॥ ३

स्थितस्य वृक्षमूलेऽथ तस्य चिन्ता बभूव ह ।  
उत्सृज्य सुमहद्राज्यं सूक्ष्मं प्रति महामते ॥ ४

अलर्क उवाच ।

मनसो मे बलं जातं मनो जित्वा ध्रुवो जयः ।  
अन्यत्र बाणानस्यामि शत्रुभिः परिवारितः ॥ ५  
यदिदं चापलान्मूर्तेः सर्वमेतच्चिकीर्षति ।  
मनः प्रति सुतीक्ष्णाग्रानह मोक्षयामि सायकान् ॥

मन उवाच ।

नेमे बाणास्तरिष्यन्ति मामलर्कं कथंचन ।  
तवैव मर्म भेत्स्यन्ति भिन्नमर्मा मरिष्यसि ॥ ७  
अन्यान्बाणान्समीक्षस्व यैस्त्वं मां सूदयिष्यसि ।  
तच्छ्रुत्वा स विचिन्त्याथ ततो वचनमब्रवीत् ॥ ८

अलर्क उवाच ।

आघ्राय सुबहून्गन्धांस्तानेव प्रतिगृध्यति ।  
तस्माद्घ्राणं प्रति शरान्प्रतिमोक्षयाम्यहं शितान् ॥ ९

घ्राण उवाच ।

नेमे बाणास्तरिष्यन्ति मामलर्कं कथंचन ।  
तवैव मर्म भेत्स्यन्ति भिन्नमर्मा मरिष्यसि ॥ १०  
अन्यान्बाणान्समीक्षस्व यैस्त्वं मां सूदयिष्यसि ।  
तच्छ्रुत्वा स विचिन्त्याथ ततो वचनमब्रवीत् ॥ ११

अलर्क उवाच ।

इयं स्वादूरसान्भुक्त्वा तानेव प्रतिगृध्यति ।  
तस्माज्जिह्वां प्रति शरान्प्रतिमोक्षयाम्यहं शितान् ॥

जिह्वा उवाच ।

नेमे बाणास्तरिष्यन्ति मामलर्कं कथंचन ।  
तवैव मर्म भेत्स्यन्ति भिन्नमर्मा मरिष्यसि ॥ १३  
अन्यान्बाणान्समीक्षस्व यैस्त्वं मां सूदयिष्यसि ।  
तच्छ्रुत्वा स विचिन्त्याथ ततो वचनमब्रवीत् ॥ १४

म, भा ३४९

अलर्क उवाच ।

स्पृष्ट्वा त्वग्विविधान्पश्यास्तानेव प्रतिगृध्यति ।  
तस्मात्त्वच पाटयिष्ये विविधैः कङ्कपत्रिभिः ॥ १५

त्वगुवाच ।

नेमे बाणास्तरिष्यन्ति मामलर्कं कथंचन ।  
तवैव मर्म भेत्स्यन्ति भिन्नमर्मा मरिष्यसि ॥ १६  
अन्यान्बाणान्समीक्षस्व यैस्त्वं मां सूदयिष्यसि ।  
तच्छ्रुत्वा स विचिन्त्याथ ततो वचनमब्रवीत् ॥ १७

अलर्क उवाच ।

श्रुत्वा वै विविधाञ्छब्दांस्तानेव प्रतिगृध्यति ।  
तस्माच्छ्रोत्रं प्रति शरान्प्रतिमोक्षयाम्यहं शितान् ॥ १८

श्रोत्र उवाच ।

नेमे बाणास्तरिष्यन्ति मामलर्कं कथंचन ।  
तवैव मर्म भेत्स्यन्ति ततो हास्यसि जीवितम् ॥ १९  
अन्यान्बाणान्समीक्षस्व यैस्त्व मां सूदयिष्यसि ।  
तच्छ्रुत्वा स विचिन्त्याथ ततो वचनमब्रवीत् ॥ २०

अलर्क उवाच ।

हृष्ट्वा वै विविधान्भावांस्तानेव प्रतिगृध्यति ।  
तस्माच्चक्षुः प्रति शरान्प्रतिमोक्षयाम्यहं शितान् ॥

चक्षुरुवाच ।

नेमे बाणास्तरिष्यन्ति मामलर्कं कथंचन ।  
तवैव मर्म भेत्स्यन्ति भिन्नमर्मा मरिष्यसि ॥ २२  
अन्यान्बाणान्समीक्षस्व यैस्त्वं मां सूदयिष्यसि ।  
तच्छ्रुत्वा स विचिन्त्याथ ततो वचनमब्रवीत् ॥ २३

अलर्क उवाच ।

इयं निष्ठा बहुविधा प्रज्ञया त्वध्यवस्यति ।  
तस्माद्बुद्धिं प्रति शरान्प्रतिमोक्षयाम्यहं शितान् ॥ २४

बुद्धिरुवाच ।

नेमे बाणास्तरिष्यन्ति मामलर्कं कथंचन ।



तवैव मर्म भेत्स्यन्ति भिन्नमर्मा मरिष्यसि ॥ २५

पितर ऊचुः ।

ततोऽलर्कस्तपो घोरमास्थायाथ सुदुष्करम् ।  
नाध्यगच्छत्परं शक्त्या बाणमेतेषु सप्तसु ।  
सुसमाहितचेतास्तु ततोऽचिन्तयत प्रभुः ॥ २६  
स विचिन्त्य चिरं कालमलर्को द्विजसत्तम ।  
नाध्यगच्छत्परं श्रेयो योगान्मतिमतां वरः ॥ २७  
स एकाग्रं मनः कृत्वा निश्चलो योगमास्थितः ।  
इन्द्रियाणि जघानाशु बाणेनैकेन वीर्यवान् ।  
योगेनात्मानमाविश्य संसिद्धिं परमां ययौ ॥ २८  
विस्मितश्चापि राजर्षिरिमां गाथां जगाद् ह ।  
अहो कष्टं यदस्माभिः पूर्वं राज्यमनुष्ठितम् ।  
इति पश्चान्मया ज्ञातं योगान्नास्ति परं सुखम् ॥  
इति त्वमपि जानीहि राम मा क्षत्रियाञ्जहि ।  
तपो घोरमुपातिष्ठ ततः श्रेयोऽभिपत्स्यसे ॥ ३०

ब्राह्मण उवाच ।

इत्युक्तः स तपो घोरं जामदग्न्यः पितामहैः ।  
आस्थितः सुमहाभागो ययौ सिद्धिं च दुर्गमाम् ॥

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

३१

ब्राह्मण उवाच ।

त्रयो वै रिपवो लोके नव वै गुणतः स्मृताः ।  
हर्षः स्तम्भोऽभिमानश्च त्रयस्ते सात्त्विका गुणाः ॥  
शोकः क्रोधोऽतिसंरम्भो राजसास्ते गुणाः स्मृताः ।  
स्वप्नस्तन्त्री च मोहश्च त्रयस्ते तामसा गुणाः ॥ २  
एतान्निष्कृत्य धृतिमान्बाणसंधैरतन्द्रितः ।  
जेतुं परानुत्सहते प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः ॥ ३  
अत्र गाथाः कीर्तयन्ति पुराकल्पविदो जनाः ।

अम्बरीषेण या गीता राज्ञा राज्यं प्रशासता ॥ ४  
समुदीर्णेषु दोषेण बध्यमानेषु साधुषु ।

जग्राह तरसा राज्यमम्बरीष इति श्रुतिः ॥ ५

स निगृह्य महादोषान्साधून्समभिपूज्य च ।

जगाम महती सिद्धिं गाथां चेमां जगाद् ह ॥ ६

भूयिष्ठं मे जिता दोषा निहताः सर्वशत्रवः ।

एको दोषोऽवशिष्टस्तु बध्यः स न हतो मया ॥ ७

येन युक्तो जन्तुरयं वैतृष्य नाधिगच्छति ।

तृणार्तं इव निम्नानि धावमानो न बुध्यते ॥ ८

अकार्यमपि येनेह प्रयुक्तः सेवते नरः ।

तं लोभमसिभिस्तीक्ष्णैर्निकृन्तन्तं निकृन्तत ॥ ९

लोभाद्धि जायते तृष्णा ततश्चिन्ता प्रसृज्यते ।

स लिप्समानो लभते भूयिष्ठं राजसान्गुणान् ॥ १०

स तैर्गुणैः संहतदेहबन्धनः

पुनः पुनर्जायति कर्म चेहते ।

जन्मक्षये भिन्नविकीर्णदेहः

पुनर्मृत्युं गच्छति जन्मनि स्वे ॥ ११

तस्मादेन सम्यगवेक्ष्य लोभं

निगृह्य धृत्यात्मनि राज्यमिच्छेत् ।

एतद्राज्यं नान्यदस्तीति विद्या-

द्यस्त्वत्र राजा विजितो ममैकः ॥ १२

इति राज्ञाम्बरीषेण गाथा गीता यशस्विना ।

आधिराज्यं पुरस्कृत्य लोभमेकं निकृन्तता ॥ १३

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

३२

ब्राह्मण उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

ब्राह्मणस्य च सवादं जनकस्य च भामिनि ॥ १

ब्राह्मणं जनको राजा सन्नं कस्मिंश्चिदागमे ।

विषये मे न वस्तुमिति शिष्यार्थमब्रवीत् ॥ २  
 इत्युक्तः प्रत्युवाचाथ ब्राह्मणो राजसत्तमम् ।  
 आचक्ष्व विषयं राजन्यावांस्तव वशे स्थितः ॥ ३  
 सोऽन्यस्य विषये राज्ञो वस्तुमिच्छाम्यहं विभो ।  
 वचस्ते कर्तुमिच्छामि यथाशास्त्रं महीपते ॥ ४  
 इत्युक्तः स तदा राजा ब्राह्मणेन यशस्विना ।  
 मुहुरूपं च निःश्वस्य न स तं प्रत्यभाषत ॥ ५  
 तमासीनं ध्यायमानं राजानममितौजसम् ।  
 कश्मलं सहसागच्छद्भानुमन्तमिव ग्रहः ॥ ६  
 समाश्रास्य ततो राजा व्यपेते कश्मले तदा ।  
 ततो मुहूर्तादिव त ब्राह्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ ७  
 पितृपैतामहे राज्ये वश्ये जनपदे सति ।  
 विषयं नाधिगच्छामि विचिन्वन्पृथिवीमिमाम् ॥ ८  
 नाध्यगच्छं यदा पृथ्व्यां मिथिला मार्गिता मया ।  
 नाध्यगच्छं यदा तस्यां स्वप्रजा मार्गिता मया ॥ ९  
 नाध्यगच्छं यदा तासु तदा मे कश्मलोऽभवत् ।  
 ततो मे कश्मलस्यान्ते मतिः पुनरुपस्थिता ॥ १०  
 तथा न विषयं मन्ये सर्वो वा विषयो मम ।  
 आत्मापि चायं न मम सर्वा वा पृथिवी मम ।  
 उष्यतां यावदुत्साहो भुज्यतां यावदिष्यते ॥ ११  
 पितृपैतामहे राज्ये वश्ये जनपदे सति ।  
 ब्रूहि कां बुद्धिमास्थाय ममत्वं वर्जितं त्वया ॥ १२  
 कां वा बुद्धिं विनिश्चित्य सर्वो वै विषयस्तव ।  
 नावैषि विषयं येन सर्वो वा विषयस्तव ॥ १३

### जनक उवाच ।

अन्तवन्त इहारम्भा विदिताः सर्वकर्मसु ।  
 नाध्यगच्छमहं यस्मान्ममेदमिति यद्वेत् ॥ १४  
 कस्येदमिति कस्य स्वमिति वेदवचस्तथा ।  
 नाध्यगच्छमहं बुद्ध्या ममेदमिति यद्वेत् ॥ १५  
 एतां बुद्धिं विनिश्चित्य ममत्वं वर्जितं मया ।

शृणु बुद्धिं तु यां ज्ञात्वा सर्वत्र विषयो मम ॥ १६  
 नाहमात्मार्थमिच्छामि गन्धान्घ्राणगतानपि ।  
 तस्मान्मे निर्जिता भूमिर्वशे तिष्ठति नित्यदा ॥ १७  
 नाहमात्मार्थमिच्छामि रसानास्येऽपि वर्ततः ।  
 आपो मे निर्जितास्तस्माद्वशे तिष्ठन्ति नित्यदा ॥  
 नाहमात्मार्थमिच्छामि रूपं ज्योतिश्च चक्षुषा ।  
 तस्मान्मे निर्जितं ज्योतिर्वशे तिष्ठति नित्यदा ॥ १९  
 नाहमात्मार्थमिच्छामि स्पर्शास्त्वचि गनाश्च ये ।  
 तस्मान्मे निर्जितो वायुर्वशे तिष्ठति नित्यदा ॥ २०  
 नाहमात्मार्थमिच्छामि शब्दाञ्छ्रोत्रगतानपि ।  
 तस्मान्मे निर्जिताः शब्दा वशे तिष्ठन्ति नित्यदा ॥  
 नाहमात्मार्थमिच्छामि मनो नित्यं मनोन्तरे ।  
 मनो मे निर्जितं तस्माद्वशे तिष्ठति नित्यदा ॥ २२  
 देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च भूतेभ्योऽतिथिभिः सह ।  
 इत्यर्थं सर्व एवमे समारम्भा भवन्ति वै ॥ २३  
 ततः प्रहस्य जनकं ब्राह्मणः पुनरब्रवीत् ।  
 त्वज्जिज्ञासार्थमवेह विद्धि मां धर्ममागतम् ॥ २४  
 त्वमस्य ब्रह्मनाभस्य बुद्ध्या रस्यानिवर्तिनः ।  
 सत्त्वनेमिनिरुद्धस्य चक्रस्यैकः प्रवर्तकः ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

३३

### ब्राह्मण उवाच ।

नाहं तथा भीरु चरामि लोके  
 तथा त्वं मां तर्कयसे स्वबुद्ध्या ।  
 विप्रोऽस्मि मुक्तोऽस्मि वनेचरोऽस्मि  
 गृहस्थधर्मा ब्रह्मचारी तथास्मि ॥ १  
 नाहमस्मि यथा मां त्वं पश्यसे चक्षुषा शुभे ।  
 मया व्याप्तमिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगतीगतम् ॥ २  
 ये केचिज्जन्तवो लोके जङ्गमाः स्थावराश्च ह ।

तेषां मामन्तकं विद्धि दारुणामिव पावकम् ॥ ३  
 राज्यं पृथिव्यां सर्वस्यामथ वापि त्रिविष्टपे ।  
 तथा बुद्धिरियं वेत्ति बुद्धिरेव धनं मम ॥ ४  
 एकः पन्था ब्राह्मणानां येन गच्छन्ति तद्विदः ।  
 गृहेषु वनवासेषु गुरुवासेषु भिक्षुषु ।  
 लिङ्गैर्बहुभिरव्यग्रैरेका बुद्धिरुपास्यते ॥ ५  
 नानालिङ्गाश्रमस्थानां येषां बुद्धिः शमात्मिका ।  
 ते भावमेकमायान्ति सरितः सागरं यथा ॥ ६  
 बुद्ध्यायं गम्यते मार्गः शरीरेण न गम्यते ।  
 आद्यन्तवन्ति कर्माणि शरीरं कर्मबन्धनम् ॥ ७  
 तस्मात्ते सुभगे नास्ति परलोककृतं भयम् ।  
 मद्भावभावनिरता ममैवात्मानमेष्यसि ॥ ८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३

३४

ब्राह्मण्युवाच ।

नेदमल्पात्मना शक्यं वेदितुं नाकृतात्मना ।  
 बहु चाल्पं च संक्षिप्तं विष्टुतं च मतं मम ॥ १  
 उपायं तु मम ब्रूहि येनैषा लभ्यते मतिः ।  
 तन्मन्ये कारणतमं यत एषा प्रवर्तते ॥ २

ब्राह्मण उवाच ।

अरणीं ब्राह्मणीं विद्धि गुरुरस्योत्तरारणिः ।  
 तपःश्रुतेऽभिमग्रीतो ज्ञानाग्निर्जायते ततः ॥ ३

ब्राह्मण्युवाच ।

यदिदं ब्रह्मणो लिङ्गं क्षेत्रज्ञमिति संज्ञितम् ।  
 ग्रहीतुं येन तच्छक्यं लक्षणं तस्य तत्कं नु ॥ ४

ब्राह्मण उवाच ।

अलिङ्गो निर्गुणश्चैव कारणं नास्य विद्यते ।  
 उपायमेव वक्ष्यामि येन गृह्येत वा न वा ॥ ५

सम्यगप्युपदिष्टश्च भ्रमरैरिव लक्ष्यते ।  
 कर्मबुद्धिरबुद्धित्वाज्ज्ञानलिङ्गैरिवाश्रितम् ॥ ६  
 इदं कार्यमिदं नेति न मोक्षेषूपदिश्यते ।  
 पश्यतः शृण्वतो बुद्धिरात्मनो येषु जायते ॥ ७  
 यावन्त इह शक्येरंस्तावतोऽशान्प्रकल्पयेत् ।  
 व्यक्तानव्यक्तरूपांश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८  
 सर्वान्नानात्वयुक्तांश्च सर्वान्प्रत्यक्षहेतुकान् ।  
 यतः परं न विद्येत ततोऽभ्यासे भविष्यति ॥ ९

वासुदेव उवाच ।

ततस्तु तस्या ब्राह्मण्या मतिः क्षेत्रज्ञसंक्षये ।  
 क्षेत्रज्ञादेव परतः क्षेत्रज्ञोऽन्यः प्रवर्तते ॥ १०

अर्जुन उवाच ।

कं नु सा ब्राह्मणी कृष्ण कं चासौ ब्राह्मणर्षभः ।  
 याभ्यां सिद्धिरियं प्राप्ता तावुभौ वद मेऽच्युत ॥

वासुदेव उवाच ।

मनो मे ब्राह्मणं विद्धि बुद्धिं मे विद्धि ब्राह्मणीम् ।  
 क्षेत्रज्ञ इति यश्चोक्तः सोऽहमेव धनंजय ॥ १२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

३५

अर्जुन उवाच ।

ब्रह्म यत्परमं वेद्यं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।  
 भवतो हि प्रसादेन सूक्ष्मे मे रमते मतिः ॥ १

वासुदेव उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 संवादं मोक्षसंयुक्तं शिष्यस्य गुरुणा सह ॥ २  
 कश्चिद्ब्राह्मणमासीनमाचार्यं संशितव्रतम् ।  
 शिष्यः पप्रच्छ मेधावी किंस्विच्छ्रेयः परंतप ॥ ३  
 भगवन्तं प्रपन्नोऽहं निःश्रेयसपरायणः ।

याचे त्वां शिरसा विप्र यद्व्यां तद्विचक्ष्व मे ॥ ४  
तमेवंवादिनं पार्थ शिष्यं गुरुस्वाच ह ।  
कथयस्व प्रवक्ष्यामि यत्र ते संशयो द्विज ॥ ५  
इत्युक्तः स कुरुश्रेष्ठ गुरुणा गुरुवत्सलः ।  
प्राञ्जलिः परिप्रच्छ यत्तच्छृणु महामते ॥ ६  
शिष्य उवाच ।

कुतश्चाहं कुतश्च त्वं तत्सत्यं ब्रूहि यत्परम् ।  
कुतो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ७  
केन जीवन्ति भूतानि तेषामायुः किमात्मकम् ।  
किं सत्यं किं तपो विप्र के गुणाः सद्विरीरिताः ।  
के पन्थानः शिवाः सन्ति किं सुखं किं च दुष्कृतम् ॥  
एतान्मे भगवन्प्रश्नान्याथातथ्येन सत्तम ।  
वक्तुमर्हसि विप्रर्षे यथावदिह तत्त्वतः ॥ ९

वासुदेव उवाच ।

तस्मै संप्रतिपन्नाय यथावत्परिपृच्छते ।  
शिष्याय गुणयुक्ताय शान्ताय गुरुवर्तिने ।  
छायाभूताय दान्ताय यतये ब्रह्मचारिणे ॥ १०  
तान्प्रश्नानब्रवीत्पार्थ मेधावी स धृतव्रतः ।  
गुरुः कुरुकुलश्रेष्ठ सम्यक्सर्वानरिन्दम ॥ ११  
ब्रह्मप्रोक्तमिदं धर्ममृषिप्रवरसेवितम् ।  
वेदविद्यासमावाप्यं तत्त्वभूतार्थभावनम् ॥ १२  
भूतभव्यभविष्यादिधर्मकामार्थनिश्चयम् ।  
सिद्धसंघपरिज्ञातं पुराकल्प सनातनम् ॥ १३  
प्रवक्ष्येऽहं महाप्राज्ञ पदमुत्तममद्य ते ।  
बुद्ध्वा यदिह संसिद्धा भवन्तीह मनीषिणः ॥ १४  
उपगम्यर्षयः पूर्वं जिज्ञासन्तः परस्परम् ।  
बृहस्पतिभरद्वाजौ गौतमो भार्गवस्तथा ॥ १५  
वसिष्ठः काश्यपश्चैव विश्वामित्रोऽत्रिरेव च ।  
मार्गान्सर्वान्परिक्रम्य परिश्रान्ताः स्वकर्मभिः ॥ १६  
ऋषिमाङ्गिरसं वृद्धं पुरस्कृत्य तु ते द्विजाः ।

ददृशुर्ब्रह्मभवने ब्रह्माणं वीतकल्मषम् ॥ १७  
तं प्रणम्य महात्मानं सुखासीन महर्षयः ।  
पप्रच्छुर्विनयोपेता निःश्रेयसमिदं परम् ॥ १८  
कथं कर्म क्रियात्साधु कथं मुच्येत किल्बिषात् ।  
के नो मार्गाः शिवाश्च स्युः किं सत्यं किं च दुष्कृतम् ॥  
केनोभौ कर्मपन्थानौ महत्त्वं केन विन्दति ।  
प्रलयं चापवर्गं च भूतानां प्रभवाप्ययौ ॥ २०  
इत्युक्तः स मुनिश्रेष्ठैर्यदाह प्रपितामहः ।  
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि शृणु शिष्य यथागमम् ॥ २१  
ब्रह्मोवाच ।

सत्याद्भूतानि जातानि स्थावराणि चराणि च ।  
तपसा तानि जीवन्ति इति तद्विस्त मुव्रताः ॥ २२  
स्वां योनिं पुनरागम्य वर्तन्ते स्वेन कर्मणा ।  
सत्यं हि गुणसंयुक्तं नियतं पञ्चलक्षणम् ॥ २३  
ब्रह्म सत्यं तपः सत्यं सत्यं चैव प्रजापतिः ।  
सत्याद्भूतानि जातानि भूतं सत्यमयं महत् ॥ २४  
तस्मात्सत्याश्रया विप्रा नित्यं योगपरायणाः ।  
अतीतक्रोधसंतापा नियता धर्मसेतवः ॥ २५  
अन्योन्यनियतान्वैद्यान्धर्मसेतुप्रवर्तकान् ।  
तानहं संप्रवक्ष्यामि शाश्वतान्लोकभावनान् ॥ २६  
चातुर्विद्यं तथा वर्णाश्रितुराश्रमान्पृथक् ।  
धर्ममेकं चतुष्पादं नित्यमाहुर्मनीषिणः ॥ २७  
पन्थानं वः प्रवक्ष्यामि शिवं क्षेमकरं द्विजाः ।  
नियतं ब्रह्मभावाय यातं पूर्वं मनीषिभिः ॥ २८  
गदतस्तं ममाद्येह पन्थानं दुर्विदं परम् ।  
निबोधत महाभागा निखिलेन परं पदम् ॥ २९  
ब्रह्मचारिकमेवाहुराश्रमं प्रथमं पदम् ।  
गार्हस्थ्यं तु द्वितीयं स्याद्दानप्रथमतः परम् ।  
ततः परं तु विज्ञेयमध्यात्मं परमं पदम् ॥ ३०  
ज्योतिराकाशमादित्यो वायुरिन्द्रः प्रजापतिः ।

नोपैति यावदध्यात्मं तावदेतान्न पश्यति ।  
 तस्योपायं प्रवक्ष्यामि पुरस्तात्तं निबोधत ॥ ३१  
 फलमूलानिलभुजां मुनीनां वसतां वने ।  
 वानप्रस्थं द्विजातीनां त्रयाणामुपदिश्यते ॥ ३२  
 सर्वेषामेव वर्णानां गार्हस्थ्यं तद्विधीयते ।  
 श्रद्धालक्षणमित्येवं धर्मं धीराः प्रचक्षते ॥ ३३  
 इत्येते देवयाना वः पन्थानः परिकीर्तिताः ।  
 सद्भिरध्यासिता धीरेः कर्मभिर्धर्मसेतवः ॥ ३४  
 एतेषां पृथग्ध्यास्ते यो धर्मं संशितव्रतः ।  
 कालात्पश्यति भूतानां सदैव प्रभवाप्ययौ ॥ ३५  
 अतस्तत्त्वानि वक्ष्यामि याथातथ्येन हेतुना ।  
 विषयस्थानि सर्वाणि वर्तमानानि भागशः ॥ ३६  
 महानात्मा तथाव्यक्तमहंकारस्तथैव च ।  
 इन्द्रियाणि दशैकं च महाभूतानि पञ्च च ॥ ३७  
 विशेषाः पञ्चभूतानामित्येषा वैदिकी श्रुतिः ।  
 चतुर्विंशतिरेषा वस्तत्त्वानां संप्रकीर्तिता ॥ ३८  
 तत्त्वानामथ यो वेद सर्वेषां प्रभवाप्ययौ ।  
 स धीरः सर्वभूतेषु न मोहमधिगच्छति ॥ ३९  
 तत्त्वानि यो वेदयते यथातथं  
 गुणांश्च सर्वानखिलाश्च देवताः ।  
 विधूतपाप्मा प्रविमुच्य बन्धनं  
 स सर्वलोकानमलान्समश्नुते ॥ ४०  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

३६

ब्रह्मोवाच ।

तदव्यक्तमनुद्विक्तं सर्वव्यापि भ्रुवं स्थिरम् ।  
 नवद्वारं पुरं विद्यात्रिगुणं पञ्चधातुकम् ॥ १  
 एकादशपरिक्षेपं मनो व्याकरणात्मकम् ।  
 बुद्धिस्वामिकमित्येतत्परमेकादशं भवेत् ॥ २

त्रीणि स्रोतांसि यान्यस्मिन्नाप्यायन्ते पुनः पुनः ।  
 प्रणाङ्ग्यस्तिष्ठ एवैताः प्रवर्तन्ते गुणात्मिकाः ॥ ३  
 तमो रजस्तथा सत्त्वं गुणानेतान्प्रचक्षते ।  
 अन्योन्यमिथुनाः सर्वे तथान्योन्यानुजीविनः ॥ ४  
 अन्योन्यापाश्रयाश्चैव तथान्योन्यानुवर्तिनः ।  
 अन्योन्यव्यतिषक्ताश्च त्रिगुणाः पञ्च धातवः ॥ ५  
 तमसो मिथुनं सत्त्वं सत्त्वस्य मिथुन रजः ।  
 रजसश्चापि सत्त्व स्यात्सत्त्वस्य मिथुन तमः ॥ ६  
 नियम्यते तमो यत्र रजस्तत्र प्रवर्तते ।  
 नियम्यते रजो यत्र सत्त्वं तत्र प्रवर्तते ॥ ७  
 नैशात्मकं तमो विद्यात्रिगुणं मोहसंज्ञितम् ।  
 अधर्मलक्षणं चैव नियतं पापकर्मसु ॥ ८  
 प्रवृत्त्यात्मकमेवाहू रजः पर्यायकारकम् ।  
 प्रवृत्तं सर्वभूतेषु दृश्यतोत्पत्तिलक्षणम् ॥ ९  
 प्रकाशं सर्वभूतेषु लाघवं श्रद्धानता ।  
 सात्त्विकं रूपमेवं तु लाघवं साधुसंमितम् ॥ १०  
 एतेषां गुणतत्त्वं हि वक्ष्यते हेत्वहेतुभिः ।  
 समासव्यासयुक्तानि तत्त्वतस्तानि वित्त मे ॥ ११  
 संमोहोऽज्ञानमत्यागः कर्मणामविनिर्णयः ।  
 स्वप्नः स्तम्भो भयं लोभः शोकः सुकृतदूषणम् ॥  
 अस्मृतिश्चाविपाकश्च नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ।  
 निर्विशेषत्वमन्धत्वं जघन्यगुणवृत्तिता ॥ १३  
 अकृते कृतमानित्वमज्ञाने ज्ञानमानिता ।  
 अमैत्री विकृतो भावो अश्रद्धा मूढभावना ॥ १४  
 अनार्जवमसंज्ञत्वं कर्म पापमचेतना ।  
 गुरुत्वं सन्नभावत्वमसितत्वमवागतिः ॥ १५  
 सर्व एते गुणा विप्रास्तामसाः संप्रकीर्तिताः ।  
 ये चान्ये नियता भावा लोकेऽस्मिन्मोहसंज्ञिताः ॥  
 तत्र तत्र नियम्यन्ते सर्वे ते तामसा गुणाः ।  
 परिवादकथा नित्यं देवब्राह्मणवैदिकाः ॥ १७

अत्यागश्चाभिमानश्च मोहो मन्युस्तथाक्षमा ।  
 मत्सरश्चैव भूतेषु तामसं वृत्तमिष्यते ॥ १८  
 वृथारम्भाश्च ये केचिद्वृथादानानि यानि च ।  
 वृथाभक्षणमित्येतत्तामसं वृत्तमिष्यते ॥ १९  
 अतिवादोऽतितिक्षा च मात्सर्यमतिमानिता ।  
 अश्रद्धानता चैव तामसं वृत्तमिष्यते ॥ २०  
 एवंविधास्तु ये केचिद्भोकेऽस्मिन्पापकर्मिणः ।  
 मनुष्या भिन्नमर्यादाः सर्वे ते तामसा जनाः ॥ २१  
 तेषां योनिं प्रवक्ष्यामि नियतां पापकर्मणाम् ।  
 अवाङ्मिर्यभावाय तिर्यङ्मिर्यगामिनः ॥ २२  
 स्थावराणि च भूतानि पशवो वाहनानि च ।  
 क्रव्यादा दन्दशूकाश्च कृमिकीटविहंगमाः ॥ २३  
 अण्डजा जन्तवो ये च सर्वे चापि चतुष्पदाः ।  
 उन्मत्ता बधिरा मूका ये चान्ये पापयोगिनः ॥ २४  
 मग्नास्तमसि दुर्वृत्ताः स्वकर्मकृतलक्षणाः ।  
 अवाक्स्त्रोतस इत्येते मग्नास्तमसि तामसाः ॥ २५  
 तेषामुत्कर्षमुद्रेकं वक्ष्याम्यहमतः परम् ।  
 यथा ते सुकृताल्लोकाल्लभन्ते पुण्यकर्मिणः ॥ २६  
 अन्यथा प्रतिपन्नास्तु विवृद्धा ये च कर्मसु ।  
 स्वकर्मनिरतानां च ब्राह्मणानां शुभैषिणाम् ॥ २७  
 संस्कारेणोर्ध्वमायान्ति यतमानाः सलोकताम् ।  
 स्वर्गं गच्छन्ति देवानामित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥ २८  
 अन्यथा प्रतिपन्नास्तु विवृद्धाः स्वेषु कर्मसु ।  
 पुनरावृत्तिधर्माणस्ते भवन्तीह मानुषाः ॥ २९  
 पापयोनिं समापन्नाश्चण्डाला मूकचूचुकाः ।  
 वर्णान्पर्यायशश्चापि प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ॥ ३०  
 शूद्रयोनिमतिक्रम्य ये चान्ये तामसा गुणाः ।  
 स्रोतोमध्ये समागम्य वर्तन्ते तामसे गुणे ॥ ३१  
 अमिषङ्गस्तु कामेषु महामोह इति स्मृतः ।  
 ऋषयो मुनयो देवा मुह्यन्त्यत्र सुखेप्सवः ॥ ३२

तमो मोहो महामोहस्तामिस्रः क्रोधसंज्ञितः ।  
 मरणं त्वन्धतामिस्रं तामिस्रं क्रोध उच्यते ॥ ३३  
 भावतो गुणनश्चैव योनितश्चैव तत्त्वतः ।  
 सर्वमेतत्तमो विप्राः कीर्तितं वो यथाविधि ॥ ३४  
 को न्वेतद्ब्रूयते साधु को न्वेतत्साधु पश्यति ।  
 अतत्त्वे तत्त्वदर्शी यस्तमसस्तत्त्वलक्षणम् ॥ ३५  
 तमोगुणा वो बहुधा प्रकीर्तिता  
 यथावदुक्तं च तमः परावरम् ।  
 नरो हि यो वेद गुणानिमान्सदा  
 स तामसैः सर्वगुणैः प्रमुच्यते ॥ ३६  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

पट्विंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

३७

ब्रह्मोवाच ।

रजोऽहं वः प्रवक्ष्यामि याथातथ्येन सत्तमाः ।  
 निबोधत महाभागा गुणवृत्तं च सर्वशः ॥ १  
 संघातो रूपमायासः सुखदुःखे हिमातपौ ।  
 ऐश्वर्यं विग्रहः सधिर्हेतुवादोऽरतिः क्षमा ॥ २  
 बलं शौर्यं मदो रोपो व्यायामकलहावपि ।  
 ईर्ष्येप्सा पेशुन युद्धं ममत्वं परिपालनम् ॥ ३  
 वधबन्धपरिहृणः क्रन्दो विक्रय एव च ।  
 निकृन्त छिन्धि भिन्धीति परमर्मावकर्तनम् ॥ ४  
 उग्र दारुणमाक्रोशः परवित्तानुशासनम् ।  
 लोकचिन्ता विचिन्ता च मत्सरः परिभाषणम् ॥ ५  
 मृषावादो मृषादानं विकल्पः परिभाषणम् ।  
 निन्दा स्तुतिः प्रशंसा च प्रतापः परितर्पणम् ॥ ६  
 परिचर्या च शुश्रूषा सेवा नृष्णा व्यपाश्रयः ।  
 व्यूहोऽनयः प्रमादश्च परितापः परिग्रहः ॥ ७  
 संस्कारा ये च लोकेऽस्मिन्प्रवर्तन्ते पृथक्पृथक् ।  
 नृषु नारीषु भूतेषु द्रव्येषु शरणेषु च ॥ ८

संतापोऽप्रत्ययश्चैव व्रतानि नियमाश्च ये ।  
 प्रदानमाशीर्युक्तं च सततं मे भवत्विति ॥ ९  
 स्वधाकारो नमस्कारः स्वाहाकारो वषट्क्रिया ।  
 याजनाध्यापने चोभे तथैवाहुः परिग्रहम् ॥ १०  
 इदं मे स्यादिव मे स्यात्स्नेहो गुणसमुद्भवः ।  
 अभिद्रोहस्तथा माया निकृतिर्मान एव च ॥ ११  
 सैन्यं हिंसा परीवादः परितापः प्रजागरः ।  
 स्तम्भो दम्भोऽथ रागश्च भक्तिः प्रीतिः प्रमोदनम् ॥  
 द्यूतं च जनवादश्च संबन्धाः स्त्रीकृताश्च ये ।  
 नृत्तवादित्रगीतानि प्रसङ्गा ये च केचन ।  
 सर्व एते गुणा विप्रा राज्ञाः संप्रकीर्तिताः ॥ १३  
 भूतभव्यभविष्याणां भावानां भुवि भावनाः ।  
 त्रिवर्गनिरता नित्यं धर्मोऽर्थः काम इत्यपि ॥ १४  
 कामवृत्ताः प्रमोदन्ते सर्वकामसमृद्धिभिः ।  
 अर्वाक्स्रोतस इत्येते तैजसा रजसावृताः ॥ १५  
 अस्मिँल्लोके प्रमोदन्ते जायमानाः पुनः पुनः ।  
 प्रेत्यभाविकमीहन्त इह लौकिकमेव च ।  
 वदति प्रतिगृह्णन्ति जपन्त्यथ च जुह्वति ॥ १६  
 रजोगुणा वो बहुधानुकीर्तिता  
 यथावदुक्तं गुणवृत्तमेव च ।  
 नरो हि यो वेद गुणानिमान्सदा  
 स राजसैः सर्वगुणैर्विमुच्यते ॥ १७  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि  
 सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥  
 ३८  
 ब्रह्मोवाच ।  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि तृतीयं गुणमुत्तमम् ।  
 सर्वभूतहितं लोके सतां धर्ममनिन्दितम् ॥ १  
 आनन्दः प्रीतिरुद्रेकः प्राकाश्यं सुखमेव च ।

अकार्पण्यमसंरम्भः संतोषः श्रद्धानता ॥ २  
 क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम् ।  
 अक्रोधश्चानसूया च शौचं दाक्ष्यं पराक्रमः ॥ ३  
 मुधा ज्ञानं मुधा वृत्तं मुधा सेवा मुधा श्रमः ।  
 एवं यो युक्तधर्मः स्यात्सोऽमुत्रानन्त्यमश्नुते ॥ ४  
 निर्ममो निरहंकारो निराशीः सर्वतः समः ।  
 अकामहत इत्येष सतां धर्मः सनातनः ॥ ५  
 विश्रम्भो ह्रीस्तितिक्षा च त्यागः शौचमतन्द्रिता ।  
 आनृशंस्यमसंमोहो दया भूतेष्वपैशुनम् ॥ ६  
 हर्षस्तुष्टिर्विस्मयश्च विनयः साधुवृत्तता ।  
 शान्तिकर्म विशुद्धिश्च शुभा बुद्धिर्विमोचनम् ॥ ७  
 उपेक्षा ब्रह्मचर्यं च परित्यागश्च सर्वशः ।  
 निर्ममत्वमनाशीस्त्वमपरिकीतधर्मता ॥ ८  
 मुधा दानं मुधा यज्ञो मुधाधीतं मुधा व्रतम् ।  
 मुधा प्रतिग्रहश्चैव मुधा धर्मो मुधा तपः ॥ ९  
 एवंवृत्तास्तु ये केचिल्लोकेऽस्मिन्सत्त्वसंश्रयाः ।  
 ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्थास्ते धीराः साधुदर्शिनः ॥ १०  
 हित्वा सर्वाणि पापानि निःशोका ह्यजरामराः ।  
 दिवं प्राप्य तु ते धीराः कुर्वते वै ततस्ततः ॥ ११  
 ईशित्वं च वशित्वं च लघुत्वं मनसश्च ते ।  
 विकुर्वते महात्मानो देवास्त्रिदिवगा इव ॥ १२  
 ऊर्ध्वस्रोतस इत्येते देवा वैकारिकाः स्मृताः ।  
 विकुर्वते प्रकृत्या वै दिवं प्राप्तास्ततस्ततः ।  
 यद्यदिच्छन्ति तत्सर्वं भजन्ते विभजन्ति च ॥  
 इत्येतत्सात्त्विकं वृत्तं कथितं वो द्विजर्षभाः ।  
 एतद्विज्ञाय विधिवद्भजे यद्यदिच्छति ॥ १४  
 प्रकीर्तिताः सत्त्वगुणा विशेषतो  
 यथावदुक्तं गुणवृत्तमेव च ।  
 नरस्तु यो वेद गुणानिमान्सदा

गुणान्ध्र मुक्ते न गुणैः स भुज्यते ॥ ५१

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

३९

ब्रह्मोवाच ।

नैव शक्या गुणा वक्तुं पृथक्त्वेनेह सर्वशः ।  
अविच्छिन्नानि दृश्यन्ते रजः सत्त्वं तमस्तथा ॥ १  
अन्योन्यमनुषज्जन्ते अन्योन्यं चानुजीविनः ।  
अन्योन्यापाश्रयाः सर्वे तथान्योन्यानुवर्तिनः ॥ २  
यावत्सत्त्वं तमस्तावद्वर्तते नात्र संशयः ।  
यावत्तमश्च सत्त्वं च रजस्तावदिहोच्यते ॥ ३  
संहत्य कुर्वते यात्रां सहिताः संघचारिणः ।  
संघातवृत्तयो ह्येते वर्तन्ते हेत्वहेतुभिः ॥ ४  
उद्रेकव्यतिरेकाणां तेषामन्योन्यवर्तिनाम् ।  
वर्तते तद्यथान्यूनं व्यतिरिक्तं च सर्वशः ॥ ५  
व्यतिरिक्तं तमो यत्र तिर्यग्भावगतं भवेत् ।  
अल्पं तत्र रजो ज्ञेयं सत्त्वं चाल्पतरं ततः ॥ ६  
उद्विक्तं च रजो यत्र मध्यस्रोतोगतं भवेत् ।  
अल्पं तत्र तमो ज्ञेयं सत्त्वं चाल्पतरं ततः ॥ ७  
उद्विक्तं च यदा सत्त्वमूर्ध्वस्रोतोगतं भवेत् ।  
अल्पं तत्र रजो ज्ञेयं तमश्चाल्पतरं ततः ॥ ८  
सत्त्वं वैकारिकं योनिरिन्द्रियाणां प्रकाशिका ।  
न हि सत्त्वात्परो भावः कश्चिदन्यो विधीयते ॥ ९  
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।  
जघन्यगुणसंयुक्ता यान्त्यधस्तामसा जनाः ॥ १०  
तमः शूद्रे रजः क्षत्रे ब्राह्मणे सत्त्वमुत्तमम् ।  
इत्येवं त्रिषु वर्णेषु विवर्तन्ते गुणास्त्रयः ॥ ११  
दूरादपि हि दृश्यन्ते सहिताः संघचारिणः ।  
तमः सत्त्वं रजश्चैव पृथक्त्वं नानुशुभम् ॥ १२  
दृष्ट्वा चादित्यमुद्यन्तं कुचोराणां भयं भवेत् ।

अध्वगाः परितप्येरंस्तृष्णार्ता दुःखभागिनः ॥ १३  
आदित्यः सत्त्वमुद्दिष्टं कुचोरास्तु यथा तमः ।  
परितापोऽध्वगानां च राजसो गुण उच्यते ॥ १४  
प्राकाश्यं सत्त्वमादित्ये संतापो राजसो गुणः ।  
उपप्लवस्तु विज्ञेयस्तामसस्तस्य पर्वसु ॥ १५  
एवं ज्योतिःषु सर्वेषु विवर्तन्ते गुणास्त्रयः ।  
पर्यायेण च वर्तन्ते तत्र तत्र तथा तथा ॥ १६  
स्थावरेषु च भूतेषु तिर्यग्भावगतं तमः ।  
राजसास्तु विवर्तन्ते स्नेहभावस्तु सात्त्विकः ॥ १७  
अहस्त्रिधा तु विज्ञेयं त्रिधा रात्रिर्विधीयते ।  
मासार्धमासवर्षाणि ऋतवः संधयस्तथा ॥ १८  
त्रिधा दानानि दीयन्ते त्रिधा यज्ञः प्रवर्तते ।  
त्रिधा लोकास्त्रिधा वेदास्त्रिधा विद्यास्त्रिधा गतिः ॥  
भूतं भव्यं भविष्यच्च धर्मोऽर्थः काम इत्यपि ।  
प्राणापानावुदानश्चाप्येत एव त्रयो गुणाः ॥ २०  
यत्किञ्चिदिह वै लोके सर्वमेष्ट्वेव तस्मिन् ।  
त्रयो गुणाः प्रवर्तन्ते अव्यक्ता नित्यमेव तु ।  
सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणसर्गः सनातनः ॥ २१  
तमोऽव्यक्तं शिवं नित्यमजं योनिः सनातनः ।  
प्रकृतिर्विकारः प्रलयः प्रधानं प्रभवाप्ययौ ॥ २२  
अनुद्विक्तमनूनं च ह्यकम्पमचलं शुभम् ।  
सदसच्चैव तत्सर्वमव्यक्तं त्रिगुणं स्मृतम् ।  
ज्ञेयानि नामधेयानि नरैरध्यात्मचिन्तकैः ॥ २३  
अव्यक्तनामानि गुणांश्च तत्त्वतो  
यो वेद सर्वाणि गतींश्च केवलाः ।  
विमुक्तदेहः प्रविभागतत्त्ववि-  
त्स मुच्यते सर्वगुणैर्निरामयः ॥ २४  
इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि  
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥



४०

ब्रह्मोवाच ।

अव्यक्तात्पूर्वमुत्पन्नो महानात्मा महामतिः ।  
 आदिर्गुणानां सर्वेषां प्रथमः सर्ग उच्यते ॥ १  
 महानात्मा मतिर्विष्णुर्विश्वः शंभुश्च वीर्यवान् ।  
 बुद्धिः प्रज्ञोपलब्धिश्च तथा ख्यातिर्धृतिः स्मृतिः ॥  
 पर्यायवाचकैः शब्दैर्महानात्मा विभाव्यते ।  
 तं जानन्ब्राह्मणो विद्वान्न प्रमोहं निगच्छति ॥ ३  
 सर्वतःपाणिपादश्च सर्वतोक्षिशिरोमुखः ।  
 सर्वतःश्रुतिमाल्लोके सर्व व्याप्य स तिष्ठति ॥ ४  
 महाप्रभार्चिः पुरुषः सर्वस्य हृदि निश्चितः ।  
 अणिमा लघिमा प्राप्तिरीशानो ज्योतिरव्ययः ॥ ५  
 तत्र बुद्धिमतां लोकाः संन्यासनिरताश्च ये ।  
 ध्यानिनो नित्ययोगाश्च सत्यसंधा जितेन्द्रियाः ॥ ६  
 ज्ञानवन्तश्च ये केचिदलुब्धा जितमन्यवः ।  
 प्रसन्नमनसो धीरा निर्ममा निरहंकृताः ।  
 विमुक्ताः सर्व एवैते महत्त्वमुपयान्ति वै ॥ ७  
 आत्मनो महतो वेद यः पुण्यां गतिमुत्तमाम् ।  
 स धीरः सर्वलोकेषु न मोहमधिगच्छति ।  
 विष्णुरेवादिसर्गेषु स्वयंभूर्भवति प्रभुः ॥ ८

एवं हि यो वेद गुहाशय प्रभु

नरः पुराणं पुरुषं विश्वरूपम् ।

हिरण्यं बुद्धिमतां परां गतिं

स बुद्धिमान्बुद्धिमतीत्य तिष्ठति ॥ ९

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

४१

ब्रह्मोवाच ।

य उत्पन्नो महान्पूर्वमहंकारः स उच्यते ।  
 अहमित्येव संभूतो द्वितीयः सर्ग उच्यते ॥ १

अहंकारश्च भूतादिवैकारिक इति स्मृतः ।

तेजसश्चेतना धातुः प्रजासर्गः प्रजापतिः ॥ २

देवानां प्रभवो देवो मनसश्च त्रिलोककृत् ।

अहमित्येव तत्सर्वमभिमन्ता स उच्यते ॥ ३

अध्यात्मज्ञाननित्यानां मुनीनां भावितात्मनाम् ।

स्वाध्यायक्रतुसिद्धानामेष लोकः सनातनः ॥ ४

अहंकारेणाहरतो गुणानिमा-

न्भूतादिरेवं सृजते स भूतकृत् ।

वैकारिकः सर्वमिदं विचेष्टते

स्वतेजसा रञ्जयते जगत्तथा ॥ ५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

४२

ब्रह्मोवाच ।

अहंकारात्प्रसूतानि महाभूतानि पञ्च वै ।

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥ १

तेषु भूतानि मुह्यन्ते महाभूतेषु पञ्चसु ।

शब्दस्पर्शनरूपेषु रसगन्धक्रियासु च ॥ २

महाभूतविनाशान्ते प्रलये प्रत्युपस्थिते ।

सर्वप्राणभृतां धीरा महदुत्पद्यते भयम् ॥ ३

यद्यस्माज्जायते भूतं तत्र तत्प्रविलीयते ।

लीयन्ते प्रतिलोमानि जायन्ते चोत्तरोत्तरम् ॥ ४

ततः प्रलीने सर्वस्मिन्भूते स्थावरजङ्गमे ।

स्मृतिमन्तस्तदा धीरा न लीयन्ते कदाचन ॥ ५

शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धश्च पञ्चमः ।

क्रियाकारणयुक्ताः स्युरनित्या मोहसंज्ञिताः ॥ ६

लोभप्रजनसंयुक्ता निर्विशेषा ह्यकिंचनाः ।

मांसशोणितसंघाता अन्योन्यस्योपजीविनः ॥ ७

बहिरात्मान इत्येते दीनाः कृपणवृत्तयः ।

प्राणापानाबुदानश्च समानो व्यान एव च ॥ ८

अन्तरात्मेति चाप्येते नियताः पञ्च वायवः ।  
 वाङ्मनोबुद्धिरित्येभिः सार्धमष्टात्मकं जगत् ॥ ९  
 त्वग्घ्राणश्रोत्रचक्षुषि रसनं वाक्च संयता ।  
 विशुद्धं च मनो यस्य बुद्धिश्चाव्यभिचारिणी ॥ १०  
 अष्टौ यस्याग्रयो ह्येते न दहन्ते मनः सदा ।  
 स तद्ब्रह्म शुभं याति यस्माद्भूयो न विद्यते ॥ ११  
 एकादश च यान्याहुरिन्द्रियाणि विशेषतः ।  
 अहकारप्रसूतानि तानि वक्ष्याम्यहं द्विजाः ॥ १२  
 श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।  
 पादौ पायुरुपस्थं च हस्तौ वाग्दशमी भवेत् ॥ १३  
 इन्द्रियग्राम इत्येष मन एकादशं भवेत् ।  
 एतं ग्रामं जयेत्पूर्वं ततो ब्रह्म प्रकाशते ॥ १४  
 बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चाहुः पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च ।  
 श्रोत्रादीन्यपि पञ्चाहुर्बुद्धियुक्तानि तत्त्वतः ॥ १५  
 अविशेषाणि चान्यानि कर्मयुक्तानि तानि तु ।  
 उभयत्र मनो ज्ञेयं बुद्धिर्द्वादशमी भवेत् ॥ १६  
 इत्युक्तानीन्द्रियाणीमान्येकादश मया क्रमात् ।  
 मन्यन्ते कृतमित्येव विदित्वैतानि पण्डिताः ॥ १७  
 त्रीणि स्थानानि भूतानां चतुर्थं नोपपद्यते ।  
 स्थलमापस्तथाकाशं जन्म चापि चतुर्विधम् ॥ १८  
 अण्डजोद्भिज्जसंस्वेदजरायुजमथापि च ।  
 चतुर्धा जन्म इत्येतद्भूतग्रामस्य लक्ष्यते ॥ १९  
 अचराण्यपि भूतानि खेचराणि तथैव च ।  
 अण्डजानि विजानीयात्सर्वाश्चैव सरीसृपान् ॥ २०  
 संस्वेदाः कृमयः प्रोक्ता जन्तवश्च तथाविधाः ।  
 जन्म द्वितीयमित्येतज्जघन्यतरमुच्यते ॥ २१  
 भित्त्वा तु पृथिवीं यानि जायन्ते कालपर्ययात् ।  
 उद्भिज्जानीति तान्याहुर्भूतानि द्विजसत्तमाः ॥ २२  
 द्विपादबहुपादानि तिर्यग्गतिमतीनि च ।  
 जरायुजानि भूतानि वित्त तान्यपि सत्तमाः ॥ २३

द्विविधापीह विज्ञेया ब्रह्मयोनिः सनातना ।  
 तपः कर्म च यत्पुण्यमित्येष विदुषां नयः ॥ २४  
 द्विविधं कर्म विज्ञेयमिज्या दान च यन्मखे ।  
 जातस्याध्ययनं पुण्यमिति वृद्धानुशासनम् ॥ २५  
 एतद्यो वेद विधिवत्स मुक्तः स्याद्विजर्षभाः ।  
 विमुक्तः सर्वपापेभ्य इति चैव निबोधत ॥ २६  
 आकाशं प्रथमं भूतं श्रोत्रमध्यात्ममुच्यते ।  
 अधिभूतं तथा शब्दो दिशस्तत्राधिदैवतम् ॥ २७  
 द्वितीयं मारुतो भूतं त्वग्ध्यात्म च विश्रुतम् ।  
 स्प्रष्टव्यमधिभूतं च विद्युत्तत्राधिदैवतम् ॥ २८  
 तृतीयं ज्योतिरित्याहुर्ध्रुवध्यात्ममुच्यते ।  
 अधिभूतं ततो रूपं सूर्यस्तत्राधिदैवतम् ॥ २९  
 चतुर्थमापो विज्ञेयं जिह्वा चाध्यात्ममिष्यते ।  
 अधिभूतं रसश्चात्र सोमस्तत्राधिदैवतम् ॥ ३०  
 पृथिवी पञ्चमं भूतं घ्राणश्चाध्यात्ममिष्यते ।  
 अधिभूतं तथा गन्धो वायुस्तत्राधिदैवतम् ॥ ३१  
 एष पञ्चसु भूतेषु चतुष्टयविधिः स्मृतः ।  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि सर्वं त्रिविधमिन्द्रियम् ॥ ३२  
 पादावध्यात्ममित्याहुर्ब्राह्मणास्तत्त्वदर्शिनः ।  
 अधिभूतं तु गन्तव्यं विष्णुस्तत्राधिदैवतम् ॥ ३३  
 अवाग्गतिरपानश्च पायुरध्यात्ममिष्यते ।  
 अधिभूतं विसर्गश्च मित्रस्तत्राधिदैवतम् ॥ ३४  
 प्रजनः सर्वभूतानामुपस्थोऽध्यात्ममुच्यते ।  
 अधिभूतं तथा शुक्रं दैवतं च प्रजापतिः ॥ ३५  
 हस्तावध्यात्ममित्याहुरध्यात्मविदुषो जनाः ।  
 अधिभूतं तु कर्माणि शक्रस्तत्राधिदैवतम् ॥ ३६  
 वैश्वदेवी मनःपूर्वा वाग्ध्यात्ममिहोच्यते ।  
 वक्तव्यमधिभूतं च वह्निस्तत्राधिदैवतम् ॥ ३७  
 अध्यात्मं मन इत्याहुः पञ्चभूतानुचारकम् ।  
 अधिभूतं च मन्तव्यं चन्द्रमाश्चाधिदैवतम् ॥ ३८

अध्यात्मं बुद्धिरित्याहुः षडिन्द्रियविचारिणी ।  
 अधिभूतं तु विज्ञेयं ब्रह्मा तत्राधिदैवतम् ॥ ३९  
 यथावदध्यात्मविधिरेष वः कीर्तितो मया ।  
 ज्ञानमस्य हि धर्मज्ञाः प्राप्तं बुद्धिमतामिह ॥ ४०  
 इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्च च ।  
 सर्वाण्येतानि संधाय मनसा संप्रधारयेत् ॥ ४१  
 क्षीणे मनसि सर्वस्मिन्न जन्मसुखमिष्यते ।  
 ज्ञानसंपन्नसत्त्वानां तत्सुखं विदुषां मतम् ॥ ४२  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि सूक्ष्मभावकरीं शिवाम् ।  
 निवृत्तिं सर्वभूतेषु मृदुना दारुणेन वा ॥ ४३  
 गुणागुणमनासङ्गमेकचर्यमनन्तरम् ।  
 एतद्ब्राह्मणतो वृत्तमाहुरेकपदं सुखम् ॥ ४४  
 विद्वान्कूर्म इवाङ्गानि कामान्संहृत्य सर्वशः ।  
 विरजाः सर्वतो मुक्तो यो नरः स सुखी सदा ॥  
 कामानात्मनि संयम्य क्षीणतृष्णः समाहितः ।  
 सर्वभूतसुहृन्मैत्रो ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥ ४६  
 इन्द्रियाणां निरोधेन सर्वेषां विषयैषिणाम् ।  
 मुनेर्जनपदत्यागादध्यात्माग्निः समिध्यते ॥ ४७  
 यथाग्निरिन्धनैरिद्धो महाज्योतिः प्रकाशते ।  
 तथेन्द्रियनिरोधेन महानात्मा प्रकाशते ॥ ४८  
 यदा पश्यति भूतानि प्रसन्नात्मात्मनो हृदि ।  
 स्वयंयोनिस्तदा सूक्ष्मात्सूक्ष्ममाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ४९  
 अग्नी रूपं पयः स्रोतो वायुः स्पर्शनमेव च ।  
 मही पङ्कधरं घोरमाकाशं श्रवणं तथा ॥ ५०  
 रागशोकसमाविष्टं पञ्चस्रोतःसमावृतम् ।  
 पञ्चभूतसमायुक्तं नवद्वारं द्विदैवतम् ॥ ५१  
 रजस्वलमथादृश्यं त्रिगुणं च त्रिधातुकम् ।  
 संसर्गाभिरतं मूढं शरीरमिति धारणा ॥ ५२  
 दुश्चरं जीवलोकेऽस्मिन्सत्त्वं प्रति समाश्रितम् ।  
 एतदेव हि लोकेऽस्मिन्कालचक्रं प्रवर्तते ॥ ५३

एतन्महार्णवं घोरमगाधं मोहसंज्ञितम् ।  
 विसृजेत्संक्षिपेच्चैव बोधयेत्सामरं जगत् ॥ ५४  
 कामक्रोधौ भयं मोहमभिद्रोहमथानृतम् ।  
 इन्द्रियाणां निरोधेन स तास्त्यजति दुस्त्यजान् ॥  
 यस्यैते निर्जिता लोके त्रिगुणाः पञ्च धातवः ।  
 व्योम्नि तस्य परं स्थानमनन्तमथ लक्ष्यते ॥ ५६  
 कामकूलामपारान्तां मनःस्रोतोभयावहाम् ।  
 नदीं दुर्गहृदां तीर्णः कामक्रोधावुभौ जयेत् ॥ ५७  
 स सर्वदोषनिर्मुक्तस्ततः पश्यति यत्परम् ।  
 मनो मनसि संधाय पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥ ५८  
 सर्ववित्सर्वभूतेषु वीक्षत्यात्मानमात्मनि ।  
 एकधा बहुधा चैव विकुर्वाणस्ततस्ततः ॥ ५९  
 ध्रुवं पश्यति रूपाणि दीपादीपशतं यथा ।  
 स वै विष्णुश्च मित्रश्च वरुणोऽग्निः प्रजापतिः ॥  
 स हि धाता विधाता च स प्रभुः सर्वतोमुखः ।  
 हृदयं सर्वभूतानां महानात्मा प्रकाशते ॥ ६१

तं विप्रसंघाश्च सुरासुराश्च  
 यक्षाः पिशाचाः पितरो वयांसि ।

रक्षोगणा भूतगणाश्च सर्वे  
 महर्षयश्चैव सदा स्तुवन्ति ॥ ६२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

४३

ब्रह्मोवाच ।

मनुष्याणां तु राजन्यः क्षत्रियो मध्यमो गुणः ।  
 कुक्षरो वाहनानां च सिंहश्चारण्यवासिनाम् ॥ १  
 अविः पशूनां सर्वेषामासुश्च बिलवासिनाम् ।  
 गवां गोवृषभश्चैव स्त्रीणां पुरुष एव च ॥ २  
 न्यग्रोधो जम्बुवृक्षश्च पिप्पलः शालमलिस्तथा ।  
 शिशपा मेषशृङ्गश्च तथा कीचकवेणवः ।

एते द्रुमाणां राजानो लोकेऽस्मिन्नात्र संशयः ॥ ३  
 हिमवान्पारियात्रश्च सह्यो विन्ध्यस्त्रिकूटवान् ।  
 श्वेतो नीलश्च भासश्च काष्ठवांश्चैव पर्वतः ॥ ४  
 शुभस्कन्धो महेन्द्रश्च माल्यवान्पर्वतस्तथा ।  
 एते पर्वतराजानो गणानां मरुतस्तथा ॥ ५  
 सूर्यो प्रहाणामधिपो नक्षत्राणां च चन्द्रमा ।  
 यमः पितृणामधिपः सरितामथ सागरः ॥ ६  
 अम्भसां वरुणो राजा सत्त्वानां मित्र उच्यते ।  
 अर्कोऽधिपतिरूषणानां ज्योतिषामिन्दुरुच्यते ॥ ७  
 अग्निर्भूतपतिर्नित्यं ब्राह्मणानां बृहस्पतिः ।  
 ओषधीनां पतिः सोमो विष्णुर्वलवतां वरः ॥ ८  
 त्वष्टाधिराजो रूपाणां पशूनामीश्वरः शिवः ।  
 दक्षिणानां तथा यज्ञो वेदानामृषयस्तथा ॥ ९  
 दिशामुदीची विप्राणां सोमो राजा प्रतापवान् ।  
 कुबेरः सर्वयक्षाणां देवतानां पुरंदरः ।  
 एष भूतादिकः सर्गः प्रजानां च प्रजापतिः ॥ १०  
 सर्वेषामेव भूतानामहं ब्रह्ममयो महान् ।  
 भूतं परतरं मत्तो विष्णोर्वापि न विद्यते ॥ ११  
 राजाधिराजः सर्वासां विष्णुर्ब्रह्ममयो महान् ।  
 ईश्वरं तं विजानीमः स विभुः स प्रजापतिः ॥ १२  
 नरकिंनरयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।  
 देवदानवनागानां सर्वेषामीश्वरो हि सः ॥ १३  
 भगदेवानुयातानां सर्वासां वामलोचना ।  
 माहेश्वरी महादेवी प्रोच्यते पार्वतीति या ॥ १४  
 उमां देवीं विजानीत नारीणामुत्तमां शुभाम् ।  
 रतीनां वसुमत्यस्तु स्त्रीणामप्सरसस्तथा ॥ १५  
 धर्मकामाश्च राजानो ब्राह्मणा धर्मलक्षणाः ।  
 तस्माद्राजा द्विजातीनां प्रयतेतेह रक्षणे ॥ १६  
 राज्ञां हि विषये येषामवसीदन्ति साधवः ।  
 हीनास्ते स्वगुणैः सर्वैः प्रेत्यावाङ्मार्गगामिनः ॥ १७

राज्ञां तु विषये येषां साधवः परिरक्षिताः ।  
 तेऽस्मिँल्लोके प्रमोदन्ते प्रेत्य चानन्त्यमेव च ।  
 प्राप्नुवन्ति महात्मान इति वित्त द्विजर्षभाः ॥ १८  
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नियतं धर्मलक्षणम् ।  
 अहिंसालक्षणो धर्मो हिंसा चाधर्मलक्षणा ॥ १९  
 प्रकाशलक्षणा देवा मनुष्याः कर्मलक्षणाः ।  
 शब्दलक्षणमाकाशं वायुस्तु स्पर्शलक्षणाः ॥ २०  
 ज्योतिषां लक्षणं रूपमापश्च रसलक्षणाः ।  
 धरणी सर्वभूतानां पृथिवी गन्धलक्षणा ॥ २१  
 स्वरव्यञ्जनसंस्कारा भारती सत्यलक्षणा ।  
 मनसो लक्षणं चिन्ता तथोक्ता बुद्धिरन्वयात् ॥ २२  
 मनसा चिन्तयानोऽर्थान्बुद्ध्या चैव व्यवस्यति ।  
 बुद्धिर्हि व्यवसायेन लक्ष्यते नात्र संशयः ॥ २३  
 लक्षणं महतो ध्यानमव्यक्तं साधुलक्षणम् ।  
 प्रवृत्तिलक्षणो योगो ज्ञानं संन्यासलक्षणम् ॥ २४  
 तस्माज्ज्ञानं पुरस्कृत्य संन्यसेदिह बुद्धिमान् ।  
 संन्यासी ज्ञानसंयुक्तः प्राप्नोति परमां गतिम् ।  
 अतीतोऽद्वंद्वमभ्येति तमोमृत्युजरातिगम् ॥ २५  
 धर्मलक्षणसंयुक्तमुक्तं वो विधिवन्मया ।  
 गुणानां ग्रहणं सम्यग्वक्ष्याम्यहमतः परम् ॥ २६  
 पार्थिवो यस्तु गन्धो वै घ्राणेनेह स गृह्यते ।  
 घ्राणस्थश्च तथा वायुर्गन्धज्ञाने विधीयते ॥ २७  
 अपां धातुरसो नित्यं जिह्वया स तु गृह्यते ।  
 जिह्वास्थश्च तथा सोमो रसज्ञाने विधीयते ॥ २८  
 ज्योतिषश्च गुणो रूपं चक्षुषा तच्च गृह्यते ।  
 चक्षुःस्थश्च तथादित्यो रूपज्ञाने विधीयते ॥ २९  
 वायव्यस्तु तथा स्पर्शस्त्वचा प्रज्ञायते च सः ।  
 स्वक्स्थश्चैव तथा वायुः स्पर्शज्ञाने विधीयते ॥ ३०  
 आकाशस्य गुणो घोषः श्रोत्रेण स तु गृह्यते ।  
 श्रोत्रस्थाश्च दिशः सर्वाः शब्दज्ञाने प्रकीर्तिताः ॥ ३१

मनसस्तु गुणश्चिन्ता प्रज्ञया स तु गृह्यते ।  
 हृदिस्थचेतनाधातुर्मनोज्ञाने विधीयते ॥ ३२  
 बुद्धिरध्यवसायेन ध्यानेन च महांस्तथा ।  
 निश्चित्य ग्रहणं नित्यमव्यक्तं नात्र संशयः ॥ ३३  
 अलिङ्गग्रहणो नित्यः क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मकः ।  
 तस्मादलिङ्गः क्षेत्रज्ञः केवलं ज्ञानलक्षणः ॥ ३४  
 अव्यक्तं क्षेत्रमुद्दिष्टं गुणानां प्रभवाप्ययम् ।  
 सदा पश्याम्यहं लीनं विजानामि शृणोमि च ॥  
 पुरुषस्तद्विजानीते तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते ।  
 गुणवृत्तं तथा कृत्स्नं क्षेत्रज्ञः परिपश्यति ॥ ३६  
 आदिमध्यावसानान्तं सृज्यमानमचेतनम् ।  
 न गुणा विदुरात्मानं सृज्यमानं पुनः पुनः ॥ ३७  
 न सत्यं वेद वै कश्चित्क्षेत्रज्ञस्त्वेव विन्दति ।  
 गुणानां गुणभूतानां यत्परं परतो महत् ॥ ३८  
 तस्माद्गुणांश्च तत्त्वं च परित्यज्येह तत्त्ववित् ।  
 क्षीणदोषो गुणान्हित्वा क्षेत्रज्ञं प्रविशत्यथ ॥ ३९  
 निर्द्वन्द्वो निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एव च ।  
 अचलश्चानिकेतश्च क्षेत्रज्ञः स परो विभुः ॥ ४०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

४४

ब्रह्मोवाच ।

यदादिमध्यपर्यन्तं ग्रहणोपायमेव च ।  
 नामलक्षणसंयुक्तं सर्वं वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ १  
 अहः पूर्वं ततो रात्रिर्मासाः शुक्लादयः स्मृताः ।  
 श्रविष्ठादीनि ऋक्षाणि ऋतवः शिशिरादयः ॥ २  
 भूमिरादिस्तु गन्धानां रसानामाप एव च ।  
 रूपाणां ज्योतिरादिस्तु स्पर्शादिर्वायुरुच्यते ।  
 शब्दस्यादिस्तथाकाशमेव भूतकृतो गुणः ॥ ३  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि भूतानामादिमुत्तमम् ।

आदित्यो ज्योतिषामादिरग्निर्भूतादिरिष्यते ॥ ४  
 सावित्री सर्वविद्यानां देवतानां प्रजापतिः ।  
 ओकारः सर्ववेदानां वचसां प्राण एव च ।  
 यद्यस्मिन्नियतं लोके सर्वं सावित्रमुच्यते ॥ ५  
 गायत्री छन्दसामादिः पशूनामज उच्यते ।  
 गावश्चतुष्पदामादिर्मनुष्याणां द्विजातयः ॥ ६  
 श्येनः पतत्रिणामादिर्यज्ञानां द्रुतमुत्तमम् ।  
 परिसर्पिणां तु सर्वेषां ज्येष्ठः सर्पो द्विजोत्तमाः ॥  
 कृतमादिर्युगानां च सर्वेषां नात्र संशयः ।  
 हिरण्यं सर्वरत्नानामोषधीनां यवास्तथा ॥ ८  
 सर्वेषां भक्ष्यभोज्यानामन्नं परममुच्यते ।  
 द्रवाणां चैव सर्वेषां पेयानामाप उत्तमाः ॥ ९  
 स्थावराणां च भूतानां सर्वेषामविशेषतः ।  
 ब्रह्मक्षेत्रं सदा पुण्यं पूक्षः प्रथमजः स्मृतः ॥ १०  
 अहं प्रजापतीनां च सर्वेषां नात्र संशयः ।  
 मम विष्णुरचिन्त्यात्मा स्वयंभूरिति स स्मृतः ॥ ११  
 पर्वतानां महामेरुः सर्वेषामप्रजः स्मृतः ।  
 दिशां च प्रदिशां चोर्ध्वा दिग्जाता प्रथमं तथा ॥  
 तथा त्रिपथगा गङ्गा नदीनामप्रजा स्मृता ।  
 तथा सरोदपानानां सर्वेषां सागरोऽप्रजः ॥ १३  
 देवदानवभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम् ।  
 नरकिंनरयक्षाणां सर्वेषामीश्वरः प्रभुः ॥ १४  
 आदिर्विश्वस्य जगतो विष्णुर्ब्रह्ममयो महान् ।  
 भूतं परतरं तस्मात्रैलोक्ये नेह विद्यते ॥ १५  
 आश्रमाणां च गार्हस्थ्यं सर्वेषां नात्र संशयः ।  
 लोकानामादिरव्यक्तं सर्वस्यान्तस्तदेव च ॥ १६  
 अहान्यस्तमयान्तानि उदयान्ता च शर्वरी ।  
 सुखस्यान्तः सदा दुःखं दुःखस्यान्तः सदा सुखम् ॥  
 सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।  
 संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥ १८

सर्वं कृतं विनाशान्तं जातस्य मरणं ध्रुवम् ।  
अशाश्वतं हि लोकेऽस्मिन्सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥ १९  
इष्टं दत्तं तपोऽधीतं व्रतानि नियमाश्च ये ।  
सर्वमेतद्विनाशान्तं ज्ञानस्यान्तो न विद्यते ॥ २०  
तस्माज्ज्ञानेन शुद्धेन प्रसन्नात्मा समाहितः ।  
निर्ममो निरहंकारो मुच्यते सर्वपाप्मभिः ॥ २१

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

४५

ब्रह्मोवाच ।

बुद्धिसारं मनस्तम्भमिन्द्रियग्रामबन्धनम् ।  
महाभूतारविष्कम्भं निमेषपरिवेष्टनम् ॥ १  
जराशोकसमाविष्टं व्याधिव्यसनसंचरम् ।  
देशकालविचारीदं श्रमव्यायामनिस्वनम् ॥ २  
अहोरात्रपरिक्षेपं शीतोष्णपरिमण्डलम् ।  
सुखदुःखान्तसंक्षेपं क्षुत्पिपासावकीलनम् ॥ ३  
छायातपविलेखं च निमेषोन्मेषविह्वलम् ।  
घोरमोहजनाकीर्णं वर्तमानमचेतनम् ॥ ४  
मासार्धमासगणितं विषमं लोकसंचरम् ।  
तमोनिचयपङ्कं च रजोवेगप्रवर्तकम् ॥ ५  
सत्त्वालंकारदीप्तं च गुणसंघातमण्डलम् ।  
स्वरविग्रहनामीकं शोकसंघातवर्तनम् ॥ ६  
क्रियाकारणसंयुक्तं रागविस्तारमायतम् ।  
लोभेप्सापरिसंख्यातं विविक्तज्ञानसंभवम् ॥ ७  
भयमोहपरीवारं भूतसंमोहकारकम् ।  
आनन्दप्रीतिधारं च कामक्रोधपरिग्रहम् ॥ ८  
महदादिविशेषान्तमसक्तप्रभवव्ययम् ।  
मनोजवनमश्रान्तं कालचक्रं प्रवर्तते ॥ ९  
एतद्वृद्धसमायुक्तं कालचक्रमचेतनम् ।  
विसृजेत्संक्षिपेच्चापि बोधयेत्सामरं जगत् ॥ १०

कालचक्रप्रवृत्तिं च निवृत्तिं चैव तत्त्वतः ।  
यस्तु वेद नरो नित्यं न स भूतेषु मुह्यति ॥ ११  
विमुक्तः सर्वसंक्षेपैः सर्वद्वंद्वतिगो मुनिः ।  
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १२  
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।  
चत्वार आश्रमाः प्रोक्ताः सर्वे गार्हस्थ्यमूलकाः ॥  
यः कश्चिदिह लोके च ह्यागमः संप्रकीर्तितः ।  
तस्यान्तगमनं श्रेयः कीर्तिरेषा सनातनी ॥ १४  
संस्कारैः संस्कृतः पूर्वं यथावच्चरितव्रतः ।  
जातौ गुणविशिष्टायां समावर्तेत वेदवित् ॥ १५  
स्वदारनिरतो दान्तः शिष्टाचारो जितेन्द्रियः ।  
पञ्चभिश्च महायज्ञैः श्रद्धधानो यजेत ह ॥ १६  
देवतातिथिशिष्टाशी निरतो वेदकर्मसु ।  
इज्याप्रदानयुक्तश्च ययाशक्ति यथाविधि ॥ १७  
न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो मुनिः ।  
न च वागङ्गचपल इति शिष्टस्य गोचरः ॥ १८  
नित्ययज्ञोपवीती स्वाच्छुक्लवासाः शुचिव्रतः ।  
नियतो दमदानाभ्यां सदा शिष्टैश्च संविशेत् ॥ १९  
जितशिश्रोदरो मैत्रः शिष्टाचारसमाहितः ।  
वैष्णवीं धारयेद्यष्टि सोदकं च कमण्डलुम् ॥ २०  
अधीत्याध्यापनं कुर्यात्तथा यजनयाजने ।  
दानं प्रतिग्रहं चैव षड्गुणां वृत्तिमाचरेत् ॥ २१  
त्रीणि कर्माणि यानीह ब्राह्मणानां तु जीविका ।  
याजनाध्यापने चोभे शुद्धाच्चापि प्रतिग्रहः ॥ २२  
अवशेषाणि चान्यानि त्रीणि कर्माणि यानि तु ।  
दानमध्ययनं यज्ञो धर्मयुक्तानि तानि तु ॥ २३  
तेष्वप्रमादं कुर्वीत त्रिषु कर्मसु धर्मवित् ।  
दान्तो मैत्रः क्षमायुक्तः सर्वभूतसमो मुनिः ॥ २४  
सर्वमेतद्यथाशक्ति विप्रो निर्वर्तयञ्शुचिः ।

एवं युक्तो जयेत्स्वर्गं गृहस्थः संशितव्रतः ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

४६

ब्रह्मोवाच ।

एवमेतेन मार्गेण पूर्वोक्तेन यथाविधि ।

अर्धीतवान्यथाशक्ति तथैव ब्रह्मचर्यवान् ॥ १

स्वधर्मनिरतो विद्वान्सर्वेन्द्रिययतो मुनिः ।

गुरोः प्रियहिते युक्तः सत्यधर्मपरः शुचिः ॥ २

गुरुणा समनुज्ञातो भुञ्जीतान्नमकुत्सयन् ।

हविष्यभैक्ष्यभुक्त्वापि स्थानासनविहारवान् ॥ ३

द्विकालमग्निं जुह्वानः शुचिर्भूत्वा समाहितः ।

भारयीत सदा दण्डं बैल्वं पालाशमेव वा ॥ ४

क्षौमं कार्पासिकं वापि मृगाजिनमथापि वा ।

सर्वं काषायरक्तं स्याद्वासो वापि द्विजस्य ह ॥ ५

मेखला च भवेन्मौञ्जी जटी नित्योदकस्तथा ।

यज्ञोपवीती स्वाध्यायी अलुप्तनियतव्रतः ॥ ६

पूताभिश्च तथैवाद्भिः सदा दैवततर्पणम् ।

भावेन नियतः कुर्वन्ब्रह्मचारी प्रशस्यते ॥ ७

एवं युक्तो जयेत्स्वर्गमूर्ध्वरेताः समाहितः ।

न संसरति जातीषु परमं स्थानमाश्रितः ॥ ८

संस्कृतः सर्वसंस्कारैस्तथैव ब्रह्मचर्यवान् ।

ग्रामान्निष्क्रम्य चारण्यं मुनिः प्रव्रजितो वसेत् ॥ ९

चर्मवल्कलसंवीतः स्वयं प्रातरुपस्पृशेत् ।

अरण्यगोचरो नित्यं न ग्रामं प्रविशेत्पुनः ॥ १०

अर्चयन्नतिथीन्काले दद्याच्चापि प्रतिश्रयम् ।

फलपत्रावरैर्मूलैः श्यामाकेन च वर्तयन् ॥ ११

प्रवृत्तमुदकं वायुं सर्वं वानेयमा वृणात् ।

प्राभीयादानुपूर्व्येण यथादीक्षमतन्द्रितः ॥ १२

आमूलफलभिक्षाभिरर्च्येदतिथिमागतम् ।

यद्भक्षः स्यात्ततो दद्याद्भिक्षां नित्यमतन्द्रितः ॥ १३

देवतातिथिपूर्वं च सदा भुञ्जीत वाग्यतः ।

अस्कन्दितमनाश्चैव लघ्वाशी देवताश्रयः ॥ १४

दान्तो मैत्रः क्षमायुक्तः केशश्मश्रु च धारयन् ।

जुह्वन्स्वाध्यायशीलश्च सत्यधर्मपरायणः ॥ १५

त्यक्तदेहः सदा दक्षो वननित्यः समाहितः ।

एवं युक्तो जयेत्स्वर्गं वानप्रस्थो जितेन्द्रियः ॥ १६

गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ वा पुनः ।

य इच्छेन्मोक्षमास्थातुमुत्तमां वृत्तिमाश्रयेत् ॥ १७

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा नैष्कर्म्यमाचरेत् ।

सर्वभूतहितो मैत्रः सर्वेन्द्रिययतो मुनिः ॥ १८

अयाचितमसंरूपमुपपन्नं यदृच्छया ।

जोषयेत सदा भोज्यं ग्रासमागतमस्पृहः ॥ १९

यात्रामात्रं च भुञ्जीत केवलं प्राणयात्रिकम् ।

धर्मलब्धं तथाश्रीयान्न काममनुवर्तयेत् ॥ २०

ग्रासादाच्छादनाच्चान्यन्नं गृहीयात्कथंचन ।

यावदाहारयेत्तावत्प्रतिगृहीत नान्यथा ॥ २१

परेभ्यो न प्रतिग्राह्यं न च देयं कदाचन ।

दैन्यभावाच्च भूतानां संविभज्य सदा बुधः ॥ २२

नाददीत परस्वानि न गृहीयादयाचितम् ।

न किञ्चिद्विषयं भुक्त्वा स्पृहयेत्तस्य वै पुनः ॥ २३

मृदमापस्तथाश्मानं पत्रपुष्पफलानि च ।

असंवृतानि गृहीयात्प्रवृत्तानीह कार्यवान् ॥ २४

न शिल्पजीविकां जीवेद्विरन्नं नोत कामयेत् ।

न द्वेष्टा नोपदेष्टा च भवेत निरुपस्कृतः ।

श्रद्धापूतानि भुञ्जीत निमित्तानि विवर्जयेत् ॥ २५

मुधावृत्तिरसक्तश्च सर्वभूतैरसंविदम् ।

कृत्वा वह्निं चरेद्भैक्ष्यं विधूमे भुक्तवज्जने ॥ २६

वृत्ते शरावसंपाते भैक्ष्यं लिप्सेत मोक्षवित् ।

लाभे न च प्रहृष्येत नालाभे विमना भवेत् ॥ २७

मात्राशी कालमाकाङ्क्षश्चरेद्भक्ष्यं समाहितः ।  
 लाभं साधारणं नेच्छेन्न भुङ्गीताभिपूजितः ।  
 अभिपूजितलाभाद्धि विजुगुप्सेत भिक्षुकः ॥ २८  
 शुक्तान्यम्लानि तिक्तानि कषायकटुकानि च ।  
 नास्वादयीत भुञ्जानो रसांश्च मधुरांस्तथा ।  
 यात्रामात्रं च भुङ्गीत केवलं प्राणयात्रिकम् ॥ २९  
 असरोधेन भूतानां वृत्तिं लिप्सेत मोक्षवित् ।  
 न चान्यमनुभिक्षेत भिक्षमाणः कथंचन ॥ ३०  
 न संनिकाशयेद्धर्मं विविक्ते विरजाश्चरेत् ।  
 शून्यागारमरण्यं वा वृक्षमूलं नदी तथा ।  
 प्रतिश्रयार्थं सेवेत पार्वती वा पुनर्गुहाम् ॥ ३१  
 ग्रामैकरात्रिको ग्रीष्मे वर्षास्वेकत्र वा वसेत् ।  
 अध्वा सूर्येण निर्दिष्टः कीटवच्च चरेन्महीम् ॥ ३२  
 दयार्थं चैव भूतानां समीक्ष्य पृथिवीं चरेत् ।  
 सचयांश्च न कुर्वीत स्नेहवासं च वर्जयेत् ॥ ३३  
 पूतेन चाम्भसा नित्यं कार्यं कुर्वीत मोक्षवित् ।  
 उपस्पृशेदुद्धृताभिरद्भिश्च पुरुषः सदा ॥ ३४  
 अहिंसा ब्रह्मचर्यं च सत्यमार्जवमेव च ।  
 अक्रोधश्चानसूया च दमो नित्यमपैशुनम् ॥ ३५  
 अष्टास्वेतेषु युक्तः स्याद्रतेषु नियतेन्द्रियः ।  
 अपापमशठं वृत्तमजिह्वं नित्यमाचरेत् ॥ ३६  
 आशीर्युक्तानि कर्माणि हिंसायुक्तानि यानि च ।  
 लोकसंग्रहधर्मं च नैव कुर्यान्न कारयेत् ॥ ३७  
 सर्वभावानतिक्रम्य लघुमात्रः परिव्रजेत् ।  
 समः सर्वेषु भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥ ३८  
 परं नोद्वेजयेत्कंचिन्न च कस्यचिदुद्विजेत् ।  
 विश्वास्थः सर्वभूतानामग्नौ मोक्षविदुच्यते ॥ ३९  
 अनागतं च न ध्यायेन्नातीतमनुचिन्तयेत् ।  
 वर्तमानमुपेक्षेत कालाकाङ्क्षी समाहितः ॥ ४०  
 न चक्षुषा न मनसा न वाचा दूषयेत्कचित् ।

न प्रत्यक्षं परोक्षं वा किञ्चिदुष्टं समाचरेत् ॥ ४१  
 इन्द्रियाण्युपसंहृत्य कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।  
 क्षीणेन्द्रियमनोबुद्धिर्निरीक्षेत निरिन्द्रियः ॥ ४२  
 निर्वृद्धो निर्नमस्कारो निःस्वाहाकार एव च ।  
 निर्ममो निरहंकारो नियोगक्षेम एव च ॥ ४३  
 निराशीः सर्वभूतेषु निरासङ्गो निराश्रयः ।  
 सर्वज्ञः सर्वतो मुक्तो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४४  
 अपाणिपादपृष्ठं तमशिरस्कमनूदरम् ।  
 प्रहीणगुणकर्माणं केवलं विमलं स्थिरम् ॥ ४५  
 अगन्धरसमस्पर्शमरूपाशब्दमेव च ।  
 अत्वगस्थयथ वामजसमांसमपि चैव ह ॥ ४६  
 निश्चिन्तमन्ययं नित्यं हृदिस्थमपि नित्यदा ।  
 सर्वभूतस्थमात्मानं ये पश्यन्ति न ते मृताः ॥ ४७  
 न तत्र क्रमते बुद्धिर्नेन्द्रियाणि न देवताः ।  
 वेदा यज्ञाश्च लोकाश्च न तपो न पराक्रमः ।  
 यत्र ज्ञानवतां प्राप्तिरलिङ्गप्रहणा स्मृता ॥ ४८  
 तस्मादलिङ्गो धर्मज्ञो धर्मव्रतमनुव्रतः ।  
 गूढधर्माश्रितो विद्वानज्ञातचरितं चरेत् ॥ ४९  
 अमूढो मूढरूपेण चरेद्धर्ममदूषयन् ।  
 यथैनमवमन्येरन्परे सततमेव हि ॥ ५०  
 तथावृत्तश्चरेद्धर्मं सतां वर्त्माविदूषयन् ।  
 यो ह्येवं वृत्तसंपन्नः स मुनिः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ५१  
 इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्च च ।  
 मनोबुद्धिरथात्मानमव्यक्तं पुरुषं तथा ॥ ५२  
 सर्वमेतत्प्रसंख्याय सम्यक्संत्यज्य निर्मलः ।  
 ततः स्वर्गमवाप्नोति विमुक्तः सर्वबन्धनैः ॥ ५३  
 एतदेवान्तवेलायां परिसंख्याय तत्त्ववित् ।  
 ध्यायेदेकान्तमास्थाय मुच्यतेऽथ निराश्रयः ॥ ५४  
 निर्मुक्तः सर्वसङ्गेभ्यो वायुराकाशगो यथा ।



क्षीणकोशो निरातङ्कः प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ५५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

४७

ब्रह्मोवाच ।

संन्यासं तप इत्याहुर्वृद्धा निश्चितदर्शिनः ।  
ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ज्ञानं ब्रह्म परं विदुः ॥ १  
अविदूरात्परं ब्रह्म वेदविद्याव्यपाश्रयम् ।  
निर्द्वंद्वं निर्गुणं नित्यमचिन्त्यं गुह्यमुत्तमम् ॥ २  
ज्ञानेन तपसा चैव धीराः पश्यन्ति तत्पदम् ।  
निर्णिक्तमसः पूता व्युत्क्रान्तरजसोऽमलाः ॥ ३  
तपसा क्षेममध्वानं गच्छन्ति परमैषिणः ।  
संन्यासनिरता नित्यं ये ब्रह्मविदुषो जनाः ॥ ४  
तपः प्रदीप इत्याहुराचारो धर्मसाधकः ।  
ज्ञानं त्वेव परं विद्वद्ब्रह्मसंन्यासस्तप उत्तमम् ॥ ५  
यस्तु वेद निराबाधं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयात् ।  
सर्वभूतस्थमात्मानं स सर्वगतिरिष्यते ॥ ६  
यो विद्वान्सहवासं च विवासं चैव पश्यति ।  
तथैवैकत्वनानात्वे स दुःखात्परिमुच्यते ॥ ७  
यो न कामयते किञ्चिन्न किञ्चिदवमन्यते ।  
इहलोकस्थ एवैष ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ८  
प्रधानगुणतत्त्वज्ञः सर्वभूतविधानवित् ।  
निर्ममो निरहंकारो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ९  
निर्द्वंद्वो निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एव च ।  
निर्गुणं नित्यमद्वंद्वं प्रशमेनैव गच्छति ॥ १०  
हित्वा गुणमयं सर्वं कर्म जन्तुः शुभाशुभम् ।  
उभे सत्यानृते हित्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥ ११  
अव्यक्तबीजप्रभवो बुद्धिस्कन्धमयो महान् ।  
महाहंकारविटप इन्द्रियान्तरकोटरः ॥ १२  
महाभूतविशाखश्च विशेषप्रतिशाखवान् ।

सदापर्णः सदापुष्पः शुभाशुभफलोदयः ।

आजीवः सर्वभूतानां ब्रह्मवृक्षः सनातनः ॥ १३

एतच्छित्त्वा च भित्त्वा च ज्ञानेन परमासिना ।

हित्वा चामरतां प्राप्य जह्याद्वै मृत्युजन्मनी ।

निर्ममो निरहंकारो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १४

द्वावेतौ पक्षिणौ नित्यौ सखायौ चाप्यचेतनौ ।

एताभ्यां तु परो यस्य चेतनावानिति स्मृतः ॥ १५

अचेतनः सत्त्वसंघातयुक्तः

सत्त्वात्परं चेतयतेऽन्तरात्मा ।

स क्षेत्रज्ञः सत्त्वसंघातबुद्धि-

गुणातिगो मुच्यते मृत्युपाशात् ॥ १६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

४८

ब्रह्मोवाच ।

केचिद्ब्रह्ममयं वृक्षं केचिद्ब्रह्ममय महत् ।

केचित्पुरुषमव्यक्तं केचित्परमनामयम् ।

मन्यन्ते सर्वमप्येतदव्यक्तप्रभवमव्ययम् ॥ १

उद्धासमात्रमपि चेद्योऽन्तकाले समो भवेत् ।

आत्मानमुपसंगम्य सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ २

निमेषमात्रमपि चेत्संयम्यात्मानमात्मनि ।

गच्छत्यात्मप्रसादेन विदुषां प्राप्तिमव्ययाम् ॥ ३

प्राणायामैरथ प्राणान्संयम्य स पुनः पुनः ।

दशद्वादशभिर्वापि चतुर्विंशत्परं ततः ॥ ४

एवं पूर्वं प्रसन्नात्मा लभते यद्यदिच्छति ।

अव्यक्तात्सत्त्वमुद्रिक्तममृतत्वाय कल्पते ॥ ५

सत्त्वात्परतरं नान्यत्प्रशंसन्तीह तद्विदः ।

अनुमानाद्विजानीमः पुरुषं सत्त्वसश्रयम् ।

न शक्यमन्यथा गन्तुं पुरुषं तमथो द्विजाः ॥ ६

क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम् ।

लोभमोहसमायुक्तास्ते वै निरयगामिनः ॥ ४  
 आशीर्युक्तानि कर्माणि कुर्वते ये त्वतन्द्रिताः ।  
 तेऽस्मिल्लोके प्रमोदन्ते जायमानाः पुनः पुनः ॥ ५  
 कुर्वते ये तु कर्माणि श्रद्धाणां विपश्चितः ।  
 अनाशीर्योगसंयुक्तास्ते धीराः साधुदर्शिनः ॥ ६  
 अतः परं प्रवक्ष्यामि सत्त्वक्षेत्रज्ञयोर्यथा ।  
 संयोगो विप्रयोगश्च तन्निबोधत सत्तमाः ॥ ७  
 विषयो विषयित्वं च संबन्धोऽयमिहोच्यते ।  
 विषयी पुरुषो नित्यं सत्त्वं च विषयः स्मृतः ॥ ८  
 व्याख्यातं पूर्वकल्पेन मशकोदुम्बरं यथा ।  
 भुज्यमानं न जानीते नित्यं सत्त्वमचेतनम् ।  
 यस्त्वेव तु विजानीते यो भुङ्क्ते यश्च भुज्यते ॥ ९  
 अनित्यं द्वंद्वसंयुक्तं सत्त्वमाहुर्गुणात्मकम् ।  
 निर्वृद्धो निष्कलो नित्यः क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मकः ॥  
 समः संज्ञागतस्त्वेवं यदा सर्वत्र दृश्यते ।  
 उपभुङ्क्ते सदा सत्त्वमापः पुष्करपर्णवत् ॥ ११  
 सर्वैरपि गुणैर्विद्वान्व्यतिषक्तो न लिप्यते ।  
 जलबिन्दुर्यथा लोलः पद्मिनीपत्रसंस्थितः ।  
 एवमेवाप्यसंसक्तः पुरुषः स्यान्न संशयः ॥ १२  
 द्रव्यमात्रमभूत्सत्त्वं पुरुषस्येति निश्चयः ।  
 यथा द्रव्यं च कर्ता च संयोगोऽप्यनयोस्तथा ॥  
 यथा प्रदीपमादाय कश्चित्तमसि गच्छति ।  
 तथा सत्त्वप्रदीपेन गच्छन्ति परमैषिणः ॥ १४  
 यावद्द्रव्यगुणस्तावत्प्रदीपः संप्रकाशते ।  
 क्षीणद्रव्यगुणं ज्योतिरन्तर्धानाय गच्छति ॥ १५  
 व्यक्तः सत्त्वगुणस्त्वेवं पुरुषोऽव्यक्त इष्यते ।  
 एतद्विप्रा विजानीत हन्त भूयो ब्रवीमि वः ॥ १६  
 सहस्रेणापि दुर्मैधा न वृद्धिमधिगच्छति ।  
 चतुर्थेनाप्यथांशेन बुद्धिमान्मुखमेधते ॥ १७  
 एवं धर्मस्य विज्ञेयं संसाधनमुपायतः ।

उपायज्ञो हि मेधावी सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ १८  
 यथाध्वानमपाथेयः प्रपन्नो मानवः क्वचित् ।  
 क्लेशेन याति महता विनश्यत्यन्तरापि वा ॥ १९  
 तथा कर्मसु विज्ञेयं फलं भवति वा न वा ।  
 पुरुषस्यात्मनिःश्रेयः शुभाशुभनिर्दर्शनम् ॥ २०  
 यथा च दीर्घमध्वानं पद्भ्यामेव प्रपद्यते ।  
 अदृष्टपूर्वं सहसा तत्त्वदर्शनवर्जितः ॥ २१  
 तमेव च यथाध्वानं रथेनेहाशुगामिना ।  
 यायादश्वप्रयुक्तेन तथा बुद्धिमतां गतिः ॥ २२  
 उच्चं पर्वतमारुह्य नान्ववेक्षेत भूगतम् ।  
 रथेन रथिनं पश्येत्क्षिप्रं यमानमचेतनम् ॥ २३  
 यावद्रथपथस्तावद्रथेन स तु गच्छति ।  
 क्षीणे रथपथे प्राज्ञो रथमुत्सृज्य गच्छति ॥ २४  
 एवं गच्छति मेधावी तत्त्वयोगविधानवित् ।  
 समाज्ञाय महाबुद्धिरुत्तरादुत्तरोत्तरम् ॥ २५  
 यथा महार्णवं घोरमप्लवः संप्रगाहते ।  
 बाहुभ्यामेव संमोहाद्वधं चर्च्छत्यसंशयम् ॥ २६  
 नावा चापि यथा प्राज्ञो विभागज्ञस्तरित्रया ।  
 अकृान्तः सलिलं गाहेत्क्षिप्रं संतरति ध्रुवम् ॥ २७  
 तीर्णो गच्छेत्परं पारं नावमुत्सृज्य निर्ममः ।  
 व्याख्यातं पूर्वकल्पेन यथा रथिपदातिनौ ॥ २८  
 स्नेहात्संमोहमापन्नो नापि दाशो यथा तथा ।  
 ममत्वेनाभिभूतः स तत्रैव परिवर्तते ॥ २९  
 नावं न शक्यमारुह्य स्थले विपरिवर्तितुम् ।  
 तथैव रथमारुह्य नाप्सु चर्या विधीयते ॥ ३०  
 एवं कर्म कृतं चित्रं विषयस्थं पृथक्पृथक् ।  
 यथा कर्म कृतं लोके तथा तदुपपद्यते ॥ ३१  
 यन्नैव गन्धि नो रस्यं न रूपस्पर्शशब्दवत् ।  
 मन्यन्ते मुनयो बुद्ध्या तत्प्रधानं प्रचक्षते ॥ ३२  
 तत्र प्रधानमव्यक्तमव्यक्तस्य गुणो महान् ।

महतः प्रधानभूतस्य गुणोऽहंकार एव च ॥ ३३  
 अहंकारप्रधानस्य महाभूतकृतो गुणः ।  
 पृथक्त्वेन हि भूतानां विषया वै गुणाः स्मृताः ॥  
 बीजधर्मं यथाव्यक्तं तथैव प्रसवात्मकम् ।  
 बीजधर्मा महानात्मा प्रसवश्चेति नः श्रुतम् ॥ ३५  
 बीजधर्मा त्वहंकारः प्रसवश्च पुनः पुनः ।  
 बीजप्रसवधर्माणि महाभूतानि पञ्च वै ॥ ३६  
 बीजधर्मिण इत्याहुः प्रसव च न कुर्वते ।  
 विशेषाः पञ्चभूतानां तेषां वित्तं विशेषणम् ॥ ३७  
 तत्रैकगुणमाकाशं द्विगुणो वायुरुच्यते ।  
 त्रिगुणं ज्योतिरित्याहुरापञ्चापि चतुर्गुणाः ॥ ३८  
 पृथ्वी पञ्चगुणा ज्ञेया त्रसस्यावरसंकुला ।  
 सर्वभूतकरी देवी शुभाशुभनिदर्शना ॥ ३९  
 शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धश्च पञ्चमः ।  
 एते पञ्च गुणा भूमेर्विज्ञेया द्विजसत्तमाः ॥ ४०  
 पार्थिवश्च सदा गन्धो गन्धश्च बहुधा स्मृतः ।  
 तस्य गन्धस्य वक्ष्यामि विस्तरेण बहून्गुणान् ॥ ४१  
 इष्टश्चानिष्टगन्धश्च मधुरोऽम्लः कटुस्तथा ।  
 निर्हारी संहतः स्निग्धो रूक्षो विशद एव च ।  
 एवं दशविधो ज्ञेयः पार्थिवो गन्ध इत्युत ॥ ४२  
 शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसश्चापां गुणाः स्मृताः ।  
 रसज्ञानं तु वक्ष्यामि रसस्तु बहुधा स्मृतः ॥ ४३  
 मधुरोऽम्लः कटुस्तिक्तः कषायो लवणस्तथा ।  
 एवं षड्विधविस्तारो रसो वारिमयः स्मृतः ॥ ४४  
 शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं त्रिगुणं ज्योतिरुच्यते ।  
 ज्योतिषश्च गुणो रूपं रूपं च बहुधा स्मृतम् ॥ ४५  
 शुक्लं कृष्णं तथा रक्तं नीलं पीतारुणं तथा ।  
 ह्रस्वं दीर्घं तथा स्थूलं चतुरस्राणु वृत्तकम् ॥ ४६  
 एवं द्वादशविस्तारं तेजसो रूपमुच्यते ।  
 विज्ञेयं ब्राह्मणैर्नित्यं धर्मज्ञैः सत्यवादिभिः ॥ ४७

शब्दस्पर्शौ च विज्ञेयौ द्विगुणो वायुरुच्यते ।  
 वायोश्चापि गुणः स्पर्शः स्पर्शश्च बहुधा स्मृतः ॥ ४८  
 उष्णः शीतः सुखो दुःखः स्निग्धो विशद एव च ।  
 कठिनश्चिक्णः श्लक्ष्णः पिच्छिलो दारुणो मृदुः ॥  
 एवं द्वादशविस्तारो वायव्यो गुण उच्यते ।  
 विधिवद्ब्राह्मणैः सिद्धैर्धर्मज्ञैस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५०  
 तत्रैकगुणमाकाशं शब्द इत्येव च स्मृतः ।  
 तस्य शब्दस्य वक्ष्यामि विस्तरेण बहून्गुणान् ॥ ५१  
 षड्जर्पभौ च गान्धारो मध्यमः पञ्चमस्तथा ।  
 अतः परं तु विज्ञेयो निषादो धैवतस्तथा ॥ ५२  
 इष्टोऽनिष्टश्च शब्दस्तु सहतः प्रविभागवान् ।  
 एवं बहुविधो ज्ञेयः शब्दः आकाशसंभवः ॥ ५३  
 आकाशमुत्तमं भूतमहंकारस्ततः परम् ।  
 अहंकारात्परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा ततः परः ॥ ५४  
 तस्मात्तु परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।  
 परावरज्ञो भूतानां यं प्राप्यानन्त्यमश्नुते ॥ ५५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

५०

ब्रह्मोवाच ।

भूतानामथ पञ्चानां यथैषामीश्वरं मनः ।  
 नियमे च विसर्गे च भूतात्मा मन एव च ॥ १  
 अधिष्ठाता मनो नित्यं भूतानां महतां तथा ।  
 बुद्धिरैश्वर्यमाचष्टे क्षेत्रज्ञः सर्व उच्यते ॥ २  
 इन्द्रियाणि मनो युक्ते सदश्चानिव सारथिः ।  
 इन्द्रियाणि मनो बुद्धि क्षेत्रज्ञो युज्यते सदा ॥ ३  
 महाभूतसमायुक्तं बुद्धिसंयमनं रथम् ।  
 तमारुह्य स भूतात्मा समन्तात्परिधावति ॥ ४  
 इन्द्रियग्रामसंयुक्तो मनःसारथिरेव च ।  
 बुद्धिसंयमनो नित्यं महान्ब्रह्ममयो रथः ॥ ५

एवं यो वेत्ति विद्वान्नै सदा ब्रह्ममयं रथम् ।  
 स धीरः सर्वलोकेषु न मोहमधिगच्छति ॥ ६  
 अव्यक्तादि विशेषान्तं त्रसस्थावरसंकुलम् ।  
 चन्द्रसूर्यप्रभालोकं ग्रहनक्षत्रमण्डितम् ॥ ७  
 नदीपर्वतजालैश्च सर्वतः परिभूषितम् ।  
 विविधाभिस्तथाङ्घ्रिश्च सततं समलंकृतम् ॥ ८  
 आजीवः सर्वभूतानां सर्वप्राणभृतां गतिः ।  
 एतद्ब्रह्मवन् नित्यं यस्मिंश्चरति क्षेत्रवित् ॥ ९  
 लोकेऽस्मिन्यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।  
 तान्येवाग्रे प्रलीयन्ते पञ्चाद्भूतकृता गुणाः ।  
 गुणेभ्यः पञ्चभूतानि एष भूतसमुच्छ्रयः ॥ १०  
 देवा मनुष्या गन्धर्वाः पिशाचासुरराक्षसाः ।  
 सर्वे स्वभावतः सृष्टा न क्रियाभ्यो न कारणात् ॥  
 एते विश्वकृतो विप्रा जायन्ते ह पुनः पुनः ।  
 तेभ्यः प्रसूतास्तेष्वेव महाभूतेषु पञ्चसु ।  
 प्रलीयन्ते यथाकालमूर्मयः सागरे यथा ॥ १२  
 विश्वसृग्भ्यस्तु भूतेभ्यो महाभूतानि गच्छति ।  
 भूतेभ्यश्चापि पञ्चभ्यो मुक्तो गच्छेत्प्रजापतिम् ॥  
 प्रजापतिरिदं सर्वं तपसैवासृजत्प्रभुः ।  
 तथैव वेदानुषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥ १४  
 तपसश्चानुपूर्व्येण फलमूलाशिनस्तथा ।  
 त्रैलोक्यं तपसा सिद्धाः पश्यन्तीह समाहिताः ॥  
 औषधान्यगदादीनि नानाविद्याश्च सर्वशः ।  
 तपसैव प्रसिध्यन्ति तपोमूलं हि साधनम् ॥ १६  
 यदुरापं दुरान्नायं दुराधर्षं दुरन्वयम् ।  
 तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ १७  
 सुरापो ब्रह्महा स्तेयी भ्रूणहा गुरुतल्पगः ।  
 तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्बिषात्ततः ॥ १८  
 मनुष्याः पितरो देवाः पशवो मृगपक्षिणः ।  
 यानि चान्यानि भूतानि त्रसानि स्थावराणि च ॥

तपःपरायणा नित्यं सिध्यन्ते तपसा सदा ।  
 तथैव तपसा देवा महाभागा दिवं गताः ॥ २०  
 आशीर्युक्तानि कर्माणि कुर्वते ये त्वतन्द्रिताः ।  
 अहंकारसमायुक्तास्ते सकाशे प्रजापतेः ॥ २१  
 ध्यानयोगेन शुद्धेन निर्ममा निरहंकृताः ।  
 प्राप्नुवन्ति महात्मानो महान्तं लोकमुत्तमम् ॥ २२  
 ध्यानयोगादुपागम्य प्रसन्नमतयः सदा ।  
 सुखोपचयमव्यक्तं प्रविशन्त्यात्मवत्तया ॥ २३  
 ध्यानयोगादुपागम्य निर्ममा निरहंकृताः ।  
 अव्यक्तं प्रविशन्तीह महान्तं लोकमुत्तमम् ॥ २४  
 अव्यक्तादेव संभूतः समयज्ञो गतः पुनः ।  
 तमोरजोभ्यां निर्मुक्तः सत्त्वमास्थाय केवलम् ॥ २५  
 विमुक्तः सर्वपापेभ्यः सर्वं त्यजति निष्कलः ।  
 क्षेत्रज्ञ इति तं विद्याद्यस्तं वेद स वेदवित् ॥ २६  
 चित्तं चित्तादुपागम्य मुनिरासीत् संयतः ।  
 यच्चित्तस्तन्मना भूत्वा गुह्यमेतत्सनातनम् ॥ २७  
 अव्यक्तादि विशेषान्तमविद्यालक्षणं स्मृतम् ।  
 निबोधत यथा हीदं गुणैर्लक्षणमित्युत ॥ २८  
 द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युख्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम् ।  
 ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम् ॥ २९  
 कर्म केचित्प्रशंसन्ति मन्दबुद्धितरा नराः ।  
 ये तु बुद्धा महात्मानो न प्रशंसन्ति कर्म ते ॥ ३०  
 कर्मणा जायते जन्तुर्मूर्तिमान्बोडशात्मकः ।  
 पुरुषं सृजतेऽविद्या अग्राह्यममृताशिनम् ॥ ३१  
 तस्मात्कर्मसु निःस्नेहा ये केचित्पारदर्शिनः ।  
 विद्यामयोऽयं पुरुषो न तु कर्ममयः स्मृतः ॥ ३२  
 अपूर्वममृतं नित्यं य एनमविचारिणम् ।  
 य एनं विन्दतेऽऽत्मानमग्राह्यममृताशिनम् ॥ ३३  
 अग्राह्योऽमृतो भवति य एभिः कारणैर्ध्रुवः ।  
 अपोह्य सर्वसंकल्पान्संयम्यात्मानमात्मनि ।

स तद्ब्रह्म शुभ वेत्ति यस्माद्भूयो न विद्यते ॥ ३४  
 प्रसादेनैव सत्त्वस्य प्रसादं समवाप्नुयात् ।  
 लक्षणं हि प्रसादस्य यथा स्यात्स्वप्रदर्शनम् ॥ ३५  
 गतिरेषा तु मुक्तानां ये ज्ञानपरिनिष्ठिताः ।  
 प्रवृत्त्यश्च याः सर्वाः पश्यन्ति परिणामजाः ॥ ३६  
 एषा गतिरसक्तानामेष धर्मः सनातनः ।  
 एषा ज्ञानवतां प्राप्तिरेतद्ब्रुत्तमनिन्दितम् ॥ ३७  
 समेन सर्वभूतेषु निःस्पृहेण निराशिषा ।  
 शक्या गतिरियं गन्तुं सर्वत्र समदर्शिना ॥ ३८  
 एतद्ब्रुः सर्वमाख्यातं मया विप्रर्षिसत्तमाः ।  
 एवमाचरत क्षिप्रं ततः सिद्धिमवाप्स्यथ ॥ ३९

### गुरुवाच ।

इत्युक्तास्ते तु मुनयो ब्रह्मणा गुरुणा तथा ।  
 कृतवन्तो महात्मानस्ततो लोकानवाप्नुवन् ॥ ४०  
 त्वमप्येतन्महाभाग यथोक्तं ब्रह्मणो वचः ।  
 सम्यगाचर शुद्धात्मस्ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ ४१

### वासुदेव उवाच ।

इत्युक्तः स तदा शिष्यो गुरुणा धर्ममुत्तमम् ।  
 चकार सर्वं कौन्तेय ततो मोक्षमवाप्तवान् ॥ ४२  
 कृतकृत्यश्च स तदा शिष्यः कुरुकुलोद्बह ।  
 तत्पदं समनुप्राप्तो यत्र गत्वा न शोचति ॥ ४३

### अर्जुन उवाच ।

को न्वसौ ब्राह्मणः कृष्ण कश्च शिष्यो जनार्दन ।  
 श्रोतव्यं चेन्मयैतद्वै तत्त्वमाचक्ष्व मे विभो ॥ ४४

### वासुदेव उवाच ।

अहं गुरुर्महाबाहो मनः शिष्यं च विद्धि मे ।  
 त्वत्प्रीत्या गुह्यमेतच्च कथितं मे धनंजय ॥ ४५  
 मयि चेदस्ति ते प्रीतिर्नित्यं कुरुकुलोद्बह ।  
 अध्यात्ममेतच्छ्रुत्वा त्वं सम्यगाचर सुव्रत ॥ ४६

ततस्त्वं सम्यगाचीर्णे धर्मेऽस्मिन्कुरुनन्दन ।  
 सर्वपापविशुद्धात्मा मोक्षं प्राप्स्यसि केवलम् ॥ ४७  
 पूर्वमप्येतदेवोक्तं युद्धकाल उपस्थिते ।  
 मया तव महाबाहो तस्मादत्र मनः कुरु ॥ ४८  
 मया तु भरतश्रेष्ठ चिरदृष्टः पिता विभो ।  
 तमहं द्रष्टुमिच्छामि संमते तव फल्गुन ॥ ४९  
 वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्तवचनं कृष्णं प्रत्युवाच धनंजयः ।  
 गच्छावो नगरं कृष्ण गजेंसोह्वयमद्य वै ॥ ५०  
 समेत्य तत्र राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।  
 समनुज्ञाप्य दुर्धर्पं स्वां पुरीं यातुमर्हसि ॥ ५१  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥

५१

### वैशंपायन उवाच ।

ततोऽभ्यचोदयत्कृष्णो युज्यतामिति दारुकम् ।  
 मुहूर्तादिव चाचष्ट युक्तमित्येव दारुकः ॥ १  
 तथैव चानुयात्राणि चोदयामास पाण्डवः ।  
 सज्जयध्वं प्रयास्यामो नगरं गजसाह्वयम् ॥ २  
 इत्युक्ताः सैनिकास्ते तु सज्जीभूता विशां पते ।  
 आचख्युः सज्जमित्येव पार्थायामिततेजसे ॥ ३  
 ततस्तौ रथमास्थाय प्रयातौ कृष्णपाण्डवौ ।  
 विकुर्वाणौ कथाश्चित्राः प्रीयमाणौ विशां पते ॥ ४  
 रथस्थं तु महातेजा वासुदेवं धनंजयः ।  
 पुनरेवाब्रवीद्वाक्यमिदं भरतसत्तम ॥ ५  
 त्वत्प्रसादाज्जयः प्राप्तो राज्ञा वृष्णिकुलोद्बह ।  
 निहताः शत्रवश्चापि प्राप्तं राज्यमकण्टकम् ॥ ६  
 नाथवन्तश्च भवता पाण्डवा मधुसुदन ।  
 भवन्तं प्लवमासाद्य तीर्णाः स्म कुरुसागरम् ॥ ७  
 विश्वकर्मन्ममस्तेऽस्तु विश्वात्मन्विश्वसंभव ।

यथाहं त्वा विजानामि यथा चाहं भवन्मनाः ॥८  
 त्वत्तेजःसंभवो नित्यं हृताशो मधुसूदन ।  
 रतिः क्रीडामयी तुभ्यं माया ते रोदसी विभो ॥९  
 त्वयि सर्वमिदं विश्वं यदिदं स्थाणुजङ्गमम् ।  
 त्वं हि सर्वं विकुरुषे भूतग्रामं सनातनम् ॥ १०  
 पृथिवीं चान्तरिक्षं च तथा स्थावरजङ्गमम् ।  
 इसितं तेऽमला ज्योत्स्ना ऋतवश्चेन्द्रियान्वयाः ॥११  
 प्राणो वायुः सततगः क्रोधो मृत्युः सनातनः ।  
 प्रसादे चापि पद्मा श्रीर्नित्यं त्वयि महामते ॥१२  
 रतिस्तुष्टिर्धृतिः क्षान्तिस्त्वयि चेदं चराचरम् ।  
 त्वमेवेह युगान्तेषु निधन प्रोच्यसेऽनघ ॥ १३  
 सुदीर्घेणापि कालेन न ते शक्या गुणा मया ।  
 आत्मा च परमो वक्तुं नमस्ते नलिनेक्षण ॥ १४  
 विदितो मेऽसि दुर्धर्ष नारदादेवलात्तथा ।  
 कृष्णद्वैपायनाच्चैव तथा कुरुपितामहात् ॥ १५  
 त्वयि सर्वं समासक्तं त्वमेवैको जनेश्वरः ।  
 यच्चानुग्रहसंयुक्तमेतदुक्तं त्वयानघ ॥ १६  
 एतत्सर्वमहं सम्यगाचरिष्ये जनार्दन ।  
 इदं चाद्भुतमत्यर्थं कृतमस्मत्प्रियेप्सया ॥ १७  
 यत्पापो निहतः संख्ये कौरव्यो धृतराष्ट्रजः ।  
 त्वया दग्धं हि तत्सैन्यं मया विजितमाहवे ॥१८  
 भवता तत्कृतं कर्म येनावामो जयो मया ।  
 दुर्योधनस्य संग्रामे तव बुद्धिपराक्रमैः ॥ १९  
 कर्णस्य च वधोपायो यथावत्संप्रदर्शितः ।  
 सैन्धवस्य च पापस्य भूरिश्रवस एव च ॥ २०  
 अहं च प्रीयमाणेन त्वया देवकिनन्दन ।  
 यदुक्तस्तत्करिष्यामि न हि मेऽत्र विचारणा ॥२१  
 राजानं च समासाद्य धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।  
 चोदयिष्यामि धर्मज्ञ गमनार्थं त्वयानघ ॥ २२  
 रुचितं हि ममैतत्ते द्वारकागमनं प्रभो ।

अचिराच्चैव द्रष्टा त्वं मातुलं मधुसूदन ।  
 बलदेवं च दुर्धर्षं तथान्यान्वृष्णिपुंगवान् ॥ २३  
 एवं संभाषमाणौ तौ प्राप्तौ वारणसाह्वयम् ।  
 तथा विविशतुश्चोभौ संप्रहृष्टनराकुलम् ॥ २४  
 तौ गत्वा धृतराष्ट्रस्य गृहं शक्रगृहोपमम् ।  
 ददृशाते महाराज धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ २५  
 विदुरं च महाबुद्धिं राजानं च युधिष्ठिरम् ।  
 भीमसेनं च दुर्धर्षं माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।  
 धृतराष्ट्रमुपासीनं युयुत्सुं चापराजितम् ॥ २६  
 गान्धारीं च महाप्राज्ञां पृथां कृष्णां च भामिनीम् ।  
 सुभद्राद्याश्च ताः सर्वा भरतानां स्त्रियस्तथा ।  
 ददृशाते स्थिताः सर्वा गान्धारीं परिवार्य वै ॥२७  
 ततः समेत्य राजानं धृतराष्ट्रमर्दिमौ ।  
 निवेद्य नामधेये स्वे तस्य पादावगृह्णताम् ॥ २८  
 गान्धार्याश्च पृथायाश्च धर्मराज्ञस्तथैव च ।  
 भीमस्य च महात्मानौ तथा पादावगृह्णताम् ॥ २९  
 क्षत्तारं चापि संपूज्य पृष्ट्वा कुशलमव्ययम् ।  
 तैः सार्धं नृपतिं वृद्धं ततस्तं पर्युपासताम् ॥ ३०  
 ततो निशि महाराज धृतराष्ट्रः कुरुद्वहान् ।  
 जनार्दनं च मेधावी व्यसर्जयत वै गृहान् ॥ ३१  
 तेऽनुज्ञाता नृपतिना ययुः स्वं स्व निवेशनम् ।  
 धनंजयगृहानेव ययौ कृष्णस्तु वीर्यवान् ॥ ३२  
 तत्रार्चितो यथान्यायं सर्वकामैरुपस्थितः ।  
 कृष्णः सुष्वाप मेधावी धनजयसहायवान् ॥ ३३  
 प्रभातायां तु शर्वर्यां कृतपूर्वाह्निकक्रियौ ।  
 धर्मराजस्य भवनं जग्मतुः परमार्चितौ ।  
 यत्रास्ते स महामात्यो धर्मराजो महामनाः ॥ ३४  
 ततस्तौ तत्प्रविश्याथ ददृशाते महाबलौ ।  
 धर्मराजानमासीनं देवराजमिवाश्विनौ ॥ ३५  
 तौ समासाद्य राजानं वाष्पेयकुरुपुंगवौ ।

निषीदतुरनुज्ञातौ प्रीयमाणेन तेन वै ॥ ३६  
 ततः स राजा मेधावी विवक्षू प्रेक्ष्य तावुभौ ।  
 प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो वचनं राजसत्तमः ॥ ३७  
 विवक्षू हि युवां मन्ये वीरौ यदुकुरुद्वहौ ।  
 ब्रूत कर्तास्मि सर्व वां न चिरान्मा विचार्यताम् ॥  
 इत्युक्ते फल्गुनस्तत्र धर्मराजानमब्रवीन् ।  
 विनीतवदुपागम्य वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ३९  
 अयं चिरोपितो राजन्वासुदेवः प्रतापवान् ।  
 भवन्तं समनुज्ञाप्य पितरं द्रष्टुमिच्छति ॥ ४०  
 स गच्छेदभ्यनुज्ञातो भवता यदि मन्यसे ।  
 आनर्तनगरी वीरस्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ४१  
 युधिष्ठिर उवाच ।  
 पुण्डरीकाक्ष भद्रं ते गच्छ त्व मधुसूदन ।  
 पुरीं द्वारवतीमद्य द्रष्टुं शूरसुतं प्रसुम् ॥ ४२  
 रोचते मे महाबाहो गमन तव केशव ।  
 मातुलश्चिरदृष्टो मे त्वया देवी च देवकी ॥ ४३  
 मातुलं वसुदेवं त्वं बलदेवं च माधव ।  
 पूजयेथा महाप्राज्ञ मद्राक्येन यथार्हतः ॥ ४४  
 स्मरेथाश्चापि मां नित्यं भीमं च बलिनां वरम् ।  
 फलानं नकुलं चैव सहदेव च माधव ॥ ४५  
 आनर्तानवलोक्य त्वं पितरं च महाभुज ।  
 वृष्णींश्च पुनरागच्छेर्ह्यमेधे ममानघ ॥ ४६  
 स गच्छ रत्नान्यादाय विविधानि वसूनि च ।  
 यश्चाप्यन्यन्मनोज्ञं ते तदप्यादत्स्व सात्वत ॥ ४७  
 इयं हि वसुधा सर्वा प्रसादात्तव माधव ।  
 अस्मानुपगता वीर निहताश्चापि शत्रवः ॥ ४८  
 एवं ब्रुवति कौरव्ये धर्मराजे युधिष्ठिरे ।  
 वासुदेवो वरः पुंसामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४९  
 तवैव रत्नानि धनं च केवलम्  
 धरा च कृत्स्ना तु महाभुजाद्य वै ।

यद्यस्ति चान्यद्विणं गृहेषु मे  
 त्वमेव तस्येश्वर नित्यमीश्वरः ॥ ५०  
 तथेत्यथोक्तः प्रतिपूजितस्तदा  
 गदाप्रजो धर्मसुतेन वीर्यवान् ।  
 पितृष्वसामभ्यवदद्यथाविधि  
 संपूजितश्चाप्यगमत्प्रदाक्षिणम् ॥ ५१  
 तथा स सम्यक्प्रतिनन्दितस्तदा  
 तथैव सर्वैर्विदुरादिभिस्ततः ।  
 विनिर्ययौ नागपुराद्गदाप्रजो  
 रथेन दिव्येन चतुर्युजा हरिः ॥ ५२  
 रथं सुभद्रामधिरोप्य भामिनीं  
 युधिष्ठिरस्यानुमते जनार्दनः ।  
 पितृष्वसायाश्च तथा महाभुजो  
 विनिर्ययौ पौरजनाभिसंवृतः ॥ ५३  
 तमन्वगाद्धानरवर्यकेतनः  
 ससात्यकिर्माद्रवतीसुतावपि ।  
 अगाधबुद्धिर्विदुरश्च माधवं  
 स्वयं च भीमो गजराजविक्रमः ॥ ५४  
 निवर्तयित्वा कुरुराष्ट्रवर्धनां-  
 स्ततः स सर्वान्विदुरं च वीर्यवान् ।  
 जनार्दनो दारुकमाह सत्वरः  
 प्रचोदयाश्चानिति सात्यकिस्तदा ॥ ५५  
 ततो ययौ शत्रुगणप्रमर्दनः  
 शिनिप्रवीरानुगतो जनार्दनः ।  
 यथा निहत्यारिगणाञ्शतक्रतु-  
 र्दिवं तथानर्तपुरीं प्रतापवान् ॥ ५६  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

५२

वैशंपायन उवाच ।

तथा प्रयान्तं वाष्पेयं द्वास्कां भरतर्षभाः ।  
 परिष्वज्य न्यवर्तन्त सानुयात्राः परंतपाः ॥ १  
 पुनः पुनश्च वाष्पेयं पर्यष्वजत फल्गुनः ।  
 आ चक्षुर्विषयाच्चैनं ददर्श च पुनः पुनः ॥ २  
 कृच्छ्रेणैव च तां पार्थो गोविन्दे विनिवेशिताम् ।  
 संजहार तदा दृष्टिं कृष्णश्चाप्यपराजितः ॥ ३  
 तस्य प्रयाणे यान्यासन्निमित्तानि महात्मनः ।  
 बहून्यद्भुतरूपाणि तानि मे गदतः शृणु ॥ ४  
 वायुर्वेगेन महता रथस्य पुरतो बवौ ।  
 कुर्वन्निःशर्करं मार्गं विरजस्कमकण्टकम् ॥ ५  
 वर्षा वासवश्चापि तोयं शुचि सुगन्धि च ।  
 दिव्यानि चैव पुष्पाणि पुरतः शार्ङ्गधन्वनः ॥ ६  
 स प्रयातो महाबाहुः समेषु मरुधन्वसु ।  
 ददर्शाथ मुनिश्रेष्ठमुत्तङ्कममितौजसम् ॥ ७  
 स तं संपूज्य तेजस्वी मुनिं पृथुलोचनः ।  
 पूजितस्तेन च तदा पर्यपृच्छदनामयम् ॥ ८  
 स पृष्टः कुशलं तेन संपूज्य मधुसूदनम् ।  
 उत्तङ्को ब्राह्मणश्रेष्ठस्ततः पप्रच्छ माधवम् ॥ ९  
 कश्चिच्छौरे त्वया गत्वा कुरुपाण्डवसङ्ग तत् ।  
 कृतं सौभ्रात्रमचलं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १०  
 अभिसंधाय तान्वीरानुपावृत्तोऽसि केशव ।  
 संबन्धिनः सुदयितान्सततं वृष्णिपुङ्गव ॥ ११  
 कश्चित्पाण्डुसुताः पञ्च धृतराष्ट्रस्य चात्मजाः ।  
 लोकेषु विहरिष्यन्ति त्वया सह परंतप ॥ १२  
 स्वराष्ट्रेषु च राजानः कश्चित्प्राप्स्यन्ति वै सुखम् ।  
 कौरवेषु प्रशान्तेषु त्वया नाथेन माधव ॥ १३  
 या मे संभावना तात त्वयि नित्यमवर्तत ।  
 अपि सा सफला कृष्ण कृता ते भारतान्प्रति ॥ १४

वासुदेव उवाच ।

कृतो यत्नो मया ब्रह्मन्सौभ्रात्रे कौरवान्प्रति ।  
 न चाशक्यन्त संधातुं तेऽधर्मरुचयो मया ॥ १५  
 ततस्ते निधनं प्राप्ताः सर्वे ससुतबान्धवाः ।  
 न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं बुद्ध्या बलेन वा ।  
 महर्षे विदित नूनं सर्वमेतत्तवानघ ॥ १६  
 तेऽत्यक्रामन्मति मह्यं भीष्मस्य विदुरस्य च ।  
 ततो यमक्षय जग्मुः समासाद्येतरैतरम् ॥ १७  
 पञ्च वै पाण्डवाः शिष्टा हतमित्रा हतात्मजाः ।  
 धार्तराष्ट्राश्च निहताः सर्वे ससुतबान्धवाः ॥ १८  
 इत्युक्तवचने कृष्णे भृशं क्रोधसमन्वितः ।  
 उत्तङ्कः प्रत्युवाचैनं रोषादुत्फाल्य लोचने ॥ १९  
 यस्माच्छक्तेन ते कृष्ण न त्राताः कुरुपाण्डवाः ।  
 संबन्धिनः प्रियास्तस्माच्छष्प्येऽहं त्वामसंशयम् ॥  
 न च ते प्रसभं यस्मात्ते निगृह्य निवर्तिताः ।  
 तस्मान्मन्युपरीतस्त्वां शण्ड्यामि मधुसूदन ॥ २१  
 त्वया हि शक्तेन सता मिथ्याचारेण माधव ।  
 उपचीर्णाः कुरुश्रेष्ठा यस्त्वेतान्समुपेक्षथाः ॥ २२

वासुदेव उवाच ।

शृणु मे विस्तरेणेदं यद्वक्ष्ये भृगुनन्दन ।  
 गृहाणानुनयं चापि तपस्वी ह्यसि भार्गव ॥ २३  
 श्रुत्वा त्वमेतदध्यात्मं मुखेथाः शापमद्य वै ।  
 न च मां तपसालपेन शक्तोऽभिभवितुं पुमान् ॥  
 न च ते तपसो नाशमिच्छामि जपतां वर ।  
 तपस्ते सुमहदीप्तं गुरवश्चापि तोषिताः ॥ २५  
 कौमारं ब्रह्मचर्यं ते जानामि द्विजसत्तम ।  
 दुःखार्जितस्य तपसस्तस्मान्नेच्छामि ते व्ययम् ॥

इति श्रीमहाभारते भावमेधिकपर्वणि

द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥



५३

उत्तङ्ग उवाच ।

ब्रूहि केशव तत्त्वेन त्वमध्यात्ममनिन्दितम् ।  
श्रुत्वा श्रेयोऽभिधास्यामि शापं वा ते जनार्दन ॥ १

बासुदेव उवाच ।

तमो रजश्च सत्त्वं च विद्धि भावान्मदाश्रयान् ।  
तथा रुद्रान्वसूंश्चापि विद्धि मत्प्रभवान्द्विज ॥ २  
मयि सर्वाणि भूतानि सर्वभूतेषु चाप्यहम् ।  
स्थित इत्यभिजानीहि मा तेऽभूदत्र संशयः ॥ ३  
तथा दैत्यगणान्सर्वान्यक्षराक्षसपन्नगान् ।  
गन्धर्वाप्सरसश्चैव विद्धि मत्प्रभवान्द्विज ॥ ४  
सदसश्चैव यत्प्रादुरव्यक्तं व्यक्तमेव च ।  
अक्षरं च क्षरं चैव सर्वमेतन्मदात्मकम् ॥ ५  
ये चाश्रमेषु वै धर्माश्चतुर्षु विहिता मुने ।  
दैवानि चैव कर्माणि विद्धि सर्वं मदात्मकम् ॥ ६  
असञ्च सदसश्चैव यद्विश्वं सदसतः परम् ।  
ततः परं नास्ति चैव देवदेवात्सनातनात् ॥ ७  
ओकारप्रभवान्वेदान्विद्धि मां त्वं भृगूद्ब्रह्म ।  
यूपं सोमं तथैवेह त्रिदशाप्यायनं मखे ॥ ८  
होतारमपि हव्यं च विद्धि मां भृगुनन्दन ।  
अध्वर्युः कल्पकश्चापि हविः परमसंस्कृतम् ॥ ९  
उद्गाता चापि मां स्तौति गीतघोषैर्महाध्वरे ।  
प्रायश्चित्तेषु मां ब्रह्मण्शान्तिमङ्गलवाचकाः ।  
स्तुवन्ति विश्वकर्माणं सततं द्विजसत्तमाः ॥ १०  
विद्धि मह्यं सुतं धर्ममग्रजं द्विजसत्तम ।  
मानसं दयितं विप्र सर्वभूतदयात्मकम् ॥ ११  
तत्राहं वर्तमानैश्च निवृत्तैश्चैव मानवैः ।  
बह्वीः संसरमाणो वै योनीर्हि द्विजसत्तम ॥ १२  
धर्मसंरक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ।  
तैस्तैर्वेषैश्च रूपैश्च त्रिषु लोकेषु भार्गव ॥ १३

अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शक्रोऽथ प्रभवाप्ययः ।

भूतप्रामस्य सर्वस्य स्रष्टा संहार एव च ॥ १४

अधर्मे वर्तमानानां सर्वेषामहमप्युत ।

धर्मस्य सेतुं बध्नामि चलिते चलिते युगे ।

तास्ता योनीः प्रविश्याहं प्रजानां हितकाम्यया ॥

यदा त्वहं देवयोनौ वर्तामि भृगुनन्दन ।

तदाहं देववत्सर्वमाचरामि न संशयः ॥ १६

तदा गन्धर्वयोनौ तु वर्तामि भृगुनन्दन ।

तदा गन्धर्ववक्षेष्टाः सर्वाश्चेष्टामि भार्गव ॥ १७

नागयोनौ यदा चैव तदा वर्तामि नागवत् ।

यक्षराक्षसयोनीश्च यथावद्विचराम्यहम् ॥ १८

मानुष्ये वर्तमाने तु कृपण याचिता मया ।

न च ते जातसंमोहा वचो गृह्णन्ति मे हितम् ॥

भयं च महदुद्दिश्य त्रासिताः कुरवो मया ।

क्रुद्धेव भूत्वा च पुनर्यथावदनुदर्शिताः ॥ २०

तेऽधर्मेणेह संयुक्ताः परीताः कालधर्मणा ।

धर्मेण निहता युद्धे गताः स्वर्गं न संशयः ॥ २१

लोकेषु पाण्डवाश्चैव गताः ख्यातिं द्विजोत्तम ।

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

५४

उत्तङ्ग उवाच ।

अभिजानामि जगतः कर्तारं त्वां जनार्दन ।

नूनं भवत्प्रसादोऽयमिति मे नास्ति संशयः ॥ १

चित्तं च सुप्रसन्नं मे त्वद्भावगतमच्युत ।

विनिवृत्तश्च मे कोप इति विद्धि परंतप ॥ २

यदि त्वनुग्रहं कच्चित्त्वतोऽर्होऽहं जनार्दन ।

द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं तन्निदर्शय ॥ ३

वैशंपायन उवाच ।

ततः स तस्मै प्रीतात्मा दर्शयामास तद्वपुः ।  
शाश्वत वैष्णवं धीमान्दृष्टो यद्धनजयः ॥ ४  
स ददर्श महात्मानं विश्वरूपं महाभुजम् ।  
विस्मयं च ययौ विप्रस्तदृष्ट्वा रूपमेश्वरम् ॥ ५

उत्तङ्क उवाच ।

विश्वकर्मन्मस्तेऽस्तु यस्य ते रूपसीदृशम् ।  
पद्भ्यां ते पृथिवी व्याप्ता शिरसा चावृतं नभः ॥  
द्यावापृथिव्योर्यन्मध्यं जठरेण तदावृतम् ।  
भुजाभ्यामावृताश्चाशास्त्वमिदं सर्वमच्युत ॥ ७  
संहरस्व पुनर्देव रूपमक्षय्यमुत्तमम् ।  
पुनस्त्वां स्वेन रूपेण द्रष्टुमिच्छामि शाश्वतम् ॥ ८

वैशंपायन उवाच ।

तमुवाच प्रसन्नात्मा गोविन्दो जनमेजय ।  
वरं वृणीष्वेति तदा तमुत्तङ्कोऽब्रवीदिदम् ॥ ९  
पर्याप्त एष एवाद्य वरस्त्वत्तो महाद्युते ।  
यत्ते रूपमिदं कृष्ण पश्यामि प्रभवाप्ययम् ॥ १०  
तमब्रवीत्पुनः कृष्णो मा त्वमत्र विचारय ।  
अवश्यमेतत्कर्तव्यममोघं दर्शनं मम ॥ ११

उत्तङ्क उवाच ।

अवश्यकरणीयं वै यद्येतन्मन्यसे विभो ।  
तोयमिच्छामि यत्रेष्टं मरुष्वेतद्धि दुर्लभम् ॥ १२

वैशंपायन उवाच ।

ततः संहृत्य तत्तेजः प्रोवाचोत्तङ्कमीश्वरः ।  
एष्टव्ये सति चिन्त्योऽहमित्युक्त्वा द्वारकां ययौ ॥  
ततः कदाचिद्भगवानुत्तङ्कस्तोयकाङ्क्षया ।  
वृषितः परिचक्राम मरौ सस्मार चाच्युतम् ॥ १४  
ततो दिग्वाससं धीमान्मातङ्गं मलपङ्क्तिनम् ।  
अपश्यत मरौ तस्मिन्श्वयूथपरिवारितम् ॥ १५

भीषण बद्धनिस्त्रिंशं बाणकार्मुकधारिणम् ।

तस्याधः स्रोतसोऽपश्यद्वारि भूरि द्विजोत्तम ॥ १६  
स्मरन्नेव च तं प्राह मातङ्गः प्रहसन्निव ।  
एष्टुत्तङ्क प्रतीच्छस्व मत्तो वारि भृगुद्वह ।  
कृपा हि मे सुमहती त्वां दृष्ट्वा तृट्समादृतम् ॥ १७  
इत्युक्तस्तेन स मुनिस्तत्तोयं नाभ्यनन्दत ।  
चिक्षेप च स तं धीमान्वाग्भिरुग्राभिरच्युतम् ॥ १८  
पुनः पुनश्च मातङ्गः पिबस्वेति तमब्रवीत् ।  
न चापिबत्स सक्रोधः क्षुभितेनान्तरात्मना ॥ १९  
स तथा निश्चयात्तन प्रत्याख्यातो महात्मना ।  
श्वभिः स महाराज तत्रैवान्तरधीयत ॥ २०  
उत्तङ्कस्तं तथा दृष्ट्वा ततो व्रीडितमानसः ।  
मेने प्रलब्धमात्मानं कृष्णेनामित्रघातिना ॥ २१  
अथ तेनैव मार्गेण शङ्खचक्रगदाधरः ।  
आजगाम महाबाहुस्तङ्कश्चैनमब्रवीत् ॥ २२  
न युक्तं तादृशं दातुं त्वया पुरुषसत्तम ।  
सलिलं विप्रमुख्येभ्यो मातङ्गस्रोतसा विभो ॥ २३  
इत्युक्तवचनं धीमान्महाबुद्धिर्जनार्दनः ।  
उत्तङ्कं श्लक्ष्णया वाचा सान्त्वयन्निदमब्रवीत् ॥ २४  
यादृशेनेह रूपेण योग्यं दातुं वृतेन वै ।  
तादृशं खलु मे दत्तं त्वं तु तन्नावबुध्यसे ॥ २५  
मया त्वदर्थमुक्तो हि वज्रपाणिः पुनर्दरः ।  
उत्तङ्कायामृतं देहि तोयरूपमिति प्रभुः ॥ २६  
स मामुवाच देवेन्द्रो न मर्त्योऽमर्त्यतां व्रजेत् ।  
अन्यमस्मै वरं देहीत्यसकृद्भगुनन्दन ॥ २७  
अमृतं देयमित्येव मयोक्तः स शचीपतिः ।  
स मां प्रसाद्य देवेन्द्रः पुनरेवेदमब्रवीत् ॥ २८  
यदि देयमवश्यं वै मातङ्गोऽहं महाद्युते ।  
भूत्वामृतं प्रदास्यामि भार्गवाय महात्मने ॥ २९  
यद्येवं प्रतिगृह्णाति भार्गवोऽमृतमद्य वै ।

प्रदातुमेष गच्छामि भार्गवायामृतं प्रभो ।  
 प्रत्याख्यातस्त्वं तेन न दद्यामिति भार्गव ॥ ३०  
 स तथा समयं कृत्वा तेन रूपेण वासवः ।  
 उपस्थितस्त्वया चापि प्रत्याख्यातोऽमृतं ददत् ।  
 चण्डालरूपी भगवान्सुमहांस्ते व्यतिक्रमः ॥ ३१  
 यत्तु शक्यं मया कर्तुं भूय एव तवेप्सितम् ।  
 तोयेप्सां तव दुर्धर्षं करिष्ये सफलमहम् ॥ ३२  
 येष्वहःसु तव ब्रह्मसलिलेच्छा भविष्यति ।  
 तदा मरौ भविष्यन्ति जलपूर्णाः पयोधराः ॥ ३३  
 रसवच्च प्रदास्यन्ति ते तोयं भृगुनन्दन ।  
 उत्तङ्कमेघा इत्युक्ताः ख्यातिं यास्यन्ति चापि ते ॥  
 इत्युक्तः प्रीतिमान्विप्रः कृष्णेन स वभूव ह ।  
 अद्याप्युत्तङ्कमेघाश्च मरौ वर्षन्ति भारत ॥ ३५  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

५५

जनमेजय उवाच ।

उत्तङ्कः केन तपसा संयुक्तः सुमहातपाः ।  
 यः शापं दातुकामोऽभूद्विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ १  
 वैशंपायन उवाच ।  
 उत्तङ्को महता युक्तस्तपसा जनमेजय ।  
 गुरुभक्तः स तेजस्वी नान्यं कंचिदपूजयत् ॥ २  
 सर्वेषामृषिपुत्राणामेष चासीन्मनोरथः ।  
 औत्तङ्कीं गुरुवृत्तिं वै प्राप्नुयामिति भारत ॥ ३  
 गौतमस्य तु शिष्याणां बहूनां जनमेजय ।  
 उत्तङ्केऽभ्यधिका प्रीतिः स्नेहश्चैवाभवत्तदा ॥ ४  
 स तस्य दमशौचाभ्यां विक्रान्तेन च कर्मणा ।  
 सम्यक्चैवोपचारेण गौतमः प्रीतिमानभूत् ॥ ५  
 अथ शिष्यसहस्राणि समनुज्ञाय गौतमः ।  
 उत्तङ्कं परया प्रीता नाभ्यनुज्ञातुमैच्छत ॥ ६

तं क्रमेण जरा तात प्रतिपेदे महामुनिम् ।  
 न चान्वबुध्यत तदा स मुनिर्गुरुवत्सलः ॥ ७  
 ततः कदाचिद्राजेन्द्र काष्ठाभ्यानयितुं ययौ ।  
 उत्तङ्कः काष्ठभारं च महान्तं समुपानयत् ॥ ८  
 स तु भाराभिभूतात्मा काष्ठभारमरिदम् ।  
 निष्पिपेष क्षितौ राजन्परिश्रान्तो बुभुक्षितः ॥ ९  
 तस्य काष्ठे विलग्राभूजटा रूप्यसमप्रभा ।  
 ततः काष्ठैः सह तदा पपात धरणीतले ॥ १०  
 ततः स भारनिष्पिष्टः क्षुधाविष्टश्च भार्गवः ।  
 दृष्ट्वा तां वयसोऽवस्थां रुरोदार्तस्वरं तदा ॥ ११  
 ततो गुरुमुता तस्य पद्मपत्रनिभेक्षणा ।  
 जग्राहाश्रुणि सुश्रोणी करेण पृथुलोचना ।  
 पितुर्नियोगाद्धर्मज्ञा शिरसावनता तदा ॥ १२  
 तस्या निपेततुर्दग्धौ करौ तैरश्रुविन्दुभिः ।  
 न हि तानश्रुपातान्वै शक्ता धारयितुं मही ॥ १३  
 गौतमस्त्वब्रवीद्विप्रमुत्तङ्कं प्रीतिमानसः ।  
 कस्मात्तात तवाद्येह शोकोत्तरमिदं मनः ।  
 स स्वैरं ब्रूहि विप्रर्षे श्रोतुमिच्छामि ते वचः ॥ १४

उत्तङ्क उवाच ।

भवद्गतेन मनसा भवत्प्रियचिकीर्षया ।  
 भवद्वक्तिगतेनेह भवद्भावानुगेन च ॥ १५  
 जरेयं नावबुद्धा मे नाभिज्ञातं सुखं च मे ।  
 शतवर्षोषितं हि त्वं न मामभ्यनुजानथाः ॥ १६  
 भवता ह्यभ्यनुज्ञाताः शिष्याः प्रत्यवरा मया ।  
 उपपन्ना द्विजश्रेष्ठ शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १७

गौतम उवाच ।

त्वत्प्रीतियुक्तेन मया गुरुशुश्रूषया तव ।  
 व्यतिक्रामन्महान्कालो नावबुद्धो द्विजर्षभ ॥ १८  
 किं त्वद्य यदि ते श्रद्धा गमनं प्रति भार्गव ।  
 अनुज्ञां गृह्य मत्तस्त्वं गृहान्गच्छस्व मा चिरम् ॥

उत्तङ्क उवाच ।

गुर्वर्थं कं प्रयच्छामि ब्रूहि त्वं द्विजसत्तम ।  
तमुपाकृत्य गच्छेयमनुज्ञातस्त्वया विभो ॥ २०

गौतम उवाच ।

दक्षिणा परितोपो वै गुरुणां सद्भिर्बुध्यते ।  
तव ह्याचरतो ब्रह्मस्तुष्टोऽहं वै न संशयः ॥ २१  
इत्थं च परितुष्ट मां विजानीहि भृगूद्वह ।  
युवा षोडशवर्षो हि यदद्य भविता भवान् ॥ २२  
ददामि पत्नीं कन्यां च स्वां ते दुहितरं द्विज ।  
एतामृते हि नान्या वै त्वत्तेजोऽर्हति सेवितुम् ॥  
ततस्तां प्रतिजग्राह युवा भूत्वा यशस्विनीम् ।  
गुरुणा चाभ्यनुज्ञातो गुरुपत्नीमथाब्रवीत् ॥ २४  
किं भवत्यै प्रयच्छामि गुर्वर्थं विनियुङ्क्त माम् ।  
प्रियं हि तव काङ्क्षामि प्राणैरपि धनैरपि ॥ २५  
यदुर्लभं हि लोकेऽस्मिन्तत्तनमत्यद्भुतं भवेत् ।  
तदानयेयं तपसा न हि मेऽत्रास्ति संशयः ॥ २६

अहल्योवाच ।

परितुष्टास्मि ते पुत्र नित्यं भगवता सह ।  
पर्याप्तये तद्भद्रं ते गच्छ तात यथेच्छकम् ॥ २७

वैशंपायन उवाच ।

उत्तङ्कस्तु महाराज पुनरेवाब्रवीद्वचः ।  
आज्ञापयस्व मां मातः कर्तव्यं हि प्रियं तव ॥ २८

अहल्योवाच ।

सौदासपत्न्या विदिते दिव्ये वै मणिकुण्डले ।  
ते समानय भद्रं ते गुर्वर्थः सुकृतो भवेत् ॥ २९  
स तथेति प्रतिश्रुत्य जगाम जनमेजय ।  
गुरुपत्नीप्रियार्थं वै ते समानयितु तदा ॥ ३०  
स जगाम ततः शीघ्रमुत्तङ्को ब्राह्मणर्षभः ।  
सौदासं पुरुषादं वै भिक्षितुं मणिकुण्डले ॥ ३१

गौतमस्त्वब्रवीत्पत्नीमुत्तङ्को नाद्य दृश्यते ।

इति पृष्ट्वा तमाचष्ट कुण्डलार्थं गतं तु वै ॥ ३२  
ततः प्रोवाच पत्नीं स न ते सम्यगिदं कृतम् ।  
शप्तः स पार्थिवो नूनं ब्राह्मणं तं वधिष्यति ॥ ३३

अहल्योवाच ।

अजानन्त्या नियुक्तः स भगवन्ब्राह्मणोऽद्य मे ।  
भवत्प्रसादान्न भयं किञ्चित्तस्य भविष्यति ॥ ३४  
इत्युक्तः प्राह तां पत्नीमेवमस्त्विति गौतमः ।  
उत्तङ्कोऽपि वने शून्ये राजानं तं ददर्श ह ॥ ३५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

५६

वैशंपायन उवाच ।

स त दृष्ट्वा तथाभूतं राजानं घोरदर्शनम् ।  
दीर्घश्मश्रुधरं नृणां शोणितेन समुक्षितम् ॥ १  
चकार न व्यथां विप्रो राजा त्वेनमथाब्रवीत् ।  
प्रत्युत्थाय महातेजा भयकर्ता यमोपमः ॥ २  
दिष्ट्या त्वमसि कल्याण षष्ठे काले ममान्तिकम् ।  
भक्षं मृगयमाणस्य संप्राप्तो द्विजसत्तम ॥ ३

उत्तङ्क उवाच ।

राजन्गुर्वर्थिनं विद्धि चरन्तं मामिहागतम् ।  
न च गुर्वर्थमुद्युक्तं हिंस्यमादुर्मनीषिणः ॥ ४

राजोवाच ।

षष्ठे काले ममाहारो विहितो द्विजसत्तम ।  
न च शक्यः समुत्सृष्टुं क्षुधितेन मयाद्य वै ॥ ५

उत्तङ्क उवाच ।

एवमस्तु महाराज समयः क्रियतां तु मे ।  
गुर्वर्थमभिनिर्वर्त्य पुनरेष्यामि ते वशम् ॥ ६  
संश्रुतश्च मया योऽर्थो गुरवे राजसत्तम ।

त्वदधीनः स राजेन्द्र तं त्वा भिक्षे नरेश्वर ॥ ७  
 ददासि विप्रमुख्येभ्यस्त्वं हि रत्नानि सर्वशः ।  
 दाता त्वं च नरव्याघ्र पात्रभूतः क्षिताविह ।  
 पात्रं प्रतिग्रहे चापि विद्धि मां नृपसत्तम ॥ ८  
 उपाकृत्य गुरोरर्थं त्वदायत्तमरिदम् ।  
 समयेनेह राजेन्द्र पुनरेष्यामि ते वशम् ॥ ९  
 सत्यं ते प्रतिजानामि नात्र मिथ्यास्ति किञ्चन ।  
 अनृतं नोक्तपूर्वं मे स्वैरेष्वपि कुतोऽन्यथा ॥ १०

सौदास उवाच ।

यदि मत्तस्त्वदायतो गुर्वर्थः कृत एव सः ।  
 यदि चास्मि प्रतिग्राह्यः सांप्रतं नद्वीहि मे ॥ ११

उत्तङ्क उवाच ।

प्रतिग्राह्यो मतो मे त्वं सदैव पुरुषर्षभ ।  
 सोऽहं त्वामनुसंप्राप्तो भिक्षितुं मणिकुण्डले ॥ १२

सौदास उवाच ।

पत्न्यास्ते मम विप्रर्षे रुचिरे मणिकुण्डले ।  
 वरयार्थं त्वमन्यं वै तं ते दास्यामि सुव्रत ॥ १३

उत्तङ्क उवाच ।

अलं ते व्यपदेशेन प्रमाणं यदि ते वयम् ।  
 प्रयच्छ कुण्डले मे त्वं सत्यवाग्भव पार्थिव ॥ १४

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्तस्त्वब्रवीद्राजा तमुत्तङ्कं पुनर्वचः ।  
 गच्छ मद्रचनादेवीं ब्रूहि देहीति सत्तम ॥ १५  
 सैवमुक्ता त्वया नूनं मद्राक्येन शुचिस्मिता ।  
 प्रदास्यति द्विजश्रेष्ठ कुण्डले ते न संशयः ॥ १६

उत्तङ्क उवाच ।

क पत्नी भवतः शक्या मया द्रष्टुं नरेश्वर ।  
 स्वयं वापि भवान्पत्नीं किमर्थं नोपसर्पति ॥ १७

सौदास उवाच ।

द्रक्ष्यते तां भवानद्य कस्मिंश्चिद्वननिर्झरे ।  
 षष्ठे काले न हि मया सा शक्या द्रष्टुमद्य वै ॥  
 उत्तङ्कस्तु तथोक्तः स जगाम भरतर्षभ ।  
 मदयन्तीं च दृष्ट्वा सोऽज्ञापयत्स्वं प्रयोजनम् ॥ १९  
 सौदासवचनं श्रुत्वा ततः सा पृथुलोचना ।  
 प्रत्युवाच महाबुद्धिमुत्तङ्कं जनमेजय ॥ २०  
 एवमेतन्महाब्रह्मन्नानृतं वदसेऽनघ ।  
 अभिज्ञानं तु किञ्चित्त्वं समानेतुमिहार्हसि ॥ २१

इमे हि दिव्ये मणिकुण्डले मे

देवाश्च यक्षाश्च महोरगाश्च ।

तैस्तैरुपायैः परिहर्तुकामा-

श्छिद्रेषु नित्यं परितर्कयन्ति ॥ २२

निक्षिप्तमेतद्भुवि पन्नगास्तु

रत्नं समासाद्य परामृषेयुः ।

यक्षास्तथोच्छिष्टधृतं सुराश्च

निद्रावशं त्वा परिधर्षयेयुः ॥ २३

छिद्रेष्वेतेषु हि सदा ह्यधृष्येषु द्विजर्षभ ।

देवराक्षसनागानामप्रमत्तेन धार्यते ॥ २४

स्यन्देते हि दिवा रुक्मं रात्रौ च द्विजसत्तम ।

नक्तं नक्षत्रताराणां प्रभामाक्षिप्य वर्तते ॥ २५

एते ह्यामुच्य भगवन्क्षुत्पिपासाभयं कुतः ।

विषाग्निश्चापदेभ्यश्च भयं जातु न विद्यते ॥ २६

ह्रस्वेन चैते आमुक्ते भवतो ह्रस्वके तदा ।

अनुरूपेण चामुक्ते तत्प्रमाणे हि जायतः ॥ २७

एवंविधे ममैते वै कुण्डले परमार्चिते ।

त्रिषु लोकेषु विख्याते तदभिज्ञानमानय ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

५७

वैशंपायन उवाच ।

स मित्रसहमासाद्य त्वभिज्ञानमयाचत ।  
तस्मै ददावभिज्ञानं स चेक्ष्वाकुवरस्तदा ॥ १

सौदास उवाच ।

न चैवैषा गतिः क्षेम्या न चान्या विद्यते गतिः ।  
एतन्मे मतमाज्ञाय प्रयच्छ मणिकुण्डले ॥ २

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्तस्तामुत्तङ्कस्तु भर्तुर्वाक्यमथाब्रवीत् ।  
श्रुत्वा च सा ततः प्रादात्तस्मै ते मणिकुण्डले ॥ ३  
अवाप्य कुण्डले ते तु राजानं पुनरब्रवीत् ।  
किमेतद्ब्रुह्यवचनं श्रोतुमिच्छामि पार्थिव ॥ ४

सौदास उवाच ।

प्रजा निसर्गाद्विप्राण्यै क्षत्रियाः पूजयन्ति ह ।  
विप्रेभ्यश्चापि बहवो दोषाः प्रादुर्भवन्ति नः ॥ ५  
सोऽहं द्विजेभ्यः प्रणतो विप्रादोषमवाप्तवान् ।  
गतिमन्यां न पश्यामि मदयन्तीसहायवान् ।  
स्वर्गद्वारस्य गमने स्थाने चेह द्विजोत्तम ॥ ६  
न हि राज्ञा विशेषेण विरुद्धेन द्विजातिभिः ।  
शक्यं नृलोके संस्थातुं प्रेत्य वा सुखमेधितुम् ॥ ७  
तदिष्टे ते मयैवैते दत्ते स्वे मणिकुण्डले ।  
यः कृतस्तेऽद्य समयः सफलं तं कुरुष्व मे ॥ ८

उत्तङ्क उवाच ।

राजंस्तथेह कर्तास्मि पुनरेष्यामि ते वशम् ।  
प्रभ्रं तु कंचित्प्रष्टुं त्वां व्यवसिष्ये परंतप ॥ ९

सौदास उवाच ।

ब्रूहि विप्र यथाकामं प्रतिवक्तास्मि ते वचः ।  
छेत्तास्मि संशयं तेऽद्य न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥

उत्तङ्क उवाच ।

प्रादुर्वाक्संगतं मित्रं धर्मनैपुण्यदर्शिनः ।  
मित्रेषु यश्च विषमः स्तेन इत्येव तं विदुः ॥ ११  
स भवान्मित्रतामद्य संप्राप्तो मम पार्थिव ।  
स मे बुद्धिं प्रयच्छस्व समां बुद्धिमतां वर ॥ १२  
अवाप्तार्थोऽहमयेह भवांश्च पुरुषादकः ।  
भवत्सकाशमागन्तु क्षम मम न वेति वा ॥ १३

सौदास उवाच ।

क्षमं चेदिह वक्तव्यं मया द्विजवरोत्तम ।  
मत्समीपं द्विजश्रेष्ठ नागन्तव्यं कथंचन ॥ १४  
एवं तव प्रपश्यामि श्रेयो भृगुकुलोद्बह ।  
आगच्छतो हि ते विप्र भवेन्मृत्युरसंशयम् ॥ १५

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्तः स तदा राज्ञा क्षमं बुद्धिमता हितम् ।  
समनुज्ञाप्य राजानमहल्यां प्रति जग्मिवान् ॥ १६  
गृहीत्वा कुण्डले दिव्ये गुरुपत्न्याः प्रियंकरः ।  
जवेन महता प्रायाद्व्रौतमस्याश्रमं प्रति ॥ १७  
यथा तयो रक्षणं च मदयन्त्याभिभाषितम् ।  
तथा ते कुण्डले बद्ध्वा तथा कृष्णाजिनेऽनयत् ॥  
स कस्मिंश्चित्क्षुधाविष्टः फलभारसमन्वितम् ।  
बित्त्वं ददर्श कस्मिंश्चिदारुरोह क्षुधान्वितः ॥ १९  
शाखास्वासज्य तस्यैव कृष्णाजिनमरिदम् ।  
यस्मिंस्ते कुण्डले बद्धे तदा द्विजवरेण वै ॥ २०  
विशीर्णबन्धने तस्मिन्गते कृष्णाजिने महीम् ।  
अपश्यद्भुजगः कश्चित्ते तत्र मणिकुण्डले ॥ २१  
ऐरावतकुलोत्पन्नः शीघ्रो भूत्वा तदा स वै ।  
विदश्यास्येन वल्मीकं विवेशाथ स कुण्डले ॥ २२  
ह्रियमाणे तु दृष्ट्वा स कुण्डले भुजगेन ह ।  
पपात वृक्षात्सोद्वेगो दुःखात्परमकोपनः ॥ २३

स दण्डकाष्ठमादाय वल्मीकमखनत्तदा ।  
 क्रोधाकर्षाभितप्तान्नस्ततो वै द्विजपुंगवः ॥ २४  
 तस्य वेगमसङ्गं तमसहन्ती वसुंधरा ।  
 दण्डकाष्ठाभितुन्नाङ्गी चचाल भृशमातुरा ॥ २५  
 ततः खनत एवाथ विप्रर्षेर्धरणीतलम् ।  
 नागलोकस्य पन्थानं कर्तुकामस्य निश्चयात् ॥ २६  
 रथेन हरियुक्तेन तं देशमुपजग्मिवान् ।  
 वज्रपाणिर्महातेजा ददर्श च द्विजोत्तमम् ॥ २७  
 स तु तं ब्राह्मणो भूत्वा तस्य दुःखेन दुःखितः ।  
 उत्तङ्कमब्रवीत्तात नैतच्छक्यं त्वयेति वै ॥ २८  
 इतो हि नागलोको वै योजनानि सहस्रशः ।  
 न दण्डकाष्ठसाध्यं च मन्ये कार्यमिदं तव ॥ २९

उत्तङ्क उवाच ।

नागलोके यदि ब्रह्मज्ञ शक्ये कुण्डले मया ।  
 प्राप्तुं प्राणान्विमोक्ष्यामि पश्यतस्ते द्विजोत्तम ॥ ३०  
 यदा स नाशकस्तस्य निश्चयं कर्तुमन्यथा ।  
 वज्रपाणिस्तदा दण्डं वज्रास्त्रेण युयोज ह ॥ ३१  
 ततो वज्रप्रहारैस्तैर्दार्यमाणा वसुंधरा ।  
 नागलोकस्य पन्थानमकरोज्जनमेजय ॥ ३२  
 स तेन मार्गेण तदा नागलोकं विवेश ह ।  
 ददर्श नागलोकं च योजनानि सहस्रशः ॥ ३३  
 प्राकारनिचयैर्दिव्यैर्मणिमुक्ताभ्यलंकृतैः ।  
 उपपन्नं महाभाग शातकुम्भमयैस्तथा ॥ ३४  
 वापीः स्फटिकसोपाना नदीश्च विमलोदकाः ।  
 ददर्श वृक्षांश्च बहून्नानाद्विजगणायुतान् ॥ ३५  
 तस्य लोकस्य च द्वारं ददर्श स भृगूद्वहः ।  
 पञ्चयोजनविस्तारमायतं शतयोजनम् ॥ ३६  
 नागलोकमुत्तङ्कस्तु प्रेक्ष्य दीनोऽभवत्तदा ।  
 निराशश्चाभवत्तात कुण्डलाहरणे पुनः ॥ ३७  
 तत्र प्रोवाच तुरगस्तं कृष्णश्चेतवालिधिः ।

ताम्रास्यनेत्रः कौरव्य प्रज्वलन्निव तेजसा ॥ ३८  
 धमस्त्वापानमेतन्मे ततस्त्वं विप्र लब्धसे ।  
 ऐरावतसुतेनेह तवार्नीते हि कुण्डले ॥ ३९  
 मा जुगुप्सां कृथाः पुत्र त्वमत्रार्थे कथंचन ।  
 त्वयैतद्वि समाचीर्णं गौतमस्याश्रमे तदा ॥ ४०

उत्तङ्क उवाच ।

कथं भवन्तं जानीयामुपाध्यायाश्रमं प्रति ।  
 यन्मया चीर्णपूर्वं च श्रोतुमिच्छामि तद्व्यहम् ॥ ४१  
 अथ उवाच ।

गुरोर्गुरुं मां जानीहि ज्वलितं जातवेदसम् ।  
 त्वया ह्यहं सदा वत्स गुरोरर्थेऽभिपूजितः ॥ ४२  
 सततं पूजितो विप्र शुचिना भृगुनन्दन ।  
 तस्माच्छ्रेयो विधास्यामि तवैवं कुरु मा चिरम् ॥  
 इत्युक्तः स तथाकार्षीदुत्तङ्कश्चित्रभानुना ।  
 घृतार्चिः प्रीतिमांश्चापि प्रजज्वाल दिधक्षया ॥ ४४  
 ततोऽस्य रोमकूपेभ्यो ध्यायमानस्य भारत ।  
 घनः प्रादुरभूद्भूमो नागलोकभयावहः ॥ ४५  
 तेन धूमेन सहसा वर्धमानेन भारत ।  
 नागलोके महाराज न प्रज्ञायत किंचन ॥ ४६  
 हाहाकृतमभूत्सर्वमैरावतनिवेशनम् ।  
 वासुकिप्रमुखानां च नागानां जनमेजय ॥ ४७  
 न प्रकाशन्त वेश्मानि धूमरुद्धानि भारत ।  
 नीहारसंवृतानीह वनानि गिरयस्तथा ॥ ४८  
 ते धूमरक्तनयना वह्नितेजोभितापिताः ।  
 आजग्मुर्निश्चयं ज्ञातुं भार्गवस्यातितेजसः ॥ ४९  
 श्रुत्वा च निश्चयं तस्य महर्षेस्तिग्मतेजसः ।  
 संभ्रान्तमनसः सर्वे पूजां चक्रुर्यथाविधि ॥ ५०  
 सर्वे प्राञ्जलयो नागा वृद्धबालपुरोगमाः ।  
 शिरोभिः प्रणिपत्योचुः प्रसीद भगवन्निति ॥ ५१  
 प्रसाद्य ब्राह्मणं ते तु पादमर्च्य निवेद्य च ।

प्रायच्छत्कुण्डले दिव्ये पन्नगाः परमार्चिते ॥ ५२  
ततः संपूजितो नागैस्तत्रोत्तङ्कः प्रतापवान् ।  
अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा जगाम गुरुसद्व तत् ॥ ५३  
स गत्वा त्वरितो राजन्गौतमस्य निवेशनम् ।  
प्रायच्छत्कुण्डले दिव्ये गुरुपत्न्यै तदानघ ॥ ५४  
एवं महात्मना तेन त्रील्लोकाञ्जनमेजय ।  
परिक्रम्याहृते दिव्ये ततस्ते मणिकुण्डले ॥ ५५  
एवंप्रभावः स मुनिरुत्तङ्को भरतर्षभ ।  
परेण तपसा युक्तो यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ५६  
इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

५८

जनमेजय उवाच ।

उत्तङ्काय वरं दत्त्वा गोविन्दो द्विजसत्तम ।  
अत ऊर्ध्वं महाबाहुः किं चकार महायशः ॥ १

वैशंपायन उवाच ।

दत्त्वा वरमुत्तङ्काय प्रायात्सालकिना सह ।  
द्वारकामेव गोविन्दः शीघ्रवेगैर्महाहयैः ॥ २  
सरांसि च नदीश्चैव वनानि विविधानि च ।  
अतिक्रम्य ससादाथ रम्यां द्वारवतीं पुरीम् ॥ ३  
वर्तमाने महाराज महे रैवतकस्य च ।  
उपायात्पुण्डरीकाक्षो युयुधानानुगस्तदा ॥ ४  
अलंकृतस्तु स गिरिर्नारूपविचित्रितैः ।  
बभौ रुक्ममयैः काशैः सर्वतः पुरुषर्षभ ॥ ५  
काश्चनस्रग्भिरग्न्याभिः सुमनोभिस्तथैव च ।  
वासोभिश्च महाशैलः कल्पवृक्षैश्च सर्वशः ॥ ६  
दीपवृक्षैश्च सौवर्णैरभीक्ष्णमुपशोभितः ।  
गुहानिर्झरदेशेषु दिवाभूतो बभूव ह ॥ ७  
पताकाभिर्विचित्राभिः सघण्टाभिः समन्ततः ।  
पुंभिः स्त्रीभिश्च संघुष्टः प्रगीत इव चाभवत् ।

अतीव प्रेक्षणीयोऽभून्मेरुमुनिगणैरिव ॥ ८  
मत्तानां हृष्टरूपाणां स्त्रीणां पुंसां च भारत ।  
गायतां पर्वतेन्द्रस्य दिवस्पृगिव निस्वनः ॥ ९  
प्रमत्तमत्तसंमत्तक्ष्वेडितोत्कृष्टसंकुला ।  
तथा किलकिलाशब्दैर्भूरभूत्सुमनोहरा ॥ १०  
विपणापणवानरम्यो भक्ष्यभोज्यविहारवान् ।  
बल्लमाल्योत्करयुतो वीणावेणुमृदङ्गवान् ॥ ११  
सुरामैरेयमिश्रेण भक्ष्यभोज्येन चैव ह ।  
दीनान्धकृपणादिभ्यो दीयमानेन चानिशम् ।  
बभौ परमकल्याणो महस्तस्य महागिरेः ॥ १२  
पुण्यावसथवान्वीर पुण्यकृद्भिर्निषेवितः ।  
विहारो वृष्णिवीराणां महे रैवतकस्य ह ।  
स नगो वेदमसंकीर्णो देवलोक इवाबभौ ॥ १३  
तदा च कृष्णसांनिध्यमासाद्य भरतर्षभ ।  
शक्रसद्वप्रतीकाशो बभूव स हि शैलराट् ॥ १४  
ततः संपूज्यमानः स विवेश भवनं शुभम् ।  
गोविन्दः सात्यकिश्चैव जगाम भवनं स्वकम् ॥ १५  
विवेश च स हृष्टात्मा चिरकालप्रवासकः ।  
कृत्वा नसुकरं कर्म दानवेष्टिव वासवः ॥ १६  
उपयातं तु वाष्णेयं भोज्यवृष्ण्यन्धकास्तदा ।  
अभ्यगच्छन्महात्मानं देवा इव शतक्रतुम् ॥ १७  
स तानभ्यर्च्य मेधावी पृष्ट्वा च कुशलं तदा ।  
अभ्यवादयत् प्रीतः पितरं मातरं तथा ॥ १८  
ताभ्यां च सपरिष्वक्तः सान्निवतश्च महाभुजः ।  
उपोपविष्टस्तैः सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः ॥ १९  
स विश्रान्तो महातेजाः कृतपादावसेचनः ।  
कथयामास तं कृष्णः पृष्टः पित्रा महाहवम् ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥



५९

वासुदेव उवाच ।

श्रुतवानस्मि वाष्णेय संग्रामं परमाद्भुतम् ।  
 नराणां वदतां पुत्र कथोद्धातेषु नित्यशः ॥ १  
 त्वं तु प्रत्यक्षदर्शी च कार्यज्ञश्च महाभुज ।  
 तस्मात्प्रब्रूहि संग्रामं याथातथ्येन मेऽनघ ॥ २  
 यथा तदभवद्युद्धं पाण्डवानां महात्मनाम् ।  
 भीष्मकर्णकृपद्रोणशल्यादिभिरनुत्तमम् ॥ ३  
 अन्येषां क्षत्रियाणां च कृतास्त्राणामनेकशः ।  
 नानावेषाकृतिमतां नानादेशनिवासिनाम् ॥ ४  
 इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षः पित्रा मातुस्तदन्तिके ।  
 शशंस कुरुवीराणां संग्रामे निधनं यथा ॥ ५  
 वासुदेव उवाच ।  
 श्रुत्यद्भुतानि कर्माणि क्षत्रियाणां महात्मनाम् ।  
 बहुलत्वान्न संख्यातुं शक्यान्यब्दशतैरपि ॥ ६  
 प्राधान्यतस्तु गदतः समासेनैव मे शृणु ।  
 कर्माणि पृथिवीशाना यथावदमरद्युते ॥ ७  
 भीष्मः सेनापतिरभूदेकादशचमूपतिः ।  
 कौरव्यः कौरवेयाणां देवानामिव वासवः ॥ ८  
 शिखण्डी पाण्डुपुत्राणां नेता सप्तचमूपतिः ।  
 बभूव रक्षितो धीमान्धीमता सव्यसाचिना ॥ ९  
 तेषां तदभवद्युद्धं दशाहानि महात्मनाम् ।  
 कुरूणां पाण्डवानां च सुमहद्रोमहर्षणम् ॥ १०  
 ततः शिखण्डी गाङ्गेयमयुध्यन्तं महाहवे ।  
 जघान बहुभिर्बाणैः सह गाण्डीवधन्वना ॥ ११  
 अकरोत्स ततः कालं शरतल्पगतो मुनिः ।  
 अयनं दक्षिणं हित्वा संग्रामे चोत्तरायणे ॥ १२  
 ततः सेनापतिरभूद्रोणोऽस्त्रविदुषा वरः ।  
 प्रवीरः कौरवेन्द्रस्य काव्यो दैत्यपतेरिव ॥ १३  
 अक्षौहिणीभिः शिष्टाभिर्नवभिर्द्विजसत्तमः ।

संवृतः समरश्लाघी गुप्तः कृपवृपादिभिः ॥ १४  
 धृष्टद्युम्नस्त्वभून्नेता पाण्डवानां महास्त्रवित् ।  
 गुप्तो भीमेन तेजस्वी मित्रेण वरुणो यथा ॥ १५  
 पञ्चसेनापरिवृतो द्रोणप्रेप्सुर्महामनाः ।  
 पितुर्निकारान्संस्मृत्य रणे कर्माकरोन्महत् ॥ १६  
 तस्मिन्ते पृथिवीपाला द्रोणपार्षतसंगरे ।  
 नानादिगागता वीराः प्रायशो निधनं गताः ॥ १७  
 दिनानि पञ्च तद्युद्धमभूत्परमदारुणम् ।  
 ततो द्रोणः परिश्रान्तो धृष्टद्युम्नश्च गतः ॥ १८  
 ततः सेनापतिरभूत्कर्णो दौर्योधने बले ।  
 अक्षौहिणीभिः शिष्टाभिर्वृतः पञ्चभिराहवे ॥ १९  
 तिस्रस्तु पाण्डुपुत्राणां चम्बो वीभत्सुपालिताः ।  
 हतप्रवीरभूयिष्ठा बभूवुः समवस्थिताः ॥ २०  
 ततः पार्थ समासाद्य पतंग इव पावकम् ।  
 पञ्चत्वमगमत्सौतिर्द्वितीयेऽहनि दारुणे ॥ २१  
 हते कर्णे तु कौरव्या निरुत्साहा हतौजसः ।  
 अक्षौहिणीभिस्तिसृभिर्मद्रेशं पर्यवारयन् ॥ २२  
 हतवाहनभूयिष्ठाः पाण्डवास्तु युधिष्ठिरम् ।  
 अक्षौहिण्यां निरुत्साहाः शिष्टया पर्यवारयन् ॥ २३  
 अवधीन्मद्राजानं कुरुराजो युधिष्ठिरः ।  
 तस्मिन्स्तथार्धदिवसे कर्म कृत्वा सुदुष्करम् ॥ २४  
 हते शल्ये तु शकुनिं सहदेवो महामनाः ।  
 आहर्तारं कलेस्तस्य जघानामितविक्रमः ॥ २५  
 निहते शकुनौ राजा धार्तराष्ट्रः सुदुर्मनाः ।  
 अपाक्रामद्रुद्रापाणिर्हतभूयिष्ठसैनिकः ॥ २६  
 तमन्वधावत्संक्रुद्धो भीमसेनः प्रतापवान् ।  
 हृदे द्वैपायने चापि सलिलस्थं ददर्श तम् ॥ २७  
 ततः शिष्टेन सेन्येन समन्तात्परिवार्य तम् ।  
 उपोपविविशुर्दृष्ट्वा हृदस्थं पञ्च पाण्डवाः ॥ २८  
 विगाह्य सलिलं त्वाशु वाग्बाणैर्मृगविक्षतः ।

उत्थाय स गदापाणिर्युद्धाय समुपस्थितः ॥ २९  
 ततः स निहतो राजा धार्तराष्ट्रो महामृधे ।  
 मीमसेनेन विक्रम्य पश्यतां पृथिवीक्षिताम् ॥ ३०  
 ततस्तत्पाण्डवं सैन्यं संसुप्तं शिविरे निशि ।  
 निहतं द्रोणपुत्रेण पितुर्वधममृष्यता ॥ ३१  
 हतपुत्रा हतबला हतमित्रा मया सह ।  
 युयुधानद्वितीयेन पञ्च शिष्टाः स्म पाण्डवाः ॥ ३२  
 सहैव कृपभोजाभ्यां द्रौणिर्युद्धादमुच्यत ।  
 युयुत्सुश्चापि कौरव्यो मुक्तः पाण्डवसंश्रयात् ॥ ३३  
 निहते कौरवेन्द्रे च सानुबन्धे सुयोधने ।  
 विदुरः संजयश्चैव धर्मराजमुपस्थितौ ॥ ३४  
 एव तदभवद्युद्धमहान्यष्टादश प्रभो ।  
 यत्र ते पृथिवीपाला निहता स्वर्गमावसन् ॥ ३५

वैशंपायन उवाच ।

शृण्वतां तु महाराज कथां तां रोमहर्षणीम् ।  
 दुःखहर्षपरिक्लेशा वृष्णीनामभवंस्तदा ॥ ३६  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

एकोनवष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

६०

वैशंपायन उवाच ।

कथयन्नेव तु तदा वासुदेवः प्रतापवान् ।  
 महाभारतयुद्धं तत्कथान्ते पितुरग्रतः ॥ १  
 अभिमन्योर्वधं वीरः सोऽत्यक्रामत भारत ।  
 अप्रियं वसुदेवस्य मा भूदिति महामनाः ॥ २  
 मा दौहित्रवधं श्रुत्वा वसुदेवो महात्ययम् ।  
 दुःखशोकाभिसंतप्तो भवेदिति महामतिः ॥ ३  
 सुभद्रा तु तमुत्क्रान्तमात्मजस्य वधं रणे ।  
 आचक्ष्व कृष्ण सौभद्रवधमिलपतद्भुवि ॥ ४  
 तामपश्यन्निपतितां वसुदेवः क्षितौ तदा ।

दृष्ट्वैव च पपातोर्व्यां सोऽपि दुःखेन मूर्छितः ॥ ५  
 ततः स दौहित्रवधादुःखशोकसमन्वितः ।  
 वसुदेवो महाराज कृष्णं वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ६  
 ननु त्वं पुण्डरीकाक्ष सत्यवाग्भुवि विश्रुतः ।  
 यदौहित्रवधं मेऽद्य न ख्यापयसि शत्रुहन् ॥ ७  
 तद्वाग्निनेयनिधनं तत्त्वेनाचक्ष्व मे विभो ।  
 सदृशाक्षस्तव कथं शत्रुभिर्निहतो रणे ॥ ८  
 दुर्मरं वत वाष्णेय कालेऽप्राप्ते नृभिः सदा ।  
 यत्र मे हृदयं दुःखाच्छतधा न विदीर्यते ॥ ९  
 किमब्रवीत्त्वा संग्रामे सुभद्रां मातरं प्रति ।  
 मां चापि पुण्डरीकाक्ष चपलाक्षः प्रियो मम ॥ १०  
 आहवं पृष्ठतः कृत्वा कञ्चिन्न निहतः परैः ।  
 कञ्चिन्मुख न गोविन्द तेनाजौ विकृतं कृतम् ॥ ११  
 स हि कृष्ण महातेजाः श्लाघन्निव ममाग्रतः ।  
 बालभावेन विजयमात्मनोऽकथयत्प्रभुः ॥ १२  
 कञ्चिन्न विकृतो बालो द्रोणकर्णकृपादिभिः ।  
 धरण्यां निहतः शेते तन्ममाचक्ष्व केशव ॥ १३  
 स हि द्रोणं च भीष्मं च कर्णं च रथिनां वरम् ।  
 स्पर्धते स्म रणे नित्यं दुहितुः पुत्रको मम ॥ १४  
 एवंविधं बहु तदा विलपन्तं मुदुःखितम् ।  
 पितरं दुःखिततरो गोविन्दो वाक्यमब्रवीत् ॥ १५  
 न तेन विकृतं वक्त्रं कृतं संग्राममूर्धनि ।  
 न पृष्ठतः कृतश्चापि संग्रामस्तेन दुस्तरः ॥ १६  
 निहत्य पृथिवीपालान्सहस्रशतसंघशः ।  
 खेदितो द्रोणकर्णाभ्यां दौःशासनिवशं गतः ॥ १७  
 एको ह्येकेन सततं युध्यमानो यदि प्रभो ।  
 न स शक्येत संग्रामे निहन्तुमपि वज्रिणा ॥ १८  
 समाहूते तु संग्रामे पार्थे संशप्तकैस्तदा ।  
 पर्यवार्यत सकृद्वैः स द्रोणादिभिराहवे ॥ १९  
 ततः शत्रुक्षयं कृत्वा सुमहान्तं रणे पितुः ।

दौहित्रस्तत्र वाष्णेय दौःशासनिवशं गतः ॥ २०  
 नूनं च स गतः स्वर्गं जहि शोकं महामते ।  
 न हि व्यसनमासाद्य सीदन्ते सन्नराः कचित् ॥  
 द्रोणकर्णप्रभृतयो येन प्रतिसमासिताः ।  
 रणे महेन्द्रप्रतिमाः स कथं नाप्रयाद्विम् ॥ २२  
 स शोकं जहि दुर्धर्ष मा च मन्युवशं गमः ।  
 शन्नपूतां हि स गति गतः परपुरंजयः ॥ २३  
 तस्मिन् नहि ते वीरे सुभद्रेयं स्वसा मम ।  
 दुःस्वार्ताथो पृथां प्राप्य कुरीव ननाद ह ॥ २४  
 द्रौपदीं च समासाद्य पर्यपृच्छत दुःखिता ।  
 आर्ये क दारकाः सर्वे द्रष्टुमिच्छामि तानहम् ॥  
 अस्यास्तु वचनं श्रुत्वा सर्वास्ताः कुर्योषितः ।  
 भुजाभ्यां परिगृह्णानां चुक्रुशुः परमार्तवत् ॥ २६  
 उत्तरां चाब्रवीद्भद्रा भद्रे भर्ता क ते गतः ।  
 क्षिप्रमागमनं मह्यं तस्मै त्वं वेदयस्व ह ॥ २७  
 ननु नाम स वैराटि श्रुत्वा मम गिरं पुरा ।  
 भवनाग्निष्पतत्याशु कस्मान्नाभ्येति ते पतिः ॥ २८  
 अभिमन्यो कुशलिनो मातुलास्ते महारथाः ।  
 कुशलं चाब्रुवन्सर्वे त्वां युयुत्सुमिहागतम् ॥ २९  
 आचक्ष्व मेऽद्य संग्रामं यथापूर्वमरिदम् ।  
 कस्मादेव विलपतीं नाद्येह प्रतिभाषसे ॥ ३०  
 एवमादि तु वाष्णेय्यास्तदस्याः परिदेवितम् ।  
 श्रुत्वा पृथा सुदुःस्वार्ता शनैर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ३१  
 सुभद्रे वासुदेवेन तथा सात्यकिना रणे ।  
 पित्रा च पालितो बालः स हतः कालधर्मणा ॥ ३२  
 ईदृशो मर्त्यधर्मोऽयं मा शुचो यदुनन्दिनि ।  
 पुत्रो हि तव दुर्धर्षः संग्राप्तः परमां गतिम् ॥ ३३  
 कुले महति जातासि क्षत्रियाणां महात्मनाम् ।  
 मा शुचश्चपलाक्षं त्वं पुण्डरीकनिभेक्षणे ॥ ३४  
 उत्तरां त्वमवेक्षस्व गर्भिणीं मा शुचः शुभे ।

पुत्रमेषा हि तस्याशु जनयिष्यति भामिनी ॥ ३५  
 एवमाश्वासयित्वेनां कुन्ती यदुकुलोद्बुह ।  
 विहाय शोकं दुर्धर्षं श्राद्धमस्य ह्यकल्पयन् ॥ ३६  
 समनुज्ञाप्य धर्मज्ञा राजानं भीममेव च ।  
 यमौ यमोपमौ चैव ददौ दानान्यनेकशः ॥ ३७  
 ततः प्रदाय बह्वीर्गां ब्राह्मणेभ्यो यदुद्बुह ।  
 समहृष्यत वाष्णेयी वैराटीं चाब्रवीदिदम् ॥ ३८  
 वैराटि नेह संतापस्त्वया कार्यो यश्चिन्ति ।  
 भर्तारं प्रति सुश्रोणि गर्भस्थं रक्ष मे शिशुम् ॥ ३९  
 एवमुक्त्वा ततः कुन्ती विरराम महाद्युते ।  
 तामनुज्ञाप्य चैवेमां सुभद्रां समुपानयम् ॥ ४०  
 एवं स निधनं प्राप्तो दौहित्रस्त्व माधव ।  
 संतापं जहि दुर्धर्ष मा च शोके मनः कृथाः ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

षष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

६१

वैशंपायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु पुत्रस्य वचः शूरात्मजस्तदा ।  
 विहाय शोकं धर्मात्मा ददौ श्राद्धमनुत्तमम् ॥ १  
 तथैव वासुदेवोऽपि स्वस्त्रीयस्य महात्मनः ।  
 दयितस्य पितुर्नित्यमकरोदौर्ध्वदेहिकम् ॥ २  
 षष्टिं शतसहस्राणि ब्राह्मणानां महाभुजः ।  
 विधिवद्भोजयामास भोज्यं सर्वगुणान्वितम् ॥ ३  
 आच्छाद्य च महाबाहुर्धनतृष्णामपानुदत् ।  
 ब्राह्मणानां तदा कृष्णस्तद्भूद्रोमहर्षणम् ॥ ४  
 सुवर्णं चैव गाश्चैव शयनाच्छादनं तथा ।  
 दीयमानं तदा विप्राः प्रभूतमिति चाब्रुवन् ॥ ५  
 वासुदेवोऽथ दाशार्हो बलदेवः ससात्यकिः ।  
 अभिमन्योस्तदा श्राद्धमकुर्वन्सत्यकस्तदा ।

अतीव दुःखसंतप्ता न शमं चोपलेभिरे ॥ ६  
 तथैव पाण्डवा वीरा नगरे नागसाह्वये ।  
 नोपगच्छन्ति वै शान्तिमभिमन्युविनाकृताः ॥ ७  
 सुबहूनि च राजेन्द्र दिवसानि विराटजा ।  
 नाभुङ्क्षु पतिशोकार्ता तद्भूत्करुणं महत् ।  
 कुक्षिस्थ एव तस्यास्तु स गर्भः संप्रलीयत ॥ ८  
 आजगाम ततो व्यासो ज्ञात्वा दिव्येन चक्षुषा ।  
 आगम्य चाब्रवीद्वीमानृथां पृथुललोचनाम् ।  
 उत्तरां च महातेजाः शोकः संत्यज्यतामयम् ॥ ९  
 जनिष्यति महातेजाः पुत्रस्तव यशस्विनि ।  
 प्रभावाद्वासुदेवस्य मम व्याहरणादपि ।  
 पाण्डवानामयं चान्ते पालयिष्यति मेदिनीम् ॥ १०  
 धनंजयं च संप्रेक्ष्य धर्मराजस्य पश्यतः ।  
 व्यासो वाक्यमुवाचेदं हर्षयन्निव भारत ॥ ११  
 पौत्रस्तव महाबाहो जनिष्यति महामनाः ।  
 पृथ्वी सागरपर्यन्तां पालयिष्यति चैव ह ॥ १२  
 तस्माच्छ्लोकं कुरुश्रेष्ठ जहि त्वमरिर्कशन ।  
 विचार्यमत्र न हि ते सत्यमेतद्भविष्यति ॥ १३  
 यन्नापि वृष्णिवीरेण कृष्णेन कुरुनन्दन ।  
 पुरोक्तं तत्तथा भावि मा तेऽत्रास्तु विचारणा ॥ १४  
 विबुधानां गतो लोकानक्षयानात्मनिर्जितान् ।  
 न स शोच्यस्त्वया तात न चान्यैः कुरुभिस्तथा ॥  
 एवं पितामहेनोक्तो धर्मात्मा स धनंजयः ।  
 त्यक्त्वा शोकं महाराज हृष्टरूपोऽभवत्तदा ॥ १६  
 पितापि तव धर्मज्ञ गर्भे तस्मिन्महामते ।  
 अवर्धत यथाकालं शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ १७  
 ततः संचोदयामास व्यासो धर्मात्मजं नृपम् ।  
 अश्वमेधं प्रति तदा ततः सोऽन्तर्हितोऽभवत् ॥ १८  
 धर्मराजोऽपि मेधावी श्रुत्वा व्यासस्य तद्वचः ।

वित्तोपनयने तात चकार गमने मतिम् ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

एकषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

६२

जनमेजय उवाच ।

श्रुत्वैतद्वचनं ब्रह्मन्व्यासेनोक्तं महात्मना ।  
 अश्वमेधं प्रति तदा किं नृप प्रचकार ह ॥ १  
 रत्नं च यन्मरुत्तेन निहितं पृथिवीतले ।  
 तदवाप कथं चेति तन्मे ब्रूहि द्विजोत्तम ॥ २  
 वैशंपायन उवाच ।  
 श्रुत्वा द्वैपायनवचो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।  
 भ्रातृन्सर्वान्समानाय्य काले वचनमब्रवीत् ।  
 अर्जुनं भीमसेनं च माद्रीपुत्रौ यमावपि ॥ ३  
 श्रुतं वो वचनं वीराः सौहृदाद्यन्महात्मना ।  
 कुरूणां हितकामेन प्रोक्तं कृष्णेन धीमता ॥ ४  
 तपोवृद्धेन महता सुहृदां भूतिमिच्छता ।  
 गुरुणा धर्मशीलेन व्यासेनाद्भुतकर्मणा ॥ ५  
 मीष्मेण च महाप्राज्ञ गोविन्देन च धीमता ।  
 संस्मृत्य तदहं सम्यकर्तुमिच्छामि पाण्डवाः ॥ ६  
 आयत्यां च तदात्वे च सर्वेषां तद्धि नो हितम् ।  
 अनुबन्धे च कल्याणं यद्वचो ब्रह्मवादिनः ॥ ७  
 इयं हि वसुधा सर्वा क्षीणरत्ना कुरुद्वहाः ।  
 तच्चाचष्ट बहु व्यासो मरुत्तस्य धनं नृपाः ॥ ८  
 यद्येतद्वो बहुमतं मन्यध्वं वा क्षमं यदि ।  
 तदानयामहे सर्वे कथं वा भीम मन्यसे ॥ ९  
 इत्युक्तवाक्ये नृपतौ तदा कुरुकुलोद्बुह ।  
 भीमसेनो नृपश्रेष्ठं प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १०  
 रोचते मे महाबाहो यदिदं भाषितं त्वया ।  
 व्यासाख्यातस्य वित्तस्य समुपानयनं प्रति ॥ ११  
 यदि तत्प्राप्तयामेह धनमाविक्षितं प्रभो ।

कृतमेव महाराज भवेदिति मतिर्मम ॥ १२  
 ते वयं प्रणिपातेन गिरीशस्य महात्मनः ।  
 तदानयाम भद्रं ते समभ्यर्च्य कपर्दिनम् ॥ १३  
 तं विभुं देवदेवेशं तस्यैवानुचरांश्च तान् ।  
 प्रसाद्यार्थमवाप्स्यामो नूनं वाग्बुद्धिकर्मभिः ॥ १४  
 रक्षन्ते ये च तद्रव्यं किंकरा रौद्रदर्शनाः ।  
 ते च वश्या भविष्यन्ति प्रसन्ने वृषभध्वजे ॥ १५  
 श्रुत्वैवं वदतस्तस्य वाक्यं भीमस्य भारत ।  
 प्रीतो धर्मात्मजो राजा बभूवातीव भारत ।  
 अर्जुनप्रमुखाश्चापि तथेत्येवाश्रुवन्मुदा ॥ १६  
 कृत्वा तु पाण्डवाः सर्वे रत्नाहरणनिश्चयम् ।  
 सेनामाज्ञापयामासुर्नक्षत्रेऽहनि च ध्रुवे ॥ १७  
 ततो युयुः पाण्डुसुता ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ।  
 अर्चयित्वा सुरश्रेष्ठं पूर्वमेव महेश्वरम् ॥ १८  
 मोदकैः पायसेनाथ मांसापूपैस्तथैव च ।  
 आशास्य च महात्मानं प्रययुर्मुदिता भृशम् ॥ १९  
 तेषां प्रयास्यतां तत्र मङ्गलानि शुभान्यथ ।  
 प्राहुः प्रहृष्टमनसो द्विजाभ्या नागराश्च ते ॥ २०  
 ततः प्रदक्षिणीकृत्य शिरोभिः प्रणिपत्य च ।  
 ब्राह्मणानग्निसहितान्प्रययुः पाण्डुनन्दनाः ॥ २१  
 समनुज्ञाप्य राजानं पुत्रशोकसमाहतम् ।  
 धृतराष्ट्रं सभार्यं वै पृथां पृथुलोचनाम् ॥ २२  
 मूले निक्षिप्य कौरव्यं युयुत्सुं धृतराष्ट्रजम् ।  
 संपूज्यमानाः पौरैश्च ब्राह्मणैश्च मनीषिभिः ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

६३

वैशंपायन उवाच ।

ततस्ते प्रययुर्हृष्टाः प्रहृष्टनरवाहनाः ।  
 रथघोषेण महता पूरयन्तो वसुंधराम् ॥ १

संस्तूयमानाः स्तुतिभिः सूतमागधवन्दिभिः ।  
 स्वेन सैन्येन सवीता यथादित्याः स्वरश्मिभिः ॥ २  
 पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।  
 बभौ युधिष्ठिरस्तत्र पौर्णमास्यामिवोडुराट् ॥ ३  
 जयाशिषः प्रहृष्टानां नराणां पथि पाण्डवः ।  
 प्रत्यगृह्णाद्यथान्यायं यथावत्पुरुषर्षभः ॥ ४  
 तथैव सैनिका राजन्राजानमनुयान्ति ये ।  
 तेषां हलह्लाशब्दो दिव स्तब्ध्वा व्यतिष्ठत ॥ ५  
 स सरांसि नदीश्चैव वनान्युपवनानि च ।  
 अत्यक्रामन्महाराजो गिरिं चैवान्वपद्यत ॥ ६  
 तस्मिन्देसे च राजेन्द्र यत्र तद्रव्यमुत्तमम् ।  
 चक्रे निवेशनं राजा पाण्डवः सह सैनिकैः ।  
 शिवे देशे समे चैव तदा भरतसत्तम ॥ ७  
 अग्रतो ब्राह्मणान्कृत्वा तपोविद्यादमान्वितान् ।  
 पुरोहितं च कौरव्य वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ ८  
 प्राङ्निवेशात्तु राजानं ब्राह्मणाः सपुरोधसः ।  
 कृत्वा शान्तिं यथान्यायं सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ९  
 कृत्वा च मध्ये राजानममात्यांश्च यथाविधि ।  
 षट्पथं नवसंस्थानं निवेशं चक्रिरे द्विजाः ॥ १०  
 मत्तानां वारणेन्द्राणां निवेशं च यथाविधि ।  
 कारयित्वा स राजेन्द्रो ब्राह्मणानिदमब्रवीत् ॥ ११  
 अस्मिन्कार्ये द्विजश्रेष्ठा नक्षत्रे दिवसे शुभे ।  
 यथा भवन्तो मन्यन्ते कर्तुमर्हथ तत्तथा ॥ १२  
 न नः कालात्ययो वै स्यादिहैव परिलम्बताम् ।  
 इति निश्चित्य विप्रेन्द्राः क्रियतां यदनन्तरम् ॥ १३  
 श्रुत्वैतद्वचनं राज्ञो ब्राह्मणाः सपुरोधसः ।  
 इदमूचुर्वचो हृष्टा धर्मराजप्रियेप्सवः ॥ १४

अथैव नक्षत्रमहश्च पुण्यं

यतामहे श्रेष्ठतमं क्रियासु ।

अम्भोभिरद्येह वसाम राज-

नृपोष्यतां चापि भवद्विरद्य ॥ १५  
 श्रुत्वा तु तेषां द्विजसत्तमानां  
 कृनोपवासा रजनी नरेन्द्राः ।  
 ऊषुः प्रतीताः कुशसंस्तरेषु  
 यथाध्वरेषु ज्वलिता हव्यवाहाः ॥ १६  
 ततो निशा सा व्यगमन्महात्मनां  
 संशृण्वतां विप्रसमीरिता गिरः ।  
 ततः प्रभाते विमले द्विजर्षभा  
 वचोऽश्रुवन्धर्मसुतं नराधिपम् ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

६४

ब्राह्मणा ऊचुः ।

क्रियतामुपहारोऽद्य त्र्यम्बकस्य महात्मनः ।  
 कृत्वोपहारं नृपते ततः स्वार्थे यतामहे ॥ १  
 वैशंपायन उवाच ।  
 श्रुत्वा तु वचनं तेषां ब्राह्मणानां युधिष्ठिरः ।  
 गिरीशस्य यथान्यायमुपहारमुपाहरत् ॥ २  
 आज्येन तर्पयित्वाग्निं विधिवत्संस्कृतेन ह ।  
 मन्त्रसिद्धं चरुं कृत्वा पुरोधाः प्रययौ तदा ॥ ३  
 स गृहीत्वा सुमनसो मन्त्रपूता जनाधिप ।  
 मोदकैः पायसेनाथ मांसैश्चोपाहरद्वलिम् ॥ ४  
 सुमनोभिश्च चित्राभिर्लज्जैरुच्चावचैरपि ।  
 सर्वं स्विष्टकृतं कृत्वा विधिवद्वेदपारगः ।  
 किंकराणां ततः पश्चाच्चकार बलिमुत्तमम् ॥ ५  
 यक्षेन्द्राय कुबेराय मणिभद्राय चैव ह ।  
 तथान्येषां च यक्षाणां भूताधिपतयश्च ये ॥ ६  
 कृसरेण समांसेन निवापैस्तिलसंयुतैः ।  
 शुशुभे स्थानमत्यर्थं देवदेवस्य पार्थिव ॥ ७

कृत्वा तु पूजां रुद्रस्य गणानां चैव सर्वशः ।  
 ययौ व्यासं पुरस्कृत्य नृपो रत्ननिधिं प्रति ॥ ८  
 पूजयित्वा धनाध्यक्षं प्रणिपत्याभिवाद्य च ।  
 सुमनोभिर्विचित्राभिरपूपैः कृसरेण च ॥ ९  
 शङ्खादीश्च निधीन्सर्वान्निधिपालांश्च सर्वशः ।  
 अर्चयित्वा द्विजाग्र्यान्स स्वस्ति वाच्यं च वीर्यवान् ॥  
 तेषां पुण्याहघोषेण तेजसा समवस्थितः ।  
 प्रीतिमान्स कुरुश्रेष्ठः खानयामास तं निधिम् ॥  
 ततः पात्र्यः सकरकाः साश्मन्तकमनोरमाः ।  
 भृङ्गाराणि कटाहानि कलशान्वर्धमानकान् ॥ १२  
 वहूनि च विचित्राणि भाजनानि सहस्रशः ।  
 उद्धारयामास तदा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १३  
 तेषां लक्षणमप्यासीन्महान्करपुटस्तथा ।  
 त्रिलक्षं भाजनं राजस्तुलार्धमभवन्नृप ॥ १४  
 वाहनं पाण्डुपुत्रस्य तत्रासीत्तु विशां पते ।  
 षष्टिरष्टसहस्राणि शतानि द्विगुणा हयाः ॥ १५  
 वारणाश्च महाराज सहस्रशतसंमिताः ।  
 शकटानि रथाश्चैव तावदेव करेणवः ।  
 खराणां पुरुषाणां च परिसंख्या न विद्यते ॥ १६  
 एतद्वित्तं तदभवद्यदुद्द्रे युधिष्ठिरः ।  
 षोडशाष्टौ चतुर्विंशत्सहस्रं भारलक्षणम् ॥ १७  
 एतेष्वाधाय तद्व्यं पुनरभ्यर्च्य पाण्डवः ।  
 महादेवं प्रति ययौ पुरं नागाह्वयं प्रति ॥ १८  
 द्वैपायनाभ्यनुज्ञातः पुरस्कृत्य पुरोहितम् ।  
 गोयुते गोयुते चैव न्यवसत्पुरुषर्षभः ॥ १९  
 सा पुराभिमुखी राजञ्जगाम महती चमूः ।  
 कृच्छ्राद्भविणभारार्ता हर्षयन्ती कुरुद्वहान् ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

६५

वैशंपायन उवाच ।

एतस्मिन्नेव काले नु वासुदेवोऽपि वीर्यवान् ।  
 उपायाद्वृष्णिभिः सार्धं पुरं वारणसाह्वयम् ॥ १  
 समयं वाजिमेधस्य विदित्वा पुरुषर्षभः ।  
 यथोक्तो धर्मपुत्रेण ब्रजन्स स्वपुरी प्रति ॥ २  
 रौक्मिणेयेन सहितो युयुधानेन चैव ह ।  
 चारुदेष्णेन साम्बेन गदेन कृतवर्मणा ॥ ३  
 सारणेन च वीरेण निशठेनोल्मुकेन च ।  
 बलदेवं पुरस्कृत्य सुभद्रासहितस्तदा ॥ ४  
 द्रौपदीमुत्तरां चैव पृथां चाप्यवलोककः ।  
 समाश्वासयितुं चापि क्षत्रिया निहतेश्वराः ॥ ५  
 तानागतान्समीक्ष्यैव धृतराष्ट्रो महीपतिः ।  
 प्रत्यगृह्णाद्यथान्यायं विदुरश्च महामनाः ॥ ६  
 तत्रैव न्यवसत्कृष्णः स्वर्चितः पुरुषर्षभः ।  
 विदुरेण महातेजास्तथैव च युयुत्सुना ॥ ७  
 वसत्सु वृष्णिवीरेषु तत्राथ जनमेजय ।  
 जज्ञे तव पिता राजन्परिक्षिप्तपरवीरहा ॥ ८  
 स तु राजा महाराज ब्रह्मास्त्रेणामिपीडितः ।  
 शवो बभूव निश्चेष्टो हर्षशोकविवर्धनः ॥ ९  
 हृष्टानां सिंहनादेन जनानां तत्र निस्वनः ।  
 आविश्य प्रदिशः सर्वाः पुनरेव व्युपारमत् ॥ १०  
 ततः सोऽतित्वरः कृष्णो विवेशान्तःपुरं तदा ।  
 युयुधानद्वितीयो वै व्यथितेन्द्रियमानसः ॥ ११  
 ततस्त्वरितमायान्तीं ददर्श स्वां पितृष्वसाम् ।  
 क्रोशन्तीमभिधावेति वासुदेवं पुनः पुनः ॥ १२  
 पृष्ठतो द्रौपदीं चैव सुभद्रां च यशस्विनीम् ।  
 सविक्रोशं सकरुणं बान्धवानां स्त्रियो नृप ॥ १३  
 ततः कृष्ण समासाद्य कुन्ती राजसुता तदा ।  
 प्रोवाच राजशार्दूल बाष्पगद्गदया गिरः ॥ १४

वासुदेव महाबाहो सुप्रजा देवकी त्वया ।  
 त्वं नो गतिः प्रतिष्ठा च त्वदायत्तमिदं कुलम् ॥ १५  
 यदुग्रवीर योऽयं ते स्वस्त्रीयस्यात्मजः प्रभो ।  
 अश्वत्थाम्ना हतो जातस्तमुज्जीवय केशव ॥ १६  
 त्वया ह्येतत्प्रतिज्ञातमैषीके यदुनन्दन ।  
 अहं संजीवयिष्यामि मृतं जातमिति प्रभो ॥ १७  
 सोऽयं जातो मृतस्तात पश्यैनं पुरुषर्षभ ।  
 उत्तरां च सुभद्रां च द्रौपदीं मां च माधव ॥ १८  
 धर्मपुत्रं च भीमं च फल्गुनं नकुलं तथा ।  
 सहदेवं च दुर्धर्षं सर्वान्निस्त्रातुमर्हसि ॥ १९  
 अस्मिन्प्राणाः समायत्ताः पाण्डवानां ममैव च ।  
 पाण्डोश्च पिण्डो दाशार्हं तथैव श्वशुरस्य मे ॥ २०  
 अभिमन्योश्च भद्रं ते प्रियस्य सदृशस्य च ।  
 प्रियमुत्पादयाद्य त्वं प्रेतस्यापि जनार्दन ॥ २१  
 उत्तरा हि प्रियोक्तं वै कथयत्यरिसूदन ।  
 अभिमन्योर्वचः कृष्ण प्रियत्वात्ते न संशयः ॥ २२  
 अन्नवीत्किल दाशार्हं वैराटीमार्जुनिः पुरा ।  
 मातुलस्य कुलं भद्रे तव पुत्रो गमिष्यति ॥ २३  
 गत्वा वृष्ण्यन्धककुलं धनुर्वेदं ग्रहीष्यति ।  
 अस्त्राणि च विचित्राणि नीतिशास्त्रं च केवलम् ॥  
 इत्येतत्प्रणयात्तात सौभद्रः परवीरहा ।  
 कथयामास दुर्धर्षस्तथा चैतन्न संशयः ॥ २५  
 तास्त्वां वयं प्रणम्येह याचामो मधुसूदन ।  
 कुलस्यास्य हितार्थं त्वं कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥ २६  
 एवमुक्त्वा तु वार्ष्णेयं पृथा पृथुललोचना ।  
 उच्छिद्य बाहू दुःखार्ता ताश्चान्याः प्रापतन्भुवि ॥  
 अब्रुवंश्च महाराज सर्वाः सास्त्राविलेक्षणाः ।  
 स्वस्त्रीयो वासुदेवस्य मृतो जात इति प्रभो ॥ २८  
 एवमुक्ते ततः कुन्ती प्रत्यगृह्णाज्जनार्दनः ।

भूमौ निपतितां चैनां सान्त्वयामास भारत ॥ २९

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

६६

वैशंपायन उवाच ।

वृत्तितायां पृथायां तु सुभद्रा भ्रातरं तदा ।  
दृष्ट्वा चुक्रोश दुःखार्ता वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १  
पुण्डरीकाक्ष पश्यस्व पौत्रं पार्थस्य धीमतः ।  
परिक्षीणेषु कुरुषु परिक्षीणं गतायुषम् ॥ २  
इषीका द्रोणपुत्रेण भीमसेनार्थमुद्यता ।  
सोत्तरायां निपतिता विजये मयि चैव ह ॥ ३  
सेयं ज्वलन्ती हृदये मयि तिष्ठति केशव ।  
यत्न पश्यामि दुर्धर्ष मम पुत्रसुतं विभो ॥ ४  
किं नु वक्ष्यति धर्मात्मा धर्मराज्ञो युधिष्ठिरः ।  
मीमसेनार्जुनौ चापि माद्रवत्याः सुतौ च तौ ॥ ५  
श्रुत्वाभिमन्योस्तनयं जातं च मृतमेव च ।  
मुषिता इव वाष्णेय द्रोणपुत्रेण पाण्डवाः ॥ ६  
अभिमन्युः प्रियः कृष्ण पितृणां नात्र संशयः ।  
ते श्रुत्वा किं नु वक्ष्यन्ति द्रोणपुत्रास्त्रनिर्जिताः ॥ ७  
भवितातः परं दुःखं किं नु मन्ये जनार्दन ।  
अभिमन्योः सुतात्कृष्ण मृताज्जातादरिदम ॥ ८  
साहं प्रसादये कृष्ण त्वामद्य शिरसा नता ।  
पृथेयं द्रौपदी चैव ताः पश्य पुरुषोत्तम ॥ ९  
यदा द्रोणसुतो गर्भान्पाण्डूनां हन्ति माधव ।  
तदा किल त्वया द्रौणिः क्रुद्धेनोक्तोऽरिमर्दन ॥ १०  
अकामं त्वा करिष्यामि ब्रह्मबन्धो नराधम ।  
अहं संजीवयिष्यामि किरीटितनयात्मजम् ॥ ११  
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा जानमाना बलं तव ।  
प्रसादये त्वा दुर्धर्ष जीवतामभिमन्युजः ॥ १२  
यद्येवं त्वं प्रतिश्रुत्य न करोषि वचः शुभम् ।

सफलं वृष्णिशार्दूल मृतां मामुपधारय ॥ १३  
अभिमन्योः सुतो वीर न संजीवति यद्ययम् ।  
जीवति त्वयि दुर्धर्ष किं करिष्याम्यहं त्वया ॥ १४  
संजीवयैनं दुर्धर्ष मृतं त्वमभिमन्युजम् ।

सदृशाक्षसुतं वीर सस्यं वर्षभ्रिवाम्बुदः ॥ १५  
त्वं हि केशव धर्मात्मा सत्यवान्सत्यविक्रमः ।  
स तां वाक्मृतां कर्तुमर्हसि त्वमरिदम ॥ १६  
इच्छन्नपि हि लोकांस्त्रीस्त्रीवयेथा मृतानिमान् ।  
किं पुनर्दयितं जातं स्वस्त्रीयस्यात्मजं मृतम् ॥ १७  
प्रभावज्ञास्मि ते कृष्ण तस्मादेतद्ब्रवीमि ते ।  
कुरुष्व पाण्डुपुत्राणामिमं परमनुग्रहम् ॥ १८  
स्वसेति च महाबाहो हतपुत्रेति वा पुनः ।  
प्रपन्ना मामियं वेति दयां कर्तुमिहार्हसि ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

षट्षष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

६७

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु राजेन्द्र केशिहा दुःखमूर्छितः ।  
तथेति व्याजहरोच्चैर्हृदयन्निव तं जनम् ॥ १  
वाक्येन तेन हि तदा तं जनं पुरुषर्षभः ।  
ह्लादयामास विभुर्धर्मार्तं सलिलैरिव ॥ २  
ततः स प्राविशत्तूर्णं जन्मवेश्म पितुस्तव ।  
अर्चिनं पुरुषव्याघ्र सितैर्माल्यैर्यथाविधि ॥ ३  
अपां कुम्भैः सुपूर्णैश्च विन्यस्तैः सर्वतोदिशम् ।  
घृतेन तिन्दुकालातैः सर्षपैश्च महाभुज ॥ ४  
शस्त्रैश्च विमलैर्न्यस्तैः पावकैश्च समन्ततः ।  
वृद्धाभिश्चाभिरामाभिः परिचारार्थमच्युतः ॥ ५  
दक्षैश्च परितो वीर भिषग्भिः कुशलैस्तथा ।  
ददर्श च स तेजस्वी रक्षोघ्नान्यपि सर्वशः ।  
द्रव्याणि स्थापितानि स्म विधिवत्कुशलैर्जनैः ॥ ६



तथायुक्तं च तदृष्ट्वा जन्मवेश्म पितुस्तव ।  
 हृष्टोऽभवद्दृषीकेशः साधु साध्विति चाब्रवीत् ॥ ७  
 तथा क्षुवति वाष्णेये प्रहृष्टवदने तदा ।  
 द्रौपदी त्वरिता गत्वा वैराटी वाक्यमब्रवीत् ॥ ८  
 अयमायाति ते भद्रे श्वशुरो मधुसूदनः ।  
 पुराणर्षिरचिन्त्यात्मा समीपमपराजितः ॥ ९  
 सापि बाष्पकलां वाचं निगृह्याश्रूणि चैव ह ।  
 सुसंवीताभवद्देवी देववत्कृष्णमीक्षती ॥ १०  
 सा तथा दूयमानेन हृदयेन तपस्विनी ।  
 दृष्ट्वा गोविन्दमायान्तं कृपणं पर्यदेवयत् ॥ ११  
 पुण्डरीकाक्ष पश्यस्व बालाविह विनाकृतौ ।  
 अभिमन्युं च मां चैव हतौ तुल्यं जनार्दन ॥ १२  
 वाष्णेय मधुहन्वीर शिरसा त्वां प्रसादये ।  
 द्रोणपुत्राक्षनिर्दग्धं जीवथैनं ममात्मजम् ॥ १३  
 यदि स्म धर्मराज्ञा वा भीमसेनेन वा पुनः ।  
 त्वया वा पुण्डरीकाक्ष वाक्यमुक्तमिदं भवेत् ॥ १४  
 अजानतीमिषीकेयं जनित्रीं हन्त्विति प्रभो ।  
 अहमेव विनष्टा स्यां नेदमेवंगतं भवेत् ॥ १५  
 गर्भस्थस्यास्य बालस्य ब्रह्माक्षेण निपातनम् ।  
 कृत्वा नृशंसं दुर्बुद्धिर्द्रौणिः किं फलमश्नुते ॥ १६  
 सा त्वा प्रसाद्य शिरसा याचे शत्रुनिर्बहण ।  
 प्राणांस्त्यक्ष्यामि गोविन्द नायं संजीवते यदि ॥ १७  
 अस्मिन्निह बहवः साधो ये ममासन्मनोरथाः ।  
 ते द्रोणपुत्रेण हताः किं नु जीवामि केशव ॥ १८  
 आसीन्मम मतिः कृष्ण पूर्णोत्सङ्गा जनार्दन ।  
 अभिवादयिष्ये दिष्ट्येति तदिदं वितथीकृतम् ॥ १९  
 चपलाक्षस्य दायादे सृतेऽस्मिन्पुरुषर्षभ ।  
 विफला मे कृताः कृष्ण हृदि सर्वे मनोरथाः ॥ २०  
 चपलाक्षः किलातीव प्रियस्ते मधुसूदन ।  
 सुतं पश्यस्व तस्येमं ब्रह्माक्षेण निपातितम् ॥ २१

कृतघ्नोऽयं नृशंसोऽयं यथास्य जनकस्तथा ।  
 यः पाण्डवीं श्रियं त्यक्त्वा गतोऽयं यनसादनम् ॥  
 मया चैतत्प्रतिज्ञातं रणमूर्धनि केशव ।  
 अभिमन्यौ हते वीर त्वाभेद्यान्यच्चिरादिति ॥ २३  
 तच्च नाकरयं कृष्ण नृशंसा जीवितप्रिया ।  
 इदानीमागतां तत्र किं नु वक्ष्यति फाल्गुनिः ॥ २४

इति श्रीनृपहारायणे आश्वमेधिकपर्वणे

सप्तपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

६८

वैशंपायन उवाच ।

सैवं विलप्य कृष्णं सोन्मादेव तपस्विनी ।  
 उत्तरा न्यपतद्भूमौ कृपणा पुत्रगृहिणी ॥ १  
 तां तु दृष्ट्वा निपतिता हतवन्धुपरिच्छिदाम् ।  
 चुक्रोश कुन्ती दुःखार्ता सर्वाश्च भरतस्त्रियः ॥ २  
 मुहूर्तमिव तद्राजन्पाण्डवानां निवेशनम् ।  
 अप्रेक्षणीयमभवदार्तस्वरनिनादितम् ॥ ३  
 सा मुहूर्तं च राजेन्द्र पुत्रशोकाभिपीडिता ।  
 कश्मलाभिहता वीर वैराटी त्वभवत्तदा ॥ ४  
 प्रतिलभ्य तु सा संज्ञामुत्तरा भरतर्षभ ।  
 अङ्गमारोप्य तं पुत्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५  
 धर्मज्ञस्य सुतः संस्त्वमधर्ममवबुध्यसे ।  
 यस्त्वं वृष्णिप्रवीरस्य कुरुषे नाभिवादनम् ॥ ६  
 पुत्रं गत्वा मम वचो ब्रूयास्त्वं पितरं तव ।  
 दुर्मरं प्राणिनां वीर काले प्राप्ते कथंचन ॥ ७  
 याहं त्वया विहीनाद्य पत्या पुत्रेण चैव ह ।  
 मर्तव्ये सति जीवामि हतस्वस्तिरकिंचना ॥ ८  
 अथ वा धर्मराज्ञाहमनुज्ञाता महाभुज ।  
 भक्षयिष्ये विष तीक्ष्णं प्रवेक्ष्ये वा द्रुताशनम् ॥ ९  
 अथ वा दुर्मरं तात यदिदं मे सहस्रधा ।  
 पतिपुत्रविहीनाया हृदयं न विदीर्यते ॥ १०

उत्तिष्ठ पुत्र पश्येमां दुःखितां प्रपितामहीम् ।  
 आर्तामुपप्लुतां दीनां निमग्नां शोकसागरे ॥ ११  
 आर्यां च पश्य पाञ्चाली सात्वतीं च तपस्विनीम् ।  
 मां च पश्य सुदुःखार्ता व्याधविद्धां मृगीमिव ॥  
 उत्तिष्ठ पश्य वदनं लोकनाथस्य धीमतः ।  
 पुण्डरीकपलाशाक्षं पुरेव चपलेक्षणम् ॥ १३  
 एवं विप्रलपन्तीं तु दृष्ट्वा निपतितां पुनः ।  
 उत्तरां ताः स्त्रियः सर्वाः पुनरुत्थापयन्त्युत ॥ १४  
 उत्थाय तु पुनर्यैर्यात्तदा मत्स्यपतेः सुता ।  
 प्राञ्जलिः पुण्डरीकाक्षं भूमावेवाभ्यवादयत् ॥ १५  
 श्रुत्वा स तस्या विपुलं विलापं पुरुषर्षभः ।  
 उपस्पृश्य ततः कृष्णो ब्रह्मास्त्रं संजहार तत् ॥ १६  
 प्रतिजज्ञे च दाशार्हस्तस्य जीवितमच्युतः ।  
 अब्रवीच्च विशुद्धात्मा सर्वं विश्रावयञ्जगत् ॥ १७  
 न ब्रवीम्युत्तरे मिथ्या सत्यमेतद्भविष्यति ।  
 एष संजीवयाम्येनं पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥ १८  
 नोक्तपूर्वं मया मिथ्या स्वैरेष्वपि कदाचन ।  
 न च युद्धे परावृत्तस्तथा संजीवतामयम् ॥ १९  
 यथा मे दयितो धर्मो ब्राह्मणाश्च विशेषतः ।  
 अभिमन्योः सुतो जातो मृतो जीवत्वयं तथा ॥ २०  
 यथाहं नाभिजानामि विजयेन कदाचन ।  
 विरोधं तेन सत्येन मृतो जीवत्वयं शिशुः ॥ २१  
 यथा सत्यं च धर्मश्च मयि नित्यं प्रतिष्ठितौ ।  
 तथा मृतः शिशुरयं जीवतामभिमन्युजः ॥ २२  
 यथा कंसश्च केशी च धर्मेण निहतौ मया ।  
 तेन सत्येन बालोऽयं पुनरुज्जीवतामिह ॥ २३  
 इत्युक्तो वासुदेवेन स बालो भरतर्षभ ।  
 शनैः शनैर्महाराज प्रास्पन्दत सचेतनः ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

६९

वैशंपायन उवाच ।

ब्रह्मास्त्रं तु यदा राजन्कृष्णेन प्रतिसंहृतम् ।  
 तदा तद्वेश्म ते पित्रा तेजसाभिविदीपितम् ॥ १  
 ततो रक्षांसि सर्वाणि नेशुस्त्यक्त्वा गृहं तु तत् ।  
 अन्तरिक्षे च वागासीत्साधु केशव साध्विति ॥ २  
 तदस्त्रं ज्वलितं चापि पितामहमगात्तदा ।  
 ततः प्राणान्पुनर्लेभे पिता तव जनेश्वर ।  
 व्यचेष्टत च बालोऽसौ यथोत्साहं यथाबलम् ॥ ३  
 बभूवुर्मुदिता राजस्ततस्ता भरतस्त्रियः ।  
 ब्राह्मणान्वाचयामासुर्गोविन्दस्य च शासनात् ॥ ४  
 ततस्ता मुदिताः सर्वाः प्रशशंसुर्जनार्दनम् ।  
 स्त्रियो भरतसिंहानां नावं लब्ध्वेव पारगाः ॥ ५  
 कुन्ती द्रुपदपुत्री च सुभद्रा चोत्तरा तथा ।  
 स्त्रियश्चान्या नृसिंहानां बभूवुर्हृष्टमानसाः ॥ ६  
 तत्र मल्ला नटा झल्ला ग्रन्थिकाः सौखशायिकाः ।  
 सूतमागधसंघाश्चाप्यस्तुवन्वै जनार्दनम् ।  
 कुरुवंशस्तवाख्याभिराशीर्भिर्भरतर्षभ ॥ ७  
 उत्थाय तु यथाकालमुत्तरा यदुनन्दनम् ।  
 अभ्यवादयत प्रीता सह पुत्रेण भारत ।  
 ततस्तस्यै ददौ प्रीतो बहुरत्नं विशेषतः ॥ ८  
 तथान्ये वृष्णिशार्दूला नाम चास्याकरोत्प्रभुः ।  
 पितुस्तव महाराज सत्यसंधो जनार्दनः ॥ ९  
 परिक्षीणे कुले यस्माज्जातोऽयमभिमन्युजः ।  
 परिक्षिदिति नामास्य भवत्वित्यब्रवीत्तदा ॥ १०  
 सोऽवर्धत यथाकालं पिता तव नराधिप ।  
 मनःप्रह्लादनश्चासीत्सर्वलोकस्य भारत ॥ ११  
 मासजातस्तु ते वीर पिता भवति भारत ।  
 अथाजग्मुः सुबहुलं रत्नमादाय पाण्डवाः ॥ १२  
 तान्समीपगताञ्श्रुत्वा निर्ययुर्वृष्णिपुंगवाः ।

अलं चक्रुश्च माल्यौघैः पुरुषा नागसाह्वयम् ॥ १३  
 पताकाभिर्विचित्राभिर्ध्वजैश्च विविधैरपि ।  
 वेदमानि समलं चक्रुः पौराश्चापि जनाधिप ॥ १४  
 देवतायतनानां च पूजा बहुविधास्तथा ।  
 संदिदेशाश्च विदुरः पाण्डुपुत्रप्रियेप्सया ॥ १५  
 राजमार्गाश्च तत्रासन्सुमनोभिरलकृताः ।  
 शुशुभे तत्पुरं चापि समुद्रौघनिभस्वनम् ॥ १६  
 नर्तकैश्चापि नृत्यद्विर्गयनानां च निखनैः ।  
 आसीद्वैश्रवणस्येव निवासस्तत्पुरं तदा ॥ १७  
 बन्दिभिश्च नरै राजन्त्रीसहायैः सहस्रशः ।  
 तत्र तत्र विविक्तेषु समन्तादुपशोभितम् ॥ १८  
 पताका धूयमानाश्च श्वसता मातरिश्वना ।  
 अदर्शयन्निव तदा कुरुवै दक्षिणोत्तरान् ॥ १९  
 अघोषयत्तदा चापि पुरुषो राजधूर्गतः ।  
 सर्वरात्रिविहारोऽद्य रत्नाभरणलक्षणः ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

७०

वैशंपायन उवाच ।

तान्समीपगताञ्छ्रुत्वा पाण्डवाञ्छत्रुकर्शनः ।  
 वासुदेवः सहामात्यः प्रत्युद्यातो दिदृक्षया ॥ १  
 ते समेत्य यथान्यायं पाण्डवा वृष्णिभिः सह ।  
 विविशुः सहिता राजन्पुरं वारणसाह्वयम् ॥ २  
 महत्स्तस्य सैन्यस्य खुरनेमिस्वनेन च ।  
 द्यावापृथिव्यौ खं चैव शब्देनासीत्समावृतम् ॥ ३  
 ते कोशमग्रतः कृत्वा विविशुः स्वपुरं तदा ।  
 पाण्डवाः प्रीतमनसः सामात्याः ससुहृद्गणाः ॥ ४  
 ते समेत्य यथान्यायं धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ।  
 कीर्तयन्तः स्वनामानि तस्य पादौ ववन्दिरे ॥ ५  
 धृतराष्ट्रादनु च ते गान्धारीं सुबलात्मजाम् ।

कुन्तीं च राजशार्दूल तदा भरतसत्तमाः ॥ ६  
 विदुरं पूजयित्वा च वैश्यापुत्रं समेत्य च ।  
 पूज्यमानाः स्म ते वीरा व्यराजन्त विशां पते ॥ ७  
 ततस्तत्परमाश्चर्यं विचित्रं महद्दृढतम् ।  
 शुश्रुवुस्ते तदा वीराः पितुस्ते जन्म भारत ॥ ८  
 तदुपश्रुत्य ते कर्म वासुदेवस्य धीमतः ।  
 पूजार्हं पूजयामासुः कृष्ण देवकिनन्दनम् ॥ ९  
 ततः कतिपयाहस्य व्यासः सत्यवतीसुतः ।  
 आजगाम महातेजा नगरं नागसाह्वयम् ॥ १०  
 तस्य सर्वे यथान्यायं पूजां चक्रुः कुरुवृद्धाः ।  
 सह वृष्ण्यन्धकव्यात्रैरुपासांचक्रिरे तदा ॥ ११  
 तत्र नानाविधाकाराः कथाः समनुकीर्त्य वै ।  
 युधिष्ठिरो धर्मसुनो व्यासं वचनमब्रवीत् ॥ १२  
 भवत्प्रसादाद्भगवन्त्यदिदं रत्नमाहृतम् ।  
 उपयोक्तुं तदिच्छामि वाजिमेवे महाक्रतौ ॥ १३  
 तदनुज्ञातुमिच्छामि भवता मुनिसत्तम ।  
 त्वदधीना वयं सर्वे कृष्णस्य च महात्मनः ॥ १४

व्यास उवाच ।

अनुजानामि राजस्त्वां क्रियतां यदनन्तरम् ।  
 यजस्व वाजिमेवेन विधिवदक्षिणावता ॥ १५  
 अश्वमेधो हि राजेन्द्र पावनः सर्वपाप्मनाम् ।  
 तेनेष्ट्वा त्वं विपाप्मा वै भविता नात्र संशयः ॥ १६

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्तः स तु धर्मात्मा कुरुराजो युधिष्ठिरः ।  
 अश्वमेधस्य कौरव्य चकाराहरणे मतिम् ॥ १७  
 समनुज्ञाप्य तु स तं कृष्णद्वैपायनं नृपः ।  
 वासुदेवमथामन्त्रय वाग्मी वचनमब्रवीत् ॥ १८  
 देवकी सुप्रजा देवी त्वया पुरुषसत्तम ।  
 यद्भूयां त्वां महाबाहो तत्कृथास्त्वमिहाच्युत ॥ १९  
 त्वत्प्रभावार्जितान्भोगानश्रीम यदुनन्दन ।

पराक्रमेण बुद्ध्या च त्वयेयं निर्जिता मही ॥ २०  
दीक्षयस्व त्वमात्मानं त्वं नः परमको गुरुः ।  
त्वयीष्टवति धर्मज्ञ विपात्ता स्यामहं विभो ।  
त्वं हि यज्ञोऽक्षरः सर्वस्त्वं धर्मस्त्वं प्रजापतिः ॥ २१

वाल्मेदेव उवाच ।

त्वमेवैतन्महाबाहो वक्तुमर्हस्यरिदम ।  
त्वं गतिः सर्वभूतानामिति मे निश्चिता मतिः ॥ २२  
त्वं चाद्य कुरुवीराणां धर्मेणाभिविराजसे ।  
गुणभूताः स्म ते राजस्त्वं नो राजन्मतो गुरुः ॥ २३  
यजस्व मदनुज्ञातः प्राप्त एव क्रतुर्मया ।  
युनक्तु नो भवान्कार्ये यत्र वाञ्छसि भारत ।  
सत्यं ते प्रतिजानामि सर्वं कर्तास्मि तेऽनघ ॥ २४  
मीमसेनार्जुनौ चैव तथा माद्रवतीसुतौ ।  
इष्टवन्तो भविष्यन्ति त्वयीष्टवति भारत ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

७१

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु कृष्णेन धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।  
व्याससामञ्जस्य मेधावी ततो वचनमब्रवीत् ॥ १  
यथा कालं भवान्वेत्ति ह्यमेधस्य तत्त्वतः ।  
दीक्षयस्व तदा मा त्वं स्वय्यायत्तो हि मे क्रतुः ॥ २

व्यास उवाच ।

अहं पैलोऽथ कौन्तेय याज्ञवल्क्यस्तथैव च ।  
विधानं यद्यथाकालं तत्कर्तारो न संशयः ॥ ३  
चैत्र्यां हि पौर्णमास्यां च तव दीक्षा भविष्यति ।  
संभाराः संभ्रियन्तां ते यज्ञार्थं पुरुषर्षभ ॥ ४  
अश्वविद्याविदश्चैव सूता विप्राश्च तद्विदः ।  
मेध्यमश्वं परीक्षन्तां तव यज्ञार्थसिद्धये ॥ ५

तमुत्सृज्य यथाशास्त्रं पृथिवीं सागरान्तराम् ।  
स पर्येतु यशो नाम्ना तव पार्थिव वर्धयन् ॥ ६

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा पाण्डवः पृथिवीपतिः ।  
चकार सर्वं राजेन्द्र यथोक्तं ब्रह्मवादिना ।  
संभाराश्चैव राजेन्द्र सर्वे संकल्पिताभवन् ॥ ७  
स संभारान्समाहृत्य नृपो धर्मात्मजस्तदा ।  
न्यवेदयदमेयात्मा कृष्णद्वैपायनाय वै ॥ ८  
ततोऽब्रवीन्महातेजा व्यासो धर्मात्मजं नृपम् ।  
यथाकालं यथायोग सज्जाः स्म तव दीक्षणे ॥ ९  
स्फ्यश्च कूर्चश्च सौवर्णो यश्चान्यदपि कौरव ।  
तत्र योग्यं भवेत्किञ्चित्त्रौक्यं क्रियतामिति ॥ १०  
अश्वश्चोत्सृज्यतामघ पृथ्व्यामथ यथाक्रमम् ।  
सुगुप्तश्च चरत्वेष्ट यथाशास्त्रं युधिष्ठिर ॥ ११

युधिष्ठिर उवाच ।

अयमश्वो मया ब्रह्मभ्रुत्सृष्टः पृथिवीमिमाम् ।  
चरिष्यति यथाकामं तत्र वै संविधीयताम् ॥ १२  
पृथिवीं पर्यटन्तं हि तुरगं कामचारिणम् ।  
कः पालयेदिति मुने तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १३

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्तः स तु राजेन्द्र कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।  
मीमसेनादवरजः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ १४  
जिष्णुः सहिष्णुर्धृष्णुश्च स एनं पालयिष्यति ।  
शक्तः स हि मही जेतुं निवातकवचान्तकः ॥ १५  
तस्मिन्हास्त्राणि दिव्यानि दिव्यं संहननं तथा ।  
दिव्यं धनुश्चेष्टुधी च स एनमनुयास्यति ॥ १६  
स हि धर्मार्थकुशलः सर्वविद्याविशारदः ।  
यथाशास्त्रं नृपश्रेष्ठ चारयिष्यति ते ह्यम् ॥ १७  
राजपुत्रो महाबाहुः श्यामो राजीवलोचनः ।

अभिमन्योः पिता वीरः स एनमनुयास्यति ॥ १८  
मीमसेनोऽपि तेजस्वी कौन्तेयोऽमितविक्रमः ।  
समर्थो रक्षितुं राष्ट्रं नकुलश्च विशां पते ॥ १९  
सहदेवस्तु कौरव्य समाधास्यति बुद्धिमान् ।  
कुटुम्बतन्त्रं विधिवत्सर्वमेव महायशाः ॥ २०  
तत्तु सर्वं यथान्यायमुक्तं कुरुकुलोद्बहः ।  
चकार फल्गुनं चापि संदिदेश ह्यं प्रति ॥ २१

युधिष्ठिर उवाच ।

एह्यर्जुन त्वया वीर ह्योऽयं परिपाल्यताम् ।  
त्वमर्हो रक्षितुं ह्येनं नान्यः कश्चन मानवः ॥ २२  
ये चापि त्वां महाबाहो प्रत्युदीयुर्नराधिपाः ।  
तैर्विप्रहो यथा न स्यात्तथा कार्यं त्वयानघ ॥ २३  
आख्यातव्यश्च भवता यज्ञोऽयं मम सर्वशः ।  
पार्थिवेभ्यो महाबाहो समये गम्यतामिति ॥ २४  
एवमुक्त्वा स धर्मात्मा भ्रातरं सव्यसाचिनम् ।  
मीमं च नकुलं चैव पुरगुप्तौ समादधत् ॥ २५  
कुटुम्बतन्त्रे च तथा सहदेवं युधां पतिम् ।  
अनुमान्य महीपालं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरः ॥ २६  
इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि  
एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

७२

वैशंपायन उवाच ।

दीक्षाकाले तु संप्राप्ते ततस्ते सुमहर्त्विजः ।  
विधिवद्दीक्षयामासुरन्ध्रमेधाय पार्थिवम् ॥ १  
कृत्वा स पशुबन्धांश्च दीक्षितः पाण्डुनन्दनः ।  
धर्मराजो महातेजाः सहर्त्विग्भिर्व्यरोचत ॥ २  
हयश्च हयमेधार्थं स्वयं स ब्रह्मवादिना ।  
उत्सृष्टः शास्त्रविधिना व्यासेनामिततेजसा ॥ ३  
स राजा धर्मजो राजन्दीक्षितो विबभौ तदा ।  
हेममाली रुक्मकण्ठः प्रदीप्त इव पावकः ॥ ४

कृष्णाजिनी दण्डपाणिः क्षौमवासाः स धर्मजः ।  
विवभौ द्युनिमान्भूयः प्रजापतिरिवाध्वरे ॥ ५  
तथैवास्यर्त्विजः सर्वे तुल्यवेषा विशां पते ।  
बभूवुर्जुनश्चैव प्रदीप्त इव पावकः ॥ ६  
श्वेताश्वः कृष्णस्तरं तं ससाराश्वं धनंजयः ।  
विधिवत्पृथिवीपाल धर्मराजस्य शासनान् ॥ ७  
विक्षिपन्गाण्डिवं राजन्वल्गोधाङ्गुलित्रयान् ।  
तमश्वं पृथिवीपाल मुदा युक्तः ससार ह ॥ ८  
आकुमारं तदा राजन्नागमन्तपुरं विशो ।  
द्रष्टुकामं कुरुश्रेष्ठं प्रयात्यन्त धनंजयम् ॥ ९  
तेषामन्योन्यसंमर्दाद्भूमेः सभजायत ।  
दिदृक्षूणां ह्यं तं च न चैव हयसारिणम् ॥ १०  
ततः शब्दो महाराज इजाशाः प्रतिपूरयन् ।  
बभूव प्रेक्षतां दूणां कुन्तीपुत्रं धनंजयम् ॥ ११  
एष गच्छति कौन्तेयस्तुरगश्चैव दीप्तिमान् ।  
यमन्वेति महाबाहुः संस्पृशन्धनुरुत्तमम् ॥ १२  
एवं शुश्राव वदतां गिरो जिष्णुरुदारधीः ।  
स्वस्ति तेऽस्तु व्रजारिष्टं पुनश्चेद्दीनि भारत ॥ १३  
अथापरे मनुष्येन्द्र पुरुषा वाक्यमब्रुवन् ।  
नैनं पश्याम संमर्दं धनुरेतत्प्रदृश्यते ॥ १४  
एतद्धि भीमनिर्द्वादं विश्रुतं गाण्डिवं धनुः ।  
स्वस्ति गच्छत्वरिष्ट वै पन्थानमकुतोभयम् ।  
निवृत्तमेनं द्रक्ष्यामः पुनरेव च तेऽब्रुवन् ॥ १५  
एवमाद्या मनुष्याणां स्त्रीणां च भरतर्षभ ।  
शुश्राव मधुरा वाचः पुनः पुनरुदीरिताः ॥ १६  
याज्ञवल्क्यस्य शिष्यश्च कुशलो यज्ञकर्मणि ।  
प्रायात्पार्थेन सहितः शान्त्यर्थं वेदपारगः ॥ १७  
ब्राह्मणाश्च महीपाल बहवो वेदपारगाः ।  
अनुजग्मुर्महात्मानं क्षत्रियाश्च विशोऽपि च ॥ १८  
पाण्डवैः पृथिवीमश्वो निर्जितामस्त्रतेजसा ।

चचार स महाराज यथादेशं स सत्तम ॥ १९  
 तत्र युद्धानि वृत्तानि यान्यासन्पाण्डवस्य ह ।  
 तानि वक्ष्यामि ते वीर विचित्राणि महान्ति च ॥  
 स ह्यः पृथिवी राजन्प्रदक्षिणमरिंदम ।  
 ससारोत्तरतः पूर्वं तन्निबोध महीपते ॥ २१  
 अवमृद्भन्स राष्ट्राणि पार्थिवानां ह्योत्तमः ।  
 शनैस्तदा परिययौ श्वेताश्वश्च महारथः ॥ २२  
 तत्र संकलना नास्ति राज्ञामयुतशस्तदा ।  
 येऽयुध्यन्त महाराज क्षत्रिया हतबान्धवाः ॥ २३  
 किराता विकृता राजन्बहवोऽसिधनुर्धराः ।  
 म्लेच्छाश्चान्ये बहुविधाः पूर्वं विनिकृता रणे ॥ २४  
 आर्याश्च पृथिवीपालाः प्रहृष्टनरवाहनाः ।  
 समीयुः पाण्डुपुत्रेण बहवो युद्धदुर्मदाः ॥ २५  
 एवं युद्धानि वृत्तानि तत्र तत्र महीपते ।  
 अर्जुनस्य महीपालैर्नानादेशनिवासिभिः ॥ २६  
 यानि तूभयतो राजन्प्रतप्तानि महान्ति च ।  
 तानि युद्धानि वक्ष्यामि कौन्तेयस्य तवानघ ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

७३

वैशंपायन उवाच ।

त्रिगतैरभवद्युद्धं कृतवैरैः किरीटिनः ।  
 महारथसमाज्ञातैर्हतानां पुत्रनप्तृभिः ॥ १  
 ते समाज्ञाय संप्राप्तं यज्ञियं तुरगोत्तमम् ।  
 विषयान्ते ततो वीरा दंशिताः पर्यवारयन् ॥ २  
 रथिनो बद्धतूणीराः सदश्वैः समलंकृतैः ।  
 परिवार्य हयं राजन्प्रहीतुं संप्रचक्रमुः ॥ ३  
 ततः किरीटी संचिन्त्य तेषां राज्ञां चिकीर्षितम् ।  
 वारयामास तान्वीरान्सान्त्वपूर्वमरिंदमः ॥ ४  
 तमनादृत्य ते सर्वे शरैरभ्यहनन्स्तदा ।

तमोरजोभ्यां संलब्धान्स्तान्किरीटी न्यवारयत् ॥ ५  
 अब्रवीच्च ततो जिष्णुः प्रहसन्निव भारत ।  
 निवर्तध्वमधर्मज्ञाः श्रेयो जीवितमेव वः ॥ ६  
 स हि वीरः प्रयास्यन्वै धर्मराजेन वारितः ।  
 हतबान्धवा न ते पार्थ हन्तव्याः पार्थिवा इति ॥  
 स तदा तद्वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः ।  
 तान्निवर्तध्वमित्याह न न्यवर्तन्त चापि ते ॥ ८  
 ततस्त्रिगर्तराजानं सूर्यवर्माणमाहवे ।  
 वितत्य शरजालेन प्रजहास धनंजयः ॥ ९  
 ततस्ते रथघोषेण खुरनेमिस्वनेन च ।  
 पूरयन्तो दिशः सर्वा धनंजयमुपाद्रवन् ॥ १०  
 सूर्यवर्मा ततः पार्थ शराणां नतपर्वणाम् ।  
 शतान्यमुञ्चद्राजेन्द्र लघ्वस्त्रमभिदर्शयन् ॥ ११  
 तथैवान्ये महेष्वासा ये तस्यैवानुयायिनः ।  
 मुमुचुः शरवर्षाणि धनंजयवधैषिणः ॥ १२  
 स ताड्यापुङ्खनिर्मुक्तैर्बहुभिः सुबहून्शरान् ।  
 चिच्छेद् पाण्डवो राजंस्ते भूमौ न्यपतन्स्तदा ॥ १३  
 केतुवर्मा तु तेजस्वी तस्यैवावरजो युवा ।  
 युयुधे भ्रातुरर्थाय पाण्डवेन महात्मना ॥ १४  
 तमापतन्तं संप्रेक्ष्य केतुवर्माणमाहवे ।  
 अभ्यग्ननिशितैर्बाणैर्बाभत्सुः परवीरहा ॥ १५  
 केतुवर्मण्यभिहते धृतवर्मा महारथः ।  
 रथेनाशु समावृत्य शरैर्जिष्णुमवाकिरत् ॥ १६  
 तस्य तां शीघ्रतामीक्ष्य तुतोषातीव वीर्यवान् ।  
 गुडाकेशो महातेजा बालस्य धृतवर्मणः ॥ १७  
 न संदधानं ददृशे नाददानं च तं तदा ।  
 किरन्तमेव स शरान्ददृशे पाकशासनिः ॥ १८  
 स तु तं पूजयामास धृतवर्माणमाहवे ।  
 मनसा स मुहूर्तं वै रणे समभिहर्षयन् ॥ १९  
 तं पन्नगमिव कुट्टं कुरुवीरः स्मयन्निव ।

प्रीतिपूर्वं महाराज प्राणेन व्यपरोपयन् ॥ २०  
 स तथा रक्ष्यमाणो वै पार्थेनामितेजसा ।  
 धृतवर्मा शरं तीक्ष्णं मुमोच विजये तदा ॥ २१  
 स तेन विजयस्तूर्णमस्यन्विद्धः करे भृशम् ।  
 मुमोच गाण्ढिव दुःखात्तत्पपाताथ भूतले ॥ २२  
 धनुषः पततस्तस्य सव्यसाचिकराद्विभो ।  
 इन्द्रस्येवायुधस्यासीद्वपं भरतसत्तम ॥ २३  
 तस्मिन्निपतिते दिव्ये महाधनुषि पार्थिव ।  
 जहास सस्वन हासं धृतवर्मा महाहवे ॥ २४  
 ततो रोषान्वितो जिष्णुः प्रमृज्य रुधिरं करान् ।  
 धनुरादत्त तद्विव्यं शरवर्षं ववर्ष च ॥ २५  
 ततो हलहलशब्दो दिवस्पृगभदत्तदा ।  
 नानाविधानां भूतानां तत्कर्मातीव शंसताम् ॥ २६  
 ततः संप्रेक्ष्य तं क्रुद्ध कालान्तकप्रोपमम् ।  
 जिष्णु त्रैगर्तका योधास्त्वरिताः परिवारयन् ॥ २७  
 अभिसृत्य परिणसार्थं ततस्ते धृतवर्मणः ।  
 परिवत्रुर्गुडाक्षेणं तत्राकुप्यद्वजजयः ॥ २८  
 ततो योधाञ्जघानाशु तेषां स दश चाष्ट च ।  
 महेन्द्रवज्रप्रतिमैरायसैर्निशितैः शरैः ॥ २९  
 तांस्तु प्रभग्नान्संप्रेक्ष्य त्वरमाणो धनंजयः ।  
 शरैराशीविषाकारैर्जघान स्वनवद्धसन् ॥ ३०  
 ते भग्नमनसः सर्वे त्रैगर्तकमहारथाः ।  
 दिशो विदुदुबुः सर्वा धनंजयशरादिताः ॥ ३१  
 त ऊचुः पुरुषव्याघ्रं संशप्तकनिषूदनम् ।  
 तव स्म किंकराः सर्वे सर्वे च वशगास्तव ॥ ३२  
 आज्ञापयस्व नः पार्थ प्रह्वान्प्रेष्यान्वस्थितान् ।  
 करिष्यामः प्रियं सर्वं तव कौरवनन्दन ॥ ३३  
 एतदाज्ञाय वचनं सर्वास्तान्ब्रवीत्तदा ।

जीवितं रक्षत नृपाः शासनं गृह्यतामिति ॥ ३४

इति श्रीमद्भारते आश्वमेधिकपर्वणि

त्रिंशत्तितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

७४

वैशंपायन उवाच ।

प्रागज्योतिषमथाभ्येत्य व्यवरत्स ह्योत्तमः ।  
 भगदत्तात्मजस्तत्र निर्ययौ रणकर्कशः ॥ १  
 स हयं पाण्डुपुत्रस्य विषयान्तमुपागतम् ।  
 युयुधे भरतश्रेष्ठ वज्रदत्तो महीपतिः ॥ २  
 सोऽभिनिर्याय नगराद्भगदत्तसुतो नृपः ।  
 अश्वमायान्तमुन्मथ्य नगराभिमुखो ययौ ॥ ३  
 तमालक्ष्य महाबाहुः कुरुणामृषभस्तदा ।  
 गाण्डीवं विक्षिपंस्तूर्णं सहसा समुपाद्रवत् ॥ ४  
 ततो गाण्डीवनिमुक्तेरिषुभिर्मोहितो नृपः ।  
 हयमुत्सृज्य तं वीरस्ततः पार्थमुपाद्रवत् ॥ ५  
 पुनः प्रविश्य नगरं दंशिनः स नृपोत्तमः ।  
 आरुह्य नागप्रवरं निर्ययौ युद्धकाङ्क्षया ॥ ६  
 पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।  
 दोधूयता चामरेण श्वेतेन च महारथः ॥ ७  
 ततः पार्थ समासाद्य पाण्डवानां महारथम् ।  
 आह्वयामास कौरव्यं बाल्यान्मोहाच्च संयुगे ॥ ८  
 स वारणं नगप्रख्यं प्रभिन्नकरटामुखम् ।  
 प्रेषयामास सकुद्रस्ततः श्वेतहयं प्रति ॥ ९  
 विक्षरन्तं यथा मेघं परवारणवारणम् ।  
 शास्त्रवत्कल्पित संख्ये त्रिसाहं युद्धदुर्मदम् ॥ १०  
 प्रचोद्यमानः स गजस्तेन राज्ञा महाबलः ।  
 तदाङ्कुशेन विबभावुत्पतिष्यन्निवाम्बरम् ॥ ११  
 तमापतन्त संप्रेक्ष्य क्रुद्धो राजन्धनंजयः ।  
 भूमिष्ठो वारणगतं योधयामास भारत ॥ १२  
 वज्रदत्तस्तु संक्रुद्धो मुमोचाशु धनंजये ।

तोमरानग्निसंकाशाश्लभानिव वेगितान् ॥ १३  
 अर्जुनस्तानसंप्राप्ताङ्गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।  
 द्विधा त्रिधा च चिच्छेद ख एव खगभैस्तदा ॥ १४  
 स तान्दृष्ट्वा तथा छिन्नास्तोमरान्भगदत्तजः ।  
 इषूनसक्तांस्त्वरितः प्राहिणोत्पाण्डवं प्रति ॥ १५  
 ततोऽर्जुनस्तूर्णतरं रुक्मपुङ्गवानजिह्वगान् ।  
 प्रेषयामास संक्रुद्धो भगदत्तात्मजं प्रति ॥ १६  
 स तैर्विद्धो महातेजा वज्रदत्तो महाहवे ।  
 भृशहतः पपातोर्व्यां न त्वेनमजहात्स्मृतिः ॥ १७  
 ततः स पुनरारुह्य वारणप्रवरं रणे ।  
 अव्यग्रः प्रेषयामास जयार्थी विजयं प्रति ॥ १८  
 तस्मै बाणांस्ततो जिष्णुर्निर्मुक्ताशीविषोपमान् ।  
 प्रेषयामास संक्रुद्धो ज्वलितानिव पावकान् ॥ १९  
 स तैर्विद्धो महानागो विस्त्रवन्रुधिरं बभौ ।  
 हिमवानिव शैलेन्द्रो बहुप्रस्रवणस्तदा ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

चतु सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

७५

वैशंपायन उवाच ।

एवं त्रिरात्रमभवत्तद्युद्धं भरतर्षभ ।  
 अर्जुनस्य नरेन्द्रेण वृत्रेणैव शतक्रतोः ॥ १  
 ततश्चतुर्थे दिवसे वज्रदत्तो महाबलः ।  
 जहास सख्यं हासं वाक्यं चेदमथाब्रवीत् ॥ २  
 अर्जुनार्जुन तिष्ठस्व न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ।  
 त्वां निहत्य करिष्यामि पितुस्तोयं यथाविधि ॥ ३  
 त्वया वृद्धो मम पिता भगदत्तः पितुः सखा ।  
 हतो वृद्धोऽपचायित्वाच्छिशुं मामद्य योधय ॥ ४  
 इत्येवमुक्त्वा संक्रुद्धो वज्रदत्तो नराधिपः ।  
 प्रेषयामास कौरव्य वारणं पाण्डवं प्रति ॥ ५  
 संप्रेष्यमाणो नागेन्द्रो वज्रदत्तेन धीमता ।

उत्पतिष्यन्निवाकाशमभिदुद्राव पाण्डवम् ॥ ६  
 अग्रहस्तप्रमुक्तेन शीकरेण स फल्गुनम् ।  
 समुक्षत महाराज शैलं नील इवाम्बुदः ॥ ७  
 स तेन प्रेषितो राज्ञा मेघवन्ननदन्मुहुः ।  
 मुखाडम्बरघोषेण समाद्रवत फल्गुनम् ॥ ८  
 स नृत्यन्निव नागेन्द्रो वज्रदत्तप्रचोदितः ।  
 आससाद द्रुतं राजन्कौरवाणां महारथम् ॥ ९  
 तमापतन्तं संप्रेक्ष्य वज्रदत्तस्य वारणम् ।  
 गाण्डीवमाश्रित्य बली न व्यकम्पत शत्रुहा ॥ १०  
 चुक्रोध बलवच्चापि पाण्डवस्तस्य भूपतेः ।  
 कार्यविघ्नमनुस्मृत्य पूर्ववैरं च भारत ॥ ११  
 ततस्तं वारणं क्रुद्धः शरजालेन पाण्डवः ।  
 निवारयामास तदा वेल्लेव मकरालयम् ॥ १२  
 स नागप्रवरो वीर्यादर्जुनेन निवारितः ।  
 तस्थौ शरैर्वितुन्नाङ्गः श्वाविच्छललितो यथा ॥ १३  
 निवारितं गजं दृष्ट्वा भगदत्तात्मजो नृपः ।  
 उत्ससर्ज शितान्बाणानर्जुनं क्रोधमूर्छितः ॥ १४  
 अर्जुनस्तु महाराज शरैः शरविघातिभिः ।  
 वारयामास तानस्तांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १५  
 ततः पुनरतिक्रुद्धो राजा प्राण्योतिषाधिपः ।  
 प्रेषयामास नागेन्द्रं बलवच्छ्वसनोपमम् ॥ १६  
 तमापतन्तं संप्रेक्ष्य बलवान्पाकशासनिः ।  
 नाराचमग्निसंकाशं प्राहिणोद्वारणं प्रति ॥ १७  
 स तेन वारणो राजन्मर्मण्यभिहतो भृशम् ।  
 पपात सहसा भूमौ वज्ररुग्ण इवाचलः ॥ १८  
 स पतञ्जशुभे नागो धनंजयशराहतः ।  
 विशन्निव महाशैलो महीं वज्रप्रपीडितः ॥ १९  
 तस्मिन्निपतिते नागे वज्रदत्तस्य पाण्डवः ।  
 तं न भेतव्यमित्याह ततो भूमिगत नृपम् ॥ २०  
 अब्रवीद्धि महातेजाः प्रस्थितं मां युधिष्ठिरः ।



राजानस्ते न हन्तव्या धनंजय कथंचन ॥ २१  
 सर्वमेतन्नरव्याघ्र भवत्वेतावता कृतम् ।  
 योधाश्चापि न हन्तव्या धनंजय रणे त्वया ॥ २२  
 वक्तव्याश्चापि राजानः सर्वैः सह सुहृज्जनैः ।  
 युधिष्ठिरस्याश्वमेधो भवद्भिरनुभूयताम् ॥ २३  
 इति भ्रातृवचः श्रुत्वा न हन्मि त्वां जनाधिप ।  
 उत्तिष्ठ न भयं तेऽस्ति स्वस्तिमानाच्छ पार्थिव ॥  
 आगच्छेथा महाराज परां चैत्रीमुपस्थिताम् ।  
 तदाश्वमेधो भविता धर्मराजस्य धीमतः ॥ २५  
 एवमुक्तः स राजा तु भगदत्तात्मजस्तदा ।  
 तथेत्येवाब्रवीद्वाक्यं पाण्डवेनाभिनिर्जितः ॥ २६  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

७६

वैशंपायन उवाच ।

सैन्धवैरभवद्युद्धं ततस्तस्य किरीटिनः ।  
 हतशेषैर्महाराज हतानां च सुतैरपि ॥ १  
 तेऽवतीर्णमुपश्रुत्य विषयं श्रुतवाहनम् ।  
 प्रत्युद्ययुरमृष्यन्तो राजानः पाण्डवर्षभम् ॥ २  
 अश्वं च तं परामृश्य विषयान्ते विषोपमाः ।  
 न भयं चकिरे पार्थाङ्गीमसेनादनन्तरात् ॥ ३  
 तेऽविदूराद्धनुष्पाणिं यज्ञियस्य हयस्य च ।  
 बीभत्सुं प्रत्यपद्यन्त पदातिनमवस्थितम् ॥ ४  
 ततस्ते तु महावीर्या राजानः पर्यवारयन् ।  
 जिगीषन्तो नरव्याघ्राः पूर्वं विनिकृता युधि ॥ ५  
 ते नामान्यथ गोत्राणि कर्माणि विविधानि च ।  
 कीर्तयन्तस्तदा पार्थ शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ६  
 ते किरन्तः शरांस्तीक्ष्णान्वारणेन्द्रनिवारणान् ।  
 रणे जयमभीप्सन्तः कौन्तेयं पर्यवारयन् ॥ ७  
 तेऽसमीक्ष्यैव तं वीरमुग्रकर्माणमाहवे ।

सर्वे युयुधिरे वीरा रथस्थास्तं पदातिनम् ॥ ८  
 ते तमाजग्निरा वीरं निवातकवचान्तकम् ।  
 संशप्तकनिहन्तारं हन्तारं सैन्धवस्य च ॥ ९  
 ततो रथसहस्रेण हतानामयुतेन च ।  
 कोष्ठकीकृत्य कौन्तेयं संप्रहृष्टमयोधयन् ॥ १०  
 संस्मरन्तो वधं वीराः सिन्धुराजस्य धीमतः ।  
 जयद्रथस्य कौरव्य समरे सव्यसाचिना ॥ ११  
 ततः पर्जन्यवत्सर्वे शरवृष्टिमवासृजन् ।  
 तैः कीर्णः शुशुभे पार्थो रविर्मैघान्तरे यथा ॥ १२  
 स शरैः समवच्छन्नो ददृशे पाण्डवर्षभः ।  
 पञ्जरान्तरसंचारी शकुन्त इव भारत ॥ १३  
 ततो हाहाकृतं सर्वं कौन्तेये शरपीडिते ।  
 त्रैलोक्यमभवद्राजन्निश्वासीद्रजोरुणः ॥ १४  
 ततो ववौ महाराज मारुतो रोमहर्षणः ।  
 राहुरग्रसदादित्यं युगपत्सोममेव च ॥ १५  
 उल्काश्च जग्निरा सूर्यं विकीर्यन्त्यः समन्ततः ।  
 वेपथुश्चाभवद्राजन्कैलासस्य महागिरेः ॥ १६  
 मुमुचुश्चास्रमत्युष्णं दुःखशोकसमन्विताः ।  
 सप्तर्षयो जातभयास्तथा देवर्षयोऽपि च ॥ १७  
 शशश्चाशु विनिर्भिद्य मण्डलं शशिनोऽपतत् ।  
 विपरीतस्तदा राजंस्तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ॥ १८  
 रासभारुणसंकाशा धनुष्मन्तः सविद्युतः ।  
 आवृत्य गगनं मेघा मुमुचुर्मांसशोणितम् ॥ १९  
 एवमासीत्तदा वीरे शरवर्षाभिसंवृते ।  
 लोकेऽस्मिन्भरतश्रेष्ठ तद्भुतमिवाभवत् ॥ २०  
 तस्य तेनावकीर्णस्य शरजालेन सर्वशः ।  
 मोहात्पपात गाण्डीवमावापश्च करादपि ॥ २१  
 तस्मिन्मोहमनुप्राप्ते शरजालं महत्तरम् ।  
 सैन्धवा मुमुचुस्तूर्णं गतसत्त्वे महारथे ॥ २२  
 ततो मोहसमापन्नं ज्ञात्वा पार्थ दिवौकसः ।

सर्वे वित्रस्तमनसस्तस्य शान्तिपराभवन् ॥ २३  
 ततो देवर्षयः सर्वे तथा सत्तर्पयोऽपि च ।  
 ब्रह्मर्षयश्च विजयं जेपुः पार्थस्य धीमतः ॥ २४  
 ततः प्रदीपिते देवैः पार्थतेजसि पार्थिव ।  
 तस्यावचलवद्वीमान्संग्रामे परमास्त्रवित् ॥ २५  
 विचकर्ष धनुर्दिव्यं ततः कौरवनन्दनः ।  
 यन्मस्येवेह शब्दोऽभून्महांस्तस्य पुनः पुनः ॥ २६  
 ततः स शरवर्षाणि प्रत्यमित्रान्प्रति प्रभुः ।  
 ववर्ष धनुषा पार्थो वर्षाणीव सुरेश्वरः ॥ २७  
 ततस्ते सैन्धवा योधाः सर्व एव सराजकाः ।  
 नादृश्यन्त शरैः कीर्णाः शलभेरिव पावकाः ॥ २८  
 तस्य शब्देन वित्रेसुर्भयातार्ताश्च विदुर्बुधुः ।  
 मुमुचुश्चाशु शोकार्ताः सुषुपुश्चापि सैन्धवाः ॥ २९  
 तांस्तु सर्वान्नरश्रेष्ठः सर्वतो विचरन्बली ।  
 अलातचक्रवद्राजञ्जराजलैः समर्पयत् ॥ ३०  
 तदिन्द्रजालप्रतिमं बाणजालममित्रहा ।  
 व्यसृजद्विभ्रु सर्वासु महेन्द्र इव वज्रभृत् ॥ ३१  
 मेघजालनिभं सैन्यं विदार्य स रविप्रभः ।  
 विवभौ कौरवश्रेष्ठः शरदीव दिवाकरः ॥ ३२  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

७७

वैशंपायन उवाच ।

ततो गाण्डीवभृच्छूरो युद्धाय समवस्थितः ।  
 विवभौ युधि दुर्धर्षो हिमवानचलो यथा ॥ १  
 ततः सैन्धवयोधास्ते पुनरेव व्यवस्थिताः ।  
 विमुञ्चन्तः सुसंरब्धाः शरवर्षाणि भारत ॥ २  
 तान्प्रसह्य महावीर्यः पुनरेव व्यवस्थितान् ।  
 ततः प्रोवाच कौन्तेयो मुमूर्षुश्चक्षुष्या गिरा ॥ ३  
 युध्यन्वं परया शक्त्या यतन्ध्वं च वधे मम ।

कुरुध्वं सर्वकार्याणि महद्भो भयमागतम् ॥ ४  
 एष योत्स्यामि वः सर्वान्निवार्य शरवागुराम् ।  
 तिष्ठन्वं युद्धमनसो दुर्पं विनयितास्मि वः ॥ ५  
 एतावदुक्त्वा कौरव्यो रूषा गाण्डीवभृत्तदा ।  
 ततोऽथ वचनं स्मृत्वा भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भारत ॥ ६  
 न हन्तव्या रणे तात क्षत्रिया विजिगीषवः ।  
 जेतव्याश्चेति यत्प्रोक्तं धर्मराज्ञा महात्मना ।  
 चिन्तयामास च तदा फल्गुनः पुरुषर्षभः ॥ ७  
 इत्युक्तोऽहं नरेन्द्रेण न हन्तव्या नृपा इति ।  
 कथं तन्न मृपेह स्याद्धर्मराजवचः शुभम् ॥ ८  
 न हन्येरंश्च राजानो राज्ञश्चाज्ञा कृता भवेत् ।  
 इति संचिन्त्य स तदा भ्रातुः प्रियहिते रतः ।  
 प्रोवाच वाक्यं धर्मज्ञः सैन्धवान्युद्धदुर्मदान् ॥ ९  
 बालान्ब्रियो वा युष्माकं न हनिष्ये व्यवस्थितान् ।  
 यश्च वक्ष्यति संग्रामे तवास्मीति पराजितः ॥ १०  
 एतच्छ्रुत्वा वचो मह्यं कुरुध्वं हितमात्मनः ।  
 अतोऽन्यथा कृच्छ्रगता भविष्यथ मयार्दिताः ॥ ११  
 एवमुक्त्वा तु तान्दीरान्युयुधे कुरुपुंगवः ।  
 अत्वरवानसंरब्धः संरब्धैर्विजिगीषुभिः ॥ १२  
 ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ।  
 मुमुचुः सैन्धवा राजंस्तदा गाण्डीवधन्वनि ॥ १३  
 स तानापततः क्रूरानाशीविषविषोपमान् ।  
 चिच्छेद निशितैर्बाणैरन्तरैव धनंजयः ॥ १४  
 छित्त्वा तु तानाशुगमान्कङ्कपत्राञ्जिशलाशितान् ।  
 एकैकमेष दशभिर्विभेद समरे शरैः ॥ १५  
 ततः प्रासांश्च शक्तीश्च पुनरेव धनंजये ।  
 जयद्रथं हतं स्मृत्वा चिक्षिपुः सैन्धवा नृपाः ॥ १६  
 तेषां किरीटी संकल्पं मोघं चक्रे महामनाः ।  
 सर्वास्तानन्तरा छित्त्वा मुदा चुक्रोश पाण्डवः ॥ १७  
 तथैवापततां तेषां योधानां जयगृद्धिनाम् ।

शिरांसि पातयामास भैः संनतपर्वभिः ॥ १८  
 तेषां प्रद्रवतां चैव पुनरेव च धावताम् ।  
 निवर्ततां च शब्दोऽभूत्पूर्णस्येव महोदधेः ॥ १९  
 ते बध्यमानास्तु तदा पार्थेनामिततेजसा ।  
 यथाप्राणं यथोत्साहं योधयामासुर्जुनम् ॥ २०  
 ततस्ते फल्गुनेनाजौ शरैः संनतपर्वभिः ।  
 कृता विसंज्ञा भूयिष्ठाः क्लान्तवाहनसैनिकाः ॥ २१  
 तांस्तु सर्वान्परिम्लानान्विदित्वा धृतराष्ट्रजा ।  
 दुःशला बालमादाय नप्तारं प्रययौ तदा ।  
 सुरथस्य सुतं वीरं रथेनानागसं तदा ॥ २२  
 शान्त्यर्थं सर्वयोधानामभ्यगच्छत पाण्डवम् ।  
 सा धनंजयमासाद्य मुमोचार्तस्वरं तदा ।  
 धनंजयोऽपि तां दृष्ट्वा धनुर्विससृजे प्रभुः ॥ २३  
 समुत्सृष्टधनुः पार्थो विधिवद्भगिनी तदा ।  
 प्राह किं करवाणीति सा च तं वाक्यमब्रवीत् ॥ २४  
 एष ते भरतश्रेष्ठ स्वस्त्रीयस्यात्मजः शिशुः ।  
 अभिवादयते वीरं तं पश्य पुरुषर्षभ ॥ २५  
 इत्युक्तस्तस्य पितरं स पप्रच्छार्जुनस्तदा ।  
 कासाविति ततो राजन्दुःशला वाक्यमब्रवीत् ॥ २६  
 पितृशोकाभिसंतप्तो विषादार्तोऽस्य वै पिता ।  
 पञ्चत्वमगमद्वीर यथा तन्मे निबोध ह ॥ २७  
 स पूर्वं पितरं श्रुत्वा हतं युद्धे त्वयानघ ।  
 त्वामागतं च संश्रुत्य युद्धाय ह्यसारिणम् ।  
 पितुश्च मृत्युदुःखार्तोऽजहात्प्राणान्धनंजय ॥ २८  
 प्राप्तो बीभत्सुरित्येव नाम श्रुत्वैव तेऽनघ ।  
 विषादार्तः पपातोर्व्या ममार च समात्मजः ॥ २९  
 तं तु दृष्ट्वा निपतितं ततस्तस्यात्मजं विभो ।  
 गृहीत्वा समनुप्राप्ता त्वामद्य शरणैषिणी ॥ ३०  
 इत्युक्त्वार्तस्वरं सा तु मुमोच धृतराष्ट्रजा ।  
 दीना दीनं स्थितं पार्थमब्रवीच्चाप्यधोमुखम् ॥ ३१

स्वसारं मामवेक्षस्व स्वस्त्रीयात्मजमेव च ।  
 कर्तुमर्हसि धर्मज्ञ दयां मयि कुरुद्वह ।  
 विस्मृत्य कुरुराजानं तं च मन्दं जयद्रथम् ॥ ३२  
 अभिमन्योर्यथा जातः परिक्षित्पर्वीरहा ।  
 तथायं सुरथाज्जातो मम पौत्रो महाभुज ॥ ३३  
 तमादाय नरव्याघ्र संप्राप्तास्मि तवान्तिकम् ।  
 शमार्थं सर्वयोधानां शृणु चेदं वचो मम ॥ ३४  
 आगतोऽयं महाबाहो तस्य मन्दस्य पौत्रकः ।  
 प्रसादमस्य बालस्य तस्मात्त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ३५  
 एष प्रसाद्य शिरसा मया सार्धमरिदम् ।  
 याचते त्वां महाबाहो शमं गच्छ धनंजय ॥ ३६  
 बालस्य हतवन्धोश्च पार्थ किंचिदजानतः ।  
 प्रसादं कुरु धर्मज्ञ मां मन्युवशमन्वगाः ॥ ३७  
 तमनार्य नृशंसं च विस्मृत्यास्य पितामहम् ।  
 आगस्कारिणमत्यर्थं प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ३८  
 एवं ब्रुवत्यां करुणं दुःशलायां धनंजयः ।  
 संस्मृत्य देवी गान्धारी धृतराष्ट्रं च पार्थिवम् ।  
 प्रोवाच दुःखशोकार्तः क्षत्रधर्मं विगर्हयन् ॥ ३९  
 धिक्त्वं दुर्योधनं क्षुद्रं राज्यलुब्धं च मानिनम् ।  
 यत्कृते बान्धवाः सर्वे मया नीता यमक्षयम् ॥ ४०  
 इत्युक्त्वा बहु सान्त्वादि प्रसादमकरोज्जयः ।  
 परिष्वज्य च तां ग्रीतो विससर्ज गृहान्प्रति ॥ ४१  
 दुःशला चापि तान्योधान्निवार्य महतो रणात् ।  
 संपूज्य पार्थं प्रययौ गृहान्प्रति शुभानना ॥ ४२  
 ततः सैन्धवकान्योधान्विनिर्जित्य नरर्षभः ।  
 पुनरेवान्वधावत्स तं हयं कामचारिणम् ॥ ४३  
 ससार यज्ञियं वीरो विधिवत्स विशां पते ।  
 तारामृगमिवाकाशे देवदेवः पिनाकधृक् ॥ ४४  
 स च वाजी यथेष्टेन तांस्तान्देशान्यथासुखम् ।  
 विचचार यथाकामं कर्म पार्थस्य वर्धयन् ॥ ४५

क्रमेण स ह्यस्त्वेवं विचरन्भरतर्षभ ।

मणिपूरपतेर्देशमुपायात्सहपाण्डवः ॥ ४६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

७८

वैशंपायन उवाच ।

श्रुत्वा तु नृपतिर्वीरं पितरं बभ्रुवाहनः ।

निर्ययौ विनयेनार्यो ब्राह्मणार्घ्यपुरःसरः ॥ १

मणिपूरेश्वरं त्वेवमुपयातं धनंजयः ।

नाभ्यनन्दत मेधावी क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ २

उवाच चैनं धर्मात्मा समन्युः फल्गुनस्तदा ।

प्रक्रियेयं न ते युक्ता बहिस्त्वं क्षत्रधर्मतः ॥ ३

संरक्ष्यमाणं तुरगं यौधिष्ठिरमुपागतम् ।

यज्ञियं विषयान्ते मां नायोत्सीः किं नु पुत्रक ॥

धिक्त्वामस्तु सुदुर्बुद्धिं क्षत्रधर्मविशारदम् ।

यो मां युद्धाय संप्राप्तं सान्नैवाथो त्वमग्रहीः ॥ ५

न त्वया पुरुषार्थश्च कश्चिदस्तीह जीवता ।

यस्त्वं स्त्रीवद्युधा प्राप्तं साम्रा मां प्रत्यगृह्णथाः ॥ ६

यद्यहं न्यस्तशस्त्रस्त्वामागच्छेयं सुदुर्मते ।

प्रक्रियेयं ततो युक्ता भवेत्तव नराधम ॥ ७

तमेवमुक्तं भर्त्रा तु विदित्वा पन्नगात्मजा ।

अमृष्यमाणा भिचोर्वीमुल्पी तमुपागमत् ॥ ८

सा ददर्श ततः पुत्रं विमृशन्तमधोमुखम् ।

संतर्ज्यमानमसकृद्भर्त्रा युद्धार्थिना विभो ॥ ९

ततः सा चारुसर्वाङ्गी तमुपेत्योरात्मजा ।

उल्पी प्राह वचनं क्षत्रधर्मविशारदा ॥ १०

उल्पी मां निबोध त्वं मातरं पन्नगात्मजाम् ।

कुरुष्व वचनं पुत्र धर्मस्ते भविता परः ॥ ११

युध्यस्वैनं कुरुश्रेष्ठं धनंजयमरिंदम ।

एवमेष हि ते प्रीतो भविष्यति न संशयः ॥ १२

एवमुद्धर्षितो मात्रा स राजा बभ्रुवाहनः ।

मनश्चक्रे महातेजा युद्धाय भरतर्षभ ॥ १३

संनह्य काश्चनं वर्म शिरस्त्राणं च भानुमत् ।

तूणीरशतसंवाधमारुरोह महारथम् ॥ १४

सर्वोपकरणैर्युक्तं युक्तमश्वैर्मनोजवैः ।

सुचक्रोपस्करं धीमान्हेमभाण्डपरिष्कृतम् ॥ १५

परमार्चितमुच्छ्रित्य ध्वजं सिंहं हिरण्मयम् ।

प्रययौ पार्थमुद्दिश्य स राजा बभ्रुवाहनः ॥ १६

ततोऽभ्येत्य हयं वीरो यज्ञियं पार्थरक्षितम् ।

ग्राहयामास पुरुषैर्हयशिक्षाविशारदैः ॥ १७

गृहीतं वाजिनं दृष्ट्वा प्रीतात्मा स धनंजयः ।

पुत्रं रथस्थं भूमिष्ठः संन्यवारयदाहवे ॥ १८

ततः स राजा तं वीरं शरव्रातैः सहस्रशः ।

अर्दयामास निशितैराशीविषविषोपमैः ॥ १९

तयोः समभवद्युद्धं पितुः पुत्रस्य चातुलम् ।

देवासुररणप्रख्यमुभयोः प्रीयमाणयोः ॥ २०

किरीटिनं तु विव्याध शरेण नतपर्वणा ।

जत्रुदेशे नरव्याघ्रः प्रहसन्बभ्रुवाहनः ॥ २१

सोऽभ्यगात्सह पुङ्गेन वल्मीकमिव पन्नगः ।

विनिर्मिद्य च कौन्तेयं महीतलमथाविशत् ॥ २२

स गाढवेदनो धीमानालम्ब्य धनुरुत्तमम् ।

दिव्यं तेजः समाविश्य प्रमीत इव संबभौ ॥ २३

स संज्ञामुपलभ्याथ प्रशस्य पुरुषर्षभः ।

पुत्रं शक्रात्मजो वाक्यमिदमाह महीपते ॥ २४

साधु साधु महाबाहो वत्स चित्राङ्गदात्मज ।

सदृशं कर्म ते दृष्ट्वा प्रीतिमानस्मि पुत्रक ॥ २५

विमुञ्चाम्येष बाणांस्ते पुत्र युद्धे स्थिरो भव ।

इत्येवमुक्त्वा नाराचैरभ्यवर्षदमित्रहा ॥ २६

तान्स गाण्डीवनिर्मुक्तान्वज्राशनिसमप्रभान् ।

नाराचैरच्छिनद्राजा सर्वानैव त्रिधा त्रिधा ॥ २७

तस्य पार्थः शरैर्दिव्यैर्ध्वजं हेमपरिष्कृतम् ।  
 सुवर्णतालप्रतिमं क्षुरेणापाहरद्रथात् ॥ २८  
 ह्यांश्चास्य महाकायान्महावेगपराक्रमान् ।  
 चकार राज्ञो निर्जीवान्प्रहसन्पाण्डवर्षभः ॥ २९  
 स रथादवतीर्याशु राजा परमकोपनः ।  
 पदातिः पितरं कोपाद्योधयामास पाण्डवम् ॥ ३०  
 संप्रीयमाणः पाण्डूनामृषभः पुत्रविक्रमात् ।  
 नात्यर्थं पीडयामास पुत्रं वज्रधरात्मजः ॥ ३१  
 स हन्यमानो विमुखं पितरं बभ्रुवाहनः ।  
 शरैराशीविषाकारैः पुनरेवादयद्बली ॥ ३२  
 ततः स बाल्यात्पितरं विव्याध हृदि पत्रिणा ।  
 निशितेन सुपुङ्खेन बलवद्बभ्रुवाहनः ॥ ३३  
 स बाणस्तेजसा दीप्तो ज्वलन्निव हुताशनः ।  
 विवेश पाण्डवं राजन्मर्म भित्त्वातिदुःखकृत् ॥ ३४  
 स तेनातिभृशं विद्धः पुत्रेण कुरुनन्दनः ।  
 महीं जगाम मोहार्तस्ततो राजन्धनंजयः ॥ ३५  
 तस्मिन्निपतिते वीरे कौरवाणां धुरंधरे ।  
 सोऽपि मोहं जगामाशु ततश्चित्राङ्गदासुतः ॥ ३६  
 व्यायम्य संयुगे राजा दृष्ट्वा च पितरं हतम् ।  
 पूर्वमेव च बाणौघैर्गाढविद्धोऽर्जुनेन सः ॥ ३७  
 भर्तारं निहतं दृष्ट्वा पुत्रं च पतितं भुवि ।  
 चित्राङ्गदा परित्रस्ता प्रविवेश रणाजिरम् ॥ ३८  
 शोकसंतप्तहृदया रुदती सा ततः शुभा ।  
 मणिपूरपतेर्माता ददर्श निहतं पतिम् ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

७९

वैशंपायन उवाच ।

ततो बहुविधं भीरुर्विलप्य कमलक्षणा ।  
 मुमोह दुःखादुर्धर्षा निपपात च भूतले ॥ १

प्रतिलभ्य च सा सत्तां देवी दिव्यवपुर्धरा ।  
 उल्लूपां पन्नगसुतां दृष्ट्वा वाक्यमब्रवीत् ॥ २  
 उल्लूपि पश्य भर्तारं शयान निहतं रणे ।  
 त्वत्कृते मम पुत्रेण बालेन समितिजयम् ॥ ३  
 ननु त्वमार्ये धर्मज्ञा ननु चासि पतिव्रता ।  
 यत्त्वत्कृतेऽयं पतितः पतिस्ते निहतो रणे ॥ ४  
 किं नु सर्वापराधोऽयं यदि तेऽद्य धनजयः ।  
 क्षमस्व याच्यमाना मे सजीव्य धनंजयम् ॥ ५  
 ननु त्वमार्ये धर्मज्ञा त्रैलोक्यविदिता शुभे ।  
 यद्घातयित्वा भर्तारं पुत्रेणेह न शोचसि ॥ ६  
 नाहं शोचामि तनयं निहतं पन्नगात्मजे ।  
 पतिमेव तु शोचामि यस्यातिथ्यमिदं कृतम् ॥ ७  
 इत्युक्त्वा सा तदा देवीमुल्लूपां पन्नगात्मजाम् ।  
 भर्तारमभिगम्येदमित्युवाच यशस्विनी ॥ ८  
 उत्तिष्ठ कुरुमुख्यस्य प्रियकाम मम प्रिय ।  
 अयमश्वो महाबाहो मया ते परिमोक्षितः ॥ ९  
 ननु नाम त्वया वीर धर्मराजस्य यज्ञियः ।  
 अयमश्वोऽनुसर्तव्यः स शेषे किं महीतले ॥ १०  
 त्वयि प्राणाः समायत्ताः कुरुणां कुरुनन्दन ।  
 स कस्मात्प्राणदोऽन्येषां प्राणान्संयक्तवानसि ॥ ११  
 उल्लूपि साधु संपश्य भर्तारं निहतं रणे ।  
 पुत्रं चैनं समुत्साह्य घातयित्वा न शोचसि ॥ १२  
 कामं स्वपितु बालोऽयं भूमौ प्रेतगतिं गतः ।  
 लोहिताक्षो गुडाकेशो विजयः साधु जीवतु ॥ १३  
 नापराधोऽस्ति सुभगे नराणां बहुभार्यता ।  
 नारीणां तु भवत्येतन्मा ते भूद्विद्विरीदृशी ॥ १४  
 सख्यं ह्येतत्कृतं धात्रा शाश्वतं चाव्ययं च ह ।  
 सख्यं समभिजानीहि सख्यं संगतमस्तु ते ॥ १५  
 पुत्रेण घातयित्वेवं पतिं यदि न मेऽद्य वै ।  
 जीवन्तं दर्शयस्यद्य परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ १६

साहं दुःखान्विता भीरु पतिपुत्रविनाकृता ।  
 इहैव प्रायमाशिष्ये प्रेक्षन्त्यास्ते न सशयः ॥ १७  
 इत्युक्त्वा पन्नगमुतां सपत्नीं चैत्रवाहिनी ।  
 ततः प्रायमुपासीना तूष्णीमासीज्जनाधिप ॥ १८  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि  
 एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

८०

वैशंपायन उवाच ।

तथा विलप्योपरता भर्तुः पादौ प्रगृह्य सा ।  
 सपविष्टाभवद्देवी सोच्छ्वासं पुत्रमीक्षती ॥ १  
 ततः संज्ञां पुनर्लब्ध्वा स राजा बभ्रुवाहनः ।  
 मातरं तामथालोक्य रणभूमावथाब्रवीत् ॥ २  
 इतो दुःखतरं किं नु यन्मे माता सुखैधिता ।  
 भूमौ निपतितं वीरमनुशेते मृतं पतिम् ॥ ३  
 निहन्तारं रणेऽरीणां सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।  
 मया विनिहतं संख्ये प्रेक्षते दुर्मरं वत ॥ ४  
 अहोऽस्या हृदयं देव्या दृढं यन्न विदीर्यते ।  
 व्यूढोरस्कं महाबाहुं प्रेक्षन्त्या निहतं पतिम् ॥ ५  
 दुर्मरं पुरुषेणैह मन्ये ह्यध्वन्यनागते ।  
 यत्र नाहं न मे माता विप्रयुज्येत जीवितात् ॥ ६  
 अहो धिक्कुरुवीरस्य ह्युरःस्थं काञ्चनं भुवि ।  
 न्यपविद्धं हतस्येह मया पुत्रेण पश्यत ॥ ७  
 भो भो पश्यत मे वीरं पितरं ब्राह्मणा भुवि ।  
 शयानं वीरशयने मया पुत्रेण पातितम् ॥ ८  
 ब्राह्मणाः कुरुमुख्यस्य प्रयुक्ता ह्यसारिणः ।  
 कुर्वन्तु शान्तिकां त्वद्य रणे योऽयं मया हतः ॥ ९  
 न्यादिशन्तु च किं विप्राः प्रायश्चित्तमिहाद्य मे ।  
 सुनृशंसस्य पापस्य पितृहन्तू रणाजिरे ॥ १०  
 दुश्चरा द्वादश समा हत्वा पितरमद्य वै ।  
 ममेह सुनृशंसस्य संवीतस्यास्य चर्मणा ॥ ११

शिरःकपाले चास्यैव भुञ्जतः पितुरद्य मे ।  
 प्रायश्चित्तं हि नास्यन्यद्वत्वाद्य पितरं मम ॥ १२  
 पश्य नागोत्तमसुते भर्तारं निहतं मया ।  
 कृतं प्रिय मया तेऽद्य निहत्य समरेऽर्जुनम् ॥ १३  
 सोऽहमप्यद्य यास्यामि गतिं पितृनिषेविताम् ।  
 न शक्नोम्यात्मनात्मानमहं धारयितुं शुभे ॥ १४  
 सा त्वं मयि मृते मातस्तथा गाण्डीवधन्वनि ।  
 भव प्रीतिमती देवि सत्येनात्मानमालभे ॥ १५  
 इत्युक्त्वा स तदा राजा दुःखशोकसमाहतः ।  
 उपस्पृश्य महाराज दुःखाद्वचनमब्रवीत् ॥ १६  
 शृण्वन्तु सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ।  
 त्वं च मातर्यथा सत्यं ब्रवीमि भुजगोत्तमे ॥ १७  
 यदि नोत्तिष्ठति जयः पिता मे भरतर्षभः ।  
 अस्मिन्नेव रणोद्देशे शोषयिष्ये कलेवरम् ॥ १८  
 न हि मे पितरं हत्वा निष्कृतिर्विद्यते क्वचित् ।  
 नरकं प्रतिपत्स्यामि ध्रुवं गुरुवधार्दितः ॥ १९  
 वीरं हि क्षत्रियं हत्वा गोशतेन प्रमुच्यते ।  
 पितरं तु निहत्यैवं दुस्तरा निष्कृतिर्मया ॥ २०  
 एष हेको महातेजाः पाण्डुपुत्रो धनंजयः ।  
 पिता च मम धर्मात्मा तस्य मे निष्कृतिः कुतः ॥  
 इत्येवमुक्त्वा नृपते धनंजयसुतो नृपः ।  
 सपस्पृश्याभवत्तूष्णीं प्रायोपेतो महामतिः ॥ २२  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि  
 अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

८१

वैशंपायन उवाच ।

प्रायोपविष्टे नृपतौ मणिपूरेश्वरे तदा ।  
 पितृशोकसमाविष्टे सह मात्रा परंतप ॥ १  
 उलूपी चिन्तयामास तदा संजीवनं मणिम् ।  
 स चोपातिष्ठत तदा पन्नगानां परायणम् ॥ २

तं गृहीत्वा तु कौरव्य नागराजपतेः सुता ।  
 मनःप्रह्लादनी वाचं सैनिकानामथाब्रवीत् ॥ ३  
 उत्तिष्ठ मा शुचः पुत्र नैष जिष्णुस्त्वया हतः ।  
 अजेयः पुरुषैरेष देवैर्वापि सवासवैः ॥ ४  
 मया तु मोहिनी नाम मायैषा संप्रयोजिता ।  
 प्रियार्थं पुरुषेन्द्रस्य पितुस्तेऽद्य यशस्विनः ॥ ५  
 जिज्ञासुर्ह्येष वै पुत्र बलस्य तव कौरवः ।  
 संग्रामे युध्यतो राजन्नागतः परवीरहा ॥ ६  
 तस्मादसि मया पुत्र युद्धार्यं परिचोदितः ।  
 मा पापमात्मनः पुत्र शङ्केथास्त्वण्वपि प्रभो ॥ ७  
 ऋषिरेष महातेजाः पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः ।  
 नैनं शक्तो हि संग्रामे जेतुं शक्रोऽपि पुत्रक ॥ ८  
 अयं तु मे मणिर्दिव्यः समानीतो विशां पते ।  
 मृतान्मृतान्पन्नगेन्द्रान्यो जीवयति नित्यदा ॥ ९  
 एतमस्योरसि त्वं तु स्थापयस्व पितुः प्रभो ।  
 संजीवितं पुनः पुत्र ततो द्रष्टासि पाण्डवम् ॥ १०  
 इत्युक्तः स्थापयामास तस्योरसि मणि तदा ।  
 पार्थस्यामिततेजाः स पितुः स्नेहादपापकृत् ॥ ११  
 तस्मिन्न्यस्ते मणौ वीर जिष्णुरुज्जीवितः प्रभुः ।  
 सुप्तोत्थित इवोत्तस्थौ मृष्टलोहितलोचनः ॥ १२  
 तमुत्थितं महात्मानं लब्धसंज्ञं मनस्विनम् ।  
 समीक्ष्य पितरं स्वस्थं ववन्दे बभ्रुवाहनः ॥ १३  
 उत्थिते पुरुषव्याघ्रे पुनर्लक्ष्मीवति प्रभो ।  
 दिव्याः सुमनसः पुण्या ववृषे पाकशासनः ॥ १४  
 अनाहता दुन्दुभयः प्रणेदुर्मैघनिस्वनाः ।  
 साधु साध्विति चाकाशे बभूव सुमहान्स्वनः ॥ १५  
 उत्थाय तु महाबाहुः पर्याश्वस्तो धनंजयः ।  
 बभ्रुवाहनमालिङ्ग्य समाजिघ्रत मूर्धनि ॥ १६  
 ददर्श चाविदूरेऽस्य मातरं शोककर्षिताम् ।  
 उलूच्या सह तिष्ठन्तीं ततोऽपृच्छद्वनंजयः ॥ १७

किमिदं लक्ष्यते सर्वं शोकविस्मयहर्षवत् ।  
 रणाजिरममित्रघ्न यदि जानासि शंस मे ॥ १८  
 जननी च किमर्थं ते रणभूमिमुपागता ।  
 नागेन्द्रदुहिता चेयमुलूपी किमिहागता ॥ १९  
 जानाम्यहमिदं युद्धं त्वया मद्वचनात्कृतम् ।  
 स्त्रीणामागमने हेतुमहमिच्छामि वेदितुम् ॥ २०  
 तमुवाच ततः पृष्ठो मणिपूरपतिस्तदा ।  
 प्रसाद्य शिरसा विद्वानुलूपी पृच्छयतामिति ॥ २१

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

८२

अर्जुन उवाच ।

किमागमनकृत्यं ते कौरव्यकुलनन्दिनि ।  
 मणिपूरपतेर्मातुस्तथैव च रणाजिरे ॥ १  
 कश्चित्कुशलकामासि राज्ञोऽस्य भुजगात्मजे ।  
 मम वा चञ्चलापाङ्गे कश्चित्त्वं शुभमिच्छसि ॥ २  
 कश्चित्ते पृथुलश्रोणि नाप्रियं शुभदर्शने ।  
 अकार्षमहमज्ञानादयं वा बभ्रुवाहनः ॥ ३  
 कश्चिच्च राजपुत्री ते सपत्नी चैत्रवाहिनी ।  
 चित्राङ्गदा वरारोहा नापराध्यति किंचन ॥ ४  
 तमुवाचोरगपतेर्दुहिता प्रहसन्त्यथ ।  
 न मे त्वमपराद्धोऽसि न नृपो बभ्रुवाहनः ।  
 न जनित्री तथास्येयं मम या प्रेष्यवत्स्थिता ॥ ५  
 श्रूयतां यद्यथा चेदं मया सर्वं विचेष्टितम् ।  
 न मे कोपस्त्वया कार्यः शिरसा त्वां प्रसादये ॥ ६  
 त्वत्प्रीत्यर्थं हि कौरव्य कृतमेतन्मथानघ ।  
 यत्तच्छृणु महाबाहो निखिलेन धनंजय ॥ ७  
 महाभारतयुद्धे यत्त्वया शांतनवो नृपः ।  
 अधर्मेण हतः पार्थ तस्यैषा निष्कृतिः कृता ॥ ८  
 न हि भीष्मस्त्वया वीर युध्यमानो निपातितः ।

शिखण्डिना तु संसत्तस्तमाश्रित्य हतस्त्वया ॥ ९  
 तस्य शान्तिमकृत्वा तु त्यजेस्त्वं यदि जीवितम् ।  
 कर्मणा तेन पापेन पतेथा निरये ध्रुवम् ॥ १०  
 एषा तु विहिता शान्तिः पुत्राद्यां प्राप्तवानसि ।  
 वसुभिर्वसुधापाल गङ्गाया च महामते ॥ ११  
 पुरा हि श्रुतमेतद्वै वसुभिः कथितं मया ।  
 गङ्गायास्तीरभागस्य हते शान्तनवे नृपे ॥ १२  
 आहुत्य देवा वसवः समेत्य च महानदीम् ।  
 इदमूर्चुर्वचो घोरं भागीरथ्या मते तदा ॥ १३  
 एष शान्तनवो भीष्मो निहतः सव्यसाचिना ।  
 अयुध्यमानः संप्राप्ते संसक्तोऽन्येन भामिनि ॥ १४  
 तदनेनाभिषङ्गेण वयमप्यर्जुनं शुभे ।  
 शापेन योजयामेति तथास्त्विति च साब्रवीत् ॥ १५  
 तदहं पितुरावेधं भृशं प्रव्यथितेन्द्रिया ।  
 अभवं स च तच्छ्रुत्वा विषादमगमत्परम् ॥ १६  
 पिता तु मे वसून्गत्वा त्वदर्थं समयाचत ।  
 पुनः पुनः प्रसाद्यैनांस्त एनमिदमब्रुवन् ॥ १७  
 पुनस्तस्य महाभाग मणिपूरेश्वरो युवा ।  
 स एनं रणमध्यस्थं शरैः पातयिता भुवि ॥ १८  
 एवं कृते स नागेन्द्र मुक्तशापो भविष्यति ।  
 गच्छेति वसुभिश्चोक्तो मम चेदं शशंस सः ॥ १९  
 तच्छ्रुत्वा त्वं मया तस्माच्छापादसि विमोक्षितः ।  
 न हि त्वां देवराजोऽपि समरेषु पराजयेत् ॥ २०  
 आत्मा पुत्रः स्मृतस्तस्मात्तेनेहासि पराजितः ।  
 नात्र दोषो मम मतः कथं वा मन्यसे विभो ॥ २१  
 इत्येवमुक्तो विजयः प्रसन्नात्माब्रवीदिदम् ।  
 सर्वं मे सुप्रियं देवि यदेतत्कृतवत्यसि ॥ २२  
 इत्युक्त्वाथाब्रवीत्पुत्रं मणिपूरेश्वरं जयः ।  
 चित्राङ्गदायाः शृण्वन्त्याः कौरव्यदुहितुस्तथा ॥ २३  
 युधिष्ठिरस्याश्वमेधः परां चैत्रीं भविष्यति ।

तत्रागच्छेः सहामात्यो मातृभ्यां सहितो नृप ॥ २४  
 इत्येवमुक्तः पार्थेन स राजा बभ्रुवाहनः ।  
 उवाच पितरं धीमानिदमस्त्राविलेक्षणः ॥ २५  
 उपयास्यामि धर्मज्ञ भवतः शासनादहम् ।  
 अश्वमेधे महायज्ञे द्विजातिपरिवेषकः ॥ २६  
 मम त्वनुग्रहार्थाय प्रविशस्व पुरं स्वकम् ।  
 भार्याभ्यां सह शत्रुघ्न मा भूतेऽत्र विचारणा ॥ २७  
 उषित्वेह विशल्यस्त्वं सुखं स्वे वेश्मनि प्रभो ।  
 पुनरश्वानुगमनं कर्तासि जयतां वर ॥ २८  
 इत्युक्तः स तु पुत्रेण तदा वानरकेतनः ।  
 स्मयन्प्रोवाच कौन्तेयस्तदा चित्राङ्गदासुतम् ॥ २९  
 विदितं ते महाबाहो यथा दीक्षां चराम्यहम् ।  
 न स तावत्प्रवेक्ष्यामि पुरं ते पृथुलोचन ॥ ३०  
 यथाकामं प्रयात्येष यज्ञियश्च तुरंगमः ।  
 स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि न स्थानं विद्यते मम ॥  
 स तत्र विधिवत्तेन पूजितः पाकशासनिः ।  
 भार्याभ्यामभ्यनुज्ञातः प्रायाद्भरतसत्तमः ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

८३

वैशंपायन उवाच ।

स तु वाजी समुद्रान्तां पर्येत्य पृथिवीमिमाम् ।  
 निवृत्तोऽभिमुखो राजन्येन नागाह्वयं पुरम् ॥ १  
 अनुगच्छंश्च तेजस्वी निवृत्तोऽथ किरीटभृत् ।  
 यदृच्छया समापेदे पुरं राजगृहं तदा ॥ २  
 तमभ्याशगतं राजा जरासंधात्मजात्मजः ।  
 क्षत्रधर्मे स्थितो वीरः समरायाजुहाव ह ॥ ३  
 ततः पुरात्स निष्क्रम्य रथी धन्वी शरी तली ।  
 मेघसधिः पदानि तं धनंजयमुपाद्रवत् ॥ ४  
 आसाद्य च महातेजा मेघसंधिर्धनंजयम् ।



बालभावान्महाराज प्रोवाचेदं न कौशलात् ॥ ५  
 किमयं चार्यते वाजी स्त्रीमध्य इव भारत ।  
 हयमेनं हरिष्यामि प्रयतस्व विमोक्षणे ॥ ६  
 अदत्तानुनयो युद्धे यदि त्वं पितृभिर्मम ।  
 करिष्यामि तवातिथ्यं प्रहर प्रहरामि वा ॥ ७  
 इत्युक्तः प्रत्युवाचैनं पाण्डवः प्रहसन्निव ।  
 विप्रकर्ता मया वार्य इति मे व्रतमाहितम् ॥ ८  
 भ्रात्रा ज्येष्ठेन नृपते तवापि विदितं ध्रुवम् ।  
 प्रहरस्व यथाशक्ति न मन्युर्विद्यते मम ॥ ९  
 इत्युक्तः प्राहरत्पूर्वं पाण्डवं मगधेश्वरः ।  
 किरञ्शरसहस्राणि वर्षाणीव सहस्रहृक् ॥ १०  
 ततो गाण्डीवभृच्छूरो गाण्डीवप्रेपितैः शरैः ।  
 चकार मोघांस्तान्बाणानयत्नाद्भरतर्षभ ॥ ११  
 स मोघं तस्य बाणौघं कृत्वा वानरकेतनः ।  
 शरान्मुमोच ज्वलितान्दीप्तास्यानिव पन्नगान् ॥ १२  
 ध्वजे पताकादण्डेषु रथयन्त्रे हयेषु च ।  
 अन्येषु च रथाङ्गेषु न शरीरे न सारथौ ॥ १३  
 संरक्ष्यमाणः पार्थेन शरीरे फल्गुनस्य ह ।  
 मन्यमानः स्ववीर्यं तन्मागधः प्राहिणोच्छरान् ॥ १४  
 ततो गाण्डीवभृच्छूरो मागधेन समाहतः ।  
 बभौ वासन्तिक इव पलाशः पुष्पितो महान् ॥ १५  
 अवध्यमानः सोऽभ्यन्नन्मागधः पाण्डवर्षभम् ।  
 तेन तस्थौ स कौरव्य लोकवीरस्य दर्शने ॥ १६  
 सव्यसाची तु संक्रुद्धो विकृष्य बलवद्धनुः ।  
 ह्यांश्चकार निर्देहान्सारथेश्च शिरोऽहरत् ॥ १७  
 धनुश्चास्य महच्चित्रं क्षुरेण प्रचकर्त ह ।  
 हस्तावापं पताकां च ध्वजं चास्य न्यपातयत् ॥ १८  
 स राजा व्यथितो व्यथ्यो विधनुर्हृतसारथिः ।  
 गदामादाय कौन्तेयमभिदुद्राव वेगवान् ॥ १९  
 तस्यापतत एवाशु गदां हेमपरिष्कृताम् ।

शरैश्चकर्त बहुधा बहुभिर्गुध्रवाजितैः ॥ २०  
 सा गदा शकलीभूता विशीर्णमणिबन्धना ।  
 व्याली निर्मुच्यमानेव पपातास्य सहस्रधा ॥ २१  
 विरथं तं विधन्वानं गदया परिवर्जितम् ।  
 नैच्छत्ताडयितुं धीमानर्जुनः समराग्रणीः ॥ २२  
 तत एनं विमनसं क्षत्रधर्मं समास्थितम् ।  
 सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यमब्रवीत्कपिकेतनः ॥ २३  
 पर्याप्तिः क्षत्रधर्मोऽयं दर्शितः पुत्र गम्यताम् ।  
 बह्वेतत्समरे कर्म तव बालस्य पार्थिव ॥ २४  
 युधिष्ठिरस्य सदेशो न हन्तव्या नृपा इति ।  
 तेन जीवसि राजंस्त्वमपराद्धोऽपि मे रणे ॥ २५  
 इति मत्वा स चात्मानं प्रत्यादिष्ट स्म मागधः ।  
 तथ्यमित्यवगम्यैनं प्राञ्जलिः प्रत्यपूजयत् ॥ २६  
 तमर्जुनः समाश्वास्य पुनरेवेदमब्रवीन् ।  
 आगन्तव्यं परां चैत्रीमश्वमेधे नृपस्य नः ॥ २७  
 इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा पूजयामास तं हयम् ।  
 फल्गुनं च युधां श्रेष्ठं त्वधिवत्सहदेवजः ॥ २८  
 ततो यथेष्टमगमत्पुनरेव स केसरी ।  
 ततः समुद्रतीरेण वङ्गान्पुण्ड्रान्सकेरलान् ॥ २९  
 तत्र तत्र च भूरीणि स्लेच्छसैन्यान्यनेकशः ।  
 विजिग्ये धनुषा राजन्गाण्डीवेन धनंजयः ॥ ३०

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

अक्षीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

८४

वैशंपायन उवाच ।

मागधेनार्चितो राजन्पाण्डवः श्वेतवाहनः ।  
 दक्षिणां दिशमास्थाय चारयामास तं हयम् ॥ १  
 ततः स पुनरावृत्त्य हयः कामचरो बली ।  
 आससाद पुरीं रम्यां चेदीनां शुक्तिसाह्वयाम् ॥ २  
 शरभेणार्चितस्तत्र शिशुपालात्मजेन सः ।

युद्धपूर्वेण मानेन पूजया च महाबलः ॥ ३  
 तत्रार्चितो ययौ राजंस्तदा स तुरगोत्तमः ।  
 काशीनन्ध्रान्कोसलांश्च किरातानथ तङ्गणान् ॥ ४  
 तत्र पूजां यथान्यायं प्रतिगृह्य स पाण्डवः ।  
 पुनरावृत्य कौन्तेयो दशार्णानिगमत्तदा ॥ ५  
 तत्र चित्राङ्गदो नाम बलवान्वसुधाधिपः ।  
 तेन युद्धमभूत्तस्य विजयस्यातिभैरवम् ॥ ६  
 तं चापि वशमानीय किरीटी पुरुषर्षभः ।  
 निषादराज्ञो विषयमेकलव्यस्य जग्मिवान् ॥ ७  
 एकलव्यसुतश्चैनं युद्धेन जगृहे तदा ।  
 ततश्चक्रे निषादैः स संग्रामं रोमहर्षणम् ॥ ८  
 ततस्तमपि कौन्तेयः समरेष्वपराजितः ।  
 जिगाय समरे वीरो यज्ञविघ्नार्थमुद्यतम् ॥ ९  
 स तं जित्वा महाराज नैषादिं पाकशासनिः ।  
 अर्चितः प्रययौ भूयो दक्षिणं सलिलार्णवम् ॥ १०  
 तत्रापि द्रविडैरन्ध्रै रौद्रैर्माहिषकैरपि ।  
 तथा कोल्लगिरैश्च युद्धमासीत्किरीटिनः ॥ ११  
 तुरगस्य वशेनाथ सुराष्ट्रानभितो ययौ ।  
 गोकर्णमपि चासाद्य प्रभासमपि जग्मिवान् ॥ १२  
 ततो द्वावरतीं रम्यां वृष्णिवीराभिरक्षिताम् ।  
 आससाद हयः श्रीमान्कुरुराजस्य यज्ञियः ॥ १३  
 तमुन्मथ्य हयश्रेष्ठं यादवानां कुमारकाः ।  
 प्रययुस्तांस्तदा राजन्नुग्रसेनो न्यवारयत् ॥ १४  
 ततः पुर्यां विनिष्क्रम्य वृष्ण्यन्धकपतिस्तदा ।  
 सहितो वसुदेवेन मातुलेन किरीटिनः ॥ १५  
 तौ समेत्य कुरुश्रेष्ठं विधिवत्प्रीतिपूर्वकम् ।  
 परया भरतश्रेष्ठं पूजया समवस्थितौ ।  
 ततस्ताभ्यामनुज्ञातो ययौ येन हयो गतः ॥ १६  
 ततः स पश्चिमं देशं समुद्रस्य तदा हयः ।  
 क्रमेण व्यचरत्स्फीतं ततः पञ्चनदं ययौ ॥ १७

तस्मादपि स कौरव्य गान्धारविषयं हयः ।  
 विचचार कथाकामं कौन्तेयानुगतस्तदा ॥ १८  
 तत्र गान्धारराजेन युद्धमासीन्महात्मनः ।  
 घोरं शकुनिपुत्रेण पूर्ववैरानुसारिणा ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आश्रमेधिकपर्वणि

चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

८५

वैशंपायन उवाच ।

शकुनेस्तु सुतो वीरो गान्धारणां महारथः ।  
 प्रत्युद्ययौ गुडाकेश सैन्येन सहता वृतः ।  
 हस्त्यश्वरथपूर्णेन पताकाध्वजमालिना ॥ १  
 अमृष्यमाणास्ते योधा नृपतेः शकुनेर्वधम् ।  
 अभ्ययुः सहिताः पार्थ प्रगृहीतशरासनाः ॥ २  
 तानुवाच स धर्मात्मा बीभत्सुरपराजितः ।  
 युधिष्ठिरस्य वचनं न च ते जगृहुर्हितम् ॥ ३  
 वार्यमाणास्तु पार्थेन सान्त्वपूर्वममर्षिताः ।  
 परिवार्य हयं जग्मुस्ततश्चक्रोध पाण्डवः ॥ ४  
 ततः शिरांसि दीप्ताग्नैस्तेपां चिच्छेद पाण्डवः ।  
 क्षुरैर्गण्डीवनिर्मुक्तैर्नातियत्नादिवार्जुनः ॥ ५  
 ते बध्यमानाः पार्थेन हयमुत्सृज्य संभ्रमात् ।  
 न्यवर्तन्त महाराज शरवर्षादिता भृशम् ॥ ६  
 वितुद्यमानस्तैश्चापि गान्धारैः पाण्डवर्षभः ।  
 आदिश्यादिश्य तेजस्वी शिरास्येषां न्यपातयत् ॥ ७  
 बध्यमानेषु तेष्वजौ गान्धारेषु समन्ततः ।  
 स राजा शकुनेः पुत्रः पाण्डवं प्रत्यवारयत् ॥ ८  
 तं युध्यमानं राजानं क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम् ।  
 पार्थोऽब्रवीन्न मे बध्या राजानो राजशासनात् ।  
 अलं युद्धेन ते वीर न तेऽस्त्यद्य पराजयः ॥ ९  
 इत्युक्तस्तदनाहत्य वाक्यमज्ञानमोहितः ।  
 स शक्रसमकर्माणमवाकिरत सायकैः ॥ १०

तस्य पार्थः शिरस्त्राणमर्धचन्द्रेण पत्रिणा ।  
 अपाहरदसंभ्रान्तो जयद्रथशिरो यथा ॥ ११  
 तद्गृह्णा विस्मयं जग्मुर्गान्धाराः सर्व एव ते ।  
 इच्छता तेन न हतो राजेलपि च ते विदुः ॥ १२  
 गान्धारराजपुत्रस्तु पलायनकृतक्षणः ।  
 बभौ तैरेव सहितस्त्रस्तैः क्षुद्रमृगैरिव ॥ १३  
 तेषां तु तरसा पार्थस्तत्रैव परिधावताम् ।  
 विजहारोत्तमाङ्गानि भल्लैः संनतपर्वभिः ॥ १४  
 उच्छिन्नास्तु भुजान्केचिन्नावुध्यन्त शरैर्हृतान् ।  
 शरैर्गण्डीवनिर्मुक्तैः पृथुभिः पार्थचोदितैः ॥ १५  
 संभ्रान्तनरनागाश्वमथ तद्विद्रुतं बलम् ।  
 हतविध्वस्तभूयिष्ठमावर्तत मुहुर्मुहुः ॥ १६  
 न ह्यदृश्यन्त वीरस्य केचिदग्रेऽय्यकर्मणः ।  
 रिपवः पालयमाना वै ये सहेयुर्महाशरान् ॥ १७  
 ततो गान्धारराजस्य मन्त्रिवृद्धपुरःसरा ।  
 जननी निर्ययौ भीता पुरस्कृत्यार्घ्यमुत्तमम् ॥ १८  
 सा न्यवारयदव्यग्रा तं पुत्रं युद्धदुर्मदम् ।  
 प्रसादयामास च तं जिष्णुमच्छिष्टकारिणम् ॥ १९  
 तां पूजयित्वा कौन्तेयः प्रसादमकरोत्तदा ।  
 शकुनेश्चापि तनयं सान्त्वयन्निदमब्रवीत् ॥ २०  
 न मे प्रियं महाबाहो यत्ते बुद्धिरियं कृता ।  
 प्रतियोद्धुमसित्रघ्न भ्रातैव त्वं ममानघ ॥ २१  
 गान्धारी मातरं स्मृत्वा धृतराष्ट्रकृतेन च ।  
 तेन जीवसि राजस्त्वं निह्नास्त्वनुगास्तव ॥ २२  
 भैवं भूः शाम्यतां वैरं मा ते भूद्बुद्धिरीदृशी ।  
 आगन्तव्यं परां चैत्रीमश्वमेधे नृपस्य नः ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

८६

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्त्वानुययौ पार्थो ह्य तं कामचारिणम् ।  
 न्यवर्तत ततो वाजी येन नागाह्वयं पुरम् ॥ १  
 तं निवृत्तं तु शुश्राव चारेणैव युधिष्ठिरः ।  
 श्रुत्वार्जुनं कुशलिनं स च हृष्टमनाभवत् ॥ २  
 विजयस्य च तत्कर्म गान्धारविषये तदा ।  
 श्रुत्वान्येषु च देशेषु स सुप्रीतोऽभवन्नृपः ॥ ३  
 एतस्मिन्नेव काले तु द्वादशीं माघपाक्षिकीम् ।  
 इष्टं गृहीत्वा नक्षत्रं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ४  
 समानाय्य महातेजाः सर्वान्भ्रातृन्महामनाः ।  
 भीमं च नकुलं चैव सहदेवं च कौरवः ॥ ५  
 प्रोवाचेदं वचः काले तदा धर्मभृतां वरः ।  
 आमन्त्र्य वदतां श्रेष्ठो भीमं भीमपराक्रमम् ॥ ६  
 आयाति भीमसेनासौ सहाश्वेन तवानुजः ।  
 यथा मे पुरुषाः प्राहुर्धनं जयसारिणः ॥ ७  
 उपस्थितश्च कालोऽयमभितो वर्तते ह्यः ।  
 माघी च पौर्णमासीयं मासः शेषो वृकोदर ॥ ८  
 तत्प्रस्थाप्यन्तु विद्वांसो ब्राह्मणा वेदपारगाः ।  
 वाजिमेधार्थसिद्ध्यर्थं देशं पश्यन्तु यज्ञियम् ॥ ९  
 इत्युक्तः स तु तच्चक्रे भीमो नृपतिशासनम् ।  
 हृष्टः श्रुत्वा नरपतेरायान्त सव्यसाचिनम् ॥ १०  
 ततो ययौ भीमसेनः प्राज्ञैः स्थपतिभिः सह ।  
 ब्राह्मणानग्रतः कृत्वा कुशलान्यज्ञकर्मसु ॥ ११  
 तं सशालचयग्रामं संप्रतोलीविटङ्किनम् ।  
 मापयामास कौरव्यो यज्ञवाटं यथाविधि ॥ १२  
 सदः सपत्नीसदन साग्रीध्रमपि चोत्तरम् ।  
 कारयामास विधिवन्मणिहेमविभूषितम् ॥ १३  
 स्तम्भान्कनकचित्रांश्च तोरणानि बृहन्ति च ।  
 यज्ञायतनदेशेषु दत्त्वा शुद्धं च काञ्चनम् ॥ १४

अन्तःपुराणि राज्ञां च नानादेशनिवासिनाम् ।  
 कारयामास धर्मात्मा तत्र तत्र यथाविधि ॥ १५  
 ब्राह्मणानां च वेदमानि नानादेशसमेयुषाम् ।  
 कारयामास भीमः स विविधानि ह्यनेकशः ॥ १६  
 तथा संप्रेषयामास दूतान्नृपतिशासनात् ।  
 भीमसेनो महाराज राज्ञामङ्घ्रिष्टकर्मणाम् ॥ १७  
 ते प्रियार्थं कुरुपतेराययुर्नृपसत्तमाः ।  
 रत्नान्यनेकान्यादाय स्त्रियोऽश्वानायुधानि च ॥ १८  
 तेषां निविशतां तेषु शिविरेषु सहस्रशः ।  
 नर्दतः सागरस्येव शब्दो दिवमिवास्पृशत् ॥ १९  
 तेषामभ्यागतानां स राजा राजीवलोचनः ।  
 व्यादिदेशान्नपानानि शय्याश्चाप्यतिमानुषाः ॥ २०  
 वाहनानां च विविधाः शालाः शालीक्षुगोरसैः ।  
 उपेताः पुरुषव्याघ्र व्यादिदेश स धर्मराट् ॥ २१  
 तथा तस्मिन्महायज्ञे धर्मराजस्य धीमतः ।  
 समाजग्मुर्मुनिगणा बहवो ब्रह्मवादिनः ॥ २२  
 ये च द्विजातिप्रवरास्तत्रासन्पृथिवीपते ।  
 समाजग्मुः सशिष्यांस्तान्प्रतिजग्राह कौरवः ॥ २३  
 सर्वाश्च ताननुययौ यावदावसथादिति ।  
 स्वयमेव महातेजा दम्भं त्यक्त्वा युधिष्ठिरः ॥ २४  
 ततः कृत्वा स्थपतयः शिल्पिनोऽन्ये च ये तदा ।  
 कृत्स्नं यज्ञविधिं राजन्धर्मराज्ञे न्यवेदयन् ॥ २५  
 तच्छ्रुत्वा धर्मराजः स कृतं सर्वमनिन्दितम् ।  
 हृष्टरूपोऽभवद्राजा सह भ्रातृभिरच्युतः ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

८७

वैशंपायन उवाच ।

तस्मिन्यज्ञे प्रवृत्ते तु वाग्मिनो हेतुवादिनः ।  
 हेतुवादान्बहून्प्राहुः परस्परजिगीषवः ॥ १

ददृशुस्तं नृपतयो यज्ञस्य विधिमुत्तमम् ।  
 देवेन्द्रस्येव विहितं भीमेन कुरुनन्दन ॥ २  
 ददृशुस्तोरणान्यत्र शातकुम्भमयानि ते ।  
 शय्यासनविहारान्श्च सुबहून्रत्नभूषितान् ॥ ३  
 घटान्पात्रीः कटाहानि कलशान्वर्धमानकान् ।  
 न हि किञ्चिदसौवर्णमपश्यस्तत्र पार्थिवाः ॥ ४  
 यूपांश्च शास्त्रपठितान्दारवान्हेमभूषितान् ।  
 उपहृतान्यथाकालं विधिवद्भूरिवर्चसः ॥ ५  
 स्थलजा जलजा ये च पशवः केचन प्रभो ।  
 सर्वानेव समानीतांस्तानपश्यन्त ते नृपाः ॥ ६  
 गाश्चैव महिषीश्चैव तथा वृद्धाः स्त्रियोऽपि च ।  
 औदकानि च सत्त्वानि श्वापदानि वयांसि च ॥ ७  
 जरायुजान्यण्डजानि स्येदजान्युद्भिदानि च ।  
 पर्वतानूपवन्यानि भूतानि ददृशुश्च ते ॥ ८  
 एवं प्रमुदितं सर्वं पशुगोधनधान्यतः ।  
 यज्ञवाटं नृपा दृष्ट्वा परं विस्मयमागमन् ।  
 ब्राह्मणानां विशां चैव बहुमृष्टान्नमृद्धिमत् ॥ ९  
 पूर्णे शतसहस्रे तु विप्राणां तत्र भुञ्जताम् ।  
 दुन्दुभिर्मेघनिर्घोषो मुहुर्मुहुरताड्यत ॥ १०  
 विननादासकृत्सोऽथ दिवसे दिवसे तदा ।  
 एवं स ववृते यज्ञो धर्मराजस्य धीमतः ॥ ११  
 अन्नस्य बहवो राजन्नुत्सर्गाः पर्वतोपमाः ।  
 दधिकुल्याश्च ददृशुः सर्पिषश्च हृदाञ्जनाः ॥ १२  
 जम्बूद्वीपो हि सकलो नानाजनपदायुतः ।  
 राजन्नदृश्यतैकस्थो राज्ञस्तस्मिन्महाक्रतौ ॥ १३  
 तत्र जातिसहस्राणि पुरुषाणां ततस्ततः ।  
 गृहीत्वा धनमाजग्मुर्बहूनि भरतर्षभ ॥ १४  
 राजानः स्रग्विणश्चापि सुमृष्टमणिकुण्डलाः ।  
 पर्यवेषन्दिवाग्न्यांस्ताञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १५  
 विविधान्यन्नपानानि पुरुषा येऽनुयायिनः ।

तेषां नृपोपभोज्यानि ब्राह्मणेभ्यो ददुः स्म ते ॥ १६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

८८

वैशंपायन उवाच ।

समागतान्वेदविदो राज्ञश्च पृथिवीश्वरान् ।  
दृष्ट्वा युधिष्ठिरो राजा भीमसेनमथाब्रवीत् ॥ १  
उपयाता नरव्याघ्रा य इमे जगदीश्वरः ।  
एतेषां क्रियतां पूजा पूजाह्ना हि नरेश्वराः ॥ २  
इत्युक्तः स तथा चक्रे नरेन्द्रेण यशस्विना ।  
भीमसेनो महातेजा यमाभ्यां सह भारत ॥ ३  
अथाभ्यगच्छद्भोविन्दो वृष्णिभिः सह धर्मजम् ।  
बलदेवं पुरस्कृत्य सर्वप्राणभृतां वरः ॥ ४  
युयुधानेन सहितः प्रद्युम्नेन गदेन च ।  
निशटेनाथ साम्बेन तथैव कृतवर्मणा ॥ ५  
तेषामपि परां पूजां चक्रे भीमो महाभुजः ।  
विविशुस्ते च वेदमानि रत्नवन्ति नरर्षभाः ॥ ६  
युधिष्ठिरसमीपे तु कथान्ते मधुसूदनः ।  
अर्जुन कथयामास बहुसंप्रामर्शितम् ॥ ७  
स तं पप्रच्छ कौन्तेयः पुनः पुनररिदमम् ।  
धर्मराड् भ्रातरं जिष्णुं समाचष्ट जगत्पतिः ॥ ८  
आगमद्वारकावासी ममाप्तः पुरुषो नृप ।  
योऽद्राक्षीत्याण्डवश्रेष्ठं बहुसंप्रामर्शितम् ॥ ९  
समीपे च महाबाहुमाचष्ट च मम प्रभो ।  
कुरु कार्याणि कौन्तेय हयमेधार्थसिद्धये ॥ १०  
इत्युक्तः प्रत्युवाचैनं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।  
दिष्ट्वा स कुशली जिष्णुरुपयाति च माधव ॥ ११  
तव यत्संदिदेशासौ पाण्डवानां बलाप्रणीः ।  
तदाख्यातुमिहेच्छामि भवता यदुन्नन्दन ॥ १२  
इत्युक्ते राजशार्ङ्गल वृष्ण्यन्धकपतिस्तदा ।

प्रोवाचेदं वचो वाग्मी धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ १३

इदमाह महाराज पार्थवाक्यं नरः स माम् ।

वाच्यो युधिष्ठिरः कृष्ण काले वाक्यमिदं मम ॥

आगमिष्यन्ति राजानः सर्वतः कौरवान्प्रति ।

तेषामेकैकशः पूजा कार्येत्येतत्क्षमं हि नः ॥ १५

इत्येतद्वचनाद्राजा विज्ञाप्यो मम मानद ।

न तदात्ययिकं हि स्याद्यदध्यानयने भवेत् ॥ १६

कर्तुमर्हति तद्राजा भवांश्चाप्यनुमन्यताम् ।

राजद्वेषाद्विनश्येयुर्नेमा राजन्प्रजाः पुनः ॥ १७

इदमन्यच्च कौन्तेय वचः स पुरुषोऽब्रवीत् ।

धनंजयस्य नृपते तन्मे निगदतः शृणु ॥ १८

उपयास्यति यज्ञं नो मणिपूरपतिर्नृपः ।

पुत्रो मम महातेजा दयितो बभ्रुवाहनः ॥ १९

तं भवान्मदपेक्षार्थं विधिवत्प्रतिपूजयेत् ।

स हि भक्तोऽनुरक्तश्च मम नित्यमिति प्रभो ॥ २०

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।

अभिनन्द्यास्य तद्वाक्यमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २१

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

८९

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतं प्रियमिदं कृष्ण यत्त्वमर्हसि भाषितुम् ।

तन्मेऽमृतरसप्रख्यं मनो ह्लादयते विभो ॥ १

बहूनि किल युद्धानि विजयस्य नराधिपैः ।

पुनरासन्वृषीकेश तत्र तत्रेति मे श्रुतम् ॥ २

मन्निमित्तं हि स सदा पार्थः सुखविवर्जितः ।

अतीव विजयो धीमानिति मे दूयते मनः ॥ ३

संचिन्तयामि वाष्णेय सदा कुन्तीसुतं रहः ।

किं नु तस्य शरीरेऽस्ति सर्वलक्षणपूजिते ।

अनिष्टं लक्षणं कृष्ण येन दुःखान्युपाश्रुते ॥ ४

अतीव दुःखभागी स सततं कुन्तिनन्दनः ।  
 न च पश्यामि बीभत्सोर्निन्द्यं गात्रेषु किञ्चन ॥ ५  
 श्रोतव्यं चेन्मयैतद्वै तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।  
 इत्युक्तः स हृषीकेशो ध्यात्वा सुमहदन्तरम् ।  
 राजानं भोजराजन्यवर्धनो विष्णुरब्रवीत् ॥ ६  
 न ह्यस्य नृपते किञ्चिदनिष्टमुपलक्ष्ये ।  
 ऋते पुरुषसिंहस्य पिण्डकेऽस्यातिकायतः ॥ ७  
 ताभ्यां स पुरुषव्याघ्रो नित्यमध्वसु युज्यते ।  
 न ह्यन्यदनुपश्यामि येनासौ दुःखभागजयः ॥ ८  
 इत्युक्तः स कुरुश्रेष्ठस्तथ्यं कृष्णेन धीमता ।  
 प्रोवाच वृष्णिशार्दूलमेवमेतदिति प्रभो ॥ ९  
 कृष्णा तु द्रौपदी कृष्णं तिर्यक्सासूयमैक्षत ।  
 प्रतिजग्राह तस्यास्तं प्रणयं चापि केशिहा ।  
 सख्युः सखा हृषीकेशः साक्षादिव धनंजयः ॥ १०  
 तत्र भीमादयस्ते तु कुरवो यादवास्तथा ।  
 रेमुः श्रुत्वा विचित्रार्था धनंजयकथा विभो ॥ ११  
 तथा कथयतामेव तेषामर्जुनसंकथाः ।  
 उपायाद्वचनान्मर्त्यो विजयस्य महात्मनः ॥ १२  
 सोऽभिगम्य कुरुश्रेष्ठं नमस्कृत्य च बुद्धिमान् ।  
 उपायातं नरव्याघ्रमर्जुनं प्रत्यवेदयत् ॥ १३  
 तच्छ्रुत्वा नृपतिस्तस्य हर्षवाष्पाकुलेक्षणः ।  
 प्रियाख्याननिमित्तं वै ददौ बहु धनं तदा ॥ १४  
 ततो द्वितीये दिवसे महाञ्जशब्दो व्यवर्धत ।  
 आयाति पुरुषव्याघ्रे पाण्डवानां घुरंधरे ॥ १५  
 ततो रेणुः समुद्भूतो विबभौ तस्य वाजिनः ।  
 अभितो वर्तमानस्य यथोच्चैःश्रवसस्तथा ॥ १६  
 तत्र हर्षकला वाचो नराणां शुश्रुवेऽर्जुनः ।  
 दिष्ट्यासि पार्थ कुशली धन्यो राजा युधिष्ठिरः ॥  
 कोऽन्यो हि पृथिवी कृत्स्नामवजित्य सपार्थिवाम् ।  
 चारयित्वा ह्यश्रेष्ठमुपायायादृतेऽर्जुनम् ॥ १८

ये व्यतीता महात्मानो राजानः सगरादयः ।  
 तेषामपीदृशं कर्म न किञ्चिदनुशुश्रुम ॥ १९  
 नैतदन्ये करिष्यन्ति भविष्याः पृथिवीक्षितः ।  
 यत्त्वं कुरुकुलश्रेष्ठ दुष्करं कृतवानिह ॥ २०  
 इत्येवं वदतां तेषां नृणां श्रुतिसुखा गिरः ।  
 शृण्वन्विवेश धर्मात्मा फल्गुनो यज्ञसंस्तरम् ॥ २१  
 ततो राजा सद्दामात्यः कृष्णश्च यदुनन्दनः ।  
 धृतराष्ट्र पुरस्कृत्य ते तं प्रत्युद्ययुस्तदा ॥ २२  
 सोऽभिवाद्य पितुः पादौ धर्मराजस्य धीमतः ।  
 भीमादींश्चापि संपूज्य पर्यष्वजत केशवम् ॥ २३  
 तैः समेत्यार्चितस्तान्स प्रत्यर्च्य च यथाविधि ।  
 विशश्रामाथ धर्मात्मा तीरं लब्ध्वेव पारगः ॥ २४  
 एतस्मिन्नेव काले तु स राजा बभ्रुवाहनः ।  
 मातृभ्यां सहितो धीमान्कुरुनभ्याजगाम ह ॥ २५  
 स समेत्य कुरुनसर्वान्सर्वैस्तैरभिनन्दितः ।  
 प्रविवेश पितामहाः कुन्त्या भवनमुत्तमम् ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

एकोनवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

९०

वैशंपायन उवाच ।

स प्रविश्य यथान्यायं पाण्डवानां निवेशनम् ।  
 पितामहीमभ्यवदत्साम्ना परमवल्लुना ॥ १  
 तथा चित्राङ्गदा देवी कौरव्यस्यात्मजापि च ।  
 पृथां कृष्णां च सहिते विनयेनाभिजग्मतुः ।  
 सुभद्रां च यथान्यायं याश्चान्याः कुरयोषितः ॥ २  
 ददौ कुन्ती ततस्ताभ्यां रत्नानि विविधानि च ।  
 द्रौपदी च सुभद्रा च याश्चाप्यन्या ददुः स्त्रियः ॥  
 ऊषतुस्तत्र ते देव्यौ महार्हशयनासने ।  
 सुपूजिते स्वयं कुन्त्या पार्थस्य प्रियकाम्यया ॥ ४  
 स च राजा महावीर्यः पूजितो बभ्रुवाहनः ।

धृतराष्ट्रं महीपालमुपतस्थे यथाविधि ॥ ५  
 युधिष्ठिरं च राजानं भीमादीश्चापि पाण्डवान् ।  
 उपगम्य महातेजा विनयेनाभ्यवादयत् ॥ ६  
 स तैः प्रेम्णा परिष्वक्तः पूजितश्च यथाविधि ।  
 धनं चास्मै ददुर्भूरि प्रीयमाणा महारथाः ॥ ७  
 तथैव स महीपालः कृष्णं चक्रगदाधरम् ।  
 प्रद्युम्न इव गोविन्दं विनयेनोपतस्थिवान् ॥ ८  
 तस्मै कृष्णो ददौ राज्ञे महार्हमभिपूजितम् ।  
 रथं हेमपरिष्कारं दिव्याश्वयुजमुत्तमम् ॥ ९  
 धर्मराजश्च भीमश्च यमजौ फल्गुनस्तथा ।  
 पृथक्पृथगतीवैनं मानार्हं समपूजयन् ॥ १०  
 ततस्तृतीये दिवसे सत्यवत्याः सुतो मुनिः ।  
 युधिष्ठिरं समभ्येत्य वाग्मी वचनमब्रवीत् ॥ ११  
 अद्य प्रभृति कौन्तेय यजस्व समयो हि ते ।  
 मुहूर्तो यज्ञियः प्राप्तश्चोदयन्ति च याजकाः ॥ १२  
 अहीनो नाम राजेन्द्र क्रतुस्तेऽयं विकल्पवान् ।  
 बहुत्वात्काञ्चनस्यास्य ख्यातो बहुसुवर्णकः ॥ १३  
 एवमेव महाराज दक्षिणां त्रिगुणां कुरु ।  
 त्रित्वं ब्रजतु ते राजन्ब्राह्मणा ह्यत्र कारणम् ॥ १४  
 त्रीनश्वमेधानत्र त्वं संप्राप्य बहुदक्षिणान् ।  
 ज्ञातिवध्याकृतं पापं प्रहास्यसि नराधिप ॥ १५  
 पवित्रं परमं ह्येतत्पावनानां च पावनम् ।  
 यदश्वमेधावभृथं प्राप्स्यसे कुरुनन्दन ॥ १६  
 इत्युक्तः स तु तेजस्वी व्यासेनामिततेजसा ।  
 दीक्षां विवेश धर्मात्मा वाजिमेधाप्तये तदा ।  
 नराधिपः प्रायजत वाजिमेधं महाक्रतुम् ॥ १७  
 तत्र वेदविदो राजंश्चक्रुः कर्माणि याजकाः ।  
 परिक्रमन्तः शास्त्रज्ञा विधिवत्साधुशिक्षिताः ॥ १८  
 न तेषां स्वलितं तत्र नासीदपहुतं तथा ।  
 क्रमयुक्तं च युक्तं च चक्रुस्तत्र द्विजर्षभाः ॥ १९

कृत्वा प्रवर्ग्य धर्मज्ञा यथावद्विजसत्तमाः ।  
 चक्रुस्ते विधिवद्राजस्तथैवाभिपवं द्विजाः ॥ २०  
 अभिपूय ततो राजन्सोमं सोमपसत्तमाः ।  
 सवनान्यानुपूर्व्येण चक्रुः शास्त्रानुसारिणः ॥ २१  
 न तत्र कृपणः कश्चिन्न दरिद्रो बभूव ह ।  
 क्षुधितो दुःस्त्रिनो वापि प्राकृतो वापि मानवः ॥ २२  
 भोजनं भोजनार्थिभ्यो दापयामास नित्यदा ।  
 भीमसेनो महातेजाः सततं राजशासनात् ॥ २३  
 संस्तरे कुशलाश्चापि सर्वकर्माणि याजकाः ।  
 दिवसे दिवसे चक्रुर्यथाशास्त्रार्थचक्षुषः ॥ २४  
 नाषडङ्गविदत्रासीत्सदस्यस्तस्य धीमतः ।  
 नात्रतो नानुपाध्यायो न च वादाक्षमो द्विजः ॥ २५  
 ततो यूपोच्छ्रये प्राप्ते पङ्क्तवान्भरतर्षभ ।  
 खादिरान्वित्वसमितांस्तावतः सर्ववर्णिनः ॥ २६  
 देवदारुमयौ द्वौ तु यूपौ कुरुपतेः क्रतौ ।  
 श्लेष्मातकमयं चैकं याजकाः समकारयन् ॥ २७  
 शोभार्थं चापरान्यूपान्काञ्चनान्पुरुषर्षभ ।  
 स भीमः कारयामास धर्मराजस्य शासनात् ॥ २८  
 ते व्यराजन्त राजर्षे वासोभिरुपशोभिताः ।  
 नरेन्द्राभिगता देवान्यथा सप्तर्षयो दिवि ॥ २९  
 इष्टकाः काञ्चनीश्चात्र चयनार्थं कृताभवन् ।  
 शुशुभे चयनं तत्र दक्षस्येव प्रजापतेः ॥ ३०  
 चतुश्चित्यः स तस्यासीदष्टादशकरात्मकः ।  
 स रुक्मपक्षो निचितस्त्रिगुणो गरुडाकृतिः ॥ ३१  
 ततो नियुक्ताः पशवो यथाशास्त्रं मनीषिभिः ।  
 तं तं देव समुद्दिश्य पक्षिणः पशवश्च ये ॥ ३२  
 ऋषभाः शास्त्रपठितास्तथा जलचराश्च ये ।  
 सर्वास्तानभ्ययुञ्जंस्ते तत्राग्निचयकर्मणि ॥ ३३  
 यूपेषु नियतं चासीत्पशूनां त्रिशतं तथा ।  
 अश्वरत्नोत्तरं राज्ञः कौन्तेयस्य महात्मनः ॥ ३४

स यज्ञः शुशुभे तस्य साक्षादेवर्षिसंकुलः ।  
 गन्धर्वगणसंकीर्णः शोभितोऽप्सरसां गणैः ॥ ३५  
 स किंपुरुषगीतैश्च किंनरैरुपशोभितः ।  
 सिद्धविप्रनिवासैश्च समन्तादभिसंवृतः ॥ ३६  
 तस्मिन्सदसि नित्यास्तु व्यासशिष्या द्विजोत्तमाः ।  
 सर्वशास्त्रप्रणेतारः कुशला यज्ञकर्मसु ॥ ३७  
 नारदश्च बभूवात्र तुम्बुरुश्च महाद्युतिः ।  
 विश्वावसुश्चित्रसेनस्तथान्ये गीतकोविदाः ॥ ३८  
 गन्धर्वा गीतकुशला नृत्तेषु च विशारदाः ।  
 रमयन्ति स्म तान्विप्रान्यज्ञकर्मान्तरेष्वथ ॥ ३९

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

९१

वैशंपायन उवाच ।

शमयित्वा पशून्यान्विधिवद्विजसत्तमाः ।  
 तुरगं तं यथाशास्त्रमालभन्त द्विजातयः ॥ १  
 ततः संज्ञाप्य तुरगं विधिवद्याजकर्षभाः ।  
 चपसंवेशयन्राजंस्ततस्तां द्रुपदात्मजाम् ।  
 कलाभिस्तिसृभी राजन्यथाविधि मनस्विनीम् ॥ २  
 उद्धृत्य तु वपां तस्य यथाशास्त्रं द्विजर्षभाः ।  
 श्रपयामासुरव्यग्राः शास्त्रवद्भरतर्षभ ॥ ३  
 तं वपाधूमगन्धं तु धर्मराजः सहानुजः ।  
 उपाजिघ्रद्यथान्यायं सर्वपाप्मापहं तदा ॥ ४  
 शिष्टान्यङ्गानि यान्यासंस्तस्याश्वस्य नराधिप ।  
 तान्यम्रौ जुहुवुर्धीराः समस्ताः षोडशर्त्विजः ॥ ५  
 संस्थाप्यैवं तस्य राज्ञस्तं क्रतुं शक्तेजसः ।  
 व्यासः सशिष्यो भगवान्वर्धयामास तं नृपम् ॥ ६  
 ततो युधिष्ठिरः प्रादात्सदस्येभ्यो यथाविधि ।  
 कोटीसहस्रं निष्काणां व्यासाय तु वसुंधराम् ॥ ७  
 प्रतिगृह्य धरां राजन्यासः सत्यवतीसुतः ।

अब्रवीद्भरतश्रेष्ठं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ ८  
 पृथिवी भवतस्त्वेषा संन्यस्ता राजसत्तमा ।  
 निष्क्रयो दीयतां मह्यं ब्राह्मणा हि धनार्थिनः ॥ ९  
 युधिष्ठिरस्तु तान्विप्रान्प्रत्युवाच महामनाः ।  
 भ्रातृभिः सहितो धीमान्मध्ये राज्ञां महात्मनाम् ॥ १०  
 अश्वमेधे महायज्ञे पृथिवी दक्षिणा स्मृता ।  
 अर्जुनेन जिता सेयमृत्विग्भ्यः प्रापिता मया ॥ ११  
 वनं प्रवेक्ष्ये विप्रेन्द्रा विभजध्वं महीमिमाम् ।  
 चतुर्धा पृथिवीं कृत्वा चातुर्द्वित्रप्रमाणतः ॥ १२  
 नाहमादातुमिच्छामि ब्रह्मस्वं मुनिसत्तमाः ।  
 इदं हि मे मतं नित्यं भ्रातृणां च ममानघाः ॥ १३  
 इत्युक्तवति तस्मिंस्ते भ्रातरो द्रौपदी च सा ।  
 एवमेतदिति प्राहुस्तदभूद्रोमहर्षणम् ॥ १४  
 ततोऽन्तरिक्षे वागासीत्साधु साध्विति भारत ।  
 तथैव द्विजसंघानां शंसतां विबभौ स्वनः ॥ १५  
 द्वैपायनस्तथोक्तस्तु पुनरेव युधिष्ठिरम् ।  
 उवाच मध्ये विप्राणामिदं संपूजयन्मुनिः ॥ १६  
 दत्तैषा भवता मह्यं तां ते प्रतिदाम्यहम् ।  
 हिरण्यं दीयतामेभ्यो द्विजातिभ्यो धरास्तु ते ॥ १७  
 ततोऽब्रवीद्वासुदेवो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।  
 यथाह भगवान्व्यासस्तथा तत्कर्तुमर्हसि ॥ १८  
 इत्युक्तः स कुरुश्रेष्ठः प्रीतात्मा भ्रातृभिः सह ।  
 कोटिकोटिकृतां प्रादादक्षिणां त्रिगुणां क्रतोः ॥ १९  
 न करिष्यति तल्लोके कश्चिदन्यो नराधिपः ।  
 यत्कृतं कुरुसिहेन मरुत्तस्यानुकुर्वता ॥ २०  
 प्रतिगृह्य तु तद्व्यं कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।  
 ऋत्विग्भ्यः प्रददौ विद्वांश्चतुर्धा व्यभजंश्च ते ॥ २१  
 पृथिव्या निष्क्रयं दत्त्वा तद्विहण्यं युधिष्ठिरः ।  
 धृतपाप्मा जितस्वर्गो मुमुदे भ्रातृभिः सह ॥ २२  
 ऋत्विजस्तमपर्यन्तं सुवर्णनिचयं तदा ।



व्यभजन्त द्विजातिभ्यो यथोत्साहं यथाबलम् ॥ २३  
यज्ञवाटे तु यत्किञ्चिद्विरण्यमपि भूषणम् ।  
तोरणानि च यूपांश्च घटाः पात्रीस्तथेष्टकाः ।  
युधिष्ठिराभ्यनुज्ञाताः सर्वं तद्व्यभजन्तद्विजाः ॥ २४  
अनन्तरं ब्राह्मणेभ्यः क्षत्रिया जहिरे वसु ।  
तथा विट्शूद्रसंघाश्च तथान्ये म्लेच्छजातयः ।  
कालेन महता जहुस्तत्सुवर्णं ततस्ततः ॥ २५  
ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे मुदिता जग्मुरालयान् ।  
तर्पिता वसुना तेन धर्मराज्ञा महात्मना ॥ २६  
स्वमंशं भगवान्यासः कुन्त्यै पादाभिवादानात् ।  
प्रददौ तस्य महतो हिरण्यस्य महाद्युतिः ॥ २७  
श्वशुरात्प्रीतिदायं तं प्राप्य सा प्रीतमानसा ।  
चकार पुण्यं लोके तु सुमहान्तं पृथा तदा ॥ २८  
गत्वा त्ववभृथं राजा विपाप्मा भ्रातृभिः सह ।  
सभाज्यमानः शुशुभे महेन्द्रो दैवतैरिव ॥ २९  
पाण्डवाश्च महीपालैः समेतैः संवृतास्तदा ।  
अशोभन्त महाराज ग्रहास्तारागणैरिव ॥ ३०  
राजभ्योऽपि ततः प्रादाद्रत्नानि विविधानि च ।  
गजानश्चानलंकारान्छ्रियो वस्त्राणि काञ्चनम् ॥ ३१  
तद्धनौघमपर्यन्तं पार्थः पार्थिवमण्डले ।  
विसृजञ्चुशुभे राजा यथा वैश्रवणस्तथा ॥ ३२  
आनाय्य च तथा वीरं राजानं बभ्रुवाहनम् ।  
प्रदाय विपुलं वित्तं गृहान्प्रास्थापयत्तदा ॥ ३३  
दुःशलायाश्च तं पौत्रं बालकं पार्थिववर्षभ ।  
स्वराज्ये पितृभिर्गुप्ते प्रीत्या समभिषेचयत् ॥ ३४  
राज्ञश्चैवापि तान्सर्वान्सुविभक्तान्सुपूजितान् ।  
प्रस्थापयामास वशी कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ ३५  
एवं बभूव यज्ञः स धर्मराजस्य धीमतः ।  
बह्वन्नधनरत्नौघः सुरामैरेयसागरः ॥ ३६  
सर्पिःपङ्का हृदा यत्र बहवश्चान्नपर्वताः ।

रसालाकर्दमाः कुल्या बभूवुर्भरतर्षभ ॥ ३७  
भक्ष्यपाण्डवरागाणां क्रियतां भुज्यतामिति ।  
पशूनां वध्यतां चापि नान्तस्तत्र स्म दृश्यते ॥ ३८  
मत्तोन्मत्तप्रमुदितं प्रगीतयुवतीजनम् ।  
मृदङ्गशङ्खशब्दैश्च मनोरममभूत्तदा ॥ ३९  
दीयतां भुज्यतां चेति दिवा रात्रमवारितम् ।  
तं महोत्सवसंकाशमतिहृष्टजनाकुलम् ।  
कथयन्ति स्म पुरुषा नानादेशनिवासिनः ॥ ४०  
वर्षित्वा धनधाराभिः कामै रत्नैर्धनैस्तथा ।  
विपाप्मा भरतश्रेष्ठः कृतार्थः प्राविशत्पुरम् ॥ ४१

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

९२

जनमेजय उवाच ।

पितामहस्य मे यज्ञे धर्मपुत्रस्य धीमतः ।  
यदाश्चर्यमभूत्किञ्चित्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १

वैशंपायन उवाच ।

श्रूयतां राजशार्दूल महदाश्चर्यमुत्तमम् ।  
अश्वमेधे महायज्ञे निवृत्ते यदभूद्विभो ॥ २  
तर्पितेषु द्विजाग्र्येषु ज्ञातिसंबन्धिवन्धुषु ।  
दीनान्धकूपणे चापि तदा भरतसत्तम ॥ ३  
घुष्यमाणे महादाने दिक्षु सर्वासु भारत ।  
पतत्सु पुष्पवर्षेषु धर्मराजस्य मूर्धनि ॥ ४  
बिलान्निष्क्रम्य नकुलो रुक्मपार्श्वस्तदानघ ।  
वज्राशनिसमं नादमुञ्चत विशां पते ॥ ५  
सकृदुत्सृज्य तं नादं त्रासयानो मृगद्विजान् ।  
मानुष वचनं प्राह धृष्टो बिलशयो महान् ॥ ६  
सक्तुप्रस्थेन वो नायं यज्ञस्तुल्यो नराधिपाः ।  
उल्लवृत्तेर्वदान्यस्य कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ ७

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नकुलस्य विशां पते ।  
 विस्मयं परमं जग्मुः सर्वे ते ब्राह्मणर्षभाः ॥ ८  
 ततः समेत्य नकुलं पर्यपृच्छन्त ते द्विजाः ।  
 कुतस्त्वं समनुप्राप्तो यज्ञं साधुसमागमम् ॥ ९  
 किं बल परमं तुभ्यं किं श्रुतं किं परायणम् ।  
 कथं भवन्तं विद्याम यो नो यज्ञं विगर्हसे ॥ १०  
 अविलुप्यागमं कृत्स्नं विधिज्ञैर्याजकैः कृतम् ।  
 यथागमं यथान्यायं कर्तव्यं च यथाकृतम् ॥ ११  
 पूजार्हाः पूजिताश्चात्र विधिवच्छास्त्रचक्षुषा ।  
 मन्त्रपूतं हुतश्चाग्निर्दत्तं देयममत्सरम् ॥ १२  
 तुष्टा द्विजर्षभाश्चात्र दानैर्बहुविधैरपि ।  
 क्षत्रियाश्च सुयुद्धेन श्राद्धैरपि पितामहाः ॥ १३  
 पालनेन विशस्तुष्टाः कामैस्तुष्टा वरस्त्रियः ।  
 अनुक्रोशैस्तथा शूद्रा दानशेषैः पृथग्जनाः ॥ १४  
 ज्ञातिसंबन्धिनस्तुष्टाः शौचेन च नृपस्य नः ।  
 देवा हविर्भिः पुण्यैश्च रक्षणैः शरणागताः ॥ १५  
 यदत्र तथ्यं तद्रूहि सत्यसंधं द्विजातिषु ।  
 यथाश्रुतं यथादृष्टं पृष्टो ब्राह्मणकाम्यया ॥ १६  
 श्रद्धेयवाक्यः प्राज्ञस्त्वं दिव्यं रूपं विभर्षि च ।  
 समागतश्च विप्रैस्त्वं तत्त्वतो वक्तुमर्हसि ॥ १७  
 इति पृष्टो द्विजैस्तैः स प्रहस्य नकुलोऽब्रवीत् ।  
 नैषानृता मया वाणी प्रोक्ता दर्पेण वा द्विजाः ॥  
 यन्मयोक्तमिदं किंचिद्युष्माभिश्चाप्युपश्रुतम् ।  
 सक्तुप्रस्थेन वो नायं यज्ञस्तुल्यो नराधिपाः ।  
 उच्छवृत्तेर्वदान्यस्य कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ १९  
 इत्यवश्यं मयैतद्वो वक्तव्यं द्विजपुंगवाः ।  
 शृणुताव्यग्रमनसः शंसतो ये द्विजर्षभाः ॥ २०  
 अनुभूतं च दृष्टं च यन्मयाद्भुतमुत्तमम् ।  
 उच्छवृत्तेर्यथावृत्तं कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ २१  
 स्वर्गं येन द्विजः प्राप्तः सभार्यः ससुतस्तुषः ।

यथा चार्धं शरीरस्य ममेदं काश्चनीकृतम् ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

९३

नकुल उवाच ।

हन्त वो वर्तयिष्यामि दानस्य परमं फलम् ।  
 न्यायलब्धस्य सूक्ष्मस्य विप्रदत्तस्य यद्विजाः ॥ १  
 धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे धर्मज्ञैर्बहुभिर्वृते ।  
 उच्छवृत्तिर्द्विजः कश्चित्कापोतिरभवत्पुरा ॥ २  
 सभार्यः सह पुत्रेण सस्तुषस्तपसि स्थितः ।  
 वधूचतुर्थो वृद्धः स धर्मात्मा नियतेन्द्रियः ॥ ३  
 षष्ठे काले तदा विप्रो भुङ्क्ते तैः सह सुव्रतः ।  
 षष्ठे काले कदाचिच्च तस्याहारो न विद्यते ।  
 भुङ्क्तेऽन्यास्मिन्कदाचित्स षष्ठे काले द्विजोत्तमः ॥ ४  
 कपोतधर्मिणस्तस्य दुर्भिक्षे सति दारुणे ।  
 नाविद्यत तदा विप्राः सचयस्तान्निबोधत ।  
 क्षीणौषधिसमावायो द्रव्यहीनोऽभवत्तदा ॥ ५  
 काले कालेऽस्य संप्राप्ते नैव विद्येत भोजनम् ।  
 क्षुधापरिगताः सर्वे प्रातिष्ठन्त तदा तु ते ॥ ६  
 उच्छंस्तदा शुरुपक्षे मध्यं तपति भास्करे ।  
 उष्णार्तश्च क्षुधार्तश्च स विप्रस्तपसि स्थितः ।  
 उच्छमप्राप्तवानेव सार्धं परिजनेन ह ॥ ७  
 स तथैव क्षुधाविष्टः स्पृष्ट्वा तोयं यथाविधि ।  
 क्षपयामास तं कालं कृच्छ्रप्राणो द्विजोत्तमः ॥ ८  
 अथ षष्ठे गते काले यवप्रस्थमुपार्जयत् ।  
 यवप्रस्थं च ते सक्तूनकुर्वन्त तपस्विनः ॥ ९  
 कृतजप्याह्निकास्ते तु हुत्वा वह्निं यथाविधि ।  
 कुडवं कुडवं सर्वे व्यभजन्त तपस्विनः ॥ १०  
 अथागच्छद्विजः कश्चिदतिथिर्भुञ्जतां तदा ।  
 ते तं दृष्ट्वातिथिं तत्र प्रहृष्टमनसोऽभवन् ॥ ११

तेऽभिवाद्य सुखप्रशं पृष्ट्वा तमतिथि तदा ।  
 विशुद्धमनसो दान्ताः श्रद्धादमसमन्विताः ॥ १२  
 अनसूयवो गतक्रोधाः साधवो गतमत्सराः ।  
 त्यक्तमाना जितक्रोधा धर्मज्ञा द्विजसत्तमाः ॥ १३  
 सन्नह्यचर्यं स्वं गोत्रं समाख्याय परस्परम् ।  
 कुटीं प्रवेशयामासुः क्षुधार्तमतिथि तदा ॥ १४  
 इदमर्घ्यं च पाद्यं च वृत्तीं चैवं तवानघ ।  
 शुचयः सत्त्वश्चेमे नियमोपार्जिताः प्रभो ।  
 प्रतिगृहीष्व भद्रं ते मया दत्ता द्विजोत्तम ॥ १५  
 इत्युक्तः प्रतिगृह्याथ सक्तूनां कुडवं द्विजः ।  
 भक्षयामास राजेन्द्र न च तुष्टिं जगाम सः ॥ १६  
 स उच्छवृत्तिः तं प्रेक्ष्य क्षुधापरिगतं द्विजम् ।  
 आहारं चिन्तयामास कथं तुष्टो भवेदिति ॥ १७  
 तस्य भार्यात्रिवीद्राजन्मद्वागो दीयतामिति ।  
 गच्छत्वेष यथाकामं संतुष्टो द्विजसत्तमः ॥ १८  
 इति ब्रुवन्तीं तां सार्धं धर्मात्मा स द्विजर्षभः ।  
 क्षुधापरिगतां ज्ञात्वा सक्तून्स्तान्नाभ्यनन्दत ॥ १९  
 जानन्वृद्धां क्षुधार्तां च श्रान्तां ग्लानां तपस्विनीम् ।  
 त्वगस्थिभूतां वेपन्तीं ततो भार्यामुवाच ताम् ॥ २०  
 अपि कीटपतंगानां मृगाणां चैव शोभने ।  
 स्त्रियो रक्ष्याश्च पोष्याश्च नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ २१  
 अनुकम्पितो नरो नार्यां पुष्टो रक्षित एव च ।  
 प्रपतेद्यशसो दीप्तान्नं च लोकानवाप्नुयात् ॥ २२  
 इत्युक्ता सा ततः प्राह धर्मार्थौ नौ समौ द्विज ।  
 सक्तुप्रस्थचतुर्भागं गृहाणेमं प्रसीद मे ॥ २३  
 सत्यं रतिश्च धर्मश्च स्वर्गश्च गुणनिर्जितः ।  
 स्त्रीणां पतिसमाधीनं काङ्क्षितं च द्विजोत्तम ॥ २४  
 ऋतुर्मातुः पितुर्बीजं दैवतं परमं पतिः ।  
 भर्तुः प्रसादात्स्त्रीणां वै रतिः पुत्रफलं तथा ॥ २५  
 पालनाद्धि पतिस्त्वं मे भर्तासि भरणान्मम ।

पुत्रप्रदानाद्वरदस्तस्मात्सक्तून्गृहाण मे ॥ २६  
 जरापरिगतो वृद्धः क्षुधार्तो दुर्बलो भृशम् ।  
 उपवासपरिश्रान्तो यदा त्वमपि कर्षितः ॥ २७  
 इत्युक्तः स तया सक्तून्प्रगृह्येदं वचोऽब्रवीत् ।  
 द्विज सक्तूनिमान्भूयः प्रतिगृहीष्व सत्तम ॥ २८  
 स तान्प्रगृह्य भुक्त्वा च न तुष्टिमगमद्विजः ।  
 तमुच्छवृत्तिरालक्ष्य ततश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ २९

पुत्र उवाच ।

सक्तूनिमान्प्रगृह्य त्वं देहि विप्राय सत्तम ।  
 इत्येवं सुकृतं मन्ये तस्मादेतकरोम्यहम् ॥ ३०  
 भवान्हि परिपाल्यो मे सर्वयत्नैर्द्विजोत्तम ।  
 साधूनां काङ्क्षितं हेतत्पितुर्वृद्धस्य पोषणम् ॥ ३१  
 पुत्रार्थो विहितो ह्येष स्थाविर्ये परिपालनम् ।  
 श्रुतिरेषा हि विप्रर्षे त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ ३२  
 प्राणधारणमात्रेण शक्यं कर्तुं तपस्त्वया ।  
 प्राणो हि परमो धर्मः स्थितो देहेषु देहिनाम् ॥ ३३

पितोवाच ।

अपि वर्षसहस्री त्वं बाल एव मतो मम ।  
 उत्पाद्य पुत्रं हि पिता कृतकृत्यो भवत्युत ॥ ३४  
 बालानां क्षुद्रलवती जानाम्येतदहं विभो ।  
 वृद्धोऽहं धारयिष्यामि त्वं बली भव पुत्रक ॥ ३५  
 जीर्णेन वयसा पुत्रं न मा क्षुद्वाधतेऽपि च ।  
 दीर्घकालं तपस्तप्तं न मे मरणतो भयम् ॥ ३६

पुत्र उवाच ।

अपत्यमस्मि ते पुत्रस्त्राणात्पुत्रो हि विश्रुतः ।  
 आत्मा पुत्रः स्मृतस्तस्मात्त्राह्यात्मानमिहात्मना ॥ ३७

पितोवाच ।

रूपेण सदृशस्त्वं मे शीलेन च दमेन च ।  
 परीक्षितश्च बहुधा सक्तूनादद्धि ते ततः ॥ ३८

इत्युक्त्वादाय तान्सक्तूप्रीतात्मा द्विजसत्तमः ।  
 प्रहसन्निव विप्राय स तस्मै प्रददौ तदा ॥ ३९  
 भुक्त्वा तानपि सक्तून्स नैव तुष्टो बभूव ह ।  
 उच्छ्वृत्तिस्तु सत्रीडो बभूव द्विजसत्तमः ॥ ४०  
 तं वै वधूः स्थिता साध्वी ब्राह्मणप्रियकाम्यया ।  
 सक्तूनादाय संहृष्टा गुरु तं वाक्यमब्रवीत् ॥ ४१  
 संतानात्तव संतानं मम विप्र भविष्यति ।  
 सक्तूनिमानतिथये गृहीत्वा त्वं प्रयच्छ मे ॥ ४२  
 तव प्रसवनिर्वृत्या मम लोकाः किलाक्षयाः ।  
 पौत्रेण तानवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ॥ ४३  
 धर्माद्या हि यथा त्रेता वह्नित्रेता तथैव च ।  
 तथैव पुत्रपौत्राणां स्वर्गे त्रेता किलाक्षया ॥ ४४  
 पितृस्त्राणात्तारयति पुत्र इत्यनुशुश्रुम ।  
 पुत्रपौत्रैश्च नियतं साधुलोकानुपाश्रुते ॥ ४५

श्वशुर उवाच ।

वातातपविशीर्णाङ्गी त्वां विवर्णा निरीक्ष्य वै ।  
 कर्षितां सुव्रताचारे क्षुधाविह्वलचेतसम् ॥ ४६  
 कथं सक्तूप्रहीष्यामि भूत्वा धर्मोपघातकः ।  
 कल्याणवृत्ते कल्याणि नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ४७  
 षष्ठे काले व्रतवतीं शीलशौचसमन्विताम् ।  
 कृच्छ्रवृत्तिं निराहारां द्रक्ष्यामि त्वां कथं न्वहम् ॥  
 बाला क्षुधार्ता नारी च रक्ष्या त्वं सततं मया ।  
 उपवासपरिश्रान्ता त्वं हि बान्धवनन्दिनी ॥ ४९

स्तुषोवाच ।

गुरोर्मम गुरुस्त्वं वै यतो दैवतदैवतम् ।  
 देवातिदेवस्तस्मात्त्वं सक्तूनादत्स्व मे विभो ॥ ५०  
 देहः प्राणश्च धर्मश्च शुश्रूषार्थमिदं गुरोः ।  
 तव विप्र प्रसादेन लोकान्प्राप्स्याम्यभीप्सितान् ॥  
 अवेक्ष्या इति कृत्वा त्वं दृढभक्त्येति वा द्विज ।  
 चिन्त्या ममेयमिति वा सक्तूनादातुमर्हसि ॥ ५२

श्वशुर उवाच ।

अनेन नित्यं साध्वी त्वं शीलवृत्तेन शोभसे ।  
 या त्वं धर्मव्रतोपेता गुरुवृत्तिमवेक्षसे ॥ ५३  
 तस्मात्सक्तूप्रहीष्यामि वधूर्नार्हसि वञ्चनाम् ।  
 गणयित्वा महाभागे त्वं हि धर्मभृतां वरा ॥ ५४  
 इत्युक्त्वा तानुपादाय सक्तून्प्रादाद्विजातये ।  
 ततस्तुष्टोऽभवद्विप्रस्तस्य साधोर्महात्मनः ॥ ५५  
 प्रीतात्मा स तु तं वाक्यमिदमाह द्विजर्षभम् ।  
 वाग्मी तदा द्विजश्रेष्ठो धर्मः पुरुषविग्रहः ॥ ५६  
 शुद्धेन तव दानेन न्यायोपात्तेन यत्नतः ।  
 यथाशक्ति विमुक्तेन प्रीतोऽस्मि द्विजसत्तम ॥ ५७  
 अहो दानं घुष्यते ते स्वर्गे स्वर्गनिवासिभिः ।  
 गगनात्पुष्पवर्षं च पश्यस्व पतितं भुवि ॥ ५८  
 सुरर्षिदेवगन्धर्वा ये च देवपुरःसराः ।  
 स्तुवन्तो देवदूताश्च स्थिता दानेन विस्मिताः ॥ ५९  
 ब्रह्मर्षयो विमानस्था ब्रह्मलोकगताश्च ये ।  
 काङ्क्षन्ते दर्शनं तुभ्यं दिवं गच्छ द्विजर्षभ ॥ ६०  
 पितृलोकगताः सर्वे तारिताः पितरस्त्वया ।  
 अनागताश्च बहवः सुबहूनि युगानि च ॥ ६१  
 ब्रह्मचर्येण यज्ञेन दानेन तपसा तथा ।  
 अगह्वरेण धर्मेण तस्माद्गच्छ दिवं द्विज ॥ ६२  
 श्रद्धया परया यस्त्वं तपश्चरसि सुव्रत ।  
 तस्माद्देवास्तवानेन प्रीता द्विजवरोत्तम ॥ ६३  
 सर्वस्वमेतद्यस्मात्ते त्यक्तं शुद्धेन चेतसा ।  
 कृच्छ्रकाले ततः स्वर्गो जितोऽयं तव कर्मणा ॥ ६४  
 क्षुधा निर्गुदति प्रज्ञां धर्म्या बुद्धिं व्यपोहति ।  
 क्षुधापरिगतज्ञानो धृतिं त्यजति चैव ह ॥ ६५  
 बुभुक्षां जयते यस्तु स स्वर्गं जयते ध्रुवम् ।  
 यदा दानरुचिर्भवति तदा धर्मो न सीदति ॥ ६६  
 अनवेक्ष्य सुतस्नेहं कलत्रस्नेहमेव च ।

धर्ममेव गुरुं ज्ञात्वा वृष्णा न गणिता त्वया ॥६७  
 द्रव्यागमो नृणां सूक्ष्मः पात्रे दानं ततः परम् ।  
 कालः परतरो दानाच्छ्रद्धा चापि ततः परा ॥ ६८  
 स्वर्गद्वारं सुसूक्ष्मं हि नरैर्मोहान्न दृश्यते ।  
 स्वर्गार्गिलं लोभबीजं रागगुणं दुरासदम् ॥ ६९  
 तत्तु पश्यन्ति पुरुषा जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।  
 ब्राह्मणास्तपसा युक्ता यथाशक्तिप्रदायिनः ॥ ७०  
 सहस्रशक्तिश्च शतं शतशक्तिर्दशापि च ।  
 दद्यादपश्च यः शक्यता सर्वे तुल्यफलाः स्मृताः ॥  
 रन्तिदेवो हि नृपतिरपः प्रादादकिंचनः ।  
 शुद्धेन मनसा विप्र नाकपृष्ठं ततो गतः ॥ ७२  
 न धर्मः प्रीयते तात दानैर्दत्तैर्महाफलैः ।  
 न्यायलब्धैर्यथा सूक्ष्मैः श्रद्धापूर्तैः स तुष्यति ॥७३  
 गोप्रदानसहस्राणि द्विजेभ्योऽदानृगो नृपः ।  
 एकां दत्त्वा स पारक्यां नरकं समवाप्तवान् ॥७४  
 आत्ममांसप्रदानेन शिबिरौशीनरो नृपः ।  
 प्राप्य पुण्यकृताल्लोकान्मोदते दिवि सुव्रतः ॥ ७५  
 विभवे न नृणां पुण्यं स्वशक्त्या स्वर्जितं सताम् ।  
 न यज्ञैर्विविधैर्विप्र यथान्यायेन संचितैः ॥ ७६  
 क्रोधो दानफलं हन्ति लोभात्स्वर्गं न गच्छति ।  
 न्यायवृत्तिर्हि तपसा दानवित्स्वर्गमश्नुते ॥ ७७  
 न राजसूयैर्बहुभिरिष्टा विपुलदक्षिणैः ।  
 न ज्वाश्वमेधैर्बहुभिः फलं सममिदं तव ॥ ७८  
 सक्तुप्रस्थेन हि जितो ब्रह्मलोकस्त्वयानघ ।  
 विरजो ब्रह्मभवनं गच्छ विप्र यथेच्छकम् ॥ ७९  
 सर्वेषां वो द्विजश्रेष्ठ दिव्यं यानमुपस्थितम् ।  
 आरोहत यथाकामं धर्मोऽस्मि द्विज पश्य माम् ॥  
 पावितो हि त्वया देहो लोके कीर्तिः स्थिरा च ते ।  
 सभार्यः सहपुत्रश्च सस्तुषश्च दिवं व्रज ॥ ८१  
 इत्युक्त्वाक्यो धर्मेण यानमारुह्य स द्विजः ।

सभार्यः ससुतश्चापि सस्तुषश्च दिवं ययौ ॥ ८२  
 तस्मिन्विप्रे गते स्वर्गं ससुते सस्तुपे तदा ।  
 भार्याचतुर्थे धर्मज्ञे ततोऽहं निःसृतो विलात् ॥८३  
 ततस्तु सक्तुगन्धेन छेदेन सलिलस्य च ।  
 दिव्यपुष्पावमर्दाच्च साधोर्दानलवैश्च तैः ।  
 विप्रस्य तपसा तस्य शिरो मे काञ्चनीकृतम् ॥८४  
 तस्य सत्याभिसंधस्य सूक्ष्मदानेन चैव ह ।  
 शरीरार्धं च मे विप्राः शातकुम्भमयं कृतम् ।  
 पश्यतेदं सुविपुलं तपसा तस्य धीमतः ॥ ८५  
 कथमेवंविधं मे स्यादन्यत्पार्श्वमिति द्विजाः ।  
 तपोवनानि यज्ञांश्च दृष्टोऽभ्येभि पुनः पुनः ॥ ८६  
 यज्ञं त्वहमिमं श्रुत्वा कुरुराजस्य धीमतः ।  
 आशया परया प्राप्तो न चाह काञ्चनीकृतः ॥ ८७  
 ततो मयोक्तं तद्वाक्यं प्रहस्य द्विजसत्तमाः ।  
 सक्तुप्रस्थेन यज्ञोऽयं संमितो नेति सर्वथा ॥ ८८  
 सक्तुप्रस्थलवैस्तैर्हि तदाहं काञ्चनीकृतः ।  
 न हि यज्ञो महानेष सदृशस्तैर्मतो मम ॥ ८९

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्त्वा नकुलः सर्वान्यज्ञे द्विजवरांस्तदा ।  
 जगामादर्शन राजन्विप्रास्ते च ययुर्गृहान् ॥ ९०  
 एतत्ते सर्वमाख्यातं मया परपुरंजय ।  
 यदाश्चर्यमभूत्तस्मिन्वाजिमेधे महाक्रतौ ॥ ९१  
 न विस्मयस्ते नृपते यज्ञे कार्यः कथंचन ।  
 ऋषिकोटिसहस्राणि तपोभिर्ये दिवं गताः ॥ ९२  
 अद्रोहः सर्वभूतेषु संतोषः शीलमार्जवम् ।  
 तपो दमश्च सत्यं च दानं चेति समं मतम् ॥९३

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

९४

जनमेजय उवाच ।

यज्ञे सक्ता नृपतयस्तपःसक्ता महर्षयः ।  
 शान्तिव्यवसिता विप्राः शमो दम इति प्रभो ॥ १  
 तस्माद्यज्ञफलैस्तुल्यं न किञ्चिदिह विद्यते ।  
 इति मे वर्तते बुद्धिस्तथा चैतदसंशयम् ॥ २  
 यज्ञैरिद्धा हि बहवो राजानो द्विजसत्तम ।  
 इह कीर्तिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमितो गताः ॥ ३  
 देवराजः सहस्राक्षः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।  
 देवराज्यं महातेजाः प्राप्तवानखिलं विभुः ॥ ४  
 यथा युधिष्ठिरो राजा भीमार्जुनपुरःसरः ।  
 सदृशो देवराजेन समृद्ध्या विक्रमेण च ॥ ५  
 अथ कस्मात्स नकुलो गर्हयामास तं क्रतुम् ।  
 अश्वमेधं महायज्ञं राज्ञस्तस्य महात्मनः ॥ ६

वैशंपायन उवाच ।

यज्ञस्य विधिमग्र्यं वै फलं चैव नरर्षभ ।  
 गदतः शृणु मे राजन्यथावदिह भारत ॥ ७  
 पुरा शक्रस्य यजतः सर्व ऊचुर्महर्षयः ।  
 ऋत्विक्षु कर्मव्यग्रेषु वितते यज्ञकर्मणि ॥ ८  
 हूयमाने तथा वह्नौ होत्रे बहुगुणान्विते ।  
 देवेष्वाहूयमानेषु स्थितेषु परमर्षिषु ॥ ९  
 सुप्रतीतैस्तदा विप्रैः स्वागमैः सुखनैर्नृप ।  
 अश्रान्तैश्चापि लघुभिरध्वर्युवृषभैस्तथा ॥ १०  
 आलम्भसमये तस्मिन्गृहीतेषु पशुष्वथ ।  
 महर्षयो महाराज संबभूवुः कृपान्विताः ॥ ११  
 ततो दीनान्पशून् दृष्ट्वा ऋषयस्त्रे तपोधनाः ।  
 ऊचुः शक्रं समागम्य नायं यज्ञविधिः शुभः ॥ १२  
 अपविज्ञानमेतत्ते महान्तं धर्ममिच्छतः ।  
 न हि यज्ञे पशुगणा विधिदृष्टाः पुरंदर ॥ १३  
 धर्मोपघातकस्त्वेष समारम्भस्तव प्रभो ।

नायं धर्मकृतो धर्मो न हिंसा धर्म उच्यते ॥ १४  
 आगमेनैव ते यज्ञं कुर्वन्तु यदि हेच्छसि ।  
 विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मस्ते सुमहान्भवेत् ॥ १५  
 यज बीजैः सहस्राक्ष त्रिवर्षपरमोषितैः ।  
 एष धर्मो महाञ्जक चिन्त्यमानोऽधिगम्यते ॥ १६  
 शतक्रतुस्तु तद्वाक्यमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।  
 उक्तं न प्रतिजग्राह मानमोहवशानुगः ॥ १७  
 तेषां विवादः सुमहाञ्जज्ञे शक्रमहर्षिणाम् ।  
 जङ्गमैः स्थावरैर्वपि यष्टव्यमिति भारत ॥ १८  
 ते तु खिन्ना विवादेन ऋषयस्तत्त्वदर्शिनः ।  
 ततः संधाय शक्रेण पप्रच्छुर्नृपतिं वसुम् ॥ १९  
 महाभाग कथं यज्ञेष्वगमो नृपते स्मृतः ।  
 यष्टव्यं पशुभिर्मध्येरथो बीजैरैरपि ॥ २०  
 तच्छ्रुत्वा तु वचस्तेषामविचार्य बलाबलम् ।  
 यथोपनीतैर्यष्टव्यमिति प्रोवाच पार्थिवः ॥ २१  
 एवमुक्त्वा स नृपतिः प्रविवेश रसातलम् ।  
 उक्त्वेह वितथं राजंश्चेदीनामीश्वरः प्रभुः ॥ २२  
 अन्यायोपगतं द्रव्यमतीतं यो ह्यपण्डितः ।  
 धर्माभिकाङ्क्षी यजते न धर्मफलमश्नुते ॥ २३  
 धर्मवैतंसिको यस्तु पापात्मा पुरुषस्तथा ।  
 ददाति दानं विप्रेभ्यो लोकविश्वासकारकम् ॥ २४  
 पापेन कर्मणा विप्रो धनं लब्ध्वा निरङ्कुशः ।  
 रागमोहान्वितः सोऽन्ते कलुषां गतिमाप्नुते ॥ २५  
 तेन दत्तानि दानानि पापेन हतबुद्धिना ।  
 तानि सत्त्वमनासाद्य नश्यन्ति विपुलान्यपि ॥ २६  
 तस्याधर्मप्रवृत्तस्य हिंसकस्य दुरात्मनः ।  
 दाने न कीर्तिर्भवति प्रेत्य चेह च दुर्मतेः ॥ २७  
 अपि संचयबुद्धिर्हि लोभमोहवशगतः ।  
 उद्वेजयति भूतानि हिंसया पापचेतनः ॥ २८  
 एवं लब्ध्वा धनं लोभाद्यजते यो ददाति च ।

स कृत्वा कर्मणा तेन न सिध्यति दुरागमात् ॥ २९  
 उञ्छं मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः ।  
 दानं विभवतो दत्त्वा नराः स्वयान्ति धर्मिणः ॥ ३०  
 एष धर्मो महांस्त्यागो दानं भूतदया तथा ।  
 ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशो धृतिः क्षमा ।  
 सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत्सनातनम् ॥ ३१  
 श्रूयन्ते हि पुरा विप्रा विश्वामित्रादयो नृपाः ।  
 विश्वामित्रोऽसितश्चैव जनकश्च महीपतिः ।  
 कक्षसेनाष्टिषेणौ च सिन्धुद्वीपश्च पार्थिवः ॥ ३२  
 एते चान्ये च बहवः सिद्धिं परमिकां गताः ।  
 नृपाः सत्यैश्च दानैश्च न्यायलब्धैस्तपोधनाः ॥ ३३  
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये चाश्रितास्तपः ।  
 दानधर्माग्निना शुद्धास्ते स्वर्गं यान्ति भारत ॥ ३४

इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

९५

जनमेजय उवाच ।

धर्मागतेन त्यागेन भगवन्सर्वमस्ति चेत् ।  
 एतन्मे सर्वमाचक्ष्व कुशलो ह्यसि भाषितुम् ॥ १  
 ततोऽच्छवृत्तेर्यद्वृत्तं सक्तुदाने फलं महत् ।  
 कथितं मे महद्ब्रह्मंस्तध्यमेतदसंशयम् ॥ २  
 कथं हि सर्वयज्ञेषु निश्चयः परमो भवेत् ।  
 एतदर्हसि मे वक्तुं निखिलेन द्विजर्षभ ॥ ३

वैशंपायन उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 अगस्त्यस्य महायज्ञे पुरावृत्तमरिदम् ॥ ४  
 पुरागस्त्यो महातेजा दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ।  
 प्रविवेश महाराज सर्वभूतहिते रतः ॥ ५  
 तत्राग्निकल्पा होतार आसन्सत्रे महात्मनः ।  
 मूलाहारा निराहाराः साश्मकुट्टा मरीचिपाः ॥ ६

परिघृष्टिका वैघसिकाः संप्रक्षालास्तथैव च ।  
 यतयो भिक्षवश्चात्र बभूवुः पर्यवस्थिताः ॥ ७  
 सर्वे प्रत्यक्षधर्माणो जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।  
 दमे स्थिताश्च ते सर्वे दम्भमोहविवर्जिताः ॥ ८  
 वृत्ते शुद्धे स्थिता नित्यमिन्द्रियैश्चाप्यवाहिताः ।  
 उपासते स्म तं यज्ञं भुञ्जानास्ते महर्षयः ॥ ९  
 यथाशक्त्या भगवता तदन्नं समुपार्जितम् ।  
 तस्मिन्सत्रे तु यत्किञ्चिदयोग्यं तत्र नाभवत् ।  
 तथा ह्यनेकैर्मुनिभिर्महान्तः क्रतवः कृताः ॥ १०  
 एवविधेस्त्वगस्त्यस्य वर्तमाने महाध्वरे ।  
 न ववर्ष सहस्राक्षस्तदा भरतसत्तम ॥ ११  
 ततः कर्मान्तरे राजन्नगस्त्यस्य महात्मनः ।  
 कथेयमभिनिर्वृत्ता मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ १२  
 अगस्त्यो यजमानोऽसौ दद्यान्नं विमत्सरः ।  
 न च वर्षति पर्जन्यः कथमन्नं भविष्यति ॥ १३  
 सत्रं चेदं महद्विप्रा मुनेर्द्वादशवार्षिकम् ।  
 न वर्षिष्यति देवश्च वर्षाण्येतानि द्वादश ॥ १४  
 एतद्भवन्तः सचिन्त्य महर्षेःस्य धीमतः ।  
 अगस्त्यस्यातितपसः कर्तुमर्हन्त्यनुग्रहम् ॥ १५  
 इत्येवमुक्ते वचने ततोऽगस्त्यः प्रतापवान् ।  
 प्रोवाचेदं वचो वाग्मी प्रसाद्य शिरसा मुनीन् ॥  
 यदि द्वादशवर्षाणि न वर्षिष्यति वासवः ।  
 चिन्तायज्ञं करिष्यामि विधिरेष सनातनः ॥ १७  
 यदि द्वादशवर्षाणि न वर्षिष्यति वासवः ।  
 व्यायामेनाहरिष्यामि यज्ञानन्यानतिव्रतान् ॥ १८  
 बीजयज्ञो मयायं वै बहुवर्षसमाचितः ।  
 बीजैः कृतैः करिष्ये च नात्र विघ्नो भविष्यति ॥  
 नेदं शक्यं वृथा कर्तुं मम सत्रं कथंचन ।  
 वर्षिष्यतीह वा देवो न वा देवो भविष्यति ॥ २०  
 अथ वाभ्यर्थनामिन्द्रः कुर्यान्न त्विह कामतः ।

स्वयमिन्द्रो भविष्यामि जीवयिष्यामि च प्रजाः ॥  
 यो यदाहारजातश्च स तथैव भविष्यति ।  
 विशेषं चैव कर्तास्मि पुनः पुनरतीव हि ॥ २२  
 अद्येह स्वर्णमभ्येतु यच्चान्यद्वसु दुर्लभम् ।  
 त्रिषु लोकेषु यच्चास्ति तदिहागच्छतां स्वयम् ॥ २३  
 दिव्याश्चाप्सरसां संघाः सगन्धर्वाः सकिनराः ।  
 विश्वावसुश्च ये चान्ये तेऽप्युपासन्तु वः सदा ॥  
 उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्च यत्किञ्चिद्वसु विद्यते ।  
 सर्वं तदिह यज्ञे मे स्वयमेवोपतिष्ठतु ।  
 स्वर्गं स्वर्गसदश्चैव धर्मश्च स्वयमेव तु ॥ २५  
 इत्युक्ते सर्वमेवैतदभवत्तस्य धीमतः ।  
 ततस्ते मुनयो दृष्ट्वा मुनेस्तस्य तपोबलम् ।  
 विस्मिता वचनं प्रादुरिदं सर्वे महार्थवत् ॥ २६  
 प्रीताः स्म तव वाक्येन न त्विच्छामस्तपोव्ययम् ।  
 स्वैरेव यज्ञैस्तुष्टाः स्मो न्यायेनेच्छामहे वयम् ॥ २७  
 यज्ञान्दीक्षास्तथा होमान्यच्चान्यन्मृगयामहे ।  
 तन्नोऽस्तु स्वकृतैर्यज्ञैर्नान्यतो मृगयामहे ॥ २८  
 न्यायेनोपार्जिताहाराः स्वकर्मनिरता वयम् ।  
 वेदांश्च ब्रह्मचर्येण न्यायतः प्रार्थयामहे ॥ २९  
 न्यायेनोत्तरकालं च गृहेभ्यो निःसृता वयम् ।  
 धर्मदृष्टैर्विधिद्वारैस्तपस्तप्यामहे वयम् ॥ ३०  
 भवतः सम्यगेषां हि बुद्धिर्हिंसाविवर्जिता ।  
 एतामहिंसां यज्ञेषु ब्रूयास्त्वं सततं प्रभो ॥ ३१  
 प्रीतास्ततो भविष्यामो वयं द्विजवरोत्तम ।  
 विसर्जिताः समाप्तौ च सत्रादस्माद्भ्रजामहे ॥ ३२

वैशंपायन उवाच ।

तथा कथयतामेव देवराजः पुरंदरः ।  
 ववर्ष सुमहातेजा दृष्ट्वा तस्य तपोबलम् ॥ ३३  
 असमाप्तौ च यज्ञस्य तस्यामितपराक्रमः ।  
 निकामवर्षी देवेन्द्रो बभूव जनमेजय ॥ ३४

प्रसादयामास च तमगस्त्यं त्रिदशेश्वरः ।  
 स्वयमभ्येत्य राजर्षे पुरस्कृत्य बृहस्पतिम् ॥ ३५  
 ततो यज्ञसमाप्तौ तान्विससर्ज महामुनीन् ।  
 अगस्त्यः परमप्रीतः पूजयित्वा यथाविधि ॥ ३६  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि

पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

९६

जनमेजय उवाच ।

कोऽसौ नकुलरूपेण शिरसा काञ्चनेन वै ।  
 प्राह मानुषवद्वाचमेतत्पृष्ठो वदस्व मे ॥ १

वैशंपायन उवाच ।

एतत्पूर्वं न पृष्ठोऽहं न चास्माभिः प्रभाषितम् ।  
 श्रूयतां नकुलो योऽसौ यथा वागस्य मानुषी ॥ २  
 श्राद्धं संकल्पयामास जमदग्निः पुरा किल ।  
 होमधेनुस्तमागाच्च स्वयं चापि दुद्रोहं ताम् ॥ ३  
 तत्क्षीरं स्थापयामास नवे भाण्डे दृढे शुचौ ।  
 तच्च क्रोधः स्वरूपेण पिठरं पर्यवर्तयत् ॥ ४  
 जिज्ञासुस्तमृषिश्रेष्ठं किं कुर्याद्विप्रिये कृते ।  
 इति संचिन्त्य दुर्मेधा धर्षयामास तत्पयः ॥ ५  
 तमाज्ञाय मुनिः क्रोधं नैवास्य चुकुपे ततः ।  
 स तु क्रोधस्तमाहेदं प्राञ्जलिर्भूर्तिमास्थितः ॥ ६  
 जितोऽस्मीति भृगुश्रेष्ठ भृगवो ह्यतिरोषणाः ।  
 लोके मिथ्याप्रवादोऽयं यत्त्वयास्मि पराजितः ॥ ७  
 सोऽहं त्वयि स्थितो ह्यद्य क्षमावति महात्मनि ।  
 विभेमि तपसः साधो प्रसादं कुरु मे विभो ॥ ८

जमदग्निरुवाच ।

साक्षादृष्टोऽसि मे क्रोध गच्छ त्वं विगतज्वरः ।  
 न ममापकृतं तेऽद्य न मन्युर्विद्यते मम ॥ ९  
 यानुद्दिश्य तु संकल्पः पयसोऽस्य कृतो मया ।



पितरस्ते महाभागास्तेभ्यो ब्रुध्यस्व गम्यताम् ॥१०  
 इत्युक्तो जातसंत्रासः स तत्रान्तरधीयत ।  
 पितॄणामभिषङ्गात् नकुलत्वमुपागतः ॥ ११  
 स तान्प्रसादयामास शापस्यान्तो भवेदिति ।  
 तैश्चाप्युक्तो यदा धर्मं क्षेप्यसे मोक्ष्यसे तदा ॥  
 तैश्चोक्तो यज्ञियान्देशान्धर्मरिण्यानि चैव ह ।  
 जुगुप्सन्परिधावन्स यज्ञं तं समुपासदत् ॥ १३

धर्मपुत्रमथाक्षिप्य सक्तुप्रस्थेन तेन सः ।  
 मुक्तः शापात्ततः क्रोधो धर्मो ह्यासीद्युधिष्ठिरः ॥१४  
 एवमेवत्तदा वृत्तं तस्य यज्ञे महात्मनः ।  
 पश्यतां चापि नस्तत्र नकुलोऽन्तर्हितस्तदा ॥ १५  
 इति श्रीमहाभारते आश्वमेधिकपर्वणि  
 षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ १६ ॥

आश्वमेधिकपर्व समाप्तम् ।

## आश्रमवासिकपर्व

१

जनमेजय उवाच ।

प्राप्य राज्यं महाभागाः पाण्डवा मे पितामहाः ।  
कथमासन्महाराजे धृतराष्ट्रे महात्मनि ॥ १  
स हि राजा हतामात्यो हतपुत्रो निराश्रयः ।  
कथमासीद्वैश्वर्यो गान्धारी च यशस्विनी ॥ २  
क्रियन्तं चैव कालं ते पितरो मम पूर्वकाः ।  
स्थिता राज्ये महात्मानस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३

वैशंपायन उवाच ।

प्राप्य राज्यं महात्मानः पाण्डवा हतशत्रवः ।  
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य पृथिवीं पर्यपालयन् ॥ ४  
धृतराष्ट्रमुपातिष्ठद्विदुरः संजयस्तथा ।  
युयुत्सुश्चापि मेधावी वैश्यापुत्रः स कौरवः ॥ ५  
पाण्डवाः सर्वकार्याणि संपृच्छन्ति स्म तं नृपम् ।  
चक्रुस्तेनाभ्यनुज्ञाता वर्षाणि दश पञ्च च ॥ ६  
सदा हि गत्वा ते वीराः पर्युपासन्त तं नृपम् ।  
पादाभिवन्दनं कृत्वा धर्मराजमते स्थिताः ।  
ते मूर्ध्नि समुपाघ्राताः सर्वकार्याणि चक्रिरे ॥ ७  
कुन्तिभोजसुता चैव गान्धारीमन्ववर्तत ।  
द्रौपदी च सुभद्रा च याश्चान्याः पाण्डवस्त्रियः ।  
समां वृत्तिमवर्तन्त तयोः श्वश्र्वोर्यथाविधि ॥ ८  
शयनानि महार्हाणि वासांस्याभरणानि च ।  
राजार्हाणि च सर्वाणि भक्ष्यभोज्यान्यनेकशः ।

युधिष्ठिरो महाराज धृतराष्ट्रेऽभ्युपाहरत् ॥ ९  
तथैव कुन्ती गान्धार्या गुरुवृत्तिमवर्तत ।  
विदुरः संजयश्चैव युयुत्सुश्चैव कौरवः ।  
उपासते स्म तं वृद्धं हतपुत्रं जनाधिपम् ॥ १०  
स्यालो द्रोणस्य यश्चैको दयितो ब्राह्मणो महान् ।  
स च तस्मिन्महेष्वासः कृपः समभवत्तदा ॥ ११  
व्यासश्च भगवान्त्रितयं वासं चक्रे नृपेण ह ।  
कथाः कुर्वन्पुराणर्षिर्देवर्षिनृपरक्षसाम् ॥ १२  
धर्मयुक्तानि कार्याणि व्यवहारान्वितानि च ।  
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातो विदुरस्तान्यकारयत् ॥ १३  
सामन्तेभ्यः प्रियाण्यस्य कार्याणि सुगुरुण्यपि ।  
प्राप्यन्तेऽर्थैः सुलघुभिः प्रभावाद्विदुरस्य वै ॥ १४  
अकरोद्वन्धमोक्षांश्च बन्धानां मोक्षणं तथा ।  
न च धर्मात्मजो राजा कदाचित्किञ्चिदब्रवीत् ॥ १५  
विहारयात्रासु पुनः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।  
सर्वान्कामान्महातेजाः प्रददावम्बिकासुते ॥ १६  
आरालिकाः सूपकारा रागखाण्डविकास्तथा ।  
उपातिष्ठन्त राजानं धृतराष्ट्रं यथा पुरा ॥ १७  
वासांसि च महार्हाणि माल्यानि विविधानि च ।  
उपाजहुर्यथान्यायं धृतराष्ट्रस्य पाण्डवाः ॥ १८  
मैरेयं मधु मांसानि पानकानि लघूनि च ।  
चित्रान्भक्ष्यविकारांश्च चक्रुरस्य यथा पुरा ॥ १९  
ये चापि पृथिवीपालाः समाजग्मुः समन्ततः ।

उपातिष्ठन्त ते सर्वे कौरवेन्द्रं यथा पुरा ॥ २०  
कुन्ती च द्रौपदी चैव सात्वती चैव भामिनी ।  
उलूपी नागकन्या च देवी चित्राङ्गदा तथा ॥ २१  
धृष्टकेतोश्च भगिनी जरासंधस्य चात्मजा ।  
किंकराः स्मोपतिष्ठन्ति सर्वाः सुबलजां तथा ॥ २२  
यथा पुत्रवियुक्तोऽयं न किञ्चिद्दुःखमाप्नुयात् ।  
इति राजान्वशाद्भ्रातृन्नित्यमेव युधिष्ठिरः ॥ २३  
एवं ते धर्मराजस्य श्रुत्वा वचनमर्थवत् ।  
सविशेषमवर्तन्त भीममेकं विना तदा ॥ २४  
न हि तत्तस्य वीरस्य हृदयादपसर्पति ।  
धृतराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्यद्भुतं द्यूतकारितम् ॥ २५  
इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

वैशंपायन उवाच ।

एवं संपूजितो राजा पाण्डवैरम्बिकासुतः ।  
विजहार यथापूर्वमृषिभिः पर्युपासितः ॥ १  
ब्रह्मदेयाग्रहारांश्च प्रददौ स कुरुद्वहः ।  
तच्च कुन्तीसुतो राजा सर्वमेवान्वमोदत ॥ २  
आनृण्यस्यपरो राजा प्रीयमाणो युधिष्ठिरः ।  
उवाच स तदा भ्रातृनमात्यांश्च महीपतिः ॥ ३  
मया चैव भवद्भिश्च मान्य एष नराधिपः ।  
निदेशे धृतराष्ट्रस्य यः स्थास्यति स मे सुहृत् ।  
विपरीतश्च मे शत्रुर्निरस्यश्च भवेन्नरः ॥ ४  
परिदृष्टेषु चाहःसु पुत्राणां श्राद्धकर्मणि ।  
ददातु राजा सर्वेषां यावदस्य चिकीर्षितम् ॥ ५  
ततः स राजा कौरव्यो धृतराष्ट्रो महामनाः ।  
ब्राह्मणेभ्यो महार्हेभ्यो ददौ वित्तान्यनेकशः ॥ ६  
धर्मराजश्च भीमश्च सव्यसाची यमावपि ।  
तत्सर्वमन्ववर्तन्त धृतराष्ट्रव्यपेक्षया ॥ ७

कथं नु राजा वृद्धः सन्पुत्रशोकसमाहतः ।  
शोकमस्मत्कृतं प्राप्य न म्रियेतेति चिन्त्यते ॥ ८  
यावद्धि कुरुमुख्यस्य जीवत्पुत्रस्य वै सुखम् ।  
वभूव तदवाप्नोतु भोगांश्चेति व्यवस्थिताः ॥ ९  
ततस्ते सहिताः सर्वे भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः ।  
तथाशीलाः समातस्थुर्धृतराष्ट्रस्य शासने ॥ १०  
धृतराष्ट्रश्च तान्वीरान्विनीतान्विनये स्थितान् ।  
शिष्यवृत्तौ स्थितान्नित्यं गुरुवत्पर्यपश्यत ॥ ११  
गान्धारी चैव पुत्राणां विविधैः श्राद्धकर्मभिः ।  
आनृण्यमगमत्कामान्विप्रेभ्यः प्रतिपाद्य वै ॥ १२  
एवं धर्मभृतां श्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।  
भ्रातृभिः सहितो धीमान्पूजयामास तं नृपम् ॥ १३

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

३

वैशंपायन उवाच ।

स राजा सुमहातेजा वृद्धः कुरुकुलोद्वहः ।  
नापश्यत तदा किञ्चिदप्रियं पाण्डुनन्दने ॥ १  
वर्तमानेषु सद्भृत्तिं पाण्डवेषु महात्मसु ।  
प्रीतिमानभवद्राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ २  
सौबलेयी च गान्धारी पुत्रशोकमपास्य तम् ।  
सदैव प्रीतिमत्यासीत्तनयेषु निजेष्विव ॥ ३  
प्रियाण्येव तु कौरव्यो नाप्रियाणि कुरुद्वह ।  
वैचित्रवीर्ये नृपतौ समाचरति नित्यदा ॥ ४  
यद्यद्भूते च किञ्चित्स धृतराष्ट्रो नराधिपः ।  
गुरु वा लघु वा कार्यं गान्धारी च यशस्विनी ॥ ५  
तत्स राजा महाराज पाण्डवानां धुरंधरः ।  
पूजयित्वा वचस्तत्तदकार्षीत्परवीरहा ॥ ६  
तेन तस्याभवत्प्रीतो वृत्तेन स नराधिपः ।  
अन्वतप्यच्च संस्मृत्य पुत्रं मन्दमचेतसम् ॥ ७

सदा च प्रातरुत्थाय कृतजप्यः शुचिर्नृपः ।  
 आशास्ते पाण्डुपुत्राणां समरेष्वपराजयम् ॥ ८  
 ब्राह्मणान्वाचयित्वा च ह्रत्वा चैव हुताशनम् ।  
 आयुष्यं पाण्डुपुत्राणामाशास्ते स नराधिपः ॥ ९  
 न तां प्रीतिं परामाप पुत्रेभ्यः स महीपतिः ।  
 यां प्रीतिं पाण्डुपुत्रेभ्यः समवाप तदा नृपः ॥ १०  
 ब्राह्मणानां च वृद्धानां क्षत्रियाणां च भारत ।  
 तथा विट्शूद्रसंघानामभवत्सुप्रियस्तदा ॥ ११  
 यच्च किंचित्पुरा पापं धृतराष्ट्रसुतैः कृतम् ।  
 अकृत्वा हृदि तद्राजा तं नृपं सोऽन्ववर्तत ॥ १२  
 यश्च कश्चिन्नरः किंचिदप्रियं चाम्बिकासुते ।  
 कुरुते द्वेष्ट्यतामेति स कौन्तेयस्य धीमतः ॥ १३  
 न राज्ञो धृतराष्ट्रस्य न च दुर्योधनस्य वै ।  
 उवाच दुष्कृतं किंचिद्युधिष्ठिरभयान्नरः ॥ १४  
 धृत्या तुष्टो नरेन्द्रस्य गान्धारी विदुरस्तथा ।  
 शौचेन चाजातशत्रोर्न तु भीमस्य शत्रुहन् ॥ १५  
 अन्ववर्तत मीमोऽपि निष्ठनन्धर्मजं नृपम् ।  
 धृतराष्ट्रं च संप्रेक्ष्य सदा भवति दुर्मनाः ॥ १६  
 राजानमनुवर्तन्तं धर्मपुत्रं महामतिम् ।  
 अन्ववर्तत कौरव्यो हृदयेन पराङ्मुखः ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

वैशंपायन उवाच ।

युधिष्ठिरस्य नृपतेर्दुर्योधनपितुस्तथा ।  
 नान्तरं ददृशू राजन्पुरुषाः प्रणयं प्रति ॥ १  
 यदा तु कौरवो राजा पुत्रं सस्मार बालिशम् ।  
 तदा भीमं हृदा राजन्नपभ्याति स पार्थिवः ॥ २  
 तथैव भीमसेनोऽपि धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ।  
 नामर्षयत राजेन्द्र सदैवातुष्टवद्भृदा ॥ ३

अप्रकाशान्यप्रियाणि चकारास्य वृकोदरः ।  
 आज्ञां प्रत्यहरन्नापि कृतकैः पुरुषैः सदा ॥ ४  
 अथ भीमः सुहृन्मध्ये बाहुशब्दं तथाकरोत् ।  
 संश्रवे धृतराष्ट्रस्य गान्धार्याश्चाप्यमर्षणः ॥ ५  
 स्मृत्वा दुर्योधनं शत्रुं कर्णदुःशासनावपि ।  
 प्रोवाचाथ सुसरब्धो भीमः स परुषं वचः ॥ ६  
 अन्धस्य नृपतेः पुत्रा मया परिघबाहुना ।  
 नीतालोकममुं सर्वे नानाशस्त्रात्तजीविताः ॥ ७  
 इमौ तौ परिघप्रख्यौ भुजौ मम दुरासदौ ।  
 ययोरन्तरमासाद्य धार्तराष्ट्राः क्षयं गताः ॥ ८  
 ताविमौ चन्दनेनाक्तौ बन्दनीयौ च मे भुजौ ।  
 याभ्यां दुर्योधनो नीतः क्षयं ससुतबान्धवः ॥ ९  
 एताश्चान्याश्च विविधाः शल्यभूता जनाधिपः ।  
 वृकोदरस्य ता वाचः श्रुत्वा निर्वेदमागमत् ॥ १०  
 सा च बुद्धिमती देवी कालपर्यायवेदिनी ।  
 गान्धारी सर्वधर्मज्ञा तान्यलीकानि शुश्रुवे ॥ ११  
 ततः पञ्चदशे वर्षे समतीते नराधिपः ।  
 राजा निर्वेदमापेदे भीमवाग्बाणपीडितः ॥ १२  
 नान्वबुध्यत तद्राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।  
 श्वेताश्वो वाथ कुन्ती वा द्रौपदी वा यशस्विनी ॥  
 माद्रीपुत्रौ च भीमस्य चित्तज्ञाबन्धमोदताम् ।  
 राज्ञस्तु चित्तं रक्षन्तौ नोचतुः किंचिदप्रियम् ॥ १४  
 ततः समानयामास धृतराष्ट्रः सुहृज्जनम् ।  
 बाष्पसंदिग्धमत्यर्थमिदमाह वचो भृशम् ॥ १५

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

५

धृतराष्ट्र उवाच ।

विदितं भवतामेतद्यथा वृत्तः कुरुक्षयः ।  
 ममापराधात्तत्सर्वमिति ज्ञेयं तु कौरवाः ॥ १

योऽहं दुष्टमति मूढं ज्ञातीनां भयवर्धनम् ।  
 दुर्योधनं कौरवाणामाधिपत्येऽभ्यषेचयम् ॥ २  
 यच्चाह वासुदेवस्य वाक्यं नाश्रौपमर्थवत् ।  
 वध्यतां साध्वयं पापः सामात्य इति दुर्मतिः ॥ ३  
 पुत्रस्नेहाभिभूतश्च हितमुक्तो मनीषिभिः ।  
 विदुरेणाथ भीष्मेण द्रोणेन च कृपेण च ॥ ४  
 पदे पदे भगवता व्यासेन च महात्मना ।  
 संजयेनाथ गान्धार्या तदिदं तप्यतेऽद्य माम् ॥ ५  
 यच्चाहं पाण्डुपुत्रेण गुणवत्सु महात्मसु ।  
 न दत्तवाञ्छितं दीप्तां पितृपैतामहीमिमाम् ॥ ६  
 विनाशं पश्यमानो हि सर्वराज्ञां गदाग्रजः ।  
 एतच्छ्रेयः स परममन्यत जनार्दनः ॥ ७  
 सोऽहमेतान्यलीकानि निवृत्तान्यात्मनः सदा ।  
 हृदये शल्यभूतानि धारयामि सहस्रशः ॥ ८  
 विशेषतस्तु दह्यामि वर्षं पञ्चदशं हि वै ।  
 अस्य पापस्य शुद्ध्यर्थं नियतोऽस्मि सुदुर्मतिः ॥ ९  
 चतुर्थे नियते काले कदाचिदपि चाष्टमे ।  
 तृष्णाविनयनं भुञ्जे गान्धारी वेद तन्मम ॥ १०  
 करोत्याहारमिति मां सर्वः परिजनः सदा ।  
 युधिष्ठिरभयाद्वेत्ति भृशं तप्यति पाण्डवः ॥ ११  
 भूमौ शये जप्यपरो दर्भेष्वजिनसंवृतः ।  
 नियमव्यपदेशेन गान्धारी च यशस्विनी ॥ १२  
 हतं पुत्रशतं शूरं संग्रामेष्वपलायिनम् ।  
 नानुतप्यामि तच्चाहं क्षत्रधर्मं हि तं विदुः ।  
 इत्युक्त्वा धर्मराजानमभ्यभाषत कौरवः ॥ १३  
 भद्रं ते यादवीमातर्वाक्यं चेदं निबोध मे ।  
 सुखमस्म्युषितः पुत्र त्वया सुपरिपालितः ॥ १४  
 महादानानि दत्तानि श्राद्धानि च पुनः पुनः ।  
 प्रकृष्टं मे वयः पुत्र पुण्यं चीर्णं यथाबलम् ।  
 गान्धारी हतपुत्रेयं धैर्येणोदीक्षते च माम् ॥ १५

द्रौपद्या ह्यपकर्तारस्तत्र चैश्वर्यहारिणः ।  
 समतीता नृशसास्ते धर्मेण निहता युधि ॥ १६  
 न तेषु प्रतिकर्तव्यं पश्यामि कुरुनन्दन ।  
 सर्वे शस्त्रजिताल्लोकान्गान्तास्तेऽभिमुखं उताः ॥ १७  
 आत्मनस्तु हितं मुख्यं प्रतिकर्तव्यमद्य मे ।  
 गान्धार्याश्चैव राजेन्द्र तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ १८  
 त्वं हि धर्मभृतां श्रेष्ठः सततं धर्मवत्सलः ।  
 राजा गुरुः प्राणभृतां तस्मादेतद्वीर्यमहम् ॥ १९  
 अनुज्ञातस्त्वया वीर संश्रयेयं वनान्यहम् ।  
 चीरवल्कलभृद्वाजन्गान्धार्या सहितोऽनया ।  
 तवाशिषः प्रयुञ्जानो भविष्यामि वनेचरः ॥ २०  
 उचितं नः कुले तात सर्वेषां भरतर्षभ ।  
 पुत्रेष्वैश्वर्यमाधाय वयसोऽन्ते वनं नृप ॥ २१  
 तत्राहं वायुभक्षो वा निराहारोऽपि वा वसन् ।  
 पत्न्या सहानया वीर चरिष्यामि तपः परम ॥ २२  
 त्वं चापि फलभाक्तात तपसः पार्थिवो ह्यसि ।  
 फलभाजो हि राजानः कल्याणस्येतरस्य वा ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

युधिष्ठिर उवाच ।

न मां प्रीणयते राज्यं त्वय्येवं दुःखिते नृप ।  
 धिब्धामस्तु सुदुर्बुद्धिं राज्यसक्तं प्रमादिनम् ॥ १  
 योऽहं भवन्तं दुःखार्तमुपवासकृशं नृप ।  
 यताहारं क्षितिशयं नाविन्दं भ्रातृभिः सह ॥ २  
 अहोऽस्मि वञ्चितो मूढो भवता गूढबुद्धिना ।  
 विश्वासयित्वा पूर्वं मां यदिदं दुःखमश्रुथाः ॥ ३  
 किं मे राज्येन भोगैर्वा किं यज्ञैः किं सुखेन वा ।  
 यस्य मे त्व महीपाल दुःखान्येतान्यवाप्तवान् ॥ ४  
 पीडितं चापि जानामि राज्यमात्मानमेव च ।

अनेन वचसा तुभ्यं दुःखितस्य जनेश्वर ॥ ५  
 भवान्पिता भवान्माता भवान्नः परमो गुरुः ।  
 भवता विप्रहीणा हि क नु तिष्ठामहे वयम् ॥ ६  
 औरसो भवतः पुत्रो युयुत्सुर्नृपसत्तम ।  
 अस्तु राजा महाराज यं चान्यं मन्यते भवान् ॥ ७  
 अहं वनं गमिष्यामि भवान्राज्यं प्रशास्त्वित्त्वम् ।  
 न मामयशसा दग्धं भूयस्त्वं दग्धुमर्हसि ॥ ८  
 नाहं राजा भवान् राजा भवता परवानहम् ।  
 कथं गुरुं त्वां धर्मज्ञमनुज्ञातुमिहोत्सहे ॥ ९  
 न मन्युर्हृदि नः कश्चिदुर्योधनकृतेऽनघ ।  
 भवितव्यं तथा तद्धि वयं ते चैव मोहिताः ॥ १०  
 वयं हि पुत्रा भवतो यथा दुर्योधनादयः ।  
 गान्धारी चैव कुन्ती च निर्विशेषे मते मम ॥ ११  
 स मां त्वं यदि राजेन्द्र परित्यज्य गमिष्यसि ।  
 पृष्ठतस्त्वानुयास्यामि सत्येनात्मानमालभे ॥ १२  
 इयं हि वसुसंपूर्णा मही सागरमेखला ।  
 भवता विप्रहीणस्य न मे प्रीतिकरी भवेत् ॥ १३  
 भवदीयमिदं सर्वं शिरसा त्वां प्रसादये ।  
 त्वदधीनाः स्म राजेन्द्र व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥  
 भवितव्यमनुप्राप्तं मन्ये त्वां तज्जनाधिप ।  
 दिष्ट्या शुश्रूषमाणस्त्वां मोक्षयामि मनसो ज्वरम् ॥

धृतराष्ट्र उवाच ।

तापस्ये मे मनस्तात वर्तते कुरुनन्दन ।  
 उचितं हि कुलेऽस्माकमरण्यगमनं प्रभो ॥ १६  
 चिरमस्म्युषितः पुत्र चिरं शुश्रूषितस्त्वया ।  
 वृद्धं मामभ्यनुज्ञातुं त्वमर्हसि जनाधिप ॥ १७

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्त्वा धर्मराजानं वेपमानः कृताञ्जलिम् ।  
 उवाच वचनं राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ १८  
 संजयं च महामात्रं कृपं चापि महारथम् ।

अनुनेतुमिहेच्छामि भवद्भिः पृथिवीपतिम् ॥ १९  
 ग्लायते मे मनो हीदं मुखं च परिशुष्यति ।  
 वयसा च प्रकृष्टेन वाग्व्यायामेव चैव हि ॥ २०  
 इत्युक्त्वा स तु धर्मात्मा वृद्धो राजा कुरुद्वहः ।  
 गान्धारी शिश्रिये धीमान्सहसैव गतासुवत् ॥ २१  
 तं तु दृष्ट्वा तथासीनं निश्चेष्टं कुरुपार्थिवम् ।  
 आर्तिं राजा ययौ तूर्णं कौन्तेयः परवीरहा ॥ २२

युधिष्ठिर उवाच ।

यस्य नागसहस्रेण दशसंख्येन वै बलम् ।  
 सोऽयं नारीमुपाश्रित्य शेते राजा गतासुवत् ॥ २३  
 आयसी प्रतिमा येन भीमसेनस्य वै पुरा ।  
 चूर्णीकृता बलवता स बलार्थी श्रितः स्त्रियम् ॥  
 धिगस्तु मामधर्मज्ञं धिगबुद्धिं धिक्च मे श्रुतम् ।  
 यत्कृते पृथिवीपालः शेतेऽयमतथोचितः ॥ २५  
 अहमप्युपवत्स्यामि यथैवायं गुरुर्मम ।  
 यदि राजा न भुङ्क्तेऽयं गान्धारी च यशस्विनी ॥

वैशंपायन उवाच ।

ततोऽस्य पाणिना राजा जलशीतेन पाण्डवः ।  
 उरो मुखं च शनकैः पर्यमार्जित धर्मवित् ॥ २७  
 तेन रत्नौषधिमता पुण्येन च सुगन्धिना ।  
 पाणिस्पर्शेन राज्ञस्तु राजा संज्ञामवाप ह ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

७

धृतराष्ट्र उवाच ।

स्पृश मां पाणिना भूयः परिष्वज च पाण्डव ।  
 जीवामीव हि संस्पर्शान्त्वव राजीवलोचन ॥ १  
 मूर्धानं च तवाग्रातुमिच्छामि मनुजाधिप ।  
 पाणिभ्यां च परिस्पृष्टुं प्राणा हि न जह्नुर्मम ॥ २

अष्टमो ह्यद्य कालोऽयमाहारस्य कृतस्य मे ।  
 येनाहं कुरुशार्दूल न शक्नोमि विचेष्टितुम् ॥ ३  
 व्यायामश्चायमत्यर्थं कृतस्त्वामभियाचता ।  
 ततो ग्लानमनास्तात नष्टसङ्ग इवाभवम् ॥ ४  
 तवामृतसमस्पर्शं हस्तस्पर्शमिमं विभो ।  
 लब्ध्वा संजीवितोऽस्मीति मन्ये कुरुकुलोद्वह ॥ ५

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु कौन्तेयः पित्रा ज्येष्ठेन भारत ।  
 पस्पर्शं सर्वगात्रेषु सौहार्दात्तं शनैस्तदा ॥ ६  
 उपलभ्य ततः प्राणान्धृतराष्ट्रो महीपतिः ।  
 बाहुभ्यां संपरिष्वज्य मूर्ध्न्याजिघ्रत पाण्डवम् ॥ ७  
 विदुरादयश्च ते सर्वे रुरुदुर्दुःखिता भृशम् ।  
 अतिदुःखाच्च राजानं नोचुः किञ्चन पाण्डवाः ॥ ८  
 गान्धारी त्वेव धर्मज्ञा मनसोद्वहती भृशम् ।  
 दुःखान्यवारयद्वाजन्मैवमित्येव चाब्रवीत् ॥ ९  
 इतरास्तु स्त्रियः सर्वाः कुल्या सह सुदुःखिताः ।  
 नेत्रैरागतविह्वलैः परिवार्य स्थिताभवन् ॥ १०  
 अथाब्रवीत्पुनर्वाक्यं धृतराष्ट्रो युधिष्ठिरम् ।  
 अनुजानीहि मां राजंस्तापस्ये भरतर्षभ ॥ ११  
 ग्लायते मे मनस्तात भूयो भूयः प्रजल्पतः ।  
 न मामतः परं पुत्रं परिक्षिप्तमिहार्हसि ॥ १२  
 तस्मिन्स्तु कौरवेन्द्रे तं तथा ब्रुवति पाण्डवम् ।  
 सर्वेषावमरोधानामार्तनादो महानभूत् ॥ १३  
 दृष्ट्वा कृशं विवर्णं च राजानमतथोचितम् ।  
 उपवासपरिश्रान्तं त्वगस्थिपरिवारितम् ॥ १४  
 धर्मपुत्रः स पितरं परिष्वज्य महाभुजः ।  
 शोकजं बाष्पमुत्सृज्य पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ १५  
 न कामये नरश्रेष्ठ जीवितं पृथिवीं तथा ।  
 यथा तव प्रियं राजंश्चिकीर्षामि परंतप ॥ १६  
 यदि त्वहमनुग्राहो भवतो दयितोऽपि वा ।

क्रियतां तावदाहारस्ततो वेत्स्यामहे वयम् ॥ १७  
 ततोऽब्रवीन्महातेजा धर्मपुत्रं स पार्थिवः ।  
 अनुज्ञातस्त्वया पुत्र भुङ्जीयामिति कामये ॥ १८  
 इति ब्रुवति राजेन्द्रे धृतराष्ट्रे युधिष्ठिरम् ।  
 ऋषिः सत्यवतीपुत्रो व्यासोऽभ्येत्य वचोऽब्रवीत् ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

८

व्यास उवाच ।

युधिष्ठिर महाबाहो यदाह कुरुनन्दनः ।  
 धृतराष्ट्रो महात्मा त्वां तत्कुरुष्वविचारयन् ॥ १  
 अयं हि वृद्धो नृपतिर्हृतपुत्रो विशेषतः ।  
 नेदं कृच्छ्रं चिरतरं सहेदिति मतिर्मम ॥ २  
 गान्धारी च महाभागा प्राज्ञा करुणवेदिनी ।  
 पुत्रशोक महाराज धैर्येणोद्वहते भृशम् ॥ ३  
 अहमप्येतदेव त्वां ब्रवीमि कुरु मे वचः ।  
 अनुज्ञां लभतां राजा मा वृथेह मरिष्यति ॥ ४  
 राजर्षीणां पुराणानामनुयातु गतिं नृपः ।  
 राजर्षीणां हि सर्वेषामन्ते वनमुपाश्रयः ॥ ५

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्तः स तदा राजा व्यासेनाद्भुतकर्मणा ।  
 प्रत्युवाच महातेजा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ६  
 भगवानेव नो मान्यो भगवानेव नो गुरुः ।  
 भगवानस्य राज्यस्य कुलस्य च परायणम् ॥ ७  
 अहं तु पुत्रो भगवान्पिता राजा गुरुश्च मे ।  
 निदेशवर्ती च पितुः पुत्रो भवति धर्मतः ॥ ८  
 इत्युक्तः स तु तं प्राह व्यासो धर्मभृतां वरः ।  
 युधिष्ठिरं महातेजाः पुनरेव विशां पते ॥ ९  
 एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।

राजायं वृद्धतां प्राप्तः प्रमाणे परमे स्थितः ॥ १०  
 सोऽयं मयाभ्यनुज्ञातस्त्वया च पृथिवीपते ।  
 करोतु स्वमभिप्रायं मास्य विघ्नकरो भव ॥ ११  
 एष एव परो धर्मो राजर्षीणां युधिष्ठिर ।  
 समरे वा भवेन्मृत्युर्वेने वा विधिपूर्वकम् ॥ १२  
 पित्रा तु तव राजेन्द्र पाण्डुना पृथिवीक्षिता ।  
 शिष्यभूतेन राजायं गुरुवत्पुत्रपासितः ॥ १३  
 ऋतुभिर्दक्षिणावद्विरत्नपर्वतशोभितैः ।  
 महद्भिरिष्टं भोगाश्च भुक्ताः पुत्राश्च पालिताः ॥ १४  
 पुत्रसंस्थं च विपुलं राज्यं विप्रोपिते त्वयि ।  
 त्रयोदशसमा भुक्तं दत्तं च विविधं वसु ॥ १५  
 त्वया चायं नरव्याघ्र गुरुश्रूषया नृपः ।  
 आराधितः सभृत्येन गान्धारी च यशस्विनी ॥ १६  
 अनुजानीहि पितरं समयोऽस्य तपोविधौ ।  
 न मन्युर्विद्यते चास्य सुसूक्ष्मोऽपि युधिष्ठिर ॥ १७  
 एतावदुक्त्वा वचनमनुज्ञाप्य च पार्थिवम् ।  
 तथास्त्विति च तेनोक्तः कौन्तेयेन ययौ वनम् ॥  
 गते भगवति व्यासे राजा पाण्डुमुतस्ततः ।  
 प्रोवाच पितरं वृद्धं मन्दं मन्दमिवानतः ॥ १९  
 यदाह भगवान्व्यासो यच्चापि भवतो मतम् ।  
 यदाह स महेश्वासः कृपो विदुर एव च ॥ २०  
 युयुत्सुः संजयश्चैव तत्कर्तास्म्यहमञ्जसा ।  
 सर्वे ह्येतेऽनुमान्या मे कुलस्यास्य हितैषिणः ॥ २१  
 इदं तु याचे नृपते त्वामहं शिरसा नतः ।  
 क्रियतां तावदाहारस्ततो गच्छाश्रमं प्रति ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

९

वैशंपायन उवाच ।

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातो धृतराष्ट्रः प्रतापवान् ।

ययौ स्वभवनं राजा गान्धार्यानुगतस्तदा ॥ १  
 मन्दप्राणगतिर्धीमान्कृच्छ्रादिव समुद्धरन् ।  
 पदातिः स महीपालो जीर्णो गजपतिर्यथा ॥ २  
 तमन्वगच्छद्विदुरो विद्वान्सूतश्च संजयः ।  
 स चापि परमेष्वासः कृपः शारद्वतस्तथा ॥ ३  
 स प्रविश्य गृहं राजा कृतपूर्वाह्निकक्रियः ।  
 तर्पयित्वा द्विजश्रेष्ठानाहारमकरोत्तदा ॥ ४  
 गान्धारी चैव धर्मज्ञा कुन्त्या सह मनस्विनी ।  
 वधूभिरुपचारेण पूजिताभुङ्क्त भारत ॥ ५  
 कृताहारं कृताहाराः सर्वे ते विदुरादयः ।  
 पाण्डवाश्च कुरुश्रेष्ठमुपातिष्ठन्त तं नृपम् ॥ ६  
 ततोऽब्रवीन्महाराज कुन्तीपुत्रमुपह्वरे ।  
 निषण्णं पाणिना पृष्ठे संस्पृशन्नम्बिकासुतः ॥ ७  
 अप्रमादस्त्वया कार्यः सर्वथा कुरुनन्दन ।  
 अष्टाङ्गे राजशार्दूल राज्ये धर्मपुरस्कृते ॥ ८  
 तत्तु शक्यं यथा तात रक्षितुं पाण्डुनन्दन ।  
 राज्यं धर्मं च कौन्तेय विद्वानसि निबोध तत् ॥ ९  
 विद्यावृद्धान्सदैव त्वमुपासीथा युधिष्ठिर ।  
 शृणुयास्ते च यद्भूयुः कुर्याच्चैवाविचारयन् ॥ १०  
 प्रातरुत्थाय तान्राजन्पूजयित्वा यथाविधि ।  
 कृत्यकाले समुत्पन्ने पृच्छेथाः कार्यमात्मनः ॥ ११  
 ते तु संमानिता राजंस्त्वया राज्यहितार्थिना ।  
 प्रवक्ष्यन्ति हितं तात सर्वं कौरवनन्दन ॥ १२  
 इन्द्रियाणि च सर्वाणि वाजिवत्परिपालय ।  
 हिताय वै भविष्यन्ति रक्षितं द्रविणं यथा ॥ १३  
 अमात्यानुपधातीतान्पितृपैतामहाञ्शुचीन् ।  
 दान्तान्कर्मसु सर्वेषु मुख्यान्मुख्येषु योजये ॥ १४  
 चारयेथाश्च सततं चारैरविदितैः परान् ।  
 परीक्षितैर्बहुविधं स्वराष्ट्रेषु परेषु च ॥ १५  
 पुरं च ते सुगुप्तं स्याद्वृद्धप्राकारतोरणम् ।



अट्टाट्टालकसंवाधं षट्पथं सर्वतोदिशम् ॥ १६  
 तस्य द्वाराणि कार्याणि पर्याप्तानि बृहन्ति च ।  
 सर्वतः सुविभक्तानि यन्त्रैरारक्षितानि च ॥ १७  
 पुरुषैरलमर्थज्ञैर्विदितैः कुलशीलतः ।  
 आत्मा च रक्ष्यः सततं भोजनादिषु भारत ॥ १८  
 विहाराहारकालेषु माल्यशय्यासनेषु च ।  
 स्त्रियश्च ते सुगुप्ताः स्युर्द्वैराप्तैरधिष्ठिताः ।  
 शीलवद्भिः कुलीनैश्च विद्वद्भिश्च युधिष्ठिर ॥ १९  
 मन्त्रिणश्चैव कुर्वीथा द्विजान्विद्याविशारदान् ।  
 विनीतांश्च कुलीनांश्च धर्मार्थकुशलानृजून ॥ २०  
 तैः सार्धं मन्त्रयेथास्त्वं नात्यर्थं बहुभिः सह ।  
 समस्तैरपि च व्यस्तैर्व्यपदेशेन केनचित् ॥ २१  
 सुसंवृतं मन्त्रगृहं स्थलं चारुह्य मन्त्रयेः ।  
 अरण्ये निःशलाके वा न च रात्रौ कथंचन ॥ २२  
 वानराः पक्षिणश्चैव ये मनुष्यानुकारिणः ।  
 सर्वे मन्त्रगृहे वर्ज्या ये चापि जडपङ्गुकाः ॥ २३  
 मन्त्रभेदे हि ये दोषा भवन्ति पृथिवीक्षिताम् ।  
 न ते शक्याः समाधातुं कथंचिदिति मे मतिः ॥  
 दोषांश्च मन्त्रभेदेषु ब्रूयास्त्वं मन्त्रिमण्डले ।  
 अभेदे च गुणान् राजन्पुनः पुनरिदम् ॥ २५  
 पौरजानपदानां च शौचाशौचं युधिष्ठिर ।  
 यथा स्याद्विदितं राजंस्तथा कार्यमरिदम् ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

१०

धृतराष्ट्र उवाच ।

व्यवहाराश्च ते तात नित्यमाप्तैरधिष्ठिताः ।  
 योज्यास्तुष्टैर्हितै राजन्नित्यं चारैरनुष्ठिताः ॥ १  
 परिमाणं विदित्वा च दण्डं दण्ड्येषु भारत ।  
 प्रणयेयुर्यथान्यायं पुरुषास्ते युधिष्ठिर ॥ २

आदानरुचयश्चैव परदाराभिसर्शकाः ।  
 उग्रदण्डप्रधानाश्च मिथ्या व्याहारिणस्तथा ॥ ३  
 आक्रोष्टारश्च लुब्धाश्च हन्तारः साहसप्रियाः ।  
 सभाविहारभेत्तारो वर्णानां च प्रदूषकाः ।  
 हिरण्यदण्ड्या वध्याश्च कर्तव्या देशकालतः ॥ ४  
 प्रातरेव हि पश्येथा ये कुर्युर्व्ययकर्म ते ।  
 अलंकारमथो भोज्यमनत ऊर्ध्वं समाचरेः ॥ ५  
 पश्येथाश्च ततो योधान्सदा त्व परिहर्षयन् ।  
 दूतानां च चराणां च प्रदोषस्ते सदा भवेत् ॥ ६  
 सदा चापररात्रं ते भवेत्कार्यार्थनिर्णये ।  
 मध्यरात्रे विहारस्ते मध्याह्ने च सदा भवेत् ॥ ७  
 सर्वे त्वात्ययिकाः कालाः कार्याणां भरतर्षभ ।  
 तथैवालंकृतः काले तिष्ठेथा भूरिदक्षिणः ।  
 चक्रवत्कर्मणां तात पर्यायो ह्येष नित्यशः ॥ ८  
 कोशस्य सचये यत्नं कुर्वीथा न्यायतः सदा ।  
 द्विविधस्य महाराज विपरीत विवर्जयेः ॥ ९  
 चारैर्विदित्वा शत्रून् च ये ते राज्यान्तरायिणः ।  
 तानाप्तैः पुरुषैर्दूराद्भातयेथाः परस्परम् ॥ १०  
 कर्मदृष्ट्याथ भृत्यांस्त्वं वरयेथाः कुरुद्वह ।  
 कारयेथाश्च कर्माणि युक्तायुक्तैरधिष्ठितैः ॥ ११  
 सेनाप्रणेता च भवेत्तव तात दृढव्रतः ।  
 शूरः कुशसहश्चैव प्रियश्च तव मानवः ॥ १२  
 सर्वे जानपदाश्चैव तव कर्माणि पाण्डव ।  
 पौरोगवाश्च सभ्याश्च कुर्युर्व्यवहारिणः ॥ १३  
 स्वरन्ध्रं पररन्ध्रं च स्वेषु चैव परेषु च ।  
 उपलक्षयितव्यं ते नित्यमेव युधिष्ठिर ॥ १४  
 देशान्तरस्थाश्च नरा विक्रान्ताः सर्वकर्मसु ।  
 मात्राभिरनुरूपाभिरनुग्राह्या हितास्त्वया ॥ १५  
 गुणार्थिनां गुणः कार्यो विदुषां ते जनाधिप ।

अविचाख्याश्च ते ते म्युर्यथा मेरुर्महागिरिः ॥ १६  
इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

११

धृतराष्ट्र उवाच ।

मण्डलानि च बुध्येथाः परेषामात्मनस्तथा ।  
उदासीनगुणानां च मध्यमानां तथैव च ॥ १  
चतुर्णां शत्रुजातानां सर्वेषामाततायिनाम् ।  
मित्रं चामित्रमित्रं च बोद्धव्यं तेऽरिकर्षण ॥ २  
तथामात्या जनपदा दुर्गाणि विषमणि च ।  
बलानि च कुरुश्रेष्ठ भवन्त्येषां यथेच्छकम् ॥ ३  
ते च द्वादश कौन्तेय राज्ञां वै विविधात्मकाः ।  
मन्त्रिप्रधानाश्च गुणाः षष्टिर्द्वादश च प्रभो ॥ ४  
एतन्मण्डलमित्याहुः प्राचार्या नीतिकोविदाः ।  
अत्र षाङ्गुण्यमायत्तं युधिष्ठिर निबोध तत् ॥ ५  
वृद्धिक्षयौ च विज्ञेयौ स्थानं च कुरुनन्दन ।  
द्विसप्तत्या महाबाहो ततः षाङ्गुण्यचारिणः ॥ ६  
यदा स्वपक्षो बलवान्परपक्षस्तथाबलः ।  
विगृह्य शत्रून्कौन्तेय यायात्क्षितिपतिस्तदा ॥ ७  
यदा स्वपक्षोऽबलवांस्तदा संधिं समाश्रयेत् ।  
द्रव्याणां संचयश्चैव कर्तव्यः स्यान्महांस्तथा ।  
यदा समर्थो यानाय नचिरेणैव भारत ॥ ८  
तदा सर्वं विधेयं स्यात्स्थानं च न विभाजयेत् ।  
भूमिरल्पफला देया विपरीतस्य भारत ॥ ९  
हिरण्यं कुप्यभूयिष्ठं मित्रं क्षीणमकोशवत् ।  
विपरीतान्न गृह्णीयात्स्वयं संधिविशारदः ॥ १०  
संध्यर्थं राजपुत्रं च लिप्सेथा भरतर्षभ ।  
विपरीतस्तु तेऽदेयः पुत्र कस्यांचिदापि ।  
तस्य प्रमोक्षे यत्नं च कुर्याः सोपायमन्त्रवित् ॥ ११  
प्रकृतीनां च कौन्तेय राजा दीनां विभावयेत् ।

क्रमेण युगपद्वृद्धं व्यसनानां बलाबलम् ॥ १२  
पीडन स्तम्भनं चैव कोशभङ्गस्तथैव च ।  
कार्यं यत्नेन शत्रूणां स्वराष्ट्रं रक्षता स्वयम् ॥ १३  
न च हिंस्योऽभ्युपगतः सामन्तो वृद्धिमिच्छता ।  
कौन्तेय तं न हिंसेत यो महीं विजिगीषते ॥ १४  
गणानां भेदने योगं गच्छेथाः सह मन्त्रिभिः ।  
साधुसंग्रहणाच्चैव पापनिग्रहणान्तथा ॥ १५  
दुर्बलाश्चापि सततं नावष्टभ्या बलीयसा ।  
तिष्ठेथा राजशार्दूल वैतसीं वृत्तिमास्थितः ॥ १६  
यद्येवमभियायाच्च दुर्बल बलवान्नृपः ।  
सामादिभिरुपायैस्तं क्रमेण विनिवर्तयेत् ॥ १७  
अशक्तुर्वस्तु युद्धाय निष्पतेत्सह मन्त्रिभिः ।  
कोशेन पौरैर्दण्डेन ये चान्ये प्रियकारिणः ॥ १८  
असंभवे तु सर्वस्य यथामुख्येन निष्पतेत् ।  
क्रमेणानेन मोक्षः स्याच्छरीरमपि केवलम् ॥ १९

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

१२

धृतराष्ट्र उवाच ।

संधिविग्रहमप्यत्र पश्येथा राजसत्तम ।  
द्वियोनि त्रिविधोपायं बहुकल्पं युधिष्ठिर ॥ १  
राजेन्द्र पर्युपासीथादिच्छत्त्वा द्वैविध्यमात्मनः ।  
तुष्टपुष्टबलः शत्रुरात्मवानिति च स्मरेत् ॥ २  
पर्युपासनकाले तु विपरीतं विधीयते ।  
आमर्दकाले राजेन्द्र व्यपसर्पस्ततो वरः ॥ ३  
व्यसन भेदनं चैव शत्रूणां कारयेत्ततः ।  
कर्शनं भीषणं चैव युद्धे चापि बहुक्षयम् ॥ ४  
प्रयास्यमानो नृपतिस्त्रिविधं परिचिन्तयेत् ।  
आत्मनश्चैव शत्रोश्च शक्तिं शास्त्रविशारदः ॥ ५  
उत्साहप्रभुशक्तिभ्यां मन्त्रशक्त्या च भारत ।

उपपन्नो नरो यायाद्विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ६  
 आददीत बलं राजा मौलं मित्रबलं तथा ।  
 अटवीबलं भृतं चैव तथा श्रेणीबलं च यत् ॥ ७  
 तत्र मित्रबलं राजन्मौलेन च विशिष्यते ।  
 श्रेणीबलं भृतं चैव तुल्य एवेति मे मतिः ॥ ८  
 तथा चारबलं चैव परस्परसमं नृप ।  
 विज्ञेयं बलकालेषु राज्ञा काल उपस्थिते ॥ ९  
 आपदश्चापि बोद्धव्या बहुरूपा नराधिप ।  
 भवन्ति राज्ञां कौरव्य यास्ताः पृथगतः शृणु ॥ १०  
 विकल्पा बहवो राजन्नापदां पाण्डुनन्दन ।  
 सामादिभिरुपन्यस्य शमयेत्तान्नृपः सदा ॥ ११  
 यात्रां यायाद्वैर्युक्तो राजा षड्भिः परंतप ।  
 संयुक्तो देशकालाभ्यां बलैरात्मगुणैस्तथा ॥ १२  
 तुष्टपुष्टबलो यायाद्राजा वृद्धयुदये रतः ।  
 आहूतश्चाप्यथो यायादनृतावपि पार्थिवः ॥ १३  
 स्थूणादमानं वाजिरथप्रधानां  
 ध्वजद्रुमैः संवृतकूलरोधसम् ।  
 पदातिनागैर्बहुकर्दमां नदीं  
 सपत्ननाशे नृपतिः प्रयायात् ॥ १४  
 अथोपपत्त्या शकटं पद्मं वज्रं च भारत ।  
 उशना वेद यच्छास्त्रं तत्रैतद्विहितं विभो ॥ १५  
 सादयित्वा परबलं कृत्वा च बलहर्षणम् ।  
 स्वभूमौ योजयेद्युद्धं परभूमौ तथैव च ॥ १६  
 लब्धं प्रशमयेद्राजा निक्षिपेद्वनिनो नरान् ।  
 ज्ञात्वा स्वविषयं तं च सामादिभिरुपक्रमेत् ॥ १७  
 सर्वथैव महाराज शरीरं धारयेदिह ।  
 प्रेत्येह चैव कर्तव्यमात्मनिःश्रेयसं परम् ॥ १८  
 एवं कुर्वञ्छुभा वाचो लोकेऽस्मिञ्छृणुते नृपः ।  
 प्रेत्य स्वर्गं तथाप्रोति प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ १९  
 एवं त्वया कुरुश्रेष्ठ वर्तितव्यं प्रजाहितम् ।

उभयोर्लोकयोस्तात प्राप्तये नित्यमेव च ॥ २०  
 भीष्मेण पूर्वमुक्तोऽसि कृष्णेन विदुरेण च ।  
 मयाप्यवश्यं वक्तव्यं प्रीत्या ते नृपसत्तम ॥ २१  
 एतत्सर्वं यथान्यायं कुर्वीथा भूरिदक्षिण ।  
 प्रियस्तथा प्रजानां त्वं स्वर्गे सुखमवाप्स्यसि ॥ २२  
 अश्वमेधसहस्रेण यो यजेत्पृथिवीपतिः ।  
 पालयेद्वापि धर्मेण प्रजास्तुल्यं फलं लभेत् ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

१३

युधिष्ठिर उवाच ।

एवमेतत्करिष्यामि यथात्थं पृथिवीपते ।  
 भूयश्चैवानुशास्योऽहं भवता पार्थिवर्षभ ॥ १  
 भीष्मे स्वर्गमनुप्राप्ते गते च मधुसूदने ।  
 विदुरे संजये चैव कोऽन्यो मां वक्तुमर्हति ॥ २  
 यत्तु मामनुशास्तीह भवानद्य हिते स्थितः ।  
 कर्तास्म्येतन्महीपाल निर्वृतो भव भारत ॥ ३

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तः स राजर्षिर्धर्मराजेन धीमता ।  
 कौन्तेयं समनुज्ञातुमियेष भरतर्षभ ॥ ४  
 पुत्र विश्रम्यतां तावन्ममापि बलवाञ्श्रमः ।  
 इत्युक्त्वा प्राविशद्राजा गान्धार्या भवनं तदा ॥ ५  
 तमासनगतं देवी गान्धारी धर्मचारिणी ।  
 उवाच काले कालज्ञा प्रजापतिसमं पतिम् ॥ ६  
 अनुज्ञातः स्वयं तेन व्यासेनापि महर्षिणा ।  
 युधिष्ठिरस्यानुमते कदारण्यं गमिष्यसि ॥ ७

धृतराष्ट्र उवाच ।

गान्धार्यहमनुज्ञातः स्वयं पित्रा महात्मना ।  
 युधिष्ठिरस्यानुमते गन्तास्मि नचिराद्वनम् ॥ ८

अहं हि नाम सर्वेषां तेषां दुर्द्युतदेविनाम् ।  
पुत्राणां दातुमिच्छामि प्रेत्यभावानुगं वसु ।  
सर्वप्रकृतिसान्निध्यं कारयित्वा स्ववेश्मनि ॥ ९

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्त्वा धर्मराजाय प्रेषयामास पार्थिवः ।  
स च तद्वचनात्सर्वं समानिन्ये महीपतिः ॥ १०  
ततो निष्क्रम्य नृपतिस्तस्मादन्तःपुरात्तदा ।  
सर्वं सुहृज्जनं चैव सर्वाश्च प्रकृतीस्तथा ।  
समवेतांश्च तान्सर्वान्पौरजानपदानथ ॥ ११  
ब्राह्मणांश्च महीपालान्नानादेशसमागतान् ।  
ततः ग्राह्यं महातेजा धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥ १२  
शृण्वन्त्येकाग्रमनसो ब्राह्मणाः कुरुजाङ्गलाः ।  
क्षत्रियाश्चैव वैश्याश्च शूद्राश्चैव समागताः ॥ १३  
भवन्तः कुरवश्चैव बहुकालं सहोषिताः ।  
परस्परस्य सुहृदः परस्परहिते रताः ॥ १४  
यदिदानीमहं ब्रूयामस्मिन्काल उपस्थिते ।  
तथा भवद्भिः कर्तव्यमविचार्य वचो मम ॥ १५  
अरण्यगमने बुद्धिर्गान्धारीसहितस्य मे ।  
व्यासस्यानुमते राज्ञस्तथा कुन्तीसुतस्य च ।  
भवन्तोऽप्यनुजानन्तु मा वोऽन्या भूद्विचारणा ॥  
अस्माकं भवतां चैव येयं प्रीतिर्हि शाश्वती ।  
न चान्येष्वस्ति देशेषु राज्ञामिति मतिर्मम ॥ १७  
श्रान्तोऽस्मि वयसानेन तथा पुत्रविनाकृतः ।  
उपवासकृशश्चास्मि गान्धारीसहितोऽनघाः ॥ १८  
युधिष्ठिरगते राज्ये प्राप्तश्चास्मि सुखं महत् ।  
मन्ये दुर्योधनैश्वर्याद्विशिष्टमिति सत्तमाः ॥ १९  
मम त्वन्धस्य वृद्धस्य हतपुत्रस्य का गतिः ।  
ऋते वनं महाभागास्तन्मानुज्ञातुमर्हथ ॥ २०  
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्वे ते कुरुजाङ्गलाः ।  
बाष्पसंदिग्धया वाचा रुरुर्भरतर्षभ ॥ २१

तानविब्रुवतः किञ्चिदुःखशोकपरायणान् ।

पुनरेव महातेजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

१४

धृतराष्ट्र उवाच ।

शंतनुः पालयामास यथावत्पृथिवीमिमाम् ।  
तथा विचित्रवीर्यश्च भीष्मेण परिपालितः ।  
पालयामास वस्तातो विदितं वो नसंशयः ॥ १  
यथा च पाण्डुभ्राता मे दयितो भवतामभूत् ।  
स चापि पालयामास यथावत्तच्च वेत्थ ह ॥ २  
मया च भवतां सम्यक्शुश्रूषा या कृतानघाः ।  
असम्यग्वा महाभागास्तत्क्षन्तव्यमन्तन्द्रितैः ॥ ३  
यच्च दुर्योधनेनेदं राज्यं भुक्तमकण्टकम् ।  
अपि तत्र न वो मन्दो दुर्बुद्धिरपराद्धवान् ॥ ४  
तस्यापराधादुर्बुद्धेरभिमनान्महीक्षिताम् ।  
विमर्दः सुमहानासीदनयान्मत्कृतादथ ॥ ५  
तन्मया साधु वापीदं यदि वासाधु वै कृतम् ।  
तद्वो हृदि न कर्तव्यं मामनुज्ञातुमर्हथ ॥ ६  
वृद्धोऽयं हतपुत्रोऽयं दुःखितोऽयं जनाधिपः ।  
पूर्वराज्ञां च पुत्रोऽयमिति कृत्वानुजानत ॥ ७  
इयं च कृपणा वृद्धा हतपुत्रा तपस्विनी ।  
गान्धारी पुत्रशोकार्ता तुल्यं याचति वो मया ॥ ८  
हतपुत्राविमौ वृद्धौ विदित्वा दुःखितौ तथा ।  
अनुजानीत भद्रं वो व्रजावः शरणं च वः ॥ ९  
अयं च कौरवो राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।  
सर्वैर्भवद्भिर्द्रष्टव्यः समेषु विषमेषु च ।  
न जातु विषमं चैव गमिष्यति कदाचन ॥ १०  
चत्वारः सचिवा यस्य भ्रातरो विपुलौजसः ।  
लोकपालोपमा ह्येते सर्वे धर्मार्थदर्शिनः ॥ ११

ब्रह्मेव भगवानेष सर्वभूतजगत्पतिः ।  
 युधिष्ठिरो महातेजा भवतः पालयिष्यति ॥ १२  
 अवश्यमेव वक्तव्यमिति कृत्वा ब्रवीमि वः ।  
 एष न्यासो मया दत्तः सर्वेषां वो युधिष्ठिरः ।  
 भवन्तोऽस्य च वीरस्य न्यासभूता मया कृताः ॥  
 यद्येव तैः कृतं किञ्चिद्व्यलीकं वा सुतैर्मम ।  
 यद्यन्येन मदीयेन तदनुज्ञातुमर्हथ ॥ १४  
 भवद्भिर्हि न मे मन्युः कृतपूर्वः कथंचन ।  
 अत्यन्तगुरुभक्तानामेषोऽञ्जलिरिदं नमः ॥ १५  
 तेषामस्थिरबुद्धीनां लुब्धानां कामचारिणाम् ।  
 कृते याचामि वः सर्वान्गान्धारीसहितोऽनघाः ॥  
 इत्युक्तास्तेन ते राज्ञा पौरजानपदा जनाः ।  
 नोचुर्बाष्पकलाः किञ्चिद्वीक्षाञ्चक्रुः परस्परम् ॥ १७

इति महाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

१५

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तास्तु ते तेन पौरजानपदा जनाः ।  
 वृद्धेन राज्ञा कौरव्य नष्टसंज्ञा इवाभवन् ॥ १  
 तूष्णींभूतांस्ततस्तांस्तु बाष्पकण्ठान्महीपतिः ।  
 धृतराष्ट्रो महीपालः पुनरेवाभ्यभाषत ॥ २  
 वृद्धं मां हतपुत्रं च धर्मपत्न्या सहानया ।  
 विलपन्तं बहुविधं कृपणं चैव सत्तमाः ॥ ३  
 पित्रा स्वयमनुज्ञातं कृष्णद्वैपायनेन वै ।  
 वनवासाय धर्मज्ञा धर्मज्ञेन नृपेण च ॥ ४  
 सोऽहं पुनः पुनर्याचे शिरसावनतोऽनघाः ।  
 गान्धार्या सहितं तन्मां समनुज्ञातुमर्हथ ॥ ५  
 श्रुत्वा तु कुरुराजस्य वाक्यानि करुणानि ते ।  
 रुरुदुः सर्वतो राजन्समेताः कुरुजाङ्गलाः ॥ ६  
 उत्तरीयैः करैश्चापि संछाद्य वदनानि ते ।

रुरुदुः शोकसंतप्ता मुहूर्तं पितृमातृवन ॥ ७  
 हृदयैः शून्यभूतैस्ते धृतराष्ट्रप्रवासजम् ।  
 दुःखं संधारयन्तः स्म नष्टसंज्ञा इवाभवन् ॥ ८  
 ते विनीय तमायासं कुरुराजवियोगजम् ।  
 शनैः शनैस्तदान्योन्यमब्रुवन्स्वमतान्युत ॥ ९  
 ततः संधाय ते सर्वे वाक्यानथ समासतः ।  
 एकस्मिन्नाह्वणे राजन्नावेश्योर्चुर्नराधिपम् ॥ १०  
 ततः स्वचरणे वृद्धः संमतोऽर्थविशारदः ।  
 साम्बाख्यो बह्वृचो राजन्वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ११  
 अनुमान्य महाराजं तत्सदः सप्रभाष्य च ।  
 विप्रः प्रगल्भो मेधावी स राजानमुवाच ह ॥ १२  
 राजन्वाक्यं जनस्यास्य मयि सर्वं समर्पितम् ।  
 वक्ष्यामि तदहं वीर तज्जुषस्व नराधिप ॥ १३  
 यथा वदसि राजेन्द्र सर्वमेतत्तथा विभो ।  
 नात्र मिथ्या वचः किञ्चित्सुहृत्त्वं नः परस्परम् ॥  
 न जात्वस्य तु वंशस्य राज्ञां कश्चित्कदाचन ।  
 राजासीद्यः प्रजापालः प्रजानामप्रियो भवेत् ॥ १५  
 पितृवद्धातृवच्चैव भवन्तः पालयन्ति नः ।  
 न च दुर्योधनः किञ्चिदयुक्त कृतवान्नृप ॥ १६  
 यथा ब्रवीति धर्मज्ञो मुनिः सत्यवतीसुतः ।  
 तथा कुरु महाराज स हि नः परमो गुरुः ॥ १७  
 त्यक्ता वयं तु भवता दुःखशोकपरायणाः ।  
 भविष्यामश्चिरं राजन्भवद्गुणशतैर्हृताः ॥ १८  
 यथा शंतनुना गुप्ता राज्ञा चित्राङ्गदेन च ।  
 भीष्मवीर्योपगूढेन पित्रा च तव पार्थिव ॥ १९  
 भवद्बुद्धियुजा चैव पाण्डुना पृथिवीक्षिता ।  
 तथा दुर्योधनेनापि राज्ञा सुपरिपालिताः ॥ २०  
 न स्वल्पमपि पुत्रस्ते व्यलीकं कृतवान्नृप ।  
 पितरीव सुविश्वस्तास्तस्मिन्नपि नराधिपे ।  
 वयमास्म यथा सम्यग्भवतो विदितं तथा ॥ २१

तथा वर्षसहस्राय कुन्तीपुत्रेण धीमता ।  
 पाल्यमाना धृतिमता सुखं विन्दामहे नृप ॥ २२  
 राजर्षीणां पुराणानां भवतां वंशधारिणाम् ।  
 कुरुसंवरणादीनां भरतस्य च धीमतः ॥ २३  
 वृत्तं समनुयात्येष धर्मात्मा भूरिदक्षिणः ।  
 नात्र वाच्यं महाराज सुसूक्ष्ममपि विद्यते ॥ २४  
 उषिताः स्म सुखं नित्यं भवता परिपालिताः ।  
 सुसूक्ष्मं च व्यलीकं ते सपुत्रस्य न विद्यते ॥ २५  
 यत्तु ज्ञातिविमर्देऽस्मिन्नात्थ दुर्योधनं प्रति ।  
 भवन्तमनुनेष्यामि तत्रापि कुरुनन्दन ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आश्रवासिकपर्वणि

पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

१६

ब्राह्मण उवाच ।

न तदुर्योधनकृतं न च तद्भवता कृतम् ।  
 न कर्णसौबलाभ्यां च कुरवो यत्क्षयं गताः ॥ १  
 दैवं तत्तु विजानीमो यन्न शक्यं प्रबाधितुम् ।  
 दैवं पुरुषकारेण न शक्यमतिवर्तितुम् ॥ २  
 अक्षौहिण्यो महाराज दशाष्टौ च समागताः ।  
 अष्टादशाहेन हता दशभिर्योधपुंगवैः ॥ ३  
 भीष्मद्रोणकृपाद्यैश्च कर्णेन च महात्मना ।  
 युयुधानेन वीरेण धृष्टद्युम्नेन चैव ह ॥ ४  
 चतुर्भिः पाण्डुपुत्रैश्च भीमार्जुनयमैर्नृप ।  
 जनक्षयोऽयं नृपते कृतो दैवबलात्कृतैः ॥ ५  
 अवश्यमेव संग्रामे क्षत्रियेण विशेषतः ।  
 कर्तव्यं निधनं लोके शस्त्रेण क्षत्रबन्धुना ॥ ६  
 तैरियं पुरुषव्याघ्रैर्विद्याबाहुबलान्वितैः ।  
 पृथिवी निहता सर्वा सह्या सरथद्विपा ॥ ७  
 न स राजापराप्नोति पुत्रस्तव महामनाः ।  
 न भवान्न न च ते भृत्या न कर्णो न च सौबलः ॥ ८

यद्विनष्टाः कुरुश्रेष्ठा राजानश्च सहस्रशः ।  
 सर्वं दैवकृतं तद्वै कोऽत्र किं वक्तुमर्हति ॥ ९  
 गुरुर्मतो भवानस्य कृत्स्नस्य जगतः प्रभुः ।  
 धर्मात्मानमतस्तुभ्यमनुजानीमहे सुतम् ॥ १०  
 लभतां वीरलोकान्स ससहायो नराधिपः ।  
 द्विजाग्र्यैः समनुज्ञातस्त्रिविवे मोदतां सुखी ॥ ११  
 प्राप्स्यते च भवान्पुण्यं धर्मे च परमां स्थितिम् ।  
 वेद पुण्यं च कात्स्न्येन सम्यग्भरतसत्तम ॥ १२  
 दृष्टापदानाश्चास्माभिः पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ।  
 समर्थास्त्रिविवस्यापि पालने किं पुनः क्षितेः ॥ १३  
 अनुवत्स्यन्ति चापीमाः समेषु विषमेषु च ।  
 प्रजाः कुरुकुलश्रेष्ठ पाण्डवाञ्छीलभूषणान् ॥ १४  
 ब्रह्मदेयाग्रहारांश्च परिहारांश्च पार्थिव ।  
 पूर्वराजातिसर्गांश्च पालयत्येव पाण्डवः ॥ १५  
 दीर्घदर्शी कृतप्रज्ञः सदा वैश्रवणो यथा ।  
 अक्षुद्रसन्निवश्चायं कुन्तीपुत्रो महामनाः ॥ १६  
 अप्यमित्रे दयावांश्च शुचिश्च भरतर्षभ ।  
 ऋजु पश्यति मेधावी पुत्रवत्पाति नः सदा ॥ १७  
 विप्रियं च जनस्यास्य संसर्गाद्धर्मजस्य वै ।  
 न करिष्यन्ति राजर्षे तथा भीमार्जुनादयः ॥ १८  
 मन्दा मृदुषु कौरव्यास्तीक्ष्णेष्वशीविषोपमाः ।  
 वीर्यवन्तो महात्मानः पौराणां च हिते रताः ॥ १९  
 न कुन्ती न च पाञ्चाली न चोलपी न सात्वती ।  
 अस्मिञ्जने करिष्यन्ति प्रतिकूलानि कर्हिचित् ॥ २०  
 भवत्कृतमिमं स्नेहं युधिष्ठिरविवर्धितम् ।  
 न पृष्ठतः करिष्यन्ति पौरजानपदा जनाः ॥ २१  
 अधर्मिष्ठानपि सतः कुन्तीपुत्रा महारथाः ।  
 मानवान्पालयिष्यन्ति भूत्वा धर्मपरायणाः ॥ २२  
 स राजन्मानसं दुःखमपनीय युधिष्ठिरात् ।  
 कुरु कार्याणि धर्म्याणि नमस्ते भरतर्षभ ॥ २३

वैशंपायन उवाच ।

तस्य तद्वचनं धर्म्यमनुबन्धगुणोत्तरम् ।  
साधु साध्विति सर्वः स जनः प्रतिगृहीतवान् ॥  
धृतराष्ट्रश्च तद्वाक्यमभिपूज्य पुनः पुनः ।  
विसर्जयामास तदा सर्वास्तु प्रकृतीः शनैः ॥ २५  
स तैः संपूजितो राजा शिवेनावेक्षितस्तदा ।  
प्राञ्जलिः पूजयामास तं जनं भरतर्षभ ॥ २६  
ततो विवेश भुवनं गान्धार्या सहितो नृपः ।  
व्युष्टायां चैव शर्वर्यां यच्चकार निबोध तत् ॥ २७

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

१७

वैशंपायन उवाच ।

व्युषितायां रजन्यां तु धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।  
विदुरं प्रेषयामास युधिष्ठिरनिवेशनम् ॥ १  
स गत्वा राजवचनादुवाचाच्युतमीश्वरम् ।  
युधिष्ठिरं महातेजाः सर्वबुद्धिमतां वरः ॥ २  
धृतराष्ट्रो महाराज वनवासाय दीक्षितः ।  
गमिष्यति वनं राजन्कार्तिकीमागतामिमाम् ॥ ३  
स त्वा कुरुकुलश्रेष्ठ किञ्चिदर्थमभीप्सति ।  
श्राद्धमिच्छति दातुं स गाङ्गेयस्य महात्मनः ॥ ४  
द्रोणस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः ।  
पुत्राणां चैव सर्वेषां ये चास्य सुहृदो हताः ।  
यदि चाभ्यनुजानीषे सैन्धवापसदस्य च ॥ ५  
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं विदुरस्य युधिष्ठिरः ।  
हृष्टः संपूजयामास गुडाकेशश्च पाण्डवः ॥ ६  
न तु भीमो दृढक्रोधस्तद्वचो जगृहे तदा ।  
विदुरस्य महातेजा दुर्योधनकृतं स्मरन् ॥ ७  
अभिप्रायं विदित्वा तु भीमसेनस्य फल्गुनः ।  
किरीटी किञ्चिदानम्य भीमं वचनमब्रवीत् ॥ ८

भीम राजा पिता वृद्धो वनवासाय दीक्षितः ।  
दातुमिच्छति सर्वेषां सुहृदामौर्ध्वदेहिकम् ॥ ९  
भवता निर्जितं वित्तं दातुमिच्छति कौरवः ।  
भीष्मादीनां महाबाहो तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ १०  
दिष्ट्या त्वद्य महाबाहो धृतराष्ट्रः प्रयाचति ।  
याचितो यः पुरास्माभिः पश्य कालस्य पर्ययम् ॥  
योऽसौ पृथिव्याः कृत्स्नाया भर्ता भूत्वा नराधिप ।  
परैर्विनिहतापत्यो वनं गन्तुमभीप्सति ॥ १२  
मा तेऽन्यत्पुरुषव्याघ्र दानाद्भवतु दर्शनम् ।  
अयश्शयमतोऽन्यत्स्यादधर्म्यं च महाभुज ॥ १३  
राजानमुपतिष्ठस्व ज्येष्ठं भ्रातरमीश्वरम् ।  
अर्हस्त्वमसि दातुं वै नादातुं भरतर्षभ ।  
एवं ब्रुवाणं कौन्तेयं धर्मराजोऽभ्यपूजयत् ॥ १४  
भीमसेनस्तु सक्रोधः प्रोवाचेदं वचस्तदा ।  
वयं भीष्मस्य कुर्महे प्रेतकार्याणि फल्गुन ॥ १५  
सोमदत्तस्य नृपतेर्भूरिश्रवस एव च ।  
बाह्लीकस्य च राजर्षेर्द्रोणस्य च महात्मनः ॥ १६  
अन्येषां चैव सुहृदां कुन्ती कर्णाय दास्यति ।  
श्राद्धानि पुरुषव्याघ्र मादात्कौरवको नृपः ॥ १७  
इति मे वर्तते बुद्धिर्मा वो नन्दन्तु शत्रवः ।  
कष्टात्कष्टतरं यान्तु सर्वे दुर्योधनादयः ।  
यैरियं पृथिवी सर्वा घातिता कुलपांसनैः ॥ १८  
कुतस्त्वमद्य विस्मृत्य वैरं द्वादशवार्षिकम् ।  
अज्ञातवासगमनं द्रौपदीशोकवर्धनम् ।  
क तदा धृतराष्ट्रस्य स्नेहोऽस्मास्वभवत्तदा ॥ १९  
कृष्णाजिनोपसंवीतो हृताभरणभूषणः ।  
सार्धं पाञ्चालपुत्र्या त्वं राजानमुपजग्मिवान् ।  
क तदा द्रोणभीष्मौ तौ सोमदत्तोऽपि वाभवत् ॥  
यत्र त्रयोदश समा वने वन्येन जीवसि ।  
न तदा त्वा पिता ज्येष्ठः पितृत्वेनाभिवीक्षते ॥ २१

किं ते तद्विस्मृतं पार्थ यदेष कुलपांसनः ।  
 दुर्वृत्तो विदुरं प्राह द्यूते किं जितमित्युत ॥ २२  
 तमेवंवादिनं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।  
 उवाच आतरं धीमाञ्जोषमास्वेति भर्त्सयन् ॥ २३  
 इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

१८

अर्जुन उवाच ।

भीम ज्येष्ठो गुरुर्मे त्व नातोऽन्यद्वक्तुमुत्सहे ।  
 धृतराष्ट्रो हि राजर्षिः सर्वथा मानमर्हति ॥ १  
 न स्मरन्त्यपराद्धानि स्मरन्ति सुकृतानि च ।  
 असंभिन्नार्थमर्यादाः साधवः पुरुषोत्तमाः ॥ २  
 इदं मद्वचनात्क्षत्तः कौरवं ब्रूहि पार्थिवम् ।  
 यावदिच्छति पुत्राणां दातुं तावददाम्यहम् ॥ ३  
 भीष्मादीनां च सर्वेषां सुहृदामुपकारिणाम् ।  
 मम कोशादिति विभो मा भूद्भीमः सुदुर्मनाः ॥ ४

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्ते धर्मराजस्तमर्जुनं प्रत्यपूजयत् ।  
 भीमसेनः कटाक्षेण वीक्षांचक्रे धनंजयम् ॥ ५  
 ततः स विदुरं धीमान्वाक्यमाह युधिष्ठिरः ।  
 न भीमसेने कोपं स नृपतिः कर्तुमर्हति ॥ ६  
 परिक्लिष्टो हि भीमोऽयं हिमवृष्ट्यातपादिभिः ।  
 दुःखैर्बहुविधैर्धीमानरण्ये विदितं तव ॥ ७  
 किं नु मद्वचनाद्ब्रूहि राजानं भरतर्षभम् ।  
 यद्यदिच्छसि यावच्च गृह्यतां मद्गृहादिति ॥ ८  
 यन्मात्सर्यमयं भीमः करोति भृशदुःखितः ।  
 न तन्मज्जसि कर्तव्यमिति वाच्यः स पार्थिवः ॥ ९  
 यन्ममास्ति धनं किञ्चिदर्जुनस्य च वेश्मनि ।  
 तस्य स्वामी महाराज इति वाच्यः स पार्थिवः ॥  
 ब्रूताु राजा विप्रेभ्यो यथेष्टं क्रियतां व्ययः ।

पुत्राणां सुहृदां चैव गच्छत्वानृण्यमद्य सः ॥ ११  
 इदं चापि शरीरं मे तवायत्तं जनाधिप ।  
 धनानि चेति विद्धि त्व क्षत्तर्नास्त्यत्र संशयः ॥ १२  
 इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

१९

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तस्तु राज्ञा स विदुरो बुद्धिसत्तमः ।  
 धृतराष्ट्रमुपेत्येदं वाक्यमाह महार्थवत् ॥ १  
 उक्तो युधिष्ठिरो राजा भवद्वचनमादितः ।  
 स च संश्रुत्य वाक्यं ते प्रशशंस महाद्युतिः ॥ २  
 बीभत्सुश्च महातेजा निवेदयति ते गृहान् ।  
 वसु तस्य गृहे यच्च प्राणानपि च केवलान् ॥ ३  
 धर्मराजश्च पुत्रस्ते राज्यं प्राणान्धनानि च ।  
 अनुजानाति राजर्षे यच्चान्यदपि किञ्चन ॥ ४  
 भीमस्तु सर्वदुःखानि संस्मृत्य बहुलान्युत ।  
 कृच्छ्रादिव महाबाहुरनुमन्ये विनिःश्वसन् ॥ ५  
 स राज्ञा धर्मशीलेन भ्रात्रा बीभत्सुना तथा ।  
 अनुनीतो महाबाहुः सौहृदे स्थापितोऽपि च ॥ ६  
 न च मन्युस्त्वया कार्यं इति त्वां प्राह धर्मराट् ।  
 संस्मृत्य भीमस्तद्वैरं यदन्यायवदाचरेत् ॥ ७  
 एवंप्रायो हि धर्मोऽयं क्षत्रियाणां नराधिप ।  
 युद्धे क्षत्रियधर्मे च निरतोऽयं वृकोदरः ॥ ८  
 वृकोदरकृते चाहमर्जुनश्च पुनः पुनः ।  
 प्रसादयाव नृपते भवान्प्रभुरिहास्ति यत् ॥ ९  
 प्रददातु भवान्वित्तं यावदिच्छसि पार्थिव ।  
 त्वमीश्वरो नो राज्यस्य प्राणानां चेति भारत ॥ १०  
 ब्रह्मदेयाग्रहारांश्च पुत्राणां चौर्ध्वदेहिकम् ।  
 इतो रत्नानि गाश्चैव दासीदासमजाविकम् ॥ ११  
 आनयित्वा कुरुश्रेष्ठो ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छतु ।



दीनान्धकृपणेभ्यश्च तत्र तत्र नृपाज्ञया ॥ १२  
बह्वन्नरसपानाढ्याः सभा विदुर कारय ।  
गवां निपानान्यन्यच्च विविधं पुण्यकर्म यत् ॥ १३  
इति मामब्रवीद्राजा पार्थश्चैव धनंजयः ।  
यदत्रानन्तरं कार्यं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १४  
इत्युक्तो विदुरेणाथ धृतराष्ट्रोऽभिनन्द्य तत् ।  
मनश्चक्रे महादाने कार्तिक्यां जनमेजय ॥ १५

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

२०

वैशंपायन उवाच ।

विदुरेणैवमुक्तस्तु धृतराष्ट्रो जनाधिपः ।  
प्रीतिमानभवद्राजा राज्ञो जिष्णोश्च कर्मणा ॥ १  
ततोऽभिरूपान्भीष्माय ब्राह्मणानृषिसत्तमान् ।  
पुत्रार्थे सुहृदां चैव स समीक्ष्य सहस्रशः ॥ २  
कारयित्वान्नपानानि यानान्याच्छादनानि च ।  
सुवर्णमणिरत्नानि दासीदासपरिच्छदान् ॥ ३  
कम्बलाजिनरत्नानि ग्रामान्क्षेत्रानजाविकम् ।  
अलंकारान्गजानश्चान्कन्याश्चैव वरस्त्रियः ।  
आदिश्यादिश्य विप्रेभ्यो ददौ स नृपसत्तमः ॥ ४  
द्रोणं संकीर्त्य भीष्म च सोमदत्तं च बाह्लिकम् ।  
दुर्योधनं च राजानं पुत्रांश्चैव पृथक्पृथक् ।  
जयद्रथपुरोगांश्च सुहृदश्चैव सर्वशः ॥ ५  
स श्राद्धयज्ञो ववृधे बहुगोधनदक्षिणः ।  
अनेकधनरत्नौघो युधिष्ठिरमते तदा ॥ ६  
अनिशं यत्र पुरुषा गणका लेखकास्तथा ।  
युधिष्ठिरस्य वचनात्तदापृच्छन्ति तं नृपम् ॥ ७  
आज्ञापय किमेतेभ्यः प्रदेयं दीयतामिति ।  
तदुपस्थितमेवात्र वचनान्ते प्रदृश्यते ॥ ८  
शते देये दशशतं सहस्रे चायुतं तथा ।

दीयते वचनाद्राज्ञः कुन्तीपुत्रस्य धीमतः ॥ ९  
एवं स वसुधाराभिर्वर्षमाणो नृपाम्बुदः ।  
तर्पयामास विप्रांस्तान्वर्षन्भूमिमिवाम्बुदः ॥ १०  
ततोऽनन्तरमेवात्र सर्ववर्णान्महीपतिः ।  
अन्नपानरसौघेन प्लावयामास पार्थिवः ॥ ११  
सवस्त्रफेनरत्नौघो मृदङ्गनिनदस्वनः ।  
गवान्धमकरावर्तो नारीरत्नमहाकरः ॥ १२  
ग्रामाग्रहारकुल्याढ्यो मणिहेमजलार्णवः ।  
जगत्संप्लावयामास धृतराष्ट्रदयाम्बुधिः ॥ १३  
एतं स पुत्रपौत्राणां पितृणामात्मनस्तथा ।  
गान्धार्याश्च महाराज प्रददावौर्ध्वदेहिकम् ॥ १४  
परिश्रान्तो यदासीत्स ददहानान्यनेकशः ।  
ततो निर्वर्तयामास दानयज्ञं कुरुद्रहः ॥ १५  
एवं स राजा कौरव्यश्चक्रे दानमहोत्सवम् ।  
नटनर्तकलास्याढ्यं बह्वन्नरसदक्षिणम् ॥ १६  
दशाहमेवं दानानि दत्त्वा राजाम्बिकासुतः ।  
बभूव पुत्रपौत्राणामनृणो भरतर्षभ ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

२१

वैशंपायन उवाच ।

ततः प्रभाते राजा स धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।  
आहूय पाण्डवान्वीरान्वनवासकृतक्षणः ॥ १  
गान्धारीसहितो धीमानभिनन्द्य यथाविधि ।  
कार्तिक्यां कारयित्वेष्टि ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ २  
अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य वल्कलाजिनसंवृतः ।  
वधूपरिवृतो राजा निर्ययौ भवनात्ततः ॥ ३  
ततः स्त्रियः कौरवपाण्डवानां  
याश्चाप्यन्याः कौरवराजवंश्याः ।  
तासां नादः प्रादुरासीत्तदानीं

वैचित्रवीर्यं नृपतौ प्रयाते ॥ ४  
 ततो लाजैः सुमनोभिश्च राजा  
 विचित्राभिस्तद्गृहं पूजयित्वा ।  
 संयोज्यार्थैर्भृत्यजनं च सर्व  
 ततः समुत्सृज्य ययौ नरेन्द्रः ॥ ५  
 ततो राजा प्राञ्जलिर्वेपमानो  
 युधिष्ठिरः सस्वनं बाष्पकण्ठः ।  
 विलप्योच्चैर्हं महाराज साधो  
 क गन्तासीत्यपतत्तात भूमौ ॥ ६  
 तथार्जुनस्तीव्रदुःखाभितप्तो  
 मुहुर्मुहुर्निःश्वसन्भारताग्र्यः ।  
 युधिष्ठिरं मैवमित्येवमुक्त्वा  
 निगृह्याथोदीधरत्सीदमानः ॥ ७  
 वृकोदरः फल्गुनश्चैव वीरौ  
 माद्रीपुत्रौ विदुरः संजयश्च ।  
 वैश्यापुत्रः सहितो गौतमेन  
 धौम्यो विप्राश्चान्वयुर्बाष्पकण्ठाः ॥ ८  
 कुन्ती गान्धारी बद्धनेत्रां व्रजन्तीं  
 स्कन्धासक्तं हस्तमथोद्वहन्ती ।  
 राजा गान्धार्याः स्कन्धदेशेऽवसज्य  
 पाणिं ययौ धृतराष्ट्रः प्रतीतः ॥ ९  
 तथा कृष्णा द्रौपदी यादवी च  
 बालापत्या चोत्तरा कौरवी च ।  
 चित्राङ्गदा याश्च काश्चित्त्रियोऽन्याः  
 सार्धं राज्ञा प्रस्थितास्ता वधूभिः ॥ १०  
 तासां नादो रुदतीनां तदासी-  
 द्राजन्दुःखाङ्कुरीणामिवोच्चैः ।  
 ततो निष्पेतुर्ब्राह्मणक्षत्रियाणां  
 विट्शूद्राणां चैव नार्यः समन्तात् ॥ ११  
 तन्निर्याणे दुःखितः पौरवर्गो

गजाह्वयेऽतीव बभूव राजन् ।  
 यथा पूर्वं गच्छतां पाण्डवानां  
 द्यूते राजन्कौरवाणां सभायाम् ॥ १२  
 या नापश्यच्चन्द्रमा नैव सूर्यो  
 रामाः कदाचिदपि तस्मिन्नरेन्द्रे ।  
 महावनं गच्छति कौरवेन्द्रे  
 शोकेनार्ता राजमार्गं प्रपेदुः ॥ १३  
 इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि  
 एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥  
 २२

वैशंपायन उवाच ।

ततः प्रासादहर्म्येषु वसुधायां च पार्थिव ।  
 स्त्रीणां च पुरुषाणां च सुमहान्निस्वनोऽभवत् ॥ १  
 स राजा राजमार्गेण नृनारीसंकुलेन च ।  
 कथंचिन्निर्ययौ धीमान्वेपमानः कृताञ्जलिः ॥ २  
 स वर्धमानद्वारेण निर्ययौ गजसाह्वयात् ।  
 विसर्जयामास च तं जनौघं स मुहुर्मुहुः ॥ ३  
 वनं गन्तुं च विदुरो राज्ञा सह कृतक्षणः ।  
 संजयश्च महामात्रः सूतो गावल्गणिस्तथा ॥ ४  
 कृपं निवर्तयामास युयुत्सुं च महारथम् ।  
 धृतराष्ट्रो महीपालः परिदाय युधिष्ठिरे ॥ ५  
 निवृत्ते पौरवर्गे तु राजा सान्तःपुरस्तदा ।  
 धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातो निवर्तितुमियेष सः ॥ ६  
 सोऽब्रवीन्मातरं कुन्तीमुपेत्य भरतर्षभ ।  
 अहं राजानमन्विष्ये भवती विनिवर्तताम् ॥ ७  
 वधूपरिवृता राज्ञि नगरं गन्तुमर्हसि ।  
 राजा यात्वेष धर्मात्मा तपसे धृतनिश्चयः ॥ ८  
 इत्युक्ता धर्मराजेन बाष्पव्याकुललोचना ।  
 जगादैवं तदा कुन्ती गान्धारीं परिगृह्य ह ॥ ९  
 सहदेवे महाराज मा प्रमादं कृथाः क्वचित् ।

एष मामनुरक्तो हि राजंस्त्वां चैव नित्यदा ॥ १०  
 कर्णं स्मरेथाः सततं संग्रामेष्वपलायिनम् ।  
 अवकीर्णो हि स मया वीरो दुष्प्रज्ञया तदा ॥ ११  
 आयसं हृदय नूनं मन्दाया मम पुत्रक ।  
 यत्सूर्यजमपश्यन्त्याः शतधा न विदीर्यते ॥ १२  
 एवंगते तु किं शक्यं मया कर्तुमरिदम् ।  
 मम दोषोऽयमत्यर्थं ख्यापितो यन्न सूर्यजः ।  
 तन्निमित्तं महाबाहो दानं दद्यास्त्वमुत्तमम् ॥ १३  
 सदैव भ्रातृभिः सार्धमग्रजस्यारिमर्दन ।  
 द्रौपद्याश्च प्रिये नित्यं स्थातव्यमरिर्कशन ॥ १४  
 भीमसेनार्जुनौ चैव नकुलश्च कुरुद्वह ।  
 समाधेयास्त्वया वीर त्वय्यद्य कुलधूर्गता ॥ १५  
 श्वश्रूश्चशुरयोः पादान्शुश्रूषन्ती वने त्वहम् ।  
 गान्धारीसहिता वत्स्ये तापसी मलपङ्क्तिनी ॥ १६  
 एवमुक्तः स धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितो वशी ।  
 विषादमगमत्तीव्रं न च किञ्चिदुवाच ह ॥ १७  
 स मुहूर्तमिव ध्यात्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।  
 उवाच मातरं दीनश्चिन्ताशोकपरायणः ॥ १८  
 किमिदं ते व्यवसितं नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ।  
 न त्वामभ्यनुजानामि प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १९  
 व्यरोचयः पुरा ह्यस्मानुत्साह्य प्रियदर्शने ।  
 विदुराया वचोभिस्त्वमस्मान्न त्यक्तुमर्हसि ॥ २०  
 निहत्य पृथिवीपालान्राज्यं प्राप्तमिदं मया ।  
 तव प्रज्ञामुपश्रुत्य वासुदेवान्नरर्षभात् ॥ २१  
 क्व सा बुद्धिरियं चाद्य भवत्या या श्रुता मया ।  
 क्षत्रधर्मे स्थितिं ह्युक्त्वा तस्याश्चलितुमिच्छसि ॥ २२  
 अस्मानुत्सृज्य राज्यं च स्नुषां चेमां यशस्विनीम् ।  
 कथं वत्स्यसि शून्येषु वनेष्वम्ब प्रसीद मे ॥ २३  
 इति बाष्पकलां वाचं कुन्ती पुत्रस्य शृण्वती ।  
 जगामैवाश्रुपूर्णाक्षी भीमस्तामिदमब्रवीत् ॥ २४

यदा राज्यमिदं कुन्ति भोक्तव्यं पुत्रनिर्जितम् ।  
 प्राप्तव्या राजधर्माश्च तदेयं ते कुतो मतिः ॥ २५  
 किं वयं कारिताः पूर्वं भवत्या पृथिवीक्षयम् ।  
 कस्य हेतोः परित्यज्य वनं गन्तुमभीप्ससि ॥ २६  
 वनाच्चापि किमानीता भवत्या बालका वयम् ।  
 दुःखशोकसमाविष्टौ माद्रीपुत्राविमौ तथा ॥ २७  
 प्रसीद मातर्मा गास्त्वं वनमद्य यशस्विनि ।  
 श्रियं यौधिष्ठिरीं तावद्बुद्धं पार्थबलार्जिताम् ॥ २८  
 इति सा निश्चितैवाथ वनवासकृतक्षणा ।  
 लालप्यतां बहुविधं पुत्राणां नाकरोद्वचः ॥ २९  
 द्रौपदी चान्वयाच्छ्रुं विषण्णवदना तदा ।  
 वनवासाय गच्छन्ती रुदती भद्रया सह ॥ ३०  
 सा पुत्रान् रुदतः सर्वान्मुहुर्मुहुरवेक्षती ।  
 जगामैव महाप्राज्ञा वनाय कृतनिश्चया ॥ ३१  
 अन्वयुः पाण्डवास्तां तु सभृत्यान्तःपुरास्तदा ।  
 ततः प्रमृज्य साश्रूणि पुत्रान्वचनमब्रवीत् ॥ ३२

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

२३

कुन्त्युवाच ।

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ।  
 कृतमुद्धर्षणं पूर्वं मया वः सीदतां नृप ॥ १  
 द्यूतापहृतराज्यानां पतितानां सुखादपि ।  
 ज्ञातिभिः परिभूतानां कृतमुद्धर्षणं मया ॥ २  
 कथं पाण्डोर्न नश्येत संततिः पुरुषर्षभाः ।  
 यशश्च वो न नश्येत इति चोद्धर्षणं कृतम् ॥ ३  
 यूयमिन्द्रसमाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः ।  
 मा परेषां मुखप्रेक्षाः स्थेत्येवं तत्कृतं मया ॥ ४  
 कथं धर्मभृतां श्रेष्ठो राजा त्वं वासवोपमः ।  
 पुनर्वने न दुःखी स्या इति चोद्धर्षणं कृतम् ॥ ५

नागायुतसमप्राणः ख्यातविक्रमपौरुषः ।  
 नायं भीमोऽत्यय गच्छेदिति चोद्धर्षणं कृतम् ॥ ६  
 भीमसेनादवरजस्तथायं वासवोपमः ।  
 विजयो नावसीदेत इति चोद्धर्षणं कृतम् ॥ ७  
 नकुलः सहदेवश्च तथेमौ गुरुवर्तिनौ ।  
 क्षुधा कथं न सीदेतामिति चोद्धर्षणं कृतम् ॥ ८  
 इयं च बृहती श्यामा श्रीमत्यायतलोचना ।  
 वृथा सभातले क्लिष्टा मा भूदिति च तत्कृतम् ॥ ९  
 प्रेक्षन्त्या मे तदा हीमां वेपन्तीं कदलीमिव ।  
 स्त्रीधर्मिणीमनिन्द्याङ्गीं तथा द्यूतपराजिताम् ॥ १०  
 दुःशासनो यदा मौढ्यादासीवत्पर्यकर्षत ।  
 तदैव विदितं मह्यं पराभूतमिदं कुलम् ॥ ११  
 विषण्णाः कुरवश्चैव तदा मे श्वशुरादयः ।  
 यदैषा नाथमिच्छन्ती व्यलपत्कुररी यथा ॥ १२  
 केशपक्षे परामृष्टा पापेन हतबुद्धिना ।  
 यदा दुःशासनेनैषा तदा मुह्याम्यहं नृप ॥ १३  
 युष्मत्तेजोविवृद्धर्थं मया ह्युद्धर्षणं कृतम् ।  
 तदानीं विदुरावाक्यैरिति तद्विज्ञे पुत्रकाः ॥ १४  
 कथं न राजवंशोऽयं नश्येत्प्राप्य सुतान्मम ।  
 पाण्डोरिति मया पुत्र तस्मादुद्धर्षणं कृतम् ॥ १५  
 न तस्य पुत्रः पौत्रौ वा कुत एव स पार्थिवः ।  
 लभते सुकृताल्लोकान्यस्माद्वंशः प्रणश्यति ॥ १६  
 भुक्तं राज्यफलं पुत्रा भर्तुर्मे विपुलं पुरा ।  
 महादानानि दत्तानि पीतः सोमो यथाविधि ॥ १७  
 साहं नात्मफलार्थं वै वासुदेवमचूचुदम् ।  
 विदुरायाः प्रलापैस्तैः प्लावनार्थं तु तत्कृतम् ॥ १८  
 नाहं राज्यफलं पुत्र कामये पुत्रनिर्जितम् ।  
 पतिलोकानहं पुण्यान्कामये तपसा विभो ॥ १९  
 श्वश्रूश्चशुरयोः कृत्वा शुश्रूषां वनवासिनोः ।  
 तपसा शोषयिष्यामि युधिष्ठिर कलेवरम् ॥ २०

निवर्तस्व कुरुश्रेष्ठ भीमसेनादिभिः सह ।  
 धर्मे ते धीयतां बुद्धिर्मनस्ते महदस्तु च ॥ २१

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

२४

वैशंपायन उवाच ।

कुन्त्यास्तु वचनं श्रुत्वा पाण्डवा राजसत्तम ।  
 व्रीडिताः संन्यवर्तन्त पाञ्चात्या सहितानघाः ॥ १  
 ततः शब्दो महानासीत्सर्वेषामेव भारत ।  
 अन्तःपुराणां रुदतां दृष्ट्वा कुन्तीं तथागताम् ॥ २  
 प्रदक्षिणमथावृत्य राजानं पाण्डवास्तदा ।  
 अभिवाद्य न्यवर्तन्त पृथां तामनिवर्त्य वै ॥ ३  
 ततोऽब्रवीन्महाराजो धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।  
 गान्धारी विदुरं चैव समाभाष्य निगृह्य च ॥ ४  
 युधिष्ठिरस्य जननी देवी साधु निवर्त्यताम् ।  
 यथा युधिष्ठिरः प्राह तत्सर्वं सत्यमेव हि ॥ ५  
 पुत्रैश्चर्यं महदिदमपास्य च महाफलम् ।  
 का नु गच्छेद्वनं दुर्गं पुत्रानुत्सृज्य मूढवत् ॥ ६  
 राज्यस्थया तपस्तप्तं दानं दत्तं व्रतं कृतम् ।  
 अनया शक्यमद्येह श्रूयतां च वचो मम ॥ ७  
 गान्धारि परितुष्टोऽस्मि बन्धाः शुश्रूषणेन वै ।  
 तस्मात्त्वमेनां धर्मज्ञे समनुज्ञातुमर्हसि ॥ ८  
 इत्युक्ता सौबलेयी तु राज्ञा कुन्तीमुवाच ह ।  
 तत्सर्वं राजवचनं स्वं च वाक्यं विशेषवत् ॥ ९  
 न च सा वनवासाय देवीं कृतमति तदा ।  
 शक्नोत्युपावर्तयितुं कुन्तीं धर्मपरां सतीम् ॥ १०  
 तस्यास्तु तं स्थिरं ज्ञात्वा व्यवसायं कुरुस्त्रियः ।  
 निवृत्तांश्च कुरुश्रेष्ठान्दृष्ट्वा प्ररुदुस्तदा ॥ ११  
 उपावृत्तेषु पार्थेषु सर्वेष्वन्तःपुरेषु च ।  
 ययौ राजा महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो वनं तदा ॥ १२

पाण्डवा अपि दीनास्ते दुःखशोकपरायणाः ।  
यानैः स्त्रीसहिताः सर्वे पुरं प्रविशिशुस्तदा ॥ १३  
तददृष्टमिवाकूजं गतोत्सवमिवाभवत् ।  
नगरं हास्तिनपुरं सखीवृद्धकुमारकम् ॥ १४  
सर्वे चासन्निरुस्ताहाः पाण्डवा जातमन्यवः ।  
कुन्त्या हीनाः सुदुःखार्ता वत्सा इव विनाकृताः ॥  
धृतराष्ट्रस्तु तेनाह्वा गत्वा सुमहदन्तरम् ।  
ततो भागीरथीतीरे निवासमकरोत्प्रभुः ॥ १६  
प्रादुष्कृता यथान्यायमग्नयो वेदपारगैः ।  
व्यराजन्त द्विजश्रेष्ठैस्तत्र तत्र तपोधनैः ।  
प्रादुष्कृतान्निरभवत्स च वृद्धो नराधिपः ॥ १७  
स राजाग्नीन्पर्युपास्य हुत्वा च विधिवत्तदा ।  
संध्यागतं सहस्रांशुमुपातिष्ठत् भारत ॥ १८  
विदुरः संजयश्चैव राज्ञः शय्यां कुशैस्ततः ।  
चक्रतुः कुरूवीरस्य गान्धार्याश्चाविदूरतः ॥ १९  
गान्धार्याः संनिकर्षे तु निषसाद कुशेष्वथ ।  
युधिष्ठिरस्य जननी कुन्ती साधुव्रते स्थिता ॥ २०  
तेषां संश्रवणे चापि निषेदुर्विदुरादयः ।  
याजकाश्च यथोद्देशं द्विजा ये चानुयायिनः ॥ २१  
प्राधीतद्विजमुख्या सा संप्रज्वालितपावका ।  
बभूव तेषां रजनी ब्राह्मीव प्रीतिवर्धनी ॥ २२  
ततो राज्ञां व्यतीतायां कृतपूर्वाह्निकक्रियाः ।  
हुत्वाग्निं विधिवत्सर्वे प्रययुस्ते यथाक्रमम् ।  
उदङ्मुखानिरीक्षन्त उपवासपरायणाः ॥ २३  
स तेषामतिदुःखोऽभून्निवासः प्रथमेऽहनि ।  
शोचतां शोच्यमानानां पौरजानपदैर्जनैः ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

२५

वैशंपायन उवाच ।

ततो भागीरथीतीरे मेध्ये पुण्यजनोचिते ।  
निवासमकरोद्राजा विदुरस्य मते स्थितः ॥ १  
तत्रैनं पर्युपातिष्ठन्ब्राह्मणा राष्ट्रवासिनः ।  
क्षत्रविट्शूद्रसंघाश्च बहवो भरतर्षभ ॥ २  
स तैः परिवृतो राजा कथाभिरभिनन्द्य तान् ।  
अनुजज्ञे सशिष्यान्वै विधिवत्प्रतिपूज्य च ॥ ३  
सायाह्ने स महीपालस्ततो गङ्गासुपेत्य ह ।  
चकार विधिवच्छौचं गान्धारी च यशस्विनी ॥ ४  
तथैवान्ये पृथक्सर्वे तीर्थेष्वामुन्य भारत ।  
चक्रुः सर्वाः क्रियास्तत्र पुरुषा विदुरादयः ॥ ५  
कृतशौचं ततो वृद्धं श्वशुरं कुन्तिभोजजा ।  
गान्धारी च पृथा राजन्गङ्गातीरमुपानयत् ॥ ६  
राज्ञस्तु याजकैस्तत्र कृतो वेदीपरिस्तरः ।  
जुहाव तत्र वह्निं स नृपतिः सत्यसंगरः ॥ ७  
ततो भागीरथीतीरात्कुरुक्षेत्रं जगाम सः ।  
सानुगो नृपतिर्विद्वान्नियतः संयतेन्द्रियः ॥ ८  
तत्राश्रमपदं धीमानभिगम्य स पार्थिवः ।  
आससादाथ राजर्षिः शतयूपं मनीषिणम् ॥ ९  
स हि राजा महानासीत्केकयेषु परंतपः ।  
स पुत्रं मनुजैश्चर्ये निवेद्य वनमाविशत् ॥ १०  
तेनासौ सहितो राजा ययौ व्यासाश्रमं तदा ।  
तत्रैनं विधिवद्राजन्प्रत्यगृह्णात्कुरुद्वहम् ॥ ११  
स दीक्षां तत्र संप्राप्य राजा कौरवनन्दनः ।  
शतयूपाश्रमे तस्मिन्निवासमकरोत्तदा ॥ १२  
तस्मै सर्वं विधिं राजन्राजाचख्यौ महामतिः ।  
आरण्यकं महाराज व्यासस्थानुमते तदा ॥ १३  
एवं स तपसा राजा धृतराष्ट्रो महामनाः ।  
योजयामास चात्मानं तांश्चाप्यनुचरांस्तदा ॥ १४

तथैव देवी गान्धारी वल्कलाजिनवासिनी ।  
 कुन्त्या सह महाराज समानव्रतचारिणी ॥ १५  
 कर्मणा मनसा वाचा चक्षुषा चापि ते नृप ।  
 संनियम्येन्द्रियग्राममास्थिताः परमं तपः ॥ १६  
 त्वगस्थिभूतः परिशुष्कमांसो  
 जटाजिनी वल्कलसंवृताङ्गः ।  
 स पार्थिवस्तत्र तपश्चचार  
 महर्षिवत्तीव्रमपेतदोषः ॥ १७  
 क्षत्ता च धर्मार्थविदग्ध्यबुद्धिः  
 ससंजयस्तं नृपति सदारम् ।  
 उपाचरद्द्वोरतपो जितात्मा  
 तदा कृशो वल्कलचीरवासाः ॥ १८  
 इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि  
 पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥  
 २६

### वैशंपायन उवाच ।

ततस्तस्मिन्मुनिश्रेष्ठा राजानं द्रष्टुमभ्यगुः ।  
 नारदः पर्वतश्चैव देवलश्च महातपाः ॥ १  
 द्वैपायनः सशिष्यश्च सिद्धाश्रान्ये मनीषिणः ।  
 शतयूपश्च राजर्षिर्वृद्धः परमधार्मिकः ॥ २  
 तेषां कुन्ती महाराज पूजां चक्रे यथाविधि ।  
 ते चापि तुतुषुस्तस्यास्तापसाः परिचर्यया ॥ ३  
 तत्र धर्म्याः कथास्तात चक्रुस्ते परमर्षयः ।  
 रमयन्तो महात्मानं धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ॥ ४  
 कथान्तरे तु कस्मिंश्चिद्देवर्षिर्नारदस्तदा ।  
 कथामिमामकथयत्सर्वप्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ ५  
 पुरा प्रजापतिसमो राजासीदकुतोभयः ।  
 सहस्रचित्य इत्युक्तः शतयूपपितामहः ॥ ६  
 स पुत्रे राज्यमासज्य ज्येष्ठे परमधार्मिके ।  
 सहस्रचित्यो धर्मात्मा प्रविवेश वनं नृपः ॥ ७

सगत्वा तपसः पारं दीप्तस्य स नराधिपः ।  
 पुरंदरस्य संस्थानं प्रतिपेदे महामनाः ॥ ८  
 दृष्टपूर्वः स बहुशो राजन्संपतता मया ।  
 महेन्द्रसदने राजा तपसा दग्धकिल्बिषः ॥ ९  
 तथा शैलालयो राजा भगदत्तपितामहः ।  
 तपोबलेनैव नृपो महेन्द्रसदनं गतः ॥ १०  
 तथा पृषध्रो नामासीद्राजा वज्रधरोपमः ।  
 स चापि तपसा लेभे नाकपृष्ठमितो नृपः ॥ ११  
 अस्मिन्नरण्ये नृपते मान्धातुरपि चात्मजः ।  
 पुरुकुत्सो नृपः सिद्धिं महतीं समवाप्तवान् ॥ १२  
 भार्या समभवद्यस्य नर्मदा सरितां वरा ।  
 सोऽस्मिन्नरण्ये नृपतिस्तपस्तप्त्वा दिवं गतः ॥ १३  
 शशलोमा च नामासीद्राजा परमधार्मिकः ।  
 स चाप्यस्मिन्वने तप्त्वा तपो दिवमवाप्तवान् ॥ १४  
 द्वैपायनप्रसादाच्च त्वमपीदं तपोवनम् ।  
 राजन्नवाप्य दुष्प्रापां सिद्धिमग्न्यां गमिष्यसि ॥ १५  
 त्वं चापि राजशार्दूल तपसोऽन्ते श्रिया वृतः ।  
 गान्धारीसहितो गन्ता गतिं तेषां महात्मनाम् ॥ १६  
 पाण्डुः स्मरति नित्यं च बलहन्तुः समीपतः ।  
 त्वां सदैव महीपाल स त्वां श्रेयसि योक्ष्यति ॥ १७  
 तव शुश्रूषया चैव गान्धार्याश्च यशस्विनी ।  
 भर्तुः सलोकतां कुन्ती गमिष्यति वधूस्तव ॥ १८  
 युधिष्ठिरस्य जननी स हि धर्मः सनातनः ।  
 वयमेतत्प्रपश्यामो नृपते दिव्यचक्षुषा ॥ १९  
 प्रवेक्ष्यति महात्मानं विदुरश्च युधिष्ठिरम् ।  
 संजयस्त्वदनुध्यानात्पूतः स्वर्गमवाप्स्यति ॥ २०  
 एतच्छ्रुत्वा कौरवेन्द्रो महात्मा  
 सहैव पत्न्या प्रीतिमान्प्रत्यगृह्णात् ।  
 विद्वान्वाक्यं नारदस्य प्रशस्य  
 चक्रे पूजां चातुलां नारदाय ॥ २१

तथा सर्वे नारदं विप्रसंधाः

संपूजयामासुरतीव राजन् ।

राज्ञः प्रीत्या धृतराष्ट्रस्य ते वै

पुनः पुनः समहृष्टास्तदानीम् ॥ २२

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

२७

वैशंपायन उवाच ।

नारदस्य तु तद्वाक्यं प्रशंसं सुद्विजोत्तमाः ।

शतयूपस्तु राजर्षिर्नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ १

अहो भगवता श्रद्धा कुरुराजस्य वर्धिता ।

सर्वस्य च जनस्यास्य मम चैव महाद्युते ॥ २

अस्ति काचिद्विवक्षा तु मम तां गदतः शृणु ।

धृतराष्ट्रं प्रति नृपं देवर्षे लोकपूजित ॥ ३

सर्ववृत्तान्ततत्त्वज्ञो भवान्दिव्येन चक्षुषा ।

युक्तः पश्यसि देवर्षे गतीर्वै विविधा नृणाम् ॥ ४

उक्तवान्नृपतीनां त्वं महेन्द्रस्य सलोकताम् ।

न त्वस्य नृपतेर्लोकाः कथितास्ते महामुने ॥ ५

स्थानमस्य क्षितिपतेः श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो ।

त्वत्तः कीदृक्कदा वेति तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ ६

इत्युक्तो नारदस्तेन वाक्यं सर्वमनोनुगम् ।

व्याजहार सतां मध्ये दिव्यदर्शी महातपाः ॥ ७

यदृच्छया शक्रसदो गत्वा शक्रं शचीपतिम् ।

दृष्टवानस्मि राजर्षे तत्र पाण्डुं नराधिपम् ॥ ८

तत्रेयं धृतराष्ट्रस्य कथा समभवन्नृप ।

तपसो दुश्चरस्यास्य यदयं तप्यते नृपः ॥ ९

तत्राहमिदमश्रौषं शक्रस्य वदतो नृप ।

वर्षाणि त्रीणि शिष्टानि राज्ञोऽस्य परमायुषः ॥ १०

ततः कुबेरभवनं गान्धारीसहितो नृपः ।

विहर्ता धृतराष्ट्रोऽयं राजराजाभिपूजितः ॥ ११

कामगेन विमानेन दिव्याभरणभूषितः ।

ऋषिपुत्रो महाभागस्तपसा दग्धकिल्बिषः ॥ १२

संचरिष्यति लोकांश्च देवगन्धर्वरक्षसाम् ।

स्वच्छन्देनेति धर्मात्मा यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥

देवगुह्यमिदं प्रीत्या मया वः कथितं महत् ।

भवन्तो हि श्रुतधनास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ १४

इति ते तस्य तच्छ्रुत्वा देवर्षेर्मधुरं वचः ।

सर्वे सुमनसः प्रीता बभूवुः स च पार्थिवः ॥ १५

एवं कथाभिरन्वास्य धृतराष्ट्रं मनीषिणः ।

विप्रजगमुर्यथाकामं ते सिद्धगतिमास्थिताः ॥ १६

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

२८

वैशंपायन उवाच ।

वनं गते कौरवेन्द्रे दुःखशोकसमाहताः ।

बभूवुः पाण्डवा राजन्मातृशोकेन चार्दिताः ॥ १

तथा पौरजनः सर्वः शोचन्नास्ते जनाधिपम् ।

कुर्वाणाश्च कथास्तत्र ब्राह्मणा नृपति प्रति ॥ २

कथं नु राजा वृद्धः स वने वसति निर्जने ।

गान्धारी च महाभागा सा च कुन्ती पृथा कथम् ॥

सुखार्हः स हि राजर्षिर्न सुखं तन्महावनम् ।

किमवस्थः समासाद्य प्रज्ञाचक्षुर्हृतात्मजः ॥ ४

सुदुष्करं कृतवती कुन्ती पुत्रानपश्यती ।

राज्यश्रियं परित्यज्य वनवासमरोचयत् ॥ ५

विदुरः किमवस्थश्च भ्रातुः शुश्रूषुरात्मवान् ।

स च गावल्गणिर्धीमान्भर्तृपिण्डानुपालकः ॥ ६

आकुमारं च पौरास्ते चिन्ताशोकसमाहताः ।

तत्र तत्र कथाश्चक्रुः समासाद्य परस्परम् ॥ ७

पाण्डवाश्चैव ते सर्वे भृशं शोकपरायणाः ।

शोचन्तो मातरं वृद्धामूषुर्नातिचिरं पुरे ॥ ८

तथैव पितरं वृद्ध हतपुत्रं जनेश्वरम् ।  
 गान्धारी च महाभागां विदुरं च महामतिम् ॥ ९  
 नैषां बभूव संग्रीतिस्तान्विचिन्तयतां तदा ।  
 न राज्ये न च नारीषु न वेदाध्ययने तथा ॥ १०  
 परं निर्वेदमगमंश्चिन्तयन्तो नराधिपम् ।  
 तच्च ज्ञातिवधं घोरं संस्मरन्तः पुनः पुनः ॥ ११  
 अभिमन्योश्च बालस्य विनाशं रणमूर्धनि ।  
 कर्णस्य च महाबाहोः संग्रामेष्वपलायिनः ॥ १२  
 तथैव द्रौपदेयानामन्येषां सुहृदामपि ।  
 वधं संस्मृत्य ते वीरा नातिप्रमनसोऽभवन् ॥ १३  
 हतप्रवीरां पृथिवीं हतरन्तां च भारत ।  
 सदैव चिन्तयन्तस्ते न निद्रामुपलेभिरे ॥ १४  
 द्रौपदी हतपुत्रा च सुभद्रा चैव भामिनी ।  
 नातिप्रीतियुते देव्यौ तदास्तामप्रहृष्टवत् ॥ १५  
 वैराट्यास्तु सुतं हृष्ट्वा पितरं ते परिक्षितम् ।  
 धारयन्ति स्म ते प्राणांस्तव पूर्वपितामहाः ॥ १६

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

२९

वैशंपायन उवाच ।

एवं ते पुरुषव्याघ्राः पाण्डवा मातृनन्दनाः ।  
 स्मरन्तो मातरं वीरा बभूवुर्भृशदुःखिताः ॥ १  
 ये राजकार्येषु पुरा व्यासक्ता नित्यशोऽभवन् ।  
 ते राजकार्याणि तदा नाकार्षुः सर्वतः पुरे ॥ २  
 आविष्टा इव शोकेन नाभ्यनन्दन्त किंचन ।  
 संभाष्यमाणा अपि ते न किञ्चित्प्रत्यपूजयन् ॥ ३  
 ते स्म वीरा दुराधर्षा गान्भीर्ये सागरोपमाः ।  
 शोकोपहतविज्ञाना नष्टसंज्ञा इवाभवन् ॥ ४  
 अनुस्मरन्तो जननीं ततस्ते कुरुनन्दनाः ।  
 कथं नु वृद्धमिथुनं वहत्यद्य पृथा कृशा ॥ ५

कथं च स महीपालो हतपुत्रो निराश्रयः ।  
 पत्न्या सह वसत्येको वने श्वापदसेविते ॥ ६  
 सा च देवी महाभागा गान्धारी हतबान्धवा ।  
 पतिमन्धं कथं वृद्धमन्वेति विजने वने ॥ ७  
 एवं तेषां कथयतामौत्सुक्यमभवत्तदा ।  
 गमने चाभवद्वृद्धिर्धृतराष्ट्रदिदृक्षया ॥ ८  
 सहदेवस्तु राजानं प्रणिपत्येदमब्रवीत् ।  
 अहो मे भवतो दृष्ट हृदयं गमनं प्रति ॥ ९  
 न हि त्वा गौरवेणाहमशकं वक्तुमात्मना ।  
 गमनं प्रति राजेन्द्र तदिदं समुपस्थितम् ॥ १०  
 दिष्ट्या द्रक्ष्यामि तां कुन्तीं वर्तयन्ती तपस्विनीम् ।  
 जटिलां तापसी वृद्धां कुशकाशपरिक्षिताम् ॥ ११  
 प्रासादहर्म्यसंवृद्धामत्यन्तसुखभाशिनीम् ।  
 कदा नु जननीं श्रान्तां द्रक्ष्यामि भृशदुःखिताम् ॥  
 अनित्याः खलु मर्त्यानां गतयो भरतर्षभ ।  
 कुन्ती राजसुता यत्र वसत्यसुखिनी वने ॥ १३  
 सहदेववचः श्रुत्वा द्रौपदी योषितां वरा ।  
 उवाच देवी राजानमभिपूज्याभिनन्द्य च ॥ १४  
 कदा द्रक्ष्यामि तां देवीं यदि जीवति सा पृथा ।  
 जीवन्त्या ह्यद्य नः प्रीतिर्भविष्यति नराधिप ॥ १५  
 एषा तेऽस्तु मतिर्नित्यं धर्मे ते रमतां मनः ।  
 योऽद्य त्वमस्मान् राजेन्द्र श्रेयसा योजयिष्यसि ॥ १६  
 अग्रपादस्थितं चेमं विद्धि राजन्वधूजनम् ।  
 काङ्क्षन्तं दर्शनं कुन्त्या गान्धार्याः श्वशुरस्य च ॥  
 इत्युक्तः स नृपो देव्या पाञ्चाल्या भरतर्षभ ।  
 सेनाध्यक्षान्समानाय्य सर्वानिदमथाब्रवीत् ॥ १८  
 निर्यातयत मे सेनां प्रभूतरथकुञ्जराम् ।  
 द्रक्ष्यामि वनसंस्थं च धृतराष्ट्रं महीपतिम् ॥ १९  
 रुयध्यक्षांश्चाब्रवीद्राजा यानानि विविधानि मे ।  
 सज्जीक्रियन्तां सर्वाणि शिबिकाश्च सहस्रशः ॥ २०



शकटापणवेशाश्च कोशशिल्पिन एव च ।  
 निर्यान्तु कोशपालाश्च कुरुक्षेत्राश्रमं प्रति ॥ २१  
 यश्च पौरजनः कश्चिद्ब्रष्टुमिच्छति पार्थिवम् ।  
 अनावृतः सुविहितः स च यातु सुरक्षितः ॥ २२  
 सूदाः पौरोगवाश्चैव सर्वं चैव महानसम् ।  
 विविधं भक्ष्यभोज्यं च शकटैरुह्यतां मम ॥ २३  
 प्रयाणं घुष्यतां चैव श्वोभूत इति मा चिरम् ।  
 क्रियन्तां पथि चाप्यद्य वेश्मानि विविधानि च ॥  
 एवमाज्ञाप्य राजा स भ्रातृभिः सह पाण्डवः ।  
 श्वोभूते निर्ययौ राजा सस्त्रीबालपुरस्कृतः ॥ २५  
 स बहिर्दिवसानेवं जनौघ परिपालयन् ।  
 न्यवसन्नृपतिः पञ्च ततोऽगच्छद्वनं प्रति ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

३०

वैशंपायन उवाच ।

आज्ञापयामास ततः सेनां भरतसत्तमः ।  
 अर्जुनप्रमुखैर्गुप्तां लोकपालोपमैर्नरैः ॥ १  
 योगो योग इति प्रीत्या ततः शब्दो महानभूत् ।  
 क्रोशतां सादिनां तत्र युज्यतां युज्यतामिति ॥ २  
 केचिद्यानैर्नरा जग्मुः केचिदश्वैर्मनोजवैः ।  
 रथैश्च नगराकारैः प्रदीप्तज्वलनोपमैः ॥ ३  
 गजेन्द्रैश्च तथैवान्ये केचिदुष्टैर्नराधिप ।  
 पदातिनस्तथैवान्ये नखरप्रासयोधिनः ॥ ४  
 पौरजानपदाश्चैव यानैर्बहुविधैस्तथा ।  
 अन्वयुः कुरुराजानं धृतराष्ट्रदिदृक्षया ॥ ५  
 स चापि राजवचनादाचार्यो गौतमः कृपः ।  
 सेनामादाय सेनानी प्रययावाश्रमं प्रति ॥ ६  
 ततो द्विजैर्वृतः श्रीमान्कुरुराजो युधिष्ठिरः ।  
 संस्तूयमानो बहुभिः सूतमागधबन्दिभिः ॥ ७

पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।  
 रथानीकेन महता निर्ययौ कुरुनन्दनः ॥ ८  
 गजैश्चाचलसंकाशैर्मिमकर्मा वृकोदरः ।  
 सज्जयन्नायुधोपेतैः प्रययौ मास्तात्मजः ॥ ९  
 माद्रीपुत्रावपि तथा हयारोहैः सुसंवृतौ ।  
 जग्मतुः प्रीतिजननौ संनद्धकवचध्वजौ ॥ १०  
 अर्जुनश्च महातेजा रथेनादित्यवर्चसा ।  
 वशी श्वेतैर्हयैर्दिव्यैर्युक्तेनान्वगमन्नृपम् ॥ ११  
 द्रौपदीप्रमुखाश्चापि स्त्रीसंघाः शिविकागताः ।  
 रुयध्यक्षयुक्ताः प्रययुर्विसृजन्तोऽमितं वसु ॥ १२  
 समृद्धनरनागाश्च वेणुवीणानिनादितम् ।  
 शुशुभे पाण्डवं सैन्यं तत्तदा भरतर्षभ ॥ १३  
 नदीतीरेषु रम्येषु सरत्सु च विशां पते ।  
 वासान्कृत्वा क्रमेणाथ जग्मुस्ते कुरुपुंगवाः ॥ १४  
 युयुत्सुश्च महातेजा धौम्यश्चैव पुरोहितः ।  
 युधिष्ठिरस्य वचनात्पुरगुप्तिं प्रचक्रतुः ॥ १५  
 ततो युधिष्ठिरो राजा कुरुक्षेत्रमवातरत् ।  
 क्रमेणोत्तीर्य यमुनां नदीं परमपावनीम् ॥ १६  
 स ददर्शश्रमं दूराद्राजर्षेस्तस्य धीमतः ।  
 शतयूपस्य कौरव्य धृतराष्ट्रस्य चैव ह ॥ १७  
 ततः प्रमुदितः सर्वो जनस्तद्वनमञ्जसा ।

विवेश सुमहानादैरापूर्य भरतर्षभ ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

३१

वैशंपायन उवाच ।

ततस्ते पाण्डवा दूरावतीर्य पदातयः ।  
 अभिजग्मुर्नरपतेराश्रमं विनयानताः ॥ १  
 स च पौरजनः सर्वो ये च राष्ट्रनिवासिनः ।  
 स्त्रियश्च कुरुमुख्यानां पद्मिरेवान्वयुस्तदा ॥ २

आश्रम ते ततो जग्मुर्धृतराष्ट्रस्य पाण्डवाः ।  
 शून्यं मृगगणाकीर्णं कदलीवनशोभितम् ॥ ३  
 ततस्तत्र समाजग्मुस्तापसा विविधव्रताः ।  
 पाण्डवानागतान्द्रष्टुं कौतूहलसमन्विताः ॥ ४  
 तानपृच्छन्ततो राजा कासौ कौरववंशश्रुत् ।  
 पिता ज्येष्ठो गतोऽस्माकमिति बाष्पपरिप्लुतः ॥ ५  
 तमूचुस्ते ततो वाक्यं यमुनामवगाहितुम् ।  
 पुष्पाणामुदकुम्भस्य चार्थे गत इति प्रभो ॥ ६  
 तैराख्यातेन मार्गेण ततस्ते प्रययुस्तदा ।  
 ददृशुश्चाविदूरे तान्सर्वानथ पदातयः ॥ ७  
 ततस्ते सत्वरा जग्मुः पितुर्दर्शनकाङ्क्षिणः ।  
 सहदेवस्तु वेगेन प्राधावद्येन सा पृथा ॥ ८  
 सस्वनं प्ररुदन्धीमान्मातुः पादावुपस्पृशन् ।  
 सा च बाष्पाविलमुखी प्रददर्श प्रिय सुतम् ॥ ९  
 बाहुभ्यां संपरिष्वज्य समुन्नाम्य च पुत्रकम् ।  
 गान्धार्याः कथयामास सहदेवमुपस्थितम् ॥ १०  
 अनन्तरं च राजानं भीमसेनमथार्जुनम् ।  
 नकुलं च पृथा दृष्ट्वा त्वरमाणोपचक्रमे ॥ ११  
 सा ह्यग्रेऽगच्छत तयोर्दपत्योर्हृतपुत्रयोः ।  
 कर्षन्ती तौ ततस्ते तां दृष्ट्वा संन्यपतन्भुवि ॥ १२  
 तान् राजा स्वरयोगेन स्पर्शेन च महामनाः ।  
 प्रत्यभिज्ञाय मेधावी समाश्वासयत प्रभुः ॥ १३  
 ततस्ते बाष्पमुत्सृज्य गान्धारीसहित नृपम् ।  
 उपतस्थुर्महात्मानो मातरं च यथाविधि ॥ १४  
 सर्वेषां तोयकलशाञ्जगृहुस्ते स्वयं तदा ।  
 पाण्डवां लब्धसंज्ञास्ते मात्रा चाश्वासिताः पुनः ॥  
 ततो नार्यो नृसिंहानां स च योधजनस्तदा ।  
 पौरजानपदाश्चैव ददृशुस्तं नराधिपम् ॥ १६  
 निवेदयामास तदा जनं तं नामगोत्रतः ।  
 युधिष्ठिरो नरपतिः स चैनान्प्रत्यपूजयत् ॥ १७

स तैः परिवृतो मेने हर्षबाष्पाविलेक्षणः ।  
 राजात्मानं गृहगतं पुरेव गजसाह्वये ॥ १८  
 अभिवादितो वधूभिश्च कृष्णाद्याभिः स पार्थिवः ।  
 गान्धार्या सहितो धीमान्कुन्त्या च प्रत्यनन्दत ॥ १९  
 ततश्चाश्रममागच्छत्सिद्धचारणसेवितम् ।  
 दिदृक्षुभिः समाकीर्णं नभस्तारागणैरिव ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

३२

वैशंपायन उवाच ।

स तैः सह नरव्याघ्रैर्भार्तृभिर्भरतर्षभ ।  
 राजा रुचिरपद्माक्षैरासांचक्रे तदाश्रमे ॥ १  
 तापसैश्च महाभागैर्नानादेशसमागतैः ।  
 द्रष्टुं कुरुपतेः पुत्रान्पाण्डवान्पृथुवक्षसः ॥ २  
 तेऽब्रुवञ्जातुमिच्छामः कतमोऽत्र युधिष्ठिरः ।  
 भीमार्जुनयमाश्चैव द्रौपदी च यशस्विनी ॥ ३  
 तानाचख्यौ तदा सूतः सर्वान्नामाभिनामतः ।  
 संजयो द्रौपदीं चैव सर्वाश्चान्याः कुरुक्षियः ॥ ४

य एष जाम्बूनदशुद्धगौर-

तनुर्महासिंह इव प्रवृद्धः ।

प्रचण्डघोणः पृथुदीर्घनेत्र-

स्ताम्रायतास्यः कुरुराज एषः ॥ ५

अयं पुनर्मत्तगजेन्द्रगामी

प्रतप्तचामीकरशुद्धगौरः ।

पृथ्वायतांसः पृथुदीर्घबाहु-

वृकोदरः पश्यत पश्यतैनम् ॥ ६

यस्त्वेष पार्श्वेऽस्य महाधनुष्मा-

ब्ध्यामो युवा वारणयूथपाभः ।

सिंहोन्नतांसो गजखेलगमी

पद्मायताक्षोऽर्जुन एष वीरः ॥ ७

कुन्तीसमीपे पुरुषोत्तमौ तु  
 यमाविमौ विष्णुमहेन्द्रकल्पौ ।  
 मनुष्यलोके सकले समोऽस्ति  
 ययोर्न रूपे न बले न शीले ॥ ८  
 इयं पुनः पद्मदलायताक्षी  
 मध्यं वयः किञ्चिदिव स्पृशन्ती ।  
 नीलोत्पलाभा पुरदेवतेव  
 कृष्णा स्थिता मूर्तिमतीव लक्ष्मीः ॥ ९  
 अस्यास्तु पार्श्वे कनकोत्तमाभा  
 यैषा प्रभा मूर्तिमतीव गौरी ।  
 मध्ये स्थितैषा भगिनी द्विजाग्र्या  
 चक्रायुधस्याप्रतिमस्य तस्य ॥ १०  
 इयं स्वसा राजचमूपतेस्तु  
 प्रवृद्धनीलोत्पलदामवर्णा ।  
 पस्पर्थं कृष्णेन नृपः सदा यो  
 वृकोदरस्यैष परिग्रहोऽग्र्यः ॥ ११  
 इयं च राज्ञो मगधाधिपस्य  
 सुता जरासंध इति श्रुतस्य ।  
 यवीयसो माद्रवतीसुतस्य  
 भार्या मता चम्पकदामगौरी ॥ १२  
 इन्दीवरश्यामतनुः स्थिता तु  
 यैषा परासन्नमहीतले च ।  
 भार्या मता माद्रवतीसुतस्य  
 ज्येष्ठस्य सेयं कमलायताक्षी ॥ १३  
 इयं तु निष्ठप्रसुवर्णगौरी  
 राज्ञो विराटस्य सुता सपुत्रा ।  
 भार्या भिमन्योर्निहतो रणे यो  
 द्रोणादिभिस्तैर्विरथो रथस्थैः ॥ १४  
 एतास्तु सीमन्तशिरोरूहा याः  
 शुक्रोत्तरीया नरराजपत्न्यः ।

राज्ञोऽस्य वृद्धस्य परंशताख्याः  
 स्नुषा विवीरा हतपुत्रनाथाः ॥ १५  
 एता यथामुख्यमुदाहृता वो  
 ब्राह्मण्यभावाद्जुबुद्धिसत्त्वाः ।  
 सर्वा भवद्भिः परिपृच्छयमाना  
 नरेन्द्रपत्न्यः सुविशुद्धसत्त्वाः ॥ १६  
 एवं स राजा कुरुवृद्धवर्यः  
 समागतस्तैर्नरदेवपुत्रैः ।  
 पप्रच्छ सर्वान्कुशलं तदानीं  
 गतेषु सर्वेष्वथ तापसेषु ॥ १७  
 योधेषु चाप्याश्रममण्डलं तं  
 मुक्त्वा निविष्टेषु विमुच्य पत्रम् ।  
 स्त्रीवृद्धबाले च सुसंनिविष्टे  
 यथार्हतः कुशलं पर्यपृच्छत् ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि  
 द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

३३

धृतराष्ट्र उवाच ।

युधिष्ठिर महाबाहो कश्चित्तात कुशल्यसि ।  
 सहितो भ्रातृभिः सर्वैः पौरजानपदैस्तथा ॥ १  
 ये च त्वामुपजीवन्ति कश्चित्तेऽपि निरामयाः ।  
 सचिवा भृत्यवर्गाश्च गुरवश्चैव ते विभो ॥ २  
 कश्चिद्वर्तसि पौराणीं वृत्तिं राजर्षिसेविताम् ।  
 कश्चिदायाननुच्छिद्य कोशस्तेऽभिप्रपूर्यते ॥ ३  
 अरिमध्यस्थमित्रेषु वर्तसे चानुरूपतः ।  
 ब्राह्मणानग्रहारैर्वा यथावदनुपश्यसि ॥ ४  
 कश्चित्ते परितुण्यन्ति शीलेन भरतर्षभ ।  
 शत्रवो गुरवः पौरा भृत्या वा स्वजनोऽपि वा ॥ ५  
 कश्चिद्यजसि राजेन्द्र श्रद्धावान्पितृदेवताः ।  
 अतिथीश्चान्नपानेन कश्चिदर्चसि भारत ॥ ६

कच्चिच्च विषये विप्राः स्वकर्मनिरतास्तव ।  
क्षत्रिया वैश्यवर्गा वा शूद्रा वापि कुटुम्बिनः ॥ ७  
कच्चित्स्त्रीबालवृद्धं ते न शोचति न याचते ।  
जामयः पूजिताः कच्चित्तव गोहे नरर्षभ ॥ ८  
कच्चिद्राजर्षिवंशोऽयं त्वामासाद्य महीपतिम् ।  
यथोचित महाराज यशसा नावसीदति ॥ ९

वैशंपायन उवाच ।

इत्येवंवादिनं तं स न्यायवित्प्रत्यभाषत ।  
कुशलप्रश्नसंयुक्तं कुशलो वाक्यकर्मणि ॥ १०  
कच्चित्ते वर्धते राजस्तपो मन्दश्रमस्य ते ।  
अपि मे जननी चेयं शुश्रूषुर्विगतकृमा ।  
अप्यस्याः सफलो राजन्वनवासो भविष्यति ॥ ११  
इयं च माता ज्येष्ठा मे वीतवाताध्वकर्षिता ।  
घोरेण तपसा युक्ता देवी कच्चिन्न शोचति ॥ १२  
हतान्पुत्रान्महावीर्यान्क्षत्रधर्मपरायणान् ।  
नापध्यायति वा कच्चिदस्मान्पापकृतः सदा ॥ १३  
क चासौ विदुरो राजन्नैनं पश्यामहे वयम् ।  
संजयः कुशली चायं कच्चिन्नु तपसि स्थितः ॥ १४  
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं धृतराष्ट्रो जनाधिपम् ।  
कुशली विदुरः पुत्र तपो घोरं समास्थितः ॥ १५  
वायुभक्षो निराहारः कृशो धमनिसंततः ।  
कदाचिद्दृश्यते विप्रैः शून्येऽस्मिन्कानने कचित् ॥  
इत्येवं वदतस्तस्य जटी वीटामुखः कृशः ।  
दिग्वासा मलदिग्धाङ्गो वनरेणुसमुक्षितः ॥ १७  
दूरादालक्षितः क्षत्ता तत्राख्यातो महीपतेः ।  
निवर्तमानः सहसा जनं दृष्ट्वाश्रमं प्रति ॥ १८  
तमन्वधावनृपतिरेक एव युधिष्ठिरः ।  
प्रविशन्तं वनं घोरं लक्ष्यालक्ष्यं कच्चित्कचित् ॥ १९  
भो भो विदुर राजाहं दयितस्ते युधिष्ठिरः ।  
इति ब्रुवन्नरपतिस्तं यत्नादभ्यधावत ॥ २०

ततो विविक्त एकान्ते तस्थौ बुद्धिमतां वरः ।  
विदुरो वृक्षमाश्रित्य कंचित्तत्र वनान्तरे ॥ २१  
तं राजा क्षीणभूयिष्ठमाकृतीमात्रसूचितम् ।  
अभिजज्ञे महाबुद्धि महाबुद्धिर्युधिष्ठिरः ॥ २२  
युधिष्ठिरोऽहमस्मीति वाक्यमुक्त्वाग्रतः स्थितः ।  
विदुरस्याश्रवे राजा स च प्रत्याह संज्ञया ॥ २३  
ततः सोऽनिमिषो भूत्वा राजानं समुदैक्षत ।  
संयोज्य विदुरस्तस्मिन्दृष्टिं दृष्ट्वा समाहितः ॥ २४  
विवेश विदुरो धीमान्गात्रैर्गात्राणि चैव ह ।  
प्राणान्प्राणेषु च दधदिन्द्रियाणीन्द्रियेषु च ॥ २५  
स योगबलमास्थाय विवेश नृपतेस्तनुम् ।  
विदुरो धर्मराजस्य तेजसा प्रबलन्निव ॥ २६  
विदुरस्य शरीरं तत्तथैव स्तब्धलोचनम् ।  
वृक्षाश्रितं तदा राजा ददर्श गतचेतनम् ॥ २७  
बलवन्तं तथात्मानं मेने बहुगुणं तदा ।  
धर्मराजो महातेजास्तच्च सस्मार पाण्डवः ॥ २८  
पौराणमात्मनः सर्वं विद्यावान्स विशां पते ।  
योगधर्मं महातेजा व्यासेन कथितं यथा ॥ २९  
धर्मराजस्तु तत्रैनं संचस्कारयिषुस्तदा ।  
दग्धुकामोऽभवद्विद्वानथ वै वागभाषत ॥ ३०  
भो भो राजन्न दग्धव्यमेतद्विदुरसंज्ञकम् ।  
कलेवरमिहैतत्ते धर्म एष सनातनः ॥ ३१  
लोकाः संतानका नाम भविष्यन्त्यस्य पार्थिव ।  
यतिधर्ममवाप्तोऽसौ नैव शोच्यः परंतप ॥ ३२  
इत्युक्तो धर्मराजः स विनिवृत्त्य ततः पुनः ।  
राज्ञो वैचित्रवीर्यस्य तत्सर्वं प्रत्यवेदयत् ॥ ३३  
ततः स राजा शुतिमान्स च सर्वो जनस्तदा ।  
भीमसेनादयश्चैव परं विस्मयमागताः ॥ ३४  
तच्छ्रुत्वा प्रीतिमान् राजा भूत्वा धर्मजमब्रवीत् ।  
आपो मूलं फलं चैव ममेदं प्रतिगृह्यताम् ॥ ३५

यदन्नो हि नरो राजंस्तदन्नोऽस्यातिथिः स्मृतः ।  
इत्युक्तः स तथेत्येव प्राह धर्मात्मजो नृपम् ।  
फलं मूलं च बुभुजे राज्ञा दत्तं सहानुजः ॥ ३६  
ततस्ते वृक्षमूलेषु कृतवासपरिग्रहाः ।  
तां रात्रि न्यवसन्सर्वे फलमूलजलाशनाः ॥ ३७

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३

३४

वैशंपायन उवाच ।

एवं सा रजनी तेषामाश्रमे पुण्यकर्मणाम् ।  
शिवा नक्षत्रसंपन्ना सा व्यतीयाय भारत ॥ १  
तत्र तत्र कथाश्चासंस्तेषां धर्मार्थलक्षणाः ।  
विचित्रपदसंचारा नानाश्रुतिभिरन्विताः ॥ २  
पाण्डवास्त्वभितो मातुर्धरण्यां सुषुप्तदा ।  
उत्सृज्य सुमहार्हाणि शयनानि नराधिप ॥ ३  
यदाहारोऽभवद्राजा धृतराष्ट्रो महामनाः ।  
तदाहारा नृवीरास्ते न्यवसन्तां निशां तदा ॥ ४  
व्यतीतायां तु शर्वर्या कृतपूर्वाह्निकक्रियः ।  
भ्रातृभिः सह कौन्तेयो ददर्शश्रममण्डलम् ॥ ५  
सान्तःपुरपरीवारः सभृत्यः सपुरोहितः ।  
यथासुखं यथोद्देश धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञया ॥ ६  
ददर्श तत्र वेदीश्च संप्रज्वलितपावकाः ।  
कृताभिषेकैर्मुनिभिर्हुताग्निभिरुपस्थिताः ॥ ७  
वानेयपुष्पनिकरैराज्यधूमोद्गमैरपि ।  
ब्राह्मेण वपुषा युक्ता युक्ता मुनिगणैश्च ताः ॥ ८  
मृगयूथैरनुद्विग्नैस्तत्र तत्र समाश्रितैः ।  
अशङ्कितैः पक्षिगणैः प्रगीतैरिव च प्रभो ॥ ९  
केकाभिर्नीलकण्ठानां दात्यहानां च कूजितैः ।  
कोकिलानां च कुह्रैः शुभैः श्रुतिमनोहरैः ॥ १०  
प्राधीतद्विजघोषैश्च कचित्कचिदलंकृतम् ।

फलमूलसमुद्वाहैर्महद्विश्रोपशोभितम् ॥ ११  
ततः स राजा प्रददौ तापसार्थमुपाहृतान् ।  
कलशान्काञ्चनान् राजंस्तथैवौदुम्बरानपि ॥ १२  
अजिनानि प्रवेणीश्च मुक्कमुक्कं च महीपतिः ।  
कमण्डलंस्तथा स्थालीः पिठराणि च भारत ॥ १३  
भाजनानि च लौहानि पात्रीश्च विविधा नृप ।  
यद्यदिच्छति यावच्च यदन्यदपि काङ्क्षितम् ॥ १४  
एवं स राजा धर्मात्मा परीत्याश्रममण्डलम् ।  
वसु विश्राण्य तत्सर्वं पुनरायान्महीपतिः ॥ १५  
कृताह्निकं च राजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।  
ददर्शासीनमव्यग्रं गान्धारीसहितं तदा ॥ १६  
मातरं चाविदूरस्थां शिष्यवत्प्रणतां स्थिताम् ।  
कुन्तीं ददर्श धर्मात्मा सतत धर्मचारिणीम् ॥ १७  
स तमभ्यर्च्य राजानं नाम संश्राव्य चात्मनः ।  
निषीदेत्यभ्यनुज्ञातो वृत्त्यामुपविवेश ह ॥ १८  
भीमसेनादयश्चैव पाण्डवाः कौरवर्षभम् ।  
अभिवाद्योपसंगृह्य निषेदुः पार्थिवाञ्जया ॥ १९  
स तैः परिवृतो राजा शुशुभेऽतीव कौरवः ।  
विभ्रद्ब्राह्मीं श्रिय दीप्तां देवैरिव बृहस्पतिः ॥ २०  
तथा तेषूपविष्टेषु समाजग्मुर्महर्षयः ।  
शतयूपप्रभृतयः कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ २१  
व्यासश्च भगवान्विप्रो देवर्षिगणपूजितः ।  
वृतः शिष्यैर्महातेजा दर्शयामास तं नृपम् ॥ २२  
ततः स राजा कौरव्यः कुन्तीपुत्रश्च वीर्यवान् ।  
भीमसेनादयश्चैव समुत्थायाभ्यपूजयन् ॥ २३  
समागतस्ततो व्यासः शतयूपादिभिर्वृतः ।  
धृतराष्ट्रं महीपालमास्यतामित्यभाषत ॥ २४  
नवं तु विष्टरं कौश्यं कृष्णाजिनकुशोत्तरम् ।  
प्रतिपेदे तदा व्यासस्तदर्थमुपकल्पितम् ॥ २५  
ते च सर्वे द्विजश्रेष्ठा विष्टरेषु समन्ततः ।

द्वैपायनाभ्यनुज्ञाता निषेदुर्विपुलौजसः ॥ २६

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

३५

वैशंपायन उवाच ।

तथा समुपविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।

व्यासः सत्यवतीपुत्रः प्रोवाचामक्य पार्थिवम् ॥ १

धृतराष्ट्र महाबाहो कश्चित्ते वर्धते तपः ।

कश्चिन्मनस्ते प्रीणाति वनवासे नराधिप ॥ २

कश्चिद्बुद्धिं न ते शोको राजन्पुत्रविनाशजः ।

कश्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि तवानघ ॥ ३

कश्चिद्बुद्धिं दृढां कृत्वा चरस्यारण्यकं विधिम् ।

कश्चिद्वधूश्च गान्धारी न शोकेनाभिभूयते ॥ ४

महाप्रज्ञा बुद्धिमती देवी धर्मार्थदर्शिनी ।

आगमापायतत्त्वज्ञा कश्चिदेषा न शोचति ॥ ५

कश्चित्कुन्ती च राजंस्त्वां शुश्रूषुरनहंकृता ।

या परित्यज्य राज्यं स्वं गुरुशुश्रूषणे रता ॥ ६

कश्चिद्धर्मसुतो राजा त्वया प्रीत्याभिनन्दितः ।

भीमार्जुनयमाश्चैव कश्चिदेतेऽपि सान्त्विताः ॥ ७

कश्चिन्नन्दसि दृष्ट्वैतान्कश्चित्ते निर्मलं मनः ।

कश्चिद्विशुद्धभावोऽसि जातज्ञानो नराधिप ॥ ८

एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत ।

निर्वैरता महाराज सत्यमद्रोह एव च ॥ ९

कश्चित्ते नानुतापोऽस्ति वनवासेन भारत ।

स्वदत्ते वन्यमन्नं वा मुनिवासांसि वा विभो ॥ १०

विदितं चापि मे राजन्विदुरस्य महात्मनः ।

गमनं विधिना येन धर्मस्य सुमहात्मनः ॥ ११

माण्डव्यशापाद्धि स वै धर्मो विदुरतां गतः ।

महाबुद्धिर्महायोगी महात्मा सुमहामनाः ॥ १२

बृहस्पतिर्वा देवेषु शुक्रो वाप्यसुरेषु यः ।

न तथा बुद्धिसंपन्नो यथा स पुरुषर्षभः ॥ १३

तपोबलव्ययं कृत्वा सुमहश्चिरसंभृतम् ।

माण्डव्येनर्षिणा धर्मो ह्यभिभूतः सनातनः ॥ १४

नियोगाद्ब्रह्मणः पूर्वं मया स्वेन बलेन च ।

वैचित्रवीर्यके क्षेत्रे जातः स सुमहामतिः ॥ १५

भ्राता तव महाराज देवदेवः सनातनः ।

धारणाच्छ्रेयसो ध्यानाद्यं धर्मं कवयो विदुः ॥ १६

सत्येन संवर्धयति दमेन नियमेन च ।

अहिंसया च दानेन तपसा च सनातनः ॥ १७

येन योगबलाज्जातः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।

धर्मं इत्येष नृपते प्राज्ञेनामितबुद्धिना ॥ १८

यथा ह्यग्निर्यथा वायुर्यथापः पृथिवी यथा ।

यथाकाशं तथा धर्मं इह चामुत्र च स्थितः ॥ १९

सर्वगश्चैव कौरव्य सर्वं व्याप्य चराचरम् ।

दृश्यते देवदेवः स सिद्धैर्निर्दग्धकिल्बिषैः ॥ २०

यो हि धर्मः स विदुरो विदुरो यः स पाण्डवः ।

स एष राजन्वश्यस्ते पाण्डवः प्रेक्ष्यवत्स्थितः ॥ २१

प्रविष्टः स स्वमात्मानं भ्राता ते बुद्धिसत्तमः ।

दिष्ट्या महात्मा कौन्तेयं महायोगबलान्वितः ॥ २२

त्वां चापि श्रेयसा योक्ष्ये नचिराद्भरतर्षभ ।

संशयच्छेदनार्थं हि प्राप्तं मां विद्धि पुत्रक ॥ २३

न कृतं यत्पुरा कैश्चित्कर्म लोके महर्षिभिः ।

आश्चर्यभूतं तपसः फलं संदर्शयामि वः ॥ २४

किमिच्छसि महीपाल मत्तः प्राप्तुममानुषम् ।

द्रष्टुं स्पष्टमथ श्रोतुं वद कर्तास्मि तत्तथा ॥ २५

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

॥ समाप्तमाश्रमवासपर्व ॥

३६

जनमेजय उवाच ।

वनवासं गते विप्र धृतराष्ट्रे महीपतौ ।  
 सभार्ये नृपशार्दूले वध्वा कुन्त्या समन्विते ॥ १  
 विदुरे चापि संसिद्धे धर्मराजं व्यपाश्रिते ।  
 वसत्सु पाण्डुपुत्रेषु सर्वेष्वश्रममण्डले ॥ २  
 यत्तदाश्चर्यमिति वै करिष्यामीत्युवाच ह ।  
 व्यासः परमतेजस्वी महर्षिस्तद्वदस्व मे ॥ ३  
 वनवासे च कौरव्यः कियन्तं कालमच्युतः ।  
 युधिष्ठिरो नरपतिर्न्यवसत्सजनो द्विज ॥ ४  
 किमाहाराश्च ते तत्र ससैन्या न्यवसन्प्रभो ।  
 सान्तःपुरा महात्मान इति तद्वृद्धि मेऽनघ ॥ ५

वैशंपायन उवाच ।

तेऽनुज्ञातास्तदा राजन्कुराजेन पाण्डवाः ।  
 विविधान्यन्नपानानि विश्रम्यानुभवन्ति ते ॥ ६  
 मासमेकं विजहुस्ते ससैन्यान्तःपुरा वने ।  
 अथ तत्रागमद्व्यासो यथोक्तं ते मयानघ ॥ ७  
 तथा तु तेषां सर्वेषां कथाभिर्नृपसंनिधौ ।  
 व्यासमन्वासतां राजन्नाजग्मुर्मुनयोऽपरे ॥ ८  
 नारदः पर्वतश्चैव देवलश्च महातपाः ।  
 यिश्वावसुस्तुम्बरश्च चित्रसेनश्च भारत ॥ ९  
 तेषामपि यथान्यायं पूजां चक्रे महामनाः ।  
 धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातः कुराजो युधिष्ठिरः ॥ १०  
 निषेदुस्ते ततः सर्वे पूजां प्राप्य युधिष्ठिरात् ।  
 आसनेष्वथ पुण्येषु बर्हिष्केषु वरेषु च ॥ ११  
 तेषु तत्रोपविष्टेषु स तु राजा महामतिः ।  
 पाण्डुपुत्रैः परिवृतो निषसाद कुरुद्वहः ॥ १२  
 गान्धारी चैव कुन्ती च द्रौपदी सात्वती तथा ।  
 स्त्रियश्चान्यास्तथान्याभिः सहोपविविशुस्ततः ॥ १३  
 तेषां तत्र कथा दिव्या धर्मिष्ठाश्चाभवन्नृप ।

ऋषीणां च पुराणानां देवासुरविमिश्रिताः ॥ १४  
 ततः कथान्ते व्यासस्तं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।  
 प्रोवाच वदतां श्रेष्ठः पुनरेव स तद्वचः ।  
 प्रीयमाणो महातेजाः सर्ववेदविदां वरः ॥ १५  
 विदितं मम राजेन्द्र यत्ते हृदि विवक्षितम् ।  
 दह्यमानस्य शोकेन तव पुत्रकृतेन वै ॥ १६  
 गान्धार्याश्चैव यः दुःखं हृदि तिष्ठति पार्थिव ।  
 कुन्त्याश्च यन्महाराज द्रौपद्याश्च हृदि स्थितम् ॥  
 यच्च धारयते तीव्रं दुःखं पुत्रविनाशजम् ।  
 सुभद्रा कृष्णभगिनी तच्चापि विदितं मम ॥ १८  
 श्रुत्वा समागममिमं सर्वेषां वस्ततो नृप ।  
 संशयच्छेदनायार्हं प्राप्तः कौरवनन्दन ॥ १९  
 इमे च देवगन्धर्वाः सर्वे चैव महर्षयः ।  
 पश्यन्तु तपसो वीर्यमद्य मे चिरसंभृतम् ॥ २०  
 तदुच्यतां महाबाहो कं कामं प्रदिशामि ते ।  
 प्रवणोऽस्मि वरं दातुं पश्य मे तपसो बलम् ॥ २१  
 एवमुक्तः स राजेन्द्रो व्यासेनामितबुद्धिना ।  
 मुहूर्तमिव संचिन्त्य वचनायोपचक्रमे ॥ २२  
 धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं च मे ।  
 यन्मे समागमोऽद्येह भवद्भिः सह साधुभिः ॥ २३  
 अद्य चाप्यवगच्छामि गतिमिष्टामिहात्मनः ।  
 भवद्भिर्ब्रह्मकल्पैर्यत्समेतोऽहं तपोधनाः ॥ २४  
 दर्शनादेव भवतां पूतोऽहं नात्र संशयः ।  
 विद्यते न भयं चापि परलोकान्ममानघाः ॥ २५  
 किं तु तस्य सुदुर्बुद्धेर्मन्दस्यापनयैर्भृशम् ।  
 दूयते मे मनो नित्यं स्मरतः पुत्रगृद्धिनः ॥ २६  
 अपापाः पाण्डवा येन निकृताः पापबुद्धिना ।  
 घातिता पृथिवी चेयं सहसा सनरद्विपा ॥ २७  
 राजानश्च महात्मानो नानाजनपदेश्वराः ।  
 आगम्य मम पुत्रार्थे सर्वे मृत्युवशं गताः ॥ २८

ये ते पुत्रांश्च दारांश्च प्राणांश्च मनसः प्रियान् ।  
परित्यज्य गताः शूराः प्रेतराजनिवेशनम् ॥ २९  
का नु तेषां गतिर्ब्रह्मन्मित्रार्थे ये हता मृधे ।  
तथैव पुत्रपौत्राणां मम ये निहता युधि ॥ ३०  
दूयते मे मनोऽभीक्ष्णं घातयित्वा महाबलम् ।  
भीष्मं शांतनवं वृद्धं द्रोणं च द्विजसत्तमम् ॥ ३१  
मम पुत्रेण मूढेन पापेन सुहृदद्विषा ।  
क्षयं नीतं कुलं दीप्तं पृथिवीराज्यमिच्छता ॥ ३२  
एतत्सर्वमनुस्मृत्य दह्यमानो दिवानिशम् ।  
न शान्तिमधिगच्छामि दुःखशोकसमाहतः ।  
इति मे चिन्तयानस्य पितः शर्म न विद्यते ॥ ३३

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

३७

वैशंपायन उवाच ।

तच्छ्रुत्वा विविधं तस्य राजर्षेः परिदेवितम् ।  
पुनर्नवीकृतः शोको गान्धार्या जनमेजय ॥ १  
कुन्त्या द्रुपदपुत्र्याश्च सुभद्रायास्तथैव च ।  
तासां च वरनारीणां वधूनां कौरवस्य ह ॥ २  
पुत्रशोकसमाविष्टा गान्धारी त्विदमब्रवीत् ।  
श्वशुरं बद्धनयना देवी प्राञ्जलिरुत्थिता ॥ ३  
षोडशेमानि वर्षाणि गतानि मुनिपुगव ।  
अस्य राज्ञो हतान्पुत्राञ्चोचतो न शमो विभो ॥ ४  
पुत्रशोकसमाविष्टो निःश्वसन्हेष भूमिपः ।  
न शेते वसतीः सर्वा धृतराष्ट्रो महामुने ॥ ५  
लोकानन्यान्समर्थोऽसि स्रष्टुं सर्वास्तपोबलात् ।  
किमु लोकान्तरगतान् राज्ञो दर्शयितुं सुतान् ॥ ६  
इयं च द्रौपदी कृष्णा हतज्ञातिसुता भृशम् ।  
शोचत्यतीव साध्वी ते स्नुषाणां दयिता स्नुषा ॥ ७  
तथा कृष्णस्य भगिनी सुभद्रा भद्रभाषिणी ।

सौभद्रवधसंतप्ता भृशं शोचति भामिनी ॥ ८  
इयं च भूरिश्रवसो भार्या परमदुःखिता ।  
भर्तृव्यसनशोकार्ता न शेते वसतीः प्रभो ॥ ९  
यस्यास्तु श्वशुरो धीमान्बाह्लीकः स कुरुद्वहः ।  
निहतः सोमदत्तश्च पित्रा सह महारणे ॥ १०  
श्रीमन्चास्य महाबुद्धेः संप्रामेष्वपलायिनः ।  
पुत्रस्य ते पुत्रशतं निहतं यद्रणाजिरे ॥ ११  
तस्य भार्याशतमिदं पुत्रशोकसमाहतम् ।  
पुनः पुनर्वर्धयानं शोकं राज्ञो ममैव च ।  
तेनारम्भेण महता मामुपास्ते महामुने ॥ १२  
ये च शूरा महात्मानः श्वशुरा मे महारथाः ।  
सोमदत्तप्रभृतयः का नु तेषां गतिः प्रभो ॥ १३  
तव प्रसादाद्भगवन्विशोकोऽयं महीपतिः ।  
कुर्यात्कालमहं चैव कुन्ती चेयं वधूस्तव ॥ १४  
इत्युक्तवत्यां गान्धार्या कुन्ती व्रतकृशानना ।  
प्रच्छन्नजातं पुत्रं तं सस्मारादित्यसंभवम् ॥ १५  
तामृषिर्वरदो व्यासो दूरश्रवणदर्शनः ।  
अपश्यद्दुःखितां देवी मातरं सव्यसाचिनः ॥ १६  
तामुवाच ततो व्यासो यत्ते कार्यं विवक्षितम् ।  
तद्ब्रूहि त्वं महाप्राज्ञे यत्ते मनसि वर्तते ॥ १७  
ततः कुन्ती श्वशुरयोः प्रणम्य शिरसा तदा ।  
उवाच वाक्यं सत्रीडं विवृण्वाना पुरातनम् ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

३८

कुन्त्युवाच ।

भगवञ्श्वशुरो मेऽसि दैवतस्यापि दैवतम् ।  
स मे देवातिदेवस्त्वं शृणु सत्यां गिरं मम ॥ १  
तपस्वी कोपनो विप्रो दुर्वासा नाम मे पितुः ।  
भिक्षामुपागतो भोक्तुं तमहं पर्यतोषयम् ॥ २



शौचेन त्वागसस्यागैः शुद्धेन मनसा तथा ।  
 कोपस्थानेष्वपि महत्स्वकुप्यं न कदाचन ॥ ३  
 स मे वरमदात्प्रीतः कृतमित्यहमब्रुवम् ।  
 अवश्यं ते प्रहीतव्यमिति मां सोऽब्रवीद्वचः ॥ ४  
 ततः शापभयाद्विप्रमवोचं पुनरेव तम् ।  
 एवमस्त्विति च प्राह पुनरेव स मां द्विजः ॥ ५  
 धर्मस्य जननी भद्रे भवित्री त्वं वरानने ।  
 वशे स्थास्यन्ति ते देवा यांस्त्वमावाहयिष्यसि ॥ ६  
 इत्युक्त्वान्तर्हितो विप्रस्ततोऽहं विस्मिताभवम् ।  
 न च सर्वास्वस्थासु स्मृतिर्मे विप्रणश्यति ॥ ७  
 अथ हर्म्यतलस्थाहं रविमुद्यन्तमीक्षती ।  
 संस्मृत्य तदृषेर्वाक्यं स्पृहयन्ती दिवाकरम् ।  
 स्थिताहं बालभावेन तत्र दोषमबुध्यती ॥ ८  
 अथ देवः सहस्रांशुर्मत्समीपगतोऽभवत् ।  
 द्विधा कृत्वात्मनो देहं भूमौ च गगनेऽपि च ।  
 तताप लोकानेकेन द्वितीयेनागमच्च माम् ॥ ९  
 स मामुवाच वेपन्ती वरं मत्तो वृणीष्व ह ।  
 गम्यतामिति तं चाहं प्रणम्य शिरसावदम् ॥ १०  
 स मामुवाच तिग्मांशुर्वृथाह्वानं न ते क्षमम् ।  
 धक्ष्यामि त्वां च विप्रं च येन दत्तो वरस्तव ॥ ११  
 तमहं रक्षती विप्रं शापादनपराधिनम् ।  
 पुत्रो मे त्वत्समो देव भवेदिति ततोऽब्रुवम् ॥ १२  
 ततो मां तेजसाविश्य मोहयित्वा च भानुमान् ।  
 उवाच भविता पुत्रस्तवेत्यभ्यगमद्विवम् ॥ १३  
 ततोऽहमन्तर्भवने पितुर्वृत्तान्तरक्षिणी ।  
 गूढोत्पन्नं सुतं बालं जले कर्णमवासृजम् ॥ १४  
 नूनं तस्यैव देवस्य प्रसादात्पुनरेव तु ।  
 कन्याहमभवं विप्र यथा प्राह स मामृषिः ॥ १५  
 स मया मूढया पुत्रो ज्ञायमानोऽप्युपेक्षितः ।  
 तन्मां दहति विप्रर्षे यथा सुविदितं तव ॥ १६

यदि पापमपापं वा तदेतद्विवृतं मया ।  
 तन्मे भयं त्वं भगवन्व्यपनेतुमिहार्हसि ॥ १७  
 यच्चास्य राज्ञो विदितं हृदिस्थं भवतोऽनघ ।  
 तं चायं लभतां काममद्यैव मुनिसत्तम ॥ १८  
 इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं व्यासो वेदविदां वरः ।  
 साधु सर्वमिदं तथ्यमेवमेव यथास्थ माम् ॥ १९  
 अपराधश्च ते नास्ति कन्याभावं गता ह्यसि ।  
 देवाश्चैश्वर्यवन्तो वै शरीराण्याविशन्ति वै ॥ २०  
 सन्ति देवनिकायाश्च संकल्पाञ्जनयन्ति ये ।  
 वाचा दृष्ट्या तथा स्पर्शात्संघर्षेणेति पञ्चधा ॥ २१  
 मनुष्यधर्मो दैवेन धर्मेण न हि युज्यते ।  
 इति कुन्ति व्यजानीहि व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥  
 सर्वं बलवतां पथ्यं सर्वं बलवतां शुचि ।  
 सर्वं बलवतां धर्मः सर्वं बलवतां स्वकम् ॥ २३

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

३९

व्यास उवाच ।

भद्रे द्रक्ष्यसि गान्धारि पुत्रान्भ्रातृन्सखींस्तथा ।  
 वधूश्च पतिभिः सार्धं निशि सुप्तोत्थिता इव ॥ १  
 कर्णं द्रक्ष्यति कुन्ती च सौभद्रं चापि यादवी ।  
 द्रौपदी पञ्च पुत्रांश्च पितृन्भ्रातृन्स्तथैव च ॥ २  
 पूर्वमेवैष हृदये व्यवसायोऽभवन्मम ।  
 यथास्मि चोदितो राज्ञा भवत्या पृथयैव च ॥ ३  
 न ते शोच्या महात्मानः सर्व एव नरर्षभाः ।  
 क्षत्रधर्मपराः सन्तस्तथा हि निधन गताः ॥ ४  
 भवितव्यमवश्यं तत्सुरकार्यमनिन्दिते ।  
 अवतेरुस्ततः सर्वे देवभागैर्महीतलम् ॥ ५  
 गन्धर्वाप्सरसश्चैव पिशाचा गुह्यराक्षसाः ।  
 तथा पुण्यजनाश्चैव सिद्धा देवर्षयोऽपि च ॥ ६

देवाश्च दानवाश्चैव तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ।  
 त एते निधनं प्राप्ताः कुरुक्षेत्रे रणाजिरे ॥ ७  
 गन्धर्वराजो यो धीमान्धृतराष्ट्र इति श्रुतः ।  
 स एव मानुषे लोके धृतराष्ट्रः पतिस्तव ॥ ८  
 पाण्डुं मरुद्गणं विद्धि विशिष्टतममच्युतम् ।  
 धर्मस्यांशोऽभवत्क्षत्ता राजा चायं युधिष्ठिरः ॥ ९  
 कलिं दुर्योधनं विद्धि शकुनिं द्वापरं तथा ।  
 दुःशासनादीन्विद्धि त्वं राक्षसाञ्शुभदर्शने ॥ १०  
 मरुद्गणाद्भीमसेनं बलवन्तमरिदमम् ।  
 विद्धि च त्वं नरमृषिमिमं पार्थ धनंजयम् ।  
 नारायणं हृषीकेशमश्विनौ यमजातुभौ ॥ ११  
 द्विधा कृत्वात्मनो देहमादित्यं तपतां वरम् ।  
 लोकांश्च तापयानं वै विद्धि कर्ण च शोभने ।  
 यश्च वैरार्थमुद्भूतः संघर्षजननस्तथा ॥ १२  
 यश्च पाण्डवदायादो हतः षड्भिर्महारथैः ।  
 स सोम इह सौभद्रो योगादेवाभवद्विधा ॥ १३  
 द्रौपद्या सह संभूतं धृष्टद्युम्नं च पावकात् ।  
 अग्नेर्भागं शुभं विद्धि राक्षसं तु शिखण्डिनम् ॥ १४  
 द्रोणं बृहस्पतेर्भागं विद्धि द्रौणिं च रुद्रजम् ।  
 भीष्मं च विद्धि गाङ्गेयं वसुं मानुषतां गतम् ॥ १५  
 एवमेते महाप्राज्ञे देवा मानुष्यमेत्य हि ।  
 ततः पुनर्गताः स्वर्गं कृते कर्मणि शोभने ॥ १६  
 यच्च वो हृदि सर्वेषां दुःखमेनच्चिरं स्थितम् ।  
 तदद्य व्यपनेष्यामि परलोककृताद्भयात् ॥ १७  
 सर्वे भवन्तो गच्छन्तु नदीं भागीरथीं प्रति ।  
 तत्र द्रक्ष्यथ तान्सर्वान्ये हतास्मिन्नणाजिरे ॥ १८

वैशंपायन उवाच ।

इति व्यासस्य वचनं श्रुत्वा सर्वो जनस्तदा ।  
 महता सिंहनादेन गङ्गामभिमुखो ययौ ॥ १९  
 धृतराष्ट्रश्च सामात्यः प्रययौ सह पाण्डवैः ।

सहितो मुनिशार्दूलैर्गन्धर्वैश्च समागतैः ॥ २०  
 ततो गङ्गां समासाद्य क्रमेण स जनार्णवः ।  
 निवासमकरोत्सर्वो यथाप्रीति यथासुखम् ॥ २१  
 राजा च पाण्डवैः सार्धमिष्टे देशे सहानुगः ।  
 निवासमकरोद्धीमान्सखीवृद्धपुरःसरः ॥ २२  
 जगाम तदहश्चापि तेषां वर्षशतं यथा ।  
 निशां प्रतीक्षमाणानां दिदृक्षूणां मृतानृपात् ॥ २३  
 अथ पुण्यं गिरिवरमस्तमभ्यगमद्रविः ।  
 ततः कृताभिषेकास्ते नैशं कर्म समाचरन् ॥ २४

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

४०

वैशंपायन उवाच ।

ततो निशायां प्राप्तायां कृतसायाह्निकक्रियाः ।  
 व्यासमभ्यगमन्सर्वे ये तत्रासन्समागताः ॥ १  
 धृतराष्ट्रस्तु धर्मात्मा पाण्डवैः सहितस्तदा ।  
 शुचिरेकमनाः सार्धमृषिभिस्तैरुपाविशत् ॥ २  
 गान्धार्या सह नार्यस्तु सहिताः समुपाविशन् ।  
 पौरजानपदश्चापि जनः सर्वो यथावयः ॥ ३  
 ततो व्यासो महातेजाः पुण्यं भागीरथीजलम् ।  
 अवगाह्याजुहावाथ सर्वाल्लोकान्महामुनिः ॥ ४  
 पाण्डवानां च ये योधाः कौरवाणां च सर्वशः ।  
 राजानश्च महाभागा नानादेशनिवासिनः ॥ ५  
 ततः सुतुमुलः शब्दो जलान्तर्जनमेजय ।  
 प्रादुरासीद्यथा पूर्वं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ६  
 ततस्ते पार्थिवाः सर्वे भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।  
 ससैन्याः सलिलात्तस्मात्समुत्तस्थुः सहस्रशः ॥ ७  
 विराटद्रुपदौ चोभौ सपुत्रौ सहसैनिकौ ।  
 द्रौपदेयाश्च सौभद्रो राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ ८  
 कर्णदुर्योधनौ चोभौ शकुनिश्च महारथः ।

दुःशासनादयश्चैव धार्तराष्ट्रा महारथाः ॥ ९  
 जारासंधिर्भगदत्तो जलसंधश्च पार्थिवः ।  
 भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनश्च सानुजः ॥ १०  
 लक्ष्मणो राजपुत्रश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः ।  
 शिखण्डिपुत्राः सर्वे च धृष्टकेतुश्च सानुजः ॥ ११  
 अचलो वृषकश्चैव राक्षसश्चाप्यलायुधः ।  
 बाह्लीकः सोमदत्तश्च चेकितानश्च पार्थिवः ॥ १२  
 एते चान्ये च बहवो बहुत्वाद्ये न कीर्तिताः ।  
 सर्वे भासुरदेहास्ते समुत्तस्थुर्जलात्ततः ॥ १३  
 यस्य वीरस्य यो वेषो यो ध्वजो यच्च वाहनम् ।  
 तेन तेन व्यदृशन्त समुपेता नराधिपाः ॥ १४  
 दिव्याम्बरधराः सर्वे सर्वे भ्राजिष्णुकुण्डलाः ।  
 निर्वैराः निरहंकारा विगतक्रोधमन्यवः ॥ १५  
 गन्धर्वैरुपगीयन्तः स्तूयमानाश्च बन्दिभिः ।  
 दिव्यमाल्याम्बरधरा वृताश्चाप्सरसां गणैः ॥ १६  
 धृतराष्ट्रस्य च तदा दिव्य चक्षुर्नराधिप ।  
 मुनिः सत्यवतीपुत्रः प्रीतः प्रादात्तपोबलात् ॥ १७  
 दिव्यज्ञानबलोपेता गान्धारी च यशस्विनी ।  
 ददर्श पुत्रांस्तान्सर्वान्ये चान्येऽपि रणे हताः ॥ १८  
 तदद्भुतमचिन्त्यं च सुमहद्रोमहर्षणम् ।  
 विस्मितः स जनः सर्वो ददर्शानिमिषेक्षणः ॥ १९  
 तदुत्सवमदोदग्रं हृष्टनारीनराकुलम् ।  
 दृष्टो बलमायान्तं चित्रं पटगतं यथा ॥ २०  
 धृतराष्ट्रस्तु तान्सर्वान्पश्यन्दिव्येन चक्षुषा ।  
 मुमुदे भरतश्रेष्ठ प्रसादात्तस्य वै मुनेः ॥ २१

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

४१

वैशंपायन उवाच ।

ततस्ते भरतश्रेष्ठाः समाजग्मुः परस्परम् ।

विगतक्रोधमात्सर्याः सर्वे विगतकल्मषाः ॥ १  
 विधिं परममास्थाय ब्रह्मर्षिविहितं शुभम् ।  
 संप्रीतमनसः सर्वे देवलोक इवामराः ॥ २  
 पुत्रः पित्रा च मात्रा च भार्या च पतिना सह ।  
 भ्राता भ्रात्रा सखा चैव सख्या राजन्समागताः ॥  
 पाण्डवास्तु महेश्वास कर्ण सौभद्रमेव च ।  
 संप्रहर्षात्समाजग्मुर्द्रौपदेयाश्च सर्वशः ॥ ४  
 ततस्ते प्रीयमाणा वै कर्णेन सह पाण्डवाः ।  
 समेत्य पृथिवीपालाः सौहृदेऽवस्थिताभवन् ॥ ५  
 ऋषिप्रसादात्तेऽन्ये च क्षत्रिया नष्टमन्यवः ।  
 असौहृदं परित्यज्य सौहृदे पर्यवस्थिताः ॥ ६  
 एवं समागताः सर्वे गुरुभिर्बान्धवैस्तथा ।  
 पुत्रैश्च पुरुषव्याघ्राः कुरवोऽन्ये च मानवाः ॥ ७  
 तां रात्रिमेकां कृत्स्नां ते विद्वत्य प्रीतमानसाः ।  
 मेनिरे परितोषेण नृपाः स्वर्गसदो यथा ॥ ८  
 नात्र शोको भयं त्रासो नारतिर्नयशोऽभवत् ।  
 परस्परं समागम्य योधानां भरतर्षभ ॥ ९  
 समागतास्ताः पितृभिर्भ्रातृभिः पतिभिः सुतैः ।  
 मुदं परमिकां प्राप्य नार्यो दुःखमथात्यजन् ॥ १०  
 एकां रात्रिं विद्वत्यैवं ते वीरास्ताश्च योषितः ।  
 आमन्त्रयान्योन्यमाश्लिष्य ततो जगमुर्यथागतम् ॥ ११  
 ततो विसर्जयामास लोकांस्तान्मुनिपुंगवः ।  
 क्षणेनान्तर्हिताश्चैव प्रेक्षतामेव तेऽभवन् ॥ १२  
 अवगाह्य महात्मानः पुण्यां त्रिपथगां नदीम् ।  
 सरथाः सध्वजाश्चैव स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥ १३  
 देवलोकं ययुः केचित्केचिद्ब्रह्मसदस्तथा ।  
 केचिच्च वारुणं लोकं केचित्कौबेरमाप्नुवन् ॥ १४  
 तथा वैवस्वतं लोकं केचिच्चैवाप्नुवन्नृपाः ।  
 राक्षसानां पिशाचानां केचिच्चाप्युत्तरान्कुरुन् ॥ १५  
 विचित्रगतयः सर्वे या अवाप्यामरैः सह ।

आजग्मुस्ते महात्मानः सवाहाः सपदानुगाः ॥ १६  
 गतेषु तेषु सर्वेषु सलिलस्थो महामुनिः ।  
 धर्मशीलो महातेजाः कुरुणां हितकृत्सदा ।  
 ततः प्रोवाच ताः सर्वाः क्षत्रिया निहतेश्वराः ॥ १७  
 या याः पतिकृताल्लोकानिच्छन्ति परमस्त्रियः ।  
 ता जाह्नवीजलं क्षिप्रमवगाहन्त्वतन्द्रिताः ॥ १८  
 ततस्तस्य वचः श्रुत्वा श्रद्धावान् वराङ्गनाः ।  
 श्वशुरं समनुज्ञाप्य विविशुर्जाह्नवीजलम् ॥ १९  
 विमुक्ता मानुषैर्देहैस्ततस्ता भर्तृभिः सह ।  
 समाजग्मुस्तदा साध्व्यः सर्वा एव विशां पते ॥  
 एवं क्रमेण सर्वास्ताः शीलवत्यः कुलस्त्रियः ।  
 प्रविश्य तोयं निर्मुक्ता जग्मुर्भर्तृसलोकताम् ॥ २१  
 दिव्यरूपसमायुक्ता दिव्याभरणभूषिताः ।  
 दिव्यमालान्त्रधरा यथासां पतयस्तथा ॥ २२  
 ताः शीलसत्त्वसंपन्ना वितमस्का गतक्लमाः ।  
 सर्वाः सर्वगुणैर्युक्ताः स्वं स्वं स्थानं प्रपेदिरे ॥ २३  
 यस्य यस्य च यः कामस्तस्मिन्कालेऽभवत्तदा ।  
 तं तं विस्मृत्वान्यासो वरदो धर्मवत्सलः ॥ २४  
 तच्छ्रुत्वा नरदेवानां पुनरागमनं नराः ।  
 जहृषुर्मुदिताश्चासन्नन्यदेहगता अपि ॥ २५  
 प्रियैः समागमं तेषां य इमं शृणुयान्नरः ।  
 प्रियाणि लभते नित्यमिह च प्रेत्य चैव ह ॥ २६  
 इष्टबान्धवसंयोगमनायासमनामयम् ।  
 य इमं श्रावयेद्विद्वान्संसिद्धिं प्राप्नुयात्पराम् ॥ २७  
 स्वाध्याययुक्ताः पुरुषाः क्रियायुक्ताश्च भारत ।  
 अध्यात्मयोगयुक्ताश्च धृतिमन्तश्च मानवाः ।  
 श्रुत्वा पर्वं त्विदं नित्यमवाप्स्यन्ति परां गतिम् ॥ २८

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

४२

सूत उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा नृपो विद्वान्हृष्टोऽभूज्जनमेजयः ।  
 पितामहानां सर्वेषां गमनागमनं तदा ॥ १  
 अब्रवीच्च मुदा युक्तः पुनरागमनं प्रति ।  
 कथं नु त्यक्तदेहानां पुनस्तद्रूपदर्शनम् ॥ २  
 इत्युक्तः स द्विजश्रेष्ठो व्यासशिष्यः प्रतापवान् ।  
 प्रोवाच वदतां श्रेष्ठस्तं नृपं जनमेजयम् ॥ ३  
 अविप्रणाशः सर्वेषां कर्मणामिति निश्चयः ।  
 कर्मजानि शरीराणि तथैवाकृतयो नृप ॥ ४  
 महाभूतानि नित्यानि भूताधिपतिसंश्रयात् ।  
 तेषां च नित्यसंवासो न विनाशो वियुज्यताम् ॥ ५  
 अनाशाय कृतं कर्म तस्य चेष्टः फलागमः ।  
 आत्मा चैभिः समायुक्तः सुखदुःखमुपाश्रुते ॥ ६  
 अविनाशी तथा नित्यं क्षेत्रज्ञ इति निश्चयः ।  
 भूतानामात्मभावो यो ध्रुवोऽसौ संविजानताम् ॥ ७  
 यावन्न क्षीयते कर्म तावदस्य स्वरूपता ।  
 संक्षीणकर्मा पुरुषो रूपान्यत्वं नियच्छति ॥ ८  
 नानाभावास्तथैकत्वं शरीरं प्राप्य संहताः ।  
 भवन्ति ते तथा नित्याः पृथग्भावं विजानताम् ॥ ९  
 अश्वमेधे श्रुतिश्चैवमश्वसंज्ञपनं प्रति ।  
 लोकान्तरगता नित्यं प्राणा नित्या हि वाजिनः ॥ १०  
 अहं हितं वदाम्येतत्प्रियं चेत्तव पार्थिव ।  
 देवयाना हि पन्थानः श्रुतास्ते यज्ञसंस्तरे ॥ ११  
 सुकृतो यत्र ते यज्ञस्तत्र देवा हितास्तव ।  
 यदा समन्विता देवाः पशूनां गमनेश्वराः ।  
 गतिमन्तश्च तेनेष्ट्वा नान्ये नित्या भवन्ति ते ॥ १२  
 नित्येऽस्मिन्पञ्चके वर्गे नित्ये चात्मनि यो नरः ।  
 अस्य नानासमायोगं यः पश्यति वृथामतिः ॥ १३  
 वियोगे शोचतेऽत्यर्थं स बाल इति मे मतिः ।

वियोगे दोषदर्शी यः संयोगमिह वर्जयेत् ।  
असङ्गे संगमो नास्ति दुःखं भुवि वियोगजम् ॥ १४

शमीकं च महात्मानं पुत्रं तं चास्य शृङ्गिणम् ।  
अमात्या ये बभूवुश्च राज्ञस्तांश्च ददर्श ह ॥ ८

अपरङ्गः परां बुद्धिं स्पृष्ट्वा मोहाद्विमुच्यते ॥ १५  
अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनं गतः ।  
नाहं तं वेद्मि नासौ मां न च मेऽस्ति विरागता ॥  
यैन येन शरीरेण करोत्ययमनीश्वरः ।  
तेन तेन शरीरेण तदवश्यमुपाश्रुते ।  
मानसं मनसाप्नोति शारीरं च शरीरवान् ॥ १७

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि  
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

४३

वैशंपायन उवाच ।

अदृष्ट्वा तु नृपः पुत्रान्दर्शनं प्रतिलब्धवान् ।  
ऋषिप्रसात्पुत्राणां स्वरूपाणां कुरुद्वह ॥ १  
स राजा राजधर्मांश्च ब्रह्मोपनिषदं तथा ।  
अवाप्तवान्नरश्रेष्ठो बुद्धिनिश्चयमेव च ॥ २  
विदुरश्च महाप्राज्ञो ययौ सिद्धिं तपोबलात् ।  
धृतराष्ट्रः समासाद्य व्यासं चापि तपस्विनम् ॥ ३

जनमेजय उवाच ।

ममापि वरदो व्यासो दर्शयेत्पितरं यदि ।  
तद्रूपवेषवयसं श्रद्धयां सर्वमेव ते ॥ ४  
प्रियं मे स्यात्कृतार्थं च स्यामहं कृतनिश्चयः ।  
प्रसादादृषिपुत्रस्य मम कामः समृध्यताम् ॥ ५

सूत उवाच ।

इत्युक्तवचने तस्मिन्नृपे व्यासः प्रतापवान् ।  
प्रसादमकरोद्धीमानानयच्च परिश्रितम् ॥ ६  
ततस्तद्रूपवयसमागतं नृपतिं दिवः ।  
श्रीमन्तं पितरं राजा ददर्श जनमेजयः ॥ ७

पितरं स्नापयामास स्वयं सत्त्वौ च पार्थिवः ॥ ९  
स्नात्वा च भरतश्रेष्ठः सोऽऽस्तीकमिदमब्रवीत् ।  
यायावरकुलोत्पन्नं जरत्कारुमुतं तदा ॥ १०  
आस्तीक विविधाश्चर्यो यज्ञोऽयमिति मे मतिः ।  
यदद्यायं पिता प्राप्तो मम शोकप्रणाशनः ॥ ११

आस्तीक उवाच ।

ऋषिद्वैपायनो यत्र पुराणस्तपसो निधिः ।  
यज्ञे कुरुकुलश्रेष्ठ तस्य लोकावुभौ जितौ ॥ १२  
श्रुतं विचित्रमाख्यानं त्वया पाण्डवनन्दन ।  
सर्पाश्च भस्मसानीता गताश्च पदवीं पितुः ॥ १३  
कथंचित्तक्षको मुक्तः सत्यत्वात्तव पार्थिव ।  
ऋषयः पूजिताः सर्वे गतिं दृष्ट्वा महात्मनः ॥ १४  
प्राप्तः सुविपुलो धर्मः श्रुत्वा पापविनाशनम् ।  
विमुक्तो हृदयग्रन्थिरुदारजनदर्शनात् ॥ १५  
ये च पक्षधरा धर्मे सद्गुत्तरुचयश्च ये ।  
यान्दृष्ट्वा हीयते पापं तेभ्यः कार्या नमस्क्रियाः ॥

सूत उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठात्स राजा जनमेजयः ।  
पूजयामास तमृषिमनुमान्य पुनः पुनः ॥ १७  
पप्रच्छ तमृषिं चापि वैशंपायनमच्युतम् ।  
कथावशेषं धर्मज्ञो वनवासस्य सत्तम ॥ १८

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

४४

जनमेजय उवाच ।

दृष्ट्वा पुत्रांस्तथा पौत्रान्सानुबन्धाञ्जनाधिपः ।

धृतराष्ट्रः किमकरोद्राजा चैव युधिष्ठिरः ॥ १

वैशंपायन उवाच ।

तद्वृद्धा महदाश्चर्यं पुत्राणां दर्शनं पुनः ।

वीतशोकः स राजर्षिः पुनराश्रममागमत् ॥ २

इतरस्तु जनः सर्वस्ते चैव परमर्षयः ।

प्रतिजगमुर्थयाकामं धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञया ॥ ३

पाण्डवास्तु महात्मानो लघुभूयिष्ठसैनिकाः ।

अनुजग्मुर्महात्मानं सदारं तं महीपतिम् ॥ ४

तमाश्रमगतं धीमान्ब्रह्मर्षिर्लोकपूजितः ।

मुनिः सत्यवतीपुत्रो धृतराष्ट्रमभाषत ॥ ५

धृतराष्ट्र महाबाहो शृणु कौरवनन्दन ।

श्रुतं ते ज्ञानवृद्धानामृषीणां पुण्यकर्मणाम् ॥ ६

ऋद्धाभिजनवृद्धानां वेदवेदाङ्गवेदिनाम् ।

धर्मज्ञानां पुराणानां वदतां विविधाः कथाः ॥ ७

मा स्म शोके मनः कार्पीर्दिष्टेन व्यथते बुधः ।

श्रुतं देवरहस्यं ते नारदादेवदर्शनात् ॥ ८

गतास्ते क्षत्रधर्मेण शस्त्रपूतां गतिं शुभाम् ।

यथा दृष्टास्त्वया पुत्रा यथाकामविहारिणः ॥ ९

युधिष्ठिरस्त्वयं धीमान्भवन्तमनुरुध्यते ।

सहितो भ्रातृभिः सर्वैः सदारः ससुहृज्जनः ॥ १०

विसर्जयैनं यात्वेष्ट स्वराज्यमनुशासताम् ।

मासः समधिको ह्येषामतीतो वसतां वने ॥ ११

एतद्धि नित्यं यत्नेन पदं रक्ष्यं परंतप ।

बहुप्रत्यर्थिकं ह्येतद्राज्यं नाम नराधिप ॥ १२

इत्युक्तः कौरवो राजा व्यासेनामितबुद्धिना ।

युधिष्ठिरमथाहूय वाग्मी वचनमब्रवीत् ॥ १३

अजातशत्रो भद्रं ते शृणु मे भ्रातृभिः सह ।

त्वत्प्रसादान्महीपाल शोको नास्मान्प्रवाधते ॥ १४

रमे चाहं त्वया पुत्र पुरेव गजसाह्वये ।

नाथेनानुगतो विद्वन्प्रियेषु परिवर्तिना ॥ १५

प्राप्तं पुत्रफलं त्वत्तः प्रीतिर्मे विपुला त्वयि ।

न मे मन्युर्महाबाहो गम्यतां पुत्र मा चिरम् ॥ १६

भवन्तं चेह संप्रेक्ष्य तपो मे परिहीयते ।

तपोयुक्तं शरीरं च त्वां दृष्ट्वा धारितं पुनः ॥ १७

मातरौ ते तथैवेमे शीर्णपर्णकृताशने ।

मम तुल्यव्रते पुत्र नचिरं वर्तयिष्यतः ॥ १८

दुर्योधनप्रभृतयो दृष्ट्वा लोकान्तरं गताः ।

व्यासस्य तपसो वीर्याद्व्रतश्च समागमात् ॥ १९

प्रयोजनं चिरं वृत्तं जीवितस्य च मेऽनघ ।

उग्रं तपः समास्थाय त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥ २०

त्वय्यद्य पिण्डः कीर्तिश्च कुलं चेदं प्रतिष्ठितम् ।

श्रो वाद्य वा महाबाहो गम्यतां पुत्र मा चिरम् ॥ २१

राजनीतिः सुबहुशः श्रुता ते भरतर्षभ ।

संदेष्टव्यं न पश्यामि कृतमेतावता विभो ॥ २२

इत्युक्तवचनं तात नृपो राजानमब्रवीत् ।

न मामर्हसि धर्मज्ञ परित्यक्तुमनागसम् ॥ २३

कामं गच्छन्तु मे सर्वे भ्रातरोऽनुचरास्तथा ।

भवन्तमहमन्विष्ये मातरौ च यतव्रते ॥ २४

तमुवाचाथ गान्धारी मैवं पुत्र शृणुष्व मे ।

त्वय्यधीनं कुरुकुलं पिण्डश्च श्वशुरस्य मे ॥ २५

गम्यतां पुत्र पर्याप्तमेतावत्पूजिता वयम् ।

राजा यदाह तत्कार्यं त्वया पुत्र पितुर्वचः ॥ २६

इत्युक्तः स तु गान्धार्या कुन्तीमिदमुवाच ह ।

स्नेहबाष्पाकुले नेत्रे प्रमृज्य रुदतीं वचः ॥ २७

विसर्जयति मां राजा गान्धारी च यशस्विनी ।

भवत्यां बद्धचित्तस्तु कथं यास्यामि दुःखितः ॥ २८

न चोत्सहे तपोविघ्नं कर्तुं ते धर्मचारिणि ।

तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत् ॥ २९

ममापि न तथा राज्ञि राज्ये बुद्धिर्यथा पुरा ।

तपस्येवानुरक्तं मे मनः सर्वात्मना तथा ॥ ३०

शून्येयं च मही सर्वा न मे प्रीतिकरी शुभे ।  
 बान्धवा नः परिक्षीणा बलं नो न यथा पुरा ॥ ३१  
 पाञ्चालाः सुभृशं क्षीणाः कन्यामात्रावशेषिताः ।  
 न तेषां कुलकर्तारं कचित्पश्याम्यहं शुभे ॥ ३२  
 सर्वे हि भस्मसानीता द्रोणेनैकेन संयुगे ।  
 अवशेषास्तु निहता द्रोणपुत्रेण वै निशि ॥ ३३  
 चेदयश्चैव मत्स्याश्च दृष्टपूर्वास्तथैव नः ।  
 केवलं वृष्णिचक्रं तु वासुदेवपरिग्रहात् ।  
 यं दृष्ट्वा स्थातुमिच्छामि धर्मार्थं नान्यहेतुकम् ॥ ३४  
 शिवेन पश्य नः सर्वान्दुर्लभं दर्शनं तव ।  
 भविष्यत्यम्ब राजा हि तीव्रमारप्स्यते तपः ॥ ३५  
 एतच्छ्रुत्वा महाबाहुः सहदेवो युधां पतिः ।  
 युधिष्ठिरमुवाचेदं बाष्पव्याकुललोचनः ॥ ३६  
 नोत्सहेऽहं परित्यक्तुं मातरं पार्थिवर्षभ ।  
 प्रतियातु भवान्क्षिप्रं तपस्तप्स्याम्यहं वने ॥ ३७  
 इहैव शोषयिष्यामि तपसाहं कलेवरम् ।  
 पादशुश्रूषणे युक्तो राज्ञो मात्रोस्तथानयोः ॥ ३८  
 तमुवाच ततः कुन्ती परिष्वज्य महाभुजम् ।  
 गम्यतां पुत्र मैव त्वं वोचः कुरु वचो मम ॥ ३९  
 आगमा वः शिवाः सन्तु स्वस्था भवत पुत्रकाः ।  
 उपरोधो भवेदेवमस्माकं तपसः कृते ॥ ४०  
 त्वत्स्नेहपाशबद्धा च हीयेयं तपसः परात् ।  
 तस्मात्पुत्रक गच्छ त्वं शिष्टमल्पं हि नः प्रभो ॥ ४१  
 एवं संस्तम्भितं वाक्यैः कुन्त्या बहुविधैर्मनः ।  
 सहदेवस्य राजेन्द्र राज्ञश्चैव विशेषतः ॥ ४२  
 ते मात्रा समनुज्ञाता राज्ञा च कुरुपुंगवाः ।  
 अभिवाद्य कुरुश्रेष्ठमामन्त्रयितुमारभन् ॥ ४३  
 राजन्प्रतिगमिष्यामः शिवेन प्रतिनन्दिताः ।  
 अनुज्ञातास्त्वया राजन्गमिष्यामो विकल्मषाः ॥ ४४  
 एवमुक्तः स राजर्षिर्धर्मराज्ञा महात्मना ।

अनुजज्ञे जयाशीर्भिरभिनन्द्य युधिष्ठिरम् ॥ ४५  
 भीमं च बलिनां श्रेष्ठं सान्त्वयामास पार्थिवः ।  
 स चास्य सम्यङ्बोधाय प्रत्यपद्यत वीर्यवान् ॥ ४६  
 अर्जुनं च समाश्लिष्य यमौ च पुरुर्पभौ ।  
 अनुजज्ञे स कौरव्यः परिष्वज्याभिनन्द्य च ॥ ४७  
 गान्धार्या चाभ्यनुज्ञाताः कृतपादाभिवन्दनाः ।  
 जनन्या समुपाघ्राताः परिष्वक्ताश्च ते नृपम् ।  
 चक्रुः प्रदक्षिणं सर्वे वत्सा इव निवारणे ॥ ४८  
 पुनः पुनर्निरीक्षन्तः प्रजग्मुस्ते प्रदक्षिणम् ।  
 तथैव द्रौपदी साध्वी सर्वाः कौरवयोषितः ॥ ४९  
 न्यायतः श्वशुरे वृत्तिं प्रयुज्य प्रययुस्ततः ।  
 श्वश्रूभ्यां समनुज्ञाताः परिष्वज्याभिनन्दिताः ।  
 संदिष्टाश्चेतिकर्तव्यं प्रययुर्मर्तुभिः सह ॥ ५०  
 ततः प्रजज्ञे विनदः सूतानां युज्यतामिति ।  
 उष्ट्राणां क्रोशतां चैव हयानां हेषतामपि ॥ ५१  
 ततो युधिष्ठिरो राजा सदारः सहसैनिकः ।  
 नगरं हास्तिनपुरं पुनरायात्सबान्धवः ॥ ५२

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

॥ समाप्तं पुत्रदर्शनपर्व ॥

४५

वैशंपायन उवाच ।

द्विवर्षोपनिवृत्तेषु पाण्डवेषु यदृच्छया ।  
 देवर्षिर्नारदो राजन्नाजगाम युधिष्ठिरम् ॥ १  
 तमभ्यर्च्य महाबाहुः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।  
 आसीनं परिविश्वस्तं प्रोवाच वदतां वरः ॥ २  
 चिरस्य खलु पश्यामि भगवन्तमुपस्थितम् ।  
 कच्चित्ते कुशलं विप्र शुभं वा प्रत्युपस्थितम् ॥ ३  
 के देशाः परिदृष्टास्ते किं च कार्यं करोमि ते ।

तद्ब्रूहि द्विजमुख्य त्वमस्माकं च प्रियोऽतिथिः ॥४

नारद उवाच ।

चिरदृष्टोऽसि मे राजन्नागतोऽस्मि तपोवनात् ।

परिदृष्टानि तीर्थानि गङ्गा चैव मया नृप ॥ ५

युधिष्ठिर उवाच ।

वदन्ति पुरुषा मेऽद्य गङ्गातीरनिवासिनः ।

धृतराष्ट्रं महात्मानमास्थितं परमं तपः ॥ ६

अपि दृष्टस्त्वया तत्र कुशली स कुरुद्वहः ।

गान्धारी च पृथा चैव सूतपुत्रश्च संजयः ॥ ७

कथं च वर्तते चाद्य पिता मम स पार्थिवः ।

श्रोतुमिच्छामि भगवन् यदि दृष्टस्त्वया नृपः ॥ ८

नारद उवाच ।

स्थिरीभूय महाराज शृणु सर्वं यथातथम् ।

यथा श्रुतं च दृष्टं च मया तस्मिन्स्तपोवने ॥ ९

वनवासनिवृत्तेषु भवत्सु कुरुनन्दन ।

कुरुक्षेत्रात्पिता तुभ्यं गङ्गाद्वारं ययौ नृप ॥ १०

गान्धार्या सहितो धीमान्वध्वा कुन्त्या समन्वितः ।

संजयेन च सूतेन साप्रिहोत्रः सयाजकः ॥ ११

आतस्थे स तपस्तीव्रं पिता तव तपोधनः ।

वीटां मुखे समाधाय वायुभक्षोऽभवन्मुनिः ॥ १२

वने स मुनिभिः सर्वैः पूज्यमानो महातपाः ।

त्वगस्थिमात्रशेषः स षण्मासानभवन्नृपः ॥ १३

गान्धारी तु जलाहारा कुन्ती मासोपवासिनी ।

संजयः षष्ठभक्तेन वर्तयामास भारत ॥ १४

अग्नींस्तु याजकास्तत्र जुहुवुर्विधिवत्प्रभो ।

दृश्यतोऽदृश्यतश्चैव वने तस्मिन्नृपस्य ह ॥ १५

अनिकेतोऽथ राजा स बभूव वनगोचरः ।

ते चापि सहिते देव्यौ संजयश्च तमन्वयुः ॥ १६

संजयो नृपतेर्नेता समेषु विषमेषु च ।

गान्धार्यास्तु पृथा राजंश्चक्षुरासीदनिन्दिता ॥ १७

ततः कदाचिद्गङ्गायाः कच्छे स नृपसत्तमः ।

गङ्गायामाप्नुतो धीमानाश्रमाभिमुखोऽभवत् ॥ १८

अथ वायुः समुद्भूतो दावाग्निरभवन्महान् ।

ददाह तद्वनं सर्वं परिगृह्य समन्ततः ॥ १९

दह्यत्सु मृगयूथेषु द्विजिह्वेषु समन्ततः ।

वराहाणां च यूथेषु संश्रयत्सु जलाशयान् ॥ २०

समाविद्धे वने तस्मिन्प्राप्ते व्यसन उत्तमे ।

निराहारतया राजा मन्दप्राणविचेष्टितः ।

असमर्थोऽपसरणे सुकृशौ मातरौ च ते ॥ २१

ततः स नृपतिर्दृष्ट्वा वह्निमायान्तमन्तिकात् ।

इदमाह ततः सूतं संजयं पृथिवीपते ॥ २२

गच्छ संजय यत्राग्निर्न त्वां दहति कर्हिचित् ।

वयमत्राग्निना युक्ता गमिष्यामः परां गतिम् ॥ २३

तमुवाच किलोद्विग्नः संजयो वदतां वरः ।

राजन्मृत्युरनिष्टोऽयं भविता ते वृथाग्निना ॥ २४

न चोपायं प्रपश्यामि मोक्षणे जातवेदसः ।

यदत्रानन्तरं कार्यं तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ २५

इत्युक्तः संजयेनेदं पुनराह स पार्थिवः ।

नैप मृत्युरनिष्टो नो निःसृतानां गृहात्स्वयम् ॥ २६

जलमग्निस्तथा वायुरथ वापि विकर्शनम् ।

तापसानां प्रशस्यन्ते गच्छ संजय माचिरम् ॥ २७

इत्युक्त्वा संजयं राजा समाधाय मनस्तदा ।

प्राङ्मुखः सह गान्धार्या कुन्त्या चोपाविशत्तदा ॥

संजयस्तं तथा दृष्ट्वा प्रदक्षिणमथाकरोत् ।

उवाच चैनं मेधावी युद्धात्मानमिति प्रभो ॥ २९

ऋषिपुत्रो मनीषी स राजा चक्रेऽस्य तद्वचः ।

संनिरुध्येन्द्रियग्राममासीत्काष्ठोपमस्तदा ॥ ३०

गान्धारी च महाभागा जननी च पृथा तव ।

दावाग्निना समायुक्ते स च राजा पिता तव ॥ ३१



संजयस्तु महामात्रस्तस्माद्वावादमुच्यत ।  
 गङ्गाकूले मया दृष्टस्तापसैः परिवारितः ॥ ३२  
 स तानामत्रय तेजस्वी निवेद्यैतच्च सर्वशः ।  
 प्रययौ संजयः सूतो हिमवन्तं महीधरम् ॥ ३३  
 एवं स निधनं प्राप्तः कुरुराजो महामनाः ।  
 गान्धारी च पृथा चैव जनन्यौ ते नराधिप ॥ ३४  
 यंदृच्छयानुव्रजता मया राज्ञः कलेवरम् ।  
 तयोश्च देव्योरुभयोर्दृष्टानि भरतर्षभ ॥ ३५  
 ततस्तपोवने तस्मिन्समाजग्मुस्तपोधनाः ।  
 श्रुत्वा राज्ञस्तथा निष्ठां न त्वशोचन्गतिं च ते ॥ ३६  
 तत्राश्रौषमहं सर्वमेतत्पुरुषसत्तम ।  
 यथा च नृपतिर्दग्धो देव्यौ ते चेति पाण्डव ॥ ३७  
 न शोचितव्य राजेन्द्र स्वन्तः स पृथिवीपतिः ।  
 प्राप्तवानग्निसंयोगं गान्धारी जननी च ते ॥ ३८

वैशंपायन उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु सर्वेषां पाण्डवानां महात्मनाम् ।  
 निर्याणं धृतराष्ट्रस्य शोकः समभवन्महान् ॥ ३९  
 अन्तःपुराणां च तदा महानार्तस्वरोऽभवत् ।  
 पौराणां च महाराज श्रुत्वा राज्ञस्तदा गतिम् ॥ ४०  
 अहो धिगिति राजा तु विक्रुश्य भृशदुःखितः ।  
 ऊर्ध्वबाहुः स्मरन्मातुः प्ररुरोद युधिष्ठिरः ।  
 भीमसेनपुरोगाश्च भ्रातरः सर्व एव ते ॥ ४१  
 अन्तःपुरेषु च तदा सुमहान् रुदितस्वनः ।  
 प्रादुरासीन्महाराज पृथां श्रुत्वा तथागताम् ॥ ४२  
 तं च वृद्धं तथा दग्धं हतपुत्रं नराधिपम् ।  
 अन्वशोचन्त ते सर्वे गान्धारीं च तपस्विनीम् ॥ ४३  
 तस्मिन्नुपरते शब्दे मुहूर्तादिव भारत ।  
 निगृह्य बाष्पं धैर्येण धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

४६

युधिष्ठिर उवाच ।

तथा महात्मनस्तस्य तपस्युधे च वर्ततः ।  
 अनाथस्येव निधनं तिष्ठत्स्वस्मासु बन्धुषु ॥ १  
 दुर्विज्ञेया हि गतयः पुरुषाणां मता मम ।  
 यत्र वैचित्रवीर्योऽसौ दग्ध एवं द्वाग्निना ॥ २  
 यस्य पुत्रशतं श्रीमदभवद्वाहुशालिनः ।  
 नागायुतबलो राजा स दग्धो हि द्वाग्निना ॥ ३  
 यं पुरा पर्यवीजन्त तालवृन्तैर्वरस्त्रियः ।  
 तं गृध्राः पर्यवीजन्त द्वाग्निपरिकालितम् ॥ ४  
 सूतमागधसचैश्च शयानो यः प्रबोध्यते ।  
 धरण्यां स नृपः शेते पापस्य मम कर्मभिः ॥ ५  
 न तु शोचामि गान्धारीं हतपुत्रां यशस्विनीम् ।  
 पतिलोकमनुप्राप्तां तथा भर्तृव्रते स्थिताम् ॥ ६  
 पृथामेव तु शोचामि या पुत्रैश्चर्यमृद्धिमत् ।  
 उत्सृज्य सुमहद्दीप्तं वनवासमरोचयत् ॥ ७  
 धिग्राज्यमिदमस्माकं धिग्बलं धिक्पराक्रमम् ।  
 क्षत्रधर्मं च धिग्यस्मान्मृता जीवामहे वयम् ॥ ८  
 सुसूक्ष्मा किल कालस्य गतिर्द्विजवरोत्तम ।  
 यत्समुत्सृज्य राज्यं सा वनवासमरोचयत् ॥ ९  
 युधिष्ठिरस्य जननी भीमस्य विजयस्य च ।  
 अनाथवत्कथं दग्धा इति मुह्यामि चिन्तयन् ॥ १०  
 वृथा संतोषिनो बह्विः स्वाण्डवे सव्यसाचिना ।  
 उपकारमजानन्स कृतव्रत इति मे मतिः ॥ ११  
 यत्रादहत्स भगवान्मातरं सव्यसाचिनः ।  
 कृत्वा यो ब्राह्मणच्छद्म भिक्षार्थी समुपागतः ।  
 धिगग्निं धिक्च पार्थस्य विश्रुतां सत्यसंधताम् ॥ १२  
 इदं कष्टतरं चान्यद्भगवन्प्रतिभाति मे ।  
 वृथाग्निना समायोगो यदभूत्पृथिवीपते ॥ १३  
 तथा तपस्विनस्तस्य राजर्षेः कौरवस्य ह ।

कथमेवंविधो मृत्युः प्रशास्य पृथिवीमिमाम् ॥ १४  
 तिष्ठत्सु मन्त्रपूतेषु तस्याग्निषु महावने ।  
 वृथाग्निना समायुक्तो निष्ठां प्रातः पिता मम ॥ १५  
 मन्ये पृथा वेपमाना कृशा धमनिसंतता ।  
 हा तात धर्मराजेति समाक्रन्दन्महाभये ॥ १६  
 भीम पर्याग्रुहि भयादिति चैवाभिवाशती ।  
 समन्ततः परिक्षिप्ता माता मेऽभूद्वाग्निना ॥ १७  
 सहदेवः प्रियस्तस्याः पुत्रेभ्योऽधिक एव तु ।  
 न चैनां मोक्षयामास वीरो माद्रवतीसुतः ॥ १८  
 तच्छ्रुत्वा रुरुदुः सर्वे समालिङ्ग्य परस्परम् ।  
 पाण्डवाः पञ्च दुःखार्ता भूतानीव युगक्षये ॥ १९  
 तेषां तु पुरुषेन्द्राणां रुदतां रुदितस्वनः ।  
 प्रासादाभोगसंरुद्धो अन्वरौत्सीत्स रोदसी ॥ २०

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

४७

नारद उवाच ।

नासौ वृथाग्निना दग्धो यथा तत्र श्रुतं मया ।  
 वैचित्रवीर्यो नृपतिस्तत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ १  
 वनं प्रविशता तेन वायुभक्षेण धीमता ।  
 अग्नयः कारयित्वेष्टिमुत्सृष्टा इति नः श्रुतम् ॥ २  
 याजकास्तु ततस्तस्य तानग्रीभिर्जने वने ।  
 समुत्सृज्य यथाकामं जग्मुर्भरतसत्तम ॥ ३  
 स विवृद्धस्तदा वह्निर्वने तस्मिन्नभूत्किल ।  
 तेन तद्वनमादीप्तमिति मे तापसाश्रुवन् ॥ ४  
 स राजा जाह्नवीकच्छे यथा ते कथितं मया ।  
 तेनाग्निना समायुक्तः स्वेनैव भरतर्षभ ॥ ५  
 एवमावेदयामासुर्मुनयस्ते ममानघ ।  
 ये ते भागीरथीतीरे मया दृष्टा युधिष्ठिर ॥ ६  
 एवं स्वेनाग्निना राजा समायुक्तो महीपते ।

मा शोचिथास्त्वं नृपतिं गतः स परमां गतिम् ॥ ७  
 गुरुशुश्रूषया चैव जननी तव पाण्डव ।  
 प्राप्ता सुमहती सिद्धिमिति मे नात्र संशयः ॥ ८  
 कर्तुमर्हसि कौरव्य तेषां त्वमुदकक्रियाम् ।  
 भ्रातृभिः सहितः सर्वैरेतदत्र विधीयताम् ॥ ९  
 वैशंपायन उवाच ।

ततः स पृथिवीपालः पाण्डवानां धुरंधरः ।  
 निर्ययौ सह सोदयैः सदारो भरतर्षभ ॥ १०  
 पौरजानपदाश्चैव राजभक्तिपुरस्कृताः ।  
 गङ्गां प्रजग्मुर्भितो वाससैकेन संवृताः ॥ ११  
 ततोऽवगाह्य सलिलं सर्वे ते कुरुपुंगवाः ।  
 युयुत्सुमप्रतः कृत्वा ददुस्तोयं महात्मने ॥ १२  
 गान्धार्याश्च पृथायाश्च विधिवन्नामगोत्रतः ।  
 शौचं निवर्तयन्तस्ते तत्रोषुर्नगराद्वहिः ॥ १३  
 प्रेषयामास स नरान्विधिज्ञानात्कारिणः ।  
 गङ्गाद्वारं कुरुश्रेष्ठो यत्र दग्धोऽभवन्नृपः ॥ १४  
 तत्रैव तेषां कुर्यानि गङ्गाद्वारेऽन्वशात्तदा ।  
 कर्तव्यानीति पुरुषान्दत्तदेयान्महीपतिः ॥ १५  
 द्वादशेऽहनि तेभ्यः स कृतशौचो नराधिपः ।  
 ददौ श्राद्धानि विधिवदक्षिणावन्ति पाण्डवः ॥ १६  
 धृतराष्ट्रं समुद्दिश्य ददौ स पृथिवीपतिः ।  
 सुवर्णं रजतं गाश्च शय्याश्च सुमहाधनाः ॥ १७  
 गान्धार्याश्चैव तेजस्वी पृथायाश्च पृथक्पृथक् ।  
 संकीर्त्य नामनी राजा ददौ दानमनुत्तमम् ॥ १८  
 यो यदिच्छति यावच्च तावत्स लभते द्विजः ।  
 शयनं भोजनं यानं मणिरत्नमथो धनम् ॥ १९  
 यानमाच्छादनं भोगान्दासीश्च परिचारिकाः ।  
 ददौ राजा समुद्दिश्य तयोर्मात्रोर्महीपतिः ॥ २०  
 ततः स पृथिवीपालो दत्त्वा श्राद्धान्यनेकशः ।  
 प्रविवेश पुनर्धामान्नगरं वारणाह्वयम् ॥ २१

ते चापि राजवचनात्पुरुषा ये गताभवन् ।  
 संकल्प्य तेषां कुल्यानि पुनः प्रत्यागमंस्ततः ॥ २२  
 माल्यैर्गन्धैश्च विविधैः पूजयित्वा यथाविधि ।  
 कुल्यानि तेषां संयोज्य तदाचख्युर्महीपतेः ॥ २३  
 समाश्वास्य च राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।  
 नारदोऽप्यगमद्राजन्परमर्षिर्यथेप्सितम् ॥ २४  
 एवं वर्षाण्यतीतानि धृतराष्ट्रस्य धीमतः ।  
 वनवासे तदा त्रीणि नगरे दश पञ्च च ॥ २५

हतपुत्रस्य संग्रामे दानानि ददतः सदा ।  
 ज्ञातिसंबन्धिसित्राणां भ्रातृणां स्वजनस्य च ॥ २६  
 युधिष्ठिरस्तु नृपतिर्नातिप्रीतमनास्तदा ।  
 धारयामास तद्राज्यं निहतज्ञातिबान्धवः ॥ २७  
 इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिकपर्वणि  
 सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥  
 नारदागमनपर्व समाप्तम् ॥

॥ समाप्तमाश्रमवासिकं पर्व ॥

## मौसलपर्व

१

वैशंपायन उवाच ।

षट्त्रिंशे त्वथ संप्राप्ते वर्षे कौरवमन्दनः ।  
 ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः ॥ १  
 ववुर्वाताः सनिर्घाता रूक्षाः शर्करवर्षिणः ।  
 अपसव्यानि शकुना मण्डलानि प्रचक्रिरे ॥ २  
 प्रत्यगूहुर्महानद्यो दिशो नीहारसंवृताः ।  
 उल्काश्चाङ्गारवर्षिण्यः प्रपेतुर्गगनाद्भुवि ॥ ३  
 आदित्यो रजसा राजन्समवच्छन्नमण्डलः ।  
 विरश्मिरुदये नित्यं कबन्धैः समदृश्यत ॥ ४  
 परिवेषाश्च दृश्यन्ते दारुणाः चन्द्रसूर्ययोः ।  
 त्रिवर्णाः श्यामरूक्षान्तास्तथा भस्मारुणप्रभाः ॥ ५  
 एते चान्ये च बहव उत्पाता भयशंसिनः ।  
 दृश्यन्तेऽहरहो राजन्हृदयोद्वेगकारकाः ॥ ६  
 कस्यचित्त्वथ कालस्य कुरुराजो युधिष्ठिरः ।  
 शुश्राव वृष्णिचक्रस्य मौसले कदनं कृतम् ॥ ७  
 विमुक्तं वासुदेवं च श्रुत्वा रामं च पाण्डवः ।  
 समानीयात्रवीड्रातृन्कि करिष्याम इत्युत ॥ ८  
 परस्परं समासाद्य ब्रह्मदण्डबलात्कृतान् ।  
 वृष्णीन्विनष्टान्ते श्रुत्वा व्यथिताः पाण्डवाभवन् ॥  
 निधनं वासुदेवस्य समुद्रस्येव शोषणम् ।  
 वीरा न श्रद्धुस्तस्य विनाशं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १०  
 मौसलं ते परिश्रुत्य दुःखशोकसमन्विताः ।

विषण्णा हतसंकल्पाः पाण्डवाः समुपाविशन् ॥ ११

इति श्रीमद्वाभारते मौसलपर्वणि

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

जनमेजय उवाच ।

कथं विनष्टा भगवन्नन्धका वृष्णिभिः सह ।  
 पश्यतो वासुदेवस्य भोजाश्चैव महारथाः ॥ १

वैशंपायन उवाच ।

षट्त्रिंशेऽथ ततो वर्षे वृष्णीनामनयो महान् ।  
 अन्योन्यं मुसलैस्ते तु निजघ्नुः कालचोदिताः ॥ २

जनमेजय उवाच ।

केनानुशप्तास्ते वीराः क्षयं वृष्ण्यन्धका ययुः ।  
 भोजाश्च द्विजवर्यं त्वं विस्तरेण वदस्व मे ॥ ३

वैशंपायन उवाच ।

विश्वामित्रं च कण्वं च नारदं च तपोधनम् ।  
 सारणप्रमुखा वीरा ददृशुर्द्वारकागतान् ॥ ४  
 ते वै साम्बं पुरस्कृत्य भूषयित्वा स्त्रियं यथा ।  
 अत्रुवन्नुपसंगम्य दैवदण्डनिपीडिताः ॥ ५  
 इयं स्त्री पुत्रकामस्य बभ्रोरमिततेजसः ।  
 ऋषयः साधु जानीत किमियं जनयिष्यति ॥ ६  
 इत्युक्तास्ते तदा राजन्विप्रलम्भप्रधर्षिताः ।  
 प्रत्यब्रुवंस्तान्मुनयो यत्तच्छृणु नराधिप ॥ ७

वृष्ण्यन्धकविनाशाय मुसलं घोरमायसम् ।  
वासुदेवस्य दायादः साम्बोऽय जनयिष्यति ॥ ८  
येन यूयं सुदुर्वृत्ता नृशंसा जातमन्यवः ।  
उच्छेत्तारः कुलं कृत्स्नमृते रामजनार्दनौ ॥ ९  
समुद्रं यास्यति श्रीमांस्त्यक्त्वा देहं हलायुधः ।  
जरा कृष्णं महात्मानं शयानं भुवि भेत्यति ॥ १०  
इत्यश्रुवन्त ते राजन्प्रलब्धास्तैर्दुरात्मभिः ।  
मुनयः क्रोधरक्ताक्षाः समीक्ष्याथ परस्परम् ॥ ११  
तथोक्त्वा मुनयस्ते तु ततः केशवमभ्ययुः ॥ १२  
अथाब्रवीत्तदा वृष्णीन्श्रुत्वैव मधुसूदनः ।  
अन्तर्ज्ञो मतिमांस्तस्य भवितव्यं तथेति तान् ॥ १३  
एवमुक्त्वा हृषीकेशः प्रविवेश पुनर्गृहान् ।  
कृतान्तमन्यथा नैच्छत्कर्तुं स जगतः प्रभुः ॥ १४  
श्रोभूतेऽथ ततः साम्बो मुसलं तदसूत वै ।  
वृष्ण्यन्धकविनाशाय किंकरप्रतिमं महत् ॥ १५  
प्रसूतं शापजं घोरं तच्च राज्ञे न्यवेदयन् ।  
विषण्णरूपस्तद्राजा सूक्ष्मं चूर्णमकारयत् ॥ १६  
प्राक्षिपन्सागरे तच्च पुरुषा राजशासनात् ।  
अघोषयंश्च नगरे वचनादाहुकस्य च ॥ १७  
अद्य प्रभृति सर्वेषु वृष्ण्यन्धकगृहेष्विह ।  
सुरासवो न कर्तव्यः सर्वैर्नगरवासिभिः ॥ १८  
यश्च नोऽविदितं कुर्यात्पेयं कश्चिन्नरः कचित् ।  
जीवन्स शूलमारोहेत्स्वयं कृत्वा सबान्धवः ॥ १९  
ततो राजभयात्सर्वे नियमं चक्रिरे तदा ।  
नराः शासनमाज्ञाय तस्य राज्ञो महात्मनः ॥ २०

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

३

वैशंपायन उवाच ।

एवं प्रयतमामानां वृष्णीनामन्धकैः सह ।

कालो गृहाणि सर्वेषां परिचक्राम नित्यशः ॥ १  
करालो विकटो मुण्डः पुरुषः कृष्णपिङ्गलः ।  
गृहाण्यवेक्ष्य वृष्णीनां नादृश्यत पुनः कचित् ॥ २  
उत्पेदिरे महाबाता दारुणाश्च दिने दिने ।  
वृष्ण्यन्धकविनाशाय बहवो रोमहर्षणाः ॥ ३  
विवृद्धमूषका रथ्या विभिन्नमणिकास्तथा ।  
चीचीकूचीति वाश्यन्त्यः सारिका वृष्णिवेश्मसु ।  
नोपशाम्यति शब्दश्च स दिवारात्रमेव हि ॥ ४  
अनुकुर्वन्नुलूकानां सारसा विस्तं तथा ।  
अजाः शिवानां च रुतमन्वकुर्वत भारत ॥ ५  
पाण्डुरा रक्तपादाश्च विहगाः कालचोदिताः ।  
वृष्ण्यन्धकानां गेहेषु कपोता व्यचरंस्तदा ॥ ६  
व्यजायन्त खरा गोषु करभाश्चतरीषु च ।  
शुनीह्वपि विडालाश्च मूषका नकुलीषु च ॥ ७  
नापत्रपन्त पापानि कुर्वन्तो वृष्ण्यस्तदा ।  
प्राद्विषन्ब्राह्मणांश्चापि पितृन्देवांस्तथैव च ॥ ८  
गुरुंश्चाप्यवमन्यन्त न तु रामजनार्दनौ ।  
पत्न्यः पतीन्व्युच्चरन्त पत्नीश्च पतयस्तथा ॥ ९  
विभावसुः प्रज्वलितो वामं विपरिवर्तते ।  
नीललोहितमाङ्गिष्ठा विसृजन्नर्चिषः पृथक् ॥ १०  
उदयास्तमने नित्यं पुर्यां तस्यां दिवाकरः ।  
व्यदृश्यतासकृत्पुमिः कबन्धैः परिवारितः ॥ ११  
महानसेषु सिद्धेऽग्ने संस्कृतेऽतीव भारत ।  
आहार्यमाणे क्रमयो व्यदृश्यन्त नराधिप ॥ १२  
पुण्याहे वाच्यमाने च जपत्सु च महात्मसु ।  
अभिधावन्तः श्रूयन्ते न चादृश्यत कश्चन ॥ १३  
परस्परं च नक्षत्रं हन्यमान पुनः पुनः ।  
ग्रहैरपश्यन्सर्वे ते नात्मनस्तु कथंचन ॥ १४  
नदन्तं पाञ्चजन्यं च वृष्ण्यन्धकनिवेशने ।  
समन्तात्प्रत्यवाश्यन्त रासभा दारुणस्वराः ॥ १५

एवं पश्यन्हृषीकेशः संप्राप्तं कालपर्ययम् ।  
 त्रयोदश्याममावास्यां तान्दृष्ट्वा प्राब्रवीदिदम् ॥ १६  
 चतुर्दशी पञ्चदशी कृतेयं राहुणा पुनः ।  
 तदा च भारते युद्धे प्राप्ता चाद्य क्षयाय नः ॥ १७  
 विमृशन्नेव कालं तं परिचिन्त्य जनार्दनः ।  
 मेने प्राप्तं स षट्त्रिंशं वर्षं वै केशिसूदनः ॥ १८  
 पुत्रशोकाभिसंतप्ता गान्धारी हतबान्धवा ।  
 यदनुव्याजहारार्तां तदिदं समुपागतम् ॥ १९  
 इदं च तदनुप्राप्तमब्रवीद्यद्युधिष्ठिरः ।  
 पुरा व्यूढेष्वनीकेषु दृष्ट्वोत्पातान्सुदारुणान् ॥ २०  
 इत्युक्त्वा वासुदेवस्तु चिकीर्षन्सत्यमेव तत् ।  
 आज्ञापयामास तदा तीर्थयात्रामरिदम् ॥ २१  
 अघोषयन्त पुरुषास्तत्र केशवशासनात् ।  
 तीर्थयात्रा समुद्रे वः कार्येति पुरुषर्षभाः ॥ २२  
 इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

वैशंपायन उवाच ।

काली स्त्री पाण्डुरैर्दन्तैः प्रविश्य हसती निशि ।  
 स्त्रियः स्वप्नेषु मुष्णन्ती द्वारकां परिधावति ॥ १  
 अलंकाराश्च छत्रं च ध्वजाश्च कवचानि ।  
 द्वियमाणान्यदृश्यन्त रक्षोभिः सुभयानकैः ॥ २  
 तच्चाग्निदत्तं कृष्णस्य वज्रनाभमयस्मयम् ।  
 दिवमाचक्रमे चक्रं वृष्णीनां पश्यतां तदा ॥ ३

युक्तं रथं दिव्यमादित्यवर्णं

हयाहरन्पश्यतो दारुकस्य ।

ते सागरस्योपरिष्ठादवर्त-

न्मनोजवाश्चतुरो वाजिमुख्याः ॥ ४

तालः सुपर्णश्च महाध्वजौ तौ

सुपूजितौ रामजनार्दनाभ्याम् ।

उच्चैर्जहुरप्सरसो दिवानिशं

वाचश्चोचुर्गम्यतां तीर्थयात्रा ॥ ५

ततो जिगमिषन्तस्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।

सान्तःपुरास्तदा तीर्थयात्रामैच्छन्नरर्षभाः ॥ ६

ततो भोज्यं च भक्ष्यं च पेयं चान्धकवृष्णयः ।

बहु नानाविधं चक्रुर्मद्यं मांसमनेकशः ॥ ७

ततः सीधुषु सक्ताश्च निर्ययुर्नगराद्बहिः ।

यानैरश्वैर्गजैश्चैव श्रीमन्तस्तिग्मतेजसः ॥ ८

ततः प्रभासे न्यवसन्त्यथोद्देशं यथागृहम् ।

प्रभूतभक्ष्यपेयास्ते सदारा यादवास्तदा ॥ ९

निविष्टांस्तान्निशम्याथ समुद्रान्ते स योगवित् ।

जगामामन्त्र्य तान्वीरानुद्धवोऽर्थविशारदः ॥ १०

तं प्रस्थितं महात्मानमभिवाद्य कृताञ्जलिम् ।

जानन्विनाशं वृष्णीनां नैच्छद्धारयितुं हरिः ॥ ११

ततः कालपरीतास्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।

अपश्यन्नुद्धवं यान्तं तेजसावृत्य रोदसी ॥ १२

ब्राह्मणार्थेषु यत्सिद्धमन्त्रं तेषां महात्मनाम् ।

तद्धानरेभ्यः प्रददुः सुरागन्धसमन्वितम् ॥ १३

ततस्तूर्यशताकीर्णं नटनर्तकसंकुलम् ।

प्रावर्तत महापानं प्रभासे तिग्मतेजसाम् ॥ १४

कृष्णस्य संनिधौ रामः सहितः कृतवर्मणा ।

अपिबद्युयुधानश्च गदो बभ्रुस्तथैव च ॥ १५

ततः परिषदो मध्ये युयुधानो मदोत्कटः ।

अब्रवीत्कृतवर्माणमवहस्यावमन्य च ॥ १६

कः क्षत्रियो मन्यमानः सुप्तान्हन्यान्मृतानिव ।

न तन्मृष्यन्ति हार्दिक्य यादवा यच्चया कृतम् ॥

इत्युक्ते युयुधानेन पूजयामास तद्वचः ।

प्रद्युम्नो रथिनां श्रेष्ठो हार्दिक्यमवमन्य च ॥ १८

ततः परमसंकुद्धः कृतवर्मा तमब्रवीत् ।

निर्दिशन्निव सावज्ञं तदा सव्येन पाणिना ॥ १९

भूरिश्रवादिन्नबाहुयुद्धे प्रायगतस्त्वया ।  
 वधेन सुनृशंसेन कथं वीरेण पातितः ॥ २०  
 इति तस्य वचः श्रुत्वा केशव परवीरहा ।  
 तिर्यक्सरोषया दृष्ट्या वीक्षांचक्रे स मन्युमान् ॥ २१  
 मणिः स्यमन्तकश्चैव यः स सत्राजितोऽभवत् ।  
 तां कथां स्मारयामास सात्यकिर्मधुसूदनम् ॥ २२  
 तच्छ्रुत्वा केशवस्याङ्गमगमद्दुदती तदा ।  
 सत्यभामा प्रकुपिता कोपयन्ती जनार्दनम् ॥ २३  
 तत उत्थाय सक्रोधः सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत् ।  
 पञ्चानां द्रौपदेयानां धृष्टद्युम्नशिखण्डिनोः ॥ २४  
 एष गच्छामि पदवीं सत्येन च तथा शपे ।  
 सौप्तिके ये च निहताः सुप्तानेन दुरात्मना ॥ २५  
 द्रोणपुत्रसहायेन पापेन कृतवर्मणा ।  
 समाप्तमायुरस्याद्य यशश्चापि सुमध्यमे ॥ २६  
 इतीदमुक्त्वा खड्गेन केशवस्य समीपतः ।  
 अभिद्रुत्य शिरः क्रुद्धश्चिच्छेद कृतवर्मणः ॥ २७  
 तथान्यानपि निघ्नन्तं युयुधानं समन्ततः ।  
 अभ्यधावद्दृषीकेशो विनिवारयिषुस्तदा ॥ २८  
 एकीभूतास्ततः सर्वे कालपर्यायचोदिताः ।  
 भोजान्धका महाराज शैनेयं पर्यवारयन् ॥ २९  
 तान्दृष्ट्वा पततस्तूर्णमभिक्रुद्धाञ्जनार्दनः ।  
 न चुक्रोध महातेजा जानन्कालस्य पर्ययम् ॥ ३०  
 ते तु पानमदाविष्टाश्चोदिताश्चैव मन्युना ।  
 युयुधानमथाभ्यघ्नन्नुच्छिष्टैर्भाजनैस्तदा ॥ ३१  
 हन्यमाने तु शैनेये क्रुद्धो रुक्मिणिनन्दनः ।  
 तदन्तरमुपाधावन्मोक्षयिष्यञ्जिनेः सुतम् ॥ ३२  
 स भोजैः सह संयुक्तः सात्यकिश्चान्धकैः सह ।  
 बहुत्वान्निहतौ तत्र उभौ कृष्णस्य पश्यतः ॥ ३३  
 हतं दृष्ट्वा तु शैनेयं पुत्रं च यदुनन्दनः ।  
 एरकाणां तदा मुष्टिं कोपाज्जग्राह केशवः ॥ ३४

तदभून्मुसलं घोरं वज्रकल्पमयोमयम् ।  
 जघान तेन कृष्णस्तान्येऽस्य प्रमुखतोऽभवन् ॥ ३५  
 ततोऽन्धकाश्च भोजाश्च शैनेया वृष्णयस्तथा ।  
 जघ्नुरन्योन्यमाक्रन्दे मुसलैः कालचोदिताः ॥ ३६  
 यस्तेषामेरकां कश्चिज्जग्राह रूपितो नृप ।  
 वज्रभूतेव सा राजन्नदृश्यत तदा विभो ॥ ३७  
 तृणं च मुसलीभूतमपि तत्र व्यदृश्यत ।  
 ब्रह्मदण्डकृतं सर्वमिति तद्विद्धि पार्थिव ॥ ३८  
 आविध्याविध्य ते राजन्प्रक्षिपन्ति स्म यत्तृणम् ।  
 तद्वज्रभूतं मुसल व्यदृश्यत तदा दृढम् ॥ ३९  
 अवधीत्पितरं पुत्रः पिता पुत्रं च भारत ।  
 मत्ताः परिपतन्ति स्म पोथयन्तः परस्परम् ॥ ४०  
 पतंगा इव चाग्रौ ते न्यपतन्कुकरान्धकाः ।  
 नासीत्पलायने बुद्धिर्वध्यमानस्य कस्यचित् ॥ ४१  
 तं तु पश्यन्महाबाहुर्जानिन्कालस्य पर्ययम् ।  
 मुसलं समवष्टभ्य तस्थौ स मधुसूदनः ॥ ४२  
 साम्ब च निहतं दृष्ट्वा चारुदेष्णं च माधवः ।  
 प्रशुभ्रं चानिरुद्धं च ततश्चुक्रोध भारत ॥ ४३  
 गदं वीक्ष्य शयानं च भृशं कोपसमन्वितः ।  
 स निःशेषं तदा चक्रे शार्ङ्गचक्रगदाधरः ॥ ४४  
 तं निघ्नन्तं महातेजा बभ्रुः परपुरंजयः ।  
 दारुकश्चैव दाशार्हमूचतुर्यन्निबोध तत् ॥ ४५  
 भगवन्संहृतं सर्वं त्वया भूयिष्ठमच्युत ।  
 रामस्य पदमन्विच्छ तत्र गच्छाम यत्र सः ॥ ४६

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

५

वैशंपायन उवाच ।

ततो ययुर्दारुकः केशवश्च

बभ्रुश्च रामस्य पदं पतन्तः ।

अथापश्नराममनन्तवीर्यं  
 वृक्षे स्थितं चिन्तयानं विविक्षे ॥ १  
 ततः समासाद्य महानुभावः  
 कृष्णस्तदा दारुकमन्वशात् ।  
 गत्वा कुरूक्षीघ्रमिमं महान्तं  
 पार्थाय शंसस्व वधं यदूनाम् ॥ २  
 ततोऽर्जुनः क्षिप्रमिहोपयातु  
 श्रुत्वा मृतान्यादवान्ब्रह्मशापात् ।  
 इत्येवमुक्तः स ययौ रथेन  
 कुरुस्तदा दारुको नष्टचेताः ॥ ३  
 ततो गते दारुके केशवोऽथ  
 दृष्ट्वान्तिके बभ्रुमुवाच वाक्यम् ।  
 स्त्रियो भवान्क्षतु यातु शीघ्रं  
 नैता हिंस्युर्दस्यवो वित्तलोभात् ॥ ४  
 स प्रस्थितः केशवेनानुशिष्टो  
 मदातुरो ज्ञातिवधार्दितश्च ।  
 तं वै यान्तं संनिधौ केशवस्य  
 त्वरन्तमेकं सहसैव बभ्रुम् ।  
 ब्रह्मानुशप्तमवधीन्महद्वै  
 कूटोन्मुक्तं मुसलं लुब्धकस्य ॥ ५  
 ततो दृष्ट्वा निहतं बभ्रुमाह  
 कृष्णो वाक्यं भ्रातरमग्रजं तु ।  
 इहैव त्वं मां प्रतीक्षस्व राम  
 यावत्स्त्रियो ज्ञातिवशाः करोमि ॥ ६  
 ततः पुरीं द्वारवतीं प्रविश्य  
 जनार्दनः पितरं प्राह वाक्यम् ।  
 स्त्रियो भवान्क्षतु नः समग्रा  
 धनंजयस्यागमनं प्रतीक्षन् ।  
 रामो वनान्ते प्रतिपालयन्मा-  
 मास्तेऽद्याहं तेन समागमिष्ये ॥ ७

दृष्टं मयेदं निधनं यदूनां  
 राज्ञां च पूर्वं कुरुपुंगवानाम् ।  
 नाहं विना यदुभिर्यादवानां  
 पुरीमिमां द्रष्टुमिहाद्य शक्तः ॥ ८  
 तपश्चरिष्यामि निबोध तन्मे  
 रामेण सार्धं वनमभ्युपेत्य ।  
 इतीदमुक्त्वा शिरसास्य पादौ  
 संस्पृश्य कृष्णस्वरितो जगाम ॥ ९  
 ततो महान्निनदः प्रादुरासी-  
 त्सखीकुमारस्य पुरस्य तस्य ।  
 अथाब्रवीत्केशवः संनिवर्त्य  
 शब्दं श्रुत्वा योषितां क्रोशतीनाम् ॥ १०  
 पुरीमिमामेक्ष्यति सव्यसाची  
 स वो दुःखान्मोचयिता नराग्र्यः ।  
 ततो गत्वा केशवस्तं ददर्श  
 रामं वने स्थितमेकं विविक्षे ॥ ११  
 अथापश्यद्योगयुक्तस्य तस्य  
 नागं मुखान्निसरन्त महान्तम् ।  
 श्वेतं ययौ स ततः प्रेक्ष्यमाणो  
 महार्णवो येन महानुभावः ॥ १२  
 सहस्रशीर्षः पर्वताभोगवर्ष्मा  
 रक्ताननः स्वां तनुं तां विमुच्य ।  
 सम्यक्च यं सागरः प्रत्यगृह्णा-  
 न्नागा दिव्याः सरितश्चैव पुण्याः ॥ १३  
 कर्कोटको वासुकिस्तक्षकश्च  
 पृथुश्रवा वरुणः कुञ्जरश्च ।  
 मिश्री शङ्खः कुमुदः पुण्डरीक-  
 स्तथा नागो धृतराष्ट्रो महात्मा ॥ १४  
 ह्यादः क्रोधः शितिकण्ठोऽग्रतेजा-  
 स्तथा नागौ चक्रमन्दातिषण्डौ ।



नागश्रेष्ठो दुर्मुखश्चाम्बरीषः  
 स्वयं राजा वरुणश्चापि राजन् ।  
 प्रत्युद्गम्य स्वागतेनाभ्यनन्द-  
 स्तेऽपूजयंश्चार्घ्यपाद्यक्रियाभिः ॥ १५  
 ततो गते भ्रातरि वासुदेवो  
 जानन्सर्वा गतयो दिव्यदृष्टिः ।  
 वने शून्ये विचरंश्चिन्तयानो  
 भूमौ ततः संविवेशाग्र्यतेजाः ॥ १६  
 सर्वं हि तेन प्राक्तदा वित्तमासी-  
 द्दान्धार्या यद्वाक्यमुक्तः स पूर्वम् ।  
 दुर्वाससा पायसोच्छिष्टलिप्ते  
 यच्चाप्युक्तं तच्च सस्मार कृष्णः ॥ १७  
 स चिन्तयानोऽन्धकवृष्णिनाशं  
 कुरुक्षयं चैव महानुभावः ।  
 मेने ततः संक्रमणस्य कालं  
 ततश्चकारेन्द्रियसंनिरोधम् ॥ १८  
 स संनिरुद्धेन्द्रियवाङ्मनास्तु  
 शिश्ये महायोगमुपेत्य कृष्णः ।  
 जराथ तं देशमुपाजगाम  
 लुब्धस्तदानीं मृगलिप्सुरग्नः ॥ १९  
 स केशवं योगयुक्तं शयानं  
 मृगाशङ्की लुब्धकः सायकेन ।  
 जराविध्यत्पादतले त्वरावां-  
 स्तं चाभितस्तज्जिघृक्षुर्जगाम ।  
 अथापश्यत्पुरुषं योगयुक्तं  
 पीताम्बरं लुब्धकोऽनेकबाहुम् ॥ २०  
 मत्वात्मानमपराद्धं स तस्य  
 जग्राह पादौ शिरसा चार्तरूपः ।  
 आश्वासयत्तं महात्मा तदानीं  
 गच्छन्नूर्ध्वं रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या ॥ २१

दिवं प्राप्तं वासवोऽथाश्विनौ च  
 रुद्रादित्या वसवश्चाथ विश्वे  
 प्रत्युद्ययुर्मुनयश्चापि सिद्धा  
 गन्धर्वमुख्याश्च सहाप्सरोभिः ॥ २२  
 ततो राजन्भगवानुग्रतेजा  
 नारायणः प्रभवश्चाव्ययश्च ।  
 योगाचार्यो रोदसी व्याप्य लक्ष्म्या  
 स्थानं प्राप स्वं महात्माप्रमेयम् ॥ २३  
 ततो देवैर्ऋषिभिश्चापि कृष्णः  
 समागतश्चारणैश्चैव राजन् ।  
 गन्धर्वाग्र्यैरप्सरोभिर्वराभिः  
 सिद्धैः साध्यैश्चानतैः पूज्यमानः ॥ २४  
 ते वै देवाः प्रत्यनन्दन्त राज-  
 न्मुनिश्रेष्ठा वाग्भिरानर्चुरीशम् ।  
 गन्धर्वाश्चाप्युपतस्थुः स्तुवन्तः  
 प्रीत्या चैनं पुरुहूतोऽभ्यनन्दत् ॥ २५  
 इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

वैशंपायन उवाच ।

दारुकोऽपि कुरुत्वा दृष्ट्वा पार्थान्महारथान् ।  
 आचष्ट मौसले वृष्णीनन्योन्येनोपसंहृतान् ॥ १  
 श्रुत्वा विनष्टान्वाष्पेयान्सभोजकुक्कुरान्धकान् ।  
 पाण्डवाः शोकसंतप्ता वित्रस्तमनसोऽभवन् ॥ २  
 ततोऽर्जुनस्तानामग्नय केशवस्य प्रियः सखा ।  
 प्रययौ मातुलं द्रष्टुं नेदमस्तीति चाब्रवीत् ॥ ३  
 स वृष्णिनिलयं गत्वा दारुकेण सह प्रभो ।  
 ददर्श द्वारकां वीरो मृतनाथामिव स्त्रियम् ॥ ४  
 याः स्म ता लोकनाथेन नाथवत्यः पुराभवन् ।  
 तास्त्वनानास्तदा नाथं पार्थ दृष्ट्वा विचक्रुः ॥ ५

षोडशस्त्रीसहस्राणि वासुदेवपरिग्रहः ।  
 तासामासीन्महान्नादो दृष्ट्वैवार्जुनमागतम् ॥ ६  
 तास्तु दृष्ट्वैव कौरव्यो बाष्पेण पिहितोऽर्जुनः ।  
 हीनाः कृष्णेन पुत्रैश्च नाशकत्सोऽभिवीक्षितुम् ॥ ७  
 तां स वृष्ण्यन्धकजलां हयमीनां रथोडुपाम् ।  
 वादित्ररथघोषौघां वेदमतीर्थमहाग्रहाम् ॥ ८  
 रत्नशैवलसंघाटां वज्रप्राकारमालिनीम् ।  
 रथ्यास्रोतोजलावर्तां चत्वरस्तिमितहृदाम् ॥ ९  
 रामकृष्णमहाग्राहां द्वारकासरितं तदा ।  
 कालपाशग्रहां घोरं नदी वैतरणीमिव ॥ १०  
 तां ददर्शार्जुनो धीमान्विहीनां वृष्णिपुंगवैः ।  
 गतश्रियं निरानन्दां पद्मिनीं शिशिरे यथा ॥ ११  
 तां दृष्ट्वा द्वारकां पार्थस्ताश्च कृष्णस्य योषितः ।  
 सस्वनं बाष्पमुत्सृज्य निपपात महीनले ॥ १२  
 सात्राजिती ततः सत्या रुक्मिणी च विशां पते ।  
 अभिपत्य प्ररुदुः परिवार्य धनंजयम् ॥ १३  
 ततस्ताः काञ्चने पीठे समुत्थायोपवेश्य च ।  
 अब्रुवन्त्यो महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥ १४  
 ततः संस्तूय गोविन्दं कथयित्वा च पाण्डवः ।  
 आश्वास्य ताः स्त्रियश्चापि मातुलं द्रष्टुमभ्यगात् ॥

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि

षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

७

वैशंपायन उवाच ।

तं शयानं महात्मानं वीरमानकदुन्दुभिम् ।  
 पुत्रशोकाभिसंतप्तं ददर्श कुरुपुंगवः ॥ १  
 तस्याश्रुपरिपूर्णक्षो व्यूढोरस्को महाभुजः ।  
 आर्तस्यार्ततरः पार्थः पादौ जग्राह भारत ॥ २  
 समालिङ्ग्यार्जुनं वृद्धः स भुजाभ्यां महाभुजः ।  
 रुदन्पुत्रान्स्मरन्सर्वान्विललाप सुविह्वलः ।

भ्रातृन्पुत्रांश्च पौत्रांश्च दौहित्रांश्च सखीनपि ॥ ३

वासुदेव उवाच ।

यैर्जिता भूमिपालाश्च दैत्याश्च शतशोऽर्जुन ।  
 तान्दृष्ट्वा नेह पश्यामि जीवाम्यर्जुन दुर्मरः ॥ ४  
 यौ तावर्जुन शिष्यौ ते प्रियौ बहुमतौ सदा ।  
 तयोरपनयात्पार्थ वृष्णयो निधनं गताः ॥ ५  
 यौ तौ वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवातिरथौ मतौ ।  
 प्रद्युम्नो युयुधानश्च कथयन्कथसे च यौ ॥ ६  
 नित्यं त्वं कुरुशार्दूल कृष्णश्च मम पुत्रकः ।  
 तावुभौ वृष्णिनाशस्य मुखमास्तां धनजय ॥ ७  
 न तु गहर्हामि शैनेयं हार्दिक्यं चाहमर्जुन ।  
 अक्रूरं रौक्मिणेयं च शापो ह्येवात्र कारणम् ॥ ८  
 केशिनं यस्तु कंसं च विक्रम्य जगतः प्रभुः ।  
 विदेहावकरोत्पार्थ चैद्यं च बलगर्वितम् ॥ ९  
 नैषादिमेकलव्यं च चक्रे कालिङ्गमागधान् ।  
 गान्धारान्काशिराजं च मरुभूमौ च पार्थिवान् ॥  
 प्राच्यांश्च दाक्षिणात्यांश्च पार्वतीयांस्तथा नृपान् ।  
 सोऽभ्युपेक्षितवानेतमनयं मधुसूदनः ॥ ११  
 ततः पुत्रांश्च पौत्रांश्च भ्रातृन्थ सखीनपि ।  
 शयानान्निहतान्दृष्ट्वा ततो मामब्रवीदिदम् ॥ १२  
 संप्राप्तोऽद्यायमस्यान्तः कुलस्य पुरुषर्षभ ।  
 आगमिष्यति बीभत्सुरिमां द्वारवतीं पुरीम् ॥ १३  
 आख्येयं तस्य यद्वृत्तं वृष्णीनां वैशसं महत् ।  
 स तु श्रुत्वा महातेजा यदूनामनयं प्रभो ।  
 आगन्ता क्षिप्रमेवेह न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ १४  
 योऽहं तमर्जुनं विद्धि योऽर्जुनः सोऽहमेव तु ।  
 यद्भूयात्तत्तथा कार्यमिति बुध्यस्व माधव ॥ १५  
 स स्त्रीषु प्राप्तकालं वः पाण्डवो बालकेषु च ।  
 प्रतिपत्स्यति बीभत्सुर्भवतश्चौर्ध्वदेहिकम् ॥ १६  
 इमां च नगरी सद्यः प्रतियाते धनंजये ।

प्राकारादालकोपेतां समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ १७  
 अहं हि देशे कस्मिंश्चित्पुण्ये नियममास्थितः ।  
 कालं कर्ता सद्य एव रामेण सह धीमता ॥ १८  
 एवमुक्त्वा हृषीकेशो मामचिन्त्यपराक्रमः ।  
 हित्वा मां बालकैः सार्धं दिशं कामप्यगात्प्रभुः ॥  
 सोऽहं तौ च महात्मानौ चिन्तयन्भ्रातरौ तव ।  
 घोरं ज्ञातिवधं चैव न भुञ्जे शोककर्षितः ॥ २०  
 न च भोक्ष्ये न जीविष्ये दिष्ट्या प्राप्तोऽसि पाण्डव ।  
 यदुक्तं पार्थ कृष्णेन तत्सर्वमखिलं कुरु ॥ २१  
 एतत्ते पार्थ राज्यं च स्त्रियो रत्नानि चैव ह ।  
 इष्टान्प्राणानहं हीमांस्त्यक्ष्यामि रिपुसूदन ॥ २२

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

८

वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्तः स बीभत्सुर्मातुलेन परंतपः ।  
 दुर्मना दीनमनसं वसुदेवमुवाच ह ॥ १  
 नाहं वृष्णिप्रवीरेण मधुभिश्चैव मातुल ।  
 विहीनां पृथिवीं द्रष्टुं शक्तश्चिरमिह प्रभो ॥ २  
 राजा च भीमसेनश्च सहदेवश्च पाण्डवः ।  
 नकुलो याज्ञसेनी च षडेकमनसो वयम् ॥ ३  
 राज्ञः संक्रमणे चापि कालोऽयं वर्तते श्रुवम् ।  
 तमिमं विद्धि संप्राप्तं कालं कालविदां वर ॥ ४  
 सर्वथा वृष्णिदारांस्तु बालवृद्धास्तथैव च ।  
 नयिष्ये परिगृह्णाहमिन्द्रप्रस्थमरिंदम ॥ ५  
 इत्युक्त्वा दारुकमिदं वाक्यमाह धनंजयः ।  
 अमात्यान्वृष्णिवीराणां द्रष्टुमिच्छामि माचिरम् ॥  
 इत्येवमुक्त्वा वचनं सुधर्मा यादवी सभाम् ।  
 प्रविवेशार्जुनः शूरः शोचमानो महारथान् ॥ ७  
 तमासनगतं तत्र सर्वाः प्रकृतयस्तथा ।

ब्राह्मणा नैगमाश्चैव परिवार्योपतस्थिरे ॥ ८  
 तान्दीनमनसः सर्वान्निभृतांगतचेतसः ।  
 उवाचेदं वचः पार्थः स्वयं दीनतरस्तदा ॥ ९  
 शक्रप्रस्थमहं नेष्ये वृष्ण्यन्धकजनं स्वयम् ।  
 इदं तु नगरं सर्वं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ १०  
 सज्जीकुरुत यानानि रत्नानि विविधानि च ।  
 वज्रोऽयं भवतां राजा शक्रप्रस्थे भविष्यति ॥ ११  
 सप्तमे दिवसे चैव रथौ विमल उद्गते ।  
 बहिर्वत्स्यामहे सर्वे मज्जीभवत मा चिरम् ॥ १२  
 इत्युक्तास्तेन ते पौराः पार्थेनाह्निष्कर्मणा ।  
 सज्जमाशु ततश्चक्रुः स्वसिद्धयर्थं समुत्सुकाः ॥ १३  
 तां रात्रिमवसत्पार्थः केशवस्य निवेशने ।  
 महता शोकमोहेन सहसाभिपरिप्लुतः ॥ १४  
 शोभूतेऽथ ततः शौरिर्वसुदेवः प्रतापवान् ।  
 युक्त्वात्मानं महातेजा जगाम गतिमुत्तमाम् ॥ १५  
 ततः शब्दो महानासीद्वसुदेवस्य वेश्मनि ।  
 दारुणः क्रोशतीनां च रुदतीनां च योषिताम् ॥ १६  
 प्रकीर्णमूर्धजाः सर्वा विमुक्ताभरणस्रजः ।  
 उरांसि पाणिभिर्घ्नन्त्यो व्यलपन्करुणं स्त्रियः ॥ १७  
 तं देवकी च भद्रा च रोहिणी मदिरा तथा ।  
 अन्वारोढुं व्यवसिता भर्तारं योषितां वराः ॥ १८  
 ततः शौरिं नृयुक्तेन बट्टमाल्येन भारत ।  
 यानेन महता पार्थो बहिर्निष्क्रामयत्तदा ॥ १९  
 तमन्वयुस्तत्र तत्र दुःखशोकसमाहताः ।  
 द्वारकावासिनः पौराः सर्व एव नरर्षभ ॥ २०  
 तस्याश्वमेधिकं छत्रं दीप्यमानाश्च पावकाः ।  
 पुरस्तात्तस्य यानस्य याजकाश्च ततो ययुः ॥ २१  
 अनुजगमुश्च तं वीरं देव्यस्ता वै स्वलंकृताः ।  
 स्त्रीसहस्रैः परिवृता वधूभिश्च सहस्रशः ॥ २२  
 यस्तु देशः प्रियस्तस्य जीवतोऽभून्महात्मनः ।

तत्रैनमुपसंकल्प्य पितृमेधं प्रचक्रिरे ॥ २३  
 तं चित्ताग्रिगतं वीरं शूरपुत्रं वराङ्गनाः ।  
 ततोऽन्वारुरुहुः पत्न्यश्चतस्रः पतिलोकगाः ॥ २४  
 तं वै चतसृभिः स्त्रीभिरन्वित पाण्डुनन्दनः ।  
 अदाह्यच्चन्दनैश्च गन्धैरुच्चावचैरपि ॥ २५  
 ततः प्रादुरभूच्छब्दः समिद्धस्य विभावसोः ।  
 सामगानां च निर्घोपो नराणां रुदतामपि ॥ २६  
 ततो वज्रप्रधानास्ते वृष्णिवीरकुमारकाः ।  
 सर्व एवोदकं चक्रुः स्त्रियश्चैव महात्मनः ॥ २७  
 अलुप्तधर्मस्तं धर्म कारयित्वा स फल्गुनः ।  
 जगाम वृष्णयो यत्र विनष्टा भरतर्षभ ॥ २८  
 स तान्दृष्ट्वा निपतितान्कदने भृशदुःखितः ।  
 बभूवातीव कौरव्यः प्राप्तकालं चकार च ॥ २९  
 यथाप्रधानतश्चैव चक्रे सर्वाः क्रियास्तदा ।  
 ये हता ब्रह्मशापेन मुसलैरेरकोद्भवैः ॥ ३०  
 ततः शरीरे रामस्य वासुदेवस्य चोभयोः ।  
 अन्विष्य दाहयामास पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ ३१  
 स तेषां विधिवत्कृत्वा प्रेतकार्याणि पाण्डवः ।  
 सप्तमे दिवसे प्रायाद्रथमारुह्य सत्वरः ।  
 अश्वयुक्तै रथैश्चापि गोखरोष्ट्रयुतैरपि ॥ ३२  
 स्त्रियस्ता वृष्णिवीराणां रुदत्यः शोककर्षिताः ।  
 अनुजग्मुर्महात्मानं पाण्डुपुत्रं धनंजयम् ॥ ३३  
 भृत्यास्त्वन्धकवृष्णीनां सादिनो रथिनश्च ये ।  
 वीरहीनं वृद्धबालं पौरजानपदास्तथा ।  
 ययुस्ते परिवार्याथ कलत्रं पार्थशासनात् ॥ ३४  
 कुञ्जरैश्च गजारोहा ययुः शैलनिभैस्तथा ।  
 स्रपादरक्षैः संयुक्ताः सोत्तरायुधिका ययुः ॥ ३५  
 पुत्राश्चान्धकवृष्णीनां सर्वे पार्थमनुव्रताः ।  
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव महाधनाः ॥ ३६  
 दश षट् सहस्राणि वासुदेवावरोधनम् ।

पुरस्कृत्य ययुर्वज्रं पौत्रं कृष्णस्य धीमतः ॥ ३७  
 बहूनि च सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।  
 भोजवृष्ण्यन्धकस्त्रीणां हतनाथानि निर्ययुः ॥ ३८  
 तत्सागरसमप्रख्यं वृष्णिचक्रं महर्धिमन् ।  
 उवाह रथिनां श्रेष्ठः पार्थः परपुरंजयः ॥ ३९  
 निर्याति तु जने तस्मिन्सागरो मकरालयः ।  
 द्वारकां रत्नसंपूर्णां जलेनाप्लावयत्तदा ॥ ४०  
 तदद्भुतमभिप्रेक्ष्य द्वारकावासिनो जनाः ।  
 तूर्णात्तूर्णतरं जग्मुर्हो दैवमिति ब्रुवन् ॥ ४१  
 काननेषु च रम्येषु पर्वतेषु नदीषु च ।  
 निवसन्नानयामास वृष्णिदारान्धनंजयः ॥ ४२  
 स पञ्चनदमासाद्य धीमानतिसमृद्धिमन् ।  
 देशे गोपशुधान्याद्व्ये निवासमकरोत्प्रभुः ॥ ४३  
 ततो लोभः समभवदस्यूनां निहतेश्वराः ।  
 दृष्ट्वा स्त्रियो नीयमानाः पार्थेनैकेन भारत ॥ ४४  
 ततस्ते पापकर्माणो लोभोपहतचेतसः ।  
 आभीरा मन्त्रयामासुः समेत्याशुभदर्शनाः ॥ ४५  
 अयमेकोऽर्जुनो योद्धा वृद्धबालं हतेश्वरम् ।  
 नयत्यस्मानतिक्रम्य योधाश्रेमे हतौजसः ॥ ४६  
 ततो यष्टिप्रहरणा दस्यवस्ते सहस्रशः ।  
 अभ्यधावन्त वृष्णीनां तं जनं लोप्त्रहारिणः ॥ ४७  
 महता सिंहनादेन द्रावयन्तः पृथग्जनम् ।  
 अभिपेतुर्धनार्थं ते कालपर्यायचोदिताः ॥ ४८  
 ततो निवृत्तः कौन्तेयः सहसा सपदानुगः ।  
 उवाच तान्महाबाहुरर्जुनः प्रहसन्निव ॥ ४९  
 निवर्तध्वमधर्मज्ञा यदि स्थ न मुमूर्षवः ।  
 नेदानीं शरनिर्भिन्नाः शोचध्वं निहता मया ॥ ५०  
 तथोक्तास्तेन वीरेण कदर्याकृत्य तद्वचः ।  
 अभिपेतुर्जनं मूढा वार्यमाणाः पुनः पुनः ॥ ५१  
 ततोऽर्जुनो धनुर्दिव्यं गाण्डीवमजरं महत् ।

आरोपयितुमारेभे यत्नादिव कथंचन ॥ ५२  
 चकार सज्यं कृच्छ्रण संभ्रमे तुमुले सति ।  
 चिन्तयामास चास्त्राणि न च सस्मार तान्यपि ॥ ५३  
 वैकृत्यं तन्महद्दृष्ट्वा भुजवीर्यं तथा युधि ।  
 दिव्यानां च महास्त्राणां विनाशाद्रीडितोऽभवत् ॥  
 वृष्णिगोधाश्च ते सर्वे गजाश्वरथयायिनः ।  
 न शेकुरावर्तयितुं ह्रियमाणं च तं जनम् ॥ ५४  
 कलत्रस्य बहुत्वात् संपतत्सु ततस्ततः ।  
 प्रयत्नमकरोत्पार्थो जनस्य परिरक्षणे ॥ ५६  
 मिषतां सर्वयोधानां ततस्ताः प्रमदोत्तमाः ।  
 समन्ततोऽवकृष्यन्त कामाच्चान्याः प्रवव्रजुः ॥ ५७  
 ततो गाण्डीवनिर्मुक्तैः शरैः पार्थो धनंजयः ।  
 जघान दस्यून्सोद्वेगो वृष्णिभृत्यैः सह प्रभुः ॥ ५८  
 क्षणेन तस्य ते राजन्क्षयं जग्मुरजिह्वागाः ।  
 अक्षया हि पुरा भूत्वा क्षीणाः क्षतजभोजनाः ॥ ५९  
 स शरक्षयमासाद्य दुःखशोकसमाहतः ।  
 धनुष्कोट्या तदा दस्यूनवधीत्पाकशासनिः ॥ ६०  
 प्रेक्षतस्त्वेव पार्थस्य वृष्ण्यन्धकवरस्त्रियः ।  
 जग्मुरादाय ते स्लेच्छाः समन्ताज्जनमेजय ॥ ६१  
 धनंजयस्तु दैवं तन्मनसाचिन्तयत्प्रभुः ।  
 दुःखशोकसमाविष्टो निःश्वासपरमोऽभवत् ॥ ६२  
 अस्त्राणां च प्रणाशेन बाहुवीर्यस्य संक्षयात् ।  
 धनुषश्चाविधेयत्वाच्छराणां संक्षयेण च ॥ ६३  
 वभूव विमनाः पार्थो दैवमित्यनुचिन्तयन् ।  
 न्यवर्तत ततो राजन्नेदमस्तीति चाब्रवीत् ॥ ६४  
 ततः स शेषमादाय कलत्रस्य महामतिः ।  
 हृतभूयिष्ठरत्नस्य कुरुक्षेत्रमवातरत् ॥ ६५  
 एवं कलत्रमानीय वृष्णीनां हृतशेषितम् ।  
 न्यवेशयत कौरव्यस्तत्र तत्र धनंजयः ॥ ६६  
 हार्दिक्यतनयं पार्थो नगरं मार्तिकावतम् ।

भोजराजकलत्रं च हृतशेषं नरोत्तमः ॥ ६७  
 ततो वृद्धांश्च बालांश्च स्त्रियश्चादाय पाण्डवः ।  
 वीरैर्विहीनान्सर्वास्तांश्चक्रप्रस्थे न्यवेशयत् ॥ ६८  
 यौयुधानि सरस्वत्यां पुत्रं सात्यकिनः प्रियम् ।  
 न्यवेशयत धर्मात्मा वृद्धबालपुरस्कृतम् ॥ ६९  
 इन्द्रप्रस्थे ददौ राज्यं वज्राय परवीरहा ।  
 वज्रेणाक्रुरदारास्तु वार्यमाणाः प्रवव्रजुः ॥ ७०  
 रुक्मिणी त्वथ गान्धारी शैब्या हैमवतीत्यपि ।  
 देवी जाम्बवती चैव विविशुर्जातवेदसम् ॥ ७१  
 सत्यभामौ तथैवान्या देव्यः कृष्णस्य संमताः ।  
 वनं प्रविविशू राजंस्तापस्ये कृतनिश्चयाः ॥ ७२  
 द्वारकावासिनो ये तु पुरुषाः पार्थमन्वयुः ।  
 यथार्हं सविभज्यैरान्वज्रे पर्यददज्जयः ॥ ७३  
 स तत्कृत्वा प्राप्तकालं बाष्पेणापिहितोऽर्जुनः ।  
 कृष्णद्वैपायनं राजन्ददर्शासीनमाश्रमे ॥ ७४

इति श्रीमहाभारते मौसलपर्वणि

अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

९

वैशंपायन उवाच ।

प्रविशन्नर्जुनो राजन्नाश्रमं सत्यवादिनः ।  
 ददर्शासीनमेकान्ते मुनिं सत्यवतीसुतम् ॥ १  
 स तमासाद्य धर्मज्ञमुपतस्थे महाव्रतम् ।  
 अर्जुनोऽस्मीति नामास्मै निवेद्याभ्यवदत्ततः ॥ २  
 स्वागतं तेऽस्तिवति प्राह मुनिः सत्यवतीसुतः ।  
 आस्यतामिति चोवाच प्रसन्नात्मा महामुनिः ॥ ३  
 तमप्रतीतमनसं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।  
 निर्विण्णमनसं दृष्ट्वा पार्थ व्यासोऽब्रवीदिदम् ॥ ४  
 अवीरजोऽभिघातस्ते ब्राह्मणो वा हतस्त्वया ।  
 युद्धे पराजितो वासि गतश्रीरिव लक्ष्यसे ॥ ५  
 न त्वा प्रत्यभिजानामि किमिदं भरतर्षभ ।

श्रोतव्यं चेन्मया पार्थ क्षिप्रमाख्यातुमर्हसि ॥ ६

अर्जुन उवाच ।

यः स मेघवपुः श्रीमान्वृहत्पङ्कजलोचनः ।

स कृष्णः सह रामेण त्यक्त्वा देहं दिवं गतः ॥ ७

मौसले वृष्णिवीराणां विनाशो ब्रह्मशापजः ।

बभूव वीरान्तकरः प्रभासे रोमहर्षणः ॥ ८

ये ते शूरा महात्मानः सिंहदर्पा महाबलाः ।

भोजवृष्ण्यन्धका ब्रह्मन्नन्योन्यं तैर्हतं युधि ॥ ९

गदापरिघशक्तीनां सहाः परिघबाहवः ।

त एरकाभिर्निहताः पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ १०

हतं पञ्चशतं तेषां सहस्रं बाहुशालिनाम् ।

निधन समनुप्राप्तं समासाद्येतरैरतम् ॥ ११

पुनः पुनर्न मृश्यामि विनाशममितौजसाम् ।

चिन्तयानो यदूनां च कृष्णस्य च यशस्विनः ॥ १२

शोषणं सागरस्येव पर्वतस्येव चालनम् ।

नभसः पतनं चैव शैत्यमग्नेस्तथैव च ॥ १३

अश्रद्धेयमहं मन्ये विनाशं शार्ङ्गधन्वनः ।

न चेहं स्थातुमिच्छामि लोके कृष्णविनाकृतः ॥ १४

इतः कष्टतरं चान्यच्छृणु तद्वै तपोधन ।

मनो मे दीर्यते येन चिन्तयानस्य वै मुहुः ॥ १५

पश्यतो वृष्णिदाराश्च मम ब्रह्मन्सहस्रशः ।

आभीरैरनुसृत्याजौ हताः पञ्चनदालयैः ॥ १६

धनुरादाय तत्राहं नाशकं तस्य पूरणे ।

यथा पुरा च मे वीर्यं भुजयोर्न तथाभवत् ॥ १७

अस्त्राणि मे प्रनष्टानि विविधानि महामुने ।

शराश्च क्षयमापन्नाः क्षणेनैव समन्ततः ॥ १८

पुरुषश्चाप्रमेयात्मा शङ्खचक्रगदाधरः ।

चतुर्भुजः पीतवासा श्यामः पद्मायतेक्षणः ॥ १९

यः स याति पुरस्तान्मे रथस्य सुमहाद्युतिः ।

प्रदहन्प्रसैन्यानि न पश्याम्यहमद्य तम् ॥ २०

येन पूर्वं प्रदग्धानि शत्रुसैन्यानि तेजसा ।

शरैर्गण्डीवनिर्मुक्तैरहं पश्चाद्व्यनाशयम् ॥ २१

तमपश्यन्विषीदामि घूर्णामीव च सत्तम ।

परिनिर्विण्णचेताश्च शान्तिं नोपलभेऽपि च ॥ २२

विना जनार्दनं वीरं नाहं जीवितुमुत्सहे ।

श्रुत्वैव हि गतं विष्णुं ममापि मुमुहुर्दिशः ॥ २३

प्रनष्टज्ञातिवीर्यस्य शून्यस्य परिधावतः ।

उपदेष्टुं मम श्रेयो भवानर्हति सत्तम ॥ २४

व्यास उवाच ।

ब्रह्मशापविनिर्दग्धा वृष्ण्यन्धकमहारथाः ।

विनष्टाः कुरुशार्दूल न ताञ्शोचितुमर्हसि ॥ २५

भवितव्यं तथा तद्वि दिष्टमेतन्महात्मनाम् ।

उपेक्षितं च कृष्णेन शक्तेनापि व्यपोहितम् ॥ २६

अप्यैलोक्यमपि कृष्णो हि कृत्स्नं स्थावरजङ्गमम् ।

प्रसहेदन्यथा कर्तुं किमु शापं मनीषिणाम् ॥ २७

रथस्य पुरतो याति यः स चक्रगदाधरः ।

तव स्नेहात्पुराणर्षिर्वासुदेवश्चतुर्भुजः ॥ २८

कृत्वा भारावतरणं पृथिव्याः पृथुलोचनः ।

मौक्षयित्वा जगत्सर्वं गतः स्वस्थानमुत्तमम् ॥ २९

त्वया त्विह महत्कर्म देवानां पुरुषर्षभ ।

कृत भीमसहायेन यमाभ्यां च महाभुज ॥ ३०

कृतकृत्यांश्च वो मन्ये संसिद्धान्कुरुपुंगव ।

गमनं प्राप्तकालं च तद्वि श्रेयो मतं मम ॥ ३१

बलं बुद्धिश्च तेजश्च प्रतिपत्तिश्च भारत ।

भवन्ति भवकालेषु विपद्यन्ते विपर्यये ॥ ३२

कालमूलमिदं सर्वं जगद्बीजं धनंजय ।

काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया ॥ ३३

स एव बलवान्भूत्वा पुनर्भवति दुर्बलः ।

स एवेशश्च भूत्वेह परैराज्ञाप्यते पुनः ॥ ३४

कृतकृत्यानि चास्त्राणि गतान्यद्य यथागतम् ।

पुनरेष्यन्ति ते हस्तं यदा कालो भविष्यति ॥ ३५  
 कालो गन्तुं गतिं मुख्यां भवतामपि भारत ।  
 एतच्छ्रेयो हि वो मन्ये परमं भरतर्षभ ॥ ३६  
 एतद्वचनमास्थाय व्यासस्यामिततेजसः ।  
 अनुज्ञातो ययौ पार्थो नगरं नागसाह्वयम् ॥ ३७

प्रविश्य च पुरीं वीरः समासाद्य युधिष्ठिरम् ।  
 आचष्ट तद्यथावृत्तं वृष्ण्यन्धकजनं प्रति ॥ ३८

इति श्रीमद्वाभारते मौसलपर्वणि

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ मौसलपर्व समाप्तम् ॥

## महाप्रस्थानिकपर्व

१

जनमेजय उवाच ।

एषं वृष्ण्यन्धककुले श्रुत्वा मौसलमाहवम् ।  
पाण्डवाः किमकुर्वन्त तथा कृष्णे दिवं गते ॥ १

वैशंपायन उवाच ।

श्रुत्वैव कौरवो राजा वृष्णीनां कदनं महत् ।  
प्रस्थाने मतिमाधाय वाक्यमर्जुनमब्रवीत् ॥ २  
कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव महामते ।  
कर्मन्यासमहं मन्ये त्वमपि द्रष्टुमर्हसि ॥ ३  
इत्युक्तः स तु कौन्तेयः कालः काल इति श्रुत्वा ।  
अन्वपद्यत तद्वाक्यं भ्रातुर्ज्येष्ठस्य वीर्यवान् ॥ ४  
अर्जुनस्य मतं ज्ञात्वा भीमसेनो यमौ तथा ।  
अन्वपद्यन्त तद्वाक्यं यदुक्तं सव्यसाचिना ॥ ५  
ततो युयुत्सुमानाय प्रव्रजन्धर्मकाम्यया ।  
राज्यं परिददौ सर्वं वैश्यापुत्रे युधिष्ठिरः ॥ ६  
अभिषिच्य स्वराज्ये तु तं राजानं परिक्षितम् ।  
दुःखार्तश्चाब्रवीद्राजा सुभद्रां पाण्डवाग्रजः ॥ ७  
एष पुत्रस्य ते पुत्रः कुरुराजो भविष्यति ।  
यदूनां परिशेषश्च वज्रो राजा कृतश्च ह ॥ ८  
परिक्षिद्धास्तिनपुरे शकप्रस्थे तु यादवः ।  
वज्रो राजा त्वया रक्ष्यो मा चाधर्मे मनः कृथाः ॥ ९  
इत्युक्त्वा धर्मराजः स वासुदेवस्य धीमतः ।  
मातुलस्य च वृद्धस्य रामादीनां तथैव च ॥ १०

मातृभिः सह धर्मात्मा कृत्वोदकमतन्द्रितः ।

श्राद्धान्युद्दिश्य सर्वेषां चकार विधिवत्तदा ॥ ११  
ददौ रत्नानि वासांसि ग्रामानश्चान्स्थानानि ।

स्त्रियश्च द्विजमुख्येभ्यो गवां शतसहस्रशः ॥ १२  
कृपमभ्यर्च्य च गुरुमर्थमानपुरस्कृतम् ।

शिष्यं परिक्षितं तस्मै ददौ भरतसत्तमः ॥ १३  
ततस्तु प्रकृतीः सर्वाः समानाय्य युधिष्ठिरः ।

सर्वमाचष्ट राजर्षिश्चिकीर्षितमथात्मनः ॥ १४  
ते श्रुत्वैव वचस्तस्य पौरजानपदा जनाः ।

भृशमुद्विग्नमनसो नाभ्यनन्दन्त तद्वचः ॥ १५  
नैवं कर्तव्यमिति ते तदोचुस्ते नराधिपम् ।

न च राजा तथाकार्षीत्कालपर्यायधर्मवित् ॥ १६  
ततोऽनुमान्य धर्मात्मा पौरजानपदं जनम् ।

गमनाय मतिं चक्रे भ्रातरश्चास्य ते तदा ॥ १७  
ततः स राजा कौरव्यो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।

उत्सृज्याभरणान्यङ्गाज्जगृहे वल्कलान्युत ॥ १८  
भीमार्जुनौ यमौ चैव द्रौपदी च यशस्विनी ।

तथैव सर्वे जगृहुर्वल्कलानि जनाधिप ॥ १९  
विधिवत्कारयित्वेष्टि नैष्ठिकीं भरतर्षभ ।

समुत्सृज्याप्सु सर्वेऽग्नीन्प्रतस्थुर्नरपुंगवाः ॥ २०  
ततः प्ररुद्धः सर्वाः स्त्रियो दृष्ट्वा नरर्षभान् ।

प्रस्थितान्द्रौपदीषष्ठान्पुरा द्यूतजितान्यथा ॥ २१  
हर्षोऽभवच्च सर्वेषां भ्रातॄणां गमनं प्रति ।



युधिष्ठिरमतं ज्ञात्वा वृष्णिक्षयमवेक्ष्य च ॥ २२  
 भ्रातरः पञ्च कृष्णा च षष्ठी श्वा चैव सप्तमः ।  
 आत्मना सप्तमो राजा निर्ययौ गजसाह्वयात् ।  
 पौरैरनुगतो दूरं सर्वैरन्तःपुरैस्तथा ॥ २३  
 न चैनमशक्तकश्चिन्निवर्तस्वेति भाषितुम् ।  
 न्यवर्तन्त ततः सर्वे नरा नगरवासिनः ॥ २४  
 कृपप्रभृतयश्चैव युयुत्सुं पर्यवारयन् ।  
 विवेश गङ्गां कौरव्य उलूपी भुजगात्मजा ॥ २५  
 चित्राङ्गदा ययौ चापि मणिपूरपुरं प्रति ।  
 शिष्टाः परिक्षितं त्वन्या मातरः पर्यवारयन् ॥ २६  
 पाण्डवाश्च महात्मानो द्रौपदी च यशस्विनी ।  
 कृतोपवासाः कौरव्य प्रययुः प्राङ्मुखस्ततः ॥ २७  
 योगयुक्ता महात्मानस्त्यागधर्ममुपेयुषः ।  
 अभिजग्मुर्बहून्देशान्सरितः पर्वतांस्तथा ॥ २८  
 युधिष्ठिरो ययावप्रे भीमस्तु तदनन्तरम् ।  
 अर्जुनस्तस्य चान्वेव ययौ चैव यथाक्रमम् ॥ २९  
 पृष्ठतस्तु वरारोहा श्यामा पद्मदलेक्षणा ।  
 द्रौपदी योषितां श्रेष्ठा ययौ भरतसत्तम ॥ ३०  
 श्वा चैवानुययावेकः पाण्डवान्प्रस्थितान्वने ।  
 क्रमेण ते ययुर्वीरा लौहित्यं सलिलार्णवम् ॥ ३१  
 गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं न मुमोच धनंजयः ।  
 रत्नलोभान्महाराज तौ चाक्षय्यौ महेषुधी ॥ ३२  
 अग्निं ते ददृशुस्तत्र स्थितं शैलमिवाग्रतः ।  
 मार्गमावृत्य तिष्ठन्तं साक्षात्पुरुषविग्रहम् ॥ ३३  
 ततो देवः स सप्तार्चिः पाण्डवानिदमब्रवीत् ।  
 भो भो पाण्डुसुता वीराः पावकं मां विबोधत ॥  
 युधिष्ठिर महाबाहो भीमसेन परंतप ।  
 अर्जुनाश्विसुतौ वीरौ निबोधत वचो मम ॥ ३५  
 अहमग्निः कुरुश्रेष्ठा मया दग्धं च खाण्डवम् ।  
 अर्जुनस्य प्रभावेण तथा नारायणस्य च ॥ ३६

अयं वः फल्गुनो भ्राता गाण्डीवं परमायुधम् ।  
 परित्यज्य वनं यातु नानेनार्थोऽस्ति कश्चन ॥ ३७  
 चक्ररत्नं तु यत्कृष्णे स्थितमासीन्महात्मनि ।  
 गत तच्च पुनर्हस्ते कालेनैष्यति तस्य ह ॥ ३८  
 वरुणादाहृतं पूर्वं मयैतत्पार्थकारणात् ।  
 गाण्डीवं कार्मुकश्रेष्ठं वरुणायैव दीयताम् ॥ ३९  
 ततस्ते भ्रातरः सर्वे धनंजयमचोदयन् ।  
 स जले प्राक्षिपत्तत्तु तथाक्षय्यौ महेषुधी ॥ ४०  
 ततोऽग्निर्भरतश्रेष्ठ तत्रैवान्तरधीयत ।  
 ययुश्च पाण्डवा वीरास्ततस्ते दक्षिणामुखाः ॥ ४१  
 ततस्ते तूत्तरेणैव तीरेण लवणाम्भसः ।  
 जग्मुर्भरतशार्दूल दिशं दक्षिणपश्चिमाम् ॥ ४२  
 ततः पुनः समावृत्ताः पश्चिमां दिशमेव ते ।  
 ददृशुर्द्वारिकां चापि सागरेण परिभुताम् ॥ ४३  
 उदीचीं पुनरावृत्त्य ययुर्भरतसत्तमाः ।  
 प्रादक्षिण्यं चिकीर्षन्तः पृथिव्या योगधर्मिणः ॥ ४४

इति श्रीमहाभारते महाप्रस्थानिकपर्वणि

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

वैशंपायन उवाच ।

ततस्ते नियतात्मान उदीचीं दिशमास्थिताः ।  
 ददृशुर्योगयुक्ताश्च हिमवन्तं महागिरिम् ॥ १  
 तं चाप्यतिक्रमन्तस्ते ददृशुर्वालुकार्णवम् ।  
 अवैक्षन्त महाशैलं मेरुं शिखरिणां वरम् ॥ २  
 तेषां तु गच्छतां शीघ्रं सर्वेषां योगधर्मिणाम् ।  
 याज्ञसेनी भ्रष्टयोगा निपपात महीतले ॥ ३  
 तां तु प्रपतितां दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः ।  
 उवाच धर्मराजानं याज्ञसेनीमवेक्ष्य ह ॥ ४  
 नाधर्मश्चरितः कश्चिद्राजपुत्र्या परंतप ।  
 कारणं किं नु तद्राजन्यत्कृष्णा पतिता भुवि ॥ ५

## युधिष्ठिर उवाच ।

पक्षपातो महानस्या विशेषेण धनंजये ।  
तस्यैतत्फलमद्यैषा भुङ्क्ते पुरुषसत्तम ॥ ६

## वैशंपायन उवाच ।

एवमुक्त्वानवेक्ष्यैनां ययौ धर्मसुतो नृपः ।  
समाधाय मनो धीमान्धर्मात्मा पुरुषर्षभः ॥ ७  
सहदेवस्ततो धीमान्निपपात महीतले ।  
तं चापि पतितं दृष्ट्वा भीमो राजानमब्रवीत् ॥ ८  
योऽयमस्मासु सर्वेषु शुश्रूषुरनहंकृतः ।  
सोऽयं माद्रवतीपुत्रः कस्मान्निपतितो भुवि ॥ ९

## युधिष्ठिर उवाच ।

आत्मनः सदृशं प्राज्ञं नैषोऽमन्यत कंचन ।  
तेन दोषेण पतितस्तस्मादेष नृपात्मजः ॥ १०

## वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्त्वा तु समुत्सृज्य सहदेवं ययौ तदा ।  
भ्रातृभिः सह कौन्तेयः शुना चैव युधिष्ठिरः ॥ ११  
कृष्णां निपतितां दृष्ट्वा सहदेवं च पाण्डवम् ।  
आर्तो बन्धुप्रियः शूरो नकुलो निपपात ह ॥ १२  
तस्मिन्निपतिते वीरे नकुले चारुदर्शने ।  
पुनरेव तदा भीमो राजानमिदमब्रवीत् ॥ १३  
योऽयमक्षतधर्मात्मा भ्राता वचनकारकः ।  
रूपेणाप्रतिमो लोके नकुलः पतितो भुवि ॥ १४  
इत्युक्तो भीमसेनेन प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ।  
नकुलं प्रति धर्मात्मा सर्वबुद्धिमतां वरः ॥ १५  
रूपेण भर्त्समो नास्ति कश्चिदित्यस्य दर्शनम् ।  
अधिकश्चाहमेवैक इत्यस्य मनसि स्थितम् ॥ १६  
नकुलः पतितस्तस्मादागच्छ त्वं वृकोदर ।  
यस्य यद्विहितं वीर सोऽवश्यं तदुपाश्रुते ॥ १७  
तस्मिन् प्रपतितान्दृष्ट्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः ।

पपात शोकसंतप्तस्ततोऽनु परवीरहा ॥ १८  
तस्मिन्तु पुरुषव्याघ्रे पतिते शकतेजसि ।  
म्रियमाणे दुराधर्षे भीमो राजानमब्रवीत् ॥ १९  
अनृतं न स्मराम्यस्य स्वैरेष्वपि महात्मनः ।  
अथ कस्य विकारोऽयं येनायं पतितो भुवि ॥ २०

## युधिष्ठिर उवाच ।

एकाह्वा निर्दहेयं वै शत्रूनित्यर्जुनोऽब्रवीत् ।  
न च तत्कृतवानेष शूरमानी ततोऽपतत् ॥ २१  
अवमेने धनुर्ग्राहानेष सर्वाश्च फल्गुनः ।  
यथा चोक्तं तथा चैव कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ २२

## वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्त्वा प्रस्थितो राजा भीमोऽथ निपपात ह ।  
पतितश्चाब्रवीद्भीमो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ २३  
भो भो राजन्नवेक्षस्व पतितोऽहं प्रियस्तव ।  
किंनिमित्तं च पतनं ब्रूहि मे यदि वेत्थ ह ॥ २४

## युधिष्ठिर उवाच ।

अतिभुक्तं च भवता प्राणेन च विकथसे ।  
अनवेक्ष्य परं पार्थ तेनासि पतितः क्षितौ ॥ २५

## वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्त्वा तं महाबाहुर्जगामानवलोकयन् ।  
श्वा त्वेकोऽनुययौ यस्ते बहुशः कीर्तितो मया ॥ २६  
इति श्रीमहाभारते महाप्रस्थानिकपर्वणि

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

३

## वैशंपायन उवाच ।

ततः संनादयञ्शक्रो दिवं भूमिं च सर्वशः ।  
रथेनोपययौ पार्थमारोहेत्यब्रवीच्च तम् ॥ १  
स भ्रातृन्पतितान्दृष्ट्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।  
अब्रवीच्छोकसंतप्तः सहस्राक्षमिदं वचः ॥ २  
भ्रातरः पतिता मेऽत्र आगच्छेयुर्मया सह ।

न विना भ्रातृभिः स्वर्गमिच्छे गन्तुं सुरेश्वर ॥ ३  
सुकुमारी सुखार्हा च राजपुत्री पुरंदर ।

सास्माभिः सह गच्छेत तद्भवाननुमन्यनाम् ॥ ४

इन्द्र उवाच ।

भ्रातृन्द्रक्ष्यसि पुत्रांस्त्वमग्रतस्त्रिदिवं गतान् ।

कृष्णया सहितान्सर्वान्मा शुचो भरतर्षभ ॥ ५

निक्षिप्य मानुषं देहं गतास्ते भरतर्षभ ।

अनेन त्वं शरीरेण स्वर्गं गन्ता न संशयः ॥ ६

युधिष्ठिर उवाच ।

अयं श्वा भूतभव्येश भक्तो मां नित्यमेव ह ।

स गच्छेत मया सार्धमानुशंस्या हि मे मतिः ॥ ७

इन्द्र उवाच ।

अमर्त्यत्वं मत्समत्वं च राज-

जिश्रयं कृत्स्नां महतीं चैव कीर्तिम् ।

संप्राप्तोऽद्य स्वर्गसुखानि च त्वं

त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति ॥ ८

युधिष्ठिर उवाच ।

अनार्यमार्येण सहस्रनेत्र

शक्यं कर्तुं दुष्करमेतदार्य ।

मा मे श्रिया संगमनं तयास्तु

यस्याः कृते भक्तजनं त्यजेयम् ॥ ९

इन्द्र उवाच ।

स्वर्गे लोके श्ववतां नास्ति धिष्य-

मिष्टापूर्तं क्रोधवशा हरन्ति ।

ततो विचार्य क्रियतां धर्मराज

त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति ॥ १०

युधिष्ठिर उवाच ।

भक्त्यागं प्रादुरत्यन्तपापं

तुल्यं लोके ब्रह्मवध्याकृतेन ।

तस्मान्नाहं जातु कथंचनाद्य

त्यक्षाम्येनं स्वसुखार्थी महेन्द्र ॥ ११

इन्द्र उवाच ।

शुना दृष्टं क्रोधवशा हरन्ति

यद्वत्तमिष्टं विवृतमथो हुतं च ।

तस्माच्छुनस्त्यागमिमं कुरुष्व

शुनस्त्यागात्प्राप्स्यसे देवलोकम् ॥ १२

त्यक्त्वा भ्रातृन्दयितां चापि कृष्णां

प्राप्तो लोकः कर्मणा स्वेन वीर ।

श्वानं चैनं न त्यजसे कथं नु

त्यागं कृत्स्नं चास्थितो मुह्यसेऽद्य ॥ १३

युधिष्ठिर उवाच ।

न विद्यते संधिरथापि विप्रहो

मृतैर्मर्त्यैरिति लोकेषु निष्ठा ।

न ते मया जीवयितुं हि शक्या

तस्मात्त्यागस्तेषु कृतो न जीवताम् ॥ १४

प्रतिप्रदानं शरणागतस्य

स्त्रियो वधो ब्राह्मणस्वापहारः ।

मित्रद्रोहस्तानि चत्वारि शक्र

भक्तत्यागश्चैव समो मतो मे ॥ १५

वैशंपायन उवाच ।

तद्धर्मराजस्य वचो निशम्य

धर्मस्वरूपी भगवानुवाच ।

युधिष्ठिरं प्रीतियुक्तो नरेन्द्रं

ऋक्षगैर्वाक्यैः संस्तवसंप्रयुक्तैः ॥ १६

अभिजातोऽसि राजेन्द्र पितृवृत्तेन मेधया ।

अनुक्रोशेन चानेन सर्वभूतेषु भारत ॥ १७

पुरा द्वैतवने चासि मया पुत्र परीक्षितः ।

पानीयार्थे पराक्रान्ता यत्र ते भ्रातरो हताः ॥ १८

भीमार्जुनौ परित्यज्य यत्र त्वं भ्रातराबुधौ ।

मात्रोः साम्यमभीप्सन्वै नकुल जीवमिच्छसि ॥

अयं आ भक्त इत्येव त्यक्तो देवरथस्त्वया ।  
 तस्मात्स्वर्गे न ते तुल्यः कश्चिदस्ति नराधिप ॥ २०  
 अतस्तवाक्षया लोकीः स्वशरीरेण भारत ।  
 प्राप्तोऽसि भरतश्रेष्ठ दिव्यां गतिमनुत्तमाम् ॥ २१  
 ततो धर्मश्च शक्रश्च मरुतश्चाश्विनावपि ।  
 देवा देवर्षयश्चैव रथमारोप्य पाण्डवम् ॥ २२  
 प्रययुः स्वैर्विमानैस्ते सिद्धाः कामविहारिणः ।  
 सर्वे विरजसः पुण्याः पुण्यवाग्बुद्धिकर्मिणः ॥ २३  
 स तं रथं समास्थाय राजा कुरुकुलोद्बहः ।  
 ऊर्ध्वमाचक्रमे शीघ्रं तेजसावृत्य रोदसी ॥ २४  
 ततो देवनिकायस्थो नारदः सर्वलोकवित् ।  
 उवाचोबैस्तदा वाक्यं बृहद्वादी बृहत्तपाः ॥ २५  
 येऽपि राजर्षयः सर्वे ते चापि समुपस्थिताः ।  
 कीर्तिं प्रच्छाद्य तेषां वै कुरुराजोऽधितिष्ठति ॥ २६  
 लोकानावृत्य यशसा तेजसा वृत्तसंपदा ।  
 स्वशरीरेण संप्राप्तं नान्यं शुश्रुम पाण्डवात् ॥ २७  
 नारदस्य वचः श्रुत्वा राजा वचनमब्रवीत् ।  
 देवानामन्य धर्मात्मा स्वपक्षांश्चैव पार्थिवान् ॥ २८  
 शुभं वा यदि वा पापं भ्रातॄणां स्थानमद्य मे ।

तदेव प्राप्तुमिच्छामि लोकानन्यान् कामये ॥ २९  
 राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा देवराज पुरंदरः ।  
 आनृशंस्यसमायुक्तं प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ ३०  
 स्थानेऽस्मिन्वस राजेन्द्र कर्मभिर्निर्जिते शुभैः ।  
 किं त्वं मानुष्यकं स्नेहमद्यापि परिकर्षसि ॥ ३१  
 सिद्धिं प्राप्तोऽसि परमां यथा नान्यः पुमान्कचित् ।  
 नैव ते भ्रातरः स्थानं संप्राप्ताः कुरुनन्दन ॥ ३२  
 अद्यापि मानुषो भावः स्पृशते स्वां नराधिप ।  
 स्वर्गोऽयं पश्य देवर्षीन्सिद्धांश्च त्रिदिवालयान् ॥  
 युधिष्ठिरस्तु देवेन्द्रमेवंवादिनमीश्वरम् ।  
 पुनरेवाब्रवीद्वीमानिदं वचनमर्थवत् ॥ ३४  
 तैर्विना नोत्सहे वस्तुमिह दैत्यनिबर्हण ।  
 गन्तुमिच्छामि तत्राहं यत्र मे भ्रातरो गताः ॥ ३५  
 यत्र सा बृहती श्यामा बुद्धिसत्त्वगुणान्विता ।  
 द्रौपदी योषितां श्रेष्ठा यत्र चैव प्रिया मम ॥ ३६

इति श्रीमहाभारते महाप्रस्थानिकपर्वणि

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ महाप्रस्थानिकपर्व समाप्तम् ॥

## स्वर्गारोहणपर्व

१

जनमेजय उवाच ।

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य मम पूर्वपितामहाः ।  
पाण्डवा धार्तराष्ट्रश्च कानि स्थानानि भेजिरे ॥ १  
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं सर्वविज्ञासि मे मतः ।  
महर्षिणाभ्यनुज्ञातो व्यासेनाद्भुतकर्मणा ॥ २

वैशंपायन उवाच ।

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य तव पूर्वपितामहाः ।  
युधिष्ठिरप्रभृतयो यदकुर्वन्त तृच्छृणु ॥ ३  
स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।  
दुर्योधनं श्रिया जुष्टं ददर्शासीनमासने ॥ ४  
भ्राजमानामिवादित्यं वीरलक्ष्म्याभिसंवृतम् ।  
देवैर्भ्राजिष्णुभिः साध्यैः सहितं पुण्यकर्मभिः ॥ ५  
ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा दुर्योधनममर्षितः ।  
सहसा संनिवृत्तोऽभूच्छ्रयं दृष्ट्वा सुयोधने ॥ ६  
ब्रुवन्नुच्चैर्वचस्तान्वै नाहं दुर्योधनेन वै ।  
सहितः कामये लोकाँल्लुब्धेनादीर्घदर्शिना ॥ ७  
यत्कृते पृथिवी सर्वा सुहृदो बान्धवास्तथा ।  
हतास्माभिः प्रसह्याजौ क्षिप्रैः पूर्वं महावने ॥ ८  
द्रौपदी च सभामध्ये पाञ्चाली धर्मचारिणी ।  
परिक्षिष्टानवद्याङ्गी पत्नी नो गुरुसंनिधौ ॥ ९  
स्वस्ति देवा न मे कामः सुयोधनमुदीक्षितुम् ।  
तत्राहं गन्तुमिच्छामि यत्र ते भ्रातरो मम ॥ १०

मैवमित्यब्रवीत्तं तु नारदः प्रहसन्निव ।  
स्वर्गे निवासो राजेन्द्र विरुद्धं चापि नश्यति ॥ ११  
युधिष्ठिर महाबाहो मैवं वोचः कथंचन ।  
दुर्योधनं प्रति नृपं शृणु चेदं वचो मम ॥ १२  
एष दुर्योधनो राजा पूज्यते त्रिदशैः सह ।  
सद्विश्च राजप्रवरैर्य इमे स्वर्गवासिनः ॥ १३  
वीरलोकगतिं प्राप्तो युद्धे हुत्वात्मनस्तनुम् ।  
यूयं सर्वे सुरसमा येन युद्धे समासिताः ॥ १४  
स एष क्षत्रधर्मेण स्थानमेतदवाप्तवान् ।  
भये महति योऽभीतो बभूव पृथिवीपतिः ॥ १५  
न तन्मनसि कर्तव्यं पुत्र यद्व्यूतकारितम् ।  
द्रौपद्याश्च परिक्षेशं न चिन्तयितुमर्हसि ॥ १६  
ये चान्येऽपि परिक्षेशा युष्माकं व्यूतकारिताः ।  
संग्रामेष्वथ वान्यत्र न तान्संस्मर्तुमर्हसि ॥ १७  
समागच्छ यथान्यायं राज्ञा दुर्योधनेन वै ।  
स्वर्गोऽयं नेह वैराणि भवन्ति मनुजाधिप ॥ १८  
नारदेनैवमुक्तस्तु कुरुराजो युधिष्ठिरः ।  
भ्रातृन्प्रच्छ मेधावी वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १९  
यदि दुर्योधनस्यैते वीरलोकाः सनातनाः ।  
अधर्मज्ञस्य पापस्य पृथिवीसुहृदद्रुहः ॥ २०  
यत्कृते पृथिवी नष्टा सहया सरथद्विपा ।  
वयं च मन्युना दग्धा वैरं प्रतिचिकीर्षवः ॥ २१  
ये ते वीरा महात्मानो भ्रातरो मे महाव्रताः ।

सत्यप्रतिज्ञा लोकस्य शूरा वै सत्यवादिनः ॥ २२  
 तेषामिदानीं के लोका द्रष्टुमिच्छामि तानहम् ।  
 कर्णं चैव महात्मानं कौन्तेयं सत्यसंगरम् ॥ २३  
 धृष्टद्युम्नं सास्यकिं च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजान् ।  
 ये च शत्रैर्वधं प्राप्ताः क्षत्रधर्मेण पार्थिवाः ॥ २४  
 क्व नु ते पार्थिवा ब्रह्मत्रैतान्पश्यामि नारद ।  
 विराटद्रुपदौ चैव धृष्टकेतुमुखांश्च तान् ॥ २५  
 शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं द्रौपदेयांश्च सर्वशः ।  
 अभिमन्युं च दुर्धर्षं द्रष्टुमिच्छामि नारद ॥ २६  
 इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

२

युधिष्ठिर उवाच ।

नेह पश्यामि विबुधा राधेयममितौजसम् ।  
 भ्रातरौ च महात्मानौ युधामन्युत्तमौजसौ ॥ १  
 जुहुवुर्ये शरीराणि रणवह्नीं महारथाः ।  
 राजानो राजपुत्राश्च ये मदर्थे हता रणे ॥ २  
 क्व ते महारथाः सर्वे शार्दूलसमविक्रमाः ।  
 तैरप्ययं जितो लोकः कश्चित्पुरुषसत्तमैः ॥ ३  
 यदि लोकानिमांस्त्राप्तास्ते च सर्वे महारथाः ।  
 स्थितं वित्तं हि मां देवाः सहितं तैर्महात्मभिः ॥ ४  
 कश्चिन्न तैरवाप्तोऽयं नृपैर्लोकोऽक्षयः शुभः ।  
 न तैरहं विना वत्से ज्ञातिभिर्भ्रातृभिस्तथा ॥ ५  
 मातुर्हि वचनं श्रुत्वा तदा सलिलकर्मणि ।  
 कर्णस्य क्रियतां तोयमिति तप्यामि तेन वै ॥ ६  
 इदं च परितप्यामि पुनः पुनरहं सुराः ।  
 यन्मातुः सदृशौ पादौ तस्याहममितौजसः ॥ ७  
 दृष्ट्वैव तं नानुगतः कर्णं परबलादर्नम् ।  
 न ह्यस्मान्कर्णसहिताञ्जयेच्छक्रोऽपि संयुगे ॥ ८  
 तमहं यत्रतत्रस्थं द्रष्टुमिच्छामि सूर्यजम् ।

अविज्ञातो मया योऽसौ घातितः सव्यसाचिना ॥  
 भीमं च भीमविक्रान्तं प्राणेभ्योऽपि प्रियं मम ।  
 अर्जुनं चेन्द्रसंकाशं यमौ तौ च यमोपमौ ॥ १०  
 द्रष्टुमिच्छामि तां चाहं पाञ्चालीं धर्मचारिणीम् ।  
 न चेहं स्थातुमिच्छामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ ११  
 किं मे भ्रातृविहीनस्य स्वर्गेण सुरसत्तमाः ।  
 यत्र ते स मम स्वर्गो नायं स्वर्गो मतो मम ॥ १२

देवा ऊचुः ।

यदि वै तत्र ते श्रद्धा गम्यतां पुत्र माचिरम् ।  
 प्रिये हि तव वर्तमानो देवराजस्य शासनात् ॥ १३

वैशंपायन उवाच ।

इत्युक्त्वा तं ततो देवा देवदूतमुपादिशन् ।  
 युधिष्ठिरस्य सुहृदो दर्शयेति परंतप ॥ १४  
 ततः कुन्तीसुतो राजा देवदूतश्च जग्मतुः ।  
 सहितौ राजशार्दूल यत्र ते पुरुषर्षभाः ॥ १५  
 अग्रतो देवदूतस्तु यथौ राजा च पृष्ठतः ।  
 पन्थानमशुभं दुर्गं सेवितं पापकर्मभिः ॥ १६  
 तमसा संवृतं घोरं केशशैवलशाद्वलम् ।  
 युक्तं पापकृतां गन्धैर्मांसशोणितकर्दमम् ॥ १७  
 दंशोत्थानं सझिलीकं मक्षिकामशकावृतम् ।  
 इतश्चेतश्च कुणपैः समन्तात्परिवारितम् ॥ १८  
 अस्थिकेशसमाकीर्णं कृमिकीटसमाकुलम् ।  
 ज्वलनेन प्रदीप्तेन समन्तात्परिवेष्टितम् ॥ १९  
 अयोमुखैश्च काकोलैर्गृध्रैश्च समभिद्रुतम् ।  
 सूचीमुखैस्तथा प्रेतैर्विन्ध्यशैलोपमैर्वृतम् ॥ २०  
 मेदोरुधिरयुक्तैश्च छिन्नबाहूरुपाणिभिः ।  
 निष्कृत्तोदरपादैश्च तत्र तत्र प्रवेरितैः ॥ २१  
 स तत्कुणपदुर्गन्धमशिवं रोमहर्षणम् ।  
 जगाम राजा धर्मात्मा मध्ये बहु विचिन्तयन् ॥  
 ददर्शोष्णोदकैः पूर्णां नदीं चापि सुदुर्गमाम् ।

असिपत्रवनं चैव निशितक्षुरसंवृतम् ॥ २३  
 करम्भवालुकास्तप्ता आयसीश्च शिलाः पृथक् ।  
 लोहकुम्भीश्च तैलस्य काथ्यमानाः समन्ततः ॥ २४  
 कूटशाल्मलिकं चापि दुःस्पर्शं तीक्ष्णकण्टकम् ।  
 ददर्श चापि कौन्तेयो यातनाः पापकर्मिणाम् ॥ २५  
 स त दुर्गन्धमालक्ष्य देवदूतमुवाच ह ।  
 किंयद्वानमस्माभिर्गन्तव्यमिदमीदृशम् ॥ २६  
 क च ते भ्रातरो मह्यं तन्ममाख्यातुमर्हसि ।  
 देशोऽयं कश्च देवानामेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ २७  
 स संनिवृत्ते श्रुत्वा धर्मराजस्य भाषितम् ।  
 देवदूतोऽब्रवीच्चैनमेतावद्गमनं तव ॥ २८  
 निवर्तितव्यं हि मया तथास्म्युक्तो दिवौकसैः ।  
 यदि श्रान्तोऽसि राजेन्द्र त्वमथागन्तुमर्हसि ॥ २९  
 युधिष्ठिरस्तु निर्विण्णस्तेन गन्धेन मूर्छितः ।  
 निवर्तने धृतमनाः पर्यावर्तत भारत ॥ ३०  
 स संनिवृत्तो धर्मात्मा दुःखशोकसमन्वितः ।  
 शुश्राव तत्र वदतां दीना वाचः समन्ततः ॥ ३१  
 भो भो धर्मज राजर्षे पुण्याभिजन पाण्डव ।  
 अनुग्रहार्थमस्माकं तिष्ठ तावन्मुहूर्तकम् ॥ ३२  
 आयाति त्वयि दुर्धर्षे वाति पुण्यः समीरणः ।  
 तव गन्धानुगस्तात येनास्मान्सुखमागतम् ॥ ३३  
 ते वयं पार्थ दीर्घस्य कालस्य पुरुषर्षभ ।  
 सुखमासादयिष्यामस्त्वां दृष्ट्वा राजसत्तम ॥ ३४  
 संतिष्ठस्व महाबाहो मुहूर्तमपि भारत ।  
 त्वयि तिष्ठति कौरव्य यातनास्मान्न बाधते ॥ ३५  
 एवं बहुविधा वाचः कृपणा वेदनावताम् ।  
 तस्मिन्देशे स शुश्राव समन्ताद्बदतां नृप ॥ ३६  
 तेषां तद्वचनं श्रुत्वा दयावान्दीनभाषिणाम् ।  
 अहो कृच्छ्रमिति ग्राह तस्थौ स च युधिष्ठिरः ॥  
 स ता गिरः पुरस्ताद्वै श्रुतपूर्वाः पुनः पुनः ।

ग्लानानां दुःखितानां च नाभ्यजानत पाण्डवः ॥  
 अबुध्यमानस्ता वाचो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।  
 उवाच के भवन्तो वै किमर्थमिह तिष्ठथ ॥ ३९  
 इत्युक्तास्ते ततः सर्वे समन्तादवभाषिरे ।  
 कर्णोऽहं भीमसेनोऽहमर्जुनोऽहमिति प्रभो ॥ ४०  
 नकुलः सहदेवोऽहं धृष्टद्युम्नोऽहमित्युत ।  
 द्रौपदी द्रौपदेयाश्च इत्येवं ते विचुक्रुशुः ॥ ४१  
 ता वाचः स तदा श्रुत्वा तद्देशसदृशीर्नृप ।  
 ततो विममृशे राजा किं न्विदं देवकारितम् ॥ ४२  
 किं नु तत्कलुषं कर्म कृतमेभिर्महात्मभिः ।  
 कर्णेन द्रौपदेयैर्वा पाञ्चाल्या वा सुमध्यया ॥ ४३  
 य इमे पापगन्धेऽस्मिन्देशे सन्ति सुदारुणे ।  
 न हि जानामि सर्वेषां दुष्कृतं पुण्यकर्मणाम् ॥  
 किं कृत्वा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो राजा सुयोधनः ।  
 तथा श्रिया युतः पापः सह सर्वैः पदानुगैः ॥ ४५  
 महेन्द्र इव लक्ष्मीवानास्ते परमपूजितः ।  
 कस्येदानीं विकारोऽयं यदिमे नरकं गताः ॥ ४६  
 सर्वधर्मविदः शूराः सत्यागमपरायणाः ।  
 क्षात्रधर्मपराः प्राज्ञा यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥ ४७  
 किं नु सुप्तोऽस्मि जागर्मि चेतयानो न चेतये ।  
 अहो चित्तविकारोऽयं स्याद्वा मे चित्तविभ्रमः ॥ ४८  
 एवं बहुविधं राजा विममर्श युधिष्ठिरः ।  
 दुःखशोकसमाविष्टश्चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः ॥ ४९  
 क्रोधमाहारयच्चैव तीव्रं धर्मसुतो नृपः ।  
 देवांश्च गर्हयामास धर्मं चैव युधिष्ठिरः ॥ ५०  
 स तीव्रगन्धसंतप्तो देवदूतमुवाच ह ।  
 गम्यतां भद्र येषां त्वं दूतस्तेषामुपान्तिकम् ॥ ५१  
 न ह्यहं तत्र यास्यामि स्थितोऽस्मीति निवेद्यताम् ।  
 मत्संश्रयादिमे दूत सुखिनो भ्रातरो हि मे ॥ ५२  
 इत्युक्तः स तदा दूतः पाण्डुपुत्रेण धीमता ।

जगाम-तत्र यत्रास्ते देवराजः शतक्रतुः ॥ ५३

निवेद्यामास च तद्धर्मराजचिकीर्षितम् ।

यथोक्तं धर्मपुत्रेण सर्वमेव जनाधिप ॥ ५४

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

३

वैशंपायन उवाच ।

स्थिते मुहूर्ते पार्थे तु धर्मराजे युधिष्ठिरे ।

आजग्मुस्तत्र कौरव्य देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ १

स्वयं विग्रहवान्धर्मो राजानं प्रसमीक्षितुम् ।

तत्राजगाम यत्रासौ कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ २

तेषु भास्वरदेहेषु पुण्याभिजनकर्मसु ।

समागतेषु देवेषु व्यगमत्तत्तमो नृप ॥ ३

नादृश्यन्त च तास्तत्र यातनाः पापकर्मिणाम् ।

नृदी वैतरणी चैव कूटशाल्मलिना सह ॥ ४

लोहकुम्भ्यः शिलाश्चैव नादृश्यन्त भयानकाः ।

विकृतानि शरीराणि यानि तत्र समन्ततः ।

ददर्श राजा कौन्तेयस्तान्यदृश्यानि चाभवन् ॥ ५

ततो वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शिवः ।

ववौ देवसमीपस्थः शीतलोऽतीव भारत ॥ ६

मरुतः सह शक्रेण वसवश्चाश्विनौ सह ।

साध्या रुद्रास्तथादित्या ये चान्येऽपि दिवौकसः ॥

सर्वे तत्र समाजग्मुः सिद्धाश्च परमर्षयः ।

यत्र राजा महातेजा धर्मपुत्रः स्थितोऽभवत् ॥ ८

ततः शक्रः सुरपतिः श्रिया परमया युतः ।

युधिष्ठिरमुवाचेदं सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥ ९

युधिष्ठिर महाबाहो प्रीता देवगणास्तव ।

एह्येहि पुरुषव्याघ्र कृतमेतावता विभो ।

सिद्धिः प्राप्ता त्वया राजल्लोकाश्चाप्यक्षयास्तव ॥ १०

न च मनुस्त्वया कार्यः शृणु चेदं वचो मम ।

अवश्यं नरकस्तात द्रष्टव्यः सर्वराजभिः ॥ ११

शुभानामशुभानां च द्वौ राशी पुरुषर्षभ ।

यः पूर्वं सुकृतं भुङ्क्ते पश्चान्निरयमेति सः ।

पूर्वं नरकभाग्यस्तु पश्चात्स्वर्गमुपैति सः ॥ १२

भूयिष्ठं पापकर्मा यः स पूर्वं स्वर्गमश्नुते ।

तेन त्वमेवं गमितो मया श्रेयोर्यिना नृप ॥ १३

व्याजेन हि त्वया द्रोण उपचीर्णः सुतं प्रति ।

व्याजेनैव ततो राजन्दर्शितो नरकस्तव ॥ १४

यथैव त्वं तथा भीमस्तथा पार्थो यमौ तथा ।

द्रौपदी च तथा कृष्णा व्याजेन नरकं गताः ॥ १५

आगच्छ नरशार्दूल मुक्तास्ते चैव किल्बिषात् ।

स्वपक्षाच्चैव ये तुभ्यं पार्थिवा निहता रणे ।

सर्वे स्वर्गमनुप्राप्तास्तान्पश्य पुरुषर्षभ ॥ १६

कर्णश्चैव महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।

स गतः परमां सिद्धिं यदर्थं परितप्यसे ॥ १७

तं पश्य पुरुषव्याघ्रमादित्यतनयं विभो ।

स्वस्थानस्थं महाबाहो जहि शोकं नरर्षभ ॥ १८

भ्रातृश्रान्यांस्तथा पश्य स्वपक्षांश्चैव पार्थिवान् ।

स्वं स्वं स्थानमनुप्राप्तान्व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ १९

अनुभूय पूर्वं त्वं कृच्छ्रमितः प्रभृति कौरव ।

विहरस्व मया सार्धं गतशोको निरामयः ॥ २०

कर्मणां तात पुण्यानां जितानां तपसा स्वयम् ।

दानानां च महाबाहो फलं प्राप्नुहि पाण्डव ॥ २१

अद्य त्वां देवगन्धर्वा दिव्याश्चाप्सरसो दिवि ।

उपसेवन्तु कल्याणं विरजोम्बरवाससः ॥ २२

राजसूयजिताल्लोकानश्वमेधाभिवर्धितान् ।

प्राप्नुहि त्वं महाबाहो तपसश्च फलं महत् ॥ २३

उपर्युपरि राज्ञां हि तव लोका युधिष्ठिर ।

हरिश्चन्द्रसमाः पार्थ येषु त्वं विहरिष्यसि ॥ २४

मान्धाता यत्र राजर्षिर्यत्र राजा भगीरथः ।



दौःषन्तिर्यत्र भरतस्तत्र त्वं विहरिष्यसि ॥ २५  
 एषा देवनदी पुण्या पार्थ त्रैलोक्यपावनी ।  
 आकाशगङ्गा राजेन्द्र तत्राप्नुत्य गमिष्यसि ॥ २६  
 अत्र स्नातस्य ते भावो मानुषो विगमिष्यति ।  
 गतशोको निरायासो मुक्तवैरो भविष्यसि ॥ २७  
 एवं ब्रुवति देवेन्द्रे कौरवेन्द्रं युधिष्ठिरम् ।  
 धर्मो विग्रहवान्साक्षादुवाच सुतमात्मनः ॥ २८  
 भो भो राजन्महाप्राज्ञ प्रीतोऽस्मि तव पुत्रक ।  
 मद्भक्त्या सत्यवाक्येन क्षमया च दमेन च ॥ २९  
 एषा तृतीया जिज्ञासा तव राजन्कृता मया ।  
 न शक्यसे चालयितुं स्वभावात्पार्थ हेतुभिः ॥ ३०  
 पूर्वं परीक्षितो हि त्वमासीद्वैतवनं प्रति ।  
 अरणीसहितस्यार्थे तच्च निस्तीर्णवानसि ॥ ३१  
 सोदर्येषु विनष्टेषु द्रौपद्यां तत्र भारत ।  
 श्वरूपधारिणा पुत्र पुनस्त्वं मे परीक्षितः ॥ ३२  
 इहं तृतीयं भ्रातृणामर्थे यत्स्थातुमिच्छसि ।  
 विशुद्धोऽसि महाभाग सुखी विगतकल्मषः ॥ ३३  
 न च ते भ्रातरः पार्थ नरकस्था विशां पते ।  
 मायैषा देवराजेन महेन्द्रेण प्रयोजिता ॥ ३४  
 अवश्यं नरकस्तात द्रष्टव्यः सर्वराजभिः ।  
 ततस्त्वया प्राप्तमिदं मुहूर्तं दुःखमुत्तमम् ॥ ३५  
 न सव्यसाची भीमो वा यमौ वा पुरुषर्षभौ ।  
 कर्णो वा सत्यवाकशूरो नरकार्हाश्चिरं नृप ॥ ३६  
 न कृष्णा राजपुत्री च नरकार्हा युधिष्ठिर ।  
 एह्येहि भरतश्रेष्ठ पश्य गङ्गां त्रिलोक्याम् ॥ ३७  
 एवमुक्तः स राजर्षिस्तव पूर्वपितामहः ।  
 जगाम सह धर्मेण सर्वैश्च त्रिदशलैः ॥ ३८  
 गङ्गां देवनदीं पुण्यां पावनीमृषिसंस्तुताम् ।  
 अवगाह्य तु तां राजा तनुं तत्याज मानुषीम् ॥ ३९  
 ततो दिव्यवपुर्भूत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।

निर्वैरो गतसंतापो जले तस्मिन्समाप्नुतः ॥ ४०  
 ततो ययौ वृतो देवैः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।  
 धर्मेण सहितो धीमान्स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ ४१  
 इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि  
 तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

वैशंपायन उवाच ।

ततो युधिष्ठिरो राजा देवैः सर्विमरुद्गणैः ।  
 पूज्यमानो ययौ तत्र यत्र ते कुरुपुंगवाः ॥ १  
 ददर्श तत्र गोविन्दं ब्राह्मेण वपुषान्वितम् ।  
 तेनैव दृष्टपूर्वेण सादृश्येनोपसूचितम् ॥ २  
 दीप्यमानं स्ववपुषा दिव्यैरस्त्रैरुपस्थितम् ।  
 चक्रप्रभृतिभिर्घोरैर्दिव्यैः पुरुषविग्रहैः ॥ ३  
 उपास्यमानं वीरेण फल्गुनेन सुवर्चसा ।  
 अपरस्मिन्नथोद्देशे कर्णं शस्त्रभृतां वरम् ।  
 द्वादशादित्यसहितं ददर्श कुरुनन्दनः ॥ ४  
 अथापरस्मिन्नुद्देशे मरुद्गणवृतं प्रभुम् ।  
 भीमसेनमथापश्यत्तेनैव वपुषान्वितम् ॥ ५  
 अश्विनोस्तु तथा स्थाने दीप्यमानौ स्वतेजसा ।  
 नकुलं सहदेवं च ददर्श कुरुनन्दनः ॥ ६  
 तथा ददर्श पाञ्चालीं कमलोत्पलमालिनीम् ।  
 वपुषा स्वर्गमाक्रम्य तिष्ठन्तीमर्कवर्चसम् ॥ ७  
 अथैनां सहसा राजा प्रष्टुमैच्छद्युधिष्ठिरः ।  
 ततोऽस्य भगवानिन्द्रः कथयामास देवराट् ॥ ८  
 श्रीरेषा द्रौपदीरूपा त्वदर्थे मानुषं गता ।  
 अयोनिजा लोककान्ता पुण्यगन्धा युधिष्ठिर ॥ ९  
 द्रुपदस्य कुले याता भवद्भिश्चोपजीविता ।  
 रत्यर्थं भवतां ह्येषा निर्मिता शूलपाणिना ॥ १०  
 एते पञ्च महाभागा गन्धर्वाः पावकप्रभाः ।  
 द्रौपद्यास्तनया राजन्युष्माकममितौजसः ॥ ११

पश्य गन्धर्वराजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।  
 एनं च त्वं विजानीहि भ्रातरं पूर्वजं पितुः ॥ १२  
 अयं ते पूर्वजो भ्रष्टा कौन्तेयः पावकद्युतिः ।  
 सूर्यपुत्रोऽग्रजः श्रेष्ठो राधेय इति विश्रुतः ।  
 आदित्यसहितो याति पश्यैनं पुरुषर्षभ ॥ १३  
 साध्यानामथ देवानां वसूनां मरुतामपि ।  
 गणेषु पश्य राजेन्द्र वृष्ण्यन्धकमहारथान् ।  
 सात्यकिप्रमुखान्वीरान्भोजांश्चैव महारथान् ॥ १४  
 सोमेन सहित पश्य सौभद्रमपराजितम् ।  
 अभिमन्युं महेष्वासं निशाकरसमद्युतिम् ॥ १५  
 एष पाण्डुर्महेष्वासः कुन्त्या माया च संगतः ।  
 विमानेन सदाभ्येति पिता तव ममान्तिकम् ॥ १६  
 वसुभिः सहितं पश्य भीष्मं शांतनवं नृपम् ।  
 द्रोणं बृहस्पतेः पार्श्वे गुरुमेनं निशामय ॥ १७  
 एते चान्ये महीपाला योधास्तव च पाण्डव ।  
 गन्धर्वैः सहिता यान्ति यक्षैः पुण्यजनैस्तथा ॥ १८  
 गुह्यकानां गतिं चापि केचित्प्राप्ता नृसत्तमाः ।  
 त्यक्त्वा देहं जितस्वर्गाः पुण्यवाग्बुद्धिकर्मभिः ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

५

जनमेजय उवाच ।

भीष्मद्रोणौ महात्मानौ धृतराष्ट्रश्च पार्थिवः ।  
 विराटद्रुपदौ चोभौ शङ्खश्चैवोत्तरस्तथा ॥ १  
 धृष्टकेतुर्जयत्सेनो राजा चैव स सत्यजित् ।  
 दुर्योधनसुताश्चैव शकुनिश्चैव सौबलः ॥ २  
 कर्णपुत्राश्च विक्रान्ता राजा चैव जयद्रथः ।  
 घटोत्कचादयश्चैव ये चान्ये नानुकीर्तिताः ॥ ३  
 ये चान्ये कीर्तितास्तत्र राजानो दीप्तमूर्तयः ।  
 स्वर्गो कालं कियन्तं ते तस्थुस्तदपि शंस मे ॥ ४

आहो स्विच्छाश्वतं स्थानं तेषां तत्र द्विजोत्तम ।  
 अन्ते वा कर्मणः कां ते गतिं प्राप्ता नरर्षभाः ।  
 एतदिच्छाम्यहं श्रोतु प्रोच्यमानं त्वया द्विज ॥ ५

सूत उवाच ।

इत्युक्तः स तु विप्रर्षिरनुज्ञातो महात्मना ।  
 व्यासेन तस्य नृपतेराख्यातुमुपचक्रमे ॥ ६

वैशंपायन उवाच ।

गन्तव्यं कर्मणामन्ते सर्वेण मनुजाधिप ।  
 शृणु गुह्यमिदं राजन्देवानां भरतर्षभ ।  
 यदुवाच महातेजा दिव्यचक्षुः प्रेतापवान् ॥ ७  
 मुनिः पुराणः कौरव्य पाराशर्यो महाव्रतः ।  
 अगाधबुद्धिः सर्वज्ञो गतिज्ञः सर्वकर्मणाम् ॥ ८  
 वसूनेव महातेजा भीष्मः प्राप महाद्युतिः ।  
 अष्टावेव हि दृश्यन्ते वसवो भरतर्षभ ॥ ९  
 बृहस्पति विवेशाथ द्रोणो ह्यङ्गिरसां वरम् ।  
 कृतवर्मा तु हार्दिक्यः प्रविवेश मरुद्गणम् ॥ १०  
 सनत्कुमारं प्रद्युम्नः प्रविवेश यथागतम् ।  
 धृतराष्ट्रो धनेशस्य लोकान्प्राप दुरासदान् ॥ ११  
 धृतराष्ट्रेण सहिता गान्धारी च यशस्विनी ।  
 पत्नीभ्यां सहितः पाण्डुर्महेन्द्रसदनं ययौ ॥ १२  
 विराटद्रुपदौ चोभौ धृष्टकेतुश्च पार्थिवः ।  
 निशठाकूरसाम्बाश्च भानुः कम्पो विद्वरथः ॥ १३  
 भूरिश्रवाः शलश्चैव भूरिश्च पृथिवीपतिः ।  
 उग्रसेनस्तथा कंसो वसुदेवस्य वीर्यवान् ॥ १४  
 उत्तरश्च सह भ्रात्रा शङ्खेन नरपुंगवः ।  
 विश्वेषां देवतानां ते विविशुर्नरसत्तमाः ॥ १५  
 वर्चा नाम महातेजाः सोमपुत्रः प्रतापवान् ।  
 सोऽभिमन्युर्नृसिंहस्य फल्गुनस्य सुतोऽभवत् ॥ १६  
 स युद्धा क्षत्रधर्मेण यथा नान्यः पुमान्कचित् ।  
 विवेश सोमं धर्मात्मा कर्मणोऽन्ते महारथः ॥ १७

आविवेश रविं कर्णः पितरं पुरुषर्षभ ।  
 द्वापरं शकुनिः प्राप धृष्टद्युम्नस्तु पावकम् ॥ १८  
 धृतराष्ट्रात्मजाः सर्वे यातुधाना बलोत्कटाः ।  
 ऋद्धिमन्तो महात्मानः शस्त्रपूता दिवं गताः ।  
 धर्ममेवाविशक्षत्ता राजा चैव युधिष्ठिरः ॥ १९  
 अनन्तो भगवान्देवः प्रविवेश रसातलम् ।  
 पितामहनियोगाद्धि यो योगाद्रामधारयत् ॥ २०  
 षोडशस्त्रीसहस्राणि वासुदेवपरिग्रहः ।  
 न्यमज्जन्त सरस्वत्यां कालेन जनमेजय ।  
 ताश्चाप्यप्सरसो भूत्वा वासुदेवमुपागमन् ॥ २१  
 हतास्तस्मिन्महायुद्धे ये वीरास्तु महारथाः ।  
 घटोत्कचादयः सर्वे देवान्यक्षांश्च भेजिरे ॥ २२  
 दुर्योधनसहायाश्च राक्षसाः परिकीर्तिताः ।  
 प्राप्तास्ते क्रमशो राजन्सर्वलोकाननुत्तमान् ॥ २३  
 भवनं च महेन्द्रस्य कुबेरस्य च धीमतः ।  
 वरुणस्य तथा लोकान्विविधुः पुरुषर्षभाः ॥ २४  
 एतत्ते सर्वमाख्यातं विस्तरेण महाद्युते ।  
 कुरुणां चरितं कृत्स्नं पाण्डवानां च भारत ॥ २५

सूत उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठात्स राजा जनमेजयः ।  
 विस्मितोऽभवदत्यर्थं यज्ञकर्मान्तरेष्वथ ॥ २६  
 ततः समापयामासुः कर्म तत्तस्य याजकाः ।  
 आस्तीकश्चाभवत्प्रीतः परिमोक्ष्य भुजंगमान् ॥ २७  
 ततो द्विजातीन्सर्वास्तान्दक्षिणाभिरतोषयत् ।  
 पूजिताश्चापि ते राज्ञा ततो जग्मुर्यथागतम् ॥ २८  
 विसर्जयित्वा विप्रांस्तान् राजापि जनमेजयः ।  
 ततस्तक्षशिलायाः स पुनरायाद्राजाह्वयम् ॥ २९  
 एतत्ते सर्वमाख्यातं वैशंपायनकीर्तितम् ।  
 व्यासाज्ञया समाख्यातं सर्पसत्रे नृपस्य ह ॥ ३०  
 पुण्योऽयमितिहासाख्यः पवित्रं चेदमुत्तमम् ।

कृष्णेन मुनिना विप्र नियतं सत्यवादिना ॥ ३१  
 सर्वज्ञेन विधिज्ञेन धर्मज्ञानवता सता ।  
 अतीन्द्रियेण शुचिना तपसा भवितात्मना ॥ ३२  
 ऐश्वर्ये वर्तता चैव सांख्ययोगविदा तथा ।  
 नैकतन्त्रविवुद्धेन दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥ ३३  
 कीर्तिं प्रथयता लोके पाण्डवानां महात्मनाम् ।  
 अन्येषां क्षत्रियाणां च भूरिद्रविणतेजसाम् ॥ ३४  
 य इदं श्रावयेद्विद्वान्सदा पर्वणि पर्वणि ।  
 धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय गच्छति ॥ ३५  
 यश्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्पादमन्ततः ।  
 अक्षय्यमन्नपानं वै पितृस्तस्योपतिष्ठते ॥ ३६  
 अह्ना यदेनः कुरुते इन्द्रियैर्मनसापि वा ।  
 महाभारतमाख्याय पश्चात्संध्यां प्रमुच्यते ॥ ३७  
 धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।  
 यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्कचित् ॥ ३८  
 जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो भूतिमिच्छता ।  
 राज्ञा राजसुतैश्चापि गर्भिण्या चैव योषिता ॥ ३९  
 स्वर्गकामो लभेत्स्वर्गं जयकामो लभेज्जयम् ।  
 गर्भिणी लभते पुत्रं कन्यां वा बहुभागिनीम् ॥ ४०  
 अनागतं त्रिभिर्वर्षैः कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।  
 संदर्भं भारतस्यास्य कृतवान्धर्मकाम्यया ॥ ४१  
 नारदोऽश्रावयद्देवानसितो देवलः पितृन् ।  
 रक्षो यक्षाञ्शुको मर्यान्वैशंपायन एव तु ॥ ४२  
 इतिहासमिमं पुण्यं महार्थं वेदसंमितम् ।  
 श्रावयेद्यस्तु वर्णास्त्रीन्कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ॥ ४३  
 स नरः पापनिर्मुक्तः कीर्तिं प्राप्येह शौनक ।  
 गच्छेत्परमिकां सिद्धिमत्र ते नास्ति संशयः ॥ ४४  
 भारताध्ययनात्पुण्यादपि पादमधीयतः ।  
 श्रद्धानस्य पूयन्ते सर्वपापान्यशेषतः ॥ ४५  
 महर्षिर्भगवान्व्यासः कृत्वेमां संहितां पुरा ।

श्लोकैश्चतुर्भिर्भगवान्पुत्रमध्यापयच्छुक्रम् ॥ ४६  
 मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।  
 संसारेष्वनुभूतानि ध्यान्ति यास्यन्ति चापरे ॥ ४७  
 हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।  
 दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ ४८  
 ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे ।  
 धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥ ४९  
 न जातु कामान्न भयान्न लोभा-  
 द्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।  
 नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये  
 जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥ ५०  
 इमां भारतसावित्री प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।

स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ५१  
 यथा समुद्रो भगवान्यथा च हिमवान्गिरिः ।  
 ख्यातावुभौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥ ५२  
 महाभारतमाख्यानं यः पठेत्सुसमाहितः ।  
 स गच्छेत्परमां सिद्धिमिति मे नास्ति संशयः ॥  
 द्वैपायनोष्पुटनिःस्तमप्रमेयं  
 पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च ।  
 यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं  
 किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन ॥ ५४  
 इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि  
 पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ इति स्वर्गारोहणपर्व समाप्तम् ॥

॥ इति श्रीमहाभारतं संपूर्णम् ॥

